

लागत व्यय

पुस्तकके लिये कागज	५६१(=)
पुस्तककी छपाई	१०२६)
मानचित्र	७६)
कटाई भजाई प्रूफ आदि	१७१॥=)
प्रिजापन, भेंट आदि	५६५)
कमीशन	१२५०)
रॉयट्टी	७००)
मुनाफा	६५०)
	<hr/>
	योग ५०००)
एक प्रतिका मूल्य	५)

बुद्ध-चर्या

प्राक्-कथन ।

भगवान् बुद्धकी जीवनी और उपदेश दोनोंही इस ग्रन्थम सन्निविष्ट हैं । बुद्धकी जीवन-घटनायें पाली त्रिपिटकमें जहाँ-तहाँ बिखरी हुई हैं, मैंने उन्हें यहाँ संग्रह किया है । साथही रित्त स्थानको त्रिपिटककी अट्टकथाओंसे पूरा कर दिया है । पालीका अनुवाद यहाँ प्रायः दशदश हुमा है । बीच बीचमें कुछ अंश छोड़ दिए हैं, जिन्हें, पुरातनक लिये (०) छिद्र, और सर्वथा अनावश्यकके स्थानपर () छिद्र कर दिये हैं । दशदश अनुवाद करनेके कारण भाषा कहीं कहीं अत्यन्त सी है । कुछ विद्वानों का कहा भी कि सन्देश का स्थान छोड़कर स्वतन्त्र अनुवाद होना चाहिये, किन्तु मैंने यहाँ, त्रिपिटकमें आइ, भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सामग्रियोंको भी पुरुषित कर दिया है, स्वतन्त्र अनुवाद होनेपर ऐतिहासिकके लिये इसका मूल्य कम हो जाता, इसलिये मैंने धैर्य नहीं किया । मेरी इस रायमें आचार्य नन्ददेवभा सहमा रें । इस तरह भाषा कुछ अशुद्धीयों जरूर मालूम होगी, किन्तु १०० ५० पृष्ठ पर जातेपर माधारणता सी जायगी, और पालीक मुदावर धाकी हिन्दी एवं स्थानीय भाषाओंसे—विशेषकर पूर्वी-अवधी तथा बिहारकी भाषाओंमें बिल्कुल मिलते-जुलते हैं, इसलिये कोई दिक्कत न मालूम होनी चाहिये । योद्धोंके कुछ अपने दार्शनिक दृष्ट हैं, मैंने कोष्टक, तथा शिष्यवर्गोंमें जहाँ-तहाँ उनका समझानेका कामना की है, किन्तु रुधेपक कारण होसकता है, कहीं अर्थ स्पष्ट न हो पाया हो, इसक लिये दशदश सूत्रोंमें धैर्यता चाहिये, धैर्यता है, यहाँसे काम चल जायगा । यह दार्शनिक भावोंकेलिये पाठकों दृष्टानता सामान्य ज्ञान होना नो आवश्यक हो है । बुद्धके जन्म विभाग आदि समयक धारमें मैंने मिहलक परम्परासे ६० वर्ष कम कर दिये हैं, जिसको विक्रमसिंह आदि माना है, और जिसके करनेसे यवनराजाओंक कालमें भी ठीक मेल होजाना है ।

त्रिपिटक, कालक क्रममें पुरुषित नहीं किया गया है । त्रिपिटकका आरम्भ सुत्त-पिटक से होता है, और सुत्त पिटकका आरम्भ "अट्ठकथा-सुत्त"से, लेकिन यह सुत्त भगवान्ने बुद्धत्व प्राप्तिके पान्ही नर्णी उपदेश दिया । उसके बादका 'सामन्नाफल सुत्त' तो आयुक् यद्वातरे वर्षके बादका है, जब कि श्रोता मगधराज अजात शत्रु राजगद्दीपर बंध चुका था । इस प्रकार सभी घटनाओं और उपदेशोंका क्रमानुसार लगाना बहुत ही कठिन काम था, इस काममें मुझे कोई वला अपना पूर्वगामी भी नहीं मिला । यद्यपि यहाँ बिल्कुल ही सभी बातोंका क्रम ठीक कालानुसार है—यह मैं यहाँ कहता, तो भी प्रजापतीका संन्यास—छिद्योको भिक्षुणी बनने का अधिकार प्रदान, मैंने बुद्धत्व प्राप्तिके पांचवें वर्ष दिया है—जरूर ठीक होगा, इसी प्रकार बुद्धत्वके तीसरे वर्ष अनाथ पिंडरका जेतवन प्रदान करना, एवं यहाँ बुद्धका वर्णवाम करना भी सुय, और विनयको महायत्तासे निश्चयकर दिया गया है, यद्यपि यहाँ अट्टकथाका विरोध पडता है, किन्तु मूल त्रिपिटकके सामने अट्टकथाका विरोध कोई चीज़ नहीं है । इस पुरातनक कुछ जगह एकदा घनाको "अट्टकथा", "विनय", और "सूत्र" तीनाके अन्तर्में रिया है, उसक दृष्टनेसे

मालूम होगा, कि सूत्रोंकी अपेक्षा विनयमें अधिक अतिशयोक्ति एवं अलोकिकतासे काम लिया गया है, और अट्टकथा तो इस बातमें विनयसे बहुत आगे बढ़ी हुई है । और इसीलिये इसके ही अनुसार इनकी प्रामाणिकताका तारतम्य मान लेनेमें कोई हानि नहीं है । काल क्रममें उहाँ कहीं मुझे भी सदेह है, तथापि आशा है कि दूसरे संस्करण तक कुछ बातें और साफ हो जावेंगी । सभीके लिये तो उसी वक्त आशा छूट गई, जब कि पिटरको फट रथ करनेवाले, कालपरम्पराको लिपिबद्ध न करही इस लोकसे चले गये ।

कितने ही अनिश्चित भौगोलिक स्थानोंके निश्चय करनेका भी मेने प्रयास किया है । जैसे सहजातिको मैंने भीटा (जि० इलाहाबाद) से मिलाया है । वैशाखी निवासी भिक्षु नावपर सहजाति गये थे (पृष्ठ १६१), इससे सहजातिको किसी बड़ी नदीके किनारे होना चाहिये । नदी द्वारा व्यापारमें उस समय आसानी होनेसे, वह एक अच्छा बाजार होगा यह भी अनुमान होता है । इसके बाद हम भीटाकी पुर्दाईमें मिली एक मुहरपर " सहजा तिय नेगमे (१) " (सहजातिका नेगम) पाते हैं, इन तीनों बातोंसे इकट्ठा करनेसे भीटाका सहजाति होना निश्चय होता है । सहजाति चेदी देशमें थी, यह भीटाके यमुनाके दक्षिण तटपर स्थित होनेसे, ठीक मालूम होता है, यत्स और चेदी यमुनाके ऊपर पार थे ही । इसी प्रकार और भी कितने ही स्थान दिये हैं, बिस्तार मयसे उनके बारेमें यहाँ कुछ लिखना असंभव है । इस ग्रन्थके देखनेसे तथा त्रिपिटकमें भी पता लगता है, कि भगवान् बुद्ध कोसी कुरुक्षेत्र विंध्य हिमालयसे घिरे मध्य-देशके बाहर नहीं गये । समयाभावके कारण अनेक नक़्शे नहीं दिये गये । इस एक नक़्शेमें मध्यदेशके लिये जितना स्थान है, उतनेमें सभी आवश्यक स्थानोंका नाम देना असम्भव समझ इसे भी द्वितीय संस्करणकेलिये छोड़ दिया । मुझे अफसोस है, कि कित्तावसे भी अधिक अक्षम्य गरितया नक़्शेमें हो गई है । जलदीके कारण इलाहाबादसे मगावर, नक़्शेका प्रूफ न देख सका ।

बुद्धके धार्मिक विचारोंका सारांश यहाँ देना कठिन है । किन्तु पाठक इस दृष्टिसे पुस्तक पढ़नेके पूर्व, यदि एक बार " पेसपुत्तिय सुत्त " (पृष्ठ ३४७) और "सामगाम-सुत्त" (पृष्ठ ४८१) समझ लेंगे, तो उन्हें बुद्धके वास्तविक संतव्यके समझनेमें आसानी होगी ।

संवत् १९८५-८६ में, जिस समय मैं लंकामें त्रिपिटक पढ़ रहा था, उसी समय बहुत सी बातें नोटभी करती जाती थी । उस समय मेरा विचार था, कि त्रिपिटक और उसकी अट्टकथाओं (= भाष्यों) में प्राच्य ऐतिहासिक और भौगोलिक सामग्रोपर एक ग्रंथ लिखूँ । इसी ख्यालसे लंकामें रहते ही वक्त, मेने श्रावस्ती-जैतवनपर एक परिच्छेद लिख भी डाला, जो कि काशी-विद्यापीठकी त्रैमासिक पत्रिका ' विद्यापीठ ' में निकल रहा है । उस समय मुझे आशा थी, कि तत्काल मे इस ग्रन्थके लिखनेमें हाथ लगाईंगा । एकासे मैं तिब्बत जानेके लिये भारत आया । उस समय बात-चीत करनेमें एक ऐसी पुस्तककी आवश्यकता प्रतीत हुई । नेपाल और ल्हासाके नेपाली बौद्धोंसे बात चीत करनेपर दृढ़ कर लेना पड़ा, कि मौका मिलते ही इस ग्रन्थमें हाथ लगाईंगा । किन्तु, उस समय मुझे, यह विद्वान न था, कि मैं इनकी जल्दी (१४ मासमें) अपनी यात्रा समाप्त कर पाऊँगा ।

१९८७ में मैं लिखतसे लंका लौट गया । वहाँ अपने ज्येष्ठ सम्राट्वाचारी आयुमान् आनंदकी प्रेरणाने और मदद दी, फलतः १९८७ को आदिपुन पूर्णिमा या महाप्रवारणासे लिपना आरंभकर पौष कृष्ण अष्टमीको कुल ६८ दिनस समाप्त कर दिया । इसके तीसरे दिन पौष कृष्ण १० को मुझे भारतक लिये प्रस्थान करना था, इस लिये इच्छा रहते भी 'ब्रह्मचाल-मुत्त' और 'सिगालो-वाद्-मुत्त'को नहीं शामिल कर सका, जिनमें छपते वक्त "सिगालोवाद्"को तो ले लिया, लेकिन समयाभावसे इस संस्करणमें "बटाजाल"के देनेके लोभको संवरण करना पड़ा ।

भारतमें चूँकि मुख्यतः मैं देशके आंदोलनमें भाग लेने आया था, इसलिये पुस्तककी ओर ध्यान देनेका विचार न था । किंतु, अशुद्धियोंकी भरमारके टरसे अपने "अभिधर्मज्ञेय" (जो हाल हीमें काशी विद्यापीठकी ओरसे संस्करणमें छपा है)के प्रूफ-संशोधनका भार लेना पड़ा । उसी समय में इस पुस्तकके नामकरणके लिये सलाह कर रहा था और एकाएक "बुद्धचर्या" नाम सामने आया । तबतक मैंने ग्रंथको दुबारा देखा भी न था, मैंने यह काम भदन्त आनन्दको सौंपा, और उन्होंने कुछ दिनोंमें समाप्त भी कर दिया । जनवरीक अंतिम में अपने कार्यक्षेत्रमें चला गया । फिर वर्षावासके लिये मुझे कहाँ एक जगह ठहरना था, मैंने इसके लिये बनारसको चुना । मेरे मित्रोंमें विशेषकर श्रीधूपनायसिंहो 'बुद्धचर्या'के छपानेका बहुत आग्रह किया, और पावसौ रुपये देने भी तैयार लिये, दोसौ रुपये और भी जमा थे । बनारस आनेपर मैंने निश्चय किया कि, इस सातसौ रुपयेसे पुस्तकका जितना हिस्सा छप जाये, उतना पहिले छपा लेना चाहिये, बाकी पोछे देखा जायेगा । छपाई शुरू होगई । इसी बीच यावु शिवप्रसादगुप्तसे बात हुई, और उन्होंने इसे अपनी ओरसे छपाना स्वीकार किया । श्रीधूपनायने इस निश्चयक पूर्णही कहला भेजा था कि, पुस्तक सभी छप जानी चाहिये, और भी जो काम छोगा, मैं दूंगा । इस तरह पुस्तकके इतनी जल्दी प्रकाशित होनेमें सबसे बड़े कारण श्रीधूपनायही हैं । यावु शिवप्रसादजीकी उदारताके बारेमें कुछ कहना तो व्यर्थही होगा । मेरे मित्र आचार्य नरेन्द्रद्वजो तो मुझसे भी अधिक इस पुस्तकके छपनेके लिये उत्सुक थे, और उन्होंने इसके लिये बहुत कोशिशकी, जिनका फल यह आपके सामने है ।

जल्दी, असावधानी, या न जाननेके कारण पुस्तकमें बहुतसी अशुद्धियाँ रह गई हैं । शुभाशुद्ध पत्रको बेकार और समयापक्ष समझ, लोड दिया ।

काशी विद्यापीठ, काशी ।
आखिरी कृष्ण १४, १९८८

राहुल-साठुत्यायन ।

भूमिका ।

भारतमें बौद्ध-धर्मका उत्थान और पतन ।

बौद्ध धर्म भारतमें उत्पन्न हुआ । इसने सस्थापक गौतम बुद्धने कोसी-कुशक्षेत्र और हिमाचल त्रिष्याचलके भीतरही बिचरने हुए ४५ वर्ष तक प्रचार किया । इस धर्मके अनुयायी बिरकाल तक, महान् सम्राटोंसे लेकर साधारण जन तक, सारे भारतमें, बहुत अधिकतासे, फैले हुये थे । इसके भिक्षुओंके मठों और विहारोंसे देशका सायद ही कोई भाग रिक्त रहा हो । इसके विचारक और दार्शनिक हजारों वर्षोंतक अपने विचारोंसे भारतके विचारको प्रभावित करते रहे । इसके कला विद्वानोंने भारतीय कला पर अमिट छाप लगायी । इसके वास्तुशास्त्री और प्रस्तर शिल्पी हजारों वर्षोंतक सजीव पर्वतशृङ्खलोंको मोमकी तरह काटकर, अर्जता, एग्रेस, फाल्, नासिक जैसे गुहा-विहारोंको घनात रहे । इसके गभीर मतव्यांगों अपनापनेके लिये यवन और चीन जैसी समुदाय जातियाँ लालायित होती रहीं । इसके दार्शनिक और सदाचारक नियमोंको आरम्भसे आजतक सभी विद्वान्, बड़े आत्माकी दृष्टिसे देखते रहे । इसके अनुयायियोंकी संख्याक बराबर आजभी किसी दूसरे धर्मकी संख्या नहीं है ।

ऐसा प्रतापी बौद्ध धर्म अपनी मातृभूमि भारतसे कैसे लुप्त हो गया ? यह बड़ाही महत्त्वपूर्ण तथा आश्चर्यकर प्रश्न है । इसी प्रश्नपर मैं यहाँ संक्षिप्त रूपसे विचार करूँगा । भारतसे बौद्ध धर्मका लोप तेरहवीं, चौदहवीं शताब्दियोंमें हुआ । उस समयकी स्थिति जाननेके लिये कुछ प्राचीन इतिहास जानना जरूरी है ।

गौतम बुद्धका निर्वाण विषम पूर्व ४७६ में हुआ था । उन्होंने अपने सारे उपदेशों को लिख दिया था, तो भी उनके शिष्य उनके जीव कालमें ही उसे कठस्थ का लिपा फाते थे । यह उपदेश दो प्रकारके थे, एक साधारण, धर्म और दर्शनके विषयमें, और दूसरे भिक्षु भिक्षुणियों के नियम । पहलेको पालीमें "धम्म" (धर्म) कहा गया है, और दूसरेको "विाय" । बुद्धके निर्वाण (वैशाख पूर्णिमा) के बाद उनके प्रधान शिष्योंन (आगे मतभेद न होनाय, इसलिये) उनी वर्षमें राजगृह (जिला पटना) की सातवर्गी गुहाम एकत्र हो, "धम्म" और "विाय" का संगायन किया । इसी को प्रथम संगीति कहा जाता है । इसमें महान्यायप मित्र संघके प्रधान (संघ स्वधिर) की हेतियतसे, धर्मके विषयमें बुद्धक चिर अनुचर 'आनन्दा' से और विायके विषयमें बुद्ध प्रवीणित 'उपालि'से प्रश्न पूछते थे । अहिंसा, मत्प, अचौर्य, महाघय आदि सुत्रोंको पालीमें 'दीर्घ' कहते हैं, और स्कथ (रूप आदि), आयतन (रूप, वस्तु, चतुर्विंशति आदि), घास (श्रुतिविधि, जन्म आदि) आदिके सूत्र दार्शनिक विचारको प्रज्ञा, दृष्टि, दर्शन या विषयवत्ता कहते हैं । बुद्धने उपदेशोंमें क्षील और प्रज्ञा, दोनोंपरही पूरा जोर दिया गया है । "धर्म"के लिये पालीमें दूसरा शब्द 'सुत्त' (सूक्त, सूत्र) या "सुत्तन्त" भी आया है । प्रथम संगीति के स्वधिर भिक्षुओंने "धम्म" और "विनय" का इस प्रकार संग्रह किया । पीछे भिन्न भिन्न भिक्षुओंने उनको शृण्व शृण्व कठस्थ कर, अध्ययन-अध्यापनका भार अपने ऊपर लिया । उनमें सिद्धों । "धम्म" या "सुत्त"की रक्षाका भार लिया, यह "धम्म धरा", "सुत्त धरा" या "सुत्तधरा" (मौलान्तिक) कहलाये । जिन्होंने "विनय" की रक्षाका भार लिया, यह "विनय धरा" कहलाये ।

इनके अतिरिक्त राज्योंमें बुद्ध-संघी अश्व कदा कहीं बड़ेही संश्लेष रूपमें थे । इन्हें “मात्रिका” (=मात्रिका) कहते थे । इन मात्रिकाओंके रक्षक “मात्रिकाधर” कहलाये । पीछे मात्रिकाओंको समझानेके लिये उनका विस्तार किया गया, तब इसीका नाम “अभिधम्म” (अधिधर्म—धर्ममेंसे) हुआ, और इसने रक्षक “आभिधम्मिक” (=आधिधर्मिक) हुये ।

प्रथम संगीतिके सौ वर्ष बाद, चेनालीके भिक्षुओंने विनयके कुछ नियमोंकी अवहेलना शुरू की । इसपर विवाद आरम्भ हुआ, और अंतमें फिर भिक्षु संघने एकग्रहो, उन विवाद-ग्रस्त विषयोंपर अपनी राय दी, एवं “धर्म” और “विनय” का संगायन किया । इसीका नाम द्वितीय संगीति हुआ । कितनेही भिक्षु इस संगीतिसे सहमत न हुए और उन्होंने अपने महासंघका कोशाम्बीमें वृधक् सम्मेलन किया, तथा अपने मतानुसार “धर्म” और “विनय” का संग्रह किया । संघका स्थविरा [बुद्ध-भिक्षुआ] का अनुगमन करनेवाला होनेसे, पहला समुदाय (=निकाय) आर्यस्थविरा या रथविरादके नामसे प्रसिद्ध हुआ, और दूसरा महासाधिक । इन्हीं दो समुदायोंसे अगले लग सौ वर्षोंमें, स्थविरवादसे—वज्रिपुत्तक, महाशासक, धर्मगुप्तिक, सौत्रातिक, सर्वांस्तित्वाद, काश्यपीय, संक्रातिक, सम्मतीय, पाण्णागरिक, भद्रयानिक, धर्मोत्तरीय, और महासाधिकसे—गोकुलिक एक-ग्रहारिक, प्रज्ञसिवाद (=लोकोत्तरवाद), बाहुलिक, वैश्यवाद, यह १८ निकाय हुये । इनका मतभेद विनय और अभिधर्मकी बातोंको लेकर था । कोई कोई निकाय आर्यस्थविराकी तरह बुद्धको मनुष्य न मानकर उन्हें लोकोत्तर मानने लगे । वह बुद्धमें अमृत और दिव्य-शक्तियोंका होता मानते थे । कोई कोई बुद्धके जन्म और निर्वाणको दिखावा मात्र समझते थे । इन्हीं भिन्न-भिन्न मान्यताओंका अनुसार उनके सूत्र और विनयमें भी फर्क पड़ने लगा । बुद्धकी अमानुषिक लीलाभाके समर्थन में नये-नये सूत्रोंकी रचना हुई । बुद्धके निर्वाणके प्रायः सत्ता दो सौ वर्ष बाद, सम्राट् अशोकने बौद्ध धर्म ग्रहण किया । उनके गुरु मोग्गल्लिपुत्त तिल्लस (मौद्गल्लि पुत्र तिल्लस) उस समय आर्यस्थविराके संघस्थविरा थे । उन्होंने मतभेद दूर करनेके लिये पन्नामें अशोकके बगनाये “अशोकराम” नामक मठमें भिक्षु-संघके द्वारा चुने गये हजार भिक्षुओंका सम्मेलन किया । इन्होंने मिलकर सभी विवाद-ग्रस्त विषयोंका निर्णय तथा धर्म और विनयका संगायन किया । यहो सम्मेलन तृतीय संगीति के नामसे प्रसिद्ध हुआ । इसी समय आर्यस्थविरासे निकाले सर्वांस्तित्वाद आदि ग्यारह नि-कायोंने बाल्श्याम अपनी वृधक् संगीति की । बाल्श्या, जो समय-समयपर बुद्धका निवास-स्थान होनेसे पुनीत स्थानोंमें गिनी जाती थी, इसी समयसे मरास्तिरादियोंका मुख्य-स्थान बन गई ।

तृतीय संगीति समाप्तकर मोग्गल्लिपुत्त तिल्लसने, सम्राट् अशोककी सहायतासे, भिन्न-भिन्न देशोंमें धर्म प्रचारक भेजे । यह पहला मौका था, जब एक मास्तीय धर्म, संगठित रूपमें, भारतकी सीमासे बाहर प्रचारित होने लगा । यह प्रचारक जहाँ पश्चिममें यवन राजाओंके राज्यो (घोस, मिला, सीरिया आदि देशों) में गये, वहाँ उत्तरमें मध्य एशिया तथा दक्षिणमें ताम्रपर्णी [एका] और सुवर्ण द्वीप [वसा] में भी पहुँचे । लंकामें, अशोकके पुत्र तथा मोग्गल्लिपुत्त तिल्लसके शिष्य ‘भिक्षु महेन्द्र’ और उनकी सहोदरा ‘सहस्रमित्रा’ गयीं । लंकाके राजा ‘देवानपिय तिल्लस’ बौद्ध धर्ममें दीक्षित हुये । कुछही दिनोंमें वहाँकी सारी जनता बौद्ध हो

भारतमें बौद्ध धर्मका उत्थान और पतन ।

गयी । आर्य स्यविरवादका आरम्भसे ही यहाँ प्रचार रहा । चौथे, बारहवीं तेरहवीं शताब्दियोंमें, जब चर्मा और न्यामका महायान बौद्ध-धर्म, विद्वत् तथा जर्जित हो, लुप्त होने लगा, तब आर्यस्यविरवाद वहाँ भी सर्वव्याप्त होगया । छठम ही ईसाकी प्रथम शताब्दीमें, सूत्र, विनय और अभिधर्म—तीनों पिटक (=त्रिपिटक), जो अद्यतक ब्रह्म्य बने आते थे—ऐसबद्ध किये गये, और, यही आजकलका पाली त्रिपिटक है ।

मौर्य-सम्राट् बौद्ध धर्मपर अधिक अनुरक्त थे, इसलिये उनके समयमें, अनेक पवित्र स्थानोंमें राजाओं और धनिकोंने बड़े बड़े स्तूप और संघासना (मठ) बनवाये, जिनमें भिक्षु स्तुत पूर्वक रहकर धर्म-प्रचार किया करते थे । ईसाके पूर्व, दूसरी शताब्दीमें, मौर्योंके सेनापति पुष्यमित्रने अन्तिम मौर्य-सम्राट्को मारकर अपने शुद्धवंशका राज्य स्थापित किया । यह नया राजगद्ग राजनीतिक उपयोगिताके विचारसे ब्राह्मण धर्मका पक्ष अनुयायी और अत्राह्मणधर्म-द्वेषी हुआ । शताब्दियोंसे परित्यक्त यक्षु-पटिमय अश्वमेध आदि या, महामाप्यकार पवजालिके पौरोहित्यमें फिरने होने लगे । ब्राह्मणोंके साहाय्यसे भो मनुष्यजि जैसे मन्त्रोंकी रचनाका सूत्रपात हुआ । इसी समय महाभारतका प्रथम संस्करण हुआ तथा मृत संस्कृत भाषाके पुनरुद्धारकी चष्टा की गयी । परिस्थितिके अनुकूल न होनेसे धीरे धीरे बौद्ध लोग बौद्ध धर्मके केन्द्रोंको मगध और कोसलके दूसरे देशोंमें हटाने पर मजबूर होने लगे । आर्य-स्यविरवाद मगधसे हटकर विदिशाके समीप चैत्य पर्वत (वतमान 'साँची') पर चला गया, सर्वास्तिवाद मथुराक उरुमुण्ड-पर्वत (=गोवर्धन) चला गया । इसी तरह और निकायोंने भी अपने-अपने केन्द्रोंको अन्यत्र हटा दिया ।

आर्य स्यविरवाद सबसे पुराना निकाय है, और इसने सभी पुगनी बातोंको बड़ी कड़ाईसे सुरक्षित रखा । दूसरे निकायोंने देस, काल और व्यक्तिके अनुसार अनेक परिवर्तन किये । अतक त्रिपिटक मगधकी भाषाम ही था, जो कि, पूर्वा युक्तप्रान्त तथा विहारका साधारण भाषा थी । सर्वास्तिवादियोंने मथुरा पहुँचकर अपने त्रिपिटकोंको ब्राह्मणोंकी प्रशंसित संस्कृत भाषामें कर दिया । इसी तरह महामाघिक, लोकोत्तरवाद आदि क्रितन ही और निकायोंने भी अपने पिटकोंको संस्कृतमें कर दिया । यह संस्कृत पाणिनाय संस्कृत न भी, आज कल इसे माध्यासंस्कृत कहते हैं ।

मौर्य साम्राज्यक विनष्ट हो जानेपर पश्चिमी भारतपर यवन राजा 'मिनान्द्र' ने कब्जा कर लिया । मिनान्द्रने अपनी राजधानी साकल (वर्तमान 'रूपालकोट') बनायी । उसके तथा उसके वंशजोंके क्षत्रप (=बायसमय) मथुरा और उज्जैनमें रहकर शासन करने लगे । यवन राजा अधिकांशमें बौद्ध थे, इसलिये उनके उज्जैनके क्षत्रप मालीके स्यविरवादियापर तथा मथुराके क्षत्रप सर्वास्तिवादियापर बहुत स्नेह और दया रहने लगे । मथुरा उस समय पुरु क्षत्रप की राजधानी हो न थी, बल्कि पूर्व और दक्षिणमें तक्षशिलाके बणिहू-यथवर वंशपासका एक सुप्रसिद्ध प्रयाग केन्द्र थी, इसलिये सर्वास्तिवादके प्रसारमें बड़ी सहायक हुई । मगधर सर्वास्तिवादसे इसमें कुछ अन्तर हो चुका था, इसीलिये यहाँका सर्वास्तिवाद आर्य-स्यविरवादके नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

यवनोको परास्तकर यूचियोंने पश्चिमी भारतपर कब्जा किया । इन्हींकी श्रावा कुपाण थी, जिसमें प्रतापी सम्राट् कनिष्क हुए । कनिष्ककी राजधानी पुरपपुर (=पेशावर) थी । उस समय सत्तास्तिवाद गन्धारमें पहुँच चुका था । कनिष्क स्वयं सत्तास्तिवादियोंका अनुयायी था । इसीके समयमें महाकवि अश्वघोष और आचार्य वसुमित्र आदि पैदा हुए । उस समय गन्धारके सत्तास्तिवादमें—जो मूल सत्तास्तिवाद कहा जाता था—कश्मीर और गन्धारके आचार्योंका मत भेद हो गया था । देवपुत्र कनिष्ककी सहायतासे वसुमित्र, अश्वघोष आदि आचार्योंने सत्तास्तिवादी बौद्ध मिश्रोंकी एक बड़ी सभा बुलाई । इस सभामें आपसके मतभेदोंको दूर करनेकेलिये उन्होंने अपने त्रिपिटकपर 'विभाषा' नामकी टीकायें लिखीं । विभाषा के अनुयायी होनेसे मूल सत्तास्तिवादियोंका दूसरा नाम 'वेभाषिक' पड़ा । बौद्ध धर्ममें दुःखों से मुक्ति यानी निर्वाणके तीन रास्ते माने गये हैं । (१) जो सिर्फ रचय दुःखमुक्त होना चाहता है, वह आर्य अष्टांगिन मार्गपर आरुढ़ हो, जीवमुक्त हो, अर्हत कहा जाता है । जो उससे कुछ अधिक परिश्रमकेलिये तैयार होता है, वह जीवमुक्त हो, प्रत्येक बुद्ध कहा जाता है । जो असत्य जीवोंका मार्गदर्शक बननेके लिये अपनी मुक्तिकी फिक्र न कर, बहुत परिश्रम और बहुत समय बाद, उस मार्गसे स्वयंप्राप्त निर्वाणको प्राप्त होता है, उसे 'बुद्ध' कहा जाता है । ये तीनों ही रास्ते क्रमशः अर्हत (=श्रावक) यान, प्रत्येक बुद्ध, याग और बुद्ध-यान कहे जाते हैं । आचार्य अश्वघोषने बाकी दो यानोंकी अपेक्षा बुद्ध-यानपर बड़ा जोर दिया और इसे महायान कहा । इस तरह पीछे कुछ लोग दूसरे यानोंकी स्वार्थपूर्ण कह, केवल बुद्धयान या महायानकी प्रशंसा करने लगे । यह स्मरण रहे कि, अठारहो निकाय तीनों यानोंको मानते थे । उनका कहना था कि, किसी यानका चुनाव सुमुखोंकी अपनी स्वभाविक रुचिपर निर्भर है ।

ईसाकी प्रथम शताब्दीमें, जिस समय वेभाषिक संप्रदाय उत्तरमें उठता जा रहा था, दक्षिणके विदर्भ[उत्तर] देशमें आचार्य नागार्जुन पैदा हुए । उन्होंने माध्यमिक या शून्यवाद दर्शनपर ग्रन्थ लिखे । कालान्तरमें महायान और माध्यमिक दर्शनके योगसे शून्यवादी महायान-संप्रदाय चला, जिसने त्रिपिटककी अनवश्यकता समय समयपर बने हुए अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता आदि ग्रन्थोंने पूरी की । चौथी शताब्दीमें पेशावरके आचार्य वसुबन्धुने वेभाषिकोंसे कुछ मतभेद करके सौत्रान्तिकवादका "अभिधर्मकोश" ग्रन्थ लिखा और उनके बड़े भाई 'असग' विशानवाद या योगाचार-संप्रदायके प्रवर्तक हुए । इस प्रकार चौथी शताब्दी तक बौद्धोंके वेभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक, चार दार्शनिक संप्रदाय बन चुके थे । इनमें पहले दोनोंको माननेवाले ताना यानोंको मानते थे, इसलिये उन्हें महायानियाने हीनयानका अनुयायी कहा, और, बाकी दो सिर्फ बुद्धयानही को मानते थे, इसलिये उन्होंने अपनेका महायानका अनुयायी कहा ।

महायानी बुद्धयानक एकान्त भक्त थे । इतना ही नहीं, बल्कि अपने उत्साहमें वे बाकी दो यानोंका बुरा-भला कहने से बाज न आते थे । बुद्धके अलौकिक चरित्र उन्हें बहुत उपयुक्त मालूम हुए; इसलिये उन्होंने महासाधिका और लोकोत्तरवादियोंकी बहुत सी बातें लीं । रत्नट्ट और वेमुल्ल नामके बहुत से सूत्रोंकी भी उन्होंने रचना की । बुद्धयानपर अच्छा प्रकार

भारतमें बौद्ध धर्मका उत्थान और पतन ।

मारुह, सुदृत्वके अधिकारी, प्राणीको बोधिसत्त्व कहा जाता है । महायानके सूत्रोंमें हर एकको बोधिसत्त्वके मार्गपरही चलने के लिये जोर दिया गया है, वह यही कि हर एक अपनी मुक्ति की पूर्वाह्न छोड़कर सभारके सभी प्राणियोंको मुक्ति के लिय प्रयत्न करे । बोधिसत्त्वोंकी महत्ता दरसानेके लिये जहां अवलोकितेश्वर, मञ्जुश्री, आकाशगर्भ आदि मंत्रोंके बोधिसत्त्वोंकी कल्पना की गयी, वहां सारिपुत्र, मोग्गलान आदि अर्हत् [=मुक्त] शिष्योंको अ-मुक्त और बोधिमत्त्व प्राप्त दिया गया । सारांश यह कि, जिस प्राचीन सूत्र आदि परम्पराको अठारहों निकाय मानते आ रहे थे, महायानियोंने उन सभीको बोधिमत्त्व और बुद्ध धानेकी धुनमें एकत्र उलट पलट करनेमें कोई कसर न रखी ।

कनिष्कके समयमें पहले-पहल बुद्धकी प्रतिमा (मूर्ति) बनायी गयी । महायानके प्रचारके साथ जहां बुद्ध-प्रतिमाओंकी पूजा-अर्चा बढ़े ठाट-बाटसे होने लगी, वहां सैन्धवों बोधिसत्त्वोंकी भी प्रतिमाएँ बनने लगीं । इन बोधि सत्त्वोंको उन्होंने ब्राह्मणोंके दर्बी देयताओं का काम सौंपा । उन्होंने तारा, प्रज्ञापारमिता, विजया आदि अनेक देवियोंकी भी कल्पना की । जगह-जगह इन देवियों और बोधिसत्त्वोंके लिये बड़े-बड़े विशाल मंदिर बन गये । उनमें बहुतसे स्तोत्र आदि भी बनने लग । इस दानार्थ ही लोगोंने यह खयाल न किया कि, हमारे इन कामसे किसी प्राचीन परंपरा या किसी भिक्षु नियमका उल्लंघन होता है । जब किसीने दलील पेश की, तो कह दिया—विषय नियम तुच्छ स्वार्थक पीछे मलेवाले हीनयानियोंने लिये हैं, सारी दुनियाकी मुक्ति के लिये मरने-जीनेवाले बोधिसत्त्वोंको इसकी कैसी पावनी नहीं हो सकती । उन्होंने हीनयानके सूत्रोंसे अधिक माहात्म्यवाले अपने सूत्र बनाये । मरुफा पृष्ठोंके सूत्रोंका पाठ जल्दी नहीं हो सकता था, इसलिए उन्होंने हर एक सूत्रकी दो तीन पंक्तियोंमें छोटी छोटी धारणी, जैसे ही बनायी, जेते भागवतका षष्ठ्योक्ती भागवत, गीताकी सप्तश्लोकी गीता । इन्हीं धारणियोंको और सक्षिप्त करके मंत्रोंकी सृष्टि हुई । इस प्रकार धारणियों, बोधिसत्त्वों, उपासकों अनेक दिव्य-शक्तियों, तथा प्राचीन परंपरा और पित्रकी—निस्कोच की जाती—उलट पलटते उत्साहित हो, गुप्त साम्राज्यके आरंभिक कालसे हर्षवर्द्धनके समयतक मञ्जुश्री मूलस्थ, गुह्यसमाज और चक्रसंघ आदि कितने ही तंत्रोंकी सृष्टिकी गई । पुगने निकायोंने अपेक्षा तन सरलतासे अपनी मुक्ति के लिये अर्हत्त्व और प्रत्येक उद्भवानका रास्ता चुना रखा था । महायानने सगने लिये सुदुर्गम बुद्ध धानका ही एकमात्र रास्ता रखा । आगे चलकर इस कठिनाईको दूर करनेके लिये ही उन्होंने धारणियों, बोधिसत्त्वोंकी पूजाओंका आविष्कार किया । इस प्रकार जब आसान दिशाओंका मार्ग खुलने लगा, तब उसके आविष्कारकोंकी भी संख्या बढ़ने लगी । मञ्जुश्री-मूलस्थाने तंत्रोंके लिये रास्ता खोल दिया । गुह्यसमाजने अपने भैरवीचक्र के दशान, योसमोग तथा मंत्रोच्चारणसे उसे और भी आसान कर दिया । वह मत महायानन भीतर ही ही उत्पन्न हुआ, किन्तु पहले इसका प्रचार भीतर ही भीतर होता रहा । भेरवी चक्रकी सभी कार्यवाहियां गुप्त रक्की जाती थीं । प्रशासकोंको कितनेही समयतक उमेन्वारी करनी पड़नी थी । पीछे अनेक अभिषेका और परीक्षाओंके बाद यह समाज मिलता जाता था । यह मंत्रयान (=तंत्रयान, उग्रयान) संप्रदाय इस प्रकार सातवीं शताब्दी तक गुप्त

रोतिसे चलता रहा । इसका अनुयायी बाहरसे अपनेको महायानी ही कहते थे । महायानी भी अपना पृथक् विषय-पिटक बना बना सके थे, इसी लिये उनके मिथुलोग सर्वास्तिवाद आदि निरायाम दीक्षा लेते थे । आठवां शताब्दीमें भी, जब कि गालन्दा महायानका गढ़ थी, वहाँके भिउ सर्वास्तिवाद-विषयके अनुयायी थे । संनिके प्रचुर प्रचारसे मिथुनोंकी विनयम सर्वास्तिवादका, बाधितस्त्वचर्याम महायानकी और भेरगीचक्रमें वज्रयानकी दीक्षा लेनी पड़ती थी ।

आठवीं शताब्दीमें एक प्रकारसे भारतके सभी बौद्ध संप्रदाय वज्रयाना गर्भित महायानाके अनुयायी हो गये थे । बुद्धकी सीधी सादी शिक्षाओंसे उनका विश्वास उठ चुका था, और वे मागधत हजारों लोकोत्तर कथाओंपर विश्वास करते थे । बाहरमें मिथुने कपड़े पहननेपर भी भीतरसे वे गुणमत्ताकी थे । यड़े गड़े निद्वान् और प्रतिभाशाली कवि आये पागल हो, चौरासी सिद्धास दागिन् हो, नया भाषामें निर्गुण गान करते थे । सातवीं शताब्दीमें उड़ीसाके राजा इन्द्रभूति और उसके गुरु सिद्ध अनामवज्र तथा दूसरे पंडित सिद्ध, स्त्रियोंको ही मुक्तिदात्री 'प्रजा', पुरुषोंको ही मुक्तिका 'उपाय' और शराबकी ही 'अमृत' सिद्ध करनेमें अपनी पण्डिताई और सिद्धाई खर्च कर रहे थे । आठवां शताब्दीसे बारहवीं शताब्दीतकका बौद्ध धर्म चस्तुत वज्रयान या भंरवीचक्रका धर्म था । महायानो ही धारणियों और पूजाओंसे निर्माणको सुगम कर दिया था, वज्रयानने तो उसे एक दम सहज कर दिया, इसीलिये आगे चत्कर वज्रयान 'सहजयान' भी कहा जाने लगा ।

वज्रयानके निद्वान् प्रतिभाशाली कवि चौरासी सिद्ध विलक्षण प्रकारसे रहा करते थे । कोई पनहीं बनाया करता था, इसलिये उसे पनहीपा कहते थे । कोई कन्यए ओढ़े रहता था इसलिये उसे कमरीपा कहते थे । कोई दमरु रखनेसे डमरुपा कहा जाता था । कोई ओखल रखनेसे ओखरीपा । ये लोग शराबमें मग्न, खोपड़ीका प्याला लिये, दमशान या विकृत जगलाम रहा करते थे । जन साधारणको जितनाही वे फकारते थे, उतना ही लोग इनके पीछे हाँड़ते थे । लोग घोषितस्त्र प्रतिमाओं तथा दूसरे देवताओंकी भाँति इन सिद्धोंको अद्भुत चमत्कारों और दिव्य शक्तियोंके धना समझते थे । ये लोग खुदमखुला स्त्रियों और शराबका उपभोग करते थे । राजा अपनी कन्याओंतकको इन्हें प्रदान करते थे । यह लोग त्राट्र या हेमराट्रिज्मकी कुछ प्रक्रियाओंसे चाकिफ थे । इसी वजहपर अपने भोले भाले अनुयायियोंको कभी कभी कोई कोई चमत्कार दिया देते थे । कभी-कभी हाथकी सफाई तथा श्लेष्म-मुक्त अल्पष्ट वाक्योंसे जनतापर अपनी धाक जमाते थे । इन पाँच शताब्दियोंमें धीरे-धीरे एक तरहसे सारी भारतीय जातों इनके चङ्गमें पड़कर काम उपपनी, मद्यन और मूढ-विश्वासी बन गयी थी । राजा लोग जहाँ राज रक्षाके लिये पलटन रखने थे, वहाँ उसके लिये किसी सिद्धा-चाय तथा उसके सेरुणों तांत्रिक अनुयायियोंको भी एक बहु-व्यय साध्य पलटन रखा करते थे । दबमदिरोंमें बराबर ही बलिपूजा चढ़ती रहती थी । लाम सत्कारका द्वार उन्मुक्त होनेसे माहणों और दूसरे धर्मानुयायियोंने भी बहुत अंशमें इनका अनुकरण किया ।

भारतीय जनता जब इस प्रकार दुराचार और मूढ विश्वासके परममें कडक डूबी हुई थी । माहण भी जातिभेदक बिप शीजको शताब्दियोंतक बोर, जातिको टुकड़े-टुकड़े बाँटकर,

भारतमें बौद्ध-धर्मका उत्थान और पतन ।

घोर गृह कलह पैदा कर चुके थे । जिस समय क्षताब्दियोंसे अन्धालु राजाओं और धनिकोंने चराचा चढाकर, मयों और मंदिरोंमें अपार धन राशि जमा करदी थी, उसी समय पश्चिमसे तुर्कोंने हमला किया । तुर्कोंने मंदिरोंकी अपार सम्पत्तिकी ही नहीं लूट, बल्कि अगणित दिव्य शक्तियोंके मालिक देव मूर्तियोंको भी चकनाचूर कर दिया । तांत्रिक लोग मंत्र, यज्ञ और पुरश्चणका प्रयोग करते हो रह गये, किन्तु उससे तुर्कोंका कुछ नहीं बिगड़ा । तेरहवीं शताब्दीके आरम्भ होते होते तुर्कोंने ममस्त उत्तरी भारतको अपने हाथमें कर लिया । जिम बिहारके पाल्गुशी राजाने राज्य-रक्षाके लिये उद्भुतपुरीका तांत्रिक विहार बनाया था, उसे मुहम्मद बिन बरितियारने सिर्फ दो सौ घुड़सवारोंसे जीत लिया । नालन्दाकी अद्भुत शक्तिवाली तारा टुकड़े टुकड़े करके फेंक दी गयी । नालन्दा और विजयशिलाके सैकड़ों तांत्रिक भिक्षु खज्जारेके घाट उतार दिये गये । यद्यपि इन युद्धमें अपार जन घाती हानि हुई, अपार धन राशि भस्मसाह हुई, संरङ्गों कला-कौशलके उत्कृष्ट नमूने नष्ट कर दिये गये, तो भी इससे एक फायदा हुआ—यह यह कि, लोगोंका जादूका स्वप्न टूट गया ।

चतुस्र दिनोसे यह बात चली आती है कि,—“शंकराचार्यके ही प्रतापसे बौद्ध भारतसे निकले गये । शंकरने बौद्धोंको साधारणसे ही नहीं परास्त किया, बल्कि उनको आज्ञासे राजा सुधन्वा आदिने हजारों बौद्धोंको समुद्रमें डुबोकर और तलवारके घाट उतारकर उनका संहार किया ।” यह कथार्ये सिर्फ दन्तकथार्ये ही नहीं है, बल्कि इनका सम्बन्ध आनन्दगिरि और ‘माधवाचार्य’को “शंकर दिग्विजय” पुस्तकसे है, इसीलिये संस्कृत विद्वान् तथा हमारे शिक्षित जन भी इनपर विश्वास करते हैं । वह इन्हे पेटिहामिक तथ्य समझते हैं । कुछ लोग, इसने शंकरपर धार्मिक-असहिष्णुताका क्लृप्त रगता देव्यर, इसे माननेमें शानाकानी करते हैं, किन्तु, यदि यह सत्य है, तो उसका अपलाप न करता ही उचित है ।

शंकरके बालके त्रिपथमें बड़ा विवाद है । कुछ लोग उन्हें विजयनगर समकालीन मानते हैं । Age of Shanbar के कर्त्ता तथा पुराने दंगके पण्डितोंका यही मन है । एकिन इतिहासज्ञ इसे नहीं मानते । यह कहते हैं—चूँकि शंकरने शारीरक भाष्यपर वाचस्पति मित्रने “भामती” दीका लिखी है, और वाचस्पति मिश्रका समय ईसाकी नव्वी शताब्दी उनके अपने ग्रन्थसे ही निश्चित है, इसलिये शंकरका समय नवीं शताब्दीमें पूर्व तो हो सकता है, किन्तु शंकर कुमारिल-भट्टसे पूर्वके नहीं हो सकते हैं । कुमारिल बौद्ध नैयायिक धर्मकीतिके समकालीन थे, जो सातवीं शताब्दीमें हुए थे, इसलिये शंकर सातवीं शताब्दीमें पढ़ने भी नहीं हो सकते । शंकर कुमारिलके समकालीन थे, और दोनोंने एक दूसरेका साक्षात्कार किया था, यह बात हमें “निग्विजय”से आलम्ब होती । इनमें अन्तिम बातम, जहाँ तक उनके प्रयोगका सम्बन्ध है, कोई पुष्टि नहीं मिलती । ह्यनुमाह (सातवीं शताब्दी)के पूर्व, किसी ऐसे प्रमल बौद्ध-विरोधी साधारण और शास्त्रार्थीका तो पता नहीं मिलता । यदि होता, तो

१ “आसेतोरानुपारात्रेर्षादानाबुद्धबालम्भः ।

‘इति य स हन्तव्यो भृत्यानिवन्त्यदानम् ॥ माधवीय शं० दि० १ १३ ॥

“ (कुमारिल)-भट्टपादानुसारि-राजे सुधन्वा

धर्मविषो बौद्ध विनाशिता ।’ शं० दि० डिडिम्पीना १ १५ ॥

झून्साट् अवश्य उसका वर्णन करता । यदि यह कहा जाय कि, शंकराचार्य भारतके दक्षिणी छोरपर हुए थे और उनका कार्यक्षेत्र भी दक्षिण भारत ही रहा होगा, इसलिये संभव है, दक्षिण भारतके बौद्धोपर उपरोक्त अत्याचार हुए हों । लेकिन, यह भी बात ठीक नहीं जैसी, क्योंकि, छठी शताब्दीके बाद भी काची और कावेरीपट्टनने रहने वाले आचार्य धर्मपाल आदि बौद्ध पाली ग्रन्थकार हुए हैं, जिनकी वृत्तियाँ अब भी मिहल आदि देशोंमें सुश्रुत हैं । सिंहल का इतिहास ग्रन्थ " महावंस " है, जो " राजनीतिक " इतिहासकी अपेक्षा धार्मिक इतिहासकी अधिक महत्त्व देता है । केरल देश (जहाँ शंकराचार्य पदा हुए), और द्रविड़ देश, सिंहलक बिल्कुल समोप हैं । यदि ऐसी कोई बात हुई होती तो यह कभी संभव नहीं था कि, " महावंस " उसका कोई जिक्र न करता । बौद्ध ऐतिहासकोंका शंकरके द्वापार्थपर मौन रहनाही इस बातका काफी प्रमाण है कि, ये घटनाएँ वस्तुतः हुई ही नहीं । बल्कि रामानुज आदिके चरितोंमें भी भिन्नमतानुस्मरणोंके साथ ऐसीही यथातथ्य दृष्टि से और भी सन्देश होने लगता है ।

यह बात यह है कि शंकराचार्य दक्षिणमें एक प्रतिभाशाली पण्डित हुए । उन्होंने "शारीरक भाष्य" ग्रन्थ लिखा । यद्यपि वह भाष्य एक नये ढंगका था और उसमें कितनेही दार्शनिक सिद्धान्तोंपर बहस की गई थी, तो भी दिङ्नाग, उद्योतरत्न, कुमारिल, धर्मकीर्तिके युगके लिये वह कोई उतना उँचा ग्रन्थ न था । उत्तर भारतीयोंका केरल और द्रविड़ देशियोंके साथ पक्षपात भी बहुत था । इस पक्षपातका हम अच्छा अनुमान कर सकते हैं, यदि सातवीं शताब्दीके महाकवि, घाणभट्टकी "कादम्बरी"के उस अंशको पढ़ें, जहाँ वह शत्रोंके साथ किसी जगलमें बसे, एक द्रविड़ ब्राह्मणका वर्णन करता है । वस्तुतः उत्तरी भारतकी पण्डित मण्डली,—जो दर-असल उस समयकी पंडित मंडली थी—शंकरके आचार्य माननेके लिये तब तक तैयार न हुई, जब तक उत्तरीय भारतमें दार्शनिकोंका भूमि मिथिलाके अपने समयके अद्वितीय दार्शनिक सर्व शास्त्र निर्णायक वाचस्पति-मिश्रने शारीरक-भाष्यकी टीका " भामती " लिखकर शङ्करको भी न सूझने वाले तत्त्व उसमने निकाल डाले । यद्यार्थमें वाचस्पतिके कंधेपर चढ़करही शंकरको वह कान्ति और बख्शिश मिला, जो वाच देया जाता है । यदि " भामती " न लिखी गई होती तो शंकर-भाष्य कभी न उपेक्षित और विलुप्त हो गया होता, और आज भारतमें इतने गौरव और प्रभारकी तो बातही क्या ? वाचस्पतिने उत्तरी भारतकी पण्डित मण्डलीके सामने शंकरकी बरालतकी । वाचस्पति मिश्रक एक शताब्दी पूर्व मालान्द्रीमें आचार्य शान्त क्षित हुए थे । इनका महादार्शनिक ग्रन्थ " तत्त्व सप्रह " संस्कृतमें उपलब्ध होकर यद्योदासे प्रकाशित हो चुका है । इस ग्रन्थरत्नमें शान्तरक्षितने अपनेसे पूर्वके पचासों दार्शनिकों और दर्शन ग्रन्थोंके सिद्धान्त उद्धृतकर सङ्गठित किये हैं । यदि वाचस्पति मिश्रसे पूर्णही शंकर अपनी चिन्ता और दिग्विजयसे प्रसिद्ध हो चुके होते तो कोई कारण नहीं कि, शान्तरक्षित उनका स्मरण न करते ।

एक ओर कहा जाता है कि, शंकरने बौद्धोंको भारतसे मार भगाया और दूसरी ओर हम उनसे बाद गौड़-देश (विहार प्रदेश) में पाल्युद्योग बौद्ध भेदोत्थान प्रचण्ड प्रताप फैला देखते हैं, तथा उसी समय उदुम्बरपुरी और विष्णुगिरि जैसे बौद्ध विध्विषालयोंको

भारतमें बौद्ध धर्मका उत्थान और पतन ।

स्थापित होते देखने हैं । इसी समय भारतीय बौद्धोंको हम तिब्बतपर धर्मविजय करते भी देखने हैं । ११ वीं शताब्दीमें जब कि, उक्त दन्तकथाके अनुसार भारतमें कोई भी बौद्ध न रहना चाहिये, तिब्बतसे किनेहो बौद्ध भारतमें आते हैं, और वह सभी जगह बौद्ध गृहस्थों और भिक्षुओंको पाते हैं । इस काल-कालके, बुद्ध, बोधिमत्त्व और त्रिभुवनेश्वरी-देवताओंकी हजारों संदित मूर्तियाँ उत्तराय भारतके गांगेयकर्म पाई जाती हैं । भगवत् विरोधक गया चित्रमें तो शायदही कोई गाय होगी, जिसमें इस कालकी मूर्तियाँ न मिलती हो (गया जिलेमें जहागाबाद सयू-डिगोजनके कुछ गांगेयमें तो इन मूर्तियोंकी भरमार है । परन्तु, ध्वज आदि गांवोंमें तो अनेक बुद्ध, तारा, अवलोकितेश्वर आदिकी मूर्तियाँ उस समयके कुटिलक्षेत्रोंमें " ये धर्मा हेतुप्रभया " श्लोकसे अङ्कित मिलती हैं) । यह जतला रही हैं कि, उस समय बौद्धोंने किसी क्षत्रियने नेत्रनाश न कर पाया था । यही बात सारे उत्तर भारतमें प्राप्त मात्र ऐतरेय और शिला लेखोंसे भी मालूम होती है । गौड़नृपति सा मुसलमानोंके विहार-वृद्धाल विजय तक बौद्ध धर्म और कृष्णके महान् सरक्षक थे । अन्तिम काल तक उनके मात्र पत्र, बुद्ध भगवान्‌के प्रथम धर्मापदेश-स्थान मृगशय (सारनाथ)के सूचक दो मृगोंके बीच रत्ने चक्रमें सुवोभित होते थे । गौड़ देशके पश्चिममें कान्यकुब्जका राज्य था, जो कि, यमुनासे गण्डक तक फैला हुआ था । वहाके प्रजा-जन और नृपति गणम भी बौद्ध धर्म खूब समानित था । यह बात जयचन्द्रके दादा गोविन्दचन्द्रके जेतवन विहारको दिये पांच गांगेय दान पत्र तथा उनकी रानी कुमादेवीने बनारस सारनाथके महान् बौद्ध मन्दिरसे मालूम हाती है । गोविन्दचन्द्रके पोते जयचन्द्रकी एक प्रमुख रानी बौद्धधर्मावलम्बिनी थी, जिसके लिये लिखी गई प्रजापारमिताकी पुस्तक अब भी नेपाल द्वार पुस्तकालयमें मौजूद है । कर्णोजम तो आज भी गढ़वाराओंके समयकी कितनीही बौद्धमूर्तियाँ मिलती हैं, जो आज किमी देवी देवताके रूपमें पूजी जाती हैं ।

कालिङ्गरने राजाओंके समयकी धनी महोया आदिसे प्राप्त सिंहनाथ अवलोकितेश्वर आदिकी हज़ार बौद्ध मूर्तियाँ बतला रही हैं कि, तुर्कोंके आनेके समय तक बुन्देलखण्डमें बौद्धोंकी काफी संख्या थी । दक्षिण भारतमें देवगिरि (दौलताबाद, निजाम)के पासके एलोराके भव्य गुहा प्रासादोंमें भी कितनी ही बौद्ध गुहायें और मूर्तियाँ, मलिक काफूरने कुछ ही पहले तककी धनी हुई हैं । यही बात नामिकके पाण्डुपत्नीकी कुछ गुहाभाष विषयमें भी है । क्या हमसे नहीं सिद्ध होता कि, शत्रु द्वारा बौद्ध धर्मका देश निर्धनन कल्पना मात्र है । खुद शत्रुकी जन्मभूमि कैलसे बौद्धोंका प्रसिद्ध तत्र ग्रन्थ "मज्झिमे सूत्तकप" संहितामें मिला है, जिसे वहाँ त्रिबेद्रम्बसे स्व० महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्रीने प्रकाशित कराया है । क्या इस ग्रंथकी प्राप्ति हम बातको नहीं बतलाती कि, सारे भारतसे बौद्धोंका निकालना तो असम्भव बात है, खुद कैलसे भी वह बहुत पीछे लुप्त हुए । ऐसी ही और भी बहुत सी घटनाएँ और प्रमाण पेश किये जा सकते हैं, जिनसे इतिहासकी उक्त हद्दी धारणा खण्डित हो सकती है ।

लेकिन प्रश्न होता है कि, तुर्कोंने तो बौद्धों और ब्राह्मणों, दोनोंके ही मन्दिरोंको तोड़ा, शरोहितोंको मारा, फिर क्या चक्र है, जो ब्राह्मण भारतमें धर्म भी हैं, और बौद्ध न रहे ? बात यह है कि, ब्राह्मणधर्ममें गृहस्थ भी धर्मके अनुयायी हो सकते थे, बौद्धोंमें भिक्षुओंपर ही धर्मप्रचार और धार्मिक ग्रन्थोंकी रक्षा का भार था । भिक्षुगण अपने कपड़ों और मणिक

निवासमें आमानोसे पहचाने जासकते थे । यही वनहूँ है, जो बौद्ध भिक्षुओंको तुर्कोंके आरम्भिक शासनके दिनोंमें रहना मुश्किल होगया । ब्राह्मणोंमें भी यद्यपि वाममार्गा थे, किन्तु सभी नहीं । बौद्धोंमें तो सबके सब वज्रयानो थे । इनने भिक्षुओंकी प्रतिष्ठा उनके सदाचार और विद्यापर निभर न थी, बल्कि उनके तथा उनके मंत्रों और देवताओंकी अद्भुत शक्तियोंपर तुर्कोंकी तलवारोंने इन अद्भुत शक्तियोंका दिवाला निकाल दिया । जरात ममज्ञो लगी, हम धारोमें थे । इसका फल यह हुआ कि, जब बौद्ध भिक्षुओंने अपने टूटे मठों और मन्दिरोंको फिरसे मरम्मत कराना चाहा, तब उसके लिये उन्हें रुपया नहीं मिला । वस्तुतः, इन आचार हीन, क्षात्री भिक्षुओंको उस समय—जब कि, तुर्कोंके अत्याचारके कारण लोगोंमें एक-एक पैसा बहुमूल्य मालूम होता था—कौन रुपयोंकी धेली सौंपता ? फल यह हुआ कि, बौद्ध अपने टूटे धर्मस्थानोंकी मरम्मत करानेमें सफल न हो सके और इस प्रकार उनके भिक्षु अक्षरोंपर गये । ब्राह्मणोंमें यह बात न थी । उनमें सबका सब वाममार्गा न थे । कितने ही अब भी अपनी विद्या और आचरणके कारण पूजे जाते थे । इसलिये उन्हें फिर अपने मन्दिरोंको बनवानेके नये रुपये मिल गये । बनारसके पास ही बौद्धोंका अत्यन्त पवित्र तीर्थ-स्थान ऋषिपतन मृगदाव (वर्तमान साराथ) है । वहाँ की मुद्राईमें मालूम हुआ है कि, कान्यकुब्जेश्वर गोविन्द-चन्द्रकी राना कुमारदेवीका वनयात्रा विहार, वहाँका सत्रमें पिछला विहार था । तुर्कोंने जब इसे नष्ट कर दिया, तब फिर इसने पुनर्निर्माणकी कोशिश नहीं की गयी । इसके विरुद्ध बनारसमें विश्वनाथना मन्दिर, एकट्ठे बाद एक, चार बार नये ढंगसे बना । सबसे पुराना मन्दिर विश्वेश्वर-गंजके पास था, जहाँ अब मस्जिद है, और शिवरात्रिमें लोग अब भी उसमें जा चढ़ाने जाते हैं । उसके टूटनेके बाद वहाँ बना, जिसे आजकल अन्विश्वेश्वर कहते हैं । उसके भी तोड़ देनेपर जानपार्थ बना, जिसका टूटा हुआ भाग अब भी औरजेश्वर की मस्जिदके एक कोनेमें मौजूद है । इस मन्दिरको जब औरगंजवने तुहवा दिया, तब वर्तमान मन्दिर बना । नालन्दा, उद्दन्तपुरी, जेनपन आदि दूसरे बौद्ध पुनोत्थानोंमें भी हम बारहवीं शताब्दीके बादका इमारतें नहीं पाते हैं । लामा तारानाथके इतिहासमें भी हम जानते हैं कि, विहारोंके तोड़ दिये जानेपर उनके निवासी भिक्षु भाग भागकर तिब्बत, नेपाल तथा दूसरे देशोंकी ओर चले गये । सुसल भातोकी भाति, हिन्दुओंसे पृथक् बौद्धोंकी जाति न थी । एक ही जाति क्या, एक ही घरमें ब्राह्मण और बौद्ध, दोनों मतोंके आत्मी रह जाते थे । इसलिये अपने भिक्षुओंके अभावमें उन्हें अपनी ओर खींचने लिये, जहाँ उनके ब्राह्मण धर्मी रक्त-संबन्धी आकर्षण पैदा कर रहे थे, वहाँ उनमेंसे जुगहा, जुनिया आदि कितनी ही छोटी मम्नो जागवाली जातियोंको सुमल-मार्गोंकी ओरसे भय और प्रलोभन पेश किया जाता था, जिसे कारण एक दो शताब्दियोंमें ही बौद्ध या तो ब्राह्मण धर्म में मिल गये, या सुमन्मान बन गये ।

—राहुल साहत्यायन ।

	खंड	परिच्छेद	पृष्ठ
६७ आपणमें पच गोस्त-विधान	२	११	१५४
६८ पोतलिय सुत्त	"	१२	१५६
६९ जवूदीप	"	"	"
७० सेल-सुत्त	"	१३	१६२
७१ केणिय जटिलका पान	१	१४	१-७
७२ गोजमल्ल उपासक	"	"	१
७३ कुसीनारासे आतुमा	"	"	१६८
७४ आतुमासे श्रावस्ती	"	"	१६९
७५ चूल हत्थिपदोपम-सुत्त	"	१५	१७०
७६ महाहत्थिपदोपम-सुत्त	"	१६	१७६
७७ अस्सलायण-सुत्त	"	१७	१८०
७८ महाराहुलोपाद-सुत्त	२	१८	१८५
७९ अस्सण-सुत्त	१	"	१८७
८० पोठपाद सुत्त	"	१९	१८९
८१ तेजिज-सुत्त	३	१	२०३
८२ अंबट्ट-सुत्त	"	२	२१०
८३ चकि-सुत्त	"	३	२२०
८४ चूल दुक्कपक्खण सुत्त	१	४	२२८
८५ कुट्टदत्त-सुत्त	"	६	२३३
८६ सोणदड सुत्त	१	६	२४१
८७ महालि सुत्त	"	"	२४५
८८ तेजिज वच्छगोत्त सुत्त	"	"	२४८
८९ भरडु-सुत्त	"	७	२५०
९० शान्य कोलिय विवाद	"	१	२५१
९१ महानाम-सुत्त	"	"	२६३
९२ कीटागिरि-सुत्त	१	"	२६६
९३ हत्थक सुत्त	"	८	२६९
९४ सदक-सुत्त	"	"	२६०
९५ महासउलुदायि सुत्त	"	"	२६६
९६ सिंगालोवाद सुत्त (दी नि ३ ८)	"	"	२७६
९७ चूल-मुलुलादायि सुत्त	"	९	२८०
९८ दिट्ठियज सुत्त	"	१०	२८६
९९ चूल अस्सपुर-सुत्त	"	"	२८६
१०० वजंगला सुत्त	"	"	२८९
१०१ इन्दिय भाजना-सुत्त	"	११	२९१
१०२ सयट्ठल सुत्त	"	"	२९३

		खंड	परिच्छेद	पृष्ठ
१७५	विदेशमें धर्म-प्रचार	"	"	५७६
१७६.	ताम्रपणीं द्वीपमें महेन्द्र	"	"	५७७
१७७	त्रिपिटकका लेख-शब्द करना	"	"	५८०
१७८	ग्रंथ-सूची	परिशिष्ट	१	५८१
१७९	नामानुक्रमणी	"	२	
१८०	शब्दानुक्रमणी	"	३	

बुद्धचर्या ।

प्रथम-खण्ड ।

(१)

जन्म । बाल्य । (विक्रम-पूर्व ५०५-) ।

महापुराण^१ ने जन्म लेनेके समयको विचार । फिर " (त्रिम) द्वीपमें " यह विचारते हुये, " बुद्ध 'जम्बूद्वीपमें ही जन्म लेते हैं', अतः (जम्बू) द्वीपका निश्चय किया । 'जम्बूद्वीप तो दस हजार योजन बड़ा है, कौनसे प्रदेश में बुद्ध जन्म लेते हैं', इस तर्क प्रस्ता देखने हुये, मध्यदेशपर उनकी दृष्टि पड़ी । "मध्यदेशकी पूर्वदिशामें कल्याण^२ नामक कल्या है, उसके बाद बड़े शाल (के वन) हैं, और फिर आगे सीमान्त देश । मध्यम मलयवती^३ नामक नदी है, उसके आगे सीमान्त (= प्रत्यन्त) देश हैं, दक्षिण दिशामें सेतकणिक^४ नामक कल्या है, उसके बाद सीमान्त देश हैं । पच्छिम दिशामें यून^५ नामक माह्यगोवा ग्राम है, उसके बाद सीमान्तदेश हैं । उत्तर दिशामें उशीरध्वज^६ नामक पर्वत है, उसके बाद सीमान्त देश हैं । यह (मध्यदेश) ३०० योजन, चौड़ाई में ढाई सौ योजन और घेरे में सौ योजन है । इसी प्रदेशमें बुद्ध प्रत्येक-बुद्ध, अथ श्रावक (= प्रधान शिष्य), महाश्रावक, अस्सी महाश्रावक, चक्रवर्ती राजा, तथा दूसरे महाप्रतापी पेशवशाही, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य पैदा होते हैं । इसीमें यह 'कपिलवस्तु नामक नगर है, यहाँ ही मुझे जन्म ग्रहण करना है'— ऐसा निश्चय किया । तब कुण्ड का विचार करते हुये— " बुद्ध वैश्य या शूद्र कुलमें उत्पन्न नहीं होते, लोकमान्य क्षत्रिय या ब्राह्मण कुलमें दो कुलोंमें पैदा होते हैं । आजगल क्षत्रियकुल ही लोकमान्य है, (इसलिये) इसीमें जन्म लूँगा । शुद्धोदन नामक राजा मेरा पिता होगा ।" फिर माताका विचार करते हुये— " बुद्धकी माता बज्रल और शरास तो होती नहीं, लापते कल्पोंसे (दाता आदि) पारमिताये पूरा करने वाली, और जन्मसे ही अम्बुड पद्मनील (= सदाचार) रखने वाली होती है । यह महामाया नामक देवी ऐसी (ही) है, यही मेरी माता होगी । और इसकी प्रायु दस मास सात दिनकी होगी ।"

उस समय कपिलवस्तु नगरमें आपाड़का उत्सव उद्घोषित हुआ था । लोग उत्सव मना रहे थे । पूर्णिमाके सात दिन पूर्वसे ही महामाया देवाने मद्यपा विरत, माला गंधसे सुशोभित हो, उत्सव मनाता, सातवें दिन प्रातः हो उठ, सुमन्वित जलसे स्नान कर,

१ जातक निदान कथा २ वर्तमान बँजजोल, जिला सयाल पगना (बिहार) । ३ वर्तमान सिलई नदी (हजारी बाग और मेन्नीपुर जिला) । ४ हजारी बाग जिलेमें कोई स्थान । ५ धानेसर, कनाल जिला । ६ हिमालयका कोई पर्वत भाग । ७ तिलौसा कोट तौल्लिवा (नयपाल तराई) से २ मील उत्तर ।

घार छावका दान दे' सन अलकरोसे विभूषित हो, सुंदर भोजन ग्रहण कर, उपोसथ (घर) के नियमोंको ग्रहण कर, सु अलंकृत शयनागारमें, सुन्दर परगपर रेट निद्रित अवस्था में यह स्वप्न देखा ।—

बोधिसत्त्व श्वेत सुन्दर हाथी घन, स्थली मालाके समान सूँडमें द्रोत कमल लिये, मयुर नाच कर' माताकी शय्याको तीन बार प्रदक्षिणा कर, टाहिनी बगल चौर, कुक्षिम प्रविष्ट हुये जान पड़े । इस प्रकार (बोधिसत्त्वने) उत्तरापाठ नक्षत्रमें गर्भमें प्रवेश किया ।

दूमर ग्नि जागर देवीने इस स्वप्नको राजासे कहा । राजाने ६४ प्रधान ब्राह्मणोंको बुलाकर, गोत्र (=हरित)—लिपी, धानकी खीलों आदिसे मङ्गलाचार की हुई भूमिमें, महार्घ आमनोको बिठवा, वहाँ उठे ब्राह्मणोंने धी, मधु, शक्करकी बनी सुन्दर खीरसे भरी और सोने चांदीकी थालियोंसे टँकी थालियाँ परोसीं, (तथा) नये कपड़ों और कपिला मौ आदिसे उन्हे मन्तर्पित किया । बाद में—“रवप्र (का फल) क्या होगा”— पूछा । ब्राह्मणोंने कहा—‘महाराज, चिन्ता न करें । आपकी देवीकी कुक्षिमें गर्भ धारण हुआ है, यह गर्भ बालक है, कन्या नहीं । आपकी पुत्र होगा । वह यदि घरम रहा तो चक्रवर्ती राजा होगा, और यदि घर छोड़ परिव्राजक (=साधु) हुआ, तो कपाट-खुला (=महानानी) उद्ग होगा ।

बोधिसत्त्वने गर्भमें आनेके समयसे ही बोधिसत्त्व और उनकी माताके उपद्रवोंके निवारण करनेके लिये चारों देवपुत्र हाथमें रख लिये पहरा देते थे । (उसके बाद) बोधिसत्त्वकी माताको (फा) पुरुषमें राग नहीं हुआ । वह बड़े लाभ और यशको प्राप्त, सुखी, अष्टान्त शरीर (पनी रही) । बोधिसत्त्व जिस कुक्षिमें वास करते हैं, वह चेत्यके गर्भके समान (फिर) दूसरे प्राणीके रहने या उपभोग करनेके योग्य नहीं रहती, इसी लिये (बोधिसत्त्वकी माता) बोधिसत्त्वके जन्मके (एक) सप्ताह बादही मरकर, त्रुपित लोकमें जन्म ग्रहण करती है । जिस प्रकार दूसरी स्त्रियाँ दस माससे कम (या) अधिक में भी, प्रसू या छेटी भी, प्रसव करती हैं, ऐसा बोधिसत्त्व-माता नहीं (करती) । वह दस मास बोधिसत्त्वको कोलमें धारण कर खडी ही प्रसव करती है । यह बोधिसत्त्वकी माता की धर्मता (=विशेषता) है ।

महामाया देवी भी पात्रमें तेलकी गाँति, बोधिसत्त्वको दस मास कोलमें धारण कर गर्भके परिपूर्ण होने पर, नेहर (पोहर) जानेकी इच्छामें शुद्धोधन महाराजसे बोलीं—‘देव, (अपने पिताके) कुलने देवदत्त नगरको जाना चाहती हूँ । राजा ने ‘अच्छा’ कह, कपिलवस्तुसे द्वादश नगरतन्त्रे मार्गको बराबर, और कैला, पूर्णघट, ध्वज, पताका आदि सं अलंकृत करा, देवीको सोनेकी पालकीमें बैठा, एक हजार अफसर तथा बहुत भारी परिजन के साथ भेज दिया ।

दोनों नगरके बीचमें, दोनों ही नगर वालोंका ‘लुम्बिनी’ का नामक एक मंगल

१ रम्भिन पेड़, नौवाग्रा स्टेशन (B N V R) से प्रायः ४ मील पश्चिम, नेपालकी तराईमें ।

धाल्य ।

शाल वन था । उस समय (वह वन) मूलसे लेकर शिलालकी प्रासादाओं तक पाँतीने फैला हुआ था । फूलों और झालियोंपर पाँच रङ्गाके भ्रमर गण, और नाना प्रकारके पक्षि सघ मधुर स्वरसे वृजन करते चिचर रहे थे । सारा लुम्बिनी वन चित्र (=विचित्र) रत्ना वन—जेमा, प्रतापी राजाके सुसज्जित बाजार—जैसा (जान पड़ता) था । उसे देख, देवीके मनमें शाल वनमें सैर करनेकी इच्छा हुई । अफसर लोग देवीको ले, शाल वनमें प्रविष्ट हुए । वह सुन्दर शालके नीचे जा, उस शाल (=साखू)की डाली पकड़ना चाहती थी । शाल शाखा अच्छी तरह मिद्ध किये बतकी छड़ीके नोककी भाँति मुड़का देवीके हाथके पास आ गई । उसने हाथ पला शाखा पकड़ ली । उस समय उसे प्रथम पैदना आरम्भ हुई । लोग (हर्द गिर्द) कलात घेर (स्वयं) अलग हो गये । शाल-शाखा पकड़े खड़ेही पड़े, उसे गर्भ उत्थान हो गया । उस समय चारो शुद्धचित्त महाप्रह्ला सोनका जाल (हाथमें) लिये हुये पहुँचे, और जालमें बोधिसत्त्वको लेकर माताके सम्मुख रखकर बोले—“देवी ! मन्तुष्ट होगी, तुम्ह महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ है” ।

जिम प्रकार दूसरे प्राणी माताकी कोखसे, गन्धे, मल विलिप्त निश्कृते हैं, वैसे बोधिमत्त्व नहीं निश्कृते । बोधिमत्त्व तो धमासन (=व्यास गद्दी)से उतलते धर्मकथिक (=धर्मोपदेशक)के समान, सीढ़ीमें उतरते पुरखेके समान, दोनों हाथ और दोनों पैर पसार पड़े हुये (मनुष्य)के समान माताकी कोखके मलसे बिलकुल अलिप्त, काशी देशके शुद्ध, निमल यक्षमें रहने मणि स्वयंके समान, चमकने हुये, माताकी कोखमें निरुक्त है ।

तब चारो महाराजाजान उन्हे सुवर्णजालमें लिये खड़े प्रह्लाआव हाथसे लेकर, कोमल मृगधर्म में प्रहण किया । उनके हाथसे मनुष्योंने वृक्षों पर फल फल प्रहण किया । मनुष्योंके हाथसे टूटकर (बोधिसत्त्वने) वृथिवा पर पड़े हो, पूर्व दिशा का ओर देखा । अनेक सहस्र चक्राल एक आगन (से) हो गये । महादेवता और मनुष्य गंध माला आदिने पूजा करते हुए बोले—“महापुरुष, यहाँ आप जेमा कोई नहीं है, यहाँ तो कहाँसे होगा” । बोधिसत्त्वने चारो दिशाएँ चारो अनु (=कोमल) दिशाएँ, नीचे ऊपर दोनों ही दिशाओंका अवलोकन का, अगने जेमा (किमीको) न देख, उत्तर दिशा (की ओर) सात पग गमन किया । (उस समय) महाप्रह्ला ने द्रोतच्छत्र धारण किया, सुपासोने ताल वृजन (=पंखा), और अन्य देवताजाने राजाओंके अन्य वस्तुएं बाण्ड हाथमें लिये । सातवें पगपर पहुँच—“म संसारमें सर्वश्रेष्ठ हूँ” (उत्प) पुंगोंकी इस प्रथम वाणीका उच्चारण करते हुये सिंहनाद किया ।

निम समय बोधिसत्त्व लुम्बिनी वनमें उत्पन्न हुये, उसी समय राहुल माता, छत्र (=छत्रक) अमात्य (=अफसर), काल उदायी अमात्य, राजाजान गजराज, वस्त्रक अधिराज, महाबोधि वृक्ष, और खजाने भर चार घड़े उत्पन्न हुये । उत्तम (क्रमस) एक गव्यूति (=१ योजन) पर, एक आधे योजनपर, एक तीन गव्यूतिपर और एक

१ मृग, छत्र, पगड़ी, पादुका और वृजन (=पंखा) । २ उत्तम जातिका ।

३ बोध गया, नि० गया (विहार) का पीपल-वृक्ष ।

यांजनपर पैदा हुआ। यह सब एन्ही समय पदा हुये। दोनो नगराव निवायो वोधिसत्त्वको लेकर कपिलवस्तुको लोटे।

उस समय शुद्धोदा महाराजके कुलमान्य, आठ ममाधियोवाले, काल इवल नामके तपस्वी, भोजन करके देवताओंको दण्ड डाली घात धुन, शीघ्र ही दण्डलोकसे उतर, राजमहलमें प्रवेश कर आमनपर असीन हो बोले—‘महाराज, आपकी पुत्र हुआ, में उसे देखना चाहता हूँ। राजा सुभल्लित कुमारको मंगा, तापसकी वन्दना कराने को ले गया। वोधिसत्त्व चरण उठकर तापसकी जटांसे जा लगे। वोधिसत्त्वके लिये वंदनीय कोई नहीं है, यदि आज्ञानेमे वोधिसत्त्वका शिर तापसके चरणपर रखा जाता, तो तापसका शिर सात टुकड़े हो जाता। तापसने—‘मुझे अपने आपको विनाश काना योग्य नहीं है’ सोच, आसामें उठ वोधिसत्त्वको हाथ जोड़ कर (प्रणाम किया)। राजाने इस आश्चर्यको देख, अपने पुत्रकी वन्दना की। तापसने ‘वोधिसत्त्वके लक्षण सपत्नी देख, ‘यह बुद्ध होगा या नहीं’ इस बातका विचार कर मालूम किया, कि यह ‘भगवत् बुद्ध होगा’। ‘यह पुरुष अद्भुत है’ यह जान मुष्कराया। फिर (सोचने लगा), ‘इसके उद्भ होने पर (म) इसे देख पाऊंगा, अवका नहीं’। सोचने ने (मालूम हुआ) ‘नहीं देख पाऊंगा’। ‘एते अद्भुत पुरुषको बुद्ध होनेपर न देख पाऊंगा, मेरा पदा दुर्भाग्य है’, सोच रो उठा। लोगोंने जप दिया—कि ‘हमारे आय (= अय्य=पाश) अभी हैसे और फिर रोने लग गये’ तो उन्होंने पूछा—‘क्यों भन्ने, हमारे आय पुत्रको कोई सकट तो नहीं होने वाला है?’।

‘इनका संकट नहीं है, यह नि संशय बुद्ध होगे’।

‘तो, (आप) क्या रोते हैं?’

‘‘इन प्रकारसे पुरुषको उद्भ हुये नहा दण्ड सकूंगा, मेरा पदा दुर्भाग्य है’ यही सोच अपने लिये रो रहा हूँ’।

फिर ‘मेरे सन्निधिमसे फाइ इसे उद्भ हुआ देखेगा—या नहीं’—विचार, अपने भाजे नाटकको इस योग्य जाय, अपनी बहिनने घर जाकर (पूछा)—‘तेरा पुत्र नाटक कहाँ है?’

‘‘घर म है आय!’’।

‘‘उसे बुला’

(भाजेक) पास आनपर बोला—‘‘तब, महाराज शुद्धोदनक कुलर्म पुत्र उत्पन्न हुआ है, यह बुद्ध अंकुर है। पैंतीस वर्ष बाद वह उद्भ होगा, और तू उसे देख पायेगा। आजही परिभाजक होजा।’’

वह—‘‘सत्तासी कोह धनवाले कुलमें उत्पन्न बालक हूँ, (लेकिन) मुझे मामा अनर्थमें नहीं रगा रहा है’—सोच, उसी समय बाजारसे कापाय (घख) तथा मटोका पात्र मंगा, शिर-दाही मुंडा, कापाय वख पहिन ‘जो लोकम उत्तम पुरुष है, उसीके नामपर

१ भन्ते स्वामी या पूज्यनेलिये कहा जाना था।

मेरी यह प्रव्रज्या है, यह (कहते) बोधिसत्त्वरी ओर अजली जोड़, पाँचो अंगोमे घन्दना कर, पात्रको शोर्लमें रख, और उसे कधेपर लटका, हिमालयम प्रवेश कर, धम्मग धर्म (का) पालन करने लगा । फिर तथागतके परम बोधि प्राप्त कर लेनेपर पास था, उनसे 'नाइक-चान' को सुन कर, फिर हिमालयमें प्रविष्ट हो, वहाँ अर्धव पदको प्राप्त हुआ ।

बोधिसत्त्वको पाँचरे दिन शिरसे ढहला, नामकरण करनेकेलिये, राजभवनको चारो प्रकारक गंधोसे लिपत्रा कर, खीलों सहित चार प्रकारक पुष्पाको विलेख, निजल गोर पकग, सींगे एदके पारंगत एक मौ आठ ब्राह्मणोको निमन्त्रित कर, राजभवनम बठा, सु भोजन करा, महान् मत्कार कर, "बोधिसत्त्व (का) भविष्य क्या है," लक्षण पुत्रपाया । उनमें लक्षण जननेवाले (= दवत्त) ब्राह्मण आठही थे—

राम धजा मथी लग्न, कोइनि भोज सुयाम ।

दिज सुदत्त पद् अग-युत्त, आठहुं मत्र बत्तान ॥

गमधारणके दिन इन्हाने ही सगुम विचार था । उनमेंसे सातने दो अगुलियाँ उग, दो प्रकारका भविष्य कहा—“ऐमे छवणोखाला यदि गृहस्थ रहे, तो चन्द्रवर्ती राजा होता है, और प्रव्रजित होने पर बुद्ध ।” उनम सबसे कम उमर कौण्डिन्य (नामक) तरंग ब्राह्मणने बोधिसत्त्वके सुन्दर लक्षणोको देखकर, पञ्च अँगुली उठा कर कहा—“इमके घाम रहनेका कोई कारण नहीं है, अवश्यही यह विवृत कपाट उद्घ होगा” ।

वह सातों ब्राह्मण आयु पूर्ण होने पर, अपने कमानुसार (परलोक) सिधारे, अकल कोण्डिन्य ही जीवित रहा । वह महासत्त्व (बोधिसत्त्व) की ओर ध्यान रख गृह त्याग, कमल उदरेल जा, 'वह अमि भाग उदा रमणीय है, योगार्थी कुरु पुत्रको योगकलिये यह उपयुक्त स्थान है' (विचार) वहाँ रहने लगा । (फिर) “महापुरुष प्रव्रजित हो गये”—सुन, उन (सात) ब्राह्मणोंक लटकोंक पास जाकर कहा—“सिद्धार्थ कुमार प्रव्रजित होगये, वह नि संशय बुद्ध होगा । यदि मुन्हार पिता जीवित होते, तो वह आप घर छोड़ प्रव्रजितहुये होते । यदि तुम चाहते हो, तो आ गे हम उम पुरुषके पीछे प्रव्रजिन हो” । सब (लड़के) एकताय न हो सक । तामने प्रमत्तवा न ग्रहण की । कौण्डिन्य ब्राह्मणको मुखिया बना गेय चार जनोमे प्रव्रज्या ग्रहण की । वह पाँचो जने (आगे चलकर) पञ्चवर्गाय स्वधिराके नामसे प्रसिद्ध हुये ।

राजान बोधिसत्त्वकेलिये उत्तम रूपगाली सब दोषोमे रहित धाहयाँ नियुक्त कीं । बोधिसत्त्व अर्जुन परिवार, तथा महती शोभा ओर श्रौंने साथ बढने लगे । एक दिन राजाक बहा (सेत) धोनेका उत्सव था । उस (उत्सव) दिन लोग सार नगरको देवताओंक विमानकी भाँति अलङ्कृत करते थे । समी दास (= गुलाम), कर्म-कर आदि नये वस्त्र पहिन, गंध माला आदिसे विभूषित हो, राजमहलमे इकट्ठ होते थे । राजाकी सेतीम एक हजार हल चलते थे । उस दिन बल्लोकी रूपहली रस्सीनी जातके साथ एक कम आठवीं हल थे । राजाका हल रत्न-मुक्क जड़ित था । बलाको सौम, और कोड़े भी स्वर्ण रचित दो थे । राजा उड़े दलालके साथ पुत्रको भी ले बहा पहुँचा । सेताक पासही धनुत पत्तो तथा

घनीटाया वाला एक जामुनका वृक्ष था। उसके नीचे ऊपर सुगन्ध-सार भचित त्रितान बैधवा, कनातकी दीवारसे घिरवा, पहरा लगाया कुमार का मित्रांना बिठवा, सब अलंकारोसे अलंकरण हो, अमात्य गण-सहित राजा हल जोतनेके स्थानपर गया। वहाँ उसने सुनहले हलको पकड़ा और अमात्योने (अन्य) एक कम आठमो हलको, (शेष) जोतने वालोने दूसरा हलको। इस प्रकार हलको पकड़ कर, वे इधर उधर जोतने लगे। राजा इस पारमे उस पार, उस पार मे इस पार आता था। वहाँ वही भौड़-यी, तमाशा था। योधिमत्यको गैरकर बेंडी धाइयां भी, तमाशा देखनेकेलिये कनातके भीतरसे बाहर चली आई। योधिमत्य इधर उधर निम्नोको न देख, जल्दीसे उठ, आसन मार खास-प्रखास को रोक, प्रथम ध्यानमें स्थित होगये। धाइयोने खाद्य-भोज्यम कुछ देर कर दी। सभी वृक्षोंकी छाया घूम गई, किन्तु (योधिमत्य वाले) वृक्षकी छाया गोल ही रहती रही। 'आर्यपुत्र अपने' हैं, ख्याल कर जल्दीसे कनात उठाकर घुमकर, (धाइयाने) योधिमत्यको मित्रांनेपर आसन मार देना देना। उस चमत्कार (=प्रातिहार्य) को देख उन्होंने जाकर राजासे कहा—“देव, कुमार इस तरह बैठा है, सभी वृक्षोंकी छाया छान्नी हो गई है, लेकिन जम्बू-वृक्षकी छाया गोलाकार हा रही है”। राजाने वेगसे आ, उस चमत्कारको देख, दूसरी बार पुत्रकी पसन्दना को।

(२)

यौवन । सन्यास । (वि पू.-४७४)

क्रमशः योधिसत्त्व सोहल वर्षके हुये । राजाने योधिसत्त्वको तीनों ऋतुओंके लिये तीन महल बनवा लिये । उनमें एक नौ तल, दूसरा सात तल, तीसरा पाँच तलका था । (यद्वा) ४४ हजार नाटक करने-वाली स्त्रियोंको नियुक्त किया । योधिसत्त्व अप्सराओंके समुदायसे घिरे देवताओंकी भाँति, अलङ्कृत गट्टियोंसे परिवृत, गियों द्वारा मजाये-गये बाघोंसे सेवित, महा सम्पत्तिसे उपभोग करते हुये, ऋतुओंके अनुकूल प्रामादा में विहार करते थे । राहुल माता देवी हनकी अग्रमहिषी (= पटरानी) थी ।

इस प्रकार महा सम्पत्ति उपभोग करते हुये (योधिसत्त्वके मारेम) जाति विराट्त्री में चर्चा ठिन्नी—सिद्धार्थ भोगोम ही लिख हो रहे हैं, किमी कलाको नहीं सीख रहे हैं, युद्ध आने पर क्या करेंगे ? राजाने योधिसत्त्वको बुलाकर कहा—“ तात, तेरी जाति बाट कहते हैं, कि सिद्धार्थ किमी शिल्प कलाको न सीखकर निर्भ भोगोंमें ही लिख हो रहे हैं । तुम इस विषय में क्या उचित समझते हो ? ”

“ देव । मुझे शिल्प सीखनेको नहीं है । नगरमें मेरा शिल्प देखनेकेलिये बँडोता पित्रा है, कि आजसे सातवें दिन जातिवालोंको (मे अपना) शिल्प (कस्तूर) दिखलाऊँगा । ”

राजाने वेसाही किया । योधिसत्त्वने अक्षय वेध, बाण वेध जानने वाले धनुधारियों को एकत्रित कर, लोगोंके मध्यमें अन्य धनुधारियोंसे (भी) विशेष बारह प्रकारके शिल्प (= कला) जाति विराट्त्री वालोंको गिनाये । । तब उनके जाति वाले सन्तुष्ट हुये ।

एक दिन योधिसत्त्वने बगीचा देखनेकी इच्छासे सारथीको रथ जोतनेको कहा । उसने ‘ अच्युत ’ कह महापुत्र उत्तम शयको सब अलङ्कारोंसे अलङ्कृत कर, श्वेत-कमलपत्र सदृश पार मन्दल मिल्नु देशीय (घोड़े) को जोत, योधिसत्त्वको सूचना दी । योधिसत्त्व देव विमान-सदृश रथ पर चढ़कर बगीचकी ओर चले । देवताओंने (सोचा), सिद्धार्थकुमारके बुद्धत्व प्राप्ति का समय समीप है, इसे पूर्व शत्रुन दिखलाने चाहिये, और एक देव पुत्रको जरासे जर्जरित, टूटे दाँत, पके केश, देढ़े पुके हुए शरीर, हाथमें लकड़ी लिये, बाणने हुये दिखलाया । उसे सारथी और योधिसत्त्व ही देखते थे । तब योधिसत्त्वने सारथीसे पूछा— ‘ सौम्य, यह कौन पुरुष है, इसने केश भी औरोंके समान नहीं हैं, ’ (और) सारथीका उत्तर पा— ‘ सहो । धिक्कार है जन्मको, जहाँ जन्म लेने वालेको (पेसा) झुगपा हो इत्यादि कह, वहाँसे लौट महलमें चले गये । राजाने जल्दी लौट आनेका कारण पूछा । ‘ वृद्धे यादमीका देलना ’ सुन (राजाने) “ मेरा सबनाश मत करो, जल्दी ही पुत्र केनिये नाटक तैयार करो । भोग भोगते हुए गृह त्याग याद न जायेगा ” , यह कह (और) बगैर चारों दिशाओंमें आधे योचनतक पहरा रख दिया ।

१ जातरुद्ध कथा (निदान कथा) ।

फिर एक दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार वगीचे जाते हुये, देवताओं द्वारा रचित सेगी पुरपको देख, पहिलेकी भांति पूउ, शोकाकुल हृदयसे महल में आये । राजाने सुन, पहले की भांति, चारो-ओर पौन योजनतक पहरा बठा दिया ।

फिर एक दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार उद्यान जाते हुये, देवताओं द्वारा रचित मृतकको देख, पहिलेकी भांति पूउ-उद्भिन्न हृदयसे महलमें लौट आये । राजाने सुन, पहिलेकी भांति चारो ओर एक योजनतक पहरा बठा दिया ।

फिर एक दिन बोधिसत्त्वने उद्यान जाते हुये, देवताओं द्वारा रचित, भली प्रकार पहिने, भली प्रकार (चीवरसे) ढँके एक प्रव्रजित (= संन्यासी) को देखकर, सारथीसे पूछा— 'सौम्य । यह कौन है ?' सारथीने देवताओंकी प्रेरणासे—'देव । यह प्रव्रजित है' कह संन्यासियोंके गुण वर्णन किये । बोधिसत्त्वको प्रव्रज्यामें रुचि हुई । वह उस दिन उद्यानको गये । (यहा पर) 'दीर्घ भाणक' कहते हैं, "चारो शत्रुनोको एकही दिन देख कर गये ।"

वहाँ दिन भर खेलकर, सुन्दर पुष्करिणीमें स्नानकर, सूर्यास्तके समय सुन्दर शिला पट्ट पर अपनेको आभूषित करानेकेलिये गये । जिस समय इनके परिचारक नाना रत्नके दुशाले, नाना भाँतिके आभूषण, माला, सुगन्धि, उषटन लेकर चारो ओरसे घेर कर खड़े हुये थे, उसी समय इन्द्रका आसन गम हो गया । उसने, "कोन मुझे इस सिंहासनसे उतारना चाहता है" सोचते हुए बोधिसत्त्वके अर्लट्ट होनेका काल दृश्य, विश्वरूपाको बुलाकर कहा—

"सौम्य । विश्वकामा सिद्धार्थकुमार आज आधी रातके समय महाभिनिर्क्रमण (= गृह त्याग) करेंगे । यह उनका अन्तिम शृङ्गार है । उद्यानमें जाकर महापुरपको दिव्य अलंकारोंसे अलंृत करो ।"

उसने 'अच्छा' कह, दूर वनसे उसी क्षण आकर, बोधिसत्त्वके जामा-साज के हाथसे घेठनका दुशाला लेलिया । बोधिसत्त्व उसके हाथके रपशसे ही जान गये, कि यह मनुष्य नहीं है, कोई देव-पुत्र है । पगड़ीसे शिरको घेष्टित करते ही शिरमें, मुकुटके रत्नोंकी भांति एक सहस्र दुशाले उत्पन्न हुये । फिर बाँधनेपर दस सहस्र, इस प्रकार दस बार घेठने पर दस सहस्र दुशाले उत्पन्न हुये । शिर छोटा, और दुशाले बहुत, इसकी शंका न होनी चाहिये । (क्योंकि) उनमें मनसे बड़ा दुशाला श्यामा रत्ताके पृष्ठके बानर था, (और) दूसरे तो सुगन्धुक पुष्पोंसे बनावर ही थे । बोधिसत्त्वका शिर किंत्तलक-युक्त कुण्डलक पृष्ठके समान था । उनके मन आभूषणोंसे आभूषित हो ब्राह्मणोंके 'जय हो' आदि वचनों, सूतमागधोंके नाना प्रकारके मंगल वचनों तथा स्तुति घोषोंसे सत्पूत हो, (बोधिसत्त्व) सर्वाङ्गद्वार विभूषित उत्तम रथपर आरूढ़ हुये ।

उसी समय राहुल-माताने पुत्र प्रसन्न किया, यह सुन शुद्धोदनने उनको शुभ समाचार सुनानेको हुकुम दिया । बोधिसत्त्वने उसे सुनकर कहा "राहुल पैदा हुआ, बन्धन पैदा

संयास ।

हुआ" । राजाने ' पुत्रने क्या कहा ' पूछ , कहा—"अपने मेरे पोतेका नाम 'राहुल कुमार' हो" ।

बोधिसत्त्व श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो, बड़े भारी यश, अति मनोरम शोभा तथा सोभाग्यके साथ नगरमें प्रविष्ट हुये । उस समय कोनेपर बंटी, कृता गौतमी नामक क्षत्रिय कन्याने नगरकी परिक्मा करने हुये बोधि सत्त्वकी रूप शोभाको देखकर, बहुत ही प्रसन्नता और हर्षसे कहा—

परम शांत माता सोई, परम शांत पितु सोय ।

परम शांत नारी सोई, जामु पत्नी अस होय ॥

बोधिसत्त्वन यह सुना सो सोचा—"यह वह रही है, कि इस प्रकारके स्वरूपको देनेने माताका हृदय परम शांत होता है, पिताका हृदय परम शांत होता है, पत्नीका हृदय परम शांत होता है । किन्तु शांत होनेपर हृदय परम शांत होता है" १ तब (रागादि) मल्लोने विरक्त हृदय बोधिसत्त्वको प्याल आया । राग रूपी अग्निके शांत होनेपर दोष अग्नि शांत हो जाती है । दोष अग्निके शांत होनेपर मोह अग्नि शांत होता है । मोह अग्निके शांत होनेपर अभिमान आदि उपशांत होते हैं । अभिमान आदि सभी मल्लोके उपशान्त होनेपर, (मनुष्य) परम शांत होता है । यह सुने प्रिय-वचन सुना रही है । मैं निवाणको ढूँढता फिर रहा हूँ । आज ही मुझे गृहवास छोड़, निकरकर प्रयत्नित हो, निर्वाणकी प्राप्ति लाना चाहिये । "यह इसकी गुरु-दक्षिणा होगी"—यह वह एक छात्रका मोतीका हार अपने गलेसे उतार कृष्णगौतमको पास भेज दिया । वह बड़ी प्रसन्न हुई, कि सिद्धार्थ-कुमारने मेरे प्रेममें क्या कर भेंट भेजी है ।

बोधिसत्त्व बड़े ही श्री सोभाग्यके साथ अपने महलमें जा, सुन्दर पलंगपर बैठ रहे । उसी समय सभी बालकरोसे विभूषित, नृत्य गीत आदिमें दक्ष, देव-नृत्या समान अतीव सुन्दर स्त्रियोंने अनेक प्रकारके पाशोंको लेकर, (कुमारको) पुत्र करनेके लिये नृत्य, गीत और वाद्य आरम्भ किया । बोधिसत्त्व (रागादि) मल्लोसे विरक्तचित्त होनेके कारण, नृत्य आश्रित १ रत हो, धोही ही देरमें सो गये । उन स्त्रियोंने भी सोचा—"जिसनेलिये हम नाच आदि करती हैं, वह ही सो गया, अब (हम) काहेको तकलीफ करें" (इसलिये वह भी) बाजाको (साथ) लिये ही सो गई । उस समय सुन्धित तेल पूर्ण प्रदीप जल रहा था । बोधिसत्त्वने जागकर पलंगपर आसन मार बाघोंको लिये सोई, उन स्त्रियोंको दृष्टा । (उनमें) कि-हींके मुँहसे कफ निकल रहा था, कि-हींका शरीर धारने भीग गया था, कोई दात कण्ठका रही थीं, कोई यश रही थीं, कि-हींका मुँह खुले हुये थे, कि-हींके बदन हटे होनेसे अति अणुत्पादक गुह्य-स्थान दिखलाई दे रहे थे । उन (स्त्रियां) के इन विकारोंको देखकर (वे) और भी दृढ़ हो कामनाओंसे विरक्त हुये । उन्हें वह सु-अलक्षित इन्द्र भजन मण्डप महामन्त्रन सदती हुई बाना प्रकारकी लावण्यसे पूर्ण कंधे समदानकी भाँति मालूम होता था । सोनो ही संसार जलते हुये घरको तरह दिग्राई पड़ रहे थे । 'श ! वष्ट ॥ हा ॥ शोक ॥' यह व्याह निकल रही थी । (उस समय) प्रसन्न्याकेलिये उनका चित्त अत्यन्त आतुर हो गया । 'आज ही मुझे महामिनि-क्रमण (= गृह त्याग) करना है' यह सोच पलंगसे उतर द्वारके पास जा, पड़ा—"यहाँ कौन है ?" ।

उम्मार (=शगोड़ी) में तिर रखकर सोये हुये छपने कहा—‘आर्यपुत्र ! मैं छन्दक हूँ’ ।

‘मैं आज महाभिनिष्क्रमण करना चाहता हूँ, मेरे लिये एक घोड़ा तय्यार को’ ।

‘अच्छा देव !’ वह, उसने घोड़ेका सामान ले, घोहसारमें सुगंधित तेलके जले प्रदीपो (के प्रकाश) में, घेलवूटे वाले रेशमी चटपटे कीचे, सुन्दर स्थानपर रखे अश्व-राज कन्धको देता । यह मोघ कि आज मुझे इसे ही सजाना है, उसने कन्धको सजित किया । साज सजाये जाते समय (कन्धक) ने सोचा—(आजका) यह साज बहुत कड़ा है, अश्वन्विके घगीचा आगि जाने की भांति नहीं है । आज आर्यपुत्र महाभिनिष्क्रमणके इच्छुक होंगे । इसलिये प्रसन्न भा हो जोरसे हिनहिनाया । वह शब्द सारे नगरमें फैल जाता, किंतु देवताओंने उस शब्दको शोककर किसीको न सुनने दिया ।

बोधिसत्त्वने छन्दकको (तो) उधर भेजा, (और स्वयं) पुत्रको दानना चाहा । फिर अपने आसनको छोड़ राहुल-माताके वास स्थान की ओर जा, शयनागारका द्वार खोला । उस समय घरके भीतर सुगंधित-तेलके प्रदीप जल रहे थे । राहुल-माता नेला, चमेली आदि फूलों की अम्मण (=भगो) भर बिजरी दृष्ट्या पर, पुत्रके मस्तक पर हाथ रखे सो रही थी । बोधिसत्त्वने देहलीमें पेर रख रखे खड़े देवकर मोचा—‘यदि मैं देवीके हाथको हटाकर अपने पुत्रको ग्रहण करूंगा, तो देवी जग जायगी, इस प्रकार मेरे गमनमें विघ्न होगा । बुद्ध (होनेके पश्चात्) आकर ही पुत्रको देवगा ’ इसलिये महलसे उतर आये । ‘जातककथामें जो ‘उस समय राहुल कुमार एक सप्ताहके थे’ कहा है, वह दूसरी अटकथाओमें नहीं है । इसलिये यहाँ यही समझना चाहिये ।

इस प्रकार बोधिसत्त्वने महलसे उतरकर, घोड़ेके पास जाकर कहा—‘सात ! कन्धक ! आज मैं तुझे एक रात तार दे, मैं तेरी सहायतासे बुद्ध होकर, देवताओं सहित सार लोकको तारूँगा’ । फिर बृद्धकर कन्धककी पीठपर सवार हुये । कन्धक गर्मनसे लेकर (पूछ तक) १८ हाथ लम्बा था, वेसेही वह महाकाय, बल वेग-सम्पन्न, और बुली शक्ति की भांति सर्वदेवता (भी) था । वह यदि हिनहिनाता या पेर खटखटाता, तो (शब्द) सारे नगरमें फैल जाता । इसलिये देवताओंने अपने प्रतापसे (ऐसा किया), जिसमें कि कोई उसे न सुने, (और) हिनहिनातेक शब्दको रोक भी दिया । देवताओंने उसकी टापोको अपने हाथोंपर ही रोक लिया । बोधिसत्त्व अश्व पीठपर आरुढ़ हो, छन्दकको उसकी पूँछ पकड़ा, आधी रातके समय महाद्वारके समीप पहुँचे । उस समय राजाने यह सोच, कि वहाँ बोधिसत्त्व जिस किसी समय नगर-द्वारको खोलकर, (बाहर) न निकल जायें, दवाँजिके दोनों कपाटोंमें से प्रत्येकको एक एक हजार मनुष्यों द्वारा खुलने लायक प्रनयना था । बोधिसत्त्व महाबल-सम्पन्न हाथीकी गिनतीसे हजार-करोड़ हाथीके बलको धारण करते थे, और पुरुषके हिसाबसे दस हजार करोड़ पुरुषोंका बल । उन्होंने सोचा—‘यदि द्वार न खुला तो आज मैं कन्धककी पीठपर बड़े, उसकी पूँछ पकड़कर खटके छन्दकके साथही, उसको जपेसे दवाँक अठारह हाथ ऊँचे प्राकारको बृद्धकर पार करूँगा ।

छन्दके भी सोचा—“यदि द्वार न पुल्ला, तो ये आर्यभुवको” कंधे पर घंटा कन्धफ्फो दाहिने हाथसे बगलमें दबा प्राकार फाँद जाऊँगा ।” कन्यकने भी सोचा—“यदि द्वार नहीं पुल्ला, तो मैं अपने स्वामीको पीठपर बैसेही बैठे, पूँछ पकड़कर लटकते छन्दके साथही, प्राकारको लांघनर पार करूँगा ।” यदि द्वार न पुल्ला, तो तीनोमसे कोई एक ऊपर सोचे अनुसार करता । लेकिन द्वारमें रहने बाळ दबताने द्वार खोल दिया ।

उसी समय बोधिमत्त्वको (वापिस) लायनेके विचारसे आकाशमें पड़े मारने कहा—“मार्प” । मत निकले । आजसे सातवें दिन तुम्हारलिये चर १५१ प्रादुर्भूत होगा । दो हजार छोटे द्वीपो सहित चारो महाद्वीपो पर राज्य करोगे । लोडो मार्प ।”

“तुम कौन हो ?”

“मं वशावर्ता” हूँ ।”

“मार । मैं भी अपने चक्र रत्नक प्रादुभावको ज्ञानता हूँ । लेकिन मुझ राज्यसे कोई काम नहीं । मैं तो साहसिक लोक^१ धातु^२भोंको उन्नादित कर उन्न बनूँगा ।”

“आजमे जब कभी कामनासंधी वितर्क, द्रोहसंनधी वितर्क, या हिसामंनधी वितर्क तुम्हार चित्तमें पैदा होगा, उस समय मैं तुम्हें समझूँगा ” यह कहकर मारने मोका ताकते, टापा की भांति जरा भी अलग न होते हुये, पीछा करना शुरू किया ।

बोधिमत्त्वभी हाथमें आये चक्रवर्ती राज्यको, धूक की भांति पककर, कामनारहित (हो) पड़े सन्मान पूर्वक नगरसे निकले, (लेकिन उस) आपाद की पूर्णिमाको उत्तराषाढ नक्षत्रमें फिर नगर देवनेकी इच्छा हुई । वित्तमें ऐसा विचार उत्पन्न होतेही महापृष्ठी दुम्हारके चबेकी भांति कंपित हुई । (मानो यह कहते)—“महापुरुष । तूने लौटकर देखनेका काम कभी नहीं किया है ।” बोधिमत्त्व नगरकी ओर मुँहकर नगरकी देखते हुये, उस भूप्रदेशमें “कन्यक-निर्वर्तन चेत्य” स्थानको दिखा, गंतव्यमार्गकी ओर बंधकका मुह फेर चर गिये । उस समय देवताआने उनके सम्मुख साठहजार, पीछे साठ हजार, दाहिना तरफ साठ हजार ओर बाईं तरफ भी साठ हजार मशाल धारण किये । दूसरे देवता, नाग, सुपर्ण (= गरुड़) आदि दिव्य गध, माला, चूर्ण, धूपसे पूजा करते चल् रहे थे । घने मेघोकी पृथिवे समय (धरमती) धाराओंकी भांति, पारिजात-पुष्प, मन्दार पुष्प, (की पृथिवे) आकाश आच्छादित हो गया । उस समय दिव्य संगीत हो रहे थे । चारों ओर आठ प्रकारके, साठ प्रकारके अद्भुत लाव्य राजे बज रहे थे । समुद्रके उदरमें मेघ-गर्जन-कालकी भांति, युगन्वरका^१ कुक्षिम सागर निर्वापकालकी भांति (शब्द) टोरहा था । इस श्री और सौभाग्यके साथ जाते हुये बोधिमत्त्व एकही रातमें तीन राज्यों^२ को पार कर, तीस योनन पार अनोमा^३ नामक नदीके तट पर जा पहुँचे ।

१ चक्रवर्तीकी पृथिवीजयक लिख दिव्य चक्र आयुध उत्पन्न होता है । २ देवता अपने समान बालोंको माप (= मारिम) कहकर पुरारते हैं । ३ चक्रवर्ताके दिग्विजयका आयुध । ४ देवताओंका एक समुदाय । ५ एक ब्रह्माण्डको एक लोक धातु कहते हैं । ६ चंडीली (?) जि० गोरखपुर । ७ शाक्य, कोलिय और राम ग्राम (?) । ८ ओनो नदी (?) जि० गोरखपुर ।

योधिसत्त्वने गनीय किनारे चड़े हां छन्दकमे पूछा—

‘ यह कोनमी नदी है ? ’

“ दव । अनोमा है । ”

“ हमारी भी प्रयत्नया अनोमा होगी, ” यह कह ण्डीसे रगटकर घोड़ेको इशारा किया । घोड़ा छलांग मासकर, आठ रूपम^१ घोड़ी नदीके दूसरे तट पर, जा चड़ा हुआ । योधिसत्त्वने घोड़ेकी पीठमे उतर, स्पष्टले रेशम जेसे (नर्म) बालुना तटपर खड़ेहो, छन्दकका कहा—‘ सोन्य । छन्दक । तू मेरे आभूषणों तथा कन्धकको लेकर जा, मैं प्रयत्नित होऊँगा । ’

“ दव ! मे भी प्रयत्नित होऊँगा । ”

योधिसत्त्वने तीन बार ‘ तुझे प्रयत्नया नहीं मिल सकती, (लोट) जा ’ कहकर उस आभरण और कन्धकको दिया । फिर “ यह मेरे केश श्रमण (= संन्यासी) लोगोके योग्य नहीं हैं । योधिसत्त्वके केशको काटने लायक दूसरा कोई नहीं है, इसलिये अपनेही छत्रत इन्हे काट ”—सोच, दाहिने हाथमे तलवार ले, बायें हाथसे मोर-महित जूदेको काट डाला । केश सिर्फ दो अंगुल^२ होकर, दाहिनी ओरसे घूम (प्रदक्षिणा क्रमसे), शिरमें लिपट गये । जिन्दगी भर उनका वही परिमाण रहा । मुँछ (दाढ़ी) भी उसके अनुसार ही रही । फिर शिर दाढ़ी मुँछानेका काम नहीं पड़ा । योधिसत्त्वने मोर सहित जुड़ाको लेकर—‘ यदि मैं छुट होऊँ, तो यह आयाशर्म ठहरे, भूमिपर न गिरे ’ सोच (उसे) आकाशमें फक दिया । यह चूडामणि घेष्टन योजाभर (ऊपर) जाकर, आकाशमें ठहरा । शत्रु देवराजने दिव्य दृष्टिसे देखा, (उसे) उपयुक्त रक्षामय कण्ठमें ग्रहण कर, त्रायस्त्रिंश (स्वर्ग) लोकमें चूडामणि चेत्यकी स्थापना की ।—

उदि मउर घर-गन्ध-युत, तर पर फरु अकासु ।

सटस नयन वासन सिरहिं, वनक पटारी साशु ॥

फिर योधिसत्त्वने सोचा—यह काशीके बने वस्त्र भिक्षुके योग्य नहीं है । तब कदपर छुटके समयके इनके पुराने मित्र घटिकार महामहाने मित्र भावसे मोचा—भाज मेरे मित्रने महाभित्तिक्रमण किया है । उसके लिये श्रमण (= भिक्षु) के सामान ले चलूँ—

पात्र तीन चीवर सुई, छुरा कन्धन (जान) ।

जल छाका आठु इहै, भिच्छु^३ केर समा^४ ॥

(उसने) यह आठ श्रमण^५ परिष्कार (= सामान) (योधिसत्त्वको) प्रदान किये । योधिसत्त्वने उत्तम परिवाजकके वेपको धारण कर छन्दकको प्रेरित किया—

‘ छन्दक ! मेरी यातसे माता पिताको आरोग्य कहना । ’ छन्दकने योधिसत्त्वकी

बन्धना तथा प्रदक्षिणा कर चल दिया । कन्धक खटा खड़ा छन्दकके साथ योधिसत्त्वकी यातको सुन—“ अय फिर मुझे स्वामीका दर्शन न होगा ”, आँखसे आँसू होनेके शोकको सहन न कर सका, और कजेजा फकर, त्रायस्त्रिंश (देव) लोकमे जा, कन्धक नामक देव-पुत्र हुआ । छन्दकको पहिले एकही शोक था, कन्धककी मृत्युसे (अब) दूसरे शोकमे पीड़ित हो वह रोता काँदता नगरको चला ।

तप । बुद्धत्व-प्राप्ति । (वि. पू. ४७१)

योधिसत्त्व भी प्रव्रजित हो उम्मी प्रदेशमें, अनूपिया नामक आमोंके रागमें, एक सप्ताह प्रपञ्चा सुखमें गिता, एक ही दिनमें तीस योजन मार्ग पैदल चलाकर, रानगृहमें प्रविष्ट हुये । वहाँ प्रविष्ट हो भिक्षाके लिये निकले । सारा नगर योधिसत्त्वके रूपको देख धनपाउसे प्रविष्ट राजगृहकी भाँति, असुरेन्द्रसे प्रविष्ट देवतगरकी भाँति, सन्तुष्ट हो गया । राजपुरषोंने जाकर राजासे कहा—“देव । हम रूपका एक पुरष नगरमें मधुरी सांग रहा है, वह देव है या मनुष्य, नाग है या गरुड, कौन है हम नहीं जानते ।” राजाने मठलके ऊपर खड़े हो महापुरषको देख आश्चर्यान्वित हो, (अपने) पुरषोंको आज्ञा दी—‘जाओ । देवों तो, यदि अ मनुष्य होगा, तो नगरसे निकलकर अन्तर्धान हो जायगा । यदि देवता होगा, तो आकाशसे चला जायगा, यदि नाग होगा तो पृथिवीमें हुनकी लगाकर चला जायगा । यदि मनुष्य होगा, तो मिली हुई भिक्षाको भोजन करेगा । महापुरषने मिळे हुये भोजनको सप्रहकर, ‘इतना मेरे लिये पर्याप्त होगा’, यह जान प्रवेशाके नगरद्वारसे ही (बाहर) निकल, ‘पाण्डव पर्वतकी छायामें पुरष मुँह धेड़, भोजन करना आरम्भ किया । उस समय उनके आँत उलटकर मुँहसे निकलते जैसे साल्म हुये । तब हम दारोमें पेमा भोजन आँवसे भी न देखा होनेसे, उस प्रतिदुल्ल भोजनसे दुखित हुए अपने आपको स्वयं या समझाया—

“सिद्धाथ । तू, अन्न पान सुगम कुल्ले—तीन वर्षक (पुराने) सुगन्धित चावलका भोजन, नाना प्रकारके अत्युत्तम रसोंक साथ भोजन किये जानेवाले स्थानमें पैदा होकर भी, एक गुदरीधारी (भिक्षु) की देखकर (सोचता था)—कि मैं भी क्या इसी तरह (भिक्षु) बनकर भिक्षा माँग भोजन करूँगा ? क्या वह भी समय होगा ?—और यही सोच धारसे निकला था । अब यह क्या का रहा है ।” इस प्रकार अपनेकी समझा विकाश-रहित हो भोजन किया । रानपुरषोंने उस समाचारको जाकर राजासे कहा । राजान दूतकी बात सुन तुरन्त नगरसे निकल, योधिसत्त्वक पाम जा, उाकी मालावेष्टासे प्रसन्न हो योधिसत्त्वको (अपने) सभी श्रेष्ठ अर्पण किये । योधिसत्त्वने कहा—महाराज । मुझे न वस्तु कामना है, न भोग कामना । मैं महान् बुद्ध पान (= अभिमयोधी) के लिये निकला हूँ । राजाने, बहुत तरहसे प्रार्थना कनेपर भी, उनकी राखि न देव कहा—“अच्छा जब हम बुद्ध होना, तो प्रथम हमारे राज्यमें आना ।” यह यहाँ संक्षेप में है । विस्तार प्रपञ्चा-सूत्रकी अट्ट-कपाके साथ ‘प्रपञ्चा सूत्रमें’ इगना चाहिये ।

योधिसत्त्वने राजाको चवन द, क्रमश विवरण करते हुए, आगर-कालाम तथा उदर रामपुरके पास पहुँच समाधि (= समापत्ति) सीग्यी । (फिर) यह पान (= बोध) का रास्ता नहीं है, (एमा) सोच उस समाधिमात्रनाको अपवांस ममप्र, देवताओ सहित

सभी लोकों को अपना वर तोयें दिवानेके लिये, परमतत्त्वों प्राप्तिके लिये, उखेलमें पहुँच—“यह प्रदत्त रमणीय है” (ऐसा) मोच, वहीं उधर महान् उद्योग आरम्भ किया ।

काण्डिन्य आदि पाँच परिव्राजक भी गाँव, शहर, राजधानीमें भिक्षाचरण करते, बोधिसत्त्वके पाम वहीं पहुँचे । ‘अथ बुद्ध होंगे, अथ बुद्ध होंगे’ इस आशासे, छ वर्षतक वह आभमकी झाड़ू-बदारी आदि सेवाओंको करते, बोधिसत्त्वके पाम रहे । बोधिसत्त्व दुष्कर तपस्या करते हुये, (अस्त) तिन्तुलसे काल-क्षेप करने लगे, पाँछे आहार ग्रहण करना भी छोड़ दिये । देवताने रोमशृणु द्वारा (उनके शरीरमें) भोज डाल दिया । (लेकिन फिर भी) निराहारासे य बहुत दुबड़े हो गये । उनका कनक-वर्ण शरीर काला होगया । (उनके शरीरमें विद्यमान), महापुरणोपे (वसीस) लक्षण छिप गये । एक बार श्वास-रहित ध्यान करते समय, बहुतही छेदसे पीड़ित (एवं) बेहोश हो, टहलनेके चतुरेपर गिर पड़े । तब कुछ देवताओंने कहा—“अमण गातम मर गये ।” इसपर उन्होंने सोचा—“यह दुष्कर तपस्या बुद्धत्व प्राप्तिका मार्ग नहीं है ।” इसलिये स्थूल आहार ग्रहण करनेके लिये ग्रामों, और बाजारोंमें भिक्षाटनकर, भोजन ग्रहण करना शुरू कर दिया । । उनका शरीर फिर सुवर्ण वर्ण होगया । ८८ वर्षोंको सोचा—“६ वर्ष तक दुष्कर तपस्या करनेपर भी यह बुद्ध नहीं होसका, अब ग्रामादिमें भिक्षा माँग, स्थूल आहार ग्रहण करनेपर क्या होगा ? । यह लालची है, तपके मार्गसे भ्रष्ट है । शिरो नहानेकी इच्छावालेके ओस बुद्धकी ओर ताकनेके समान, इसकी ओर हमारी प्रतीक्षा है । इससे हमारा क्या मतलब (सबेरा) ? ” एसा सोच महापुरणको छोड़, अपने अपने पात्रवीवरों ले वह अठारह योजन दूर १ कथिपत्तनको चले गये ।

उस समय उखेला (प्रेश) के सेनानी तामक कल्येमें, सेनानी १ कुटुम्बीके घाँमें उत्पन्न सुजाता नामकी कन्याने तरणी होनेपर, एक बरगदसे यह प्रार्थना की थी—“यदि समानजातिके कुल-घाँमें जा, पहिले ही गर्भमें (पुत्र) प्राप्त करूँगी, तो प्रतिवर्ष एक लाखके खर्चसे बलिर्कर्म (= पूजा) करूँगी” । उसकी यह प्रार्थना पूरी हुई । महासत्त्व (= महापुरण) की दुष्कर तपश्चक्राका छठा वर्ष पूरा होनेपर, वैशाख पूर्णिमाको बलिर्कर्म करनेकी इच्छासे, उसने पहिले हजार गायोंको बधि-मधु (= जेठीमधु) के घनमें चरवाकर, उनका दूध दूसरी पाचसों गायोंको पिलवाया, (फिर) उनका दूध ढाँसौ गायोंको, इस ताँह (एकका दूध दूसरेको पिलवाते) १६ गायोंका दूध आठ गायोंको पिलवाया । इस प्रकार दूधके गाढापन मधुरता, भार ओजके लिये उसने क्षीर परिवर्तन किया । उसने वैशाख पूर्णिमाके प्रात ही बलिर्कर्म करनेकी इच्छासे भिनमराको उठकर, उन आठ गायोंको दुहवाया । दूध लकर गये वर्तनमें डाल, अपने हाथसे ही आग जलाकर (खीर) पकाना शुरू किया ।

सुजाताने (अपनी) पूणा (नामकी) दासीको कहा—“अम्म ! जल्दीसे जाकर देवस्थानको सात्वर” । “आर्य ! अच्छा” कह उसके वचनको ग्रहण कर, वह जल्दी जल्दी वृक्षके नीचेको गई । बोधिसत्त्व भी उस रातको पाँच महासत्त्वोंको देख,

१ सारनाथ (B & N W Ry), जिला बनारस । २ गृहस्थ, बढ़ाकिमान । ३ वर्तमान मगहीभाषा में ‘मैय्या’ ।

बोधिवृक्षके नीचे । वाराणसीको । (वि पू. ४७१)

उस समय बुद्ध भगवान् "उरुलेहामें नैरंजना नदीके तीर बोधिवृक्षके नीचे, प्रथम अभिम बोधिको प्राप्त हुये थे । भगवान् बोधिवृक्षके नीचे सप्ताहभर एक आसनसे विमुक्ति (= मोक्ष) का आर्षद छेते हुये बैठे रहे । रातको प्रथम यामर्म प्रतीत्य समुत्पादका अनुलोम (आदिसे अन्तकी ओर) और, प्रतिलोम (अन्तसे आदिकी ओर) मनन किया ।—“अविद्याके कारण संस्कार होता है, संस्कारके कारण विज्ञान होता है, विज्ञानके कारण नाम रूप, नाम रूपके कारण ज्ञ आयतन, ज्ञ आयतनके कारण स्पर्श, स्पर्शके कारण वेदना, वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण उपादान, उपादानके कारण भव, भवके कारण जाति, जाति (= जन्म) के कारण जरा (= बुढ़ापा), मरण, शोक, रोना पीटना, दुःख, चित्त विकार और चित्त ऐद उत्पन्न होते हैं । इस तरह यह (संसार) जो केवल दुःखो का बुँज है, उसकी उत्पत्ति होती है । अविद्या अ नेप (= विलकुल) विरागसे, (अविद्याका) नाश होनेपर संस्कारका, विनाश होता है । संस्कार विनाशसे विज्ञानका नाश होता है । विज्ञान नाशसे नाम रूपका नाश होता है । नाम रूप नाशसे ज्ञ आयतन का नाश होता है । ज्ञ आयतनके नाशसे स्पर्श नाश होता है । स्पर्श नाशसे वेदना नाश होती है । वेदना नाशसे तृष्णा नाश होती है । तृष्णा-नाशसे उपादान नाश होता है । उपादान नाशसे भव नाश होता है । भव नाशसे जाति नाश होती है । जन्म नाशसे जरा, मरण, शोक, रोना पीटना, दुःख, चित्त विकार और चित्त ऐद नाश होते हैं । इस प्रकार इस केवल-दुःख पुञ्जका नाश होता है ।” भगवान्ने इस अर्थको जानकर, उसी समय यह उद्गान कहा—

“जय धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्र (= ब्राह्मण) को ।

तन दात हो काक्षा सभीही जानकर क्षय कार्यको ॥”

फिर भगवान्ने रातके अन्तिमयाममें प्रतीत्य समुत्पादको अनुलोम-प्रतिलोमसे मनन किया ।—“अविद्याके कारण संस्कार होता है० दुःखपुञ्जका नाश होता है” । भगवान्ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उद्गान कहा—

“जय धर्म होते जग प्रकट, सोत्साहध्यानी विप्रको ।

तन दात हो काक्षा सभीही जानकर क्षय कार्यको ॥”

फिर भगवान्ने रातके अन्तिमयाममें प्रतीत्य समुत्पादको अनुलोम प्रतिलोम करके मनन किया ।—“अविद्या० केवल दुःख पुञ्जका नाश होता है” । भगवान्ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उद्गान कहा—

“जय धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्रको ।

यहै कँपाटा मार सेना, रवि प्रकाशे गगन ज्यो ॥”

१ दिनय पिन्क, महावग्ग १ । २ बोध गया जि गया (विहार) ।

धाकी रह जाँय, चाहे शरीर, मांस, रक्त क्यों न सूख जाये, लेकिन तोभी 'सम्यक्-सम्बोधिको प्राप्त किये बिना इस आसनको नहीं छोड़ूंगा'—निश्चय कर, पूर्वाभिमुख हो, मौ बिजलियोंका कड़क्के भी न घूटने वाला अ पराजित आसन लगा बैठ गये ।

उस समय मार दब पुत्र—“मिद्धार्थं कुमार मेरे अधिकारसे बाहर निकलना चाहता है, इसे नहीं निकलने दूँगा”—यह सोच, अपनी सेनाके पास जा, यह बात कह, मार-घोषण करवाकर, अपनी सेना छे, निकल पड़ा । मारसेनाके बोधि मंड तक पहुँचते पहुँचते, (सेना) में (से) एक भी खड़ा न रह सका, (सभी) सामने आतेही भाग निकले । । महा पुरष अकेलेही बचे रहे । मारने अपने अनुचरोसे कहा—“तात । शुद्धोदन पुत्र सिद्धार्थके समान दूसरा पुरष नहीं है । हम लोग सामनेसे युद्ध नहीं कर सकते, पीछेसे करेंगे ।” महापुरष मार सेनाको देख—“यह इतने लोग मेरे अकेलेके लिये बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं । इस स्थान पर मेरी माता, पिता, भाई या दूसरा कोई सम्बन्धी नहीं है । यह इस मेरी पारमितायें ही मेरे चिरकालमे पोसे हुये परिजनके समान हैं । इसलिये इन पारमिताओंको ही ढाल बनाकर, (इस) पारमिता सत्यको ही चलाकर, मुझे यह सेना समूह विघ्नस करना होगा” (यह सोच), दश पारमिताओंका स्मरण करते हुये बसे रहे ।

मार वायु, वर्षा, पापाण, हयियार, घघरनी राग, वाद, कीचड़ और अन्धकार घुटिसे बोधिसत्त्वको न भगा सका । (फिर) बोधिसत्त्वके पास आकर बोला—“मिद्धार्थ । इस आसनसे उठ, यह (आसन) तेरे लिये नहीं, मेरे लिये है ।” महासत्त्वने उसके वचनको सुनकर कहा—‘मार । तूने न दम पारमितायें पूरी कीं, न उप पारमितायें, न परमार्थकी पारमितायें, न पाँच महान् त्यागही तूने किये, न जातिके हितका काम, न लोकहितका काम, न जानका आचरण किया । यह आसन तेरे लिये नहीं है, यह मेरेही लिये है ।’

मारने महापुरषसे पूछा—“सिद्धार्थ तूने दान () दिया है, इसका कौन साक्षी है ?” महापुरषने “यह अचेतन डोम महापृथ्वी है”—कह, चौवरके भीतरसे दाढ़िने हाथको निकाल, “ ” मेरे दान देनेकी तू साक्षिणी है ” कहा, (और) पृथिवीकी ओर हाथ हटा दिया । मार-सेना दिग्दाओकी ओर भाग बली । । इस प्रकार सूयके रहते रहते महापुरषने मारसेनाको परास्त कर, चौवरके ऊपर बसते बोधिवृक्षके अकुण्ठसे, मानों लाख मूंगोसे पूजित होते हुये, प्रथम याममें पूर्णज-मोक्ष ज्ञान, मध्यम याममें दिव्य-चक्षु पा, अन्तिम याममें प्रतीत्य समुत्पाद ज्ञानको उपलब्ध किया ।** उस समय (उन्होंने) यह उद्दान कहा—

“बहु जन्म जगमें दौड़ता, फिरता बराबर मे रहा ।

नित झूँटता गृहकारको, दुख जन्मके सहता रहा ॥

गृह कार अब देखा गया, है फिर न घर करना तुझे ।

कदिया सभी हटा तेरी, गृह शिखर भी बिखरा पड़ा ।

संस्कार विरहित चित्त अब, तृष्णा सभीके नाश से ।”

४ परम ज्ञान, मोक्ष ज्ञान । ५ जातक-निदान । १ चार घण्टे का एक ‘याम’ होता है । प्रथम याम, रात्रिका प्रथम तृतीयात् । २ “पटिच्च समुत्पाद सुत्त” में विस्तार देखो । ३ जातक निदान १३ ।

नैधि-वृक्ष के नीचे ।

हाथम नहीं ग्रहण किया करते, मैं मट्टा और लड्डू किस (पात्र) में ग्रहण करूँ । तब चारों महाराजा भगवान्‌के मनकी बात जान, चारों दिशाओसे चार पत्थरके (भिक्षा-) पात्र भगवान्‌के पास ले गये—“ भन्ते ! भगवान्‌ । इसमें मट्टा और लड्डू ग्रहण कीजिये ।” भगवान्‌ने उस अभिन्न शिष्यामय पात्रम मट्टा और लड्डू ग्रहणकर भोजन किया । उस समय तपस्सु मल्लिक घनजारोने भगवान्‌से कहा—“ भन्ते ! हम दोनों भगवान्‌ तथा धर्मकी शरण जाते हैं । आजमें भगवान्‌ हम दोनोंको साध्वि शरणागत उपामक जान ।” संसारम वही दोनों दो 'वचनसे प्रथम उपासक हुये ।

सप्ताह बीतनेपर भगवान्‌ फिर उस ममायिते उठ, रात्रायतनके नीचेसे जहाँ अजपाल बर्गद था, घटा गये । वहाँ अजपाल बर्गदके नीचे भगवान्‌ विहार करने लगे । तब पकान्तम व्याघ्रास्थित भगवान्‌के चित्तमें वितर्क पैदा हुआ—“मैंने गंभीर, दुर्दर्शन, दुर्-ज्ञेय, शात, उत्तम, तर्कसे अप्राप्य, निपुण पण्डितों द्वारा जानने योग्य, इस धमको पा लिया । यह जनता काम कृष्णामें रमण करने वाली कामरत काममें प्रमग्न है । काममें रमण करने वाली इस जनताके लिये, यह जो कार्य कारण रूपी प्रतीत्य समुत्पाद है, वह दुर्दर्शनीय है । और यह भी दुर्दर्शनाय है, जो कि यह सभी सत्काराका धामन, सभी मन्त्रोंका परित्याग, कृष्णा क्षय, विराग, निरोध (दु ए निरोध), और निर्माण है । मैं यदि धर्मोपदेश भी करूँ और दूसरे उसको न समझ पावें, तो मर लिये यह सारुद्ध, और पीटा (मात्र) होगी । उसी समय भगवान्‌के पहिँ कभी न सुनी यह अद्भुत गायाय स्त्र पढ़ी—

“यह धर्म पाया कष्टसे, इसका न युक्त प्रकाशना ।

नहि राग द्वेष प्रल्लिखको है सुकर दक्षता जानना ॥

गंभीर उलटो-धारयुक्त दुर्दृश्य सूक्ष्म प्रवीणका ।

तम पुज-छादित रागरतद्वारा न भेदध दक्षता ॥”

भगवान्‌के ऐसा समझनेके कारण, (उनका) चित्त धर्मप्रचारकी ओर न झुक्कर अल्प-उत्सुकताकी ओर झुक गया । तब सहापति ब्रह्मान भगवान्‌के चित्तकी गतकी जानकर खपाए किया—“लोक नाश हो जायगा रे । लोक विनाश हो जायगा रे ! जब तन्नागत अहत् सम्पक् संतुद्धका चित्त धर्म प्रचारकी ओर न झुककर, अल्प-उत्सुकता (= उदासीनता) को ओर झुक जाये” (ऐसा टपाल कर) सहापति ब्रह्मा ब्रह्मकेसे अन्तःस्थान हो, भगवान्‌ सामने प्रकट हुये । फिर सहापति ब्रह्माने उपरना (= चहर) एक कपेपर कर, दाहिने जानुओं शिथीपर रख, जिसर भगवान्‌ थे उधर हाथ जोड़, भगवान्‌से कहा—“भन्ते ! भगवान्‌ धर्मापदेश कर, सुगत । धर्मादेश का । अल्प मल्लाले प्राणी भाँ हैं, धर्मर न सुननेसे वह नष्ट हो जायगे । (उपदेश काँ) धमको सुननेवाले (भी होयेंग)” सहापति ब्रह्मान यह कहा, और यह कहकर यह भी कहा—“मगधमें मल्लिन चित्तशालसे चित्तित, पहिले अनुद्ध धर्म पैदा हुआ । समृतके द्वारको खोलनेवाले विमल (पुरुष) से जागेयें इस धर्मको (अत्र लोक) सुनें ॥ पथीले पर्वतों शिखरपर गदा (पुर) जने चारों ओर जनताको दरे । उम्मी तरह

१ संपक न होनेसे यह बुद्ध और धर्म दो ही की शरण जा सकने थे ।

ससाह धीतनेपर भगवान् उस समाधिसे उठकर, बोधिवृक्षके नीचेसे वहाँ गये, जहाँ अजपाल नामक बर्गदका वृक्ष था, वहाँ पहुँचकर अजपाल बर्गदके वृक्षके नीचे ससाह भर विमुक्तिका आनन्द लेते हुये, एक आसनसे बंठे रहे । उस समय कोई अभिमानी ब्राह्मण, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया । पास आकर भगवान्‌के साथ (कुशलक्षेम कर) एक ओर खड़ा होगया । एक ओर खड़े हुये उस ब्राह्मणने भगवान्‌से यों कहा—“हे गौतम । ब्राह्मण कैसे होता है ? धाराण नानेवाले कौन धर्म है ? भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर, उसी समय यह उद्गान कहा—

“जो विप्र बाह्य पाप मल अभिमान-विमुक्त रहते ।

नेदात-पाराग ब्रह्मचारी ब्रह्मपात्री धर्ममें ।

सम नहीं कोई जिनसा जगत् ।”

फिर ससाह धीतनेपर भगवान् उस समाधिसे उठ, अजपालबर्गदके नीचेसे वहाँ गये, जहाँ मुचलिन्द (वृक्ष) था । वहाँ पहुँचकर मुचलिन्दके नीचे ससाह भर विमुक्तिका आनन्द लेते हुये एक आसनमें बंठे रहे । उस समय ससाह भर अ समय महामेघ, (और) टंडी हवा वाली घटनी पड़ी । तब मुचलिन्द नाग राज अपने घरसे निकलकर भगवान्‌के शरीरको सात बार अपने देहसे लपेटकर, ऊपर शिरके ऊपर बड़ा फण तान कर खड़ा हो गया, जिसमें कि भगवान्‌को शीत, उष्ण, रस, मच्छर, वात, धूप तथा सरीसृप (= रेंगने वाले) न छूँ । ससाह बाद मुचलिन्द नागराज आकाशको मेघ-रहित देख, भगवान्‌के शरीरसे (अपने) देहको हटाकर (और उसे) छिपाकर, बालकका रूप धारणकर भगवान्‌के सामने खड़ा हुआ । भगवान्‌ने इसी अर्थको जानकर उसी समय यह उद्गान कहा—

“मनुष्य देखनहार श्रुतधर्मा, सुखी एकान्तमें ।

निर्द्वन्द्व सुख है लोकम, संयम जो प्राणी मात्रमें ॥

मत्र कामनायें छोड़ना, वैराग्य है सुप्रलोकमें ।

है परम सुख निश्चय वही, जो साधना अभिमान का ॥

ससाह धीतनेपर भगवान् फिर उस समाधिसे उठ, मुचलिन्दके नीचेसे वहाँ गये, जहाँ राजायतन (वृक्ष) था । वहाँ पहुँचकर राजायतनके नीचे ससाह भर विमुक्तिका आनन्द लेते हुये एक आसनासे बंठे रहे । उस समय तपस्सु और भल्लिक, (दो) व्यापारी (= बन्जारों) उत्तरदेशसे उस स्थानपर पहुँचे । उनसे ज्ञात विराद्रीके देवताने तपस्सु, भल्लिक बन्जारोंको कहा—“साथें । बुद्धपदको प्राप्त हो यह भगवान् राजायतनके नीचे विहार कर रहे हैं । जाओ उन भगवान्‌को मट्टे और लड्डू (= मधुपिंड) से सन्मानित करो, यह (दान) तुम्हारे लिये चिरकालतक हित और सुखदा देनेवाला होगा । तब तपस्सु और भल्लिक बजार मट्टा और लड्डू ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । पास जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक तरफ खड़े हो गये । एक तरफ खड़े हुए तपस्सु और भल्लिक बन्जारोंने यह कहा—“भते । भगवान् ! हमारे मट्टे (= मन्थ) और लड्डूओंको स्वीकार कीजिये, जिसमें कि चिरकालतक हमें हित और सुख हो ।” उस समय भगवान्‌ने सोचा—“तथागत

वोधि-वृक्ष के नीचे ।

हाथमें नहीं ग्रहण किया करते, मैं मट्टा और लड्डू किम (पात्र) में ग्रहण करूँ ” । तब चारों महाराजा भगवान्‌के मनकी बात जान, चारों दिशाओंसे चार पत्थरके (भिक्षा-) पात्र भगवान्‌के पास ले गये—“ भन्ते । भगवान्‌ । इसमें मट्टा और लड्डू ग्रहण कीजिये ।” भगवान्‌ने उभयभिनय शिष्यामय पात्रमें मट्टा और लड्डू ग्रहणकर भोजन किया । उभय समय सपरम्पु मलिक धनजाराने भगवान्‌में कहा—“ भन्ते ! हम दोनों भगवान्‌ तथा धर्मकी शरण जाते हैं । आजसे भगवान्‌ हम दोनोंकी माञ्जलि शरणागत उपासक जान ।” संसारमें वही दोनों दो 'वचनसे प्रथम उपासक हुये ।

सत्ताह पीतनेपर भगवान्‌ फिर उभय समाधिमें उठ, राजायतनके नीचेसे जहाँ अजपाल बर्गद था, वहाँ गये । वहाँ अजपाल बर्गदके नीचे भगवान्‌ बिहार करने लग । तब एकान्तमें व्यापारस्थित भगवान्‌के चित्तमें वितक पैदा हुआ—“मैंने गंभीर, दुःखान्न, दुःख-नेय, शांत, उत्तम, सर्वसे अग्रगण्य, निपुण पण्डितों द्वारा जानन योग्य, इस धर्मको पा लिया । यह जनता काम वृण्णार्थ रमण करने वाली कामरत काममें प्रसन्न है । काममें रमण करने वाली इस जनतान्‌ लिये, यह जो पार्थ कारण रूपी प्रतीत्य समुत्पाद है, वह दुर्दर्शनीय है । और यह भी दुर्दर्शनीय है, जो कि यह सभी सम्प्रासका धमन, सभी मन्त्राका परित्याग, वृण्णा क्षय, विराग, निरोध (दुःख निरोध), दोरे निराण है । मैं यदि धर्मोपदेश भी करूँ और दूसरे उनको न समझ पायें, तो मेरे लिये यह सखु, और पीडा (मात्र) होगी । उसी समय भगवान्‌के पहिले कमी न सुनी यह अद्भुत गायार्थ सूत्र पढ़ी—

“यह धर्म पाया कहते, इसका न पुत्र प्रकाशना ।

महि राग द्वेष प्रलुप्तको है सुख इसका जानना ॥

गंभीर उलटो धारयुक्त दुःखय सुख प्रवीणता ।

तम पुत्र छान्ति रागरतद्वारा न संभव देखना ॥”

भगवान्‌के एता समझनेन कारण (उनका) चित्त धर्मप्रचारकी ओर न झुककर अल्प-उत्सुकताकी ओर झुक गया । तब सहापति ब्रह्माने भगवान्‌के चित्तकी बातको जानकर टपाल किया—“लोक नाश हो जायगा रे । लोक विनाश हो जायगा रे ! जब तयागत अहंनू सम्यक्‌ संतुष्टका चित्त धर्म प्रचारकी ओर न झुककर, अल्प-उत्सुकता (= उदासीनाता) की ओर झुक जाये” (एसा टपाल कर) सहापति ब्रह्मा ब्रह्मण्येकेसे अन्तस्थान हो, भगवान्‌के सामने प्रकट हुये । फिर सहापति ब्रह्माने उपरना (= बहर) एक कंधेपर कासे, दाहिने जानुकी वृथिवीपर रख, जिधर भगवान्‌ थे उधर हाथ जोड़, भगवान्‌में कहा—“भन्ते । भगवान्‌ धर्मोपदेश कर, सुगत । धर्मापदेश कौं । अल्प मलशले प्राणी भी हैं, धर्मक न सुननेसे वह नष्ट हो जायेंगे । (उपदेश कर) धर्मको सुननेवाले (भी होवेंगे)” सहापति ब्रह्माने यह कहा, और यह कहकर यह भी कहा—“भगवन्‌ मलिन चित्तशालेसे विचित्र, पहिले अशुद्ध धर्म पैदा हुआ । अमृतन द्वारका म्बोज्जेशके विमल (पुरुष) से जागेये इस धर्मको (अत्र लोक) सुने ॥ पथशले परितक शिष्यापर गवा (पुरुष) जय चारों ओर जनताकी दाने । उसी तरह

१ सपर्ये न होनेसे वह बुद्ध और धर्म दो ही की शरण जा सकते थे ।

हे सुमेध ! हे सर्वत्र नेत्र वाले ! धर्मरूपी महलपर चढ़ सत्र जनताको देखो ॥ हे शोक रहित ! शोक-निमग्न जन्मजरासे पीड़ित जनताकी ओर देखो ।—

उठ घोर ! हे संधामजित् । हे सार्थवाह ! उक्लण कृणा ।

जगविचर धर्मप्रचार कर, भगवान् ! होगा जानना ॥

तब भगवान् ने ब्रह्माके अभिप्रायको जानकर, और प्राणियोपर दया करके, बुद्ध-नेत्रसे लोकको अवलोकन किया । बुद्ध चक्षुसे लोकको देखते हुये भगवान् ने जीवोंको देखा, जिनमें कितने ही उत्पन्न, तीक्ष्ण बुद्धि, सुन्दर-स्वभाव, समझानेमें सुगम प्राणियोंको भी देखा । उनमें कोई कोई परलोक और शेषसे भय कर्त, विहर रहे थे । जैसे उत्पल्लिनी, पद्मिनी (= पद्मसमुदाय) या पुंडरीकिनीमें से कितनेही उत्पल, पद्म या पुंडरीक उदकमें पैदा हुये उदकमें बंधे उदकसे बाहर न निकल (उदक) भीतरही दृक्कर पोषित होते हैं । कोई कोई उत्पल (नीलकमल), पद्म (रक्तकमल), या पुंडरीक (द्यौतकमल) उदकमें उत्पन्न, उदकमें बंधे (भी) उदकके गायही गड़े होते हैं । कोई कोई उत्पल, पद्म या पुंडरीक उदकमें उत्पन्न, उदकमें बंधे (भी), उदकसे बहुत ऊपर निकलकर, उदकसे अलिप्त (ही) खड़े होते हैं । इसी तरह भगवान् ने बुद्ध-चक्षुसे लोकको देखते हुये—अल्पमल, तीक्ष्णबुद्धि, सुखभाव, सुशोध्य प्राणियोंको देखा, जो परलोक तथा सुखसे भय खाते विहर रहे थे । देखकर सहापति ब्रह्माको गाथाद्वारा कहा—

“उनके लिये अमृतना द्वार नंद हांगया है, जो कानगले होनेपर भी, श्रद्धाको छोड़ देते हैं । हे प्रह्ला ! (वृथा) पीड़ाका खयालकर मैं मनुष्योंको निगुण, उत्तम, धमनी नहीं कहता था ।”

तब ब्रह्मा सहापति—“भगवान् ने धर्मोपदेशके लिये मेरी बात मानली” यह जान, भगवान् ने अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर वहीं अन्तर्ध्यान होगये ।

उस समय भगवान् के (मनमें) हुआ—“मैं पहिले कैसे इस धर्मकी देशना (= उपदेश) करूँ, इस धर्मको शीघ्र कौन जानेगा ?” फिर भगवान् के (मनमें) हुआ—“यह आलार-कालाम पण्डित, चतुर, मेधावी चिरकालमें अल्प-मलिन चित्त है, मैं पहिले क्यों न आलार कालामको ही धर्मोपदेश दूँ ? वह इस धर्मको शीघ्रही जान लेगा ।” तब गुप्त देवताने भगवान् को कहा—“भन्ते ! आलार-कालामको मरे ससाह होगया ।” भगवान् को भी ज्ञान दर्शन हुआ—“आलार कालामको मरे ससाह होगया ।” तब भगवान् के (मनमें) हुआ—आलार कालाम महा आज्ञानीय था, यदि वह इस धर्मको सुनता, शीघ्रही जान लेता ।” फिर भगवान् के (मनमें) हुआ—“यह उदक रामपुत्र पण्डित, चतुर, मेधावी, चिरकालमें अल्प मलिन चित्त है, क्यों न मैं पहिले उदक रामपुत्रको ही धर्मोपदेश करूँ ? वह इस धर्मको शीघ्रही जान लेगा ।” तब गुप्त (= अन्तर्धान) देवताने, कहा—“भन्ते ! रात ही उदक रामपुत्र मर गया ।” भगवान् को भी ज्ञान दर्शन हुआ । फिर भगवान् के (मनमें) हुआ—“पद्म वर्गाय भिक्षु मेरे बहुत काम करनेवाले थे, उन्होंने साधनामें लगे मेरा सेवाकी थी । क्यों न मैं पहिले पद्मवर्गाय भिक्षुओंको ही धर्मोपदेश दूँ ।” भगवान् ने सोचा—“इस समय

धाराणसी को ।

पञ्चवर्गीय भिक्षु कहां बिहर रहे हैं ?” भगवान् ने अमानुष दिव्य विजुद्ध नेत्रों से देखा—
“पञ्चवर्गीय भिक्षु धाराणसी के ‘ऋषिपत्तन’ शृंग दावमें बिहारकर रहे हैं ।”

सब भगवान् उदरनेलामें इच्छानुसार बिहारकर, जिधर धाराणसी है, उधर चारिका (=सामत) के लिये निरुल पड़े । उपर आजीवक* ने देखा—भगवान् बोधि (=बुद्ध गया) और गयाके बीचमें जा रहे हैं । देवकी भगवान् ने बोला—“आयुमान (आयुस) । तेरो इच्छायां प्रसन्न हैं, तेरा छवि वर्ण (=काति) परिशुद्ध तथा उज्जल है । किमको (गुरु) मानकर है आयुस ! तू प्रवर्जित हुआ है, तेरा शास्ता (=गुरु) कौन ? तू किमके धर्मको मानता है ?” यह कहनेपर भगवान् ने उपर आजीवकको कहा—“मे सयको पराजित करनेवाला, सयको जाननेवाला हूँ, सभी धर्मोंमें गिरप हूँ । सर्व-त्यागी (हूँ), वृष्णाके क्षयसे हो विमुक्त हूँ, मैं अपनेही जानकर उपदेश करूँगा ।

मेरा आचार्य नहीं, हे मेरे सदृश (कोई) विद्यमान नहीं ।

देवताओं सहित (सारे) लोकमें मेरे समान पुरुष नहीं ।

मे संसारमें अर्हत्ता हूँ, अपूर्व शास्ता (=गुरु) हूँ ।

मैं एक सम्यक् सज्ज, शीतल तथा निर्वाणप्राप्त हूँ ।

धर्मका चक्र घुमानेके लिये काशियोंके नगरको जा रहा हूँ ।

(वहाँ) अन्धे हुये लोकमें अमृत दुन्दुभी यज्ञार्जना ॥”

“ आयुमान् । तू जसा दावा करता है उससे तो समस्त जिन हो सकता है ।”

“ मेरे ऐसेही सत्त्व भिन होते हैं, जिनके कि आश्रय (=पेश =मल) नष्ट हो गये हैं ।

मने पाप (=दुरे)—धर्मोंको जीत लिया है, इसलिये दे उपर । मैं जिन हूँ ।”

ऐसा कहनेपर उपर आजीवक—“ होवोगे आयुस ! ” कह, गिर हिला, घेरारस्ते चल दिया ।

१ वतमान सारनाथ, बनारस । २ उस समयक नम्र साधुओंका एक सम्प्रदाय, मन्त्राली-गोसार जिमका एक प्रधान आचार्य था ।

प्रथमधर्मोपदेश । यशका संन्यास । (वि. पू.-४७१)

तत्र भगवान् क्रमशः यात्रा (=चारिका) करते हुए, जहाँ वाराणसी रूपि पतन मृग दाव था, जहाँ पञ्चर्गाय मिथु ये, वहाँ पहुँचे । दूरसे आते हुये भगवान्को, पञ्चवर्गीय मिथुओंने देखा । देखनेही आपसमें पढ़ा किया —

“आहुसो ! यह बाहुलिक (=बहुत जमा करने वाला) साधना-भ्रष्ट बाहुल्य परायण (=जमा करनेकी ओर छौटा हुआ) भ्रमण गौतम आ रहा है । इसे अभिवादन नहीं करना चाहिये, न प्रत्युत्थान (=सरकार्थे खड़ा होना) करना चाहिये । न इसका पात्र चीवर (=आगे घटकर) लेना चाहिये, केवल आसन रख देना चाहिये, यदि हट्टा होगी तो धैरेगा ।”

जैसे जैसे भगवान् पञ्चवर्गीय मिथुओंके समीप आते गये, वेसेही वेसे वह अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर न रह सका । (अन्तर्ध्वं) भगवान्को पास जा, एकने भगवान्का पात्र चीवर लिया, एकने आसन बिछाया, एकने पादोदक (=पैर धोनेका जल), पादपीठ (=पैरका पीठा), पादकलिका (पैर रगड़नेकी एकही) एा पास रखी । भगवान् बिठाये आसनपर बैठ । घट्टका भगवान्ने पैर धोये । वह भगवान्के लिये ‘आहुस’ शब्दका प्रयोग करने धे । ऐसा करनेपर भगवान्ने कहा—“मिथुओ ! तथागतका नामलेकर या ‘आहुस’ कहकर मत पुकारो । मिथुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक् सम्युद्ध हैं । इधर ध्यान दो, मेने जिन अमृतको पाया है, उसका तुम्हे उपदेश करता हूँ । उपदेशानुसार आचरण करनेपर, जिनके लिये कुण्डुघ्न घरसे वेपहो संन्यासी होते हैं, उस वातुतम प्रत्यक्षफलकी, इसी जन्मम शांतिही स्वयं जाकर = साक्षात्कारकर = उपलभकर विचरोगे ।”

ऐसा कहनेपर पञ्चवर्गीय मिथुआने भगवान्को कहा—“आहुस ! गौतम उस साधना में, उस धारणामें, उस दुष्कर तपस्याम भी तुम आर्याव ज्ञानदर्शनकी पराकाष्ठाकी विनोपता, उत्तर मनुष्य धम (=दिव्य शक्ति)को नहीं पा सके, फिर अब बाहुलिक साधना भ्रष्ट, बाहुल्यपरायण (=जमाकरनेकी ओर पट्ट गये), तुम आर्य ज्ञान दर्शनको पराकाष्ठा, उत्तर मनुष्य धर्मको क्या पाओगे ।”

यह कहनेपर भगवान्ने पञ्चवर्गीय मिथुओंसे कहा—“मिथुओ ! तथागत बाहुलिक नहीं है, और न साधना से भ्रष्ट है, न बाहुल्यपरायण है । मिथुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक् समुद्ध हैं । उपलभकर विहार करोगे ।

दूसरी बार भी पञ्चवर्गीय मिथुओंने भगवान्को कहा—“आहुस ! गौतम ०” । दूसरी बार भी भगवान्ने फिर (यही) कहा ० । तीसरी बार भी पञ्चवर्गीय मिथुओंने भगवान्को (यही) कहा ० । ऐसा कहनेपर भगवान्ने पञ्चवर्गीय मिथुओंको कहा—“मिथुओ ! इसमें पहिने भी क्या मैंने कभी इस प्रकार कहा है ?”

“मत्ते । न”

“मिथुओ ! तथागत अर्हत् विहार करोगे ।”

प्रथमधर्मोपदेश ।

(तय) भगवान् पञ्चगोप्य भिक्षुओंको समझानेमें समर्थ हुये । तब पञ्चगोप्य भिक्षुओंने भगवान्से (उपदेश) सुननेकी इच्छासे वान त्रिया, चित्त उधर किया ।^१

धर्मचक्र प्रवर्तनं सूच ।

‘प्रेमा मने सुता—एक समय भगवान् वाराणसीके रूपिपतन मृगश्रवमें विहार करने थे । वहाँ भगवान्ने पञ्चगोप्य भिक्षुओंको संबोधित किया—

“भिक्षुओ ! इन दो अन्तों (=अतिथो) को प्रयतिनाको नहीं सेवन करना चाहिये । कौनसे दो ? (१) जो यह हीन, प्राम्य, पृथग्गतों (=भूले मनुष्यों) के (योग्य), अनार्य (सेवित), अनर्थोंसे युक्त, कामशामनाओंमें काम सुग-लित होना है, और (२) जो दुःख (मय), अनार्य (सेवित) अनर्थोंसे युक्त वायुपेदा (=आत्म पीटा) में लगना है । भिक्षुओ ! इन दोनों ही अन्तों (=अति)में न जाकर, तथागतने मध्यम मार्ग खोज निकाला है, (जोकि) आनन्द देनेवाला, चान करनेवाला उपशम (=शांति) के लिये, अभिन होनेके लिये, सम्प्रयोज (=परिपूर्ण चान) करनेके लिये, निवाण के लिये है । यह कौनसा मध्यम मार्ग (=मध्यम प्रतिपद्) तथागतने खोज निकाला है, (जोकि) १ वह यही ‘आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग’ है, जैसे कि—सम्यक् (=वीर) दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् ध्वन, सम्यक् कर्म, सम्यक् जाविना, सम्यक् व्यायाम (=प्रयत्न, परिश्रम), सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि । यह है भिक्षुओ ! मध्यम मार्ग (जिसको) ० ।

यह भिक्षुओ ! दुःख आर्य (=उत्तम) सत्य (=सच्चाई) है ।—जन्म भी दुःख है, जरा भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है, मरण भी दुःख है, अप्रियाका संयोग दुःख है, प्रियोका वियोग भी दुःख है, इच्छा करोपर किसी (चीज) का नहीं मिलना भी दुःख है । संक्षेपमें पांच ‘उपादानस्व’ ही दुःख हैं । भिक्षुओ ! दुःख समुदय (=दुःख कारण) आर्य सत्य है । यह जो वृष्णा है—फिर जन्मनेकी, पुनर् होनेकी, राग-सहित जहाँ तहाँ प्रसन्न होनेवाली—। जैसेकि—काम वृष्णा, भव (=जन्म) वृष्णा, विभव वृष्णा । भिक्षुओ ! यह है दुःख निरोध आर्य सत्य, जोकि उन्नी वृष्णाका सर्वथा विराग हो, निरोध=त्याग=प्रति निस्सर्ग=मुक्ति=न लीन होना । भिक्षुओ ! यह है दुःख निरोधकी ओर जानेवाला मार्ग (दुःख निरोध-नामिनी प्रतिपद्) आर्य सत्य । यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग है ।

‘यह दुःख आर्य-सत्य है’ भिक्षुओ ! यह मुझे अश्रुत पूर्व धर्मोंमें, आप उत्पन्न हुई=ज्ञान उत्पन्न हुआ=प्रज्ञा उत्पन्न हुई=विद्या उत्पन्न हुई=बालोक उत्पन्न हुआ । ‘यह दुःख आर्य सत्य परिश्रेय है’ भिक्षुओ ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोंमें ० । (सो यह दुःख-सत्य) परि श्रव है” भिक्षुओ ! यह पहिले न सुने गये धर्मोंमें ० ।

१ महावग्ग । २ संयुत्त नि० ५५ २ १, विनय महावग्ग । ३ विस्तार के लिये “सतिपट्टान-सुत्त” को देखो । ४ रूप, वेदना संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

‘यह दु स-समुत्पन्न आर्य सत्य है’ भिक्षुओ, यह सुने पहिले न सुने गये धर्मां आंन उत्पन्न हुई, ज्ञान हुआ = प्रज्ञा उत्पन्न हुई = विद्या उत्पन्न हुई = आलोक उत्पन्न हुआ । “यह दु स-समुत्पन्न आर्य-सत्य प्रहातव्य (= त्याज्य) है”, भिक्षुओ । यह सुने । “० प्रहीन (छूट गया)” यह भिक्षुओ सुने ।

‘यह दु स निरोध आर्य-सत्य है’ भिक्षुओ । यह सुने पहिले न सुने गये धर्मां आंन उत्पन्न हुई । “मो यह दु स निरोध आर्य सत्य साक्षात् (= प्रत्यक्ष) करना चाहिये” भिक्षुओ । यह सुने । “यह दु स निरोध सत्य साक्षात् किया” भिक्षुओ ! यह सुने ।

“यह दु स निरोध गामिनी-प्रतिपद् आर्यसत्य है” भिक्षुओ ! यह सुने पहिले न सुने गये धर्मां, आंन उत्पन्न हुई । यह दु स निरोध गामिनी-प्रतिपद् आर्यसत्य भावना करना चाहिये”, भिक्षुओ । यह सुने । “यह दु स निरोध गामिनी प्रतिपद् भावनाको” भिक्षुओ ! यह सुने ।

भिक्षुओ ! जबतक कि इन चार आर्यसत्त्वोंका (उपरोक्त) प्रकारसे तेहरा (हो) बारह आकारका—यथार्थ विशुद्ध ज्ञान दर्शन न हुआ । तबतक मैंने भिक्षुओ ! यह दावा नहीं किया—कि “देवो सहित मार सहित ब्रह्मा-सहित (सभी) लोकमें, देव-मनुष्य-सहित, श्रमण ब्राह्मण सहित (सभी) प्रजा (= प्राणी) में, अनुत्तर (जिससे उत्तम दूसरा नहीं), सम्यक् संज्ञेधि (= परमज्ञान) को मैंने जान लिया” भिक्षुओ ! (जब) इन चार आर्य सत्त्वोंका (उपरोक्त) प्रकारसे तेहरा (हो) बारह आकारका यथार्थ विशुद्ध ज्ञान दर्शन हुआ, तब मैंने भिक्षुओ । यह दावा किया, कि “देवों सहित मैंने जान लिया । मैंने ज्ञानको देखा । मेरी विमुक्ति (मुक्ति) अचल है । यह अंतिम जन्म है । फिर अब आवगमन नहीं ।

‘भगवान् ने यह कहा । मनुष्य हो पंचवर्गीय भिक्षुओंने भगवान् के वचनको अभिनन्दन किया । इस व्याख्यान (= व्याकरण) के कहे जानेके समय, आयुष्मान् कौण्डिन्यको, “जो कुछ समुत्पन्न-धर्म (= कारण स्वभाव वाला) है, वह सब निरोध-धर्म (= नाश-स्वभाव वाला) है” यह विरज = विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ । तब भगवान् ने उद्दान कहा—“आहा ! कौण्डिन्यने जानलिया आहा ! कौण्डिन्यने जानलिया !” इसीलिये आयुष्मान् कौण्डिन्यका आनात (= जानलिया) कौण्डिन्य नामही होगया । × × ×

२ तब दृष्टधर्म = प्राप्तधर्म = विदितधर्म = पर्यवगाढधर्म, संशयरहित, विवादरहित, शान्ता (= शुरु = बुद्ध) के शायन (= धर्म) में विशारद, स्वतंत्र हो, आयुष्मान् आशात कौण्डिन्यने भगवान् से कहा—“भन्ते । भगवान् के पास सुने प्रमज्जा मिले, उपसम्पदा मिले ।” भगवान् ने कहा—“ भिक्षु । आओ, धर्म सु आख्यात है, अच्छी तरह दु खके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य (का पालन) करो” । वही उन आयुष्मान् की उपसंपदा हुई ।

भगवान् ने उसके पीछे भिक्षुओंको फिर धर्म संबंधी कथाओंका उपदेश किया, अनुशासन किया । भगवान् के धार्मिक कथाओंका उपदेश करते = अनुशासन करते समय

१ सं नि ५५ = १, विनय, महावग्ग १ २ महावग्ग १, ३ आमणेर संन्यास ।
४ भिक्षु-संन्यास । ५ व्याख्यात = सुंदर प्रकारसे वर्णित ।

यश संन्यास ।

आयुष्मान् यय और आयुष्मान् भदिको भी—'जो कुछ समुद्र धर्म है, वह मय निरोध धर्म है' यह विरज=विमल=धर्मशुद्ध उत्पन्न हुआ । तब दृष्टधर्म=प्राप्त धर्म० स्वतंत्र० उन्होंने भगवान्‌से कहा—“भन्ते । भगवान्‌के पास हम प्रयत्न्या मित्रे, उपसम्पन्ना मित्रे” । भगवान्‌ने कहा—“भिक्षु । आओ, धर्म सु-आगम्य है, अष्टमी तारा दु सके क्षयक लिये प्रहस्यर्च्य (आनुपालन) करो ।” यही उन आयुष्मानाकी उपसंपदा हुई ।

उसके पीछे भगवान् (भिक्षुओं द्वारा) लाने भोजनको ग्रहण करते, भिक्षुओंको धार्मिक कथाओंद्वारा उपदेश करते = अनुशासन करने (१६) । तीन भिक्षु जो भिक्षा मागकर लाते थे, उसीसे छ ओ जने निर्वाह करते थे । भगवान्‌के धार्मिक कथा उपदेश करते = अनुशासन करते, आयुष्मान् महानाम और आयुष्मान् अश्वजित्‌को भी—' जो कुछ समुद्र धर्म है० ।” ० यही उन आयुष्मानाकी उपसंपदा हुई । ।

उन समय यश नामक कुलपुत्र, वाराणसीक श्रेष्ठीका सुकुमार लड़का था । उसने तीन प्रामाद थे—'एक हेमन्तका, एक प्रोष्मका, एक वर्षाका । वह वर्षाक चारो महीने वर्षा कालिक-प्रासादमें, स-पुराण (=ग्रियों) के वाघोंसे सेवित हो, प्रासादक नीचे न उतरता था । (एक दिन) यश कुलपुत्रकी मित्रा पुत्री । सारी रात वहाँ तेल-दीप जलता था । तब यश कुलपुत्रने अपने परिजनको दया—किमीकी बगलमें योगा है, किसीके गलेमें सृद्ध है । किसीको पैर केस, किसीको छार मिराते, किसीको धाँते, साक्षात् शमशासा देखकर, (उसे) धृणा उत्पन्न हुई, वैराग्यचित्तमें आया । यश कुलपुत्रने उद्दान कहा—“हा ! सन्तस ॥ हा ! पीड़ित ॥”

यश कुलपुत्र सुनहला जूता पहिना, घाँके फाटककी ओर गया । फिर नगर द्वार की ओर । तब यश कुछ पुत्र वहा गया, जहा अपिपता सुगन्धक था । उस समय भगवान् रातक भिक्षुपारकी उठता, खुश (स्थान)में टहल रहे थे । भगवान्‌ने वरसे यश कुलपुत्रको आते देखा । देखकर टहलनेकी जगहसे उठाकर, बिछे आसनपर बैठाये । तब यश कुलपुत्रने भगवान्‌के समीप (पहुँच), उद्दान कहा—' हा ! सन्तस ॥ हा ! पीड़ित ॥ ’ । भगवान्‌ने यश कुलपुत्रको कहा —“यश ! यह है अ सन्तस, यश ! यह है अ पीड़ित । यश ! आ बठ, तुम धर्म बताता हूँ ।” तब यश कुलपुत्रने “यह अ सन्तस है, यह अ-पीड़ित है” यह (सुन) आह्लादित, प्रयत्न हो, सुनहले जूतेकी उत्तार, जहाँ भगवान्‌ थे, वहाँ गया । पास जाकर भगवान्‌की अभिवादनकर एक ओर बठ गया, एक ओर बैठ यश कुलपुत्रको, भगवान्‌ने आनुपूर्वी कथा, जते —दान-अथा, शील-अथा, स्वर्ग कथा, कामशासनाओंका दुष्परिणाम अपकार दोष, निष्कर्मताका, साहान्य प्रकाशित किया । जब भगवान्‌ने यशको, भव्य चित्त, सृष्टुचित्त, अनाच्छादित चित्त, आह्लादित चित्त, प्रयत्न-चित्त देखा, तब जो बुद्धोंकी उद्दानेवाली (=समुत्कर्षक) देशना (=उपदेश) है—दु ख, समुद्रध (=खका कारण), निरोध (=दु खका नाश), और मार्ग (=दु ख-नाशका उपाय)—उसे प्रकाशित किया । जमे कालिमा रहित शुद्ध ब्रह्म अष्टमी तरह रंग पकटता है, वैसीही यशकुलपुत्रको उसी आसत्पर “जो कुछ समुद्र धर्म है, वह निरोध धर्म है” यह विरज=निर्मल धमचक्र उत्पन्न हुआ ।

१ महावग्ग १ २ श्रेष्ठी यह नगरका एक अवैतनिक पदाधिकाारी होता था, जो कि धनिक व्यापारियों सेने बनाया जाता था ।

यशकुल पुत्रकी माता प्रासादपर चढ़, यशकुल पुत्रको न देख, जहाँ श्रेष्ठी गृह पति था वहाँ गई, (ओर) । कहा—‘गृहपति ! तुम्हारा पुत्र यश दिखाई नहीं देता है’ ? तब श्रेष्ठी गृह-पति चारों ओर सवार छोड़, स्वयं जिधर ऋषि पति गृह-श्राव था, उधर गया । श्रेष्ठी गृहपति सुनहले जूतोंका चिन्ह देख, उसीके पीछे पीछे चला । भगवान् ने श्रेष्ठी गृहपतिको दूरसे आते देखा । तब भगवान् को (ऐसा विचार) हुआ—“क्यों न मैं ऐसा योग बल बट, जिससे श्रेष्ठी गृहपति यहीं घंटे यशकुल पुत्रको न देख सकें ।” तब भगवान् ने वेमाही योग बल किया । श्रेष्ठी गृहपतिने जहाँ भगवान् थे वहाँ, जाकर भगवान् से कहा—“ भन्ते ! क्या भगवान् ने यश कुल पुत्रको देखा है ?”

“गृहपति ! बैठ । यहाँ बैठा यहाँ घंटे यशकुलपुत्रको तू देखेगा ।”

श्रेष्ठी गृहपति—“यहाँ बैठा यहाँ घंटे यशकुल पुत्रको देखूँगा” यह (सुन) आह्लादित प्रसन्न हो, भगवान् को अभिवादनकर, एक ओर चढ़ गया । भगवान् ने आनुपूर्वी क्या, जैसे—‘दानकथा०’ प्रकाशित की । श्रेष्ठी गृहपतिको इसी आसनपर० धर्मचक्र उलपन्न हुआ । भगवान् के धर्ममें स्वतन्त्र हो, वह भगवान् से बोला—“आश्चर्य ! भन्ते ! आश्चर्य ! भन्ते ! जैसा मैंने सोचा करते, ठेके को उधाड़ दे, भूलेको रास्ता बतलादे, अधकारमें तेलका प्रदीप रखदे, जिसमें कि आँखवाले रूप देखें, ऐसेही भगवान् ने अनेक पर्यायसे धर्मको प्रकाशित किया । यह मैं भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । आजसे मुझे भगवान् साजिल शरणागत उपासक ग्रहण करें ।” वह (गृहपति) ही संसारमें ‘तीन—वचनोवाला प्रथम उपासक हुआ ।

जिस समय पिताको धर्मोपदेश किया जा रहा था, उस समय देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण (= गंभीर चिन्तन) करते, यशकुल पुत्रका चित्त अलस हो, आसनों (= दोषा = मल) से मुक्त होगया । तब भगवान् के (मनमें) हुआ—“पिताको धर्म उपदेश० यशकुल-पुत्रका चित्त अलस हो, आसनोंसे मुक्त होगया । (अब) यशकुलपुत्र पहिलेकी गृहस्थ अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)में रह, कामोपभोग करनेके योग्य नहीं है, क्योंकि मैं योगबलके प्रभावको हटा छूँ ।” तब भगवान् ने ऋद्धिके प्रभावको हटा लिया । श्रेष्ठी गृहपतिने यश कुलपुत्रको घंटे देखा । देखकर यश कुलपुत्रसे बोला—

“तात ! यश ! तेरीमाँ रोतीपीडती तथा शोकमें पड़ी है, माताको जीवन दान दे” ।

यशकुलपुत्रने भगवान् की ओर आँख फेरी । भगवान् ने श्रेष्ठी गृहपतिको कहा—

“सो गृहपति ! क्या समझतेहो, जैसे तुमने शेष-सहित (= अपूर्ण) ज्ञानसे, शेष सहित दर्शन(= साक्षात्कार)से धर्मको देखा, वैसेही यशने भी (देखा) ? देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करते, उम्का चित्त अलस हो, आसनोंसे मुक्त हो गया । अब क्या वह पहिलेकी गृहस्थ अवस्थाकी भाँति हीन(स्थिति)में रहकर, कामोपभोग करनेके योग्य है ?”

“ नहीं, भन्ते ! ”

यश संन्यासे ।

“हे गृहपति ! (पहिले) शेष सहित ज्ञानमे, शेष सहित दर्शनसे यशने भा धर्मको देखा, जसे तुने । (फिर) देते और जानैके अनुसार प्रत्येक्षण करके, (उसका) चित्त अलस हो आसनोंसे मुक्त हो गया । हे गृहपति ! अब यश कुल पुत्र पहिलेकी गृहस्थ-अवस्थाकी भांति हीन-(स्थिति)म रह, कामोपमोग करने योग्य नहीं है ।”

“ लग्न है मन्ते । यश कुल-पुत्रको, सलाम किया मन्ते । यश कुल पुत्रने, कि यश कुल पुत्रका चित्त अलस हो आसनोंसे मुक्त हो गया । मन्ते । भगवान् यशको अनुगामी मिश्रु (= श्वात्-ध्रमण) करके, मेरा आजका भोजन स्वीकार कीजिये ।”

भगवान्ने मौनसे स्वीकृति प्रकट की ।

श्रेष्ठी गृहपति भगवान्की स्वीकृति जान, आसनमे उठ, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, चला गया । फिर यशकुल पुत्रने श्रेष्ठी गृहपतिके चने जानैके थोड़ीही देर बाद भगवान्से कहा—“मन्ते । भगवान्के पाससे सुझे प्रवज्या मिले, उपसंपदा मिले ।” भगवान्ने कहा—“ मिश्रु । आओ धर्म सु आख्यात है । अच्छी तरह तु खवे क्षयके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करो ।” यही इस आयुमान्की सम्पदा हुई । उस समय लोकम सात अर्हत् वे ।

भगवान् पूर्वाह्न समय वस्त्र पहिन (मिक्षा-) पात्र और जीवरले, आयुमान् यशको अनुगामी मिश्रु बना, जहा श्रेष्ठी गृहपतिका घर था, वहा गये । वहा, बिछे आसनपर बैठे । सब आयुष्मान् यशकी माता और पुरानी पत्नी भगवान्के पास आई । आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई । उनको भगवान्ने आनुपूर्विक क्या० कही । जय भगवान्ने उह भव्यचित्त०, देखा, सत्र जो बुद्धोकी उठाने वाली देशना है—दुःख,समुदय, निरोध और माग—उसे प्रकाशित किया । जैसे कालिमा-रहित शुद्ध वस्त्र अच्छी तरह रंग पकड़ता है, वैसेही उन (दोनों) को, उची आसन पर—“ जो कुरु समुदय धर्म है, वहनिरोध धर्म है ”—यह विराज=निर्मल धर्मवस्तु उत्पन्न हुआ । दृष्ट धर्म=प्राप्त धर्म=विदित-धर्म=पर्यवगाढ धर्म, सन्देह रहित, कपोपकथन रहित, भगवान्के धर्ममेंविशारदता प्राप्त=स्वतन्त्र हो, उन्होंने भगवान्को कहा—“ आश्चर्य ! मन्ते ॥ आश्चर्य ! मन्ते ॥ ० आजसे हम भगवान् साजलि क्षणगत उपासिनाय जान । लोक मे वही तीन धर्मको वाली प्रथम उपासिनायें हुई ।

आयुष्मान् यशके माता पिता और पुरानी पत्नीने, भगवान् और आयुष्मान् यशको उत्तम खाद्य भोजनमे सन्तुष्ट कर=संप्रवारित किया । जयभोजनकर, भगवान्ने पात्रसे द्राघर्षिच लिया, सब भगवान्के एक ओर बैठ गये । सत्र भगवान् आयुष्मान् यशकी माता, पिता और पुरानी पत्नीको धार्मिक-कथा द्वारा संदर्शन=समाज्ञापन=समुत्तेजना=सप्रहर्षण कर आसनसे उठकर चल दिये ।

आयुष्मान् यशके चारों गृही मित्रों, वाराणसीके श्रेष्ठी अनुश्रेष्ठिवाक कुल्के लड़कों—विमल, सुबाहु, पूर्णजिन् और गणपतिने छना, कि यश कुल पुत्र शिर-दादी मुद्रा, कापायवस्त्र पहिन, घरमे वेसर हो प्रयत्नित हो गया । सुनकर उनके (चित्तमें) हुआ—“ वह धर्म विनय छोटा न होगा, वह प्रवज्या (=सं यास) छोटे १ होगी, जिपमें यशकुलपुत्र शिर-दादी मुद्रा,

कापाय-वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो, प्रयजित हो गया । " वह वहासे आयुष्मान् यशके पास आये । आकर आयुष्मान् यशको अभिवादनकर एक ओर खड़े हो गये । तब आयुष्मान् यश उन चारो गृहीमित्रों सहित जहाँ भगवान् थे, वहा आये । आकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् यशने भगवान् को कहा—“ भन्ते । यह मेरे चार गृहीमित्र वाराणसीके श्रेष्ठो अनुब्रष्टियोंके कुलके लड़के—विमल, सुशह, पूर्णजित और गयाम्पति—हैं । इन्हें भगवान् उपदेश करें = अनुशासन करें ” । उनको भगवान् ने ० 'आनुपूर्विक कथा कही ० । वह भगवान् के धर्ममें विशारद = स्वतन्त्र हो, भगवान् ने बोले—“ भन्ते । भगवान् के पाससे हम प्रयज्या मिले, उपसम्पदा मिले ।” भगवान् ने कहा—

“ भिक्षुओ । आओ धर्म सु-आख्यात है । अच्छी तरह दु सके क्षयके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करो ।” यही उन आयुष्मानोकी सम्पदा हुई । तब भगवान् ने उन भिक्षुओको धार्मिक कथाओ द्वारा उपदेश दिया = अनुशासना की । (जिससे) अलिप्त हो उनके वित्त आत्मशोभ मुक्त हो गये । उस समय लोकमें ग्यारह अर्हत् थे ।

आयुष्मान् यशके ग्रामवासी (=जानपद = दीहाती) पुराने खान्दानोंके पुत्र, पचास गृहीमित्रोंने सुना, कि यश कुलपुत्र प्रयजित होगया । सुनकर उनके चित्तमें हुआ—“वह धर्म चिन्तय छोटा १ होगा , जिसमें यशकुल पुत्र प्रयजित होगया ।” वह आयुष्मान् यशके पास आये । आयुष्मान् यश उनचारों गृहीमित्रों सहित भगवान् के पास आये । भगवान् ने निष्कर्मताका महात्म्य बणन किया । वह विशारद हो भगवान् ने बोले—“हम उपसम्पदा मिलें” । उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई । तब भगवान् ने उपदेश दिया । (जिससे) अलिप्त हो उनके वित्त आत्मशोभे मुक्त होगये । उस समय लोकमें एकत्र अर्हत् थे ।

चारिका-सुत्त । उपसंपदा-प्रकार । भद्रवर्गीयोंका सन्यास । काश्यप-पुत्रों
का सन्यास ।

‘भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—“भिक्षुओ । जितने (भी) दिव्य और मानुष पादा (=बन्धन) हैं । मैं (उन सभों) से मुक्त हूँ, तुमभी दिव्य और मानुष पाशोंसे मुक्त होओ । भिक्षुओ । बहुत ज्ञा हितार्थ (= बहुत जनाके हितके लिये), बहुत ज्ञान सुखार्थ (= बहुत जनोके सुखके लिये), लोकपर दया करनेके लिये, देवताओं और मनुष्योंके प्रयोजनके लिये, हितके लिये, सुखके लिये चारिका चरण (=विचारण) करो । एकमात्र दो मत जाओ । हे भिक्षुओ । आदिमें कल्याण (कारक) मध्यमें कल्याण (कारक) अन्तमें कल्याण (कारक) (इस) धर्मका उपदेश करो । अर्थ सहित=उपजन सहित, केवल (=अमिश्र) परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मपर्यन्त प्रकाश करो । अल्प दोषवाले प्राणी (भी) हैं, धर्मके शरण करनेसे उनकी हानि होगी । (सुननेसे यह) धर्मके जाननेवाले हागे । भिक्षुओ । मैं भी जहाँ उरलेला है, जहाँ सेनावी घाम है, वहाँ धर्म-देशनाके लिये जाऊँगा ।”

‘उस समय नानादिशाओंसे नाना जनपदोंसे भिक्षु, प्रवज्याकी इच्छावात्, उपसम्पदाकी अपेक्षावाले (आदिभिक्षुओंके) हातेथे, कि भगवान् उन्हें परिधाज्ज बनावें, उपसम्पन्न करें । इससे भिक्षुभी हैरान होते थे, प्रवज्या-उपसम्पदा चाहने वालेभी । एकान्तस्थित ध्यानावस्थित भगवान्के चित्तमें (विचार) हुआ, “क्यों न भिक्षु सभों ही अनुत्ता दे दूँ, कि भिक्षुओ । तुम्हीं उन उन दिशाओंमें, उन उन जनपदोंमें प्रवर्जित बनाओ, उपसम्पन्न करो” । इसलिये भगवान्ने सव्या समय भिक्षु संघको एकत्रितकर धर्मकथा कह, संबोधित किया—“भिक्षुओ । एकान्तमें स्थित, ध्यानावस्थित । इसलिये, हे भिक्षुओ मैं स्वीकृति देता हूँ”—एव तुम्हेंही उन उन दिशाओंमें, उन उन देशोंमें प्रवज्या दनी चाहिय, उपसम्पदा दनी चाहिय । और उपसम्पदा देनेका प्रकार यह है—पहिले शिर दानी सुद्धवाक, काषाय-वस्त्र पहनाकर, उपरना एक कंधेपर कराका, भिक्षुओंकी पाद वेदना कराकर, उकड़ूँ बधाकर, हाथ जोड़वाकर “धेरे धोले” कहना चाहिय—“सुद्धकी शरण लेता हूँ, धर्मकी शरण लेता हूँ, सधर्मी शरण लेता हूँ । दूसरी बारभी सुद्धकी० धर्मकी० संघकी शरण लेता हूँ । तीसरी बारभी सुद्धकी०, धर्मकी० संघकी शरण लेता हूँ । इनतीनशरणगमनोसे प्रवज्या और उपसम्पदा (देनेकी) अनुत्ता देता हूँ” ।

‘भगवान् चारणसीम इच्छासुसार विहासकर, (साठ भिक्षुओंको भिन्न भिन्न दिशाओंमें भेजकर), जिधर उरलेला है, उधर चारिका (=विचारण) के लिये चल दिये । भगवान् मार्गसे हटकर एक चतुर्लोकमें पहुँच, वन खड्ग भीतर एक वृक्षके नीचे जा बस । उस समय भद्रवर्गीय (नामक) तास भिन्न अपनी जियो सहित उभी वन खड्ग विबोद करते थे । (उनमें)

भद्रवर्गीयोंका सन्यास ।

एकको पत्नी न थी । उसकालिये पश्या लाई गई थी । वह वैदया उनके नशामें हो घूमत वक्त, आभूषण आदि लेकर भाग गई । तब (सद्य) मित्रोने (अपने) मित्रकी मददमें उस स्त्रीको रोजने हुए उस वन खडको हाँउते, वृक्षके नीचे बंठे भगवान्को देखा । (फिर) जहाँ भगवान्दे, वहाँ गये । जाकर भगवान्से बोले—“ भन्ते ! भगवान्ने (किपी) स्त्रीको तो नहीं देखा ?”

“ कुमारो ! तुम्हें स्त्रीसे क्या है ?”

“ भन्ते ! वह भद्रवर्गीय (नामक) तीस मित्र (अपनी २) पत्नियों सहित इस वन पंइमें संरविनोद कर रहे थे । एकको पत्नी न थी, उसके लिये वैदया लाई गई थी । भन्ते ! वह वैदया हमलोगोंके नशामें हो घूमते वक्त आभूषण आदि लेकर भाग गई । तो भन्ते ! हमलोग मित्रकी मददमें, उस स्त्रीको गोजते हुये, इस वन खडको हाँउ रहे हैं ।”

“ तो कुमारो ! क्या समझतेहो, तुम्हारे लिये कौन उत्तम होगा, यदि तुम स्त्रीको ढूँढो, अथवा तुम अपने (= आत्मा) को ढूँढो ।”

“ भन्ते ! हमारे लिये यही उत्तम है, यदि हम अपनेको ढूँढें ।”

“ तो कुमारो ! येओ, मे तुम्हें धर्म उपदेश करता हूँ ।”

“ अच्छा, भन्ते !” कह, वह भद्रवर्गीय मित्र भगवान्को वन्दनाकर, एक ओर घेठ गये । उनको भगवान्ने आनुपूर्वी कथा^० कही । भगवान्के धर्ममें विशारद हो भगवान्से बोले— भगवान्के हाथसे हमें प्रवज्या मिले । वही उन आयुष्मानोकी उपसम्पदा हुई ।

वहासे भगवान् क्रमश विचारते हुये उर्रेला पहुँचे । उस समय उर्रेलामें तीन जटिल (= जटाधारी)—उर्रेल काश्यप, नदी काश्यप और गया-काश्यप—वास करते थे । उनमें उर्रेल काश्यप जटिल पाँचसौ जटिलोंका नायक = विनायक = अग्र = प्रमुख = प्रामुख्य था । नदी काश्यप जटिल तीनसौ जटिलोंका नायक^० । गया-काश्यप जटिल दोसौ जटिलोंका नायक^० । तब भगवान्ने उर्रेल-काश्यप जटिलके आश्रमपर पहुँच, उर्रेल काश्यप जटिलसे बोले—“ हे काश्यप ! यदि तुझे भारी न हो, तो मैं एकांत (तेरी) अग्निशालामें वास करूँ ।”

“ महाश्रमण ! मुझे भारी नहीं है (लेकिन), यहाँ एक बटाही चंड, दिव्य शक्तिधारी, आशी-विप = घोर-विप नागराज है । वह तुम्हें हानि न पहुँचाये ।”

दूसरी बारभी भगवान्ने उर्रेल-काश्यप जटिलको कहा—“ ।”

तीसरी बारभी भगवान्ने उर्रेल काश्यप जटिलको कहा—“ ।”

“ काश्यप ! नाग मुझे हानि न पहुँचायेगा, तू मुझे अग्निशालाकी स्वोक्ति दे दे ।”

“ महाधर्मण ! सुप्तसे विहार करो ।”

तब भगवान् अग्निशालामें प्रविष्टहो वृज बिजा, आसन बाँध, शरीरको सीधारल, स्मृतिको धिरकर बैठ गये । भगवान्को भीतर आया दप, नाग मुद्दहो धूआँ देने लगा । भगवान्के

१ छुट देखो

२ उस समयके ब्राह्मणोंका एक सम्प्रदाय, जो ग्रंथचारी, जटाधारी, अग्निहोत्री होते थे ।

काश्यप बन्धुश्रोता सन्यास ।

(मनमें) हुआ—“क्यों न मैं इस नागके छाल, चर्म, मांस, नस, हड्डी, मज्जाको बिना हानि पहुँचाये, (अपने) तेजसे (इसका) तेजको खींच लू ।” फिर भगवान्‌भी वैसेही योगश्लेसे धूँआँ देने लगे । तब वह नाग कोपको सहन न कर प्रज्वलित हो उठा । भगवान्‌भी तेज महाभुत (= धातु) में समाधिस्थ हो प्रज्वलित हो उठे । उन दोनोंके ज्योतिष्क होनेसे, वह अग्निशाला जलती हुई = प्रज्वलितभी जान पड़ने लगी । तब वह जटिल अग्निशालाको चारों ओरसे घेरे, या कहने लगे—“ हाय । परम सुन्दर महाश्रमण नागद्वारा मारा जा रहा है ।” भगवान्‌ने उस रातके घोंत जानेपर, उस नागके छाल, चर्म, मांस, नस, हड्डी, मज्जाको बिना हानि पहुँचाये, (अपने) तेजसे (उसका) तेज खींचकर, पात्रमें रख (उसे) उखेल-काश्यप जटिल को दिखाया—“ हे काश्यप । यह तेरा नाग है, (अपने) तेजमे (मेने) इसका तेज खींच लिया है । तब उखेल-काश्यप जटिलके (मनमें) हुआ—महादिव्यशक्तिधारा = महा अनुभाव वाला महाश्रमण है, जिसने कि दिव्यशक्ति-संपन्न आशी विप = धीर विप चण्ड नागराजका तेज (अपने) तेजसे खींच लिया । भगवान्‌के इस चमत्कार (= शक्ति प्रति हार्य) से उखेल-काश्यप जटिलने भगवान्‌को कहा— “ महाश्रमण । यहीं विहार लगे, मैं नित्य भोजनसे मुन्हारी (सेवा करूँगा) ।”

भगवान् उखेल काश्यप जटिलक आश्रमके समीप घर्ती एक बर खण्डमें, उखेल काश्यपका दिया भोजन ग्रहण करते हुए, विहार करने लगे ।

उस समय उखेल काश्यप जटिलको एक महायज्ञ आ उपस्थित हुआ । जिसमें सारेके सारे अंग मगध निवासी बहुतांश स्थाय भोज्य लेकर आनेवाले थे । तब उखेल काश्यपके चित्तमें (विचार) हुआ—“इस समय मेरा महायज्ञ आ उपस्थित हुआ है, सारे अंग-मगधवाले बहुतांश स्थाय भोज्य लेकर आयेगे । यदि महाश्रमणने जन समुदायमें चमत्कार दिखलाया, तो महाश्रमणका लाभ और सत्कार बढ़ेगा मेरा लाभ, सत्कार घटगा । अच्छा होता यदि महाश्रमण कल (से) न आता ।” भगवान्‌ने उखेल-काश्यप जटिलक चित्तका वितर्क (अपने) चित्तमें जान, उत्तर कुछ जा, वहाँसे भिक्षाग्र ले अनन्तर सरोवर (वृह) पर भोजनकर, यहीं जिनको विहार किया । उखेल-काश्यप जटिल उस रातने घोंत जानेपर, भगवान्‌के पासपा बोला—“महाश्रमण । (भोजनका) समय है, आत तय्यार होगया । महाश्रमण । कल क्यों नहीं आये ? हमलोग आपको याद करतेथे—क्यों नहीं आये ? आपके पास भोज्यका भाग रहता है ।”

“काश्यप । क्यों ? क्या तेरे मनमे (कल) यह न हुआ था, कि इस समय मेरा महायज्ञ आ उपस्थित हुआ है ० महाश्रमणका लाभसत्कार बढ़ेगा ० ? हमीलिये काश्यप । तब चित्तके वितर्कको (अपने) चित्तमें जान, मैं उत्तर कुछ जा, अनन्तर सरोवर पर ० यहीं दिनको विहार किया ।” तब उखेल काश्यप जटिलने हुआ—महाश्रमण महानुभाव दिव्य शक्तिधारी है, जोकि (अपने) चित्तसे (दूसरका) चित्त जाननेता है । तोभी यह (क्या) महत् नहीं है, जैसा कि मैं ।”

तब भगवान्ने उखेल-काश्यपका भोजन ग्रहणकर उम्मी वन खंडमें (जा) विहार किया ।

एक समय भगवान्को पासुवृ (= पुराने चीथड़े) प्राप्तहुये । भगवान्के दिलभ हुआ,—“म पासु वृत्को कहां धोऊँ ?” तब देवोष इन्द्र शम्भने, भगवान्के चित्तकी बातजान हाथसे पुष्करिणी ग्योदकर, भगवान्को कहा—“भन्ते । भगवान् ! (यहां) पासुवृत् धोये” । तब भगवान्को हुआ—“म पासुवृत्को कहां उपटूँ (= पीटूँ)” • इन्द्रने (यहां) बड़ीभारी शिला ढालदी । तब भगवान्को हुआ—“म किम्का आलम्बने (नीचे) उतरूँ ?” इन्द्रने शाखा लटका दी । म पासुवृत्को को फटा पैन्नाऊँ ? इन्द्रने एक बड़ीभारी शारी ढालदी । उस रातके योत्तनानेपर, उखेल काश्यप जटिलने, जहां भगवान् थे, वहां पहुँच, भगवान्ने कहा—“महाश्रमण ! (भोजनका) समय है, भात तय्यार होगया है । महाश्रमण ! यह क्या ? यह पुष्करिणी पहिले यहाँ न थी ! । पहिले यह शिलायें (भी) यहाँ नहीं , यहापर शिलायें ढाली किम्ने ? इस कुरुध (वृक्ष) की शाखा (भी) पहिले लटकी नहीं, सो यह लटकी है ।”

“सुप्ते काश्यप ! पासुवृत् प्राप्त हुआ० ” उखेल-काश्यप जटिलके (मनमें) हुआ —“महाश्रमण दिव्य शक्ति धारी है । महा अनुभाव वाला है । तोभी यह वैसा अर्हत् नहीं है, जैसा कि मे’ । भगवान्ने उखेल काश्यपका भोजन ग्रहणकर, उम्मी वन खंडमें विहार किया ।

एक समय बड़ाभारी अकालमेघ गरसा । जलकी बड़ी बाढ़ आगई । जिस प्रदेशमें भगवान् विहार करतेथे, वह पानीसे डूबगया । तब भगवान्को हुआ—“क्योंन मैं चारोभारसे पानी हटाकर, बीचमें धूलियुक्त भूमिपर चंद्रमण करूँ (टहलूँ) ?” भगवान् पानी हटाकर धूलि-युक्त भूमिपर टहलने लगे । उखेल-काश्यप जटिल—“अरे । महाश्रमण जलमें डूब ॥ गया हो ॥” (यह सोच) नाव ले, उटुतसे जटिलके साथ जिस प्रदेशमें भगवान् विहार करते थे, वहा गया । (उसने) भगवान्को धूलि युक्त भूमिपर टहलते देखा । देखकर भगवान्ने बोला—“महाश्रमण यह तुमहो ?” “यह मैं हूँ” वह भगवान् आकाशमें उड़, नावमें आकर खड़े होगये । तब उखेल काश्यप जटिलको हुआ—“महाश्रमण दिव्य शक्ति धारी है हो । किंतु यह वैसा अर्हत् नहीं है, जैसाकि य” । तब भगवान्को (विचार) हुआ “चिरकाल तक इस मूर्ख (= मोघपुरष) को यह (विचार) होता रहेगा—कि महाश्रमण दिव्य शक्ति धारी है , किन्तु यह वैसा अर्हत् नहीं है, जैसा कि मे । क्यों न मैं इस जटिलको संज्ञन करूँ ? ।” तब भगवान्ने उखेल-काश्यप जटिलको कहा—“काश्यप ! नतो तू अर्हत् है, न अर्हत्के मार्गपर आरूढ । वह सूत्रभी तुझे नहीं है, जिससे अर्हत् होये, या अर्हत्के मार्गपर आरूढ होये ।” उखेल काश्यप जटिल भगवान्के पैरो पर शिर रख, भगवान्से बोला—“भन्ते । भगवान्के पाससे सुत्रे प्रव्रज्या मिटे, उपसम्पदा मिले”

काश्यप वधुश्रो का संन्यास ।

“काश्यप ! तू पाचसौ जटिलोंका नायक है । उनको भी देख ” । तब उखले काश्यप जटिलने जाकर, उन जटिलोंसे कहा—“मैं महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य ग्रहण करना चाहता हूँ, तुमलोगो की जो इच्छा हो सो करो”

“देखते ! हम महाश्रमणसे प्रमत्त हैं, यदि आप महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य चरण करेंगे, (तो) हम सभी महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य चरण करेंगे” ।

यह सभी जटिल केश सामग्री, जटा-सामग्री, श्वासीकी, घीकी सामग्री, अग्निहोत्र सामग्री (आदि अपने सामानको) जलमें प्रवाहितकर, भगवान्के पास गये । जाकर भगवान्के धाणो पर शिर झुका बोले—“ भन्ते ! हम भगवान्के पास प्रमज्जा पावें, उपसम्पन्न पावें ।”

“ भिक्षुओ ! आओ धर्म सु अख्यात है, मली प्रकार दु खके अन्त करनेके लिये ब्रह्मचर्य पालन करो ।”

यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई ।

नदी काश्यप जटिलने केश सामग्री, जटा-सामग्री, श्वासीकी घीकी सामग्री, अग्निहोत्र सामग्री नदीमें बहती हुई देखीं । देखकर बसको हुआ—“अरे ! मेरे भाईको कुछ अनिष्ट तो नहीं हुआ है,” (और) जटिलोंको—“जाओ, मेरे भाईको देखो तो”, (धीरे) स्वयंभी तीनसौ जटिलोंको साथले, जहाँ आयुष्मान् उखले काश्यप थे, बहा गया, और जाकर बोला—
“ काश्यप ! क्या यह अच्छा है ?”

“ हाँ, आबुस ! यह अच्छा है ।”

तब वह जटिलभी केश सामग्री जलमें प्रवाहितकर, जहाँ भगवान्थे वहाँ गये । जाकर बोले—“ पावें हम भन्ते । उपसम्पदा ।” यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई ।

गया-काश्यप जटिलने केश-सामग्री नदीमें बहती देखीं । “काश्यप ! क्या यह अच्छा है ?” “हा ! आबुस ! यह अच्छा है ।” यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई ।

“ तब भगवान् उखेलामें इच्छानुसार विहारकर, सभी एकमहल पुराने जटिल भिक्षुओं के महाभिक्षु संघके साथ गया में गये ।

ब्राह्म-परियाय-सुत । राजगृहमें विवसारकी दीक्षा । (नि. पू. ४७०)

१ गेया मने सुना—एक समय भगवान् एक हजार भिक्षुओंके साथ गयामें गया मीमपर विहार करते थे । वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—“ भिक्षुओ ! मनो जल रहा है । क्या जल रहा है ? चक्षु जल रही, रूप जल रहा है, चक्षुका विज्ञान जल रहा है, चक्षुका सस्पर्श जल रहा है, और चक्षुके संस्पर्शके कारण जो वेदनायें—सुख, दुःख, न-सुख न-दुःख—उत्पन्न होती हैं, वह भी जल रही है ?—राग अग्निसे, द्वेषअग्निसे, मोह अग्निसे जल रही हैं । जन्म, जरासे, और मरणके योगसे, रोने-पीटनेसे, हृत्ससे, दुःमनतासे, परेशानीसे जल रही हैं—यह मैं कहता हूँ ।

श्रोत्र० । शब्द० । श्रोत्र विज्ञान० । श्रोत्रका संस्पर्श० । श्रोत्रके संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदनायें० । घ्राण (= नासिका-इन्द्रिय) गंध घ्राण विज्ञान जल रहे हैं । घ्राणका संस्पर्श जल रहा है यह मैं कहता हूँ । जिह्वा० । रस० । जिह्वा-विज्ञान० । जिह्वा-संस्पर्श० । जिह्वा-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदनायें० जल रही हैं । यह मैं कहता हूँ । काया०-स्प्रष्टव्य० काय विज्ञान० काय-सस्पर्श काय-संस्पर्शसे (उत्पन्न) वेदनायें० जल रही हैं । मन०-धर्म० मनो-विज्ञान० मन-संस्पर्श मन-संस्पर्शसे (उत्पन्न) वेदनायें जल रही हैं । किससे जल रही है । राग-अग्निसे द्वेष अग्निसे मोह अग्निसे जल रही हैं । जन्म, जरा और मरणके योगसे जल रही हैं, रोने पीटनेसे दुःखसे दुर्मनता से जल रही हैं—यह मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! ऐसा देख, (धर्मको) सुननेवाला आर्यश्रावक चक्षुसे निर्वेद प्राप्त होता है, रूपसे निर्वेद प्राप्त होता है, चक्षु विज्ञानसे निर्वेद प्राप्त होता है, चक्षु-संस्पर्शसे निर्वेद-प्राप्त होता है, चक्षु संस्पर्शसे निर्वेद प्राप्त होता है, चक्षु संस्पर्शके कारण जो यह उत्पन्न होती है वेदना सुख, दुःख, नसुख—नदुःख—उससे भी निर्वेद-प्राप्त होता है ।

श्रोत्र० । शब्द० । श्रोत्र विज्ञान० । श्रोत्र-संस्पर्श० । श्रोत्र-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना० । घ्राण० । गंध० । घ्राण विज्ञान० । घ्राण-संस्पर्श० । घ्राण-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना० । जिह्वा० । रस० । जिह्वा विज्ञान० । जिह्वा-संस्पर्श० । जिह्वा-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना० । काय० । स्प्रष्टव्य० । काय-विज्ञान० । काय संस्पर्श० । काय संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना० ।

मासे निर्वेद-प्राप्त होता है । धर्मसे निर्वेद प्राप्त होता है । मनो विज्ञानसे निर्वेद-प्राप्त होता है । मन-संस्पर्शसे निर्वेद-प्राप्त होता है । मन-संस्पर्शके कारण जो यह वेदना—सुख, दुःख, नसुख—नदुःख उत्पन्न होती है उससे भी निर्वेद प्राप्त होता है ।

१ संयुक्ता नि ४३३६ । महावर्ग १ २ गयासीस गयाका ब्राह्मयोनि पर्वत है । ३ इन्द्रिय और विषयके सम्बन्ध से जो ज्ञान होता है । ४ स्रोतआपन्न, सद्बुद्धागामी, अनागामी, अर्हत् । ५ वैराग्यकी पूर्वा अवस्था । ६ शीत, उष्ण आदि ।

विस्तारकी दीक्षा ।

निपट प्राप्त हो विरक्त होता है । विरक्त होनेसे विमुक्त होता है । विमुक्त होनेपर “मे विमुक्त हूँ” यह पान होता है । वह जानता है—“जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, कर्तव्य कर चुका, और यहाँ कुछ (बाकी) नहीं है ।” इस व्याकरण (= व्याख्यान) के कहे जाते चक्र उन हजार भिक्षुओंके चित्त अलस हो आसक्तोसे छूट गये ।

‘भगवान् गयासीसमें इच्छानुसार विहारकर, (‘राजा विस्तारको दी प्रतिज्ञा स्मरणकर) सभी एक हजार पुराने जटिल भिक्षुओंके महान् भिक्षु सघके साथ, चारिकाके लिये चल दिये । भगवान् क्रमशः चारिका करते, राज गृह पहुँचे । वहाँ भगवान् राजगृहमें ‘लट्टि (यट्टि) घनके ‘सुप्रतिष्ठित’ चैत्यमें ठहरे ।

मगध राज श्रेणिक विषयमाने (अपने मालीके मुँहसे) सुना, कि काश्यपकुलसे प्रसजित शाक्यपुत्र श्रमण गोतम राजगृहमें पहुँच गये हैं । राजगृहमें लट्टि (= यट्टि) उनके ‘सुप्रतिष्ठित’ चैत्यमें विहार कर रहे हैं । उन भगवान् गोतमकी णसी मगल कीर्ति करी हुई है—“वह भगवान् अर्हत् हैं, सम्पूर्ण-मुक्त हैं, विद्या और अचरणसे युक्त हैं, सुगत हैं, लोकोंके जानने वाले हैं, उनसे उत्तम कोई नहीं है, ऐसे (वह) पुरवोंके चायुर-सवार हैं, देवताओं और मनुष्योंके शास्ता (= उपदेशक) हैं—(ऐसे वह) उद्ध भगवान् हैं ।” वह ब्रह्मलोक, मारलोक, देवलोक, सहित इत्येक लोक, द्वा-मनुष्य सहित श्रमण ब्राह्मण युक्त (सभी) प्रजाको, स्वयं समग्र = साक्षात्कारकर जनाते हैं । वह आदिमें कल्याण (= फारक), मध्यमें कल्याण (= फारक), अन्तम कल्याण (= फारक) धर्मका, अर्थ-सहित = व्यञ्जन सहित उपदेश करते हैं । वह केवल परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करते हैं । इस प्रकारके अर्हत् लोगोंका दर्शन करना उत्तम है ।”

मगध राज श्रेणिक विषयमार १२ नियुत^१ मगध निवासी ब्राह्मणों और गृहपतियों के साथ जहाँ भगवान्से वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । वह १२ नियुत मगधवासी ब्राह्मण गृहपति भी—कोई भगवान्को अभिवादनकर, कोई भगवान्से कुशल प्रश्न पूछकर, कोई भगवान्की ओर हाथ जोड़कर, कोई भगवान्को नाम गौर सुनकर, कोई कोई कुछ चापहो एक ओर बैठ गये । तब उन १२ नियुत मगधके ब्राह्मणों, गृहपतियों (चित्तमें) होने लगा—

“क्यों जी ! महाश्रमण (गोतम) उरुले काश्यपके पास ब्रह्मचर्य चरण करता है, काश्यप उरुले-काश्यप महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य चरण करता है ?”

तब भगवान्ने उस १२ नियुत मगधवासी ब्राह्मणों गृहपतियोंके चित्तके वितरकों के चित्तसे जाग, आयुमान् उरुले काश्यपको गायामें कहा—

“क्या दक्षक हे उरुले वासी । तप कृत्तोंके उपदेशक ! (तले) आग छोड़ी ? काश्यप । तुमसे यह बात पूछता हूँ, तुम्हारा अग्निहोत्र कैसे छूटा ?”

(काश्यपने कहा)—“रूप, शब्द और रसम कामभोगोंमें स्त्रियोंमें रूपशब्द, और रसम द्रव्य, काम भोगोंमें रूपशब्द और रस काममें यक्ष कहत हैं । वह (रागादि उपधियाँ मल हैं, (मैंने) यह जान लिया, इसलिये मैं ‘हृष्ट और हुतमे विरक्त हुआ ।”

१ महावाग १ २ जानक नि ११ ३ राजगृह नगरके समीपवर्ती जटियाव (लट्टिवन उद्यान) जातक नि ४ १० लाख । ५ किसी कामनामें किया जाने वाला यज्ञ ।

६ यज्ञ, हवन ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
 ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
 ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

[illegible][illegible][illegible][illegible]

मगध-नाथ के
छत्र, २०१६

३३

सारिपुत्र और मौद्गल्यायनका सन्यास ।

“हेतु (= कारण) से उत्पन्न होनेवाले जितने धर्म (दुःख आदि) हैं, उनका हेतु (= समुद्रय) तयागत बतलाते हैं । उनका जो निरोध है (उसको भी बतलाते हैं), (जो वह समुद्रय, निरोध है) यही दुःख, महाभ्रमणका वाद (= प्रतिपद) है” । तब सारिपुत्र परित्राजकको इस धर्म पर्यायके सुननेसे—“जो कुछ समुद्रय धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है,” यह विरज = विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ ।

तब सारिपुत्र परित्राजक जहाँ भोगगलान परित्राजक था, वहाँ गया । मौद्गल्यायन परित्राजकने दूसरेही सारिपुत्र परित्राजकसे आते देखा । देखकर सारिपुत्र परित्राजकको कहा—“आहुस ! तेरी इन्द्रिया प्रसन्न हैं, तेरे कपि वर्ण परिशुद्ध तथा उज्ज्वल हैं । तूने आहुस ! अमृत तो नहीं पा लिया ?”

“हाँ आहुस ! अमृत पालिया ।”

“आहुस ! कैसे तूने अमृत पाया ?”

“आहुस ! मैंने यहाँ राजगृहमें अश्वजित्मित्रिको अति सुन्दर आलोकन = विलोकनसे मित्राके लिये घूमते देखकर (सोचा) ‘होयमें जो अर्हत् है वह मित्रिके उनमेंसे एक हैं’ । मैंने अश्वजित् को पूछा तुम्हारा शास्ता कौन है । अश्वजितने यह धर्म पर्याय कहा—‘हेतुसे उत्पन्न जितने धर्म हैं, उनका हेतु तयागत कहते हैं । (और) उनका जो निरोध है (उपशान्ति), यही महाभ्रमणका वाद है’ ।”,

तब मौद्गल्यायन परित्राजकको इस धर्म पर्यायके सुननेसे—“जो कुछ समुद्रय धर्म है, वह सब निरोध धर्म है”—यह विमल = विरज धर्म चक्षु उत्पन्न हुआ ।

भोगगलान परित्राजकने सारिपुत्र परित्राजकसे कहा—“चलो चलो आहुस ॥ भगवान् के पास, वह हमारे शास्ता हैं । और यह (जो) बाई सौ परित्राजक हमारे आश्रयसे = हमें देखकर यहाँ विहार करते हैं, उन्हें भी देखलें (और कहें)—जसी तुम लोगोकी रायहो वैसा को—।” तब सारिपुत्र, मौद्गल्यायन जहाँ वह परित्राजक थे वहाँ गये, और जाकर उन परित्राजकोंसे बोले—“आहुसो ! हम भगवान् के पास जाते हैं, वह हमारे शास्ता हैं” ।

“हम आयुष्मानोंके आश्रयसे = आयुष्मानोंको देखकर, यहाँ विहार करते हैं । यदि आयुष्मान् महाभ्रमणके पास प्रक्षवर्ष चरण करेंगे, तो हम सभी महाभ्रमणके पास प्रक्षवर्ष करेंगे ।”

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ मज्जय परित्राजक था, वहाँ गये । जाकर सजय परित्राजकसे बोले—

“आहुस ! हम भगवान् के पास जाते हैं, वह हमारे शास्ता हैं ।”

“वस आहुसो ! मत जाओ । हम तीनों (मिलकर) इस (परित्राजक)—गणकी महन्ताई करेंगे”

सारिपुत्र और मौद्गल्यायनका संन्यास । (वि. पू. ४७०)

१ उम समय संजय (नामक) परिव्राजक राजगृहमें ढाईसौ परिव्राजकोंकी बड़ी जमातक साथ निवास करता था । सारिपुत्र, और मौद्गल्यायन, संजय परिव्राजकने पास ब्रह्मचर्य चला करते थे । उन्होंने (शापसमें) प्रतिष्ठाकी थी—जो पहिले अमृतको प्राप्तकरै, वह दूसरेको बड़े । उस समय आयुष्मान् अश्वजित् पूराइ समय सु आच्छादित (हो), पात्र और चीवरले, अति सुन्दर = प्रतिष्ठात आलोकन = विलोकनके साथ, संकोचन और प्रसारणके साथ, नीची नजर रखते, सधमी ढंगसे, राजगृहमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये । सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजिनको अतिसुन्दर आलोकन = विलोकनके साथ* नीची नजर रखते संधमी ढंगसे राजगृहमें भिक्षाके लिये घूमते देखा । देखकर उनको हुआ—“लोकमें अहत या अहंतके मार्गपर जो आरुढ़ है, यह भिक्षु उनमेंसे एक है । क्यों न मैं इस भिक्षुके पास जा पूछूँ—आहुस ! तुम किमको (गुरु) करके प्रव्रजित हुये हो, कौन तुम्हारा शास्ता (=गुरु) है ?, तुम किसके धर्मका मानते हो ?” फिर सारिपुत्र परिव्राजक (के वित्तमें) हुआ—यह समय इस भिक्षुसे (प्रश्न) पूछनेका नहीं है, यह घर घर भिक्षाके लिये घूम रहा है । क्यों न मैं इस भिक्षुके पीछे होलूँ” ।

आयुष्मान् अश्वजित् राज-गृहमें भिक्षाके लिये घूमकर, भिक्षाको ले चलदिये । तब सारिपुत्र परिव्राजक जहां आयुष्मान् अश्वजित् थे, वहां गया, जाकर आयुष्मान् अश्वजित्के साथ यथायोग्य कुशल प्रश्न पूछ एक ओर खड़ा होगया । खड़े होकर सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्को कहा—“आहुस ! तेरी इन्द्रियां प्रसन्न हैं, तेरे छवि वर्ण परिशुद्ध तथा उज्ज्वल हैं । आहुस ! तुम किमको (गुरु) करके प्रव्रजित हुये हो, तुम्हारा शास्ता (=गुरु) कौन है ?, तुम किसका धर्म मानते हो ?”

“आहुस ! शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य पुत्र (जो) महाश्रमण है, उन्हीं भगवान्को (गुरु) करके मैं प्रव्रजित हुआ । वही भगवान् मेरे शास्ता है । उन्हीं भगवान्का धर्म मैं मानता हूँ” ।

“आयुष्मान्के शास्ता क्या वादी हैं = किम (सिद्धांत) को कहने वाले हैं ?”

“आहुस ! मैं नया हूँ, इस धर्ममें अभी नयाही प्रव्रजित हुआ हूँ, विस्तारसे मैं तुम्हें नहीं बतला सकता । किंतु संक्षेपसे तुम्हें धर्म कहता हूँ ।”

“तब सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्को कहा—“अच्छा आहुस—

अल्प या बहुत कहो, अर्थहीको मुझे बतलाओ ।

अर्थही से मुझे प्रयोजन है, क्या करोगे बहुतसा “व्यञ्जनलेख” ।

तब आयुष्मान् अश्वजित्ने सारिपुत्र परिव्राजकको यह “धर्म-पर्याय कहा—

सारिपुत्र और मौद्गल्यायनका सन्यास ।

“हेतु (= कारण) से उत्पन्न होनेवाले जितने धर्म (दुःख आदि) हैं, उनका हेतु (= समुदय) तथागत बतलाते हैं । उनका जो निरोध है (उसको भी बतलाते हैं), (जो यह समुदय, निरोध है) यही दुःख, महाभ्रमणका वाद (= प्रतिपद) है” । तब सारिपुत्र परित्राजकको इस धर्म पर्यायके सुननेसे—“जो कुछ समुदय धर्म है, वह सब निरोध धर्म है,” यह विरज = विमल धर्मच्छु उत्पन्न हुआ ।

तब सारिपुत्र परित्राजक जहाँ मोग्गलान परित्राजक था, वहाँ गया । मौद्गल्यायन परित्राजकने दूसरेही सारिपुत्र परित्राजकको आते देखा । देखकर सारिपुत्र परित्राजकको कहा—“आहुस ! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, तेरे ण्वि वर्ण परिशुद्ध तथा उज्ज्वल हैं । तूने आहुस ! अमृत तो नहीं पा लिया ?”

“हां आहुस ! अमृत पालिया ।”

“आहुस ! कैसे तूने अमृत पाया ?”

“आहुस ! मैंने यहाँ राजगृहमें अभजितभिक्षुको अति सुन्दर आलोकन = विलोकनसे भिक्षाके लिये घूमते देखकर (सोचा) ‘शोकमें जो अर्हत्व है यह भिक्षु उनमसे एक है’ । मैंने अभजित को पूछा तुम्हारा शास्ता कौन है । अभजितने यह धर्म पर्याय कहा—‘हेतु से उत्पन्न जितने धर्म हैं, उनका हेतु तथागत कहते हैं । (और) उनका जो निरोध है (उसको भी), यही महाभ्रमणका वाद है ।’

तब मौद्गल्यायन परित्राजकको इस धर्म पर्यायके सुननेसे—‘जो कुछ समुदय धर्म है, वह सब निरोध धर्म है’—यह विमल = विरज धर्म चक्षु उत्पन्न हुआ ।

मोग्गलान परित्राजकने सारिपुत्र परित्राजकसे कहा—“चलो चलें आहुस ॥ भगवान् के पास, वह हमारे शास्ता हैं । और वह (जो) दाईं सो परित्राजक हमारे आश्रयमें = हमें देखकर यहाँ विहार करते हैं, उन्हें भी देखलें (और कहें)—जैसा तुम लोगोनी रायहो वैसा करो—” तब सारिपुत्र, मौद्गल्यायन जहाँ वह परित्राजक था वहाँ गये, और जाकर उन परित्राजकोंसे बोले—“आहुसो ! हम भगवान् के पास जाते हैं, वह हमारा शास्ता हैं” ।

“हम आयुष्मानोंके आश्रयसे = आयुष्मानोंको देखकर, यहाँ विहार करते हैं । यदि आयुष्मान् महाभ्रमणके पास ब्रह्मचर्य चरण करेंगे, तो हम सभी महाभ्रमणके पास ब्रह्मचर्य करेंगे ।”

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ मज्ज परित्राजक था, वहाँ गये । जाकर मज्ज परित्राजकसे बोले—

“आहुस । हम भगवान् के पास जाते हैं, वह हमारे शास्ता हैं ।”

“यस आहुसो ! मत जाओ । हम तीनों (मित्र) इस (परित्राजक)—गणकी महन्ताई करेंगे”

१ ये धम्मा हेतुप्पमवा, हेतु तेमं तथागतो जाह । तेमं ॥ निरोधो ण्वं वानी, महसमनो ॥

“दूसरी बारभी सारिपुत्र और मौद्गल्यायनने संजय परिभ्राजकको कहा—“ हम भगवान्‌के पास जाते हैं । ”

“...मत जाओ । हम तीनों (मिलकर) इस गणकी महन्ताई करेंगे । ”
तीसरी बार भी ।

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन उन ढाई सौ परिभ्राजकको ले, जहाँ वेणुवन था, वहाँ चले गये । संजय परिभ्राजकको वहाँ मुँहसे गर्म खून निकल आया । भगवान्‌ने दूरसे ही सारिपुत्र और मौद्गल्यायनको आते हुये देख मिश्रुओको संबोधित किया—

“ मिश्रुओ ! यह दो मित्र कोलित (=मौद्गल्यायन) और उपतिष्य (=सारिपुत्र) आ रहे हैं । यह मेरे अग्रश्रावक-युगल होंगे, मद्र-युगल होंगे । ”

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ भगवान्‌ थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌के चरणोंमें शिर झुकाकर बोले—

“ भन्ते । हम भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पावें, उपसम्पदा पावें । ”

भगवान्‌ ने कहा—“ मिश्रुओ आओ धर्म सु-आख्यात है । अच्छी प्रकार दु क्षत्रियके लिये ब्रह्मचर्य-चाण करो । ”

यही उन आयुष्मानोकी उपसम्पदा हुई ।

काश्यप-सन्यास (वि. पू. ४७०)

‘यह पिप्ली नामका’ माणवरु मगध दशके महावित्थ (= महातीर्थ) नामक ब्राह्मणोंके गाँवमें कपिलब्राह्मणजी प्रधान भाषाके गभसे उत्पन्न हुआ । भद्रा कपिलायनी मद्रदेशके सागल नगरमें कौशिक-गोत्र ब्राह्मणोंके प्रमुख भाषाके गभसे उत्पन्न हुई । प्रमते वदते २ पिप्ली माणवरु धीम (धर्म) और भद्रा कपिलायनी सोलह (चर्च) की हुई । माता-पिताने पुत्रको देख्य—“ तात ! तू वय प्राप्त (= युग) है, कुछ ईश्वरों कायम रखना चाहिये ”—कह बहुत ही जोर दिया । माणवरुने कहा—“ मेरे कानमें ऐसी बात मत कहिये । जब तक आपलोग हैं, तब तक (आपलोगोंकी) सेवा करूँगा । आपलोगोंके बाद निकलकर प्रमजित होऊँगा । ” वह कुछ दिन गृह पर फिर गेले, पर उसने ‘नहीं’ किया । फिर कहा, फिर नहीं (= इन्कार) किया । उसने बाद माता बराबर कहतीही रहती । माणवरुने ‘माताको सचेत कर दूँ’ विचार, हजारलाल-सोनेके निम्न (= अशर्फी) दमोनासे एक स्त्री मूर्ति धनराकर, उसकी सफाई धुलाई आदि समाप्तहो जानेपर, उसे लाल पल्ल पहना, रंग बिरंगे फूलों, और नाना प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत करा, माताको बुलाकर—“ माँ ! इस प्रकारका रूप पा, गृहस्थमें रहूँगा ” कहा । ब्राह्मणी पंडिता थी, उसने सोचा—“ मेरा पुत्र पुण्यवान् है, (पूर्वजन्म) दान दिये है । पुण्य अकेले ही नहीं किये होंगे । अवश्य इसके साथ पुण्य करनेवाली (कोई) सुवर्ण-वणा (स्त्री) भी रही होगी । ” (और) आठ ब्राह्मणोंको बुलावा (उनसी) सब सुराद पूरीकर, सुवर्ण प्रतिमाको रखपर स्थावा—“ तातो ! जाओ जहाँ कहीं जाति गोत्र और भोगमें हमारा समान, ऐसी (सुवर्ण-वर्णा) कन्या इसना, इसी सुवर्ण प्रतिमाको (बिनाहके) परके पननी जमानत रखकर, लौट आना ” कह भेज दिया ।

वह “ यह हमारा काम है, ” कह, निकलकर, ‘कहाँ जाये’ सोच, (फिर) “ मद्र देश ब्रियोंका आगार (= पताना, खान) है, मद्र-दशको चर्च (विचार), मद्र-दशके सागल नगरमें गये । वहाँ उस सुवर्ण प्रतिमाको नहानेक घाँवर रख, एक ओर धैठ गये । तब भद्राजी दाई, भद्राको नहलाकर, अलंकृतकर रत्नमहल (धीगर्भ) के भीतर बसाकर, स्वयं नहानेक लिय पाणीके घाँवर आई । वहाँ उस सुवर्ण प्रतिमाको देख्य—“ यह कन्या विनय शून्य है, (जो) कहा आकर खड़ी है ” (सोच) पीठपर (थपड़) मारा । तब उसे पता लगा कि यह सुवर्ण प्रतिमा है । “ मने समया (या) मेरी अप्य-धीता (= स्वामि पुत्री) है, यह तो मेरी अप्य धीताकी बछ ले चढने वाली (लौंग) ऐसी भी नहीं है ” वह बोली । तब उन मनुष्योंने उसे चारों ओरसे घेरकर पूछा “ क्या तेरी स्वामि पुत्री ऐसे रूपकी है ? ”

“ ऐसे रूपकी ? मेरी अप्य (= आर्या) इस सुवर्ण प्रतिमासे सौ-गुना, हजार-गुना, लाख-गुना, (अधिक) सुन्दर है । बारह हाथके घरम बँदी होनेपरहो दीपकका काम नहीं, शरीर की प्रभासे अन्धकार दूर हो जाता है । ”

१ धर्माया-अट्ठक्या २० । मंथु नि १ ट्ठक्या १० १११ । अंगु नि अ क ११४ ।
२ ब्राह्मण विद्यार्थी । ३ शरीर और धनायके धीचका प्रदत्त मद्रदेश है । ४ स्यालकोट (पंजाब) ।

“तो आ फिर” कह उस कुब्जाको ले, सुवर्ण प्रतिमाको रथपर रग, कौशिक-गोत्र (प्राक्ष्ण) के द्वारपर जा, आगमनकी सूचनादी । प्राक्ष्णने सत्कारकर पूछा—“कहाँ आये हो ?”

“मगध देशमें महातित्थ ग्रामके कपिल प्राक्ष्णके घरसे,—हम उद्देश्यसे (आये हैं)”

“अच्छा तातो । वह प्राक्ष्ण गोत्र, जाति, विभवमें हमारे समान है, मे कन्या प्रदान करूँगा” यह, (उमने) भेंट स्वीकारकी ।

उन्होंने कपिल प्राक्ष्णको दासन (=संदेशपत्र) भेजा—“कन्या मिल गई, करना सो करो ।”

उस पत्रको सुन, उन्होंने पिप्पली माणवक को सूचित किया । । माणवकने—“मैंने सोचा था, कि न मिलेगी, (और) यह कह रहे हैं कि मिल गई, कुछे नहीं चाहिये कहकर पत्र भेजना चाहिये” (सोच) एकातमें बठ पत्र लिखा—“भद्रा ! अपने जाति, गोत्र, भोगके समान गृहवास पावो । मैं निकलकर प्रयत्नित होऊँगा, पीछे दुःखी न होना ।” भद्राने भी कुछे अमुक-नो देना चाहते हैं, सुनकर, ‘चिट्ठी भेजनी चाहिये’ विचार, एकातमें बठ पत्र लिखा—‘आर्य पुत्र ! अपने जाति, गोत्र भोगके समान गृहवास पावो, मैं निकलकर प्रयत्नित होऊँगी, पीछे अफसोस न करना पड़े ।’ दोनों पत्र (वाहक) रास्तेमें मिले ।

“यह किमका पत्र है ?”

“पिप्पली माणवकने भद्राके लिये भेजा है ।”

“यह किमका ?”

“भद्राने पिप्पली माणवकके लिये भेजा है” यह कहने पर “इन दोनोंको परो ।” “देखो लड़कोंके कामको” (कह, पत्रवाहकने पत्र) फाड़कर जगलमें फेंक, उसी प्रकार के दूसरे पत्र लिखकर पहुँचा दिये । कुमार और कुमारीका अनुकूल पत्र लोगोकी प्रसन्नता की बात ठहरी । इस प्रकार अतिच्छा रखतेमी दोनोंका समागम हुआ ।

उसी दिन पिप्पली माणवकने एक फूल-माला गुँथवाई, और भद्राने भी (एक) । उन (मालाओं) को पहनके बीचमें रख दिया । व्यास उनके दोनों सोने गये । माणवक दाहिनी ओरसे, और भद्रा बाई ओरसे शयनारूढ़ हुई । वह एक दूसरेके शरीर स्पर्शके भयसे रातको बिना निद्राकेही निताते थे । दिनको हँसना तरुमी न होता था । इस प्रकार सासारिक सुखमें बिना लिप्त हुये, जब तक माता-पिता जीवित रहे, तब तक कुटुम्बका रचाल न किया, उनके मरनेपर विचार करने लगे । माणवकके पास बड़ी भारी सम्पत्ति थी । शरीरको उन्नतकर पैर देनेका चूर्णही, मगधकी नालीसे बारह नालो भर होता था । तालेके भीतर साठ बड़े चहबच्चे (=तड़ाक), बारह योजन तरु (पैले) रेत, अनुराधपुर जैसे १४ दासोके गाँव, चौदह हाथियोंके झुण्ड, चौदह घोडोंके झुण्ड और चौदह रथोंके झुण्ड थे । उसने एक दिन अलंकृत घोड़ेपर चढ़, लोगोसे घिरे रेतपर जा, खेतकी मंड पर खड़े (हो), हलो द्वारा विदारित स्थानोंसे,

काश्यप-सन्ध्यास ।

कौन आदि विद्विषोको (वीड़े कैलुये)“प्राणियोंका निहालकर खाते देखकर, पूडा-“ताता । यह क्या खाते हैं ?”

“आर्ये ! केतुओको”

“इनका किया पाप किसको लौगा ?”,

“आर्ये ! तुम्हें”

उमने सोचा—“यदि इनका किया पाप सुखे होता है, तो सत्ताली करोड़ धन मेरा क्या करेगा ? बारह योजनकी सेतो क्या (करेगा) ? तालेमें बन्द चढबच्च क्या (करेगा) ? चौदह दान ग्राम क्या (करेगा) ? यह सब भद्रा कापिलायनीको सपुर्दकर, निकरकर प्रमजित होजाई ।”

भद्रा कापिलायनी भी उस समय हथेलीके भीतर तिलके तीन घड़ोंको फेन्वाकर, दाइ योक साथ घेडी, तिलके कीड़ोको प्याये जाते देख—“अम्म । यह क्या खाते हैं ?”

“आर्ये ! प्राणियोंको”

‘पाप किमरो होगा ?’

“तुम्हींको आर्ये ।”

उमने सोचा—“सुखे तो तिल चार हाथ बख और १ नालीभर भात चाहिये । यदि इन सबका किया पाप सुखेही होता है, तो हजार जन्ममें भी शिर भँवरसे ऊपर नहीं किया जासकता । आर्ये पुत्रके आतेही (यह) सभी उनको सपुर्द कर, निकर कर प्रमजित होऊँगी ।”

माणवक आका नहाकर प्रासादपर चढ, बहुमूल्य पलंगपर बठा । तब उसके लिये चक्रवर्तीके हायक भोजन सजाया गया । दोनो भोजनकर, परिजनोके चने जानेपर, प्कान्तमें अनुरूल स्थानमें बने । तब माणवकने भद्राको कहा—

“भद्रे ! इन घामें, आतेवक्त कितना धन साथ लाईथी ?”

“पचपन हजार गाड़ी, आर्ये ।”

“यह सब, और जो इस घरमें सत्ताली करोड़, (तथा) तालेमें बन्द साठ बढब-चे आदि सम्पत्ति है, यह सब तुम्हेंही सपुर्द काता हूँ ।”

“और तुम कहाँ (जाते हो) आर्ये ?”

‘मं प्रमजित होऊँगा”

“आर्ये । मं भी तुम्हारे ही आनेकी प्रताशामें बेडी थी, मैं भी प्रमजित होऊँगी” ।

वह—“हमारे सोनो भव (= लोक) जलती हुई पूरकी ओपहीके सदस मालूम पड़ते हैं, हम प्रमजित होवेंगा” विचार, बाजार से खर, आर मिट्टीका (मिक्षा-) पात्र मंगवा, ण्ठ दूसरेके बेसोको बालक—“संसार मं जो अहं व है, उंहींके उदेश्यसे हमारी यह प्रमज्या है” कह, प्रमजित हो, झोलीमें पात्र रखकर बेसेले रटफा, भहलसे उतरे । घरमें दासो या कम करोंमें से कियीने भी न जाना ।

तब यह ब्राह्मण ग्रामसे निकल दासोंके ग्रामके द्वारसे जाने लगे । आकार प्रकारसे दास-ग्राम वासिधोने उन्हें पहिचाना । वह रोते हुये पेशोंमें गिरकर बोले—

“आर्य ! हमको क्यों अनाथ बना रहे हो ?”

“भणै । हम तीनों भगवत्की जलती धूमकी झोपड़ीसा समझ प्रव्रजित हुये हैं, यदि तुममेंसे एक एकको गृध्र २ दासतामें मुक्त करें, तो सौ वर्षमें भी न होमरंगा । तुम्हीं अपने आप शिराको धोकर दासता मुक्त हो जाओ ।” यह कह उन्हें रोते छोड़ चले गये ।

आगे २ चलते स्थविरने पीछे धूमकर देखा और सोचा—“इस मारे जन्मवृद्धिपत्र मूल्यकी खी (हस) भद्रा कापिलायनीको मेरे पीछे आते देख, हो सकना है, कोई सोचे—‘यह प्रव्रजित होकर भी अलग नहीं हो सकते । अनुचित कर रहे हैं ।’ कोई पापसे मन बिगाड़ नरक-गामी भी हो सकता है । (इसलिये) इसे छोड़कर (हाँ) मुझे जाना योग्य है । ” वह सामने जाकर रास्तेको दो तरफ फर्का देख, उसपर चढ़े हो गये । भद्रा भी जाकर धन्यना कर खड़ा होगई । तब उसको बोले—

“भद्रे ! तुझ खीको मेरे पीछे आते देख—‘यह प्रव्रजित होकर भी अलग नहीं हो सकते’—यह सोच लोग हमारे विषयमें दूषित-चित्त हो, नरक-गामी बन सकते हैं । (अतः) इन दो रास्तेमेंसे एक तू परकृष्ट ले, (और) एक मे परकृष्ट लेता हूँ । ”

“हाँ । आर्य ! प्रव्रजिताके लिये खीजन यावक होते हैं । (लोग) हमारेमें दोष देखेंगे, आप एक रास्ता परकृष्ट (मैं दक्षता) हम दोनों अलग हो जायें ” (कह), तीनवार प्रदक्षिणा कर चार स्थानोंमें पांच-अंगोंसे धन्यना कर, उस नलोंके योगसे समुज्ज्वल अजलीको जोड़, “लाखों कल्प कालसे चला आया समय, आज दृष्टेया ” कह, “तुम दक्षिण-जातिके हो, इसलिये तुम्हारा मार्ग दक्षिणका है, हम क्षिया वाम जातिकी हैं इसलिये हमारा मार्ग वायव्यका है ” कह धन्यना कर अपना मार्ग लिया ।

✽

✽

✽

✽

सम्पत् सत्रुद्धने, णेणुवन महाविहारकी गंधकुटीमें धरे हुये (ध्यानमें देखा)—पिप्पली माणवक और भद्रा कापिलायनी अपार संपत्ति छोड़ प्रव्रजित हुए ह । । मुझे भी इनका साथ करना चाहिये (सोच), गंधकुटीसे निकल, रथमें पादवीरर ले, अस्सी महा स्थविरोंमेंसे किसीको भी बिना कहे, तीन गव्यूति (तीन योजन) मार्ग अग्रगामी करके, राजगृह और नालन्दाके बीच “बहु पुत्रक” नामक बगदके वृक्षके नीचे आसनमार कर बैठ गये । । महा काश्यप ने—यह हमारे शास्ता होग, इन्हींको उद्देश कर हम प्रव्रजित हुए—ऐसा सोच, दृष्टान्तके स्थानसे (ही) झुके-झुके जाकर तीन स्थानोंमें धन्यना कर “भगवान् मेरे शास्ता (= गुरु) हैं, मैं आपका श्रावक (= शिष्य) हूँ ” कहा । । तब भगवान् ने उनको तीन उपदेश कर उपसंपदा दी (और उपसंपदा) देकर “बहुपुत्रक” बगदके नीचेसे निकल स्थविरको अनुचर-धमण बना रास्ता पकड़ा । शास्ताका शरीर महापुरुषोंके बत्तीस लक्षणोंसे चित्रित था, और महाकाश्यपका शरीर महापुरुषके सात लक्षणोंसे । वह किमी महानावसे बंधे (डोगी)

काश्यप सन्यास ।

के समान, पीछे २ पग ढालते चल रहे थे । शास्ता ने थोड़ा मार्ग चलकर, मार्गसे हट, क्रिमी पेंडूके नीचे बैठने जैसा संकेत किया । स्थविर ने—शास्ता बचना चाहते हैं—जान, अपनी पहनी रेखामी सघाटी चौपतकर जिआ दो । शास्ता उसपर बैठकर हाथसे चौवरको ममलते हुये बोले—

“काश्यप ! तेरी यह रेखामी (= पट पिलोतिका) सघाटी मुलायम है ?”

शास्ता मेरी सघाटीके मुलायमपनको बखान रहे हैं, (शायद) पहिनना चाहते होंगे, ऐसा समझकर बोले—

“ भन्ते ! भगवान् सघाटीको धारण करें । ”

“ काश्यप ! तुम क्या पहनोगे ? ”

“ भन्ते ! यदि आपका वस्त्र मिलेगा, तो पहूँगा । ”

“ काश्यप ! क्या तुम इस पहिनते-पहिनते जीण होगय पामुकल (= गुदड़ी) को धारण कर सकते हो ? यह उद्दामा पहिनते-परिनते जीण हुआ चौवर है । थोड़े गुणोवाला (मनुष्य) इन्ने धारण नहीं कर सकता । समर्थ, धर्मय अनुस्मरणम पक्के, जन्मभर पामुकलिक रहनेवाले हीको (इसे) लेना योग्य है । ”

यह कह रथधिरके भाथ चौवर-परिवर्तन किया । इस प्रकार चौवर परिवर्तन कर, स्थविरके चौवरको भगवान्ने धारण किया, और शास्ताके चौवरको स्थविरने । । स्थविर—‘ बुद्धोका चौवर पालिया, अय इसके थाद सुते क्या करना है ’—इस प्रकारका अभिमान किये बिना ही, बुद्धोंके पाससे तेरह ३अश्वतोथ गुणोंको लेकर, सात ही दिन ३पृथग्जन रहे । आठव दिन प्रतिपदित्-सहित आर्हत्-पञ्चको प्राप्त हो गये ।

कस्सप सुत्त ।

ऐसा मेने सुना—एक समय आयुमान् महाकाश्यप राजगृहके वसुवन कलन्दक निवासे विहार करते थे । उस समय आयुमान् आनन्द बड़े भारी मिश्रपंथके साथ, दक्षिण गिरिमें चारिका कर रहे थे । आयुमान् आनन्दके तीस शिष्य भिक्षु भाव छोड़कर गृहस्थ होगये, उनमें विशेष संख्या सत्तणोंकी थी । तब आयुमान् आनन्द ३क्षिग गिरिमें इच्छानुसार चारिका करने, जहाँ राजगृह वसुवन कलन्दकनिवास था, जहाँपर आयुमान् काश्यप थे, वहाँ आये । आकर आयुमान् काश्यपको अभिवादनकर, एक ओर बठ गये । एक ओर बैठे हुये आयुमान् आनन्दको, आ० महानादयने कहा—

“आबुस आनन्द ! किन कारणोंसे भगवान्ने कुल्लम तीन भोजन विधान किये ?”

“भन्ते काश्यप ! तीन कारणोंसे भगवान्ने० । अच्छुत्थ जनोंके निपटने लिये, पशाल (अच्छे) जनोंक छलसे विहार करनेके लिये, जियम उरु नियतशाल सहारा लेकर फूट न डाल (और) हुलोपर अनुपह हो । भन्ते काश्यप ! इन्हीं तीनों बातोंसे भगवान्ने तीन भोजन विधान किये ।”

१ मिर्च चौथडांको सीकर ही पहननावाला । २ धुतम । ३ जिसे तरब-साक्षात्कार नहीं हुआ ।

४ संयुक्त नि १ २७ ५ ।

“आवुस आनन्द । तू क्यों इन इन्द्रियोमें अगुस द्वारवाले, भोजनमें परिमाण न जाने वाले, जागरणमें तत्पर न रहनेवाले, नये भिक्षुओंके साथ चारिका करता है । मानो तू सम्मोका घातकर रहा है । मानो तू कुलोका घात कर रहा है । तू सम्मोका घात करता चलता है, तू कुलोका घात करता चलता है—(ऐसा) मैं समझता हूँ । आवुस आनन्द । तेरी मंडली भंग होरही है, अधिकतर नये (भिक्षुओं) वाली तेरी (मंडली) टूट रही है । यह कुमार (= आनन्द) माना नहीं जानता ।”

“भन्ते काश्यप ! मेरे शिरके (फश) सफेद होगये । तोभी, आयुष्मान् महाकाश्यपके कुमार (= बच्चा) कहनेसे नहीं छूट रहा हूँ”

“हाँ, आवुस आनन्द । तू इन इन्द्रियो में अगुस द्वारवाले (= अजितेन्द्रिय)० । यह कुमार माना नहीं जानता ।”

धुलनन्दा भिक्षुगोत्रे सुना कि आय महाकाश्यपने वंदेइमुनिआर्य आनन्दको कुमार कहकर फटकारा है । तब धुलनन्दा भिक्षुगोत्रे अप्रसन्न (हो), अप्रसन्नताकी यात कही—

“दूसरे तीर्थ (= सप्रदाय) में रहे आर्य महाकाश्यप, वंदेइमुनि आर्य आनन्दको ‘कुमार’ कहकर फटकारनेकी हिम्मत कैसे करते हैं ?”

आयुष्मान् महाकाश्यपने धुलनन्दा भिक्षुगोत्रेके इस वचनको सुना । तब (उन्होंने) आयुष्मान् आनन्दको यो कहा—

“आवुस आनन्द । धुलनन्दा भिक्षुगोत्रे जलदीमें बिना विचारेही यह कहा । क्योंकि आवुस ! जनसे मैं शिर दाढी मुड़ा, कापाय वस्त्र पहिन, घरसे बेघर प्रव्रजित हुआ, तबसे उस भगवान् अर्हत् सम्मरु-सउदको छोड़, दूसरेको शास्ता कहना नहीं जानता । पहिले आवुस ! गृही होते समय, यह (विचार) हुआ—“यह एकान्त (= बिल्कुल) परिपूर्ण, एकान्त परिशुद्ध खादे-इरमा (उज्ज्वल) ब्रह्मचर्य, घरमें रहते हुये नहीं पालन किया जा सकता । क्योंकि शिर-दाढी मुड़ा, कापाय वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होजाऊँ । सो मैं आवुस ! पण्डितपिलोतिकी की सहागी बना, छोरुमे जो अर्हत् हूँ, यह मेरी प्रयत्न्या उन्हींके लिये है, (कहाँ) शिर-दाढी मुड़ा कापाय वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ । इस प्रकार प्रव्रजित हो शास्तेमें जाते हुये, मेने राजगृह और नालन्दाके बीच, बहुपुत्तर चैत्यमें बड़े भगवान्को देखा देकर मुझे यह हुआ—‘अरे ! मैं शास्ताको देख रहा हूँ, मैं भगवान्को देख रहा हूँ’ । मैं आवुस ! मैं वहीं भगवान्के पैरोंमें शिर रखकर बोला—भन्ते भगवान् ! मेरे शास्ता (= गुरु) हैं, मैं श्रावक (= शिष्य) हूँ । भन्ते भगवान् ! मेरे शास्ता हैं, मैं श्रावक हूँ । यह बोलनेपर आवुस ! भगवान्ने मुझे कहा—

‘काश्यप ! जो इस प्रकारके सारे मनसे युक्त श्रावक (= शिष्य) को न जानकर ‘मैं जानता हूँ,’ कहे, न देखकर ‘मैं देखता हूँ,’ कहे, उसका शिर गिर जाय । किन्तु काश्यप !

१ “तेरहहायका भी नया शाटर (= सारी या धोती) किनारेके फटतेही, पिलोतिका कह जाता है, इस प्रकार महार्थ वस्त्रोंको फाड़कर बनाई संगीदीके लिये पटपिलोतिकीकी सहाय कहता” । अ क

काश्यप सन्यास ।

जानता हुआ ही 'जानता हूँ' कहता हूँ, देखता हुआ ही 'देखता हूँ' कहता हूँ । इसलिये काश्यप ! तुझे बुद्धों (=पैरों) में, सत्त्वोंमें, प्रौढों (मध्यमों) में रज्जा और भय रखना सीखना चाहिये । काश्यप तुझे यह सीखना चाहिये—जो कुछ कुशल (=पवित्र=अच्छा) धर्म सुनूँगा, उन सबको अपनाकर, चारों ओरसे चित्तद्वारा अच्छी तरह एकत्रित कर, कान लगाकर धमको सुनूँगा । काश्यप । तुझे यह सीखना चाहिये, कि शरीर संयधी अनुकूल स्मृति (=काय गत स्मृति) न टूटेगी । काश्यप । तुझे यह सीखना चाहिये ।'

“आधुम ! भगवान् मुझे यह उपदेशकर, आत्मनमे उठकर चल दिशे । कुल सप्ताह भरही आधुस ! मल वित्त युक्त (=स रण) मेने राष्ट्रके पिंडको खाया, आठवें दिन अग्ना (=विमल-ज्ञान) उत्पन्न हुई । तब आधुम । भगवान् माग छोड़, एक पड़के नीचे गये । तब मैंने आधुम । पटपिलोतिकाकी सघाटीको चौपैतकर रख, भगवान्से कहा—यहाँ भन्ते । भगवान् घेंटे, जिसमें मेरा घिर काल तक कल्याण और सुख हो । आधुस । भगवान् गिटे आसनपर बठ गये । बैठकर मुझे भगवान्ने कहा—काश्यप ‘यह तेरी पट पिलोतिकाका संधागी मुगयम है ।’

‘भन्ते ! भगवान् पट पिलोतिकाओंकी संधाटीको दया करके स्वीकार कर’

‘काश्यप ! मेरे सनके पासुहल (=गुदही) वस्त्रोंको धारण करोगे ?’

‘भन्ते ! भगवान्के मनके पासुहल वस्त्रोंको धारण करूँगा ।’

सो मैंने पट-पिलोतिकाओंकी सघाटी भगवान्को द नी, और भगवान्के सनके पासु-हल वस्त्रोंको ढेलिया । जिसको कि ठीक बोलते हुये बोलना चाहिये—भगवान्के औरसपुत्र, मुखसे उत्पन्न, धर्मज (=धर्मसे उत्पन्न), धर्मसे निर्मित, धर्मका टायाद (=धारिस), (कि उसने) सनके पासुहलवस्त्र ग्रहण किये । मेर लिये ठीक बोलते हुये बोलना चाहिये—भगवान्का औरस्य, मुगमे उत्पन्न, धर्म ज, धर्मसे निर्मित, धमका टायाद (इ जो कि) मनके पासुहल वस्त्र ग्रहण किये ।

✽

✽

✽

✽

महाकात्यायनका संन्यास (वि. पू. ४७०)

(महाकात्यायन) उज्जैन नगरमें पुरोहितके घर उत्पन्न हुये । उन्होंने बड़े ही तीनों वेद पढ़, पिताके मरनेपर पुरोहितका पद पाया । गोजके नामसे कात्यायन (प्रसिद्ध) हुए । राजा चण्ड प्रद्योतने (अपने) अमात्योको पृच्छाकर कहा—“तातो । लोकमें बुद्ध उत्पन्न हुये हैं, उनको जो कोई ला सकता है, वह जाकर ले आओ।”

“देव । दूसरे नहीं ला सकते, आचार्य कात्यायन ब्राह्मणही ममर्थ है, उन्हींका भेजिये ।”

राजाने उनको बुलवाकर—“तात दशरथ (= बुद्ध)के पास जाओ ।”

“महाराज । यदि प्रयत्नित होने (की आशा) पाऊँ, तो जाऊँगा ।”

“तात ! जो कुछभी करके, तथागतको ले आओ ।”

उन्होंने (सोचा)—बुद्धोंके पाम जानेने लिये यही जमातकी आवश्यकता नहीं (होती), इसलिये सात जने और अपने आठवा हो, (भगवान् के पास) गये । तब शास्तान इनको धर्मोपदेश दिया । देशनाथे अन्तमें यह सातो जनो सहित, प्रतिसंघिके साथ अर्द्ध पद को प्राप्त हुये । शास्ताने “भिजुओ ! आओ” कह हाथ पसार । उसी समय ये सभी शिर-दाईके बाल लुप्त हुए, ऋद्धिसे मित्र पात्र घीवर धारण किये, सो बर्षके स्थविर समान हो गये । स्थविर (कात्यायन) ने अपने धर्मके समाप्त होनेपर, चुप न हो शास्तानको उज्जैन चलनक लिये यात्राको प्रशंसाकी । शास्तान उन्हीं यात सुन बुद्ध एक कारणसे न जाने योग्य स्थानमें नहीं जाते, इसलिये स्थविरको कहा—“भिजु । तूही जा, तेरे जानेपरभी राजा प्रसन्न होगा ।” स्थविरने (यह सोच कि) बुद्धोंकी दो यात नहीं होती, तथागतकी बन्धनाकर, अपन साथ आये सातो भिजुओंको ले, उज्जैनको जाते हुये रास्तेमें तेलपनाली नामक कस्बेमें मिश्राचार करने गये । उस नगरमें वो सेठकी लड़कियाँ थीं, एक दरिद्र होगये कुलमें पैदा हुई, माता पिताके मरनेपर दाईने सहारे जी रही थी, किन्तु इसका रूप अति सुन्दर (और) केश दूसरोंकी अपक्षा बहुत लम्बे थे । उसी नगरमें एक बड़े ऐश्वर्यवान् सेठके खान्दानकी लड़की केश हीना थी । वह इसके पूव उसके पास (सम्देश) भेजकर—“सो या हजार दूँगी,” कहकर भी केश न मँगा सकी । उस दिन उस सेठकी लड़काने सात भिक्षुओंके साथ स्थविरको खाली पात्र लौटते देख (सोचा)—“यह सुवर्ण वर्ण एक ब्रह्म बन्धु भिक्षु पहिले जैसे धोये (= खाली) पात्रसेही (लौटा) जा रहा है । मेरे पाम और धन नहीं है, लेकिन, अमुक सेठ कन्या इन केशोंके लिये (मांग) भेनती है । अत्र इससे मिले धन द्वारा स्थविरके लिये दान धर्म किया जा सकता है”—(और) दाईको भेजकर स्थविरको निर्मग्न कर घरके भीतर प्रस्थापित । स्थविरके घेठनेपर घरमें जा, दाईसे अपने केशोंको कटवा—“अम्मा ! इन केशोंको अमुक सेठ-कन्याको दे, जो वह दे वह ले आ, आर्याको मैं मिश्रा (= पिंड पात) दूँगी ।”

महाकात्यायनका संन्यास ।

दाई हाथसे आँखें पोंछ, एक हाथसे कलेजेको धाम, स्थविरोंके सामने ढाँककर, उन केशोंको ले, कम सेठ कन्याके पास गई । (सच है) “सार पूर्ण उत्तम (वस्तु) स्वयं पास आनेपर, आदर नहीं पाती ” इसलिये उस सेठ-कन्याने सोचा, ‘मैं पहिले बहुत धनसे भी इन केशोंको न मँगा सकी, अब फट जानेके बाद तो कीमतके मुताबिक ही देना होगा, ’ (और) शहको कहा—

“पहिले मे तेरी स्वामिनीको बहुत धन देकर भी, इन केशोंको न मँगा सकी, जहाँ जी चाहे लेजा, जीते थाल (= जीवितकेश) आठ ही कार्पाणके होते हैं ” (और) आठ कार्पाण ही दिये ।

दाईने कार्पाण छः सेठ-कन्याको दिये । सेठ-कन्याने एक-एक कार्पाणका एक-एक भिक्षात्र तट्यार कर, स्थविरोंको प्रदान किया । स्थविरने ध्यानसे सेठ-कन्याके भावको जान “सेठ-कन्या कहीं है ? ” पूछा ।

“घरमें है । आर्य ! ”

“उसे बुलाओ । ”

उसने स्थविरके गोखले एक बात हीमें आकर, स्थविरोंको बन्दना कर, (मनमें) बड़ा थका उत्पन्न की । “सुन्दर सेतमें (= सुपात्रमें) दिया भिक्षात्र इसी जन्ममें फल देता है ” इसलिये स्थविरोंकी बन्दना करते समय ही, केश पूर्ववत् होगये । स्थविर उस भिक्षात्रको प्रष्टण कर, सेठ कन्याके देखते देखते ही उठकर, आकाशमें जा काचन-वनमें उखरे । मालीने स्थविरोंको दब, रानाक पास जाकर कहा—

“देव । आर्य पुरोहित महाकात्यायन प्रवर्णित हो, उद्यानमें आये हैं । ”

राजाने आनन्दित (= छन्दजात) हो उद्यानमें जा, भोजन करनेपर, पाँच अंगोंने स्थविरा को बन्दना कर, (और) एक ओर बटकर पूछा—“भन्ते ! भगवान् कहीं हैं ? ”

“महाराज ! शास्ता ने स्वयं न आकर मुझे भेजा है ? ”

“भन्ते ! आज भिक्षा कहापर पाई ? ”

स्थविरने राजाके पूछनेके साथ ही, सेठ-कन्याक सब दुष्कर कर्मको बह डाला । राजाने स्थविरके लिये बास ध्यानका प्रवेध कर, (भोजनका) निमग्नण दिया, ओर घर जा सेठ कन्याको बुझा, अप्रमहिषी (= पत्नी) के पत्पर स्थापित किया । इस छोको इस जन्ममें ही पशु प्राप्त हुआ । इसके बाद राजा स्थविरका बड़ा सत्कार करने लगा । । उम दवीो गर्भ धारण कर, दसमास बाद पुत्र प्रसव किया । उमका नाम (उसके) नाना सेठके नामपर गोपालकुमार रक्खा । वह पुत्रके नामसे गोपाल-माता दवीके नामसे (प्रसिद्ध) हुई । उमन स्थविरसे अत्यन्त सन्तुष्ट हो, राजासे कह कर, काँचन वन उद्यानमें स्थविरके लिये विहार बनवाया । (और) स्थविर उज्जैन नगरको अनुरक्त बना, फिर शान्ताके पास गये ।

उपाध्याय, आचार्य, शिष्यके कर्तव्य । उपसम्पदा । (वि. पू. ४७०)

उस समय मगधके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुल पुत्र (= सान्दानी) भगवान्के पास ब्रह्मचर्य चरण करते थे । लोग (देखकर) हैरान होते, निन्दा करते और दुःखी होते थे—“अपुत्र बनानेको श्रमण गौतम (उत्तरा है), विधवा बनानेको श्रमण गौतम (उत्तरा) है, कुल-गिरानेके लिये श्रमण गौतम (उत्तरा) है । अभी उसने एक सहस्र जटिलोको साधू बनाया । इन दारिद्र्य सजयके परिवाजकोंको भी साधू बनाया । अब मगधके प्रसिद्ध प्रसिद्ध कुल-पुत्रभी श्रमण गौतमके पास साधू बन रहे हैं ।” यह भिक्षुओंको देण्ड इम गाथाको कह, ताना देते थे—

“महाश्रमण मगधोंके गिरिधजमें आया है ।

संजयके सभी (परिवाजकों) को तो ले लिया, भग्न किसको लेनेवाला है ?”

भिक्षुओंने इस बातको भगवान्से कहा । भगवान्ने कहा—

“भिक्षुओ ! यह शब्द देर तक न रूँगा । एक सप्ताह बीतते लोप होजायगा । जो सुन्हे उस गाथासे ताना देते हैं । उन्हें तुम इस गाथासे उत्तर देना—

“महावीर तथागत सच्चे धर्म (के रास्ते) से ले जाते हैं ।

धर्मसे ले जाये जातोके लिये बुद्धिमानोंको असूयो (=हसद) क्यों ?”

लोगोंने कहा—“शाक्य-पुत्रीय (=शाक्य पुत्र बुद्धके अनुयायी) श्रमण, धर्म (के रास्ते) से ले जाते हैं, अधर्मसे नहीं ।”

सप्ताह भर ही यह शब्द रहा । सप्ताह बीतते २ लोप होगया ।

“उस समय भिक्षु उपाध्यायके बिना रहते थे, (इसलिये वह) उपदेश=अनुशासन न किये जानेसे, बिना ठीकसे पहने, बिना ठीकसे ढाँके, बेसहूरीसे भिक्षाके लिये जाते थे । खाते हुये मनुष्योंके भोजनके ऊपर, खाद्यके ऊपर पेयके ऊपर जुड़े पात्रको घटा देते थे । स्वयं दालभी भावभी माँगते थे, खाते थे । भोजनपर धँडे हल्ला मचाते रहते थे । लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुःखी होते थे । क्यों शाक्य पुत्रीय श्रमण बिना ठीकसे पहिने० भोजनपर धँडे भी हल्ला मचाते रहते हैं, जैसे कि ब्राह्मण ब्राह्मणभोजनमें । भिक्षुओंने लोगोंका हैरान होना० सुना । जो भिक्षु निर्लोभी, सन्तुष्ट, लज्जाशील, सकोचशील, शिक्षार्थी थे, वह हैरान हुये, धिक्कारने लगे, दुखी हुये० । तब उन भिक्षुओंने भगवान्से इस बातको कहा । भगवान्ने धिक्कार— ‘भिक्षुओ ! उन नालायकोंका (यह करना) अनुचित है अयोग्य है अश्रमणोंका आचार है, अभव्य है, अकरणीय है । भिक्षुओ ! कैसे वह नालायक बिना ठीकसे पहिने० भिक्षाके लिये घूमते हैं० । भिक्षुओ ! (उनका) यह (आचरण) अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये नहीं है, और न प्रसन्नो (=अद्वालुओं) को अधिक प्रसन्न करनेके लिये, बल्कि अप्रसन्नोको (और भी) अप्रसन्न करनेके लिये, तथा प्रसन्नोमेंसे भी किसी किसीके उलट देनेके लिये है ।” तब भगवान्ने उन भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे धिक्कार कर भिक्षुओंको संबोधित किया—

शिष्यका कर्तव्य ।

“भिक्षुओ ! मैं उपाध्याय (करने) की अनुना देता हूँ । उपाध्यायको शिष्य (=सद्धि-विहारी) में पुत्र बुद्धि रखनी चाहिये, और शिष्यको उपाध्यायमें पिता बुद्धि । इस प्रकार उपाध्याय ग्रहण करना चाहिये—उपरना (उत्तरा-संग) को एक कंधे पर करना, पाद-चंदन करना, उकड़ूँ धँसा, हाथ जोड़वा ऐसा कहलवाना चाहिये—‘भन्ते ! मेरे उपाध्याय बनिये, भन्ते ! मेरे उपाध्याय बनिये, भन्ते ! मेरे उपाध्याय बनिये ।’

“शिष्यको उपाध्यायक साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिये । अच्छा बर्ताव यह है—समयसे उठकर, जूता छोड़, उत्तरार्मगको एक कंधेपर रख, दातुन देनी चाहिये, मुग (धोने को) जल देना चाहिये । आमन बिठाना चाहिये । यदि खिचड़ी (कण्ठके लिये) है, तो पात्र धोकर (उसे) देना चाहिये । पानी देकर पात्र ले बिना घसे धोकर रख देना चाहिये । उपाध्यायक उठ जाने पर, आसन उठाकर रख देना चाहिये । यदि वह स्थान मैला हो, तो झाड़ देना चाहिये । यदि उपाध्याय गाँवमें जाना चाहते हैं, तो वस्त्र धमाना चाहिये, कमर बँध देना चाहिये, चौपत्तर सघाटी देनी चाहिये, धोकर पानीमहित पात्र देना चाहिये । यदि उपाध्याय अनुवर भिक्षु चाहते हैं, तो तीन स्थानोंको ढाँके हुये पेरादार (चीवर) पड़ा, कमर बन्ध बाघ चापेती सघाटी पहिन, मुट्ठी बाँध, धोकर पात्रले उपाध्यायका अनुवर (=पीछे चलने वाला) भिक्षु बनना चाहिये । न बहुत दूर होकर चलना चाहिये, न बहुत समीप होकर चलना चाहिये । पात्रमें प्राप्तको ग्रहण करना चाहिये । उपाध्यायके बात करते समय, बोच धोचम बात न करना चाहिये । उपाध्याय (यदि) सदाप (यात्र) बोल रहे हों, तो मना करना चाहिये । लोठे समय पहिलेही आकर आसन बिठा देना चाहिये, पादोदक (=पैर धोने का जल), पाद पाँच, पादकल्ली (पैर बिसने का माधन) रख देना चाहिये । आगे बज्जर पात्र चीवर (हाथसे) लेना चाहिये । दूसरा वस्त्र देना चाहिये, पहिना वस्त्र ले लेना चाहिये । यदि चावर में पसीना लगा हो, थोड़ी देर धूपमें सुग देना चाहिये । धूपमें चीवरको ढाहना न चाहिये । (फिर) चीवर बगैर लेना चाहिये । यदि भिक्षा है, और उपाध्याय भोजन करना चाहते हैं, तो पानी देकर भिक्षा देना चाहिये । उपाध्यायको पानीके लिये पूटना चाहिये । भोजन कर लेने पर पानी देकर, पात्र ले, हुकाकर बिना बिसे अच्छी तरह धो, पाँचकर मुहूर्तभर धूपम सुग देना चाहिये । धूपमें पात्र ढाहना चाहिये । यदि उपाध्याय स्नान करना चाहें, स्नान कराना चाहिये । यदि जताघर (=स्नानागार) में जाना चाहें, (स्नान-) चूर्ण ले जाना चाहिये, मिट्टी भिगोनी चाहिये । जताघरक पीछेको लेका उपाध्यायके पीछे पीछे जाकर, जन्ताघरके पीछेको दे, चीवर ले एक ओर रख देना चाहिये । (स्नान-) चूर्ण देना चाहिये, मिट्टी देनी चाहिये । उपाध्यायका (शरीर) मलना चाहिये । (उपाध्यायक) हाथ नेसे पूर्वही अपने देहको पाँच (सुग), कपडा पहन, उपाध्यायके शरीरसे पानी पोछना चाहिये । वस्त्र देना चाहिये । सघाटी देनी चाहिये । जताघरका पाँचले पहिलेही आकर, आसन बिठाना चाहिये ।

जिस विहारमें उपाध्याय विहार करते हैं, यदि वह विहार मैला हो, और उत्साह हो, तो उसे साफ करना चाहिये । विहार साफ करनेमें पहिले पात्र चीवर निकालकर, एक ओर रखना

चाहिये । गद्दा चद्दर निकालकर एक ओर रखनी चाहिये । तर्किया रखनी चाहिये । चारपाईका बटोकर केवाड़में बिना टकराये लेकर, ऐक ओर रख देना चाहिये । पीढ़ेको खड़ाकर केवाड़में बिना टकराये० । चारपाईके (पानेके) ओट० । पीकदानको एक धोर० । सिरहानेका पत्र एक ओर० । फर्शको बिठावटके अनुसार जानकर, ले जाकर० । यदि बिहारमें जालाहो, तो उहाड़ पहिले यहारना चाहिये । अन्धेरे कोने साफ करने चाहिये । यदि भीत (=दीवार) गेरुसे गचनी हुई हो, तो लत्ता भिगोकर रगड़कर साफ करनी चाहिये । यदि काली हो गई, मलिन भूमि हो, (तो भी) लत्ता भिगोकर रगड़कर साफ करनी चाहिये । जिसमें धूलसे खराब न हो जाय । कूड़ेको ले जाकर एक तरफ फेंकना चाहिये । फर्शको धूपमें सुखा, साफकर फटकारकर, ले आकर पहिलेकी भांति बिठा देना चाहिये । चारपाईके ओट धूपमें सुखा साफकर लेआकर, उनके स्थानपर रख देने चाहिये । चारपाईको धूपमें सुखा, साफकर, फटकारकर नवाकर केवाड़को बिना टकराये ले आकर० । पीढा० । तर्किया० । गद्दा चद्दर धूपमें सुखा साफकर, फटकारकर ले आकर बिठा देना चाहिये । पीकदान सुखा साफकर लेकर पया स्थान रख देना चाहिये । ।

यदि धूली लिये पुरवा हवा चल रही हो, पूर्वकी छिड़कियां बन्दकर देनी चाहिये । । यदि जाड़ेके दिन हों, दिनको जंगला खुला रख कर, रातको बन्द कर देना चाहिये । यदि गर्मी का दिन हो, दिनको जंगला बन्द कर रातको खोल देना चाहिये । यदि आगन (=परिने) मैला हो, आगन झाड़ना चाहिये । यदि कोठरी मली हो० । यदि उपस्थान झाला (=बक) मैली हो० । यदि अग्निशाला (=पानी गर्म करनेका घर) मैली० । यदि पाखाना मैला हो० । यदि पानी न हो, पानी भर कर रखना चाहिये । यदि पीनेका जल न हो० । यदि पाखानेका भटकीमें जल न हो० ।

उपाध्यायको शिष्यसे अच्छा बताव करना चाहिये । वह बताव यह है—उपाध्यायका शिष्यपर अनुग्रह करना चाहिये, (शिष्यके लिये) उपदेश देना चाहिये । पात्र देना चाहिये । यदि उपाध्यायको चीवर है, शिष्यको नहीं । चीवर देना चाहिये, या शिष्यको चीवर दिलानेके लिये उत्सुक होना चाहिये—^१परिष्कार देना चाहिये । । यदि शिष्य ^२रोगी हो, तो समयसे उठकर दातबान , सुखोदक देना चाहिये । आसन बिठाना चाहिये । यदि खिचड़ी हो, तो पात्र धोकर देना चाहिये । पानी द्दकर, पात्र ले बिना घिसे धोकर रख देना चाहिये । शिष्यके उठ जानेपर, आसन उठा लेना चाहिये । यदि वह स्थान मैला है, तो झाड़ देना चाहिये । यदि शिष्य गाँवमें जाना चाहता है, तो वस्त्र धमाना चाहिये० । यदि पाखानेकी भटकीमें जल न हो० ।

उस समय शिष्य उपाध्यायके चल जानेपर, विचार-परिवर्तन कर लेनेपर (या) सर जाने पर बिना आचार्यके हो, उपदेश=अनुशासन न किये जानेसे, बिना ठीकसे (चीवर) पहने बिना ठीकसे ढँके चेतद्वारीसे मिश्राके लिये जाते थे० । भगवान्ने भिक्षुओंको संयोजित किया—

१ भिक्षुओंके सामान । २ रोगी होनेपर उपाध्यायको शिष्यके लिये वह सभी सेवा करनी होती है , जो स्वस्थ शिष्यके कर्त्तव्यमें आ चुकी हैं ।

उपसम्पदा ।

“ भिक्षुओ ! आचार्य (करने) की अनुज्ञा देता हूँ । ”

‘उस समय ब्राह्मण राधेने भिक्षुओसे प्रपञ्चा मांगी । भिक्षुओने (उसे) प्रवर्जित न करना चाहा । यह प्रपञ्चा न पानेमे दुर्बल, रूग्णा, दुर्बर्ण, पीलाटाड हाड निरुद्धा होगया ।

। भगवान्ने उस ब्राह्मणको देस भिक्षुओको संबोधित किया—“भिक्षुओ ! इस ब्राह्मणका उपकार किमीको याद है ?” फेसे कहनेपर आयुमान् सारिपुत्रने भगवान्को कहा—“भन्ते ! मैं इस ब्राह्मणका उपकार स्मरण करता हूँ ।”

“ सारिपुत्र ! इस ब्राह्मणका क्या उपकार तू स्मरण करता है ? ”

“ भन्ते ! सुये राजगृहमे भिक्षाक लिये घुमते समय, इस ब्राह्मणने कछीभर भात दिलवाया था । भन्ते ! मैं इस ब्राह्मणका यह उपकार स्मरण करता हूँ । ”

“ साधु ! साधु ! सारिपुत्र ! मत्तुरप कृत्तज = कृतनेदी (होते हैं) । तो हे सारिपुत्र ! तू (हो) इस ब्राह्मणको प्रवर्जित कर, उपसम्पादित कर । ”

“ भन्ते ! कैसे इस ब्राह्मणको प्रवर्जित करूँ, (कैसे) उपसम्पादित करूँ ? ”

तब भगवान्ने इसी सम्पन्धर्म = इसी प्रकरणमें धर्मसम्बन्धी कथा कह भिक्षुओको संबोधित किया—

“ भिक्षुओ ! मैंने जो तीन शरण गमनसे उपसम्पदाकी अनुज्ञा ली थी, आजस उते मना फाता हूँ । (आजसे) चौथी जसिआके कर्मक साथ उपसम्पदाकी अनुज्ञा देता हूँ । इस तरह उपसंपन्ना करनी चाहिये—योग्य समर्थ भिक्षु संघको ज्ञापित कर—

(१) “ भन्ते ! संघ सुहे सुने, अमुक नामक, अमुक नामक आयुमान्का उपसंपदापक्षी है । यदि संघ उचित समझे, संघ अमुक नामकको, अमुकनामक उपपाध्यायत्वम उपसम्पन्न करे । यह जसि है ।

(२) “ भन्ते ! संघ सुये सुने, अमुक नामक, अमुक नामक आयुमान्का उपसंपदापक्षी है । संघ अमुक नामकको अमुक नामक उपपाध्यायत्वमे उपसम्पन्न करता है । जिस आयुमान्को अमुक नामकको उपसंपदा अमुक नामक उपपाध्यायत्वम स्वीकार है, वह चुप रहे, जिसको स्वीकार न हो, वह बोले ।

(३) दूसरी बार भी इसी बातको बोलता हूँ—“भन्ते ! संघ सुने, यह अमुक नामक, अमुक नामक आयुमान्का उपसंपदापक्षी है । जिसको स्वीकार न हो, वह बोले ।

(४) तीसरी बार भी इसी बातको बोलता हूँ—“भन्ते ! संघ सुने ।

संघको स्वीकार है, इसलिये चुप है—ऐसा समझता हूँ । ”

*

*

*

१ महावग्ग १ । २ दग्गो पृष्ठ २९ । ३ अमुकके स्थानपर उपसंपदापक्षीका नामलिया जाता है, कहीं-कहीं एक काल्पनिक नाम भी लिखा जाता है । ४ भिक्षु पन खादवाला

कपिलवस्तु-गमन । नन्द और राहुल का संन्यास । (वि. पू. ४७०)

‘तथागतके येषुगनमें विहार करते समय, शुद्धोद महाराजने—मेरा पुत्र छ वर्ष दुष्का तपकर, परम अभिसंशोधि (=बुद्धत्व) को प्राप्तकर, धर्म-चक्र प्रवर्तनकर, (इस समय) येषु वनमें विहार करता है—यह सुन अमात्यको संशोधित किया—“आ, भण्डे ! मेरे वचनमें हजार आदमियोंके साथ राजगृहमें जा—‘तुम्हारे पिता शुद्धोदन महाराज तुम्हें देयना चाहते हैं।’ यह कह, मेरे पुत्रको ले आ ।”

“अच्छा देव ।” (कहकर अमात्य) राजाका वचन शिरसे ग्रहणकर, हजार पुरोयों सहित शीघ्रही साठ योजन मार्ग जाकर, ‘दशरत्नके’ चारों परिषदके बीच धर्मोपदेश करते समय, विहारके भीतर गया । उसने—‘राजाका भेजा शासन (=संदेश पत्र) अभी पढ़ा रहे’ (सोच), एक ओर खड़ा हो, शास्ताकी धर्मदेशनाको सुनकर, रखे ही रखे हजार पुरोयों समेत अर्हत्त्व पदको प्राप्त हो, प्रयत्न्या मांगी । भगवान्ने—“मिक्षुओ ! तुम आओ” (कह) हाथ पसारा, सभी चमत्कारसे, उसी क्षण उत्पन्न पात्र पीवर धारण किये हुये, १०० वर्षके वृद्ध-उर होगये । अर्हत्त्व प्राप्त कालसे—‘आर्य लोग मध्य (-वृत्ति) होते हैं—(सोच), राजाका भेजा शासनक दशरत्नका १ कहा ।

राजाने “गया (अमात्य) न छोड़ता है, न शासन (=चिट्ठी) सुनाई देता है; आ भण्डे ! तू जा” (कह) पहिले हीकी भांति दूसरे अमात्यको भेजा । वह भी जाकर पहिलेकी भांति अनुचरो सहित अर्हत्त्व पाकर चुप होगया । राजाने इसी प्रकार हजार हजार पुरोयों सहित नव अमात्यको भेजा । सभी अपना कृ य समाप्तकर, चुप हो वहीं विहरने लगे । राजा शासन (=पत्र) मात्र भी लाकर कहनेवालेको ॥ पा, सोचने लगा—“इतने जन मेरेमें प्रेम भाव रखते हुये, शासन मात्र भी न ले आये, (अब) कौन मरी यात करैगा ।” (तब उसने) सब राज (-पुरोय) मंडलको देखने काल उदायीको दया । वह राजाका सर्व अन्तरंग, अति विनवात्य, सपर्यसाधक अमात्य, बोधिमत्तरक साथ एक ही दिन उत्पन्न, साथ धूली खेला मित्र, था । तब राजाने उसे संशोधित किया—“आत ! काल उदायी ! मे अपने पुत्रको देखना चाहता हूँ, नव हजार पुरोयोंको भेजा, एक पुरोय भी आकर शासन मात्र भी कहनेवाला नहीं है । शरीरका कोई टिकाना नहीं । मैं जीते जी पुत्रको देय लेना चाहता हूँ । मेरे पुत्रको मुझे दिवा सकोगे ?”

“देव ! सकूंगा, यदि प्रयत्न्या लेने की आज्ञा मिले”

“आत ! तू प्रयत्नित या अप्रयत्नित हो, मेरे पुत्रको लाकर दिया ।”

“देव ! अच्छा” (कह) वह राजाका शासन ले, राजगृह जा, शास्ताकी धर्मदेशनाके समय परिषदके अन्तमें खड़ा हो, धर्म सुन, परिवार-सहित अर्हत्त्व प्राप्त हो “मिक्षु ! आओ” से मिश्र

१ जातक नि० ४१ महावग्ग अ क । महासूधक, राहुल वन्तु । २ बुद्धके दस वर्य होते हैं । ३ मिश्र, मिश्रुगी, उपासक और उपासिका ।

४ श्रुत आपन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्त्व ।

कपिलवस्तु गमन ।

हो दहर गया । शास्ता दुर्ब होकर, पहिले ऋतुभर ऋषिपतनमें वासकर, यथाग्राम समासकर, 'प्रावारणा' (= पारणा) कर, उखेलामें जा वहाँ तीन मास दहर, तीना भाई जटिलोंको रास्तेपर ला, एक सहस्र भिक्षुओंके साथ, पौषमासकी पूर्णिमाको राजगृह जा, दो मास बसे । इतनेमें धारण्योसे चले पाँच मास बीत गये । सारा हेमन्त ऋतु बीत गया । उदायी स्थविर, आनेके तिनसे सात आठ दिन बिता, फाल्गुणकी पूर्णिमासोको सोचने लगे—हेमन्त बीत गया वसन्त आगया । मनुष्योंने सत्य आदि (काटकर) रास्ता छोड़ दिया । पृथिवी हरित वृणसे आच्छादित है, वन गंध फूले हुये हैं । रास्ते जाने लायक होगये हैं । यह दशवर्षके लिये अपनी नातिको सग्रह करनेका (उचित) समय है । (यह सोच) भगवान्‌के पास जाकर बोले—

‘भदन्त ! फले छोड़कर, फलकी इच्छासे (इस समय) द्रुम अगार वाले हो गये हैं । महावीर ! यह लौ वाले से प्रतीत होते हैं, रथोंका यह समय है ।

न बहुत शीत है, न बहुत उष्ण है, न बहुत अन्नकी कठिनाई है । हरियालीसे भूमि हरित है । महामुनि ! यह (जानेका) समय है, (इत्यादि) साठ माथाओं द्वारा दश नगरे कुल-नगर जानेकी प्रशंसाकी ।

तब भगवान्‌ने कहा—“उदायी । क्या है, जो मधुर स्वरसे यात्राका प्रशंसा कर रहा है ?”

“अन्ते । आपके पिता शुद्धोदन महाराज (आपको) देवना चाहते हैं, जातिशालोंका संग्रह करें ।”

“उदायी ! अच्छा मैं जाति वालोंका संग्रह करूँगा, भिक्षु सधको कहो कि यात्राका मत (= क्रिया) पूरा करें ।”

“अच्छा अन्ते !” (कह) स्थविरने (भिक्षु संजको) कहा ।

भगवान्‌ अग-मगधके दस हजार कुल-पुत्रों, तथा दस हजार कपिल वस्तुके निवासी, सब बीस हजार क्षीणास्तव (= अर्हत्) भिक्षुओं सहित राजगृहमें निकलकर, रोज योजना भर चलने थे । राजगृहमें साठ योजन कपिल-वस्तु दो मासोंमें पहुँचोसी इच्छासे, धीमी चारिका से चलनेये ।

शाक्योंने भगवान्‌के रहनेके स्थानका विचार करते हुये, न्यग्रोध (नामक) शाक्यके आरामको श्रेणीय जान, वहाँ सफाई करा, गंध, पुष्प हाथमें ले, भगवानीके लिये सब अलंकारोंमें अलंकृत नगरके छोटे बड़े के लड़कियोंको पहिले भेना । फिर राजकुमारों वार राजकुमारियोंको । उनके बाद स्वयं गंध, पुष्प, चूर्ण आदिमें भगवान्‌को पूजा करते, न्यग्रोधधारण में गये । वहाँ बीस हजार क्षीणास्तवों (= अर्हत्) के सहित भगवान्‌, स्थापित कुदासनपर ब ।

दुमरे दिन भिक्षुओं सहित (भगवान्‌ने) कपिलवस्तुमें मिश्राके लिये प्रयत्न किया । भगवान्‌ने इन्द्रकोल्पर खड़े हो सोचा—‘पहिलेके बुद्धोंने कुल-नगरमें मिश्रावार

१ आश्विन पूर्णिमा । २ जातकट्टक्या नि ।

जैसे किया ? क्या बीच-बीचमें घर छोड़कर या एक ओरसे ? फिर एक बुद्धको भी बीच-बीचमें घर छोड़कर भिक्षाचार करते नहीं देख, मेराभी यही (बुद्धोपा) वंश है, इसलिये यह कुलधर्म ग्रहण करना चाहिये। इसमें आने वाले समयमें मेरे श्रावक (= शिष्य) मेराही अनुकूल करते (हुये) भिक्षाचारवत पूरा करेंगे' ऐसा (सोच), छोरेके घरसे ही भिक्षाचार आरंभ किया। "आर्य मिद्धार्थकुमार भिक्षाचार कर रहे हैं" यह (सुन) लोग दुतल्ले, तितल्ले पर विडकिया खोल देखने लगे।

राहुल-माता देवी भी—' आर्यपुत्र हमो नगरमें राजाओंके टाटसे सोनेकी पालकी आदिमें घूमे, और आज (इसी नगरमें) फिर दाढी मुँड़ा कापाय वगैरहिन, कपाल (= सिर) हाथमें ले, भिक्षाचार कर रहे हैं !! क्या (यह) शोभा देता है' कहती, विडकी खोलकर नाना विरागसे उज्ज्वल शरीर प्रभा-द्वारा नगरकी सड़कको अवभामितकर, अनुपम बुद्धशरीर विरोचमान भगवान्को देख, राजासे बोली, 'आपका पुत्र भिक्षाचार कर रहा है'। राजा घबराया हुआ हाथसे धोती मभाळते, जलदी जलदी फिरुत्तर, वेगवेग जा, भगवान्के सामने खड़ा हो बोला—'भन्ते ! हमें क्यों लज्जाते हो ? किमलिये भिक्षा चरण करते हो ? क्या इतना भिक्षुओंके लिये भोजन नहीं मिलता ?'

"महाराज ! हमारे वंशका यही आचार है"

"भन्ते ! हम लोगोंका वंश तो महा सम्मत (= मनु?) का क्षत्रियवंश है ? एक क्षत्रिय भी तो कभी भिक्षाचारी नहीं हुआ"।

(राजाने) भगवान्का पात्रले परिपट्-सहित भगवान्को महलपर चढ़ा, उत्तम खाद्य भोज्य परोसे। भोजनके बाद एक राहुल-माताको छोड़, सभी रनिवासने आ आकर भगवान्की वन्दनाकी। यह परिजनद्वारा—'जाओ, आर्यपुत्रकी वन्दना करो' कहे जाने पर भी—'यदि मेरेमें गुण है, तो त्वर्य आर्य-पुत्र मेरे पास आयगे। आनेपरही वन्दना करूँगी।' यह कह, न आई।

भगवान् राजाको पात्रदे, दो अग्रश्रावकों (= सारिपुत्र, मौद्गल्यायन) के साथ, राजकुमारीके शयनागार (= श्रीगर्भ) में जा—'राजकन्याको यथारथ वन्दना करने देना, कुछ न बोलना' कह, बिठाये आमनपर बैठ गये। उसने जलदीसे आ गुल्फ पकड़कर, शिरको पैरोंपर रख, अपना हृच्छाजुसार वन्दनाकी। राजाने भगवान्के प्रति राजकन्याके स्नेह स्तुकार आदि गुणको कहा—'भन्ते ! मेरी बेटी आपके कापाय वस्त्र पहिनने को सुनकर, तभीसे कापाय धारिणी हो गई। आपके एकत्र भोजनको सुन, एकाहारिणी हो गई। आपके ऊँचेपलंगके छोड़नेकी बात सुन, खटियाके मंचपर सोने लगी। आपके माला, गन्ध आदिसे विरत होनेकी बात जान, गंध माला आदिसे विरत हो गई। अपने पीहर वालोंके 'हम तुम्हारी सेवा सुभ्रपा करेंगे' ऐसा पत्र भेजने पर, एक की भी नहीं देखती। भगवान् ! मेरी बेटी ऐसी गुणवती है"। (भगवान् उपदेश दे,) आसनसे उठकर चले गये।

‘तीसरे दिन (भगवान्) नन्द (राजकुमार) के अभिषेक, गृहप्रवेश, और विवाह—इनतीन मंगलकर्म होनेके दिन, भिक्षाके लिये प्रवेशकर नन्द कुमारके हाथमें पात्रदे, मंगल कह, उठकर चलते चल, कुमारके हाथसे पात्र न लिया । वह भी तथ्यागतने गौरवसे “भन्ते ! पात्र लीजिये” न कह सका । उसने सोचा—“सीढ़ीपर चल पात्र लेलेंगे” । शास्ताने वहां भी न लिया, “सीढ़ीके नीचे ग्रहण करेंगे” । “राज आंगनमें ग्रहण करेंगे” । शास्ताने वहां भी न ग्रहण किया । “पात्र लीजिये” न कह सका । “यहां लेलेंगे, वहां लेलेंगे” यही सोचता जा रहा था । उस समय लोगोंने जनपद कट्याणीसे कहा—“भगवान् नन्दराजासे लिये जा रहे हैं, यह तुम्ह उनके विनाकर ठगे” । वह उन्हें गिरते, अपने कैमही किय वैशाके मायहीं जलद्रोसे महलपर चढ़, खिड़कीपर खड़ीहो गेलो—“आर्यपुत्र ! जलदी आना” यह वचन उसके हृदयम उल्टे पड़े शल्यकी भांति लगा रहा । शास्ताने भी उससे हाथसे पात्र न ले, विहारम जा—“नन्द ! प्रव्रजित होगे ?” पूछा । उसो बुद्धके ख्यालसे नहीं न करके “हां । प्रव्रजित होऊंगा”—कहा । तब शास्ताने “नन्दको प्रव्रजित करो” कहा । इस प्रकार कपिलपुष्प जाकर तीसरे दिन नन्दको प्रव्रजित किया ।

‘सातवें दिन राहुल माताने कुमारको अलङ्कृत कर, भगवान् के पास यह कह कर भेजा—“बात । बीस हजार श्रमणोंके मध्यमें सुवर्ण वर्ण श्रमणको देख, वही तेरा पिता है । उनके पास बहुत सजाने थे, जिन्हें उनके (घरसे) निकलनेके बादसे नहीं देखते ।”

‘भगवान् पूजा समय पहनकर पात्र चीवरले जहां शुद्धावन शाक्यका घरथा, वहां गया । पात्र बिछाये आसनपर धरे । तब राहुल माता नेवोंने राहुल कुमारको या कहा—“राहुल ! यह तेरा पिता है, जा दायज (=घरासत) माग” । तब राहुलकुमार जहां भगवान् थे, वहां गया । पाकर भगवान् के सामने खड़ा हो कहन लगा—“श्रमण ! तेरी छाया सुखमय है” । तब भगवान् तामने उठकर चल लिये । राहुलकुमार भी भगवान् के पीछे पीछे लगा—

“श्रमण ! सुखे दायज दे”, “श्रमण ! सुखे दायज दे ।”

तब भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्रको कहा—

“तो सारिपुत्र ! राहुल कुमारको प्रव्रजित करो”

“भन्ते ! किस प्रकार राहुल कुमारको प्रव्रजित करें ?”

इसी मौकपर इसी प्रकारणम धार्मिक कथा कहकर, भगवान् भिक्षुओंको संबोधित किया—

“भिक्षुओ ! तीन शरण गमनसे श्रामणेर-प्रव्रज्याकी अनुष्ठा देता है । इस प्रकार प्रव्रजित करना चाहिये । पहिले शिव-नादी मुँहवा कापाय यक्ष पहिना, एक कपेपर उपरना करना, भिक्षुओंकी पाद चन्दन करना, उकड़ू बैठना, हाथ जोड़ना ‘महा कदो’ बोलना चाहिये—‘पुढकी शरण जाता हूँ, धम्मी शरण जाता हूँ, संघकी शरण जाता हूँ । दूसरी बारभी० । तीसरी बारभी पुढकी शरण० ।”

१ उदान अट्ठ कथा ३२ । अ नि अक १४८ । त्रिनय महावग्ग अ क । २ त्रिनय पट्ठ कथामें दूसरे दिन । ३ जातक अट्ठकथा नि ४ । ४ महावग्ग १० माणवार । ५ भिक्षु पत्रके उमेस्सोको श्रामणेर कहते हैं ।

तत्र आयुष्मान् सावित्रो राहुलकुमारको प्रव्रजित किया । तत्र शुद्धोदन शाक्य ज्ञा भगवान् थे, कहा गया, और भगवान्को अभिप्रादन कर, एक ओर बँट गया । एक ओर बँट हुए शुद्धोदन शाक्यने भगवान्को कहा—

“भन्ते ! भगवान् से मे एक वर चाहता हूँ ।”

“गौतम ! तथागत वरसे दूरहो चुके हैं ।”

“भन्ते ! जो उचित है, दोष रहित है ।”

‘बोलो गौतम !’

“भगवान्के प्रव्रजित होनेपर मुझे बहुत दुःख हुआ था, जैसेहा नन्द (के प्रव्रजित) होने पर भी । राहुलके (प्रव्रजित) होनेपर अत्यधिक । भन्ते ! पुत्र-प्रेम मेरी छाक छेद रहा है । डाल छेदकर० । चमड़ेको छेदकर माँमको छेद रहा है । माँमको छेदकर नसको छेद रहा है । नसको छेदकर हड्डीको छेद रहा है । हड्डीको छेदकर घायलकर दिया है । अच्छा हो, भन्ते ! आर्य (= भिक्षुलोग) माता पिताकी अनुज्ञाके बिना (किसीको) प्रव्रजित न करें ।”

भगवान्ने शुद्धोदन शाक्यको धार्मिक कथा कही*** । तत्र शुद्धोदन शाक्य आसनत उठ अभिप्रादनकर प्रदक्षिणाकर चलागया । भगवान्ने इसी मौकेपर, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको सूचोचित किया—“भिक्षुओ ! माता पिताकी अनुज्ञाके बिना, पुत्रको प्रव्रजित न करना चाहिये । जो प्रव्रजित करे, उसे दुष्टका दोष है।”

महामौद्गल्यायन स्वयंने कुमारको केश काटकर कापाय वस्त्र दे ‘शरण’ दिया । महाकाश्यप स्वयंने अवचाद (= उपनेत्र) के आचार्य हुये ।

अनुरुद्ध, आनन्द, उपलि आदिका सन्यास । (वि. पू. ४७०)

१ राहुल कुमारको प्रमजितकर भगवान् २ थोड़ी ही दूरी पर (वस्तु) से, मत्व दशम चारिका करते, अनूपियाके आश्रयनमें पहुँच ।

३ उस समय भगवान् मल्लोक्त कथ्ये (= निगम) अनूपियामें विहार करते थे । उस समय कुलीन कुलीन शाक्य-कुमार भगवान् के प्रमजित होनेपर अनु प्रमजित हो रहे थे । उस समय महानाम शाक्य और अनुरुद्ध शाक्य दो भाई थे । अनुरुद्ध सुकुमार था, उमर में तीन महल थे—एक जाड़े के लिये, एक गर्मी के लिये, एक वर्षा के लिये । वह वर्षा के चार महीनों में वर्षा-प्रसाद के ऊपर अ-पूरण बाघों के साथ सेनित हो, प्रसाद के नीचे न उतरता था । तब महानाम शाक्य के (वित्तम्) हुआ—आज कण कुलीन कुलीन शाक्यकुमार भगवान् के प्रमजित होनेपर अनुप्रमजित हो रहे हैं । हमारे कुलसे कोई भी घर छोड़ बेघर हो प्रमजित नहीं हुआ है । क्यों न मैं या अनुरुद्ध प्रमजित हों । तब महानाम, जहाँ अनुरुद्ध शाक्य था, वहाँ गया । जाकर अनुरुद्ध शाक्यसे बोला—“तात ! अनुरुद्ध ! इस समय ० हमारे कुलसे कोई भी ० प्रमजित नहीं हुआ । इसलिये तुम प्रमजित हो या मैं प्रमजित होऊँ ।”

‘म सुकुमार हूँ, घर छोड़ बेघर हो प्रमजित नहीं हो सकता, तुम्हारा प्रमजित होना ।”

“तात ! अनुरुद्ध ! आओ तुम्हें घर गृहस्थी समझा दें ।—पहिले गेह जोतवाना चाहिये । जोतवाकर रोवना चाहिये । रोवाकर पानी भरना चाहिये । पानी भरकर निकालना चाहिये, निकालकर सुखाना चाहिये, सुखवाकर क्यवाना चाहिये, क्यवाकर ऊपर लटाना चाहिये, ऊपर लट सोधा करना चाहिये, सोधा करा मर्द करना चाहिये (= मिसवाना) चाहिये, मिसवाकर पयाल हटाना चाहिये । पयाल को हटाकर भूसी हटाना चाहिये । भूसी हटाकर क्यवाना चाहिये । पटरवाकर जमा करना चाहिये । इसी प्रकार अगले वर्षा में भी करना चाहिये । काम (= अवश्यकतायें) बाध नहीं होते, कामोका अन्त नहीं जान पड़ता ।”

“कब काम खतम होगे, कब कामोका अन्त जान पड़गा ? कब हम दे-फिकर हो, पाँच प्रकार के कामोपभोगोंसे युक्त हो विचरण करोगे ?”

“तात ! अनुरुद्ध ! काम खतम नहीं होते, न कामोका अन्त ही जान पड़ता है । कामोको त्रिना खरम किये ही पिता और पितामह मर गये ।”

“तुम्हीं घर गृहस्थी सेमालो हम ही प्रमजित होवेंगे ।”

तब अनुरुद्ध शाक्य जहाँ माता थी वहाँ गया, जाकर मातासे बोला—

“अम्मा ! मैं घरसे बेघर हो प्रमजित होना चाहता हूँ, मुझे प्रमज्याके लिये आज्ञा दे ।”

अम्मा कहनेपर अनुरुद्ध शाक्य की माता ने अनुरुद्ध शाक्यको कहा—

“तात ! अनुरुद्ध ! तुम दोनों मेरे प्रिय = मन आप = अप्रतिमूल पुत्र हो, मनेन भी (तुमसे) अनिच्छुक नहीं होऊँगी, भला जीते जी प्रज्याकी स्वीकृति कैसे दूँगी ?”

दूसरी बार भी अनुरुद्ध शाक्यने माताको यो कहा० ।

तीसरी बार भी० ।

उस समय भद्वि नामक शाक्य राजा शाक्योंका राज्य करता था, (वह) अनुरुद्ध शाक्यका मित्र था । तत्र अनुरुद्ध शाक्यकी माताने (यह सोच)—यह भद्वि (=भदिक) शाक्यराजा अनुरुद्धका मित्र शाक्योंका राज्य करता है, वह घर छोड़ प्रव्रजित होना नहीं चाहेगा—और अनुरुद्ध शाक्यसे कहा—

“तात ! अनुरुद्ध ! यदि भद्वि शाक्य-राजा प्रव्रजित हो, तो तुमभी प्रव्रजित होना ।”

तब अनुरुद्ध शाक्य जहा भद्वि शाक्य राजा था, वहाँ गया, जाकर भद्वि शाक्य-राजासे बोला—

“सौम्य ! मेरी प्रज्या तरे आधीन है ।”

“यदि सौम्य ! तेरी प्रज्या मेरे आधीन है, तो वह आधीनता मुक्त हो । । सुखसे प्रव्रजित होवो ।”

“आ सौम्य दोनों० प्रव्रजित होवें ।”

“सौम्य ! मे प्रव्रजित होनेमें ममर्थ नहीं है । तेरे लिये ओर जो म कर सकता हूँ, वह करूँगा । तू प्रव्रजित हो जा ।

“सौम्य ! माताने मुझे ऐसा कहा है—यदि तात अनुरुद्ध ! भद्वि शाक्य राजा प्रव्रजित हो, तो तुम भी प्रव्रजित होना । सौम्य ! तू यह बात कह चुका है—‘यदि सौम्य ! तेरा प्रज्या मेरे आधीन है, तो वह आधीनता मुक्त हो । । सुखसे प्रव्रजित होवो’ । आ सौम्य ! दोनों प्रव्रजित होवें ।”

उस समयके लोग सत्यवादी सत्य प्रतिज्ञ होते थे । तत्र भद्वि शाक्य राजाने अनुरुद्ध शाक्यको यो कहा—

“सौम्य सात वर्ष टहर । सात वर्ष बाद दोनों० प्रव्रजित होवेंगें ।”

“सौम्य ! सात वर्ष बहुत चिर है । मे इतनी देर नहीं टहर सकता ।”

“सौम्य ! छ वर्ष टहर० ।”

“० नहीं टहर सकता ।”

“०पाँच वर्ष०” । “०चार वर्ष०” । “०तीन वर्ष०” । “०दो वर्ष०” । “०एक वर्ष०” । “०सात मास०” । “०छ मास०” । “०पात्र मास०” । “०चार मास०” । “०तीन मास०” । “०दो मास०” । “०एक मास०” । “०आध मास वा दोनो० प्रव्रजित होंगे ।”

“सौम्य ! आध मास बहुत चिर है । मे इतनी देर नहीं टहर सकता ।”

“सौम्य ! सप्ताहभर टहर, जिसमें कि मैं पुत्रों और भाइयोंको राज्य सौंप दूँ ।”

अनुसूय, आनन्द, उपलि आदिका सन्यासे ।

“सौम्य ! सहाह अधिक नहीं है, ठहरूँ गा ।”

तब भद्रिय शाक्य राजा, अनुसूय, आनन्द, भृगु, रिम्बिल, देवदत्त और सातवा उपालि हजाम, जमे पहिने चतुरगिनी-सेना-सहित यगीचे छे जाये जाते थे, वैसे ही चतुरगिनी-सेना सहित छे जाये गये । वह दूर तरु जा, सेनाको लौटा, दूसरेक राज्यमें पहुँच, आभूषण उतार, उपरनेमें गँठरी बांध, उपालि हजामसे यो बोले—

“भगे ! उपाली ! तुम लौने । तुम्हारी जोंचिकाव लिये इतना काफी है ।” तब उपाली नाईको लौरते वक्त यो हुआ—

“शाक्य चंड (= मोघी) होते हैं । ‘इसने कुमार मार डाले’, (समझ) मुझे मरवा डाली । यह राजकुमार हो, प्रमजित होंगे, तो फिर मुने क्या ?”

उसने गँठरी खोलकर, आभूषणोंको वृक्षपर लगा “जो दूने, उमको दिया, ७ जाय” कह, जहाँ शाक्य कुमार थे, वहाँ गया । उन शाक्य कुमारोंने दूरसे ही दया कि उपाली नाई आ रहा है । दम्बर उपाली नाईको कहा—

“भगे ! उपाली ! किस लिये लौट आये ?”

“भार्य-पुत्रो ! एतत् वक्त मुने यो हुआ—शाक्य चंड होते हैं । इसलिये आर्य पुत्रा ! मे गँठरी खोलकर, आभूषणोंको वृक्षपर लगा, वहाँस लौटा हूँ ।”

“भगे ! उपाली ! अच्छा किया, जो लौट आये । शाक्य चंड होते हैं । ‘इसने कुमार मार डाले’ (कह) तुझे मरवा डालने ।”

तब वह शाक्य कुमार उपाली हजामको ल वहा गया, जहा भगवान् थे । जाकर भगवान्को वन्दनाकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बंकर उन शाक्य कुमारोंने भगवान्से कहा—

“भन्ते ! हम शाक्य अभिमानो होते हैं । यह उपाली नाई, चिरकाल तरु हमारा नेत्रक रहा है । इसे भगवान् पहिले प्रमजित करायें । (जिधमें कि) हम इसरा अभिवादन, प्रत्युत्थान (=सम्मान) खड़ा होना), हाथ जोड़ना करें । इस प्रकार हम शाक्योंका शाक्य होनेका अभिमान मर्दित होगा ।”

तब भगवान्ने उपाली हजामको पहिले प्रमजित कराया, पीछे उन शाक्य-कुमारोंका । तब आयुमान् भद्रियने उभी घपके भीतर तीनों विद्याओंको साक्षात् किया । आयुमान् अनुसूयने दिव्य धनुको० । आ० आनन्दने सोतापत्ति फलको० । देवदत्तने पृथग्वनोवाली रुद्रिको सम्पादित किया ।

उस समय आयुमान् भद्रिय अरण्यमें रहते हुए भी, पढ़ने नीच रहत हुए भी, शून्य गृहमें रहत हुए भी, बराबर उद्यान बहते थे—“अहो ! सुख ! अहो ! सुख !” बहुतम भिनु जहा भगवान् थे, वहा गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ, उन भिनुओंने भगवान्से कहा—

“भन्त ! आयुमान् भद्रिय अरण्यमें रहत० । नि मेशय भन्त ! आयुमान् भद्रिय य मनसे प्रवचन चरण कर रहे हैं । उनी पुराने राज्य-मुखोंका याद करते अरण्यमें रहते० ।”

तब भगवान् ने एक भिक्षुको संयोजित किया—“आ, भिक्षु ! तू जाकर मेरे बचनम भक्षि भिक्षुको कह—आयुस भक्षि ! तुमको शास्ता बुलाते हैं ।”

“अच्छा” कह, वह भिक्षु जहाँ आयुमान् भक्षि ये, वहाँ गया । जाकर आयुमान् भक्षि को बोला—“आयुस भक्षि ! तुम्हें शास्ता बुला रहे हैं ।”

“अच्छा आयुस ।” कह उस भिक्षुके साथ (आयुमान् भक्षि) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुए आयुमान् भक्षि को भगवान् ने कहा—

“भक्षि । क्या सचमुच तुम अरण्यमें रहते हुये भी० उदान कहते हो० ।”

“भन्ते ! हाँ ।”

“भक्षि । किस बातको देखते हुये अरण्यमें रहते हुये भी० ।”

“भन्ते ! पहिले राजा होते वक्त अन्त पुरके भीतर भी अच्छी प्रकार रक्षा हाता रहती थी । नगर-भीतर भी० । नगर बाहर भी० । देश भीतर भी० । दश-शहर भी० । तो मे भन्ते । इस प्रकार रक्षित गोपित होते हुये भी भीत, उद्विग्न, स-शंक, घ्रास-युक्त घूमता था । किन्तु आज भन्ते ! अबेला अरण्यमें रहते हुये भी० शन्य-गृहमें रहते हुये भी, निडर, अनुद्विग्न, अ शक अ-घ्रास युक्त, वे फिकर विहार करता हूँ । इस बातको देख भन्ते । अरण्यमें रहते० ।”

नलरूपान-सूक्त (वि. पू. ४७०)

१ ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कोसल देशमें नलरूपानके पत्न्याम वनमें विहार करते थे। उस समय बहुतसे कुलीन कुलीन कुल-पुत्र भगवान्के पास घरसे बे घर हो प्रव्रजित थे थे, (जैसे)—आयुष्मान् अनुरद्ध, आयुष्मान् नन्दिष, आ० किम्बिल, आ० भृगु, आ० पण्डित, आ० रेवत, आ० आनन्द, तथा दूसरेभी कुलीन कुलीन कुल पुत्र। उस समय भिक्षु चक्र सहित भगवान् खुले आंगनमें बैठे थे। तब भगवान्ने उन कुलपुत्रोंके सर्वधर्म भिक्षुओंकी बोधित किया—

“भिक्षुओ ! जो वह कुल पुत्र मेरे पास थड़ा-पूतक ० प्रव्रजित हुये हैं, वह मनने प्रह्व-धर्ममें प्रसन्नतो हैं ?”

जमा कहनेपर भिक्षु चुप होगये। दूसरी बारभी भगवान्ने उन कुलपुत्रोंके सर्वधर्म भिक्षुओंकी बोधित किया—“भिक्षुओ !० ।”

तसरी बारभी वह भिक्षु चुप होगये। तीसरी बार भी “भिक्षुओ !० ।”

तीसरी बारभी वह भिक्षु चुप हो गये।

तब भगवान् (मनम) हुआ, “क्यों न ये उन्हीं कुलपुत्रोंको पूछूँ ?” तब भगवान्ने आयुष्मान् अनुरद्धको संबोधित किया—

“अनुरद्धो ! तुम (लोग) प्रह्वधर्ममें प्रसन्नतो हो न ?”

“हां भन्ते ! हम (लोग) प्रह्वधर्ममें उद्धत प्रसन्न हैं ।”

“साधु, साधु अनुरद्धो ! तुम जन्मे श्रद्धामें ० प्रव्रजित कुल पुत्रोंके यह बोध्यही है, कि तुम प्रह्वधर्ममें प्रसन्न हो। जो तुम अनुरद्धो ! उत्तम यौवन मण्डित प्रथम वयस, बहुतही वाग्देवा यात्र, कामोपभोग कर रह्ये, सो तुम अनुरद्धो ! उत्तम वादन ० यात्र, घरसे बे घर हो प्रव्रजित हुये। सो तुम अनुरद्धो ! राजाकी अर्जस्तीमें नर्तन ० प्रव्रजित हुये। चोरक घरसे नहीं ०। नगसे पीडित होकर नहीं ०। अपने पीडित होकर नहीं ०। ये राजीक होनेसे नहीं ०। यत्कि, (यही खोब) ‘जन्म, जरा, मरण, शोक, रोना पीटना, दुःख, दुर्मनता, हेराजन्म पैसा हूँ, दुःखम गिरा दुःखम लिपटा (हूँ), जो कहीं इस केवल दुःख स्पर्ध (= दुःखी तरी का बिनाश मालूम होता)’॥ अनुरद्धो ! तुम तो इस प्रकार श्रद्धायुक्त ० प्रव्रजित हुये हो न ?”

“हां, भन्त !”

‘जैसे प्रव्रजित हुये कुल-पुत्रोंको क्या करना चाहिये ? अनुरद्धो ! कामभोगोंसे, सुख (= अकृशाल) धर्मोंसे, अलग होना चाहिये। (मनुष्य तत्पत्त) विषेक = प्रीतिसुख या उससेभी अधिक शांत (= सुख) को नहीं पाता, (जयतककि) अमिष्या (= लोभ) उसने चित्तको पकड़े रहती है। व्यापाद (= द्वेष) उसके चित्तको पकड़े रहता है। औदत्य बौद्धत्य (= उच्छ्र-

खलता), ०विचिकित्सा (=संदेह)० । अरति (=असंतोष)० । तन्दी (=आलस्य) उक्त चित्तको पकड़े रहती है । अनुरद्धो ! कामनाओं से, बुरे धर्मोंसे विनेक प्राप्ति सुख प्राप्त करने से भी अधिक शांत (=सुख) को पाता है, (यदि), अभिव्या उमके चित्तको न पकड़े से, व्यापाद०, औद्धत्य-कौट्य०, विचिकित्सा०, अरति०, तन्दो उसके चित्तको न पकड़े रहे ।

“क्यों अनुरद्धो ! मेरे विषयमें तुम्हारा क्या (विचार) होता है, कि जो आश्रय (=चित्त मल) क्लेश (=मल) देनेवाले, आवागमन देनेवाले, सभय (=सदर), भविष्यत् दुःख फलोत्पादक, जन्म जरा मरण देनेवाले हैं, वह तथागतके नहीं छूटें, हमीलिये तथागत जानकर एकका सेवन करते हैं, ०एकको रक्षित करते हैं, जानकर एकका त्याग करते हैं जानकर एकको हृष्टते हैं ?”

“ नहीं भन्ते ! हमको ऐसा नहीं होता कि, जो आश्रय क्लेश देने वाले आवागमन देने वाले हैं, वह तथागतके नहीं छूटें० । भन्ते ! भगवान्‌के विषयमें हम (लोगों) को ऐसा होता है, कि जो आश्रय जन्म जरा-मरण देने वाले हैं, वह तथागतके छूट गये हैं । इसलिये तथागत जानकर एकको सेवा करते हैं, जानकर एकको करते हैं, जानकर एकका त्याग करते हैं जानकर एकको हृष्टते हैं ।”

“ साधु, साधु, अनुरद्धो ! जो आश्रय० क्लेश देने वाले हैं, वह तथागतके छूट गये हैं, नष्ट-मूल हो गये, टूटे तालसे हो गये, नष्ट हो गये, भविष्यमें न उत्पन्न वाले हो गये हैं जेमे अनुरद्धो ! शिरसे कटे ताल (का वृक्ष) फिर नहीं पनप सकता, ऐसेही अनुरद्धो ! जो आश्रय० क्लेश देने वाले हैं, वह तथागतके छूट गये० । इसलिये तथागत जानकर एकको सेवा करते हैं० ।”

+

+

+

+

+

राहुलोवाद सुत्त (वि. पू. ४७०)

१ पिताको २ तीनपलमें प्रतिष्ठितकर, मिथुसंघमहित भगवान् गिर राजगृहमें जा मीतवनमें विहार करने लगे ।

+ + + + +

अस्य लल्लिक राहुलोवाद सुत्त ।

१ ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहके वेशुपा कलन्दकनिर्वापमें विहार करते थे । उस समय आयुष्मान् राहुल २ भम्बलट्टिका विहार करते थे । तब भगवान् सार्यकाल को व्याप्तते उठ, जहां अभ्यलट्टिका पापे आयुष्मान् राहुल (थे) गए । आयुष्मान् राहुलने बुरेमेही भगवान्को आते देखा, देपकर आसन विग्रया, पेर धोनेके लिये पानी रखवा । भगवान्ने बिजाये आसनपर बैठ पेर धोये । आयुष्मान् राहुलभी भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये ।

तब भगवान्ने थोड़ा सा भग पानी लंगेमें छोड़ आयुष्मान् राहुलको सम्बोधन किया—

“ राहुल ! लोशक हम थोड़ेसे बचे पानीको देखता है ? ”

“ हाँ भन्ते ! ”

“ राहुल ! ऐसाही थोड़ा उनका श्रमण भाव (साधुवन) है, जिनको जानकर बड़ बोलनेमें लज्जा नहीं । ”

तब भगवान्ने उस थोड़ेसे बचे जलको फेंकर आयुष्मान् राहुलको संरोधित किया—

“ राहुल ! देखा मैंने उस थोड़ेसे जलको फेंक दिया ? ”

“ हाँ भन्ते ! ”

“ ऐसाही ‘क्वा’ उनका श्रमण भावभी है, जिनको जानकर बड़ बोलनेमें लज्जा नहीं । ”

तब भगवान्ने उस लोटेको ओंछा कर, आयुष्मान् राहुलको संरोधित किया—

“ राहुल ! तू इस लोटेको ओंछा देखता है ? ”

“ हाँ, भन्ते ! ”

१ जातक नि । २ श्रोत आपन्न मट्टरागामी अगगामी । ३ म नि २ २ १ ।

४ “वेषुपनके किन्ने एकान्त प्रियेके लिये किया गया वास-स्थान । यह आयुष्मान् (राहुल) सात वर्षक श्रमण होनेके समयसे ही एकान्त (रिक्ता) बसाते वहाँ विहार करते थे । ” (अ क.) ।

“पेसाही “औंधा” उनका धमण-भाव है—जिनको जान बूझकर झूठ बोलने लज्जा नहीं ।”

तब भगवान् ने उस छोटेको सीधावर आयुष्मान् राहुलको संशोधित किया—

“ राहुल ! इस छोटेको तू सीधा किया देग रहा है ? पाली देग रहा है ?”

“ हाँ भन्ते ! ” “पेसाही पाली तुच्छ उनका धमण भाव है, जिनको जान बूझकर झूठ बोलनेमे लज्जा नहीं । जमे राहुल ! हरिम समान एम्मे दाता वाला, महाकाय, सुन्दर जातिरा, संप्रामम जाने वाला, राजाका हाथी, संप्रामम जापर, अगले पैरोसे भी (एङ्गारका) काम करता है । पिछले पैरोसे भी काम करता है । शरीरके अगले भागसे भी काम करता है । शरीरके पिछले भागसे भी काम करता है । शिरसे भी काम करता है । कायसे भी काम करता है । दांतसे भी काम करता है । पूँछसे भी काम लेता है । लेकिन सूँडको (पेनाम) रखता है । हाथीजानको पेसा (विचार) होता है—‘ यह राजाका हाथी हरिम जैसे दांतों वाला० पूँछमे भी काम लेता है, (लेकिन) सूँडको (पेनाम) रखता है । राजाके एम्मे नागका जीवन अविविधमनीय है ’ ।

“लेकिन यदि राहुल ! राजाका हाथी हरिम जमे दांतवाला०, पूँछसे भी काम करता है, सूँडसे भी काम करता है, तो राजाके हाथीका जीवन विविधनीय है, अथ राजाके हाथीको और दुष्ट करना नहीं है । ऐसे ही राहुल ! ‘जिमे जानाबूझकर झूठ बोलनेमे लज्जा नहीं, उसके लिये कोई भी पाप कर्म अनङ्गणीय नहीं’ पेसा मे मानता हूँ । इसलिये राहुल ! ‘हँसीमें भी नहीं झूठ बोलूँगा’, यह सीख ऐनी चाहिये ।

“तो क्या जानने हो, राहुल ! दर्पण किस कामके लिये है ?”

“भन्ते ! देखनेके लिये ।”

“एसे ही राहुल ! देग देवकर कायासे काम करना चाहिये । देग देवकर बचनमे काम करना चाहिये । दस देवकर मनमे काम करना चाहिये ।

“जब राहुल ! तू कायासे (कोई) काम करना चाहे, तो तुझे कायाके कामपर विचार करना चाहिये—‘जो मे यह काम करना चाहता हूँ, क्या यह मेरा काय कर्म अपने लिये पीडा दायक तो नहीं हो सकता ? दूसरेके लिये पीडा दायक तो नहीं हो सकता ? (अपने और पराये) दोनोंके लिये पीडा दायक तो नहीं हो सकता ? यह अ बुझाल (=बुरा) काय कर्म है, दु खका हेतु =दु ख विपाक (=भोग) देनेवाला है ? यदि तू राहुल ! प्रत्यपेक्षा (=देवभाव=विचार) कर ऐसा जाने—‘जो मे यह कायासे काम करना चाहता हूँ० । यह बुरा काय कर्म है ।’ ऐसा राहुल ! काय कर्म सर्वथा न करता चाहिये । यदि तू राहुल ! प्रत्यपेक्षाकर ऐसा समझे,—‘जो मैं यह कायासे काम करना चाहता हूँ, यह काय कर्म न अपने लिये पीडा दायक हो सकता है, न परके लिये—। यह बुझा (=अच्छ) काय-कर्म है, सुखका हेतु =सुख विपाक है’ । इस प्रकारका नग राहुल ! तुझे कायासे करना चाहिये ।

राहुलावाद सुत्त ।

“राहुल ! कायासे काम करते हुए भी, तब काय कर्मका प्रत्ययक्षण (= परीक्षा) करना चाहिये—‘क्या जो मैं यह कायासे काम कर रहा हूँ, यह मेरा काय कर्म अपने लिये पीड़ा दायक है०’ । यदि तू राहुल० जाने । ० यह काय कर्म अकुशल है० । तो राहुल ! इस प्रकारके काय-कर्मको छोड़ देना । ० यदि० जाने । ० यह काय कर्म कुशल है, तो इस प्रकारक काय-कर्मको राहुल बारबार करना ।

“काय-कर्म काय भी राहुल ! काय कर्मका फिर तुझे प्रत्ययक्षण करना चाहिये—‘क्या जो मैंने यह काय-कर्म किया है, वह मेरा काय कर्म अपने लिये पाडादायक है० । यह काय-कर्म अकुशल है०’ । ० जाने । ० अकुशल है । तो राहुल इस प्रकारके काय कर्मको शाश्वतताके पास, या बिना गुरु भारी (= सख्तचारी) के पास कहना चाहिये, खोलना चाहिये = उतारना करना चाहिये । कहकर, खोलकर = उतारकर, आगेको समय करना चाहिये । यदि राहुल ! तू प्रत्ययक्षणका जाने । ० कुशल है । तो दिनरात कुशल (= उत्तम) धर्मा (= राता) में शिष्या प्रवृत्त करनेवाला बन । राहुल ! इससे तू प्रीति = प्रमोदने विहार करेगा ।

“यदि राहुल ! तू, ध्वनने काम करना चाह० । ० कुशल ध्वन-कर्म० करना । ० बार बार करना । ० उससे तू० प्रीति = प्रमोदने विहार करेगा ।

“यदि तू राहुल ! मनसे काम करना चाह० । ० कुशल मन कर्म० करना । ० बार बार करना । मन काम काय० यह मनकर्म अकुशल है० । तो इस प्रकारके मानकर्म में गिरा होना चाहिये, शोका करना चाहिये, घृणा करना चाहिये । बिना हा, शोककर घृणाकर आगेको समय करना चाहिये । ० यह मनकर्म कुशल है० । उससे तू० प्रमोदने विहार करेगा ।

“राहुल ! जिन किन्हीं धम्मणो (= भिक्षुओं) या ब्राह्मणों (= सन्तों) ने अतीत कालमें काय-कर्म०, ध्वनकर्म०, मनकर्म० परितोषित किये । उन गणों इसी प्रकार प्रत्ययक्षणकर प्रत्ययक्षणकर काय०, ध्वन०, मन कर्म परितोषित किये । जो को राहुल ! धम्मण या ब्राह्मण भविष्यकालमें भी काय०, ध्वन०, मन कर्म परितोषित करेंगे, वह सब इसी प्रकार० । जो कोई राहुल ! धम्मण या ब्राह्मण आजकल भी काय०, ध्वन०, मन कर्म परितोषित करते हैं, वह सब भी इसी प्रकार० ।

“इसलिये राहुल ! तुझे सीखना चाहिये कि मैं प्रत्ययक्षणकर काय कर्म०, ध्वन कर्म०, मन कर्म परितोषित करूँगा ।”

अनाथ-पिंडककी दीक्षा । जेतवन-स्वीकार । (वि. पू. ४६६)

“ऐसा मेने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें सीतवनमें विहार करत थे । उस समय अनाथ-पिंडक गृहपति किसी कामसे राजगृहमें आया था । अनाथ पिंडकने सुना—‘लोकमें बुद्ध उत्पन्न हो गये’ । उन्नी वक्त वह भगवान्के दर्शनार्थ जानेके लिये इच्छुक हुआ । तब उम० को हुआ

“उस समय अनाथ-पिंडक गृहपति (जो) राजगृहमें श्रेष्ठीका बहनोई था, किसी कामसे राजगृह गया । उस समय राजगृह-श्रेष्ठीने सघ सहित बुद्धको वृत्तर दिनक लिये निमंत्रण दे रक्खा था । इसलिये उसने दासों और कम करोंको आज्ञा दी—

“तो भणे । समयपर हो उठकर खिचटो पकाजा, भात पकाओ । सूप (=तेमन) तैयार करो ।” तब अनाथपिंडक गृहपतिको ऐसा हुआ—“पहिले मेरे आनेपर यह गृहपति, सब काम छोटकर मेरेही आच-भगतमें लगा रहता था । आज विश्विस्त दासों कमकरोंको आज्ञा दे रहा है—“तो भणे । समयपर० ।” क्या इस गृहपतिके (यद्वा) आवाह होगा, या विवाह होगा, या महायज्ञ उपस्थित है, या लोंग बाग सहित मगध राज श्रेणिक विश्वपार कऊव लिये निमंत्रित किये गये हैं ?”

तब राज गृहक श्रेष्ठी दासा और कमकरोंको आज्ञा दकर, जहाँ अनाथ पिंडक गृहपति था, वक्षा आया । आकर अनाथ पिंडक गृहपतिके साथ प्रतिसम्मोदन (=प्रणामापाती) कर, एक ओर बट गया । एक ओर बैठ हुये, राजगृहक श्रेष्ठीको अनाथ पिंडक गृहपतिने कहा—“पहिले मेरे आनेपर तुम गृहपति ।०।”

“गृहपति ! मेरे (यहाँ) न आवाह होगा, न विवाह होगा । न मगध राज निमंत्रित किये गये हैं । बलिक कल मेरे यहाँ बड़ा यज्ञ है । सघ सहित बुद्ध (=बुद्ध प्रमुख संघ) कलके लिये निमंत्रित है ।”

“गृहपति ! तू ‘बुद्ध’ कह रहा है ?” “गृहपति ! हाँ ‘बुद्ध’ कह रहा हूँ ।” “गृहपति ! ‘बुद्ध’० ?” “गृहपति ! हाँ ‘बुद्ध’० ।” “गृहपति ! ‘उद्ध’० ?” “गृहपति ! हाँ ‘बुद्ध’० ।”

“गृहपति ! ‘बुद्ध’ यह शब्द (=घोष) भी लोकमें दुर्लभ है । गृहपति ! क्या इस समय उन भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धके दर्शनके लिये जाया जा सकता है ?”

“गृहपति ! यह समय उन भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धक दर्शनार्थ जानका नहीं है ।”

तब अनाथ पिंडक गृहपति—“अब कल समयपर उठा भगवान्के दर्शनार्थ जाऊँगा” इस बुद्ध विषयक स्मृतिको (मनमें) ल मो रहा । रातको सोता समझ चीनचार उठा । तब अनाथ-पिंडक गृहपति जहाँ (राजगृह नगरका) शिवद्वार था, (वहाँ) गया । अ-मनुष्यो (=देव आदि)

अनाथ पिंडककी दीक्षा ।

द्वार खोल दिया । तब अनाथ पिंडक० नगर से बाहर निकलत ही प्रकाश अन्तर्धान होगया, गन्धकार प्रादुर्भूत हुआ । (उसे) भय, जड़ता और रोमांच उत्पन्न हुआ । तब अनाथ पिंडक गृहपति जहाँ सीत वन (है वहाँ) गया । उस समय भगवान् रात के प्रत्युष (= भिनसार) कालमें उठकर चोड़मे रहल रहे थे । भगवान्ने अनाथ पिंडक गृहपतिको दूरसे ही आते हुये देखा । देखकर चक्रमण (= रहलनेकी जहग) से उतरकर, विछे आमनपर बढ गये । त्रेकर अनाथ-पिंडक गृहपतिको कहा—“आ सुन्त ।” अनाथ पिंडक गृहपति यह (सोच) “भगवान् मुझे नाम लेकर बुला रहे है” टट = उन्म (= फूला न समाता) हो , जहाँ भगवान् , वहाँ गया । तब भगवान्ने चरणोंमें शिरसे पड़कर बोला—

“भन्ते ! भगवान्को निद्रा सुखसे तो आरं ?”

“निर्माण प्राप्त ब्राह्मण सर्वदा सुषमे सोता है ।

शीतल हुआ, शेष रहित हो जोकि वाम धामनाजाम लिस नहा होता ॥

मारी आसक्तियोंको रंजितकर हृदयसे डरको हटाकर ।

चित्तकी शांतिको प्राप्तकर उपशांत हो (वह) सुषमे सोता है ॥ ’

तब भगवान्ने अनाथ पिंडक गृहपतिको आनुपूर्वी १ क्या० कहा । जैसे कालिमा रहित बुद्ध वत्त अच्छी तरह रंग पकड़ता है, ऐसे ही अनाथ पिंडक गृहपतिको उसी आमनपर ‘जो कुत्त समुदय धर्म है वह निरोध धर्म है’, यह वि रज = वि मल धर्म चक्षु उत्पन्न हुआ । तब टट धम = प्राप्त धर्म = विन्ति धर्म = पर्यवगाढ धर्म, रुद्ध रहित, गान् विगान्-रहित, शारताव शासन (= उद धर्म)म स्वतंत्र हो, अनाथ पिंडक गृहपतिने भगवान्से कहा—

“आश्चर्य ! भन्ते ! आश्चर्य ! भन्ते ! जंत,ओषको सीधा वरह, कन उवाहद, भूएका रास्ता यतलाद्, अधिकारमें तेलका प्रदीप रखे जिमम आँखवाटे रूप दत्त, ऐसेही भगवान्ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया । मैं भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघकी (शरण जाता हूँ) । आजसे मुझे भगवान् साजलि शरण आया उपामक ग्रहण करूँ । भगवान् भिक्षु संघके सहित कक्या मरा भोजन स्वीकार कर ।”

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया । तब अनाथ पिंडक० भगवान्की स्वीकृतिको जान, आसनमे बैठ, भगवान् को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर चलागया । राजगृहक श्रेष्ठी न मुना— अनाथ पिंडक गृह पतिने कक्या भिक्षु संघ सहित उदको निमंत्रित किया है । तब राजगृहक श्रेष्ठोंने अनाथ पिंडक गृह पति से कहा—

“तू गृह पति ! कल्पे लिखे भिक्षु मध-महित बुद्धका निर्मंत्रित किया है, और त आगतुक (= पाहुना = अतिथि) है । इमन्त्रिने गृह पति ! मैं तुने स्वर्च दत्ता हूँ, जिससे तू बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघकेलिये भोजन (तय्यार) करे ?”

“नहीं गृहपति ! मेरे पास खव है, जिसमे मैं बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघका भोजन (तय्यार) करूँगा ।”

राज गृहक नेगमने सुना—अनाथ पिंडक० । तत्र राजगृहके नगमने अनाथ पिंडक० को यो कहा—“० मे तुझे खर्च० देता हूँ”

“नहीं आय ! मेरे पास खर्च है० ।”

भगध राज० ने सुना—० । तत्र भगध राज०ने अनाथ पिंडक०को कहा० “मे तु खर्च० देताहूँ” ।

“नहीं देव ! मेरेपास खर्च है० ।”

तत्र अनाथ पिंडक गृह पतिने उस रातके बीत जानेपर, राजगृहके श्रेष्ठीके महान्तर उत्तम खाद्य भोज्य तय्यार करा, भगवान्को कालकी सूचना दिलाई “काल है भते ! भाजन तय्यार होगया” । तत्र भगवान् पूर्वाह्नके समय ॥ आच्छाठित हो, पात्र चीवर हाथमें ल, वहाँ राजगृहके श्रेष्ठीका सत्कार था, वहाँ गये । जाकर भिक्षुसंघ सहित बिठाये आसनपर बठे । तत्र अनाथ पिंडक गृह-पति बुद्ध-प्रमुख भिक्षु सघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य भाज्यसे 'सर्पित कर, पूर्णकर, भगवान्को भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, एक ओर बठ गया । एक ओर वह अनाथ पिंडक गृह-पतिने भगवान्से कहा—

“भिक्षु संघके साथ भगवान् श्रावस्तीमें वषा वास स्वीकार करें ।”

“शून्य-आगारमें गृहपति ! तयागत क्षमिरमण (=विहार) करते हैं ।”

“समस्त गया भगवान् ! समस्त गया सुगत !”

उस समय अनाथ-पिंडक गृह पति बहु मित्र = बहु-महाय, और प्रामाणिक था । राज गृहर्ष (अपने) कामको सतम कर, अनाथ-पिंडक गृह पति श्रावस्तीको चल पड़ा । नगम उसने मनुष्योको कहा—“आर्यो ! आराम बनराओ, विहार (=भिक्षुओंके रहनेका स्थान) प्रतिष्ठित करो । लोकमें बुद्ध उत्पन्न होगये हैं, उन भगवान्को मेन निमंत्रित किया है, (वह) इसी मार्गसे आवेंगे ।” तत्र अनाथ पिंडक गृह-पति-द्वारा प्रेरित हो, मनुष्योने आराम उन्नाथ, विहार प्रतिष्ठित किये, दान (=मदागत) स्वत्वे ।

तत्र अनाथ पिंडक गृह पतिने श्रावस्ती जाकर, श्रावस्तीके चारों ओर नजर दोढ़ाई—

“भगवान् कहां निवास करेंगे ? (ऐसी जगह) जो कि गांवसे न बहुत दूर हो, न बहुत समीप, बाहोवालोंक आने जाने योग्य, इच्छुङ मनुष्योंके पहुँचने लायक हो । दिनका कम भीट रातको अल्प शब्द = अल्प निद्रोप, बि जन घात (=आदमियाकी हवासे रहित) मनुष्यासे एकान्त, ध्यानके लायक हो ।” अनाथ पिंडक गृहपतिने (ऐसी जगह) जेत राज कुमारका उद्यान देखा, (जो कि) गांवसे न बहुत दूर था० । देखका जहां जेत राजकुमार था, वहाँ गया । जाकर जेत राजकुमारसे कहा—

“आर्य पुत्र ! मुझे आराम यनानेक लिय उद्यान दीजिये ?”

“गृहपति ! ‘कोटि-संधारमे भी’ (वह) आराम अर्देय है ।”

अनाथ पिंडककी दीक्षा ।

“आर्य पुत्र ! भेने आराम ले लिया ।”

“गृहपति ! तू आराम नहीं लिया ।”

‘लिया था नहीं लिया’, यह उन्होंने व्यंग्यर अमात्या (= न्यायाभ्यास) को पूरा । महामात्योंने कहा—

“आर्य पुत्र ! क्योंकि तू मोल किया, (हसगिये) आराम ले लिया ।”

तब अनाथ पिंडक गृहपतिने गारियोंपर हिरण्य (= मोहर) दुल्लाकर जेतनसे ‘कोटि स-थार’ (= किनारेसे किनारा मिगाका) चित्र लिया । एक बारके लिये (हिरण्य) से (द्वारके) कौनके चारो ओरका थोड़ासा (स्थान) पूरा न हुआ । तब अनाथ पिंडक गृहपतिने (अपनी) मनुष्योंको आज्ञा दी—

“जामो भगे ! हिरण्य ले आगो, हम ग्याकी स्थानको ढरिं ।” तब जेत राजकुमारको (स्थान) हुआ—“यह (काम) कम महत्वका न होगा, क्योंकि यह गृहपति बहुत हिरण्य खर्च कर रहा है ।” (और) अनाथ-पिंडक गृहपतिको कष्ट—

“यम, गृहपति ! तू हम ग्याली जगहको मा रूँक्या । यम ग्याली जगह (= भयशास) सुने दे, यह मेरा दान होगा ।”

तब अनाथ पिंडक गृहपतिने ‘यह जेत कुमार गण्य-धान्य प्रसिद्ध मनुष्य है । इस धर्म-चिन्त (= धर्म) में ऐसे आत्मीका प्रेम लाभदायक है ।’ (मोघ) यह स्थान जेत राजकुमारको दे दिया । तब जेत कुमारने उस स्थानपर कोठा बनवाया । अनाथ पिंडक गृहपतिने जेतनम विहार (= भिक्षु विश्राम-स्थान) बनवाये । परिवेग (= जगनपहित घर) बनवाये । कोठरियां । उदस्थान शालायें (= सभा गृह) । अग्नि-शालायें (= पानी-गर्म करनेके घर) । कल्पिक-कुटियां (= भंडार) । पागाने । पैदाउमाने । चक्रमण (= टहलनेके स्थान) । चक्रमण शालायें । प्याउ । प्याउ घर । जन्ता घर (= रानानागर) । जन्ताघर शालायें । पुनरिगियां । मंडप ।

भगवान् राजगृहमें हृच्छानुसार विहारकर, जिधर बेशाली थी, उधर चारिका (= रामत) को धन पड़े । क्रमशः चारिका बरते हुये जहाँ बेशाली थी, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् बेशालीमें महावनकी फूलागार शालामें विहार करते थे । उस समय लोग सत्कार पूर्ण नय कर्म (= नये भिक्षु निवासका निमाण) कराते थे । जो भिक्षु नव-कर्मकी देय देण (= अधिष्ठान) करते थे, वह भी (१) चीवर (= वस्त्र), (२) पिंड पात (= भिक्षाण), (३) शयनासन (= धर), (४) स्थान प्रत्यय (= रोगि पथ्य) औषध्य (= औषध) इन परिष्कारोमें सत्कृत होते थे । तब एक दृष्टि तंतुमाय (= जुलाहा) के (मनम) हुआ—“यह छोटा काम न होगा, जो कि यह लोग सत्कार पूर्वक नय कर्म कराते हैं, क्यों न मैं भी नव-कर्म बनाऊँ ?” तब उस गरीब तंतु मायने स्वयं ही बीचड़ तैयारकर, ईंट चिन, भीत छोड़ीकी । अनजान होनेसे उसकी बनाई भीत गिर पड़ी । दूसरीबार भी उस गरीब । तीसरीबार भी उस तृत्ति । तब वह गरीब

१ घमाड (जि० मुजफ्फरपुर) के प्राय २ मील उत्तर वर्तमान कोल्हूआ, जहाँ आज भी अशोक स्तम्भ पड़ा है ।

तन्तुवाय गिरा होता था—“इन शाक्य पुत्रीय श्रमणोंको जो चीवर० देते हैं, उन्होंने न कर्मकी देख-रेख करते हैं । मैं दृष्टि हूँ, इसलिये कोई भी मुझे न उपदेश करता है, न अनुमान करता है, और न मम कर्मकी देख-रेख करता है ।” भिक्षुओंने उस गरीब तन्तुवायको खिलोते सुना । तब उन्होंने इस बातको भगवानसे कहा । तब भगवानने इसी संबन्धम, इसा प्रकरणमे, धार्मिक कथा कहकर, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“ भिक्षुओ ! नव कर्म देनेकी आज्ञा करता हूँ । नव-कर्मिक (=विहार वनवानेका निरीक्षक) भिक्षुको विहारकी जल्दी तयारीका ख्याल करना चाहिये । (उसे) दृष्टे फूटका सरसमत करानी होगी । और भिक्षुओ ! (नव कर्मिक भिक्षु) इस प्रकार देना चाहिये । पहिले भिक्षुसे प्रार्थना करनी चाहिये । फिर एक चतुर समर्थ भिक्षु द्वारा मघ जापित दिया जाना चाहिये—

“ भन्ते ! सघ मुझे सुने । यदि सघको पसन्द है, तो अमुक गृह पतिके विहारका नव कर्म, अमुक भिक्षुको दिया जाये । यह जसि (=निवेदन) है ।

“ भन्ते । सघ मुझे सुने । अमुक गृह पतिके विहारका नव-कर्म अमुक भिक्षुको दिया जाता है । जिस आयुष्मानको मान्य है, कि अमुक गृह पतिके विहारका नव कर्म अमुक भिक्षुको दिया जाय, वह चुप रहे, जिसको मान्य न हो बोले ।”

“ दूसरी बार भी० ” । “ तीसरी बार भी० । ”

“ मघने० नव कर्म अमुक भिक्षुको दे दिया, मघको मान्य है, इसलिये चुप है, ऐसा म ममजता हूँ । ”

भगवान् वेणालीमे इच्छानुसार विहार करके, जहाँ श्रावस्ती है वहाँ चारिकके लिये चले । उस समय छ वर्गाय भिक्षुओंके शिष्य, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु मघके आगे आगे जाकर, विहारोंको दखलकर लेते थे, शिष्याय दखलकर लेते थे—“ यह हमारे उपाध्यायोंके लिये होगा, यह हमारे आचार्योंके लिये होगा, यह हमारे लिये होगा । ” आयुष्मान् सारिपुत्र, बुद्ध प्रमुख मघके पहुँचनेपर, विहारोंके दखल हो जानेपर, शिष्याओंके दखल हो जानेपर, शिष्या न पा, किसी उपायके नाचे बैठे रहे । भगवान्ने रातके भिनवारको उठकर खाँसा । आयुष्मान् सारिपुत्रने भी खाँसा ।

“ कौन यहाँ है ? ” “ भगवान् । मे सारिपुत्र । ” “ सारिपुत्र ! तू क्यों यहाँ नहा है ? ”

तब आयुष्मान् सारिपुत्रने सारी बात भगवानसे कही । भगवान्ने इसी संबन्धम— इसी प्रकरणमे भिक्षु मघको जमा करवा, भिक्षुओंसे पढ़ा—

“ सचमुच भिक्षुओ । छ वर्गाय भिक्षुओंके अन्तेवामी (=शिष्य) बुद्ध प्रमुख सघके आगे आगे जाकर० दखलकर लेते हैं ? ”

“ सचमुच भगवान् ! ”

भगवान्ने चिक्का—“ भिक्षुओ ! कैसे वह नालायक भिक्षु बुद्ध प्रमुख सघके आगे० ? भिक्षुओ । यह न श्रमणोंको प्रसन्न करनेके लिये है, न प्रमत्ताको अधिक प्रसन्न करनेके लिये

अग्रपिंड योग्य ।

है, बल्कि अ प्रसन्नोको (और भी) अप्रसन्न करनेके लिये, तथा प्रसन्नो (= ब्रह्मालुओं) में से भी किसी किसीके उत्पन्न (अप्रसन्न) हो जानेके लिये हैं ।”

थिंकार कर धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—

“ भिक्षुओ ! प्रथम आसन, प्रथम जल, और प्रथम परोषा (= अग्र पिंड) के योग्य कौन है ?”

किन्हीं भिक्षुओंने कहा—“ भगवान् ! जो क्षत्रिय कुलसे प्रमज्जित हुआ हो, यह योग्य है ।”

किन्हीं० ने कहा—“ भगवान् ! जो ब्राह्मण कुलसे प्रमज्जित हुआ है, यह० ।”

किन्हीं० ने कहा—“ भगवान् ! जो गृह पति (= गृह्य) कुलमे ।”

किन्हीं० ने कहा—“ भगवान् ! जो सौनातिक (= सूत्र पाठी) हो० ।”

किन्हीं० ने कहा—“ भगवान् ! जो विनय घर (= विनय पाठी) हो० ।”

किन्हीं भिक्षुओंने कहा—“ भगवान् ! जो धर्म कथिक (= धर्मव्याख्याता) हो० ।”

किन्हीं० —“ जो प्रथम ध्यान का छात्री (= पाने वाला) हो० ।

किन्हीं० —“ जो द्वितीय ध्यानका छात्री ।” “जो तृतीय ध्यानका० ।” “जो चतुर्थ ध्यानका० ।” “जो सोत्तापन्न (खोत आपन्न) हो० ।” “ जो सक्किदागामी (= सट्टदागामी)० । जो अनागामी० ।” “जो अहत्त० ।” “जो त्रैविद्य हो० ।” “जो पद्म-अभित्त० ।”

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

“पूर्वकारमे भिक्षुओ ! हिमाण्यके पासमें एक बड़ा बर्गद था । उसको आश्रयकर, तित्तिर, घानर और हाथी तीन मित्र विहार करते थे । वह तीनों एक दूसरेका गौरव न करते, सहायता न करते, साथ जीविका न करने हुये, विहार करते थे । भिक्षुओ ! उन मित्रों को पेसा (विचार) हुआ—‘अहो ! हम जानें (कि हममें कौन जेठा है), ताकि हम जिसे जन्मसे पचा जानें, उसका सत्कार करें, गौरव करें, मानें, पूजें, और उसकी सोखमें रह ।’

तब भिक्षुओ ! तित्तिर और मर्कट (= घानर) ने हस्ति-नाग को पूजा—

‘सौम्य ! तुम्हें क्या पुराना (बात) याद है ?’

‘सौम्यो ! जब मे वधा था, तो इस न्यग्रोध (बगद) की जाँघाव बीचमें करके लाँघ जावा था । इसकी पुनगा मेरे पेटको छुती थी । ‘सौम्यो ! यह पुरानी बात स्मरण है ।’

“तब भिक्षुओ ! तित्तिर और हस्ति नागने मर्कटको पूजा—

‘सौम्य ! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है ?’

‘सौम्यो ! जब मे वधाथा, मृमिम चैत्रर हम बर्गदके पुनगीके अंकुशोंको खाता था । सौम्यो ! यह पुरानी० ।’

“तब भिक्षुओ ! मर्कट और हस्ति-नागने तित्तिरको पूजा—

‘सौम्य ! तुम्हें क्या पुरानी (यात) याद है ?’

‘सौम्यो ! उस जगहपर महान् बर्गद था, उससे फल खाकर हम जगह मैंने बिना किया, उसीसे यह बर्गद पदा हुआ । उस समय सौम्यो ! मे जन्मसे बहुत सयाना था ।’

‘तब भिक्षुओ ! हाथी और मर्कटने तित्तिर को यों कहा—

‘सौम्य ! तू जन्ममें हम मयसे बहुत बड़ा है । तेरा हम सत्कार करेंगे, गौरव करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे, और तेरी सोखमें रहेंगे ।’

‘तब भिक्षुओ ! तित्तिरने मर्कट और हस्ति नागको^१ पाच शील ग्रहण कराये, आप भी पांच शील ग्रहण किये । यह एक दूसरेका गौरव करते, सहायता करते, साथ जीविका करते हुये विहरकर, काया छोड़ मरनेके बाद, सुगति (प्राप्त कर) स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुये । यही भिक्षुओ ! तेत्तिरीय ब्रह्मचर्य हुआ—

‘धर्मको जानकर जो मनुष्य बुद्धका मत्कार करते हैं ।

(उनके लिये) इसी जन्ममें प्रज्ञा है, और परलोकमें सुगति ।’

‘भिक्षुओ ! यह तिर्यग् योनिसे प्राणी (ये, तो भी) एक दूसरेका गौरव करते, सहायता करते, साथ जीवन यापन करते हुये, विहार करते थे । और भिक्षुओ ! यहाँ क्या यह शोभा देगा, कि तुम ऐसे सु-आदयात धर्म प्रियमें प्रवर्जित होकर भी, एक दूसरेका गौरव न करते, सहायता न करते, साथ जीवन यापन न करते (हुये) विहार को । भिक्षुओ ! यह न अप्रसन्नो को असन्न करनेके लिये है० ।’

धिकारकर धार्मिक कथा कहके उन भिक्षुओको संबोधित किया—

‘भिक्षुओ ! बुद्ध पनके अनुमार अभिवादन, प्रत्युत्थान, (बड़ेके सामने खड़ा होना), हाथ जोड़ना, कुशलप्रदान, प्रथम-आसन, प्रथम जल, प्रथम परोसा देनेकी अनुज्ञा करता है । साधक बुद्धपनके अनुसरणको न तोड़ना चाहिये, जो तोड़े उसको ‘^२दुष्कृत’ की आपत्ति (होगी) । भिक्षुओ ! यह दत्त अवन्दनीय है—

‘पूर्वके उप सम्पन्नको पीछेका ^३उपसम्पन्न अवन्दनीय है । अनु-उपसम्पन्न अवन्दनीय है । नाना सह-वासी, ब्रह्म तर अ धर्म-वादी० । क्षियां० । नपुसक० । ^४‘परिवास’ दिया गया० । ^५‘मूलके प्रति-कर्पणाहं० । ^६‘मानत्वाहं० । ^७‘मानत्त्व चारिक० । ^८‘आह्वानाहं० । भिक्षुओ ! यह तीन वन्दनीय हैं—पीछे उपसम्पन्न द्वारा पहिले उपसम्पन्न हुआ वन्दनीय है, नाना सहवासी बुद्धतर धर्मवादी० । देव-मार ब्रह्मा सहित सारे लोकके लिये, देव-मनुष्य भ्रमण ब्राह्मण मन्त्रि सारी प्रजाके लिये, तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध वन्दनीय हैं ।

१ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, मद वर्जन ।

२ भिक्षु नियमके अनुसार छोटा पाप है । ३ भिक्षुकी दीक्षा प्राप्त । ४ किसी अपराध कारण संघ द्वारा कुछ दिनोंके लिये पृथक् करण । ५ यहभी पृक् दंड ।

जैतवन स्वीकार । वर्षावास ।

अमरा चारिका करते हुये, भगवान् जहाँ आवन्तो है, वहाँ पहुँच । वहाँ श्रावस्तीमें भगवान् अनाथ पिंडकके आराम 'जैत-वन'में विहार करते थे । तब अनाथ पिंडक गृहपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया, आकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ हुये, अनाथ पिंडक गृहपतिने भगवान्‌से कहा—

“भन्ते ! भगवान् भिक्षु-संघ-सहित कच्छो मेरा भोजन स्वीकार करें ।”

भगवान्‌ने मौन रह स्वाकार किया । तब अनाथ पिंडक० भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया । अनाथ पिंडकने उस रातके बोध जानेपर उत्तम खाद्य भोज्य ले-वार कावा, भगवान्‌को काल सुविक्त कराया० । तब अनाथ-पिंडक गृहपति अपने हाथसे कुछ प्रमुख भिक्षु संघको उत्तम खाद्य भोज्यसे संतर्पित कर पूर्णकर, भगवान्‌के पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक ओर० बैठकर भगवान्‌से बोला—

“भन्ते ! भगवान् ! ये जैतवान्‌के विषयमें कैसे कहें ?”

“गृहपति ! जैतवनको आगत अनागत चातुर्दिश संघक लिये प्रदानकर दे ?”

अनाथ पिंडकने 'ऐसा ही भन्ते ।' उत्तर दे, जैतवनको आगत-अनागत चातुर्दिश भिक्षु संघको प्रदानकर दिया ।

+ + + +

तथागत प्रथम बोधिम = तीसवर्ष तक अस्थिर वास हो, जहाँ जहाँ ठोक रहा वहीं जाकर वास करते रहे । पहिली-वर्षा में ऋषिपतनमें धर्म चक्र प्रवर्तन कर वाराणसीक पास ऋषिपतनमें वास किया । दूसरी वर्षा में राजगृह येशुवनमें० तीसरी चौथी भी वहीं । पाचवीं-वर्षा में वेशालीमें महावन कृष्णारक्षालामे । छठवीं वर्षा संकुल पर्वतपर । सातवीं त्रयस्त्रिंश भवनमें । आठवीं मगदेशमें सुसुमारगिरिके मेघकल्यावनमें । नवीं कौशाम्बीमें । दसवीं पारिलेयक वनछेदमें । बाराहवीं नाला माह्यग ग्राममें । बारहवीं वेरजामे । तेरहवीं चालिय पर्वतमें । चौदहवीं जैतवनमें । पंद्रहवीं कपिल वस्तुमें । सोलहवीं आलवकने दमनकर आलवीमें । सत्रहवीं राजगृहमें । अठारहवीं भी चालिय पर्वतपर, और उन्नीसवीं भी । बीसवीं-वर्षा में, राजगृह हीमें बने । इस प्रकार बीसवर्ष अ निगद- (वर्षा)-वास करते, जहाँ जहाँ ठोक हुआ, वहीं बसे । इससे आगे दो ही शयनासन (= निवास न्याय) ध्रुव-परिमोग (= मद्रा रहनेके) किये । कौनसे दो ?—जैतवन और पूर्वाराम ।

१ अ नि अ क २४५ ।

१	वर्षा-वास	ऋषि पतन	१२	वर्षा वास	वेरंजा
२-४	,	राजगृह	१३	,	चालिय पर्वत
५	,	वेशाली	१४	,	श्रावस्ती
६	,	संकुल पर्वत	१५	,	कपिलवस्तु
७	,	त्रयस्त्रिंश	१६	,	आलवी
८	,	सुसुमारगिरि	१७	,	राजगृह
९	,	कौशाम्बी	१८ १९	,	चालिय पर्वत
१०	,	पारिलेयक	२०	,	राजगृह
११	,	नाला	२१ ४०	,	श्रावस्ती
			४५	,	वेशाली

दक्षिणा-विभङ्ग-सुत्त । प्रजापती का संन्यास । (वि. पू. ४६८-४६७)

*गौतम यह गोत्र है । नामकरणके दिन इसका नाम महाप्रजापती रखा गया । गोत्रसे मिलाकर महाप्रजापती गौतमी कहा गया । गौतमीने भगवान्‌को दुस्स देनेका मन कर किया ? अभि संबोधि प्राप्तकर पहिली यात्रामे कपिलपुर आनेके समय ।

+ + + + +

दक्षिणा विभङ्ग सुत्त ।

*ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् द्वाक्यो (के देश)में कपिल वस्तुक न्यगोधारामे विहार करते थे । तत्र महाप्रजापती गौतमी नये दुस्स (=धुस्से) के जोड़ेका लेकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ आई । आकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई । एक ओर पड़ी, महाप्रजापती गौतमीने भगवान्‌को यों कहा—“ भन्ते ! यह अपनाही काता, अपनाही तुना, मेरा यह नया धुस्सा जोड़ा भगवान्‌को (अर्पण है) । भन्ते ! भगवान् अनुकम्पा (=रूपा) कर, इसे स्वीकार करें ।”

ऐसा कहने पर भगवान्‌ने महाप्रजापती गौतमीको कहा—

“ गौतमी ! (इसे) संघको देदे । संघको देनेसे मैं भी पूजित हूँगा, और सब भी ।”
दूसरी बार भी० कहा—“ भन्ते यह० ” । “ गौतमी ! संघको दे० ” । तीसरी बार भी० ।

यह कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌को यों कहा—

“ भन्ते ! भगवान् महाप्रजापती गौतमीके धुस्सा जोड़ेको स्वीकार करें । अने । आपादिका (=अभिभाविका), पोषिका, क्षीर दायिका (दोनेसे), भगवान्‌की मौसी महाप्रजापती गौतमी बहुत उपकार करनेवाली है । इसने जननीके मरनेपर भगवान्‌को दूध पिलाया । भगवान् भी महाप्रजापती गौतमीके महोपकारक है । भन्ते ! भगवान्‌के कारण महाप्रजापती० बुद्धकी शरण आई, धर्मकी शरण आई, संघकी शरण आई । भगवान्‌के कारण भन्ते ! महाप्रजापती गौतमा प्राणातिपात (=हिंसा) से बिरत हुई । अदत्तादान (=बिना दिये लेना=चोरीसे) बिरत हुई । काम-मिथ्याचारसे० । मृषावाद (=झूठ बोलना) से० । छत्र मेरय (=कच्ची शराब)-भग्न प्रमादस्थान (=प्रमाद कलेकी जगह) से० । भगवान्‌के कारण भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी बुद्धमे अत्यन्त श्रद्धा (=प्रसाद) युक्त, धर्ममे अत्यन्त प्रसाद युक्त, संघमें अत्यन्त प्रसाद-युक्त (हुई), आर्य (=उत्तम) कात (=कर्मनीय=सुंदर) शीलोंने युक्त (हुई) । भगवान्‌के ही कारण भन्ते !० दु खने वेफिक हुई, दु ख समुदयसे०, दु ख निरोधसे०, दु ख निरोध-गामिनी-प्रतिपदूसे० । भगवान् भी भन्ते ! महाप्रजापती गौतमीके महाउपकारक है ।”

“आनन्द ! यह ऐसाही है, पुत्रल (=व्यक्ति=प्राणी) पुत्रलके सहारे बुद्धका शरणागत होता है, धर्मका०, संघका० । लेकिन आनन्द ! जो यह अभिवादन, प्रत्युपस्थान (=सेवा),

दक्षिणा विभक्त सुत्त ।

अञ्जलि जोड़ना = समीची करना, चीवर, पिंड पात, शयनासन, रत्नान (=सोमी) को पथ औपध दना है, (इसे) मैं इस पुत्रलका उस पुत्रलके प्रति सुप्रतिकार (=प्रत्युपकार) नहीं कहता । जो (कि यह) पुत्रल (दूसरे) पुत्रल के सहारे प्राणातिपात०, अदत्तादान०, काम मिथ्याचार०, मृशग्राह०, सुराभिरय मद्य प्रमात् स्थानसे विरत होता है । आनन्द ! जो यह अभिवादन० । जो यह आनन्द ! पुत्रल पुत्रलके सहारे दुःखसे वफिक होता है० ।

आनन्द यह चोदह प्राति पुत्रलिक (=व्यक्तिगत) दक्षिणाय (=दान) है । कौनसी चोदह ? तथागत अर्हत्सम्यक् संजुद्धको दान देता है, यह पहिली प्राति पुत्रलिक दक्षिणा है । प्रत्येक संजुद्धको दक्षिणा दता है, यह दूसरी० । । तथागतन धावरु (=शिष्य) अर्हत्सको तीसरी० । अर्हत् फलके साक्षात् करनेमें लगे हुयेको० चोथी० । अनागामीको० पांचवीं० । अनागामि-फल साक्षात् करनेमें लगेहुयेको० छठी० । सहदागामीको० सातवीं० । सहदागामि फल साक्षात् करनेमें लगे को० आठवीं० । सोतापन्न को० नवीं० । सोतापत्ति (=स्रोत आपत्ति) फल साक्षात् करनेमें लगे को० दसवीं० । गावक धारके पोत राम को० ग्यारहवीं० । शीलवान् पृथग्जन (स्रोत आपत्ति अदिको न प्राप्त) को० बारहवीं० । दु शील पृथग्जन को० तेरहवा० । तिर्यग्योनिगत (=पशु पक्षी आदि) को० चोदहवीं० । यहाँ आनन्द । तिर्यग्योनि-गत को नान देनेम सोगुनी दक्षिणा की आशा रखनी चाहिये । दु शील पृथग्जनम० हजार गुनी० । शील वान् पृथग्जनम० सां हजार० । ०सो हजार करोड० । स्रोत आपत्ति फल साक्षात् करनेमें लगेको दान दे० असंख्य (=अनगिनत) अप्रमेय (=प्रमाण रहित) दक्षिणाकी आशा रखनी चाहिये । फिर स्रोत आपन्न को यात क्या कहनी है ? फिर सहदागामी० ? फिर अनागामी० ? फिर अर्हत्० ? फिर प्रत्येक शुद्ध० ? फिर तथागत अर्हत् सम्यक् संजुद्ध० ?

“आनन्द ! यह सात संघ-गत (=संघमेकी) दक्षिणाय है । कौन सी सात ? शुद्ध प्रमुख दोना संघोको दान देता है, यह पहिली संघ गत दक्षिणा है । तथागतने परिनिर्वाणपर दोनो संघोको० दूसरी० । भिक्षु संघको० तीसरी० । भिक्षुणी संघको० चोथी० । मुझे संघ इतने भिक्षु भिक्षुणी उद्देश करे (=दान देनेके लिये द), मेने दान दता है० यह पांचवीं० । मुझे संघमेंसे इतने भिक्षु० छठी० । मुझे संघमें से इतनी भिक्षुनिया०, सातवीं० ।

“आनन्द ! भग्निकालम भिक्षु नाम धारी (=गोत्रधू), कापाय नाम धारी (=कापाय कठ) दु शील, पाप धमा (=पापी) (भिक्षु) होंगे । (लोग) संघ (नामपर) उन दु शीलो को दान दगे । उन वक्को आनन्द ! म संघ विषयक दक्षिणाको अमंल्यय, अपरिमित (फलवाली) कहता हूँ । आनन्द ! किमी तरहभी संघ विषयक दक्षिणासे प्राति पुत्रलिक (=व्यक्तिगत) दक्षिणाको अधिक फल दायक म नहीं मानता ।

“आनन्द यह चार दक्षिणा (=दान) की विशुद्धियाँ (=शुद्धिया) हैं । कौनसा चार ? आनन्द । (कोई २) दक्षिणा तो न्यक्से परि शुद्ध होती है, प्रतिग्राहक से नहीं-। (कोई) दक्षिणा प्रति ग्राहकसे परिशुद्ध होती है, दायकसे नहीं । आनन्द ! (कोई) दक्षिणा न दायकमे शुद्ध होती है, न प्रति ग्राहकसे । (कोई) दक्षिणा दायकमे भी शुद्ध होती है

प्रतिप्राहकसे भा । आनन्द ! दक्षिणा कैसे दायकसे शुद्ध होती है, प्रतिप्राहकसे नहीं ! आनन्द ! जब दायक शीलवान् (=सदाचाते) और कल्याण धर्मा (=पुण्यात्मा) हो, और प्रतिप्राहक हो दुःशील (=दुराचारी) पाप धर्मा (=पापी), तो आनन्द ! दक्षिणा दायकसे शुद्ध होती है, प्रतिप्राहकसे नहीं । आनन्द ! कसे दक्षिणा प्रतिप्राहकसे शुद्ध होती है, दायकसे नहीं ? आनन्द ! जब प्रतिप्राहक शीलवान् और कल्याण धर्मा हो, (और) दायक हो दुःशील, पाप धर्मा । आनन्द ! कैसे दक्षिणा न दायकसे शुद्ध होती है, न प्रतिप्राहकसे ! आनन्द ! जब दायक दुःशील, पाप धर्मा हो, और प्रतिप्राहक भी दुःशील पाप धर्मा हो । आनन्द ! कैसे दक्षिणा दायकसे भी शुद्ध होती है, और प्रतिप्राहकसे भी ? आनन्द ! (जब) दायक शीलवान् कल्याण धर्मा हो (और) प्रतिप्राहक भी शीलवान् कल्याण धर्मा हो, तो । आनन्द ! यह चार दक्षिणाको विनियोग है ।"

x

x

x

x

(पञ्जापती-पञ्चजा) सुच ।

ऐसा मैं सुना—एक समय भगवान् शक्यों (के दश) में कपिल वस्तुक न्यो धारामें विहार करते थे । तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ आई । आकर भगवान् को घन्दनाका, एक ओर खड़ी होगई । एक ओर खड़ी हुई महाप्रजापती गौतमीने भगवान् को कहा—“भन्ते ! अच्छा हो (यदि) मातृग्राम (=छियाँ) भी तथागतके दिखाये धर्म वित्त (=धर्म) में घरसे बेघर हो प्रव्रज्या पात्र ।”

“नही गौतमी ! मत तुझे (यह) रूचै—छियाँ तथागतके दिखाये धर्ममें ।”

दूसरीबार भी । तीसरीबार भी ।

तब महाप्रजापती गौतमी—भगवान्, तथागत प्रेरित धर्म वित्त (= बुद्धके दिखलाये धर्म) में छियोकी घर छोड़ बेघर हो प्रव्रज्या (ऐने) की अनुज्ञा नहीं करते—जान, दुःखी=दुर्मना अश्रुमुखी (हो) रोती, भगवान् को अभिशदनकर प्रदक्षिणाकर चली गई ।

भगवान् कपिल वस्तुमें इच्छानुसार विहारकर (जिधर) वेशाली थी, (उधर) वारिकीको चल दिये । क्रमशः चारिका करते हुये, जहाँ वेशाली थी, वहाँ पहुँचे । भगवान् वेशालीमें महावनकी कृष्णा शालामें विहार करते थे । तब महाप्रजापती गौतमी, वेशालीको कटाकर कापाय रख पहिन, बहुत सी ‘शक्य छियो’ के साथ, जिधर वेशाली थी (उधर) चली । क्रमशः चलकर वेशालीमें जहाँ महावनकी कृष्णा शाला थी (वहाँ) पहुँची । महाप्रजापती गौतमी फूले पैरो धूल भरे शरीरसे, दुःखी=दुर्मना अश्रु मुखी, रोती, द्वार-कोष्ठक (=बड़ा द्वार, जिसपर कोठा होता था) के बाहर जा खड़ी हुई । आयुष्मान् आनन्दने महाप्रजापतीको खड़ा देखकर पूछा—

“गौतमी ! तू क्यों फूले पैरों ?”

“भन्ते ! आनन्द ! तथागत प्रेरित धर्म वित्तमें छियोकी घर छोड़ बेघर प्रव्रज्याकी भगवान् अनुज्ञा नहीं देते ।”

पञ्चापती पण्डिता सुत्त ।

“गौतमी ! तू यहाँ रह, बुद्ध धर्ममें स्त्रियोंकी० प्रव्रज्याके लिये मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ ।”

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर० बस, भगवान्से बोले—

“भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी पूर पैरो धूल-भरे शरीरसे दुःखी दुर्मना अधु-सुती रोती हुई द्वार कोष्ठके बाहर खड़ी है (कि),—भगवान् (बुद्ध धर्ममें) स्त्रियोंकी० प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नहीं देते । भन्ते ! अच्छा हो स्त्रियोंको (बुद्ध धर्ममें) प्रव्रज्या मिले ।”

“नहीं आनन्द ! मत मुझे रुचे—तथागतके जतलाये धर्ममें स्त्रियोंकी घरसे बेघरहो प्रव्रज्या ।” दूसरीबार भी आयुष्मान् आनन्द० । तीसरीबार भी० ।

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ,—भगवान् तथागत प्रवेदित धर्म विनयमें स्त्रियोंकी घरसे बेघर प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नहीं देते, क्यों न मे दूसरे प्रकारसे प्रव्रज्याकी अनुज्ञा माँगूँ । तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को कहा—

“भन्ते ! क्या तथागत प्रवेदित धर्ममें घरसे बेघर प्रव्रजित हो, स्त्रियाँ स्रोत आपत्ति पल, महत्तामि फल, अनागामि फल, अर्हत्त्व फलको साक्षात् कर सकती हैं ?”

“साक्षात् कर सकती हैं, आनन्द ! तथागत प्रवेदित० ।”

“यदि भन्ते ! तथागत प्रवेदित धर्म विनयमें प्रव्रजित हो, स्त्रियाँ अर्हत्त्व फलको साक्षात् करने योग्य हैं । जो, भन्ते ! अभिभाविका, पोषिका, क्षीर दायिका हो, भगवान्की मौमा महाप्रजापती गौतमी बहुत उपकार करनेवाली है । जननीके मरनेपर (उसने) भगवान्को दूध पिलाया । भन्ते ! अच्छा हो स्त्रियोंकी० प्रव्रज्या मिले ।”

“आनन्द ! यदि महाप्रजापती गौतमी आठ गुरु-धर्मों (= बड़ी शक्तों) को स्वीकार करें, तो उसकी उपसम्पदा हो ।—

(१) सौ वर्षकी उप सम्पन्न (= उपसंपदा पाई) भिक्षुणीको भी उसी दिनके उप-सम्पन्न भिक्षुके लिये अभिवादन प्रत्युत्थान, अंजलि तोड़ना, सामोची कर्म करना चाहिये । यह भी धर्म सरकार-पूर्वक गौरव पूर्वक मानकर, पूजकर जीवनभर न अतिश्रमण करना चाहिये ।

(२) भिक्षुका उपगमन (= धर्मश्रवणार्थ आगमन) करना चाहिये । यह भी धर्म० ।

३) प्रति आपेमास भिक्षुणीको भिक्षु सघसे पर्यपण करना चाहिये । यह० ।

(४) वषा-वास कर चुकनेपर भिक्षुणीको दोनों सघोमें देखे, सुने, जाने तीनों स्थानोंसे प्रवारणा करनी चाहिये ।०

(५) गुरु धर्म स्वीकार किये भिक्षुणीको दोनों सघोमें पक्ष मानता बरनी था० ।

(६) किसी प्रकार भी भिक्षुणी भिक्षुको गालों आदि (= आक्रोश) न दे ।

यह भा० ।

(७) आनन्द ! आजसे भिक्षुणियाँका भिक्षुओंको (कुत्त), कड़नेका रास्ता बन्द हुआ० ।

(८) लेकिन भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको कड़नेका रास्ता मुक्त है । यह० ।

प्रतिप्राहकसे भी । आनन्द ! दक्षिणा कैसे दायकसे शुद्ध होती है, प्रतिप्राहकसे नहीं । आनन्द ! जय दायक शील वान् (=सदाचारी) और कल्याण धर्मा (=पुण्यात्मा) हो, और प्रतिप्राहक हो दुःशील (=दुराचारी) पाप धर्मा (=पापी), तो आनन्द ! दक्षिणा दायकसे शुद्ध होती है, प्रतिप्राहकसे नहीं । आनन्द ! कैसे दक्षिणा प्रतिप्राहकसे शुद्ध होती है, दायकसे नहीं ? आनन्द ! जय प्रतिप्राहक शील वान् और कल्याण धर्मा हो, (और) दायक हो दुःशील, पाप धर्मा । आनन्द ! कैसे दक्षिणा न दायकसे शुद्ध होता है, न प्रतिप्राहकसे ! आनन्द ! जय दायक दुःशील, पाप धर्मा हो, और प्रतिप्राहक भी दुःशील पाप धर्मा हो । आनन्द ! कैसे दक्षिणा दायकसे भी शुद्ध होती है, और प्रतिप्राहकसे भी ? आनन्द ! (जय) दायक शील-वान् कल्याण धर्मा हो (और) प्रतिप्राहक भी शील वान् कल्याण धर्मा हो, तो । आनन्द ! यह चार दक्षिणाकी विशुद्धियाँ हैं ।”

x

x

x

x

(पञ्जापती-पञ्चज्जा) सुत्त ।

‘प्रेमा मैने सुना—इस समय भगवान् शाक्यो (के दश) में कपिल वस्तुके न्ययो धाराममें विहार करने थे । तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ आई । आकर भगवान् को वन्दनाकर, एक ओर खड़ी होगई । एक ओर खड़ी हुई महाप्रजापती गौतमीने भगवान् से कहा—“भन्ते ! अच्छा हो (यदि) मातृग्राम (=छियाँ) भी तथागतके दिवाये धर्म विनय (=धर्म) में घरसे वेध हो प्रव्रज्या पावे ।”

“नही गौतमी ! मत तुझे (यह) रचै—छिया तथागतके दिवाये धर्ममं ।”

दूसरीवार भी० । तीसरीवार भी० ।

तब महाप्रजापती गौतमी—भगवान्, तथागत प्रवेदित धर्म विनय (=शुद्धके दिव्यगम धर्म) में छियोकी घर छोड़ वेध हो प्रव्रज्या (लेने) की अनुज्ञा नहीं करते—जान, दुःखी=दुर्मना अशुमुखी (हो) रोती, भगवान् को अभिगदनकर प्रदक्षिणाकर चली गई ।

भगवान् कपिल वस्तुमें इच्छानुसार विहारकर (जिधर) वैशाली थी, (उधर) चारिकाको चल दिये । क्रमशः चारिका करते हुये, जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे । भगवान् वैशालीमें महावनकी कृष्णागारालामें विहार करते थे । तब महाप्रजापती गौतमी, वैशालीको कदाकर कापाय वन पहिने, बहुत सी ‘शान्त्य छिया’ के साथ, जिधर वैशाली थी (उधर) चली । क्रमशः चलकर वैशालीमें जहाँ महावनकी कृष्णागार शाला थी (वहाँ) पहुँची । महाप्रजापती गौतमी फूले पंरो धूल भरे शरीरसे, दुःखी=दुर्मना अशु मुखी, रोती, द्वार कोटक (=बड़ा द्वार, जिसपर कोठा होता था) के बाहर जा खड़ी हुई । आयुष्मान् आनन्दने महाप्रजापती० को खड़ा देखकर पूछा—

“गौतमी ! तू क्यों फूटे पैरों० ?”

“भन्ते ! आनन्द ! तथागत प्रवेदित धर्म विनयमें छियोकी घर छोड़ ने घर प्रव्रज्याकर भगवान् अनुज्ञा नहीं दते ।”

व्य-शक्ति प्रदर्शन ।

“आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने भन्ते । राजगृहके भेद्योके पात्रको उतार लिया । छोर्गोने इसे) सुना० । भन्ते ! हमीसे लोग हठा करते आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजके पीछे पीछे प्रे हैं । भगवान् ! यही यह हठा है ।”

तब भगवान्ने इसी संधधर्मे इसी प्रकरणमें, भिक्षु-संघको जमा करवा, आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजसे पूछा—

“भारद्वाज ! क्या तुने सचमुच राजगृहके भेद्योका पात्र उतारा ?”

“सच-सुच भगवान् ।”

भगवान्ने धिक्कारते हुये कहा—

“भारद्वाज ! यह अनुचित है प्रतिफल = अ प्रतिरूप, धमणके अवोग्य, अविषेय = अकण्ठ्य है । भारद्वाज ! मुने एकद्वीक वर्तनेने लिये कैसे तू गृहस्थोको ‘उत्तर मनुष्य धर्म’ भ्रदि प्रातिहार्य दिखायेगा । भारद्वाज ! यह न अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है० ।” (इस प्रकार) धिक्कारते (हुये) धार्मिक कथा कह, भिक्षुओको संबोधित किया—

“भिक्षुओ ! गृहस्थोको उत्तर मनुष्य धर्मे भ्रदि प्रातिहार्य न दिखाना चाहिये, जो दिखाने के लिये ‘दुष्कृत’ की आपत्ति । भिक्षुओ ! इस पात्रको तोड़, टुकड़ा टुकड़ाकर, भिक्षुओको अजन पीसनेके लिये दे दो । भिक्षुओ ! एकद्वीका वर्तन न धारण करना चाहिये । ‘दुष्कृत’ ।”

“भिक्षुओ ! शुशर्मय पात्र न धारण करना चाहिये, रौप्यमय०, मणि मय०, वैदुर्यमय०, लज्जिकमय०, कममय, काच मय, रामेका०, सीसेका०, ताम्रगोह (= ताँबा) का०, ‘दुष्कृत’ । भिक्षुओ ! छोटेके और मिठीके—दो पात्रोकी अनुज्ञा देता हूँ ।”

+ + + +

“धमग गौतमने उस पात्रको तोड़वा, अरने श्रावकाको पाटिहारिय (= प्रातिहार्य = धमत्कार) न करनेके लिये शिक्षा पद बना दिया है”—तैथिक यह सुन,—धमग गौतमके श्रावक तो प्रसन्न (= निर्धारित) शिक्षा पत्रको प्राणने लिये भी नहीं छोड़ सकते, धमग गौतम भी उसको मानेहीगा । अब हमलोगोंको मौका मिला—(विचार,) नगरकी सड़कोपर यह कहते बिचलते लगे—“हमने गुण (= करामात) रखते भी पहले लकड़ीक पात्रके लिये अपना गुण लोगोको नहीं दिखाया । धमग गौतमके शिष्योने (उमे) सिर्फ वर्तनेके लिये भी लोगोको दिखगया । धमग गौतमने अपनी पंडिताई (= चतुराई) से उस पात्रको तोड़वाकर शिक्षा पद (= नियम) बना दिया । अब हमलोग उसके ही साथ दिव्य-शक्ति प्रदर्शन (= पाटिहारिय) करेंगे ।

राजा विभ्रमराने इन बातको सुन शास्ताक पास जाकर—

“भन्ते ! आपने श्रावकोके लिये पाटिहारिय न करनेका शिक्षा पद बनाया है ?”

“महाराज ! हाँ ।”

“तैथिक आपके साथ प्रातिहार्य करनेको कह रहे हैं, अब क्या करेंगे ?”

“महाराज ! उनके करनेपर कर्तुंगा ।”

१ मनुष्योकी शक्तिमें योगी यात । २ धमत्कार दिव्य शक्ति । ३ धर्मपद अ क ४० ।

दिव्य शक्ति प्रदर्शन । यमक प्रातिहार्य । संकाश्य में अवतरण । (वि. पू. ४५)

तथागत छठी वषामें मङ्गल पर्वतपर (वस) ।

“उस समय राजगृहके श्रेष्ठीको एक महार्घ चन्दन-सारकी चन्दन गाठ मिली थी । तब राजगृहके श्रेष्ठीके मनमें हुआ—‘क्यों न मैं इस चन्दनगाँठका, पात्र भरवाऊँ, चूा मेरे कामसे होगा, और पात्र दान दूँगा ।’ तब राजगृहके श्रेष्ठीने उस चन्दन गाँठका पात्र भरवाकर, सीढ़ी में रख, राँसके सिरेपर लगा, फूटने ऊपर पड़ याँसोंको बँधवाकर कहा—‘जो श्रमग्न ब्रह्मग्न शरीर या ऋद्धिमान् हो (यह इस दान) दिये हुये पात्रको उतार ले ।’

पूर्ण काश्यप जहाँ राजगृहका श्रेष्ठी रहता था, वहाँ गये । और जाकर राजगृहके श्रेष्ठी से बोले—“गृहपति । मे अर्हत् हूँ, ऋद्धिमान् भी हूँ । मुझे पात्र दो ।”

“भन्ते । यदि आयुष्मान् अर्हत् और ऋद्धिमान् हैं, दिया ही हुआ है, पात्रको उतार लें ।”

तब मरखली गोशाल (= मस्करी गोशाल) ० । अजित-वेश-कम्बली ० । प्रबुध-काल्यायन ० । संजय-वेङ्कट पुत्र ० । निर्गठ नाथ पुत्र ० । जहाँ राज-गृहका श्रेष्ठी था, वहाँ गये । राजगृहके श्रेष्ठीसे बोले—“गृह-पति ! मे अर्हत् हूँ, और ऋद्धिमान् भी, मुझे पात्रदो ।”

“भन्ते । यदि आयुष्मान् अर्हत् ० ।”

उस समय आयुष्मान् मौद्गल्यायन और आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज, पूर्वार्द्ध सन सु आच्छादित हो, पात्र चीवरले राज-गृहमें पिंडोके (= मिश्रा) के लिये प्रविष्ट हुये । आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने आयुष्मान् मौद्गल्यायन से कहा—

“आयुष्मान् महामौद्गल्यायन अर्हत् हूँ, और ऋद्धिमान भी जाइये आयुष्मान् मौद्गल्यायन । इस पात्रको उतार लाइये । आपके लिये ही यह पात्र है ।”

“आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज अर्हत् हूँ, और ऋद्धिमान् भी ० ।”

तब आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने आकाशमें उड़कर, उस पात्रको ले, तीनबार राजगृह चक्कर दिया । उस समय राजगृहके श्रेष्ठीने पुत्र-द्वारा सहित हाथ जोड़, नमस्कार करते हुये आश्रमपर खड़े हो—

“भन्ते । आर्य भारद्वाज । यहाँ हमारे घरपर उतरें ।”

आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज राजगृहके श्रेष्ठीके मकानपर उतरे (= प्रतिष्ठित हुये) तब राज-गृहक श्रेष्ठीने आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजके हाथसे पात्र लेकर, महार्घ खाद्यसे भर उन्हें दिया । आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज पात्र सहित आराम (= निजाम स्थान) को गये । मनुष्योंने सुना—आर्य पिंडोल भारद्वाजने राजगृहक श्रेष्ठीके पात्रको उतार लिया । वह मनुष्य हल्ला मचाते आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजके पीछे पीछे लगे । भगवान्ने हल्लेको सुना, मुनि आयुष्मान् आनन्दको संवेधित किया—“आनन्द ! यह क्या दृष्टा-गुह्य है ?”

न्य शक्ति-प्रदर्शन ।

“आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने मन्ते ! राजगृहके श्रेष्ठीका पात्रको उतार लिया । लोगोंने इसे सुना० । भन्ते ! इसीसे लोग हल्ला करते आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजके पीछे पीछे गे हैं । भगवान् ! वही यह हल्ला है ।”

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणम, भिक्षु-सघको जमा करवा, आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजसे पूछा—

“भारद्वाज ! क्या तूने सबमुच राजगृहके श्रेष्ठीका पात्र उतारा ?”

“सब-मुच भगवान् ।”

भगवान्ने धिक्कारते हुये कहा—

“भारद्वाज ! यह अनुचित है प्रतिफल=अ प्रतिरूप, अमणके अयोग्य, अविधेय=करणीय है । भारद्वाज ! मुने एकड़ोके वर्तनके लिये कैसे तू गृहरूपोको उत्तर मनुष्य धर्म अदि प्रातिहार्य दिखायेगा । भारद्वाज ! यह न अप्रमत्तोंको प्रसन्न करनेके लिये है० ।” इस प्रकार) धिक्कारते (हुये) धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संयोजित किया—

“भिक्षुओ ! गृहस्थोंको उत्तर मनुष्य धर्म अदि प्रातिहार्य न दिखाना चाहिये, जो दिखाये पको ‘दुष्कृत’ की आपत्ति । भिक्षुओ ! इस पात्रको सोढ, टुकड़ा टुकड़ाकर, भिक्षुओंको भोजन पीमनेके लिये द दो । भिक्षुओ ! एकड़ोका वर्तन न धारण करना चाहिये । ० ‘दुष्कृत’ ।”

“भिक्षुओ ! मुशर्णमय पात्र न धारण करना चाहिये, रौप्यमय०, मणि-मय०, चंदुर्यमय०, ताम्रमय०, कसमय, काच मय, रागेका० सीसेका०, ताम्रगेह (=ताँबा) का०, ‘दुष्कृत’ । भिक्षुओ ! कौहेके और मिट्टीके—दो पात्रोंकी अनुज्ञा देता हूँ ।”

+

+

+

+

१ “अमग गौतमने उस पात्रको तोड़वा, अरने श्रावकाको पाटिहारिय (=प्रातिहार्य =चमत्कार) न कानेके लिये शिक्षा पद बना दिया है”—तैर्धिक यह सुन,—अमग गौतमने श्रावक तो प्रसन्न (=निर्धारित) शिक्षा पदको प्राणके लिये भी नहीं छोड़ सके, अमग गौतम भी उसको मानेहीगा । अब हमलोगोंको मौका मिला—(विचार,) नगरकी सड़कोपर यह कहते बिचरने लगे—“हमने गुण (=करामात) रखते भी पहले एकड़ोके पात्रके लिये अपना गुण लोगोंको नहीं दिखाया । अमग गौतमन शिष्योंने (उने) विष वर्तनके लिय भी लोगोंको दिखाया । अमग गौतमने अपनी पंतिवर्हि (=चतुर्वर्हि) से उस पात्रको तोड़वाकर शिक्षा-पद (=नियम) बना दिया । अब हमलोग उसने हो माघ दिव्य-शक्ति-प्रदर्शन (=पाटिहारिय) करग ।

राजा विन्ध्यमारने इस बातको सुन शास्ताके पास जाकर—

“भन्ते ! आपने श्रावकोंके लिये पाटिहारिय न करनेका शिक्षा पद बनाया है ?”

“महाराज ! हाँ ।”

“तैर्धिक आरने साथ प्रातिहार्य करनेको कह रहे हैं, अब क्या करेंगे ?”

“महाराज ! उनका करनेपर कर्मा ।”

१ मनुष्योंकी गतिमें पोरकी बात । २ चमत्कार दिव्य शक्ति । ३ धर्मपद अ क. ४० ।

“आपने तो शिक्षा-पद बना दिया ?”

“मैंने अपने लिये शिक्षा पद नहीं बनाया, वह मेरे श्रावकोंके लिये बना है।”

“भन्ते ! अपनेको छोड़, सिर्फ औरोंके लिये भी शिक्षा-पद होता है ?”

“महाराज ! तुझको पड़ता है । तेरे राज्यमें उद्यान है न ?”

“है, भन्ते !”

“यदि महाराज ! लोग उद्यानमें (जाकर) आम आदि खायें, तो इसका क्या करना चाहिये ।”

“दण्ड, भन्ते ।”

“और तू खा सकता है ?”

“हां भन्ते । मेरे लिये दण्ड नहीं है, मैं अपनी (चीज) को खा सकता हूँ ।”

“महाराज ! जैसे तीन सौ योजन (अग-भगध) राज्यमें तेरी आज्ञा चलती है, आम आदि खानेमें (तुझे) दण्ड नहीं है, लेकिन औरोंको है । इसी प्रकार सौ हजार-कोटि चक्र-वाल भी मेरी आज्ञा चलती हैं । मुझे शिक्षा पद निर्धारणके अतिक्रम (में दोष) नहीं है । लेकिन इसका है, मैं प्रातिहार्य कहूँगा ।”

तैथिकोंने इस बातको सुनकर—

“अब हम बर्बाद हुये । श्रमण गौतमने श्रावकोंके लियेही शिक्षापद निर्धारित किया है, अपने लिये नहीं । स्वयं प्रातिहार्य करना चाहता है । अब क्या करें ?” (ऐसी) सलाह करने लगे ।

राजाने शास्तासे पूछा—“ भन्ते ! क्या प्रातिहार्य करने ?”

“ आजसे चार मास बाद, आपाठ पूर्णिमाको महाराज ! ”

“ कहा करेंगे भन्ते ?”

“ श्रावस्तीमें महाराज ! ”

शास्ताने इतने दूरका स्थान क्यों कहा ? इसलिये कि वह सभी बुद्धके प्रातिहार्यक स्थान है । और लोगोंके जमावड़ेके लिये भी दूर स्थान बतलाया । तैथिकोंने इस बातको सुनकर—

“ आजसे चार मास बाद श्रमण गौतम श्रावस्तीमें प्रातिहार्य करेगा । इस बात निरन्तर उसका पीछा करना चाहिये । लोग हमें ‘यह क्या है’, पूछेंगे, तब उन्हें कहेंगे—‘हम श्रमण गौतमके साथ प्रातिहार्य करनेको कहा, वह भाग रहा है, हम भागने न देकर उसके पीछे लगे हैं ।’”

शास्ता राजगृहमें शिक्षाचार कर, निकटे । तैथिकभी पीछे पीछे निकल भोजन कि स्थानपर वास करने थे, (रात्रि) वासके स्थानपर दूसर दिन कलेङ्क करते थे । वह मनुष्यो द्वारा “यद क्या है ?” पूछे जानेपर, उक्त सौचे हुये ढंगपर ही कहते थे । लोगभी प्रातिहार्य देखने लिये पीछे होलिये । शास्ता क्रमशः श्रावस्ती पहुँचे । तैथिक भी साथही जाकर, अपने भक्तोंको चेता, सौ हजार पाकर, खेरके स्तम्भोंसे मण्डप बनवा, नीले कमलसे छाया—“य प्रातिहार्य करेंगे” (कहकर) बैठे ।

राजा प्रसेनजित् कोसल शास्ताके पास जा—

“ भन्ते । तैर्थिकोंने मंडप बनवाया है, ये भी तुम्हारा मंडप बनवावा है । ”

“ नहीं महाराज ! हमारा मंडप बनाने वाला (दूसरा) है । ”

“ भन्ते ! यहाँ मुझे छोड़, दूसरा कौन बनायेगा ? ”

“ शक देव राज, महाराज ! ”

“ फिर भन्ते ! प्रातिहार्य कहा, करेंगे ? ”

“ गन्धर्व रत्न (गण्डक आम) के नीचे, महाराज ! ”

तैर्थिकोंने ‘आमके वृक्षके नीचे प्रातिहार्य करेंगे सुन, अपने भक्तोंको कह, एक योजन स्थानके भीतर, उसदिन जन्मे असो’ तरुको भी उखाड़कर जंगलमें फेंकवा दिया ।

शास्ताने आपाद पूर्वामाके दिन नगरमें प्रवेश किया । राजाके उद्यान पाल गण्डने, मादा (= पिंगल कपिलरु) की झालकी आदमें एक बड़े पके आमको देख, उसके गन्ध रसक लोभसे आये कौओंको उड़ा, राजाके लिये नेकर जाते (समय), रास्तेमें शास्ताको देख, सोचा—‘ राजा इस आमको खाकर मुझे आठ या सोलह कार्पाण (= कद्दापण) देगा, वह मेरे अकेलेकी जीवन वृत्तिके लिये काफी नहीं । यदि मैं इसे शास्ताको दूँ, जरूर वह अपरिमित काल तक हित प्रद होगा । ’ (और) उस आमको शास्ताके पास ले गया । शास्ताने आनन्द स्थविरकी ओर देखा । तब स्थविरने चारों (दिव्य-) महाराजोंके दिये पात्रको लेकर हाथमें रक्खा । शास्ताने पात्रको रोप, उस पत्र आमको लेकर, वैश्वेने जला दशाया । स्थविरने धीवर निष्ठा दिया । तब उनके बड़े पर स्थविरने पानी छान, उस पत्र आमको गारकर, रस बनाकर शास्ता को दिया । शास्ताने आमके रसको पीकर गंडको कहा—‘ इस आमकी गुठली (= अट्टि = आठी) को यहाँ मही हटाकर तोप दे । ’ उसने वैसाही किया । शास्ताने उसपर हाथ धोया । हाथ धोते मात्रही, तना हल के शिखे बराबर हो, ऊँचाईमें पचास हाथका आन्न वृक्ष हो गया । चारों दिशाओंमें चार और एक ऊपर को—पाव पचास हाथ लम्बी महासाखाय हो गईं । वह उसी समय पुष्प और फलसे आच्छन्न हो गया, (तथा) हर स्थानमें पक्व आन्न धारण किये हुए था । पीठसे बाने वाले भिक्षुभी पके आम खाते हुये ही गये । राजाने पत्ता आम उगा है, सुन—इसको कोई न काटे, इसके लिये पहरा (= आरक्षा) लगा दिया ।

वह गंड द्वारा रोपा गया होनेसे ‘ गन्धर्व रत्न ’ (= गंडका आन्न वृक्ष) के नाम से ही प्रसिद्ध हुआ । धूर्तों ने भी पके आम खा—‘ अरे दुष्ट तैर्थिको । ‘श्रमण गौतम गन्धर्व-रत्न के नीचे प्रातिहार्य करेंगा’ इसलिये तुमने योजन भर के भीतर उस दिन के जन्मे असोलों तक को उपड़वा (= उखाड़ = उप्पाट) दिया । ‘ यह गन्धर्व है ’ कह जूकी गुठलिय पेंक फेंक कर (उधें) मारा । श्रमणें यात यलाहक (= मरत) देवपुत्रको आज्ञा दी—‘ तैर्थिको ने मंडपको हवासे उखाड़कर फूटेकी भूमिपर फेंक दो ’ । उमने वैसा ही किया । सूर्य देव पुत्र को भी आज्ञा दी—‘ सूर्य मंडल को धामकर तपायो ’ । उमने भी वैसा ही किया । फिर यात यलाहक को आज्ञा दी—‘ यात यलाहक ! सर्पा उड़ाते जाओ ’ । उमने वैसा कर तैर्थिकों के पमीना चूने क्षीर को धूल से (ढाँक) दिया । वह ताँवे के पनड़ेवाल जैसे हो गये । सर्पा यलाहक को भी आज्ञा दी—‘ बड़ी बड़ी बूँद गिराओ । ’

उसने वसा ही किया । तब उनका शरीर कबरा गाय जसा हुआ । यह निर्गठ (= निर्ग्रन्थ) लजाते हुये सामने से भाग गये ।

ऐसे पलायन करते समय पूर्ण काश्यपका एक सेवक (= भक्त) कृपक—‘यह मेरे आर्यों के प्रातिहार्य करनेकी बेला है, जाकर प्रातिहार्य देख’—(विचार), बग का छोड़, सरेरेके लाये सिचढीका कूट और जोता ऐकर चलते (हुए), पूर्णको उस प्रकार भागते देख—“ भन्ते । मैं आर्याका प्रातिहार्य देखने जा रहा हूँ, आप कहा जा रहे हैं ?”

“ तुझे प्रातिहार्यसे क्या ? इस कूट (= घर्तन) और जोतेको मुझे दे ।”

उसके दिये कूट और जोतेको ले (पूर्ण काश्यप) नदी तीर जा, कूटको जोतेसे गलमें पाँध, लजासे कुछ न कह दहमें कूट, पानीका बुलबुला उठाते हुये मरकर, अवीचि (नर्क) में उत्पन्न हुआ ।

शक्रने आकाशमें रत्न (-मय-) चक्रमण (= टहलनेका चतूरा) बनाया । इसका एक छोर पूर्वके चक्रबालके मुलामे था, एक छोर पश्चिमके चक्र बालके मुखमें । (शास्ता) एकत्रित हुई छत्तीस योजनकी परिपद्को (देख),—“ अब बर्द्धमानकी छायामें प्रातिहार्य कानेकी बेला है” (सोच), गंधकुटीसे निकल देहलीके चतूरे (= प्रमुख) पर खड़े हुए

शास्ता रत्न चक्रमणपर उतरे । सामने बारह योजन लम्बी परिपद् थी, धेतेही पीछे, उत्तर ओर दक्खिनकी ओर भी, सोधमें चौबीस योजन उस परिपद्के बीचमें भगवान् यमक प्रातिहार्य किया । उमे पाली (= मूलत्रिपिटक) से इस प्रकार जानना चाहिये ।

“क्या है तथागतका यमक प्रातिहार्य का ज्ञान ? यहा तथागत श्रावकों के साथ यमक प्रातिहार्य करते हैं—ऊपर के शरीर से अग्नि पुंज निकलता है, निचके शरीरसे पानी की धार निकलती है, । नीचे वाले शरीर से अग्नि पुंज०, ऊपर के शरीर से जल धारा० । आगे की काया से अग्नि पुंज०, पीछे की काया से जलधारा, पीछे० अग्नि०, आगे० जल० । दाहिनी आँखसे अग्नि०, बाई आँखसे जल धारा०, बाई०, दाहिनी० । दाहिने कानके सोतेसे अग्नि०, बाय कानेने सोतेसे जलधारा०, बायें०, दाहिने० । दाहिनी नासिकाके सोतेसे अग्नि०, बाई नासिकाके सोतेसे जलधारा०, बाई०, दाहिनी० । दाहिने कन्धेसे अग्नि०, बायें कन्धेसे०, बाय०, दाहिने० । दाहिने हाथसे अग्नि०, बायें हाथसे जलधारा०, बायें०, दाहिने० । दाहिनी बगलसे अग्नि०, बाई बगलसे जलधारा०, बाई०, दाहिने० । दाहिने पैरसे अग्नि०, बायें पैरसे जलधारा०, बायें०, दाहिने० । अंगुलियोंसे अग्नि०, अंगुलियोंके बीचसे जलधारा० । अंगुलियोंके बीच०, अंगुलियोंसे० । एक एक रोम छिद्रसे अग्नि पुंज०, एक-एक रोम छिद्रसे उदक धारा० । नील, पीत, लोहित (= लाल), अवदात (= सफेद), माजिष्ठ (= मजीठक रङ्गका), प्रभास्वर (= सूर्य प्रकाशके रङ्गका)—छ रङ्गोंके (हो), भगवान् टहलने हैं, उद्वि निर्मित (= योग-बलसे उत्पादित शुद्ध-रूप) खडा होता है, बैठता है, सोता है । निर्मित सोता है, भगवान् टहलते हैं, खड़े होते हैं, या बंठने हैं । यह तथागतके यमक प्रातिहार्यका ज्ञान है ।

इस प्रातिहार्यको शास्ताने उस ध्वजमणपर रहलते हुये किया । उनके 'तेजो कसिण' (= तेज कृत्स्न) समाधि-ध्यानके कारण, उनके ऊपरले शरीरसे अग्नि पुञ्ज निकलता था, 'आपो कसिण' (आप कृत्स्न) ध्यानके कारण, निचले शरीरसे जल-धारा उत्पन्न होती थी । किन्तु जल-धाराके निकलनेके स्थानसे अग्नि पुञ्ज नहीं निकलता था ।

शास्ताने प्रातिहार्य करते हुए ही (मोचा), कि अर्थात् कालके बुद्ध प्रातिहार्य करके कहाँ वर्षावास करते थे—'ध्यानमें देवते हुये त्रयछिद्रमें वर्षा वासकर, माताको अभिघर्म पिण्ड का उपदेश करते हैं' देख, दाहिने चरणको युग-धर पर्वतके शिखरपर रख, दूसरे चरणको उठा 'सुमेरुपर्वतके मस्तकपर रखना । इस प्रकार अड़सठ लाख योजन स्थानमें तीगही पग (= पाद धार) हुये । ऐसा न समझना कि शास्ताने दो पगोके अन्तरको पेर पेंलाके पार किया । उनके पैर उठानेके समय पर्वताने स्वयं ही आकर, पाद मूलको ग्रहण किया । शास्ता के आगे जानेपर, उठकर अपने स्वाभाविक स्थानपर जा स्थित हुये ।

शक्ते शास्ताको देव मोचा—'मालूम होता है, भगवान् यह वर्षावास पाण्डु-कम्बल शिला (= सगमर्मर जेमी दूधलोककी एक शिला) पर करगे । अहो ! बहुतसे देवताओं का उपकार होगा । शास्ताके यहाँ वर्षा वाससे दूसरे देवता इसपर हाथ भी न रख सकेंगे । किन्तु यह पाण्डु कम्बल शिला लम्बाईमें साठ योजन, विस्तार (= चौड़ाई)में पचास योजन, मोटाई (= प्रचुरता)में पन्द्रह योजन है । शास्ताके बैठनेपर भी (यह) खाड़ी (= तुच्छ) की तरह ही होगी ।' शास्ताने उसके मनकी बातको जान, शिलाको ढाँकनेके लिये अपनी संघाटी पकी । शक्ते मोचा—'धीवरको ढाँकनेके लिये फेंका है, परन्तु स्वयं स्वल्प स्थान में ही बैठेंगे ।' शास्ताने उसके मनकी बात जान, छोटे पीरेपर बैठे, बड़े (शरीरवाले) पाण्डु कम्बल (= गुदड़ी धारी) की भाँति, पाण्डु कम्बल-शिलाको बीचमें कर बठ गये । लोगोंने उस क्षण शास्ताको न देखा ।

"चित्रकूटको गये, या कैलाश या युगन्धरको ? लोक ज्येष्ठ नर-पुङ्गव संयुद्धको अब, हम नहीं देख पायेंगे ।" यह गाथा कहते हुये लोग रोने काँदने लगे । किन्हीं किन्हींने (कहा)—'शास्ता तो एकांत प्रिय हैं, ऐसी परिपक्वके लिये ऐसा प्रातिहार्य किया' हम एजासे वृक्षों के नागर, राष्ट्र या जनपदको बँटे गये होंगे । तो अब उनको कहाँ देखेंगे" (कहा) रोते हुए इस गाथाको घोंटे—

"एकांत प्रेमी धीरे हम लोकको फिर न आवेंगे ।

लोक ज्येष्ठ नरपुङ्गव संयुद्धको (अब) हम न देख पायेंगे ।"

उन्होंने महामौल्यवायने पढ़ा—"अन्ते शास्ता कहाँ हैं ?" यह सुन जानते हुये भी 'दूसरेकी भी कामात प्रकट हो' इस विचारसे—'अनुरद्धको पूजो'—बोले । उन्होंने स्वयंसे धैरेही पूजा—"अन्ते शास्ता कहाँ हैं ?"

१ एक प्रकारका योगाभ्यास जिसमें आँखों को तेज-स्वप्नपर लगाकर, धीरे धीरे मोर भूमण्डलको तेजोमय देखनेकी भावनाकी जाती है । २ भूमण्डल का बीचम सुमेरु पर्वत है, जिसके शिखरपर इन्द्रका त्रयछिद्रा लोक है । सुमेरु के चारों ओर समुद्र है, उसके बाह्य युगधर पर्वत पर हुए हैं । फिर उस पर्वत और उस समुद्र के पार जम्बू द्वीप है ।

“त्रयस्त्रिंश भवन (= इन्द्रलोक) में पांडु कम्बल शिलापर वर्षा वासकर, माताको अभिधर्म पिटक उपदेश करने गये ।”

“भन्ते । कब आवेंगे ?”

“तीन महीने तक अभिधर्मका उपदेशकर, महा प्रवारणा (= आश्विन पूर्णिमा) के दिन ।”

इस शास्ताको त्रिना देखे न जायेंगे—यह । निश्चयकर) उन्होंने वहीं छावनी (= कंधावार) डाली । आकाश बनफ्री छन हुई । उतने बड़े जमावड़े (= परिपद) में शारता धरा भी न मारूम हुआ । पृथ्वीने विर (= छेड़) कर दिया । (वहा) सर्वत्र पृथ्वी तक परिशुद्ध था । शास्ताने पहिलेही महा मौद्गल्यायनसे कह दिया था - “महामौद्गल्यायन । तू इस परिपदको धर्म देशना करना । खुल (= छोटा) अनाथ पिंडक आहार देगा ।” इसलिये उा तीन मासों तक खुल अनाथ पिंडकने ही उस परिपदको यागू (= खिचड़ी) भात, खाद्य, ताम्बूल, गन्ध, माला, और आभूषण दिये । महा मौद्गल्यायनने धर्मोपदेश किया । प्रातिहार्य देखनेके लिये आये हुआं द्वारा पूछे प्रश्नोंका भी उत्तर दिया । माताको अभि-धर्म पिटके उपदेश करनेके लिये पांडु कम्बल शिलापर वर्षा वास करते हुए, शारताको इस हजार चक्र-बालोंके देवता घेरे हुये थे । इसीलिये कहा है—

‘त्रयस्त्रिंशमें जब पुरपोत्तम बुद्ध पांडु कम्बल शिलापर,
पारि छत्रके नीचे विहारकर रहे थे ॥

दसो लोक धातुओंके देवता जमा होकर,

गभ मस्तकपर वास करते, संबुद्धकी सेवा करते थे ॥

संबुद्धके वर्ण (= शरीर-प्रभासे अभिभावित हो) कोईभी देवता न चमकता था,

सब देवताओंको अभिभावितकर (उस समय) संबुद्धही चमक रहे थे ॥’

इस प्रकार सभी देवताओंको अपनी शारीर प्रभासे अभिभावितकर बड़े हुये (शास्ता) के दक्षिण ओर, *तुपित-देवविमानसे आकर माता (माया देवी) बठी ।

तत्र शास्ताने देव-परिपदके बीचमें बठी माताको—‘शुशल धर्म, अकुशल धर्म, अभ्याकृत (= कथित) धर्म () अभिधर्म पिटकको आरम्भ किया । इस प्रकार तान मास निरन्तर अभिधर्म पिटकको कटा । कहते हुये भिक्षाचारके समय—“जब तक मैं आजै, तब तक इतना धर्म उपदेश को” (कह) *निर्मित-बुद्ध बना, हिमशानमें जा, नागलताका दांतबनसे (दातयन) कर, अनयतस दद (= माया मरोवर) में मुँह धो, उत्तर कुलसे पिंड पात (= भिक्षा) ले आ, *महाशाल-मालकमें बैठ भोजन करते । सारिपुत्र स्थविर जाकर वहाँ शास्ताकी सेवा करते थे । शास्ता भोजनकर स्थविरको कहते—“सारिपुत्र ! आज मैंने इतना धर्म कहा है, उसे तू अपने आधीन पाचसौ भिक्षुओंको पदा ।” —यमक-प्रातिहार्यके समय प्रसन्न हो पांच सौ भिक्षु स्थविरके पाम प्रयजित हुए थे, उन्हीं, पांच सौके घारेमें शास्ताने बैसा कहा । फिर देवलोकमें जा निर्मित बुद्ध द्वारा करेमे आगे स्वयं धर्म उपदेश करते । स्थविरभी जाकर

१ इन्द्रलोकमें भी उपरका एक लोक । २ अभिधर्मपिटक धम्म संगी । ३ योग मायासे निर्मित बुद्ध-रूप । ४ देव-लोकका कोई योग ।

दिव्य शक्ति प्रदर्शन ।

उन पांच सो भिक्षुओंको धर्म-उपदेश करते । वह (पांच सो भिक्षु) शास्ताके देवलोकम वास करते समय ही सप्तप्रावरणिक हो गये ।

शारताने इसी प्रकार तीस मासतक अभि धर्म चिट्ठ उपदेश किया । दशनाकी समाप्त-पर अस्सी करोड हजार प्राणियोंको धर्माभिसमय (= धर्म दीक्षा) हुआ । महामाया भी स्रोत आपत्ति फलमे प्रतिष्ठित हुई ।

छत्तीस योजनके घेरमें (इकट्ठी हुई) परिपङ्गने—'अथ सातवें दिन प्रवारणा होगी' (जान), महामौद्गल्यायन स्थविरके पास जाकर कहा—

“भन्ते ! शास्ताके उतरनेका दिन जानना चाहिये । बिना देते हम नहीं जायेंगे ।”

आयुमान् मौद्गल्यायनने इस बातको सुन—“अच्छ आयुसो !” कह, वहीं पृथिवीमें दूध—'परिपङ्ग मुझे सुमेरु (परंत) पर चढ़ते हुये देखे' यह अधिष्ठान (= योग-मन्त्री संस्कार) कर, मणि रखते आठठान्ति पाण्डु (= छाल)-फलके सूत्रकी भांति, रूप निखाते, छमेरफ बोचमें चढ़े । मनुष्योंने भी 'एक योजन चढ़े', 'दो योजन चढ़े' उन्हें देखा । स्थविरने भी शिरने बल ऊपर चढ़े जातेकी भांति आरोहण कर, शास्ताके चरणों बन्दना कर यों कहा—

“भन्ते ! परिपङ्ग आपको बिना दत्ते नहा जाना चाहती, आप कहाँ उतरेंगे ?”

“महामौद्गल्यायन ! तेरा ज्येष्ठ भ्राता सारि पुत्र कहाँ है ?”

“सकाश्य-नगरके द्वारपर वर्षा पासने लिये गय ।”

“मौद्गल्यायन ! मैं आजसे सातवें दिन महाप्रवारणाको संकाश्य नगरके द्वारपर उतरूँगा । मुझे देखनेकी इच्छावाले बड़ा आवें । श्रावस्तीसे संकाश्य नगर तीस योजन है । इतने रास्तेके लिये किमीको पायेयका काम नहीं । उपोसधिक (= उपवास रखनेवाले) हो, स्थाया विहारम धर्म (= उपदेश) सुननेके लिये जाते हुये की भांति आवें”—यह उनको कहा ।

स्थविरने “अच्छ भन्ते !” (कह) जाकर बैठे ही कह दिया ।

शास्ताने वर्षा वास समाप्तकर, प्रवारणा (= पारन) कर शत्रुकी कहा—“महाराज मनुष्य पथ (= मनुष्य-लोक) को जाऊँगा” शत्रुने सुवर्ण मय, मणि-मय, रजत-मय तीन सोपान बनवाये । उनरु पेर सकाश्य नगरके द्वारपर प्रतिष्ठित थे, और तीस सुमरु शिखरपर । उनमें दक्षिण ओरका स्वर्ण सोपान देवताओंके लिये था, बाई ओरका रजत सोपान महाप्रह्लादे के लिये और बीचका मणि सोपान तथामतक लिये । शास्ताने भी सुमेरु शिखरपर चढ़े हो, द्वावरोहण यमरु-प्रतिहार्य कर, ऊपर अवलोकन किया, नवो ब्रह्मलोक एक-आंगन (से) हो गये । नीचे अवलोकन किया, अवीचि (नरक) तरु एक-आंगन हो गया । दिशाओ और अनु निशाओकी ओर अवलोकन किया, सौ हजार चक्रवाल एक-आंगन हो गये । (उस समय) देवताओंने मनुष्योंको देखा, मनुष्योंने भी देवताओंको देखा । भगवान्ने छ वर्ण (= रंग) की रस्मियाँ छोड़ीं । उस दिन पुद्गल की धी (= शोभाकी) देय, छत्तीस योजन छम्पी परिपङ्गमें एक भी ऐसा न था, जो सुदृक्की चाहना न करता हो, न रक्खा हो । (तब) सुवर्ण सोपानसे दबना उतरे,

१ अभिधर्मके चिट्ठके सातों ग्रंथ मस प्रकरण कह जाते हैं । २ मन्त्रिया वर्मनपुर, मन्त्रान मोटा (T । R)

मणि-सोपानसे सम्यक्-संबुद्ध उतरे । पंच क्रिया गधर्व-पुत्र घेलुव १६ धीणा (=वेषुकी राल-धीणा) छे दाहिनी ओर खड़ा, शास्ताकी गधर्व पूजा (=स्मीतसे पूजा) करते हुए उतर रहा था । मातली संप्राहक बाई ओर खड़े हो, दिव्य गधमाला पुष्प छे, नमस्कार पूजा करते हुए उतर रहा था । महाप्रह्ला छत्र लगाये ये, और सुयाम (देव-पुत्र) वाल ध्वजनी (=मोर छत्र) । शास्ता ऐसे परिवार (=अनुचर गण) के साथ उतरकर, संकाश्य नगरके द्वारपर खड़े हुए । सारिपुत्र रथचिहने भी लाकर शास्ताको वन्दनाकर—क्योंकि इससे पूर्व ऐसी सुद्ध श्रीक माथ उतरते शास्ताको न देखा था, इसलिये—

“इससे पूर्व किसीका न ऐसा देखा, न सुना ।

ऐसे मधुर-भाषी शारता तुपित (लोक) से (अपने) गणमें आय ॥ ”

आदिसे अपने सतोपको प्रकाशित करते—“भगते ! आज सभी देव, और मनुष्य आपकी स्तुति और प्रार्थना करते हैं” कहा । तब शास्ताने—“सारिपुत्र ! ऐसे ही गुणोंसे युक्त बुद्ध, देवों और मनुष्योंके प्रिय होते हैं” कह, धर्म-देशना करते इस गायिका को कहा—

“जो ध्यानमें तत्पर, धीर, निर्वर्मेता और उपशममे रत हैं ।

उन स्मृतिवाले सज्जनोंको देवता भी चाहते हैं ॥ ”

“देशनाके अन्तमें तीस करोड़ प्राणियोंको धर्म दीक्षा हुई । स्थविर (सारिपुत्र) के शिष्य पांच सौ भिक्षु अर्हत् पदको प्राप्त हुये ।

यमक-प्रातिहार्य कर, देवलोकमें वर्षा-वासकर, संकाश्य नगर द्वारपर उतरना, (सभी) सज्जनोंसे अत्याज्य है । वहाँ (संकाश्यमें) दाहिने पेरके रखनेके स्थानका नाम “अक्ष चैत्य ” है ।

+

+

+

+

छः शास्त्राओंकी सर्वज्ञता । कुछ भिक्षु-नियम । (वि. पू. ४६४)

(जटिल)-सुत्त ।

‘ऐसा मेने सुना—एक समय भगवान् धावस्तीमें अनाथ पिंडकके आराम जेतवनम विहार करते थे । तब राजा प्रसेन जित् कौसल जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर कुशल प्रश्न पूछ, एक ओर बैठ भगवान्से बोला—

“ गौतम ! आप भी तो ‘अनुत्तर (=सर्वोत्तम) सम्यक् संबोधि, (=परमज्ञान) को जान लिया’ यह दावा करते हैं ? ”

“ महाराज ! ‘अनुत्तर सम्यक् संबोधिको जान लिया’, यह ठीकसे बोलनेपर, मर ही लिये बोलना चाहिये । ”

“ हे गौतम ! वह जो श्रमण ब्राह्मण सबके अधिपति, गणाधिपति, गणके आचार्य, नात (=प्रसिद्ध) यशस्वी, तीर्थंकर (=पथ चल्नेवाले), बहुत जनो द्वारा साधु सम्मत (=अच्छे माने जानेवाले) हैं, जैसे—पूर्ण वाइश्य, मन्खली (=मन्करी) गोपाल, निर्गन्ध नाट पुत्त (=निर्गन्ध ज्ञातृपुत्र), सजय वेल्दिट्ठपुत्त, प्रमुध-कात्यायन, अजित-कशकम्बली,—वह भी ‘(क्या आप) अनुत्तर सम्यक् संबोधिको जान लिया’, यह दावा करते हैं’ पूछनेपर, ‘अनुत्तर संबोधिको जान लिया’ यह दावा नहीं करते । फिर जन्मसे अल्प वयस्क, और प्रमज्जामें नये, आप गौतमके लिये तो क्या कहना है ? ”

“ महाराज ! चारको अल्प वयस्क (=दुहर) न जानना चाहिये, ‘छोटे (=दुहर) हैं’ (समझकर) परिभव (=तिरस्कार) न करना चाहिये । कौनसे चार ? महाराज ! क्षत्रिय को दुहर न जानना चाहिये ० । सर्पको ० । अश्विको ० । भिक्षुको ० । इन चारको महाराज ! दुहर न समझना चाहिये ० । यह कहकर शास्ताने फिर यह भी कहा ।—

“ कुलीन, उत्तम, यशस्वी, क्षत्रियको, दुहर करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे । हो सकता है राज्य प्राप्तकर, वह मनुजेंद्र क्षत्रिय, क्रुद्ध हो राज दण्डसे पराजित करे ॥ इसलिये अपने जीवनकी रक्षाके लिये उससे अलग रहना चाहिये । गाव या भरण्यमें जहा सांपको दूधे, दुहर करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे । नाना प्रकारके रूपोंसे उरग (=सांप) तेजस विचरता है । वह समय पाकर नर, नारी, बालकको डंस लेगा ॥ इसलिये अपने जीवन की रक्षाके लिये उससे बलग रहना चाहिये । बहुत भरी जवाला-युक्त पायक = कृष्णवत्स (= काले मार्गवाला) को दुहर करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे । उपादान (=सामग्री) पा, बढ़ा होकर वह आग समय पाकर, नारागीको जला दगी ॥ इसलिये अपने जीवनकी रक्षाके लिये उसमें अलग रहना चाहिये । पावक = कृष्णवत्स = अग्नि धनको जलादेता है । (लेकिन) अहोरात्र धीतनेपर वहा अंकुर उत्पन्न होजाते हैं ॥ लेकिन जिनका सदाचारी भिक्षु (अपने) सेअसे जगता है ।

उसके पुत्र पशु (तक) नहीं होते, दायाद भी धन नहीं पाते ॥ सन्तान रहित दायाद रहित लि
कटे ताल जैसा वह होता है ॥ इसलिये पंडितजन अपो हितको जानते हुए, भुजंग, पावक,
यशस्वी क्षत्रिय, और शील सम्पन्न (=सदाचारी) भिक्षु के (साथ), अच्छी तरह
वर्ताव करें ॥ ”

ऐसा कहने पर राजा प्रसेनजित् कौसलने भगवान्से कहा ।—

“ आश्चर्य ! भन्ते ॥ आश्चर्य ! भन्ते ॥ जैसे भन्ते ! अधिको सीधा कद ० । ०
मुझे उपासक धारण कर । ”

+ + +
‘यह छ शास्त्राचार्योक्तो सेवाकर धिन्ता-मणि आदि विद्याभा को परका
‘हम बुद्ध हैं’ यह दावा करते, बहुतसे लोग-गण, देश-देशान्तरमें विचरते, क्रमशः
श्रावस्ती पहुँचे । उनमें भक्तोंने राजाके पास जाकर कहा—“ महाराज ! पूर्ण कारणा
अजित केदा-कम्बलो, बुद्ध हैं सर्वत्र हैं । ”

राजाने कहा—“ तुम उन्हें निमंत्रित कर ले आओ । ”

उन्होंने जाकर कहा—“ राजा आप लोगोंको निमंत्रित कर रहे हैं, (आप) राजाके
घर भिक्षा ग्रहण करें । ”

वह जानेका साहम न करते थे । बार बार कहनेपर, भक्तोंके माको खानेके लिये
स्वीकारकर सभी एक साथही गये । राजाने आसन विष्ठाकर ‘बेठिये’ कहा ।
निर्गुणोंके शरीरमें राज तेज छा जाता है, (इत्यलिये) वह बहु मूल्य आमनोंपर बने
अममर्थहो, धरतीपरही धैठ गये । राजाने—‘ इतने हीसे इनने भीतर शुद्ध धर्म नहीं है—’ कह
निना भोजन प्रदान किये, तालसे गिरेको सुगरे से पीवते हुए की भांति—“ तुम बुद्ध हो
(या) बुद्ध नहीं हो ? ” पूछा । उन्होंने सोचा—यदि बुद्ध है, कहूँ, तो राजा बुद्धके विषयमें
प्रश्न पूछेगा, न कह सकनेपर—तुम लोग ‘हम बुद्ध हैं’, (कहकर) लोगोंको ठगते फिरते हो—
(कह) जिद्वाभी फटवा सकता है, वसरा भी अनर्थकर मरता है । इसलिये दावा करके भ
‘ हम बुद्ध नहीं हैं ’ उत्तर दिया । तब राजाने उन्हें घरसे निकलवा दिया ।

राज घरमें निकलनेपर भक्तोंने पूछा—“ क्यों आचार्यो ! राजाने तुमसे प्रश्न पूछकर, सत्का
सन्मान किया ? ”

“ राजाने ‘तुम बुद्ध हो’ पूछा, तब हमने—‘ यदि राजा बुद्धके विषय में प्रश्न
व्याख्यानको न जानते हुये, हमलोगोंके प्रति मनको दूषित करेगा, तो बहुत पाप करेगा
सोच राजापर दयाकर, हमने ‘हम बुद्ध नहीं हैं’ कहा । हम तो बुद्धही हैं, हमारा बुद्धत्व
पानीसे धोनेसे भी नहीं जा सकता । ”

+ + + + +
‘उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहमें विहार करते थे । उस समय छ वर्गावभिषु नह
हुये वृक्षमें शरीरको रगड़ते थे, जैधाको, बाहुको, छातीको, पेटको भी । लोग खिन्न होते, धिक्का
थे—कैसे यह शाक्य पुत्रीय श्रमग नहाते हुये वृक्षमें, जैसे कि मछ (= पहलवान्) और मालि

कुछ भिक्षु नियम ।

करने वाले । । भगवान् ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“ भिक्षुओ ! नहाते हुये भिक्षुको वृक्षसे दरीर न रगड़ना चाहिये, जो रगड़े उसको ‘दुष्कृत’ की आपत्ति है ।”

“ भिक्षुओ ! बाली नहीं धारण करनी चाहिये, साकल०, कठ सूत्र०, कटि सूत्र०, ओवट्टिक (=कटि भूषण)०, केयूर०, हाथका आभरण०, अंगुलीकी अगूठियां न धारण करनी चाहिये, जो धारण करे (उसे) दुष्कृतकी आपत्ति है ।”

‘लम्बे केश नहीं रखने चाहिये । ०‘दुष्कृत’ की आपत्ति० । दा महीनेके (केश) या दो अंगुल लम्बेकी, अनुज्ञा देता हूँ ।

“ दर्पण या जल पात्रमें मुँह न देखना चाहिये । ०‘दुष्कृत’० ।”

“ रोगसे (पीड़ितको) दर्पण या जल पात्रमें मुँह देखनेकी अनुज्ञा देता हूँ ।”

उस समय राजगृहमें गिरण समज्या^१ (= गिरग समज्या) होती थी, छ वर्गाय भिक्षु गिरग समज्या देखने गये । लोग खिन्न होते धिक्कारते । “नाच, गीत, बाजा देखनेको न जाना चाहिये । ‘दुष्कृत’ ।

उस समय छ वर्गाय भिक्षु लम्बे गीतके स्वरसे धर्म (=सूत्र) को गाते थे । लोग खिन्न होते धिक्कारते—कैसे शास्त्र पुत्रोप श्रमण लम्बे गीत स्वरसे धर्मको गाते हैं । । भगवान् ने धिक्कारकर संबोधित किया—

“ भिक्षुओ ! लम्बे गीत स्वरमें धर्मको गानेमें यह पाँच गुराहियाँ हैं—(१) स्वयं भी उस स्वरमें सनाग होता है, (२) दूसरे भी०, (३) गृहस्थ भी खिन्न होते हैं, (४) अलाप देने वालेकी (=सरकुत्तिप्पि निरुत्तमयमानन्स) समाधिका रूग होता है, (५) आने वाली जनता भी देखेका अनुगमन करता है । भिक्षुओ ! लम्बे गीतस्वरमें यह० । ०लम्बे गीत स्वरसे धर्म न गाना चाहिये । दुष्कृत । ०स्वरमण्यका अनुज्ञा देता हूँ ।

भगवान् ब्रमश चारिका करते जहाँ वेशाली थी वहाँ पहुँचे । वहाँ वेशालीमें भगवान् मशवन्की कृत्तागारशालामें विहार करते थे ।

“ भिक्षुओ ! मशक कुट्टा (=मकपकुटी=मसहरी) की अनुज्ञा देता हूँ । ”

उस समय वेशालीमें उत्तम भोजनोका (निरंतर निमग्न रहता था), भिक्षु बहुत रोगी हो रहे थे । जीवर कौमारभृत्य किसी कामसे वेशाली आया था । जीवर० ने भिक्षुओंको बहुत रोगी देख भगवान्को अभिवादनकर कहा—

“ भन्ते ! इस समय भिक्षु बहुत रोगी हो रहे हैं । भन्ते ! अच्छा हाँ यदि भगवान् चक्रम और जन्ताघरकी अनुज्ञा दें, इस प्रकार भिक्षु निरोग रहेंगे । ”

“ भिक्षुओ ! चक्रम और जन्ताघरकी अनुज्ञा देता हूँ । ”

“ चक्रमण पट्टिका० अनुज्ञा देता हूँ । ”

‘वेशालीमें इच्छानुसार विहारकर, भगवान् जिधर ‘भार्ग’ (=भार्गाका दश) थे, उधर चारिका को थे । । वहाँ भगवान् भार्गम संयुमार गिरिसे भेयरुण्य यन गृगदावमें विहार करते थे ।

१ समज्या = समाज = मला = तमाशा । २ वटिकाकी भाँति सत्वर पाठ । ३ टहलना और टहलनेवा चवतरा । ४ स्नान-गृह । ५ सुल्ल वग ५ ६ बनारस, मिर्जापुर, इलाहाबाद जिल्लोंके गंगाक दक्षिणवाए भागका किलाही भाग ।

द्वितीय-खण्ड ।

आयु-वर्ष ४३—४८ ।

(वि. पृ ४६३-४५८)

द्वितीय-खण्ड ।

(१)

मित्रु सधमें ऊनह । पारिलेयक-गमन । (वि. पू. ४६३-४६२)

‘उम समय भगवान् कौशाम्ब्योके घोषिताराममें बिहार करते थे, (तब) किसी मित्रुको ‘आपत्ति’ (=दोष) हुई थी । वह उम आपत्तिको आपत्ति समझता था, दूसरे मित्रु उस आपत्तिको अनापत्ति समझने थे । (कि) दूसरे समय वह (भी) उस आपत्तिको अनापत्ति समझने लगा, और दूसरे मित्रु उस आपत्तिको आपत्ति समझने लगे । तब उन मित्रुओंने उम मित्रुसे कहा—“आहुस ! तुम जो आपत्ति किये हो, उम आपत्तिको देख रहे हो ?” “आहुसो ! मुने ‘आपत्ति’ ही नहीं, किपको मै देखू ?” तब उन मित्रुओंने जमा हो, आपत्ति न देखनेके लिये, उम मित्रुका “उत्क्षेपण” किया । वह मित्रु, बहुत धुत, ‘आगमन, धर्म घर, विनय घर, ‘मात्रिका घर, पडित=व्यक्त, मेधावी, लज्जी, आल्याबाद सीवनेवाला था । उम मित्रुने जानकर, संभ्रान्त मित्रुओंके पास जाकर कहा—“हे आहुसो ! वह अनापत्ति आपत्ति नहीं । मे आपत्ति-रहित हूँ, इसे मुने (वह लोग) आपत्ति सहित (कहते हैं) । ‘उत्क्षेपण’-रहित (=अनुत्क्षिप्त) हूँ, मुने (उन्होंने) उत्क्षिप्त किया । अधार्मिक=कोप्य, त्यागमें अनुचित निर्णय (=कर्म) द्वारा उत्क्षिप्त किया गया हूँ । आयुष्मान्(लोग) धर्मके साथ त्रिनयके साथ मेरा पक्ष ग्रहण करें ।” (तब) सभी जानकार संभ्रान्त मित्रुओंको पक्षमें उभने पाया । जानपद (=दीहाती) जानकार और संभ्रान्त मित्रुओंके पास भी दूध भेजा । जानपद जानकार और संभ्रान्त मित्रुओंको भी पक्षमें पाया । तब वह उत्क्षिप्त मित्रुके पक्षवाले मित्रु, जहाँ उत्क्षेपण के, चला गये । जाकर उत्क्षेपण मित्रुओंसे बोले—

१ महाभाग १० इसकी अट्टक्यामे है—

“एक संघाराममेंदो मित्रु—एक विनय घर (=विनयिटक पाठी), दूसरा सौत्रान्तिक (=सुत्रपिटक-पाठी), वास करते थे । उनमें सौत्रान्तिक एक दिन पाखानेमें गा, शौचके बचे जलको बर्तनमें ही छोड़, चला आया । त्रिनयघर पीछे पाखाने गया । बर्तनमें पानी देखकर, उस मित्रुसे पूछा—“आहुस ! तुमने इस जलको छोड़ा है ?” “हाँ, आहुस !” “तुम इसमें आपत्ति (=दोष) नहीं समझने ?” “हाँ, नहीं समझता” “आहुस ! यहाँ आपत्ति होती है ।” “यदि होती है, तो (प्रति) देखा (=क्षमापन) करूँगा ।” यदि तुमने बिना जाने, मूटसे किया, तो आपत्ति नहीं है” वह उम आपत्तिको अनापत्ति समझता था । विनय घरने भी अपने अनुयायियोंको कहा—“वह सौत्रान्तिक ‘आपत्ति’ करके भी नहीं समझता” । वह उस (सौत्रान्तिक) के अनुयायियोंको देखकर कहते—“तुम्हारा उपाध्याय आपत्ति करके भी ‘आपत्ति’ हुई” नहीं जानता ।” यह कहते—“पर विनयघर पहिले अनापत्ति कर, अब आपत्ति करता है, यह मिथ्या वादी है ।” उन्होंने कहा—“तुम्हारा उपाध्याय मिथ्या-वादी है” । इस प्रकार कलह बढ़ी । २ एक प्रकारका दण्ड । ३ सूत्र पिट्ठके दीध निरुप्य आदि पाँच निरुप्य ‘आगम भी कहे जाते हैं । ४ अति संक्षिप्त अमिधम ।

“यह अनापत्ति है आवुसो ! आपत्ति नहीं। यह भिक्षु आपत्ति रहित है, आपत्ति-रहित (=आपा) नहीं। अनुत्तिस्स है उत्तिस्स नहीं। यह अ-धार्मिक० कर्म (=न्याय) से उत्तिस्स दिया गया है।” ऐसा कहनेपर उत्क्षेपक भिक्षुओंने उत्तिस्स भिक्षुके पक्षवालोंसे कहा—
 ‘आवुसो ! यह आपत्ति है, अनापत्ति नहीं। यह भिक्षु आपन्न है, अनापन्न नहीं। यह भिक्षु उत्तिस्स है, अनुत्तिस्स नहीं। यह धार्मिक=अकोप्य=स्थानीय, कर्म (=न्याय) द्वारा उत्तिस्स हुआ है। आयुप्मानो ! आप लोग इस उत्तिस्स भिक्षुका अनुवर्तन=अनुगमन न कर।” उत्तिस्सके पक्षवाले भिक्षु, उत्क्षेपक भिक्षुओं द्वारा ऐसा कहे जानेपर भी, उत्तिस्स भिक्षुका वत ही अनुवर्तन=अनुगमन करते रहे।

+ + + +

“ऐसा भेने सुना—एक समय भगवान् कौशाम्बीके धीपितराममें विहार करते थे। उस समय कौशाम्बीमें भिक्षु भंडन करते, कलह करते, विवाद करते, एक दूसरेको मुल (लपी) शक्ति (=हथियार) से घेधते फिरते थे। तब कोई भिक्षु, जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े दुये उम भिक्षुने भगवान्से यो कहा— “यहाँ कौशाम्बीमें भन्ते ! भिक्षु भंडन करते, कलह करते, विवाद करते एक दूसरेका मुलशक्तिसे घेधते फिरते हैं। अच्छा हो यदि भन्ते ! भगवान्, जहाँ वह भिक्षु हैं, वहाँ चले।”

भगवान्ने मोक्षसे उसे स्वीकार किया। तब भगवान् जहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे बोले—

“यस भिक्षुओ ! भंडन, कलह, विप्रह, विवाद (मत) करो।”

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्को कहा—

“भन्ते ! भगवान् ! धर्म स्वामी ! रहने दें। परवाह मत करें। भन्ते ! भगवान् ! धर्म-स्वामी ! दृष्ट-धर्म (इसी जन्म) के छपके साथ विहार करें। हम इस भंडन कलह विप्रह विवादसे (स्वयं निपट लेंगे)।

दूसरीबार भी भगवान्ने उन भिक्षुओंसे कहा—“यस भिक्षुओ० ! ०’।०। तीसरीबार भी भगवान् ०।०।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय (वल्ल) पहनकर पात्र चीवरले कौशाम्बीमें भिक्षाचार कर, भोजनकर पिंड-पातसे उठ, आसन समेट, पात्र चीवर ले, खड़ेही खड़े इस गाथाको बोले—

“यड़े शब्द करने वाले एक समान (यह) जन कोई भी अपनेको बाल (=अज्ञ) नहीं मानते, संघके भंग होने (और) मेरे लिये मनमें नहीं करते ॥

मूढ, पंडितसे दिखलाते, जीभपर आई बातको बोलने वाले ,

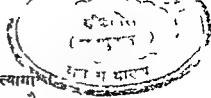
मन चाहा मुख फैलाना चाहते हैं, जिस (कलह) से (अयोग्य मार्गपर)

ले जाये गये हैं, उसे नहीं जानते ॥

‘मुझे निन्दा’, ‘मुझे मारा’, ‘मुझे जीता’, ‘मुझे त्यागा’।

(इस तरह) जो उसको (मनमें) बाँधते (=उपनहन) हैं, उनका वेर शांत नहीं होता ॥

भेक्षु-सघर्ष कलह ।



‘मुझे निन्दा’, ‘मुझे मारा’, ‘मुझ जीता’, ‘मुझ त्यागा’ (एक तरह) जो उसको नहीं बाँधते, उनका बर शात हो जाता है ॥

धरसे बर यहाँ कभी शात नहीं होता ।

अ-वेरते (ही) शीत होता है, यही सनातन धर्म है ॥

दूसरे (=अपडित) नहीं जाते, कि हम यहाँ मृत्युको प्राप्त होगे ।

जो यहाँ (मृत्युके पास) जाना जाने हैं, व (पंडित) उद्दिगत (कन्हाको) शमन करते हैं ॥

हट्टी तोड़ने वालों, प्राण हरने वालों, गाय घोड़ा घन हरने वालों ।

राष्ट्रको विनाश करने वाले (तक) का भी मेल होता है ॥

यदि नम्र-साधु बिहारी धीर (पुरष) सहचर = सहायक (=साथी) मिले ।

तो सख झगड़ोंको छोड़ प्रसन्न हो बुद्धिमान् उसके साथ विचरे ॥

यदि नम्र साधु बिहारी धीर सहचर सहायक = मिले ।

तो राजाकी भाँति विजित राष्ट्रको छोड़, उत्तम मातंग राजकी भाँति अकेला विचरे ॥

अकेला विचरना अच्छा है, पालते मित्रता नहीं (अच्छी) ।

ये पवाह हो उत्तम मातंग (=जाग) राजकी भाँति अकेला विचरे, और पाप न करे ॥”

तब भगवान् उनके सारे इन गाथाओंको कहकर, जहाँ बालक लोगकार ग्राम था, वहाँ गये । उस समय आयुष्मान् शृगु बालक-लोककार ग्राममें वास करते थे । आयुष्मान् शृगुने दूर सेही भगवान्को आते देखा । देखकर आसन विछाया, पैर धोनेको पानी भी (रक्खा) ।

भगवान् विछाये आसनपा बसे । पैठका चाण घोये । आयुष्मान् शृगु भी भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् शृगुको भगवान्ने याँ कहा—

“मित्र ! क्या समनीय (=ठीक) तो है, क्या यापनीय (=अच्छी गुजस्ती) तो है ? पिंड (=मिक्षा) के लिये तो तुम तकनीक नहीं पाते ?”

“समनीय है भगवान् । यापनीय है भगवान् । मैं पिंडके लिये तकनीक नहीं पाता ।”

तब भगवान् आयुष्मान् शृगुको धार्मिक कथासे० संमुत्तेजितकर०, आसनमे उठकर, जहाँ प्राचीन-वैश-दाव है, वहाँ गये । उस समय आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिष और आयुष्मान् किम्बिल प्राचीन वैश दावमें विहार करते थे । दाव पालक (=वन पाल) ने दूरसे ही भगवान्को आते देखा । देखकर भगवान्को कहा—

“महाधर्मज ! इस दावमें प्रवेश मत करो । यहाँपर तीन कुल पुत्र यथाकाम (=मोज से) विहर रहे हैं । उनसे तकनीक मत दो ।”

आयुष्मान् अनुरुद्धने दाव पालको भगवान्के साथ बात करते सुना । सुनकर दाव पालसे यह कहा—

“आयुम ! दाव पाल ! भगवान्को मत मना करो । हमारे शास्ता भगवान् आये हैं ।”

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध जहाँ आयुष्मान् नन्दिष और आयु० किम्बिल थे वहाँ गये । जाकर बोले —

“आयुष्मानो ! चलो आयुष्मानो ! हमारे शास्ता भगवान् आ गये ।”

तप आ० अनुरद्ध, आ० नन्दिन्य, आ० किम्बिल भगवान्की भगवान्की, एक पात्र-चीवर गृहण किया, एकने आमन धिठाया, एकने पादोदक स्वत्वा । भगवान्ने विज्ञापनपर घेठ पेर धोये । वे भी आयुमान् भगवान्को अभिषादनकर, एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ हुये आयुमान् अनुरद्धको भगवान्ने कहा—

“अनुरद्धो ! समनीय तो है ? यापनीय तो है ? पिंडके लिये तो तुमलोग तृण्योर्वा पाते ?”

“समनीय है, भगवान् !०”

“अनुरद्धो ! क्या एकत्रित, परम्पर मोद-सहित, दूध-पानी हुये, परम्पर प्रिय दक्षिण देवने, विहरने हो ?” “हां भन्ते ! हम एकत्रित० ।”

“तो कैसे अनुरद्धो ! तुमएकत्रित० ?” “भन्ते ! मुझे, यह विचार होता है— मेरे लिये लाभ है ! मेरे लिये सुख लाभ प्राप्त हुआ है, जो ऐसे स ब्रह्मचारियों (=गृह भाइयों) के साथ विहरता हूँ । भन्ते ! इन आयुष्मानोंमें मेरा कार्यात्मक कर्म अन्दर और बाहरसे मिश्रता पूर्ण होता है, याचिक-कर्म अन्दर और बाहरसे मिश्रता-पूर्ण होता है, मानसिककर्म अन्दर और बाहर० । तप भन्ते ! मुझे यह होता है—क्यों न मैं अपना मन हटाकर, इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तके अनुसार यत्न । तो भन्ते ! मैं अपने चित्तको हटाकर इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तका अनुवर्तन करता हूँ । भन्ते ! हमारा शरीर नाना है, किन्तु चित्त एक ।”

आयुमान् नन्दीने भी कहा—“भन्ते ! मुझे यह होता है० ।”

आयुष्मान् किम्बिलने भी कहा—भन्ते ! मुझे यह० ।

“साधु, साधु, अनुरद्धो ! अनुरद्धो ! क्या तुम प्रमाद रहित, आलस्य रहित, सयमी हो, विहरते हो ?” “भन्ते ! हाँ ! हम प्रमाद-रहित० ।”

“अनुरद्धो ! तुम कैसे प्रमाद रहित० ?” “भन्ते ! हमारेमें जो पहिले ग्राममें भिक्षाचार करके लौटता है, वह आसन लगाता है, पीनेका पानी रखता है, कूड़ेकी थाली रखता है । जो पीछे गावसे पिंडधार करके लौटता है, (वह) भोजन (भैंसे जो) बँधा रहता है, यदि चाहता है, खाता है, (यदि) नहीं चाहता है, तो (ऐसे) स्थापन, जहाँ हरियाली न हो, छोड़ देता है, या जीव रहित पानीमें छोड़ देता है । आसनोंको समेटता है । पीनेके पानीको समेटता है । कूड़ेकी थालीको धोकर समेटता है । खानेकी जगहपर स्नातृ देता है । पानीके घड़े, पीनेके घड़े, या पावनेक घड़ेमें जिसे खाली देखना है, उसे (भरकर) रख देता है । यदि वह उससे होने लायक नहीं होता तो हाथके द्वारासे, हाथके सकेत (=हृत्थ विलम्बक) से दूसरेको बुलाकर, पात्रोंके घड़े, या पीनेके घड़ेको (भरकर) रखवाता है । भन्ते ! हम उसके लिये वाग्-युद्ध नहीं करते । भन्ते ! हम पाँचों दिन सारी रात धर्म-सम्बन्धी कथा करते बैठने हैं । इस प्रकार भन्ते ! हम प्रमाद रहित० ।”

“साधु, साधु, अनुरद्धो ! अनुरद्धो ! इस प्रकार प्रमाद-रहित, निरालस, सयमी हो विहरते, क्या तुम्हें उत्तर-मनुष्य धर्म अलमार्य ज्ञान दर्शन विशेष अनुकूल-विहार प्राप्त है ?”

मिक्षु-सद्यमें कलह ।

“भन्ते ! हम प्रमाद रहित० विहार करते, अवभास और रूपोंके दर्शनको जानने हैं । किंतु वह अवभास, और रूपोंके दर्शन हम लोगोंको जल्द ही अन्तर्ध्यान होजाते हैं । हम इसका कारण नहीं जान पाते ।”

“अनुरद्धो ! तुम्हें वह कारण जान लेना चाहिये । मैं भी सम्बोधिते पूर्व, न मुद हुआ, बोधि-मत्त्व होते (समय) अवभास और रूपोंके दर्शनको जानता था । मेरा वट अवभास और रूपोंका दर्शन जल्द ही अन्तर्ध्यान होजाता था । तब मुझे ! अनुरद्धो यह हुआ—क्या है हेतु (=कारण), क्या है प्रत्यय (=कार्य), जिससे मेरा अवभास और रूपोंका दर्शन अन्तर्ध्यान होजाता है । तब मुझे अनुरद्धो ! यह हुआ—(१) विचिकित्सा (=शंका, सन्देह) मुझे उत्पन्न हुई, विचिकित्साके कारण मेरी समाधि च्युत होगई । समाधिके च्युत होनेपर अवभास और रूपोंका दर्शन अन्तर्ध्यान होता है । सो मैं ऐसा कहूँ, जिसमें फिर विचिकित्सा न उत्पन्न हो । सो मैं अनुरद्धो ! प्रमाद रहित० विहार करते, अवभास (=प्रकाश) और रूपोंका दर्शन देखने लगा । (किंतु) वह अवभास और रूपोंका दर्शन जल्द ही (फिर) अन्तर्ध्यान होजाता था । तब मुझे अनुरद्धो ! यह हुआ—क्या है हेतु० ।

‘तब मुझे अनुरद्धो ! हुआ—(२) अमनसिकार (=मनम न दृढ करना), मुझे उत्पन्न हुआ । अमनसिकारके कारण मेरी समाधि च्युत हुई० । सो मैं ऐसा कहूँ, जिसमें फिर न विचिकित्सा न अमनसिकार उत्पन्न हो । सो मैं० । ०(३) धीन मिद्व (=स्त्यान मिद्व)० । ० न विचिकित्सा न अमनसिकार, न धीन मिद्व उत्पन्न हो । सो मैं० । ० (४) स्तम्भितत्त्व (=स्तम्भितत्त्व)० । स्तम्भितत्त्व (=जडता) के कारण मेरी समाधि च्युत हुई । समाधिके च्युत होनेपर, अवभास और रूपोंका दर्शन अन्तर्ध्यान हुआ । अनुरद्धो ! जैसे पुरुष (अधिरी रातम) रास्तेमें जारहा हो, उसके दोनों ओर घेरे उड़ जाय । उसके कारण उसको स्तम्भितत्त्व उत्पन्न हो । ऐसेही अनुरद्धो ! मुझे स्तम्भितत्त्व उत्पन्न हुआ । स्तम्भितत्त्वके कारण० । सो मैं ऐसा कहूँ, जिसमें फिर न विचिकित्सा उत्पन्न हो, न अमनसिकार, न स्त्यान मिद्व, न स्तम्भितत्त्व । सो मैं अनुरद्धो० । (५) उत्पीडा (=उत्पीडा=उत्पीडा)० ।

अनुरद्धो ! पुरुष एक निधि (=पतना) को दृष्टा, एकही बार पाँच विधियाँ मुखको पाजाय, जिसके कारण उसे उत्पीडा उत्पन्न हो । ऐसेही अनुरद्धो ! उत्पीडा उत्पन्न हुआ । उत्पीडाके कारण मेरी समाधि च्युत हुई० । सो मैं ऐसा कहूँ, जिसमें मुझे फिर न विचिकित्सा उत्पन्न हो० न उत्पीडा । सो मैं अनुरद्धो ! ० (६) दुःखल (=दुःखल)० । सो मैं ऐसा कहूँ, जिसमें मुझे न विचिकित्सा उत्पन्न हो०, न दुःखल । सो मैं० । तब मुझे अनुरद्ध ! यह हुआ—(७) अति आरब्ध-वाय (=अचारद वीरिय, अत्यधिक अभ्यास) मुझे उत्पन्न हुआ० । जैसे अनुरद्ध ! पुरुष दोनों हाथोंसे घेरको जोरम पकड़े, वह वहाँ मर जाय । ऐसेही मुझे अनुरद्ध ! ० । सो मैं ऐसा कहूँ, जिसमें मुझे अत्यारब्ध वीर्य० । (८) अति-लीन-वीर्य (=अति-लीन-वीर्य)० । जैसे अनुरद्धो ! पुरुष घेरको घेरा पकड़े, वह अपने हाथसे उड़ जाय० । सो मैं० अति-लीन वीर्य० । ० (९) अभिजल्प (=अभिजल्प)० । सो मैं० अभिजल्प० । ० (१०) भानात्त्वप्रज्ञा (=भानात्त्वप्रज्ञा)० ।

“सो मैं० नागावद-प्रज्ञा० । ० (११) अतिनिध्यायितत्त्व (=अतिनिध्यायितत्त्व) रूपोंका मुझे उत्पन्न हुआ । अतिनिध्यायितत्त्वके कारण मेरी रूपोंकी समाधि च्युत हुई ।

समाधि के च्युत होनेसे अवभास, और रूपों का दर्शन अन्तर्ध्यान हुआ। सो मैं ऐसा हूँ, जिममें मुझे फिर न (१) विचिकित्सा उत्पन्न हो, न (२) अ-मनसिकार, न (३) स्थान-मूढ, न (४) स्तम्भितत्व, न (५) उत्पीड़ा, न (६) दुःस्थौल्य, न (७) अत्यारब्ध-वीर्य, न (८) अति लीन वीर्य, न (९) अभि-जल्प, न (१०) नानास्व-प्रज्ञा, न (११) रूपों का अति नि-ध्यायितत्व। सो मेने अनुरद्धो ! 'विचिकित्सा चित्तका उप-क्लेश (=मल) है' जानकर, चित्तके उप-क्लेश विचिकित्साको छोड़ दिया, 'अ-मनसिकार चित्तका उप-क्लेश है' जानकर, चित्तके उप-क्लेश अ-मनसिकारको छोड़ दिया; ०स्थान-मूढ०, ०स्तम्भितत्व०, ०उत्पीड़ा, ०दुःस्थौल्य०, ०अत्यारब्ध-वीर्य०, ०अति लीन वीर्य०, ०अभि-जल्प०, ०नानास्व-प्रज्ञा, ०रूपों का अति-नि-ध्यायितत्व चित्तका उप-क्लेश है' जानकर, चित्तके उप-क्लेश रूपों के अति नि-ध्यायितत्वको छोड़ दिया। सो मैं अनुरद्धो ! प्रमाद रहित निरालस, सयमी हो बिहते अवभासको जानता, और रूपोंको नहीं देखता, रूपोंको देखता, और अवभासको नहीं पहिचानता (कि) 'केवल रात (है, या) केवल दिन, या केवल रात दिन'।

"तब मुझे अनुरद्धो ! यह हुआ—क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, (कि) मैं अवभासको जानता हूँ ? तब मुझे अनुरद्धो ! यह हुआ जिस समय मैं रूपके निमित्त (=विशेषता) को मनमें न कर अवभासके निमित्त हीको मनमें करता हूँ, उस समय अवभासको पहिचानता हूँ, और रूपों को नहीं देखता। जिस समय मैं अवभासके निमित्तको मनमें न कर, रूपके निमित्तको मनमें करता हूँ, उस समय रूपोंको देखता हूँ, 'केवल रात है, केवल दिन है, केवल रात दिन है' इस अवभासको नहीं पहिचानता। सो मैं अनुरद्धो ! प्रमाद-रहित० बिहते, अल्प (=परित) अवभासको भी पहिचानता, अल्प रूपको भी देखता, अ-प्रमाण (=मरार) अवभासको भी पहिचानता, अ-प्रमाण रूपोंको भी देखता—'केवल रात है, केवल दिन है, केवल रात दिन है'। तब मुझे अनुरद्धो ! ऐसा हुआ—क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो मैं अल्प अवभासको भी पहिचानता० ? तब अनुरद्धो ! मुझे यह हुआ—जिस समय समाधि अल्प होती है, उस समय मेरा चक्षु अल्प होता है, सो मैं अल्प चक्षुसे परिच्छिन्न (=अल्प) ही अवभासको जानता हूँ, परिच्छिन्न ही रूपोंको देखता हूँ। जिस समय अप्रमाण समाधि होती है, उस समय मेरा चक्षु-अप्रमाण होता है, सो मैं अप्रमाण चक्षुसे अ-प्रमाण अवभासको जानता, अप्रमाण रूपों—केवल दिन, केवल रात, केवल रात दिनोंको देखता। क्योंकि अनुरद्धो ! मेने 'विचिकित्सा चित्तका उप-क्लेश है' जानकर, चित्तके उप-क्लेश विचिकित्साको छोड़ दिया था। 'अमनसिकार०। स्थान-मूढ०। स्तम्भितत्व०। उत्पीड़ा०। दुःस्थौल्य०। अत्यारब्ध-वीर्य०। अति-लीन वीर्य०। अभि-जल्प०। नानार्थ-संज्ञा०। 'रूपों का अति नि-ध्यायितत्व चित्तका उप-क्लेश है' जानकर, चित्तके उप-क्लेश अतिनिध्यायितत्वको छोड़ दिया था।

"तब मुझे अनुरद्धो ! ऐसा हुआ—जो मेरे चित्तके उप-क्लेश थे, वह छूट गये। हाँ तो ! अब मैं तीन प्रकारसे समाधि भावना करूँ। सो मैं अनुरद्धो ! वितर्क-रहित भी समाधिकी भावना करता। वितर्क रहित विचार मात्रवाली समाधिकी भावना करता। वितर्क-रहित समाधिकी भी भावना करता। प्रीति (=स प्रीतिक) समाधिकी भी०, प्रीति बिनावाली (=नि प्रीतिक) समाधि०। शांत (=सुख)-संयुक्त समाधि०। उपेक्षा युक्त समाधि०। क्योंकि, अनुरद्धो !

भिक्षु-संघमें कलह ।

मैंने स विर्तक स विचार समाधिकी भी भावनाकी यी अवितर्क विचारमात्रवाली समाधि० । अवितर्क अविवार समाधि० । स प्रीतिक० । नि प्रीतिक० । सात-सह मत० । मेरे लिये ज्ञान-सन्दर्शन हो गया । मेरी चित्तकी विमुक्ति (= मुक्ति) अटल होगई । यह अन्तिम जन्म है । अब पुनर्जन्म (= आवगमन) नहीं । "

भगवान् ! (इस प्रकार बोले), आयुष्मान् अनुसूदने मन्तुष्ट हो भगवान् के भाषणको अभिनन्ति किया ।

(पारिलेयक-मुत्त) ।

प्रेमा मेने सुना—एक समम भगवान् कोशाम्बीने घोषितारागमें विहार करते थे ।

उस समय भगवान् भिक्षुभोसे, भिक्षुनियोमें, उपासकोंमें, उपासिकाओंमें, राजाभोसे, राजन-महामात्योसे, सैधिकोसे, सैधिक-प्रावकोसे आकीर्ण हो, दुःखसे विहरते थे, अनुकूलतासे (= पासु) न विहरते थे । तब भगवान् को यह हुआ—“ मैं इस समय आकीर्ण हो दुःखसे विहरता हूँ अनुकूलतासे नहीं विहरता हूँ । क्यों न गणने अनेका, अ समीप हो विहरें ?

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहनकर पात्र-बीवर ले कोशाम्बीमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये । कोशाम्बीमें पिंड चारकरके, पिंड पात स्वतमकर, भोजनके पश्चात् स्वयं आसन समेट पात्र-धीवर ले, उपस्थानक (= हजरी) को निना कहे, भिक्षु सघरो विना देगे, अनेके अ द्वितीय, त्रिथर पारिलेयक था, उधरको चारिकाके लिये चार दिये । क्रमशः चारिका करने जहाँ पारिलेयक था, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् पारिलेयकमें रक्षित-वा स्वधके सत्र शाल (वृक्ष) के नीचे विहार करते थे । दूसरा हस्ति नाग (= महागज) भी हाथी, हथिनी, हाथीके कलभ (= तृण) और हाथीने छउआ (= छाप=झावक) से आकीर्ण हो विहरता था । शिरके तृणोंको खाता था । दूसरी भांगी शाखाओं को (वर) पाना था । मूले पानीको पीता था । अवगाह (= जलाशय) उतर जानेपर हथिनिर्वा उसके शरीरको रगड़ती चलती थीं । (ऐसे) आकीर्ण (हो) (यह) दुःखसे अनुकूलतासे विहार करता था । तब उस महागजको हुआ, इस वक्त मैं हाथी०, आकीर्ण० हूँ । क्यों न मैं गणने अनेका० ?

तब वह हस्ति नाग धूमसे हटर, जहाँ पारिलेयक रक्षित बन गंड भद्र-शाल-मूल था, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया । यहाँ आकर वह नाग जो हरित स्थान होता था, उसे अदरित करता था । भगवान् के लिये सूँटसे पानी ला, पीनेका (पानी) रखता था । तब एकान्त ह्य ध्यानस्थ भगवान् न मनम यह वितर्क उत्पन्न हुआ—म पहिले भिक्षुओंसे आकीर्ण विहरता था, अनुकूलतासे न विहरता था । सो मे अब भिक्षुओंसे अन् आकीर्ण विहर रहा हूँ । अन् आकीर्ण हो, सुप्ने, अनुकूलतासे विहारकर रहा हूँ । उस हस्ति नागको भी मनम यह वितर्क उत्पन्न हुआ—म पहिले हाथियों० अन् आकीर्ण सुखसे अनुकूलतासे विहर रहा हूँ । तब भगवान् ने अपने प्र विनेक (= एकान्त मुत्त) को जान, और (अपने) चित्तमें उस हस्ति नागके चित्तने वितर्कको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

“ हरीय जैसे दाँतपाणे हस्ति नागसे नाग (= बुद्ध) वा चित्त समान है, जो कि वनमें अनेका रमण करता है । ”

पारिले मकसे श्रावस्ती । संघ-मेल । (वि. पू. ४६१)

“ऐसा^१ मैंने सुना—एक समय भगवान् कौशाम्बीके घोषिताराममें विहार करते थे।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, कौशाम्बीमें पिंड पातके विप्रविष्ट हुये । कौशाम्बीमें पिंडचार करके, पिंड पात समाप्तकर, भोजनके पदवात्, स्वयं आप समेट पात्र चीवरले उपस्थाको (= हजूरियों) को बिना कहे, भिक्षु संघको बिना हथ अकेले = अ द्वितीय चारिकाके लिये चल दिये । तब एक भिक्षु भगवान्के जानेके घोरी देर जाव जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोला—

“आहुस ! आनन्द ! भगवान् स्वयं आसन समेटकर पात्र-चीवरले० चारिकाके लिये चले गये ।”

भगवान् उस समय अकेलेही विहार करना चाहते थे, इस लिये वह किसीके द्वारा अनु-गमनीय न थे ।

क्रमशः चारिका करते भगवान् जहाँ पारिलेयक^२ था, वहाँ गये । वहाँ पारिलेयकमें भद्रशालके नीचे विहार करते थे । तब यहुत से भिक्षु जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गए । जाकर आयुष्मान् आनन्दके साथ समोटा किया० । एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ उन भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“आहुस ! आनन्द ! हमे भगवान्के मुखसे धर्म-कथा सुने देर हुई । आहुस ! आनन्द ! हम भगवान्के मुखसे धर्म कथा सुनना चाहते हैं ।”

तब आयुष्मान् आनन्द उन भिक्षुओंके साथ, जहाँ पारिलेयक भद्रशाल मूल था, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को वन्दनाकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये उन भिक्षुओंको भगवान्ने धार्मिक कथा द्वारा दर्शाया, सिखाया, हर्षाया । उस समय एक भिक्षुके चित्तमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—

“क्या जानने क्या देखनेके अनन्तर आत्मवो (= दोषों) का क्षय होता है ?”

तब भगवान्ने उन भिक्षुके चित्तके वितर्कको अपने चित्तसे जानकर भिक्षुओंको संयोजित किया—

“भिक्षुओ मैंने धर्मको पूरी तरह उपदेश किया है । पूरी तरह मैंने उपदेश किये हैं, चार स्मृति-ग्रन्थान । ० चार सम्यक् प्रधान । ० चार कस्दि पाद । ० पांच इन्द्रिया । ० छ यल । ० सात बोधि-अङ्ग । ० आर्य अष्ट आगिक मार्ग । इस प्रकार भिक्षुओ ! मैंने पूरी तरह धर्मको उपदेश किया है । इस प्रकार मैंने पूरी तरह धर्मके उपदेश कर देनेपर भी, यहाँ एक भिक्षुके चित्तमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—‘क्या जानने क्या देखनेके अनन्तर आत्मवो का क्षय होता है ?’ भिक्षुओ ! क्या जानते क्या देखते हुए बीचहीमें आत्मवो का क्षय होता है ? भिक्षुओ ! अ-श्रुत-पान् (= अ पण्डित) पृथग्जन, आर्याका अ-दर्शक, आर्य धर्ममें

अ-कोविद, आर्य धर्ममें अ प्रती, सत्पुरुषोंका अ दर्शक, सत्पुरुषोंक धर्ममें अ कोविद सत्पुरुष-धर्ममें अ प्रती, रूपको आत्मा करके जानता है । उसकी जो समनुपपन्नता (=सूत्र, निदान) है, वह संस्कार (=कृत्रिम) है । वह संस्कार किम निदानवाला=किम समुदय (=देह) वाला, किमसे जन्मा—किमसे प्रमत्त हुआ है ? अ विद्याके स्पर्श (=योग) से । भिक्षुओ ! वेदनासे स्पृष्ट (=युक्त, छिन्न) अ पंडित पृथग्जनको तृष्णा उत्पन्न होती है, उसीसे उत्पन्न है, वह संस्कार । इस प्रकार भिक्षुओ ! वह संस्कार अ नित्य=संस्कृत (=निर्मित) =प्रतीत्य समुत्पन्न (=कारणसे उत्पन्न) है । जो तृष्णा है, वह भी अ नित्य, संस्कृत, प्रतीत्य-समुत्पन्न है । जो वेदना है० । जो स्पर्श (=योग) है० । जो अविद्या है० । भिक्षुओ ! ऐसा भी जानने देखनेक अनन्तर आसुरोंका क्षय होता है । (तब) वह (द्रष्टा) रूपको आत्मा करके नहीं देखता, बल्कि रूप वान्को आत्मा समझता है । भिक्षुओ ! जो वह समनुपपन्नता (=सूत्र) है, वह संस्कार है । वह संस्कार किम निदान वाला है ? अविद्याके योगसे उत्पन्न वन्नासे छिन्न अ पंडित पृथग्जनको तृष्णा उत्पन्न होती है, उसीसे उत्पन्न हुआ है, वह संस्कार । इस प्रकार भिक्षुओ ! वह संस्कार अ नित्य, संस्कृत, प्रतीत्य-समुत्पन्न है । जो तृष्णा है वह भी अनित्य० । जो वेदना० । जो स्पर्श० । जो अ विद्या० । भिक्षुओ ! ऐसा जानने देखनेके अनन्तर भी आसुरोंका क्षय होता है । (वह) रूपको आत्मा करके नहीं देखता, न रूपवान्को आत्मा करके देखता है ।

“ भिक्षुओ ! जो वह समनुपपन्नता (=सूत्र) है, वह संस्कार है । ० ऐसा जानने देखनेके अनन्तर भी आसुरोंका क्षय होता है । (वह) न रूपको आत्मा करके० । न रूपवान्० । न आत्माम रूप देखता है, बल्कि रूपमें आत्माको देखता है ।

“ भिक्षुओ ! जो वह समनुपपन्नता० । (वह) रूपको आत्मा करके नहीं देखता । न रूपवान्० । न आत्माम रूपको० । १ रूपमें आत्माम । बल्कि वेदनाको आत्मा करके देखता है ; बल्कि वेदनावान्को आत्मा देखता है ; बल्कि आत्माम वेदनाको देखता है ; बल्कि उदनाके लिये आत्माको देखता (=जानता) है । ० सत्ता० ।

“ बल्कि, संस्कारोंको आत्मा करके देखता है । बल्कि संस्कार वान्को० । ० आत्माम संस्कारोंको० । संस्कारोंमें आत्मामको० ।

“ ० विज्ञान० । ० विज्ञानवान्को० । ० आत्माम विज्ञानको० । ० विज्ञानमें० ।

“ भिक्षुओ ! जो वह समनुपपन्नता (=दे) वह संस्कार है । वह संस्कार किम-निदान वाला है ? ० तृष्णा उत्पन्न होती है, उसीसे उत्पन्न है, वह संस्कार । इस प्रकार भिक्षुओ ! वह संस्कार भी अ नित्य० । जो तृष्णा० वेदना० स्पर्श० अविद्या० । ऐसे भी भिक्षुओ ! जानने देखनेके अनन्तर आसुरोंका क्षय होता है । न रूपको आत्मा करके देखता है, न वेदनाको० न संज्ञाको०, न स्मरणको०, १ विज्ञानको० । बल्कि इस प्रकारकी दृष्टि (=भिदान) वाला होता है—‘यही आत्मा है, यही लोक है, यही पोट जन्मता है, (वह) निष्प=धुर=अ वि परि नाम पमपाण है ।’ भिक्षुओ ! वह जो आदत्त दृष्टि (=निष्पणा पाद) है, वह संस्कार है ।

१ श्रोत्र आपन्न सृष्टागामी, अगामागो अर्हन् चरममे सिद्धीको न प्राप्त पृथग्जन कहलाता है, और सिद्धीको प्राप्त आर्य या सत्पुरुष ।

वह संस्कार किम-निदान वाला० है ? मिश्रुओ ! इस प्रकार भी जानने० । न रूपको आत्मा करके देखता, न वेदनाको०, न सजा०, न संस्कार०, न विज्ञान० । न इस दृष्टिवाला हाता है—‘यही आत्मा है, यही लोक है, यही पीछे जन्मता है, (यह) नित्य=ध्रुव=अ वि परिणाम धर्मवाला है’ । यत्कि इस दृष्टिवाला होता है—‘न मे था, न मेरे लिये था, न होऊँगा, न मेरे लिये होगा ।’

“मिश्रुओ ! जो वह उच्छेद-दृष्टि (=उच्छेद-वाद) है, वह संस्कार है । वह संस्कार किम निदानवाला० । आसन्नवोका क्षय होता है । न रूपको आत्मा करके मानता है । न वेदनाको० । न सजाको० । न संस्कारको० । न विज्ञानको०, न विज्ञानज्ञानको०, न आत्मने विज्ञानको०, न विज्ञानमें आत्माको० । न इस दृष्टिवाला होता है—‘यही आत्मा है, यही लोक है, यही पीछे जन्मता है, नित्य=ध्रुव=अ वि परिणाम-धर्मवाला (हूँ) ।’ न इस दृष्टिवाला होता है—‘न मे था, न मेरे लिये था, न होऊँगा, न मेरे लिये होगा ।’ यत्कि काक्षा=विचि कित्सा (=संशय) वाला होता है, सङ्गमें न निष्ठा रखनेवाला (होता) है ।

“मिश्रुओ ! जो यह काक्षा=वि-चिकित्सा सङ्गमें न निष्ठा न रखना है, वह (भी) संस्कार है । वह संस्कार किस निदानवाला० । इस प्रकार वह संस्कार अ नित्य० है । जो तृष्णा० । जो वेदना० । जो स्पर्श० । जो वाविधा० । मिश्रुओ ! इस प्रकार जानने देखने अनन्तर (भी) आसन्नवोका क्षय होता है । × × ×

“तत्र भगवान् पारिलेयकम् इच्छानुसारं विहारकम्, जिधर श्रावस्ती थी, उधर चारिका लिये बल दिये । क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती थी, वहा गये । वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डकके आराम जेतवनमें विहार करते थे । तत्र कौशाम्बीके उपासक (विद्यारा) —

“यह अव्या (=मिश्रु) कौशाम्बीके मिश्रु, हमारे बड़े अनर्थ करने वाले हैं इनसेही पीड़ित हो भगवान् चले गये । हाँ ! तो अब हम अव्या कौशाम्बीके मिश्रुओंको अभिवादन करें, न प्रत्युत्थान करें, न हाथ जोड़ना=सामीचीकर्म करें, न सत्कार करें, न शौच करें, न मानें, न पूजें, आनेपर भी पिंड (=मिक्षा) न दें । इस प्रकार हम लोगों द्वारा असत्कृत, अगुरुकृत, अमानित, अपूजित, असत्कार बश चड़े जायेंगे, या गृहस्थ बश जायेंगे, या भगवान्को जाकर प्रसन्न करेंगे ।” तत्र कौशाम्बी-वासी उपासक कौशाम्बीके मिश्रुओंको न अभिवादन करते० । तत्र कौशाम्बी-वासी मिश्रुओंने कौशाम्बीके उपासकोंको असत्कृत हो कहा —

“अच्छा आहुतो ! हमलोग श्रावस्तीमें भगवान्के पास इस झगड़े (=अधिकार) को शांत करें ।” तत्र कौशाम्बी-वासी मिश्रु आसन समेटकर पात्र-चीवर ले जहाँ श्रावस्ती वहा गये ।

आयुष्मान् साखिपुत्रे सुना—“वह मंडन-कारक=कलह कारक=विवाद-कारक भयस (=भय) कारक, सधर्मे अधिकरण (=झगड़ा) कारक कौशाम्बी-वासी मिश्रु

प्रावस्ती आ रहे हैं ।” तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् गे, वहाँ गये । जाकर भगवान् को प्रविवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर धड़े हुये आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से कहा—
‘मन्ते । वह भट्टन कारक० कोशाम्बी बामी भिक्षु श्रावस्ती आ रहे हैं, उन भिक्षुओंक साथ मैं कैसे वत् १”

“ सारिपुत्र ! तो तू धर्मके अनुसार वत् ।”

“ मन्ते ! मैं धर्म या अधर्म कैसे जानूँ १”

“ सारि पुत्र ! अठारह बातों (=वस्तु) से अ धर्मपादी जानना चाहिये । ‘सारि पुत्र ! भिक्षु (१) अ धर्मको धर्म (=सूत्र) कहता है । (२) धर्मको अ धर्म कहता है । (३) अ विनय को विनय कहता है । (४) विनयको अ विनय कहता है । (५) तथ्यागत-द्वारा अ भाषित = अ-लपितको, तथ्यागत द्वारा भाषित = लपित कहता है । (६) अभाषित = लपितको, अ भाषित = अ लपित कहता है । (७) तथ्यागत द्वारा अन्-आचरितको अभाचरित कहता है । (८) तथ्यागत द्वारा आचरितको अन्-आचरित कहता है । (९) तथ्यागत द्वारा अ प्रवृत्त (=अ विहित) को प्रवृत्त कहता है । (१०) प्रवृत्तको अ प्रवृत्त० । (११) अन् आपत्तिको आपत्ति (=दोष) कहता है । (१२) आपत्तिको अन् आपत्ति कहता है । (१३) लघु (=छोटी) आपत्तिको गुरु (=बड़ी) आपत्ति कहता है । (१४) गुरु आपत्तिको लघु आपत्ति कहता है । (१५) स अवरोध (=अ पूर्ण) आपत्तिको अन् अवरोध (=पूर्ण) आपत्ति कहता है । (१६) अन् अवरोध आपत्तिको स अवरोध आपत्ति कहता है । (१७) दु स्थौल्य (=दुराचार) आपत्तिको, अ दु स्थौल्य आपत्ति कहता (=दीपति = प्रकाशित करता है) । (१८) दु स्थौल्य आपत्तिको अ दु स्थौल्य आपत्ति कहता है ।

“ अठारह वस्तुओंसे सारि पुत्र धर्म पादी जानना चाहिये ।—

‘सारिपुत्र ! भिक्षु (१) अधर्मको अधर्म कहता है । (२) धर्मको धर्म० । (३) अ विनय को अ विनय० । (४) विनयको विनय० । (५) अभाषित = अ-लपित० । (६) अभाषित = लपितको अभाषित = लपित० । (७) अन् आचरितको अन् आचरित० । (८) आचरितको अआचरित० । (९) अ प्रवृत्तको अ प्रवृत्त० । (१०) प्रवृत्तको प्रवृत्त० । (११) अन् आपत्तिको अन् आपत्ति० । (१२) आपत्तिको आपत्ति० । (१३) लघु आपत्तिको लघु आपत्ति० । (१४) गुरु आपत्तिको गुरु आपत्ति० । (१५) स अवरोध आपत्तिको स अवरोध आपत्ति० । (१६) अन्-अवरोध आपत्तिको अन् अवरोध आपत्ति० । (१७) दु स्थौल्य आपत्तिको दु स्थौल्य आपत्ति० । (१८) अ दु स्थौल्य आपत्तिको अ-दु स्थौल्य आपत्ति० ।

आयुष्मान् महामौत्रत्यायनने मुना—‘वह भट्टनकारक ०।०।

आयुष्मान् महाकाश्यपने ०।० महाकात्यायनने मुना—‘महागोदित (=गोदित) ने मुना—०।० महा कप्पिनने मुना—०।० महाबुन्द ०।० अनुबुन्द ०।० श्वेत ०।० उपाली ०।० आनन्द ०।० राहुल ०।

महाप्रज्ञापती गौतमोने मुना—‘वह भट्टन कारक० ।” “ मन्ते । मैं उन भिक्षुओंक साथ कैसे वत् १”

“गौतमी ! तू दोनों ओरका धर्म (=घात) सुन । दोनों ओरका धर्म सुनकर, तू भिक्षु धर्म-वादी हो, उनकी दृष्टि, शान्ति, रचि, पसन्दकर । भिक्षुनी संघको भिक्षु-संघके अङ्ग अपेक्षा करना है, वह सब धर्मवादीसे ही अपेक्षा करना चाहिये ।”

अनाथ पिंडक गृह पतिने सुना—“वह भंडनकारक० ।” “भन्ते ! मैं उन भिक्षुओं के साथ कैसे पतूँ ?”

“गृहपति ! तू दोनों ओर दान दे । दोनों ओर दान देकर दोनों ओर धर्म सुन । दोनों ओर धर्म सुनकर, जो भिक्षु धर्म-वादी हो, उनकी दृष्टि (=मिद्वान्त) शान्ति (=ओचित्य), रचिको ले, पसन्दकर ।”

विशाखा सृगार मावाने सुना—जो वह० । “भन्ते ! मैं उन भिक्षुओं के साथ कैसे पतूँ ?”

“विशाखा ! तू दोनों ओर दान दे० । रचिको ले पसन्दकर ।”

तब कौशाम्बी-वासी भिक्षु क्रमशः जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ पहुँचे । तब आयुष्मान् मारिपुत्रने जहाँ भगवान् थे, कहा जा० “भन्ते ! वह भंडनकारक० कौशाम्बी वासी भिक्षु श्रावस्ती आ गये । भन्ते ! उन भिक्षुओंको आसन आदि कैसे देना चाहिये ?”

“मारिपुत्र ! अलग आसन देना चाहिये ।”

“भन्ते ! यह अलग न हो, तो कैसे करना चाहिये ?”

“मारिपुत्र ! तो अलग बनाकर देना चाहिये । परन्तु मारिपुत्र ! श्रद्धातर भिक्षु आसन हटाने (के लिये) में किसी प्रकार भी नहीं कहता । जो हटाये उसको ‘दुष्कृति’ की आपत्ति ।

“भन्ते ! आमिष (=भोजन आदि) के (विषयमें) कैसे करना चाहिये ?”

“मारिपुत्र ! आमिष सबको समान बाँटना चाहिये ।”

तब धर्म और विनयकी प्रत्यक्षेक्षा (=मिलान, रोज) करते उस उत्क्षिप्त भिक्षु (विचार) हुआ—“यह आपत्ति (=दोष) है, अन् आपत्ति नहीं है । मैं आपत्ति (=आपत्ति युक्त) हूँ, अन् आपन्न नहीं हूँ । मैं उत्क्षिप्त (=‘उत्क्षेपण’ घटसे दूषित) हूँ, अन् उत्क्षिप्त नहीं हूँ । अ-कोप्य=स्थानार्ह=धार्मिक कर्म (=न्याय) से मैं उत्क्षिप्त हूँ ।” तब वह उत्क्षिप्त भिक्षु (अपने) अनुयायियोंके पास गया, बोला—“यह आपत्ति है आयुषो ! आओ आयुष्मानो मुखे मिला दो ।” तब वह उत्क्षिप्त अनुयायी भिक्षु उत्क्षिप्त भिक्षुको लेकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये एक ओर घेटर उन भिक्षुओंने भगवान्से यह कहा—

“भन्ते ! यह उत्क्षिप्त भिक्षु कहता है—‘आयुषो ! यह आपत्ति है अन् आपत्ति नहीं, आओ आयुष्मानो मुखे (संघमें) मिला दो ।’ भन्ते ! तो कैसे करना चाहिये ?”

“भिक्षुओ ! यह आपत्ति है, अन् आपत्ति नहीं । यह भिक्षु, आपन्न है, अन् आपन्न नहीं है । उत्क्षिप्त है अन् उत्क्षिप्त नहीं है । अ-कोप्य=स्थानार्ह=धार्मिक कर्मसे उत्क्षिप्त

है । मिश्रुओ । चूँकि यह मिश्रु आपन्न है, उत्क्षिप्त है, और (आपत्ति = दोष) दखता है, अतः इस मिश्रुको मिला लो ।”

तब उत्क्षिप्त के अनुयायी मिश्रुओने उस उत्क्षिप्त मिश्रुको मिलाकर (= ओसारणकर), जहाँ उत्क्षेपक मिश्रु थे, वहाँ गये । जाकर उत्क्षेपक मिश्रुओकी कहा—

“आहुसो ! जिस वस्तु (= वात) में संघका भङ्ग = कलह, विग्रह, विवाद हुआ था, संघ (फूट) भेद = सबराजी = सध व्यवस्थान = सध नानाकारण हुआ था । सो (उस विषयमें) यह मिश्रु आपन्न है, उत्क्षिप्त है, अब सारित (= मिला लिया गया) है । हाँ सो ! आहुसो ! हम इस वस्तु (= मामला, वात) के उपशमन (= फैसला, मिटाया) के लिये सधकी सामग्री (= मेल) करें ।”

तब वह उत्क्षेपक (= अलग करनेवाले) मिश्रु जहाँ भगवान् थे, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ भगवान्को बोले—

“भन्ते ! वह उत्क्षिप्त अनुयायी मिश्रु ऐसा कहते हैं—‘आहुसो ! जिस वस्तुमें संघकी सामग्री करें ।’ भन्ते ! कैसे करना चाहिये ?”

“मिश्रुओ ! चूँकि वह मिश्रु आपन्न, उत्क्षिप्त, पदवी (= दर्शा = आपत्ति देखने माननेवाला) और अव-सारित है । इसलिये मिश्रुओ ! उस वस्तुके उपशमनके लिये सध संघकी सामग्री करें । और वह इस प्रकार करनी चाहिये—रोगी निरोग सभीको एक जगह जमा होना चाहिये, किसीको (बदला) भेजकर, छन्द (= बोट) न देना चाहिये । जमा होकर, योग्य, समर्थ मिश्रु द्वारा संघ स्थापित (= सुवित = समोपित) होना चाहिये—‘भन्ते ! संघ सुझे सुने । जिस वस्तुमें संघमें भङ्ग, कलह, विग्रह, विवाद हुआ था, सो (उस विषयमें) यह मिश्रु आपन्न है, उत्क्षिप्त, (है) पदवी, अब सारित है । यदि संघ उचित (= पक्कड़) समझे, तो संघ उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ सामग्री करें । यह ज्ञाति (= सूचना) है ।

‘भन्ते ! संघ सुझे सुने—जिस वस्तुमें अवसारित है । संघ उस वस्तुके उपशमनके लिये सध-सामग्री कराहा है । जिस आपुष्मान्को उस वस्तुने उपशमनके लिये संघ सामग्री करना, पसन्द है, वह चुप रहे, जिसको नहीं पसन्द है, वह बोल । दूसरी बार भी० । तीसरी बार भी० । सधने उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ-सामग्री (= पूरे संघको एक करना) की; सध राजी = संघ भेद विहृत (= नष्ट) हो गया । ‘संघको पसन्द है, इसलिये चुप है’—यह में समझता हूँ । ”

x

x

x

x

महावीर-शिष्य असिग्रधके प्रश्न । कुल-नाशके कारण । पिंड मृत ।
(वि० पृ० ४६१) ।

१२५५६७ (वपा) नाला प्राक्खण ग्रामम ।

असिग्रधक पुत्त सुत्त ।

× × ×

१ (एसा मने मुना)—एक समय कोसलमें चारिका चरते हुये बड़े भारी भिक्षु-समूह साथ भगवान् जहाँ नालन्दा है, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् नालन्दा में प्रावारिक (संघ) के आसके पासमें विहार करते थे । उस समय नालन्दा दुर्मिक्ष (= भिक्षा पाना कठिन जहाँ हो), दो ईतियो (= अकाल और महामारी) से युक्त, और इतने हड्डियोंवाले, 'सलाकाबुत्ता' (= फल रहित लुट्टी हो गई देखी जहाँ हो) थी । उस समय बड़ी भारी निर्गठो (= जैन साधुओं) की परिपङ् (= जमात) के साथ निर्गठ नाटपुत्त (= महावार) नालन्दा में (हो) घाम करते थे । तब निर्गठोंका शिष्य (= जैन) असिग्रधक-पुत्र ग्रामणी जहाँ निर्गठ नाटपुत्त (= जातु पुत्र) थे, वहाँ गया । जाकर निर्गठ नाटपुत्त को अभिवादनकर पुरु ओर बंठ गया । पुरु ओर धँसे असिग्रधक-पुत्र ग्रामणीको निर्गठ नाटपुत्तने यह कहा—

“आ ग्रामणी ! श्रमण गौतमसे वाद (= शस्त्रार्थ) कर, इस प्रकार तेरा सुन्दर कीर्ति शब्द फैल जायेगा । (लोग कहेंगे)—‘असिग्रधक-पुत्र ग्रामणीने इतने बड़े ऋद्धिवाडे, इतने महाप्रतापी श्रमण गौतमसे वाद किया ।’”

“भन्ते ! मैं इतने बड़े ऋद्धिवाडे, इतने महाप्रतापी श्रमण गौतमसे वाद वाद शेरूँगा ?”

“ग्रामणी ! आ जहाँ श्रमण गौतम है, वहाँ जा । जाकर श्रमण गौतमसे ऐसे कह—‘भन्ते ! भगवान् तो अनेक प्रकारसे कुलोकी, उन्नति बखानते हैं, अनुरक्षा बखानते हैं, अनुकम्पा (= दया) बखानते हैं ?’ यदि ग्रामणी ! श्रमण गौतम ऐसा पूछे जानेपर, इस प्रकार उत्तर दे—‘ऐसा ही ग्रामणी ! तथागत अनेक प्रकारसे कुलोकी’ । तो तू इस प्रकार कहना—‘तो क्यों भन्ते ! भगवान् महान् भिक्षु-समूह के साथ, दुर्मिक्ष, दो ईतियो से युक्त, इतने हड्डियों-पूर्ण, जमते सूपे खेतोवाले (प्रदेश) में चारिका करते हैं ? (क्या) भगवान् कुलोको सताने के लिये हुये हैं ? (क्या) भगवान् कुलोके उप धातके लिये हुये हैं ?’ ग्रामणी ! इस प्रकार दोन ओरसे प्रश्न पूछनेपर श्रमण गौतम न उगलना चाहेगा, न निगलना चाहेगा ।”

१ अ० नि० अ० क० २ ४ ९ । २ स० नि० ४० १ ९ । ३ नाटपुत्त = जातु पुत्र शातृ लिच्छवियोंकी एक शाखा थी, जो वंशालीक आसपास रहती थी । जातृ से ही वर्तमान जयरिया शब्द बना है । महावीर और जयरिया दोनोंका गोत्र काश्यप है । आज भी जयरिया भूमिहार प्राक्खण इस प्रदेशमें बहुत संख्यामें है । उनका निग्रम रत्तो पर्यन्त भी शातृ = नत्तो = लप्ती = रत्तीसे बना है ।

निगठ नाट-पुत्तको 'अच्छा भन्ते ।' वह अमि बन्धक-पुत्र ग्रामणी, ग्रामनसे उठ, निगठ नाट पुत्तको अभिवादनकर, प्रन्क्षिणाकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्‌को अमि बान्धनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये असि बन्धक-पुत्र ग्रामणीने भगवान्‌मे कहा—

“ क्या भन्ते ! भगवान् तो अनेक० ? ”

“ ऐसा ही ग्रामणी ! तथागत० । ”

“ तो क्यों भन्ते ! भगवान् ? ”

“ ग्रामणी ! आजसे एकाने पत्त (पूर्व तक), निसे मे स्मरण करता हूँ, एक कुलको भी नहीं जानता, जो पत्ती भिक्षाको देने मात्रसे उप हत (=नष्ट) हो गया हो । बल्कि जो वह कुल आश्रय, महाधन सम्पन्न, महाभोग सम्पन्न, बहुत सोना चाँदी युक्त, बहुत वस्तु उपकरण युक्त, बहुत धन धान्य युक्त है, वह सभी दानसे हुये, मत्पसे हुये, ग्रामण्य (=श्रमण होने) से हुये हैं । ग्रामणी ! कुलोंके उपघातके आठ हेतु आठ प्रत्यय (=कार्य) होते हैं । (१) राजा द्वारा उपघातको प्राप्त होते हैं । (२) या चोरसे० । (३) या आगसे० । (४) या उर्वक (=पानी) से० । (५) या गढा खरजा (अपने) स्थानसे चला जाता है । (६) या अच्छी तोर न की हुई खेती नष्ट हो जाती है । (७) या कुलमें कुल अगार पेट होता है, वह उनमोर्गोंको उड़ाता, चौपट करता, विच्छेद करता है । (८) आठवीं (सभी वस्तुओंकी) अनि स्यता है । ग्रामणी ! (यह आठ हेतु, आठ प्रत्यय कुलोंके उपघातके लिये हैं । इन आठ हेतुभा आठ प्रत्ययोंके होते भा जो सुने यह कहे—‘भगवान् कुलोंके उच्छेदके लिये हुये हैं० ।’ ग्रामणी । (यह) इस बातको बिना छोड़े, इस विचारको बिना छोड़े, इस दृष्टि (=धारणा) को बिना परित्याग किये, ले जाते (=मरते) ही नकमें जायगा ।’ ऐसा कहनेपर असि बन्धक-पुत्र ग्रामणीने भगवान्‌मे कहा—

“ आश्चर्य ! भन्ते ॥ आश्चर्य ! भन्ते ॥ जेमे० । आजमे भगवान् मुने साजलि शरणागत उपासक धारण करें । ”

(निगठ) सुत्त ।

“ ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् नालन्गमें प्रवारिकके आश्रयनमें विहार करते थे । तब निगठोका शिष्य असि-बन्धक पुत्र ग्रामणी जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे असि-बन्धक पुत्र ग्रामणीसे भगवान्‌ने यह कहा—

“ ग्रामणी ! निगठ नाट पुत्त श्रावको (=शिष्यो) को क्या धर्म उपदेश करते हैं ? ”

“ भन्ते ! निगठ नाट पुत्त श्रावकोको यह धर्म उपदेश करते हैं कि—जो कोई प्राणोंको मारता (=अतिपात) है, वह सभी दुर्गति, नर्कको जाता है । जो कोई बिना दियको (चोरी) लेता है, वह सभी० । काममे मिथ्याचार (=निषिद्ध स्त्री प्रयोग) करता है० । जो कोई शरें योल्ता है० । जो जैसे बहुत करके बिहरता है, वह उभोमे ले जाया जाता है । ” भन्ते ! निगठ नाट पुत्त श्रावकोको इस प्रकारसे धर्म उपदेश करते हैं । ”

“ग्रामणी ! जो (जैसे) बहुत करके विहरता है, वह उसीसे छे जाया जाता है ? ऐसा होनेपर (निर्गठ नाट पुत्तके वचनानुसार) कोई भी दुर्गति-गामी = नरक-गामी न होगा । तो क्या मानते हो ग्रामणी ! जो वह पुरुष रात या दिनमें, समय अ समयमें प्राण हिंसा करता है, उसका कौनसा समय अधिकतर होता है, जब वह प्राणीको मारता है या, जब वह प्राणीको नहीं मारता ? ”

“ भन्ते ! पुरुष रात या दिन समय अ समय प्राण हिंसा करता है ; (उसमें) वही समय अल्पतर है, जब कि वह प्राण हिंसा करता है । और वही समय अधिकतर है, जब कि वह प्राण-हिंसा नहीं करता । ”

“ ग्रामणी जो जेबे बहुत करके विहार करता है, उसीसे यह (नरक) छे जाया जाता है—ऐसा होनेपर, निर्गठ नाट पुत्तके वचनानुसार कोई भी दुर्गति गामी नरक-गामी न होगा । तो क्या मानते हो ग्रामणी ! जो पुरुष रात या दिन समय अ समय चोरी करता है, उसका कौनसा समय अधिकतर होता है, जब कि वह चोरो करता है, या जब कि वह चोरा नहीं करता ? ”

“ भन्ते ! जब वह पुरुष रात या दिन समय अ समय चोरी करता है, (उसमें) वही समय अल्पतर है, जब कि वह चोरी करता है (और) वही समय अधिकतर है जब कि वह चोरी नहीं करता । ”

“ ग्रामणी ! ‘ जो बहुत० । ’ ऐसा होनेपर तो, निर्गठ नाट पुत्तके वचनानुसार कोई भी दुर्गति गामी नरक-गामी न होगा । तो क्या मानते हो, ग्रामणी ! काम मिथ्याचार० । मृषा वाद० । ग्रामणी ! कोई कोई प्राणी ऐसी धारणा = दृष्टि (= वाद) वाला होता है—‘ जो कोई प्राण मारता है, वह सभी अपाय-गामी नरक गामी होता है, चोरी०, काम-मिथ्याचार०, मृषा-वाद० । ’ ऐसे शारता (= गुरु) में ग्रामणी ! श्रावक (= शिष्य) श्रद्धावान् होता है । उसको ऐसा होता है—मेरे शास्त्राका यह वाद = यह दृष्टि है—‘ जो कोई प्राण मारता है, वह अपाय-गामी निरय गामी होता है । ’ मैंने प्राणोंको मारा है, (अतः) मैं अपायगामी निरय-गामी हूँ, इस दृष्टि (= धारणा) को पाता है । ग्रामणी ! इस वचनको बिना छोड़े इस विचारको बिना छोड़े, इस दृष्टिको बिना परित्याग किये, छे जाते (मारते) वह निरयमें (पड़ेगा) । मेरा शास्त्रा० चोरी० । काम मिथ्याचार० । मृषा वाद० ।

“ यहाँ ग्रामणी ! ‘ अर्हत्, सम्यक् संतुद्ध, विद्या-आचरण संपन्न, सुगत, लोक विद, अनुत्तर पुरुष इन्द्र-सारथी, देव मनुष्योक्त शास्त्रा (= उपदेशक), बुद्ध भगवान् ’ तथागत लोकमें उत्पन्न होते हैं । वह अनेक प्रकारसे प्राण हिंसाकी निन्दा = विगर्हणा करते हैं । ‘ प्राण-हिंसा चित्त होओ ’—कहते हैं । वह अनेक प्रकारसे चोरी० । काम मिथ्याचार० । मृषावाद० । ऐसे शास्त्रामें ग्रामणी ! (जब) श्रावक श्रद्धालु होता है । वह इस प्रकार विचारता है—भगवान् अनेक प्रकारसे प्राण-हिंसाकी निन्दा = विगर्हणा करते हैं, ‘ प्राण-हिंसा चित्त होओ ’ कहते हैं । मैंने भी जितनी जितनी प्राण हिंसाकी है । सो अच्छा नहीं, ठीक नहीं । मैं भी उसके कारण संताप करता हूँ—‘ काश ! यदि मैंने उस पाप-कर्मको न किया होता । ’ वह इस प्रकार

विचारकर, उस प्राण हिंसाको छोड़ता है, आगेके लिये प्राण हिंसासे विरत होता है । इस प्रकार इस पापकर्मका परित्याग करता है, इस प्रकार इस पापकर्मसे हटता है । भगवान् अपनेक प्रकारसे चोरी० । काम मिथ्याचार० । मृपावाद ।

“ (फिर) वह प्राण अतिपात (=प्राण-हिंसा) छोड़, प्राण अतिपातसे विरत होता है । ० अदत्त आदान (=चोरी) छोड़० । काम मिथ्याचार० । मृपावाद० । पिशुन वचन (=खुगली० । परप-वचन (=कठौर-वचन)० । ० मं प्र प्रलाप (=संक्रमलाप = बकवाद) ० अभिष्या (=छोम) को छोड़ अन अभिष्यादु (=अलोमी)० । व्यापाद (=द्रोह) छोड़, अ व्यापन्न चित्त (=अ द्रोह-चित्त)० । मिथ्या दृष्टि (= झूठी धारणा) छोड़, सम्यग् दृष्टि (=सच्ची धारणावाला) होता है । सो धामणी ! वह आर्य-ध्रावक (=मधी धारणावाणा शिष्य) इस प्रकार अभिष्या रहित, व्यापाद रहित, संमोह रहित जानकर, सुनने-वाला हो, मित्र भाव युक्त चित्तसे एक दिशाको पूर्णर विहार करता है । ० दूरी दिशा० । ० सीमरी दिशा० । ० चौथी दिशा० । इस प्रकार ऊपर मोचे, आड़े बढ़े सकरा विचार करनेवाला, सके अर्थ, विपुल, महान्, प्रमाण रहित, वैर रहित, व्यापाद रहित मित्रता भाव युक्त चित्तसे सभी लोकको पूर्णर विहार करता है । जैसे धामणी । बलवान् क्षम बनानेवाला थोड़ी ही मेहनतसे चारों दिशाओंको (दाहद) सूचितकर देता है, इस प्रकार धामणी । इस प्रकार भावनाकी गई—सैत्रीभावना, = इस प्रकार बड़ाई चित्त विमुक्ति ' जिय प्रमाणमे कीजाये, वहीं अब शिष्ट (=स्वतम) नहीं होती, वह वहीं अब शिष्ट नहीं होती ।

“ धामणी ! वह आर्य ध्रावक इस प्रकार लोभ रहित, द्रोह रहित, मोह रहित, जानकर सुननेवाला एक दिशाको करणा युक्त चित्तसे पूर्णर विहार करता है । ० दूरी दिशा० । ० सीमरी दिशा० । ० चौथी दिशा० । ० सुदिता युक्त चित्तसे० । “ ० उपेक्षा सहित चित्तमे० । ”

(भगवान् के) ऐसा कहनेपर असि-बन्धक पुत्र धामणीने भगवान् से कहा —“ आश्रय ॥ अन्ते ! आश्रय ॥ अन्ते ॥ ० उपासक धारण करें । ”

पिंड-सुत्त ।

१ (ऐसा मैंने सुना)—एक समय भगवान् मगधमें पंच शाला ब्राह्मण धाममें विहार करते थे ।

उस समय पंच शाला ब्राह्मण-धाममें कुमारियोका त्योहार था । तब भगवान्ने पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले पंच शाला ब्राह्मण धाममें प्रवेश किया । उस समय पंच-शालाक ब्राह्मण गृहस्थ, मारके आनेशमें थे—‘ (जियमें) श्रमण गौतम पिंड न पावे । ’ भगवान् जैत्रे पात्र लिये पंचशाला ब्राह्मण धाममें प्रविष्ट हुए थे, वैसे ही पुत्रे पात्रके साथ निकट आये । तब मार पापी जहां भगवान् थे, वहां गया, जाकर भगवान् से बोला —

“ श्रमण ! क्या तुम्हें पिंड नहीं मिला ? ”

‘ पापो ! वेत्ता ही सो लूने किया, जियम पिंड न पाउँ । ’

“ भन्तो ! भगवान् दूम्बरीवार पंचशाला माहण घाममें प्रवेश करे, मैं वैसा हूँ, जिममें भगवान् पिंड पावें । ”

“ मारो तथामतेसे लागलगा ज पुण्य (= पाप) कमाया ।

पापी ! क्या व समझता है कि, तुम पाप न लगाया ॥”

अहो ! सुनते हम जाते हैं, जिन हमारे (लोगोंके) पास कुछ नहीं है ।

‘आमात्यर दयताओंकी भांति हम प्रीति रूपी भोजनके ग्यानेवाले हैं ।’

राय मार पापी—“ भगवान् मुझे पहिचानते हैं, मुगत मुने पहिचानते हैं ”—(अ)
तहीं अन्तर्ज्या होगया ।

मागदिय-सवाद (वि० पृ० ४६०) ।

‘एक समय भगवान् ने कुर देशमें कल्माप दम्प (= कम्मास-दम्प)—निगम (= कन्या)—निवासी मागन्दीय ब्राह्मणका स्त्री सहित अर्हत्-पद प्राप्तिका भविष्य देख, वहाँ जाकर, कल्माप दम्पके पास किसी वन-खण्डमें वेद (अपना) सुर्ण प्रभाम प्रस्तुत किया । मागन्दीय भी उस समय वहाँ मुह धोनेके लिये जा, सुवर्ण तेज देख—‘यह क्या है ।’ इधर उधर देखते, भगवान् को देख सन्तुष्ट हुआ । उसकी कन्या सुवर्ण वर्णा थी । उस (कन्या) को बहुतसे क्षत्रिय कुमार आदि चाहते हुये भी न पा सके थे । ब्राह्मणका न्याय था—‘(किमी) सुवर्ण-वर्ण क्षत्रणको ही दूगा । उसने भगवान् को देखकर—‘यह मेरी कन्याके समान वर्णका है, इसीको उसे दूंगा’ निश्चय किया । इसलिये देखते ही सन्तुष्ट हो गया ।

उसने वेगसे घर जाकर ब्राह्मणीको कहा—

“भरती (= आप) ! भवती ! मैंने घेटीके समान-वर्णका पुरुष देख लिया । घेटीको अलङ्कृत करो, इसे उसको दिखाऊँगा ।”

ब्राह्मणीके लड़कीको सुगन्धित जूते पहना द्य, पुष्प, अलङ्कारसे अलङ्कृत करते करते ही, भगवान् की मिश्राचारकी पैला आगई । तब भगवान् कम्मास-दम्पमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुये । वह दोनों भी कन्याको ल भगवान् के पैडनेकी जगह पर पहुँचे । भगवान् को बर्ण न देख, ब्राह्मणीने इधर उधर ताकते, भगवान् के बैठनेक न्यायपर तृण बिछा देखा । ब्राह्मणीने कहा—

“ब्राह्मण ! यह उसका तृण-संस्तर (= तृण-आसन) है ?” “हा, भवती !”

“तो ब्राह्मण ! हमारे आनेका काम पूरा न होगा ।”

“भरती ! क्यों ?”

“ब्राह्मण ! देखो, तृण संस्तर कामके जीतनेवाले पुरुषका होनेसे इधर-उधर नहीं हुआ है ।”

“मत भरती ! मंगल खोजते समय असंगल (की बात) कहो ।”

फिर ब्राह्मणीने इधर उधर निचरकर भगवान् के पद चिन्हको देखकर कहा—‘दृष्टो ब्राह्मण । पद चिन्ह, यह सत्त्व (= जीव) काममें लिस नहीं दे ।’

“भवती ! तुम कैसे जानती हो ?”

उमा कहने पर अपने ज्ञान बलको दिखानेकी हुई बोली—“राग-युक्तका पद उकड़ू होता है, द्वेष युक्तका पद निकला हुआ होता है । मोह युक्तका सहसा दबा होता है, मन्त्र-रहितका पद एमा होता है ।”

उनकी यह कथा हो (ही) रही थी, कि भगवान् मिश्रा-समाप्त कर उस वन स्थल आगये । ब्राह्मणीने सुन्दर लङ्गणमें युक्त भगवान् के रूपको देखकर, ब्राह्मणीको कहा—

त्वक् (= चमड़ा), मांस, स्नायु, अस्थि, अस्थि (के भीतरकी) मज्जा, पुष्प, हृदय (कज्जा), घृत, एोमक झाड़ा (= तिल्ली), पुष्पपुष्प, आंत, पतली आंत (= अंत-गुण), उन्मथ (= घस्तुमें), पाखाना, पित्त, फफ, पीयूष, लोह, पर्माणा, मेद (= घर), आंसू, वसा (= चर्बी) लार, नाम्मा मज्जा, *लसिरा स्थित, और मूत्र । जैसे भिक्षुओ ! नाना अनाज शाली, ग्राह (= धान), मूँग, उड़द, तिल, तण्डुलसे दोनों मुग्गमरी देहरी (= मुठोली, पुठोली) हो, उमंगे आंखिआला पुरुष खोलकर देखे—यह शाली हैं, यह मोही हैं, यह मूँग हैं, यह उड़द हैं, यह तिल हैं, यह तण्डुल हैं । इसी प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु पैरके तलपैके ऊपरसे केश-मन्दकपे, नीचे इस कायाको नाना प्रकारके मणोंसे पूर्ण देखता है—हम कायामें हैं० । इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है ।०।

“और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु इस *कायाको (इसकी) स्थितिके अनुसार (इसकी) रचनाके अनुसार देखता है—इस कायामें हैं—पृथिवी धातु (= पृथिवी महामूत्र), आप (= जल)-धातु, तेज (= अग्नि) धातु, वायु-धातु । जैसे कि भिक्षुओ ! दक्ष (= क्षत्र) गो घातक या गो घातकका अन्तेगामी, गायको मारकर पोटी बोटी काटकर चौरस्तेपर बैठा हो । ऐसे ही भिक्षुओ ! भिक्षु इस कायाको स्थितिके अनुसार, रचनाके अनुसार देखता है ।०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागको० ।

“और भिक्षुओ ! भिक्षु एक दिनके मरे, दो दिनके मरे, तीन दिनके मरे फूटे जीव पड़ गये, पीब-भरे, (मृत)-शरीरको दमशानमें फेंकी देते । (और उसे) वह इसी (अपनी) कायापर घटावे—यह भी काया इसी धर्म (= स्वभाव) वाली, ऐसा ही होनेवाला, इससे १ बच सकनेवाली है । इस प्रकार कायाके भीतरी भाग० ।०।

“और भी भिक्षुओ ! भिक्षु कोओसे खाये जाते, चीलहोंसे खाये जाते, गिद्धोंसे खाये जाते, कुत्तोंसे खाये जाते, नाना प्रकारके जीवोंसे खाये जाते, दमशानमें फेंके (मृत) शरीरको देई । यह इसी (अपनी) कायापर घटावे—यह भी काया०।०।

“और भिक्षुओ ! भिक्षु मांस लोह नसोसे बंधे हड्डी ककालवाले शरीरको दमशानमें फेंकी देते०।०।

“० मांस रहित लौह-लगे, नसोंसे बंधे० ।०।० मांस-लोह-रहित नसोंसे बंधे० ।०। यथन रहित हड्डियोंको दिशा विदिशामें फेंकी देते—कहीं हाथकी हड्डी है, पैरकी हड्डी, अंगुलीकी हड्डी, उरुकी हड्डी, कमरकी हड्डी, पीठके कांटे, खोपड़ी, और हड्डी (अपनी) कायापर घटावे० ।०।

“और भिक्षुओ ! भिक्षु शंखके समान वर्णवाली सफेद हड्डीवाले शरीरको दमशानमें फेंका देते० ।०।० चपौ-पुरानी जमाकी हड्डीयोवाले० ।०।० सड़ी चूर्ण होगई हड्डियोंवाले० ।०।

“कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु वेदनाओंमें वेदनानुपश्यी (हो) विहरता है १ भिक्षुओ ! भिक्षु सुख-वेदनाको अनुभव करते ‘ सुख वेदना अनुभवकर रहा हूँ ’ जानता है । दुःख-वेदनाको अनुभव करते ‘ दुःख वेदना अनुभवकर रहा हूँ ’ जानता है ।

१ केहुनी आदि जोड़ोंमें स्थित तरल पदार्थ । २ धातु-मनासिकार । ३ दमशान । ४ चौदह (१) कायानुपश्यना समाप्त । ४ (२) वेदनानुपश्यना ।

कते 'दुःखवेदना अनुभवकर रहा हूँ' जानता है । अदुःख-असुख वेदनाको अनुभव करते 'अनुःख अनुसुख-वेदना अनुभवकर रहा हूँ' जानता है । स आमिप (= भोग पदार्थ सहित) सुख-वेदनाको अनुभव करते । निर आमिप सुख वेदना । स आमिप दुःख-वेदना । निर आमिप दुःख वेदना । अ आमिप अदुःख-असुख वेदना । निर आमिप अदुःख-असुख वेदना । इस प्रकार कायाके भीतरी भाग ० । ० ।

“कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु चित्तमं चित्तानुपश्यो हो विहरता है ? यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु स राग चित्तको 'स राग चित्त है' जानता है । विराग (= राग रहित) चित्तको 'विराग चित्त है' जानता है । स द्वेष चित्तको 'सद्वेष चित्त है' जानता है । वीत द्वेष (= द्वेष रहित) चित्तको 'वीत द्वेष चित्त है' जानता है । स मोह चित्तको । वीत मोह चित्तको । सक्षिप्त चित्तको । विक्षिप्त चित्तको । मच्छद्गत (= महापरिमाण) चित्तको । अ महद्गत चित्तको । स-उत्तर । अन्-उत्तर (= उत्तम) । समाहित (= ञ्काप्र) । अ-समाहित । विमुक्त । अ विमुक्त । इस प्रकार कायाके भीतरी भाग ० । ० ।

“कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु धर्मांमं धर्मानुपश्यो हो विहरता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच नीवरण धर्मांमं धर्मानुपश्यो (हो) विहरता है । कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच नीवरण धर्मांमं धर्मानुपश्यो हो विहरता है ? यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु विद्यमान भीतरी काम च्छन्द (= कामुकता) को 'मेरेमें भीतरी काम च्छन्द विद्यमान है' जानता है । अ विद्यमान भीतरी कामच्छन्दको 'मेरेमें भीतरी कामच्छन्द यहाँ विद्यमान है'—जानता है । अन्-उत्पन्न कामच्छन्दकी जैसे उत्पत्ति होती है—उसे जानता है । जैसे उत्पन्न हुये कामच्छन्दका प्रहाण (= विनाश) होता है, उसे जानता है । जैसे विनष्ट कामच्छन्दकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती, उसे जानता है । विद्यमान भीतरी व्यापाद (= द्रोह) को—'मेरेमें भीतरी व्यापाद विद्यमान है'—जानता है । अ विद्यमान भीतरी व्यापादको—'मेरेमें भीतरी व्यापाद नहीं विद्यमान है'—जानता है । जैसे अन्-उत्पन्न व्यापाद उत्पन्न होता है, उसे जानता है । जैसे उत्पन्न व्यापाद नष्ट होता है, उसे जानता है । जैसे विनष्ट व्यापाद आगे फिर नहीं उत्पन्न होता, उसे जानता है । विद्यमान भीतरी स्स्यान मृद (= धीन मिद = मनकी अलसता) ० । ० ।

• भीतरी औद्धत्य-कौटल्य (= उद्वेग कुतूहल = उद्वेग रोद,) ० । ० ।

• भीतरी विचिकित्सा (= संशय) ० । ० ।

“इस प्रकार भीतर धर्मांमं धर्मानुपश्यो हो विहरता है । बाहर धर्मांमं (भी) धर्मानुपश्यो हो विहरता है । भीतर बाहर ० । धर्मांमं ममुन्य (= उत्पत्ति) धर्मका अनुपश्यो (= अनुभव करनेवाला) हो विहरता है । ० व्यय (= विनाश)—धर्म ० । ० उत्पत्ति विनाश—धर्म ० । स्मृतिके प्रमाणके लिये हो, 'धर्म है' यह स्मृति उसका बराबर विद्यमान रहती है । वह (वृष्णा आदिमें) अ एष हो विहरता है । लोकमें हउ भी (मैं और मेरा) काये प्रहण नहीं कारता । इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु धर्मांमं धर्म अनुपश्यो हो विहरता है ।

१ (३) विद्यानुपश्यना । २ (४) धर्मानुपश्यना । ३ पाँच नीवरण—कामच्छन्द, व्यापाद, स्स्यानमृद, औद्धत्य-कौटल्य विचिकित्सा ।

“और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु पांच उपादान स्कंध धर्मोंमें धर्म-अनुपदयी हो विहरता है। कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु पांच उपादान स्कंध धर्मोंमें धर्म-अनुपदयी हो विहरता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु (अनुभव करता है) — ‘यह रूप है’, ‘यह रूपकी उत्पत्ति (=समुदय)’, ‘यह रूपका अस्त गमन (=विनाश) है’। ०मंजा० । ०संस्कार० । ०विज्ञान० । इस प्रकार अध्यात्म (=शरीरके भीतरी) धर्मां धर्म अनुपदयी हो विहरता है। बहिर्धां (=शरीरके बाहरी) धर्मों में धर्म-अनुपदयी० । शरीरके भीतर ग्राहरी । धर्मां (=वस्तुओं) में समुदय (=उत्पत्ति)-धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओंमें विनाश (=व्यय)-धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओंमें उत्पत्ति विनाश धर्मको अनुभव करता विहरता है। सिर्फ ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये ही ‘धर्म है’ यह स्मृति उसको बराबर विद्यमान रहती है। वह अ-रूप हो विहरता है। लोकमें कुछ भी नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु पांच उपादान स्कंधोंमें धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता (=धर्म अनुपदयी) विहरता है।

“और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु छ आध्यात्मिक (=शरीरके भीतरी), बाह्य (=शरीरके बाहरी) आयतन धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है। कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु छ भीतर बाहरी आयतन-रूपी धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु वस्तुओं अनुभव करता है, रूपोंको अनुभव करता है, और जो उन दोनों (=वस्तु और रूप) का संयोजन उत्पन्न होता है, उसे भी अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्न उत्पन्न संयोजनकी उत्पत्ति होती है, उसे भी जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न संयोजनका प्रहाण (=विनाश) होता है, उसे भी जानता है। जिस प्रकार ग्रहीण (=विनष्ट) संयोजनकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती, उसे भी जानता है। श्रोत्रको अनुभव करता है, शब्दको अनुभव करता है० । घ्राण (सूँघनेकी शक्ति, घ्राण इन्द्रिय) को अनुभव करता है। गंधको अनुभव करता है० । जिह्वा० रस०। काया (=त्वक् इन्द्रिय ठंडा गर्म आदि जाननेकी शक्ति)०, स्पृष्टव्य (=ठंडा गर्म आदि) ०। मनको अनुभव करता है। धर्म (=मनका विषय) को अनुभव करता है। दोनों (=गन और धर्म) काके जो संयोजन उत्पन्न होता है, उसको भी अनुभव करता है। इस प्रकार अध्यात्म (=शरीरके भीतर) धर्मों (=पदार्थों) में धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता विहरता है, बहिर्धां (=शरीरके बाहर)०, अध्यात्म-बहिर्धां० । धर्मोंमें उत्पत्ति धर्मको०, विनाश धर्मको०, उत्पत्ति विनाश धर्मको० । सिर्फ ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये० । इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहर वाले छ आयतन धर्मों (=पदार्थों) में धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता विहरता है।

“आगे भिक्षुओ ! भिक्षु सात बोधि अङ्ग धर्मों (=पदार्थों) में धर्म (=स्वभाव)

१ स्कंध—रूप, वेदा, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान। २ आयतन—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण (=नासिक), जिह्वा (=रसना), काय (=त्वक्), मन। इनमें पहिले पांच बाह्यआयतन हैं, मन आध्यात्मिक (=शरीरके भीतरका) आयतन है। ३ संयोजन दश यह हैं—प्रतिघ (=प्रतिहिंसा), मान (=अभिमान), दृष्टि (=धारणा, मत), विचिकित्सा (=संशय), शील-धत्त परामर्श (=शील और धत्तका टप्पाल), मन राग (=आवागमन प्रेम), ईर्ष्या, मात्सर्य और अविद्या। संयोजनका शब्दार्थ बन्धन है। ४ सात बोध्यङ्ग—स्मृति, धर्म-विषय (=धर्म-अन्वेषण), धीर्य (=उद्योग),

अनुभव करता विहरता है । कैने भिमुओ १० ? भिमुओ ! भिक्षु विद्यमान भीतरी (=अध्यात्म) स्मृति संघोधि अङ्गको 'मेरे भीतर स्मृति संघोधि-अङ्ग है' अनुभव करता है । अ विद्यमान भीतरी स्मृति संघोधि अङ्गको 'मेरे भीतर स्मृति संघोधि-अङ्ग नहीं है' अनुभव करता है । त्रिय प्रकार अनु-उत्पन्न स्मृति संघोधि अङ्गकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता है । त्रिय प्रकार उत्पन्न स्मृति संघोधि अङ्गकी भावना परिपूर्ण होती है, उसे भी जानता है । १० भीतरी धर्म-विषय (=धर्म-अन्वेषण) संघोधि अङ्ग० । ०वीर्य० । ०प्रोत्ति० । ०प्रश्रज्झि० । ०समाधि० । विद्यमान भीतरी उपेक्षा संघोधि अङ्गको 'मेरे भीतर उपेक्षा संघोधि अङ्ग है' अनुभव करता है । अ विद्यमान भीतरी उपेक्षा संघोधि अङ्गको 'मेरे भीतर उपेक्षा संघोधि अङ्ग नहीं है' अनुभव करता है । त्रिय प्रकार अनु-उत्पन्न उपेक्षा संघोधि अङ्गकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता है । त्रिय प्रकार उत्पन्न उपेक्षा संघोधि अङ्गकी भावना परिपूर्ण होती है, उसे जानता है । इस प्रकार शरीरके भीतरके धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है, शरीरक बाहर०, शरीरके भीतर बाहर० । १० । इस प्रकार भिमुओ ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहर वाले सात संघोधि-अङ्ग धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है ।

"और फिर भिमुओ ! भिमु चार १ आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्म अनुभव करने विहरता है । कैने० ? भिमुओ ! 'यह दुःख है' ठीक ठीक (=यथावृत्त = जेपा है वैसे) अनुभव करता है । 'यह दुःखका समुदय (=कारण) है' ठीक ठीक अनुभव करता है । 'यह दुःखका निरोध (=विनाश) है' ठीक ठीक अनुभव करता है । 'यह दुःखके निरोधरी ओल जाने वाला मार्ग (=दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपद्) है' ठीक ठीक अनुभव करता है ।

"भिमुओ ! दुःख आय-सत्य क्या है ? जन्म भी दुःख है, जरा (=वृद्धावस्था) भी दुःख है, व्याधिभी दुःख है, मरना भी दुःख है । शोक करा, रोना-भीग्ना, दुःख = दौर्मनस्य, उपायास (=प्रेषणा) भी दुःख हैं । त्रिय (वन्धु) को इच्छा करके नहीं पाता वह (न पाना) भी दुःख है । सपेयम पाँच उपादान स्कैं (=रूप, वेदना, संज्ञा, रसकार, विज्ञान) (सभी) दुःख हैं । जन्म (=जाति) क्या है, भिमुओ ? जो उन उन सत्त्वों (=चित्त धाराओं) का उन उन प्राणि समुदायों (=योनिषो) में जन्म = संजायन = अवकाति = अभि निरुत्ति = स्कंधा (=रूप आदि पाँच) का प्रादुर्भाव = आवतना (=चयु आदि ७) का लाभ है । यह भिमुओ ! जन्म है ।

"भिमुओ ! जरा (=वृद्धावस्था) क्या है ? जो उन उन सत्त्वोंका उन उन प्राणि समुदायोंमें जरा = जीर्णता = दांत टूटना (=खादित्य), = बाल-पकना = चमड़ोंमें छुरी पड़ना = आयुका खातमा = इन्द्रियोका पक जाना, यह भिमुओ ! जरा कहो जाती है ।

"क्या है भिमुओ ! मरण ? जो उन सत्त्वोंमें उस प्राणि निकाय (=योनि) से च्युत होना = च्यवन होना = भेद = अन्त्यर्धान = मृत्यु = मरण = कालकाला = स्कंधा (=रूप आदि) की जुदाई = कथेर (=शरीर) का फँकना (=निषेप) । यह है भिमुओ ! मरण । प्रीति (=हर्ष), प्रश्रज्झि (=शांति), ममाधि, उपेक्षा । संघोधि = बोधि (=परम ज्ञान) प्राप्त करनेमें यह परम सहायक हैं, इसलिये इन्हें बोधि अङ्ग कहा जाता है । १ आर्य-सत्य चार हैं—दुःख, समुदय, निरोध, निरोध गामिनी प्रतिपद् ।

“क्या है भिक्षुओ ! शोक ? ‘भिक्षुओ ! जो यह तिन तिन व्यसनोसे युक्त, तिन तिन दुःख धर्मासे लिप्त (पुरुष) का, शोक करना = शोचना = शोचित होना = भीतरी शोक = भीतरी परिशोक । यह है भिक्षुओ ! शोक ।

“क्या है भिक्षुओ ! परिदेव ? भिक्षुओ ! जो यह तिन तिन व्यसनोसे युक्त, तिन तिन दुःख धर्मासे लिप्त (पुरुष) का आदेव (= रोना-पीटना) = परिदेव = आदेवन = परिदेवन = आदेवित होना = परिदेवित होना । यह है भिक्षुओ ! परिदेव ।

“क्या है भिक्षुओ ! दुःख ? भिक्षुओ ! जो (यह) (= काय-मम्बग्धा) दुःख = कायिक अ सात = कायिक संयोगसे उत्पन्न दुःख = प्रतिकूल वेदना (= अ-सात वेदमित) । यही है भिक्षुओ ! दुःख ।

“क्या है भिक्षुओ ! दौर्मनस्य ? जो यह भिक्षुओ ! मानसिक (= चतसिक) दुःख = मानसिक प्रतिकूलता (= अ-सात) = मनके संयोगसे उत्पन्न दुःख = प्रतिकूल वेदना । यही है भिक्षुओ ! दौर्मनस्य ।

“क्या है भिक्षुओ ! उपायास ? भिक्षुओ ! जो यह तिन तिन व्यसनोसे युक्त, तिन तिन दुःख धर्मासे लिप्त (पुरुष) का आयास = उपायास = आयासित होना = उपायासित होना (= परेदान होना) । यही है भिक्षुओ ! उपायास ।

“क्या है भिक्षुओ ! ‘जिसको इच्छा करके भी नहीं पाता वह भी दुःख है’ ? ‘जन्म धर्मवाले सत्त्वों (= प्राणियों) को यह इच्छा होती है—‘हा ! हम जन्म धर्म वाले न होत, और हमारा (दूसरा) जन्म न होता ।’ किंतु यह इच्छासे पाने लायक नहीं है । यह जिसको इच्छा करके भी नहीं पाता, वह भी दुःख है’ ।

“भिक्षुओ ! जरा धर्म वाले वशाधि धर्म-वाले, मरण धर्मवाले, शोक परिदेव दुःख दौर्मनस्य उपायास-धमशाले सत्त्वा (= प्राणियों) को यह इच्छा होती है—‘काश ! कि हम शोक परिदेव दुःख दौर्मनस्य-उपायास धर्मशाले न होते, और शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास हमारे पास न आते’ । किन्तु यह (केवल) इच्छासे मिलने को नहीं है । यह ‘जिसको इच्छा करके भी नहीं पाता—यह भी दुःख है’ ।

“कौनसे भिक्षुओ ! ‘संक्षेपमें पांच उपादान स्कंध दुःख हैं’ ? जैसे—रूप उपादान-स्कंध, वेदना उपादान-स्कंध, सन्ना उपादान स्कंध, सत्कार उपादान-स्कंध, विज्ञान उपादान-स्कंध । भिक्षुओ ! संक्षेपमें यह पांच उपादान स्कंध दुःख कहे जाते हैं । इसे ही भिक्षुओ ! दुःख आर्य-सत्य कहते हैं ।

“क्या है भिक्षुओ ! दुःख समुदय आर्य सत्य ? जो यह आवागमन चान्दी (= पौनर्मिक) तृणा, नन्दि राग (= सुग सम्बन्धी इच्छा) संयुक्त, तहाँ तहाँ अभिनन्दन करनेवाली, जैसे कि—काम-उपभोगकी तृणा, मत्र (= आवागमन) की तृणा, विभवकी तृणा उत्पन्न होती है—वहाँ वहाँ घुपकर बैठती है । जो लोकमें प्रियरूप = सात रूप है, उत्पन्न होनेवाली होनेपर यह तृणा, वहाँ उत्पन्न होती है । घुपनेवाली होनेपर वहाँ घुसता है । लोकमें प्रिय रूप = सात रूप क्या है ? चक्षु (= आग) लोकमें प्रियरूप =

सात-रूप है । तृष्णा उत्पन्न होनेवाली होनेपर यहाँ उत्पन्न होती, घुसनेवाली होनेपर यहाँ घुसती है । और क्या लोकमें प्रिय रूप=सात-रूप है ? श्रोत्र० । ०घ्राण० । ०जिह्वा० । ०काया (=स्पर्श इन्द्रिय)० । ०मन० । ०रूप० । ०शब्द० । ०गन्ध० । ०रस० । ०स्पृष्टव्य (=छाडा आदि)० । ०धर्म (=मन का विषय)० । ०चक्षुका विज्ञान (=चक्षु और रूपके मिलनेसे जो रूप सम्यन्धी ज्ञान होता है, वह)० । ०श्रोत्रका विज्ञान० । ०घ्राणका विज्ञान० । ०जिह्वाका विज्ञान० । ०कायाका विज्ञान० । ०मनका विज्ञान० । ०चक्षुका संस्पर्श (=रूप और चक्षुका टकराना, टूना)० । ०श्रोत्र संस्पर्श० । ०घ्राण संस्पर्श० । ०जिह्वा-संस्पर्श० । ०काय संस्पर्श० । ०मन संस्पर्श० । ०चक्षु संस्पर्शसे पैदा हुई वेदना (=रूप और चक्षुके एक साथ मिलनेके बाद चित्तमें जो दुःख, सुख आदि विकार उत्पन्न होता है)० । ०श्रोत्र संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना० । ०घ्राण-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना० । ०जिह्वा संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना० । ०काय संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना० । ०मन संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना० । ०रूप संज्ञा (=चक्षु और रूपके एक साथ मिलनेपर अनुभूत प्रतिबुद्ध वेदनाके बादही 'यह असुरूप रूप है' ज्ञानको रूप-संज्ञा कहते हैं)० । ०शब्द संज्ञा० । ०गंध संज्ञा० । ०रस संज्ञा० । ०स्पृष्टव्य संज्ञा० । ०धर्म संज्ञा० । ०रूप संवेतना (रूप-ज्ञानके बाद रूपका विस्तार करना जो होता है)० । ०शब्द संवेतना० । ०गंध संवेतना० । ०रस संवेतना० । ०स्पृष्टव्य संवेतना० । ०धर्म संवेतना० । ०रूप तृष्णा (रूपके चिन्ताके बाद उसका लिये लोभ)० । ०शब्द-तृष्णा० । ०गंध तृष्णा० । ०रस तृष्णा० । ०स्पृष्टव्य तृष्णा० । ०धर्म तृष्णा० । ०रूप वितर्क (=रूप तृष्णाके बाद उसके विषयमें जो तर्क वितर्क होता है)० । ०शब्द वितर्क० । ०गंध वितर्क० । ०रस वितर्क० । ०स्पृष्टव्य वितर्क० । ०धर्म वितर्क० । ०रूपका विचार० । ०शब्द-विचार० । ०गंध विचार० । ०रस विचार० । ०स्पृष्टव्य विचार० । ०धर्म विचार० । लोकमें यह (सत्र) प्रिय रूप=सात रूप है । तृष्णा उत्पन्न होनेवाली होनेपर यहाँ उत्पन्न होती है, घुसने वाली होनेपर यहाँ घुसती है । भिक्षुओ ! यह दुःख समुदय आर्य-सत्य कहा जाता है ।

“क्या है भिक्षुओ ! दुःख निरोध आर्य सत्य ? उसी तृष्णासे स्वयं धीमान्, (उसी तृष्णाका सर्वथा) निरोध=त्याग=प्रतिनिवृत्ति=मुक्ति=अन् आलस्य (=न घर पर रहना) । भिक्षुओ ! यह तृष्णा कहा छोड़ी जानेसे छूटती है—कहाँ निरोधनी जानेसे निरुद्ध होती है ? लोकमें जो प्रिय-रूप=मात रूप है, वहाँ छोड़ी जानेपर यह तृष्णा छूटती है—वहाँ निरोधकी जानेसे निरुद्ध होती है । क्या है फिर लोकमें प्रिय रूप=सात रूप ? चक्षु लोकमें प्रिय रूप=सात-रूप है० । ० । ० । धर्म विचार लोकमें प्रिय रूप=सात रूप ; यहाँ यह तृष्णा छोड़ी जानेपर छूटती है—यहाँ निरोधकी जानेपर निरुद्ध होती है । भिक्षुओ ! यह दुःख निरोध आर्य सत्य कहा जाता है ।

“क्या है भिक्षुओ ! दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद् (=दुःख विनाशकी ओर जानेवाला मार्ग) ? यही (जो) आर्य (=श्रेष्ठ) अष्टांगिक-मार्ग (=आठ अंगोंवाला मार्ग), सम्यक् (=गैक)-दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक्-आजीव, सम्यक् ध्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक्-समाधि ।

“क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-दृष्टि ? जो यह दुःख-विषयक ज्ञान, दुःख-समुदय-विषयक ज्ञान, दुःख-निरोध-विषयक ज्ञान, दुःख-निरोधकी-ओर-जानेवाली प्रतिपद्-विषयक ज्ञान । यह कही जाती है, भिक्षुओ ! सम्यक्-दृष्टि ।

“क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-संकल्प ? निष्कर्मता संबंधी संकल्प, अ-व्यापाद (= संप्राप्त) संबंधी संकल्प, अ-विहिंसा (= अहिंसा) -संकल्प, भिक्षुओ ! यह कहा जाता है, सम्यक् (= ठीक, अच्छा) -संकल्प ।

“क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-वचन ? मृपावाद (= झूठ बोलना) से विरत होना (= छोड़ना) पिशुन (= चुगली) के-वचन छोड़ना, परप (= कड़ी) वचन छोड़ना, सम्प्रलाप (= बकवास) छोड़ना । यह है भिक्षुओ ! सम्यक्-वचन है ।

“क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-कमान्त ? प्राणातिपात (= प्राण हिंसा) से विरत होना, विना दिया लेनेसे विरत होना, काम (= उपभोग) के मिथ्याचार (= दुराचार) से विरत होना । भिक्षुओ ! यह सम्यक्-कमान्त कहनाता है ।

“क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-आजीव ? भिक्षुओ ! आर्य श्रावक सिद्धा-आश्रम (= रोजगार) छोड़ सम्यक्-आजीव से जीवन यापन करता है । यही है० सम्यक्-आजीव ।

“क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-व्यायाम ? भिक्षुओ ! भिक्षु अन्न उत्पन्न पापक = अ-कुशल धर्मों की न उत्पत्तिके लिये निश्चय (= छन्द) करता है, परिश्रम काता है, उद्योग काता है, चित्तको पकड़ता है, रोकना है । उत्पन्न पाप = अ-कुशल धर्मों के प्रहाण (= छोड़ना, विनाश) के लिये निश्चय करता है० । अन्न उत्पन्न कुशल (= अच्छे) धर्मों की उत्पत्तिके लिये निश्चय० । उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति = अ-विस्मरण, यत्नी = विपुलता, भावना, परिपूर्णता के लिये निश्चय करता है० । यही है भिक्षुओ ! सम्यक्-व्यायाम ।

“क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-स्मृति ? भिक्षुओ ! भिक्षु काय (= शरीर) में काय (वर्म, अशुचि जल आदि) को अनुभव करता हुआ, उद्योगशाल अनुभव ज्ञान युक्त हो, लोक में अभिज्ञा (= होम) और दौर्मानस्य (चित्त संताप) को छोड़कर विहरता है । वेदनाभोगों में० । चित्त में० । धर्माभोगों में० । भिक्षुओ ! यही सम्यक्-स्मृति कही जाती है ।

“क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-समाधि ? भिक्षुओ ! भिक्षु कामसे अलग हो, और अ-कुशल धर्मों (= घुरे विचार आदि) से अलग हो, स-वितर्क, स-विचार, विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुख-वाले प्रथम ध्यान को, प्राप्त हो विहरता है । वितर्क और विचार के शांत होने पर भीतरी शक्ति, चित्त की पृष्ठावस्था, अ-वितर्क, अ-विचार, समाधिसे उत्पन्न प्रीति सुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहरता है । प्रीतिसे भी विरक्त, और उपेक्षक हो, स्मृति-मात्र संप्रजन्य (= अनुभव) घात हो, कायासे सुख को भी अनुभव करता हुआ, जिम को आर्य लोग उपेक्षक, स्मृतिमान्, सुख विहारी कहते हैं, (वेत्ते) तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहरता है । सुख और दुःख के प्रहाण (= परित्याग) से, सौमनस्य (= चित्तोल्लास) और दौर्मानस्य (= चित्त संताप) के पहिले ही अल्प होजानेसे, अ-दुःख, अ-सुख, उपस

स्मृतिकी परिशुद्धता (रूपी) चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । यह है कही जाती भिक्षुओ ! सम्यक्-समाधि ।

“यह कही जाती है भिक्षुओ । दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद् आर्य सत्य ।

“इस प्रकार भीतरी धर्मोंमें धर्मानुपपत्तय हो विहरता है । १०। अलस हो विहरता ११ । लोभम किम्भी (वस्तु) को भी (में और मेरा) करके नहीं ग्रहण करता । इस प्रकार भिक्षुओ । भिक्षु चार आर्य सत्य धर्मोंमें धर्मानुपपत्तय हो विहरता है ।

“ओ कोई भिक्षुओ । इन चार स्मृति-प्रस्थानों की हम प्रकार सात वर्ष भाषा करे, उसको दो फलमें एक फल (अवश्य) होना चाहिये—इसी जन्मम आत्मा (= अर्हत्व) का साक्षात्कार, या उपाधि शेष होनेपर अनागामि भाव । रहने दो भिक्षुओ । सात वर्ष, जो कोई इन चार स्मृति प्रस्थानोंको इस प्रकार १० वर्ष भावना करे ० । ०पाँच वर्ष ० । ०चार वर्ष ० । ०तीन वर्ष ० । ०दो वर्ष ० । ०एक वर्ष ० । ०सात मास ० । ०छ मास ० । ०पाँच मास ० । ०चार मास ० । ०तीन मास ० । ०दो मास ० । ०एक मास ० । ०अर्द्ध मास ० । ० सप्ताह ० ।

“भिक्षुओ । ‘यह जो चार स्मृति प्रस्थान हैं’, वह सत्त्वोंके शोक-यष्टकी विशुद्धिके लिये, दुःख दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, न्याय (= सत्य) की प्राप्तिके लिये, निर्वाण की प्राप्ति और साक्षात् करनेके लिये, एकाग्र मार्ग है ।’ यह जो (मेने) कहा, इसी कारणसे कहा ।”

भगवान्ने यह कह, उन भिक्षुओंने मन्तुष्ट हो, भगवान्के वचनको अभिनि दित किया ।

महानिदान सूच (वि. पृ ४६०) ।

‘ऐसा मेने सुना—एक समय भगवान् दुर देशमें, कुछअंके निगम क्रमास हमने विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादन एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से कहा—

“ आश्चर्य है मन्ते ! अद्भुत है, मन्ते ! कितना गंभीर है, और गंभीरसा दीक्षा है यह प्रतीत्य समुत्पाद । परन्तु मुझे साफ साफ (= उचान) जान पड़ता है । ”

“ ऐसा मत कहो आनन्द ! ऐसा मत कहो आनन्द ! आनन्द ! यह प्रतीत्य-समुत्पाद गंभीर है, और गंभीर सा दीक्षा (भी) है । आनन्द इस धर्मके न जाननेसे = न प्रतिक्रिया करनेसे ही, यह प्रजा (= जनता) बलसे सूत सी, गाँठें पड़ी रखी सी, मूँज बलवज सी, अथवा = दुरगति = विनिपातकी प्राप्तही, ससारसे नहीं पार हो सकती ।

“ आनन्द ! ‘क्या जरा-मरण स कारण है ?’ पूछनेपर, ‘है’ कहना चाहिये । ‘किस कारणसे जरा मरण होता है’ यह पूछे तो, ‘जन्मके कारण जरा मरण होता है’ कहना चाहिये ‘क्या जन्म (= जाति) स कारण है’ पूछनेपर, ‘है’ कहना चाहिये । ‘किस कारणसे जन्म होता है’ पूछनेपर ‘भवके कारण जन्म’ कहना चाहिये । ‘क्या भव स कारण है’ पूछनेपर ‘है’ ० । ‘किस कारणसे भव होता है’ पूछे, तो ‘उपादानके कारण भव’ ० । ‘क्या उपादान स कारण है’ पूछनेपर, ‘है’ ० । ‘किस कारणसे उपादान होता है’ पूछे तो, ‘तृष्णाके कारण उपादान’ ० । ‘वेदनाके कारण तृष्णा’ ० । ‘स्पर्शके कारण वेदना’ ० । ‘नाम रूपके कारण स्पर्श’ ० । ‘विज्ञानके कारण नाम-रूप’ ० । ‘नाम रूपके कारण विज्ञान’ ० ।

“ इस प्रकार आनन्द ! नाम रूपके कारण विज्ञान है, विज्ञानके कारण नाम-रूप है । नाम-रूपके कारण स्पर्श है । स्पर्शके कारण वेदना है । वेदनाके कारण तृष्णा है । तृष्णाके कारण उपादान है । उपादानके कारण भव है । भवके कारण जाति (= जन्म) है । जातिके कारण जरा मरण है । जरा-मरणके कारण शोक, परिदेव (= रोना पीटना), दुःख, दौर्मनस्य (= मन सन्ताप) उपायास (= परेशानी) होते हैं । इस प्रकार इस केवल (= सम्पूर्ण)-दुःख-स्कन्ध (रूपोलोक) का समुदय (= उत्पत्ति) होता है ।

“ ‘जातिके कारण जरा-मरण’ यह जो कहा, हमने आनन्द ! इस प्रकार जानना चाहिये । यदि आनन्द ! जाति न होती तो सर्वथा विल्कुल ही सब किमीकी कुछ भी जाति न होती, जैसे—देवोका देवत्व, गन्धर्वोका गन्धर्वत्व, यक्षोका यक्षत्व, भूतोका भूतत्व, मनुष्योंका मनुष्यत्व चतुष्पदों (= चापायो) का चतुष्पदत्व, पक्षियोंका पक्षित्व, सरीसृपों (= रेंगनेवालों) का सरीसृपत्व, उन उन प्राणियों (= सत्त्वो) का वह होता । यदि

जाति न हो, सर्वथा जातिका अभाव हो, जातिका निरोध (= विनाश) हो, तो क्या आनन्द ! जरा-मरण जान पड़ेगा ? ”

“ नहीं भन्ते ! ”

“ इसलिये आनन्द ! जरा मरणका यही हेतु है = यही निदान है = यही समुदय है = यही प्रत्यय है, जो कि यह जाति ।

“ भवके कारण जाति होती है, यह जो कहा, सो आनन्द ! इस प्रकार जानना चाहिये । यदि आनन्द ! सर्वथा० सब किसीका कोई भव (= लोक) न होता, जैसे कि— काम-भव, रूप-भव, अ रूप-भव । सो भवके सर्वथा न होनेपर, भवके सर्वथा अभाव होनेपर, भवके निरोध होनेपर, क्या आनन्द ! जाति जान पड़ती ? ”

“ नहीं भन्ते ! ”

“ इसीलिये आनन्द ! जातिका यही हेतु है०, जो कि यह भव । ”

“ उपादानके कारण भव होता है, यह जो कहा, सो आनन्द ! इस प्रकार जानना चाहिये । यदि आनन्द ! सर्वथा० किसीका कोई उपादान न होता, जैसे कि— काम उपादान, दृष्टि-उपादान, शील-मत-उपादान या आत्मवाद-उपादान । उपादानके सर्वथा न होनेपर० क्या आनन्द ! भव होता ? ”

“ नहीं भन्ते ! ”

“ इसीलिये आनन्द ! भवका यही हेतु है०, जो कि यह उपादान ।

“ तृष्णाके कारण उपादान होता है० । यदि आनन्द ! सर्वथा० तृष्णा न होती, जैसे कि— रूप-तृष्णा, शब्द-तृष्णा, गन्ध-तृष्णा, रस-तृष्णा, स्पर्श-तृष्णा (= स्पर्श)-तृष्णा, धर्म (= मनका विषय)-तृष्णा । तृष्णाके सर्वथा न होनेपर० क्या आनन्द ! उपादान जान पड़ता ? ”

“ नहीं भन्ते ! ”

“ इसीलिये आनन्द ! उपादानका यही हेतु है०, जो कि यह तृष्णा ।

“ वेदनाके कारण तृष्णा है० । यदि आनन्द ! सर्वथा० वेदना न होती, जैसे कि— क्षु-संस्पर्श (= क्षु और रूपके योग)से उत्पन्न वेदना, श्रोत्र-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, घ्राण-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, जिह्वा-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, काय-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, मन-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना । वेदनाके सर्वथा० न होनेपर० क्या आनन्द ! तृष्णा जान पड़ती ? ”

“ नहीं भन्ते ! ”

“ इसीलिये आनन्द ! तृष्णाका यही हेतु है०, जो कि— यह वेदना ।

“ इस प्रकार आनन्द ! वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण उपादान (= संस्पर्श), उपादानके कारण भव, भवके कारण विनिश्चय (= दृढ विचार), विनिश्चयके कारण छन्द राग (= प्रयत्नकी इच्छा) छन्द रागके कारण, बाध्यवसान (= प्रयत्न), बाध्यवसानके कारण परिग्रह (= जमा करना), परिग्रहके कारण मात्सर्य (= कंजूसी), मात्सर्यके कारण आरक्षा (= हिंसाजत), आरक्षाने कारण हीन-ग्रहण, शत्रु-ग्रहण, बन्ध, विग्रह, विवाद, ‘तू तू मैं मैं’ (= तुल्य तुल्य), चुगली, झूठ बोलना, अनेक पाप = अ कुल धर्म होते हैं ।

“आरक्षाके कारण ही दृढ-ग्रहण० अनेक पाप० होते हैं” यह जो आनन्द ! उसे इस प्रकारसे भी जानना चाहिये० । यदि सर्वथा० आरक्षा न होती, तो सर्वथा आरक्षा न होनेपर०, क्या आनन्द !, दृढ-ग्रहण० अनेक पाप० होते ?”

“नहीं भन्ते ।”

“इसीलिये आनन्द ! यह जो आरक्षा है, यही इस दृढ-ग्रहण० पाप=अज्ञान धर्मोंके उत्पत्तिकारण हेतु=निदान=समुद्रय=प्रत्यय है ।

“मात्सर्य (=कंजूसी)के कारण आरक्षा है” यह जो कहा, सो इसे आनन्द ! इस प्रकार जानना चाहिये० । यदि आनन्द ! सवथा किसीको कुछ भी मात्सर्य न होता, तो उस तरह मात्सर्यके अभावमें=मात्सर्य (=कंजूसी)के निरोधसे, क्या आरक्षा देखनेमें आता ?”

“नहीं भन्ते ।”

“इसीलिये आनन्द ! आरक्षाका हेतु०, जो कि यह कंजूसी ।

“परिग्रह (=जमा करना, धरोरना)के कारण कंजूसी है०” । यदि आनन्द ! सर्वथा किसीको कुछ भी परिग्रह न होता०, क्या कंजूसी दिखाई पड़ती ?०।०।

“अध्यवसानके कारण परिग्रह है” ०। यदि आनन्द ! सर्वथा किसीको कुछ भी अध्यवसान न होता०, क्या परिग्रह (=धरोरना) देखनेमें आता ?०।०।

“छन्द-रागके कारण अध्यवसान होता है” ०। क्या अध्यवसान देखनेमें आता ?०।०।

“विनिश्चयके कारण छन्द-राग होता है” ०।

“लाभके कारण विनिश्चय है” ०। यदि आनन्द ! सर्वथा किसीको कहीं कंजूसी लाभ न होता०, क्या निश्चय दिखाई देता ? ०।० ।

“पर्यपणाके कारण लाभ होता” ०। क्या लाभ दिखाई देता ? ०।० ।

“तृष्णाके कारण पर्यपणा होती है” ०। क्या पर्यपणा दिखाई देती ? ०।० ।

“स्पर्शके कारण तृष्णा होती है” ०। क्या तृष्णा दिखाई देती ? ०।० ।

“नाम रूपके कारण स्पर्श होता है” ०। यह जो कहा, इसको आनन्द ! इस प्रकारसे जानना चाहिये, जैसे ‘नाम रूपके कारण स्पर्श होता है’ । जिन आकारों=जिन लिंगों=जिन निमित्तों=जिन उद्देश्योंसे नाम काय (=नाम समुदाय) का ज्ञान होता है ; उन आकारों, उन लिंगों, उन निमित्तों, उन उद्देश्यों न होने पर, क्या रूप-काय (=रूप समुदाय) का अधि-वचन (=नाम) देखा जाता ?”

“नहीं भन्ते ।”

“आनन्द ! जिन आकारों, जिन लिंगों, से रूपकायका ज्ञान होता है, उन आकारों के न होनेपर, क्या नाम-कायमें प्रतिघ सस्पर्श (=प्रतिहिंसाका योग) दिखाई पड़ता ?”

“नहीं भन्ते ।”

“आनन्द जिन आकारों से नाम काय और रूप कायका ज्ञान होता है, उन आकारों के न होनेपर, क्या अधिवचन सस्पर्श या प्रतिघ सस्पर्श दिखाई पड़ता ?”

“नहीं भन्ते ।”

“आनन्द ! जिन आकारों, जिन लिंगों, जिन निमित्तों, जिन उद्देश्योंसे नाम रूपका न (=प्रज्ञापन) होता है, उन आकारों, उन लिंगों, उन निमित्तों, उन उद्देश्योंके अभावमें न स्पर्श (=योग) दिखाई पड़ता ?”

“नहीं भन्ते !”

“इसीलिये आनन्द ! स्पर्शका यही हेतु = यही निदान = यही समुदय = यही प्रत्यय जो कि नाम-रूप ।

“विज्ञानके कारण नाम रूप होता है” ० । यदि आनन्द ! विज्ञान (=चित्त धारा, च) माताके कोपमें नहीं आता, तो क्या नाम रूप संचित होता ?”

“नहीं भन्ते !”

“आनन्द ! (यदि केवल) विज्ञानही माताकी कोपमें प्रवेगकर निकल जाये, तो न नाम रूप इसके लिये बनेगा (होगा) ?”

“नहीं भन्ते !”

“कुमार या कुमारीने अति शिष्ट रहतेहो यदि विज्ञान छिन्न हो जाये, तो क्या नाम-रूप वृद्धि = विरुद्धि = विपुलताको प्राप्त होगा ?

“नहीं भन्ते !”

“इसीलिये आनन्द ! नाम रूपका यही हेतु ० है, जो कि विज्ञान ।”

“नाम रूपके कारण विज्ञान होता है” ० । ० । आनन्द ! यदि विज्ञान नाम रूपम तिष्ठित न होता, तो क्या भविष्यमें (=आगे चलकर) जाति, जरा-मरण, दुःख समुदय दिखाई पड़ते ?”

“नहीं भन्ते !”

“इसीलिये आनन्द ! विज्ञानका यही हेतु ० है, जो कि यह नाम-रूप । आनन्द ! इ जो विज्ञान-सहित नाम रूप है, इतनेहीसे जन्मता, मृग होता, सरता = च्युत होता, उत्पन्न होता है, इतनेहीसे अधिवचन (=नाम संज्ञा)-व्यवहार, इतनेहीसे निरक्ति (=भाषा)-व्यवहार, इतनेही से प्रज्ञा विषय है, इतनेही से ‘इम प्रकार’ का जतलानेके लिये र्ग वर्तमान है ।

“आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करनेवाला कितनेसे प्रज्ञापन (=जताता) करता है ? पवान् धुद्र रूप धारीको आत्मा प्रज्ञापन करते हुए ‘मेरा आत्मा रूप धरी और धुद्र = अणु’ है’ प्रज्ञापन करता है । रूप-वान् और अनन्त प्रज्ञापन करते हुये ‘मेरा आत्मा पवान् और अनन्त है, प्रज्ञापन करता है । रूप रहित अणु (=परित) आत्मा कहते हुये मेरा आत्मा अ रूप अणु है’ कहता है । रूप रहित अनन्तमे आत्मा माने हुये ‘मेरा आत्मा रूप अनन्त है’ कहता है ।

“वहाँ जो आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करते हुये रूप मात्र अणु (=परित) को

आत्मा कहता है 'वह वर्तमानके आत्माको प्रज्ञापन करता, रूप वान् अणु कहता है। या भावी आत्माको रूप वान् अणु कहता है। या उसको होता है कि, 'वेसा न होते हुए' (=अन्तर्)को उस प्रकारका कहूँ।' ऐसा होते हुये आनन्द ! 'आत्मा रूप वान् अणु' इस दृष्टि (=धारणा)को पकड़ता है, यही कहना योग्य है।

'वह जो आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करते हुये 'रूप वान् अनन्त आत्मा' करता है। वह वर्तमानके आत्माको प्रज्ञापन करते हुये रूप वान् अनन्त कहता है, या भावी आत्मा रूप वान् अणु कहता है। या उसको (मनमें) होता है 'वेसा न होते हुयेको वेसा कहूँ।' ऐसा होते हुये वह आनन्द ! 'आत्मा रूप वान् अनन्त है' इस दृष्टि (=धारणा)को पकड़ता है, यही कहना योग्य है।

'वह जो आनन्द ! 'आत्मा रूप रहित अणु है' कहता है। वह वर्तमान आत्माको कहता है, या भावीको, 'या उसको होता है, कि,—'वेसा न होते हुयेको वेसा कहूँ' ।०।

'वह जो आनन्द ! 'आत्मा रूप रहित अनन्त है' कहता है ।०।०।

'आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करनेवाला इन्हीं (मेंसे एक प्रकारसे) प्रज्ञापित करता है।

'आनन्द ! आत्माको न प्रज्ञापन करनेवाला, कैसे प्रज्ञापित नहीं करता !—आनन्द ! 'आत्माको रूप वान् अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला (=तथागत) 'मेरा आत्मा रूप वान् अणु है' नहीं कहता। आत्माको 'रूप वान् अनन्त' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप वान् अनन्त है' नहीं कहता। आत्माको 'रूप रहित अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप रहित अणु है' नहीं कहता। आत्माको 'रूप रहित अनन्त' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप-रहित अनन्त है' नहीं कहता।

'आनन्द ! जो वह आत्माको 'रूप वान् अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला, प्रज्ञापन नहीं करता। वह या तो आजकल (=वर्तमान) के आत्माको रूप वान् अणु प्रज्ञापन नहीं करता। या भावी आत्माको प्रज्ञापन नहीं करता। 'वेसा नहींको वेसा कहूँ' यह भी उसका नहीं होता। ऐसा होनेसे (वह) आनन्द ! 'आत्मा रूप वान् अणु है' इस दृष्टिको नहीं पकड़ता—यही कहना योग्य है। आनन्द ! जो वह आत्माको 'रूप वान् अनन्त' न प्रज्ञापन करनेवाला, प्रज्ञापन नहीं करता। वह या तो वर्तमान आत्माको रूप वान् अनन्त प्रज्ञापन नहीं करता०।०। ऐसा होनेसे (वह) आनन्द ! 'आत्मा रूप वान् अनन्त है' इस दृष्टिको नहीं पकड़ता, यही कहना चाहिये।

'आनन्द ! जो वह आत्माको 'रूप रहित अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला प्रज्ञापन नहीं करता। वह या तो वर्तमान आत्माको रूप रहित अणु न माननेवाला होनेसे, प्रज्ञापन नहीं

१ उच्छेदवादी आत्माको निनाशी मानते हुये, वर्तमानमें ही उसकी सत्ता स्वीकार करता है। २ शाश्वतवादी आत्माको शाश्वत (=नित्य) मानते हुये, सविष्य में भी उसकी सत्ता स्वीकार करता है। ३ उच्छेदवादी और शाश्वतवादी दोनों ही को। ४ तथागत।

कहा है । ०भावी० । ऐसा होनेसे आनन्द । वह 'आत्मा रूप रहित अणु है' इस दृष्टिको नहीं पकड़ता, यही कहना चाहिये ।

"आनन्द ! जो वह आत्माको रूप-रहित अनन्त न बतलानेवाला, (कुछ) नहीं कहता । वह वर्तमान आत्माको रूप रहित अनन्त न बतलानेवाला हो, नहीं कहता है । ०भावी० । 'वैसा नहींको वैसा कहूँ' यह भी उसको नहीं होता । ऐसा होनेसे आनन्द ! यह कहना चाहिये, कि वह 'आत्मा रूप रहित अनन्त है' इस दृष्टिको नहीं पकड़ता ।

"इन कारणोंसे आनन्द ! अनात्म वादी (आत्माकी प्रशंसा) नहीं कहता ।

"आनन्द ! किम कारणसे आत्मदर्शी (आत्माको) देखता हुआ देखता है ? आत्मदर्शी देखते हुये वेदनाको ही 'वेदना मेरा आत्मा है' समझता है । अथवा 'वेदना मेरा आत्मा नहीं, अ-प्रतिमपद (= न अनुभव) मेरा आत्मा है' ऐसा समझता है अथवा-- 'न वेदना मेरा आत्मा है, न अ-प्रतिमपद मेरा आत्मा है, मेरा आत्मा वेदित होता है, (अतः) वेदना-धर्म वाला मेरा आत्मा है ।' आनन्द ! आत्मदर्शी देखते हुये देखता है ।

"आनन्द ! वह जो यह कहता है--'वेदना मेरा आत्मा है' उसे पूछना चाहिये-- 'आयुष ! तीन वेदनाय हैं, सुखा वेदना, दुःखा-वेदना, अदुःख-असुखा वेदना, इन तीनों वेदनाओंमें किसको आत्मा मानते हो ?' जिस समय आनन्द ! सुखा वेदनाको वेदन (= अनुभव) करता है, उस समय न दुःखा वेदनाको अनुभव करता है, न अदुःख-असुखा वेदनाको अनुभव करता है । सुखा वेदनाहीको उस समय अनुभव करता है । चिम समय दुःखा वेदनाको । जिस समय अदुःख-असुखा वेदनाको ।

"सुखा वेदना भा, आनन्द ! अनित्य = सम्प्लुत (= कृत) = प्रतीत्य-समुत्पन्न (= कारणसे उत्पन्न) = क्षय-धर्मवाली = ज्यय-धर्मवाली, विराग-धर्मवाली, निरोध-धर्मवाली है । दुःखा-वेदना भी आनन्द ! ०; अदुःख-असुख वेदना भी ० । उसको सुखा-वेदना अनुभव करत समय 'यह मेरा आत्मा है' होता है । उसी सुखा-वेदनाके निरोध होनेसे 'विगत होगया मेरा आत्मा' ऐसा होता है । दुःखा-वेदना अनुभव करते ० । अदुःख-असुख-वेदना अनुभव करते 'यह मेरा आत्मा है' होता है । उसी अदुःख-असुख-वेदनाके निरुद्ध (= विनष्ट, विगत) होनेपर 'मेरा आत्मा विगत होगया' होनेपर 'मेरा आत्मा विगत होगया' होता है । इस प्रकार आनन्द ! इसी जन्ममें आत्माका अ-नित्य, क्षय-धर्म, (या) ज्यय-धर्म, उत्पत्ति धर्मवाला = ज्यय (= विनाश) धर्मवाला देखता है, जो ऐसा कहता है, कि 'वेदना मेरा आत्मा है' । इसलिये भी आनन्द ! उसका (ऐसा कहना) कि 'वेदना मेरा आत्मा है' ठीक नहीं ।

"आनन्द ! जा यह ऐसा कहता है--'वेदना मेरा आत्मा नहीं, अ-प्रति-मवेदना मेरा आत्मा है', उसे यह पूछना चाहिये--'आयुष ! जहाँ सब कुछ अनुभव (= वेदयित) है, क्या वहाँ 'मैं हूँ' यह होता है ?"

"नहीं भन्ते !"

“इसीलिये आनन्द ! इससे भी यह समझना ठीक नहीं—‘वेदना आत्मा का है, अ-प्रतिसंवेदना मेरा आत्मा है।’

“आनन्द ! जो वह यह कहता है—‘न वेदना मेरा आत्मा है, और न अ-प्रतिसंवेदना मेरा आत्मा है, मेरा आत्मा वेदित होता है (= अनुभव किया जाता है), वेद धर्मवाला मेरा आत्मा है।’ उसे यह पूटना चाहिये—‘आबुस ! यदि वेदनायें सारी संवेदना विलकुल निरुद्ध हो जायें, तो वेदनाके सर्वथा न होनेसे, वेदनाके निरोध होनेसे, क्या बर्बाद होई ?’ यह होगा ?”

“नहीं भन्ते !”

“इसलिये आनन्द ! इससे भी यह समझना ठीक नहीं कि—‘न वेदना मेरा आत्मा है, और न अ-प्रतिसंवेदना वेदना धर्मवाला मेरा आत्मा है।’

“चूँकि आनन्द ! भिक्षु न वेदनाको आत्मा समझता है, न अ-प्रतिसंवेदनाको, भी नहीं ‘आत्मा मेरा वेदित होता है, वेदना-धर्मवाला मेरा आत्मा है’ समझता है। इस प्रज्ञा न समझे हुये, लोकमें किसीको (मे और मेरा करके) नहीं ग्रहण करता। न ग्रहण करनेवाला होनेसे त्रास नहीं पाता। त्रास न पानेसे स्वयं परि निर्वाणको प्राप्त होता है। (तब) जन्म पतन होगया, ग्रहचर्य-वाम हो चुका, कर्तव्य कर चुका, और कुछ यहाँ (क्षणीय) नहीं जानता है। धेमे विमुक्त चित्त भिक्षुको जो कोई ऐसा कहे—‘मरनेके बाद तथागत होता है—यह इसकी दृष्टि है’ सो अयुक्त है। ‘मरनेके बाद तथागत नहीं होता है—यह इसकी दृष्टि है’—सो अयुक्त है। ‘मरनेके बाद तथागत होता भी है, नहीं भी होता है—यह इसकी दृष्टि है’—सो अयुक्त है। ‘मरनेके बाद तथागत न होता है, न नहीं होता है’ यह इसकी दृष्टि है—सो अयुक्त है। सो किम कारण ? जितना भी आनन्द ! अधिवचन (= नाम सज्ञा), जितना वचन व्यवहार, जितनी निरुक्ति (= भाषा), जितना भी भाषा व्यवहार, जितनी प्रज्ञा (= समझना), जितना भी प्रज्ञा-व्यवहार, जितनी भी प्रज्ञा (= ज्ञान), जितना भी प्रज्ञाका विषय, जितना ससार जितना संसारमें है, उस (संसार) जानकर भिक्षु विमुक्त हुआ है। उसे जानकर विमुक्त हुआ भिक्षु, ‘नहीं जानता है, नहीं देखता है, यह इसकी दृष्टि है’—सो अयुक्त है।

“आनन्द ! विज्ञान (= जीव) की सात स्थितियाँ हैं, और दो ही भावतन। कौ सी सात ? आनन्द ! (१) कोई कोई सत्त्व (= जीव) नाना कायावाले और नाना संज्ञावाले हैं, जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देवता (= काम धातुके छ) और कोई २ विनिपातिक (= मा गीतयाल = पिशाच) यह प्रथम विज्ञान स्थिति है। (२) आनन्द ! कोई कोई सत्त्व नाना कायावाले, किन्तु एक सज्ञा (= नाम) वाले होते हैं, जैसे कि, प्रथम ध्यानके साथ उत्पन्न प्राणायामिक (= महा लोग) देवता। यह दूसरी विज्ञान स्थिति है। (३) आनन्द ! एक काया विज्ञान नाना संज्ञावाले देवता हैं, जैसे कि आभास्वर देवता। यह तीसरी विज्ञान स्थिति है। (४) एक कायावाले, एक संज्ञावाले देवता, जैसे कि शुभरीण (= सुभ विष्णु) देवता। यह चौथी विज्ञान स्थिति है। (५) आनन्द ! (कोई २) सत्त्व हैं, (जो कि) रूप-संज्ञाके अतिरिक्त

तेश संज्ञके अस्त हो जानेसे, नानापन संज्ञाको मनमें न करनेसे 'अनन्त आकाश' इस आकाश आयतन (= निवास स्थान) का प्राप्त है । यह पाँचवीं विज्ञान स्थिति है । (६) आनन्द । (कोई कोई) सत्त्व आकाश आयतनसे सर्वथा अतिक्रमणकर 'विज्ञान अनंत है', विज्ञान आयतनको प्राप्त है । यह छठीं विज्ञान स्थिति है । (७) आनन्द । (कोई कोई) विज्ञान आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'यहाँ कुछ है' इस आर्किकव्य आयतन (= वायु स्थान) को प्राप्त है । यह सातवीं विज्ञान स्थिति है । (दो आयतन है) अर्थात् सत्त्व आयतन - (= संज्ञा-रहित सत्त्वोका आवास), और दूसरा जेव संज्ञा नामज्ञा-आयतन (= सत्त्वोका न असंज्ञावाला आयतन) ।

"आनन्द । जो यह प्रथम विज्ञान स्थिति 'नाना काया नाना संज्ञा' है, जमे कि० । उस (प्रथम विज्ञान स्थिति)को जानता है, उसकी उत्पत्ति (= समुत्पत्ति) को जानता है, उसके अस्तगमन (= विनाश) को जानता है, उसके आस्वात् को जानता है, उसके परिणाम (= अविनव) को जानता है, उसके निस्सरण (= उद्गम उड़ना) को जानता है, क्या उस जानकारको उस (= विज्ञान स्थिति) का अभिनन्दन करना युक्त है ? "

" नहीं मन्ते । "

= दूसरी विज्ञान स्थिति—० सातवा विज्ञान स्थिति० । ० असंज्ञ सत्त्वायतन०, ० नव-ज्ञा न-संज्ञायतन० ।

आनन्द ! जो इन सात सत्त्व स्थितियों और दो आयतनोंके समुदय, अस्त गमन, आस्वाद, परिणाम, निस्सरणको जानकर, (उपादानोंको) न प्रवृण्णकर विमुक्त होता है, वह किंशु प्रज्ञा विमुक्त (= जानकर मुक्त) कहा जाता है ।

" आनन्द ! यह आठ विमोक्ष है । आनन्दे आठ ? (१) (स्वयं) रूप-वान् दूसरे) रूपोंको देखता है । यह प्रथम विमोक्ष है । (२) भीतरमें (= अ-यास्मि) रूप रहित शा बाला, बाहर रूपोंको देखता है, यह दूसरा विमोक्ष है । (३) 'शुभ है' इससे अधिमुक्त (= विमुक्त) होता है, यह तीसरा विमोक्ष है । (४) सर्वथा रूप सनाक अतिक्रमण, प्रतिष्ठ (= प्रतिहिता) संज्ञाके अस्त होनेसे, नाना-त्वकी सनाके मनमें न करनेसे 'आकाश अनन्त' इस आकाशके आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह चौथा विमोक्ष है । (५) सर्वथा आकाशके आयतनको अतिक्रमणकर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह पाँचवां विमोक्ष है । (६) सर्वथा विज्ञान आयतनको अतिक्रमणकर, 'कुछ यहाँ है' इस आर्किकव्य आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह छठा विमोक्ष है । (७) सर्वथा आर्किकव्य आयतनको अतिक्रमणकर, जेव संज्ञा-न अर्थात् आयतनको प्राप्त हो विहरता है । यह सातवा विमोक्ष है । (८) सर्वथा जेव संज्ञा न असंज्ञा आयतनका अतिक्रमणकर संज्ञाकी पदना (= अनुभव) के निरोधको प्राप्त हो विहरता है । यह आठवा विमोक्ष है । आनन्द । यह आठ विमोक्ष हैं ।

" जय आनन्द । किंशु इन आठ विमोक्षोंको अनुलोम (१, २, ३ क्रमसे) प्राप्त (= समाधि प्राप्त) होता है, प्रतिलोमसे (८, ७, ६) भी (समाधि) प्राप्त होता है ।

अनुयोग भी और प्रतिपन्न भी (१०८०१) प्राप्त होता है, उहाँ चाहता है, अ प्राप्त है, निम्न चाहता है, उन्नतों (समधि) प्राप्त होता है; (समाधिमें) उन्नत मा । (= राग द्वेष आदि विषय मर्ण) के क्षयमें, हर्षो जन्ममें आश्रय रहित (= अद्वय, विषयी विमुक्ति, प्रणा विमुक्तिसे स्वयं जानकर = साक्षात्कार, प्राप्त हो, विहरता है । मान्य । यह सिद्ध उन्नतोभावा विमुक्त (= नाम रूपमें विमुक्त) कहा जाता है । मान्य । १४१० भाग विमुक्तिमें ब्रह्म = उन्नत दृष्टो उन्नतो भावविमुक्ति नहीं है ।"

भगवान्ने ऐसा कहा । मनुष्य हा आयु-मान आत्म-दने भगवान्के आत्म-भक्तिदा दिया ।

पति पत्नी-गुण । घेरंजक ब्राह्मण सुत्त । (त्रि पृ ४६०) ।

१९मा मैने सुना—एक समय भगवान् मथुरा और वैरजाके बीचमें रास्तेमें जा रहे थे । समय चतुर्दशे गृहपति और गृह-पतिनिषा भी मथुरा और वैरजाके बीच रास्तेमें रही थीं । भगवान् मार्गमें हटकर, एक वृक्षके नीचे बैठे । उनमें भगवान्को एक वृक्षके नीचे देखा । देखकर जहा भगवान् थे, कहा गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर । एक ओर बैठे उन गृह-पतियों और गृह पतिनियोंको भगवान्ने यह कहा—

“गृह पतियो ! चार प्रकारके संवाम (=महवाम, एक साथ वास) होते हैं । कोनसे ? (१) शव (=मृदा) शवके साथ संवाम करता है ; (२) शव देवीके साथ संवाम करता है, (३) देव शवके साथ संवाम करता है ; (४) देव देवीके साथ संवाम करता है, गृहपतियो ! शव शवके साथ संवाम करता है ? यहाँ गृहपतियो ! स्वामी (=पति), हिंसक, दुराचारी, झूठा, नशा-प्राज, दुःशील, पाप धर्मा, यंजूसीकी गंदगीसे लिस बित्त, धमन (=साधु) ब्राह्मणोंको दुर्बचन कहने वाला हो, गृहमें वास करता है (और) इसकी भार्या भी हिंसक होती है । (उस समय) गृहपतियो ! शव शवके साथ संवाम करता है । कैसे पतियो ! शव देवीके साथ संवाम करता है ? गृहपतियो स्वामी हिंसक होता है । उसकी भार्या भी अहिंसारत, खोरी रहित, सदाचारिणी, सच्ची, नशा विरत, सुशील, पाप धर्म युक्त, मल-मात्सर्य रहित, धमन ब्राह्मणोंको दुर्बचन न कहने वाली हो, गृहमें वास करती है । (उस समय) गृह-पतियो ! शव देवीके साथ संवाम करता है । कैसे गृहपतियो ! देव के साथ वास करता है ? गृहपतियो ! स्वामी होता है, अहिंसारत उसकी भार्या हिंसक होती है । (उस समय) गृहपतियो ! देव शवके साथ संवाम करता है । कैसे गृह पतियो ! देवीके साथ संवाम करता है ? स्वामी अहिंसारत और उसकी भार्या भी हिंसारत होती है । उस (उस समय) देव देवीके साथ संवाम करता है । गृह पतियो ! चार संवाम हैं ।

×

×

×

×

घेरंजक सुत्त ।

२०मा मैने सुना—एक समय भगवान् वैरजामें जैरु-पुचिमन्द (वृक्ष) के नीचे जाकर बैठे थे ।

तब वैरजक ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के साथ संमोदन हुआ—“दे गौतम ! मैने सुना है, कि धमन गौतम जीर्ण = धृढ = महत्क = अथ गत = प्राप्त ब्राह्मणोंके आने पर, न अभिवादन करता है, न प्रत्युत्थान करता है, न आसनके निकट बैठता है । हे गौतम ! क्या यह ठीक है ?” “ब्राह्मण ! देव मार ब्रह्म सहित

१ अ० नि ४२१३ । २ अ० नि ८ १ २ १ । पाराजिका १ ।

सारं लोकमें, श्रमण-ब्राह्मण देव मनुष्य सहित सारी प्रजा (=जनता) में भी मैं किसीको नहीं देखता, जिसको कि मैं अभिवादन करूँ, प्रत्युत्थान करूँ, आसनके लिये बैठाऊँ । तथागत जिस (मनुष्य) को अभिवादन करूँ, प्रत्युत्थान करूँ, या आसनके लिये बैठाऊँ, उसका शिर भी गिर सकता है ।”

“गौतम ! आप अरस रूप हैं ।”

“ब्राह्मण ! ऐसा कारण है जिस कारणसे मुझे ठीक कहते हुये ‘श्रमण गौतम अरस’ है’ कहा जा सकता है । ब्राह्मण ! जो वह रूप रस (=रूपका मजा), शब्द रस, गंध-रस, रस रस, स्पर्श रस, हैं, तथागतके वह सभी प्रहीण=जड़ मूलसे कटे, सिर न ताड़से, नष्ट, आगे न उत्पन्न होनेवाले हो गये हैं । ब्राह्मण ! यह कारण है, जिससे मुझे ‘श्रमण गौतम अरस रूप है’ कहा जा सकता है, उससे नहीं जिस ख्यालसे कि कहता है ।”

“आप गौतम ! निर्भाग है ।”

“ब्राह्मण ! ऐसा कारण है जिससे ठीक ठीक कहते मुझे ‘श्रमण गौतम निर्भाग’ है’ कहा जा सकता है । जो वह ब्राह्मण ! शब्द भोग, तथागतके वह नष्ट, आगे न उत्पन्न होनेवाले हो गये हैं । ब्राह्मण ! यह कारण है, जिससे मुझे ‘श्रमण गौतम निर्भाग है’ कहा जा सकता है । उससे नहीं जिस ख्यालसे कि कहता है ।”

“आप गौतम ! अक्रियावादी है ।”

“ब्राह्मण ! ऐसा कारण है जिससे । ब्राह्मण ! मैं कायाके दुराचार (=प्राण हिंसा, चोरी, व्यवहार), वचनके दुराचार (झूठ चुगली, कटुवचन, प्रलाप), मनके दुश्चरित (=लोभ, द्वेष, मिथ्या दृष्टि) को अक्रिया कहता हूँ । अनेक प्रकारके पाप =अशुशल धर्मोंको मैं अक्रिया कहता हूँ । यह कारण है ब्राह्मण !”

“आप गौतम ! उच्छेदवादी है ।”

“ब्राह्मण ! ऐसा कारण है, । ब्राह्मण ! मैं ‘राग, द्वेष, मोह, का उच्छेद (काया चादिये)’ कहता हूँ, अनेक प्रकारके पाप =अशुशल-धर्मोंका उच्छेद कहता हूँ ।”

“आप गौतम ! शुश्रूषु (=घृणा करनेवाले) हैं ।”

“ब्राह्मण ! मैं कायिक, वाक्किक, मानसिक दुराचारोंसे घृणा कहता हूँ, अनेक प्रकारके पाप ।”

“आप गौतम ! वेनयिक (=हटानेवाले, साधनेवाले) हैं ।”

“ब्राह्मण ! मैं राग, द्वेष, मोहके विनयन (=हटाने) के लिये धर्म उपदेश करता हूँ, अनेक प्रकारके पाप ।”

“आप गौतम ! तपस्वी है ।”

“ब्राह्मण ! मैं पाप=अशुशल धर्मों (को), काय वचन मनके दुराचारोंको तपानेवाला कहता हूँ । ब्राह्मण ! जिसने पाप तपानेवाले धर्म नहीं हो गये, जड़-मूल

चरे गये, सिर फटे ताड़से हो गये, अभावको प्राप्त हो गये, भविष्यम् ॥ उत्पन्न होने लायक हो गये, उसको मे तपस्वी कहता हूँ । ब्राह्मण ! तथागतके पाप० तपानेवाले धर्म नहीं हो गये० भविष्यम् ॥ उत्पन्न होनेलायक हो गये । ब्राह्मण ! यह कारण है जिससे० ।०।

“आप गौतम ! अप गर्भ हैं ।”

“० ब्राह्मण ! जिसका भविष्यका गर्भ शयन=आवागमन नष्ट हो गया, जड़ मूलसे चला गया०, उसको मे अप गर्भ कहता हूँ । ब्राह्मण ! तथागतका भविष्यका गर्भ शयन, आवागमन नष्ट हो गया, जड़ मूलसे चला गया० ।०।

“ ब्राह्मण ! जैसे सुर्गोंके आठ या दश या बारह अण्ड हो, (और) सुर्गों द्वारा अण्डोंी तरह सेवित हों=परिभाषित हो । उन सुर्गोंके बचोम जो प्रथम परेके नवोंसे या चौथेसे अंदरों फोड़कर समुद्रतल याहर चला आये, उसको क्या कहना चाहिये, ज्येष्ठ या कनिष्ठ ?”

“ हे गौतम ! उसे ज्येष्ठ कहना चाहिये । वही उनमें ज्येष्ठ होता है ।”

॥ इसी प्रकार ब्राह्मण ! अविद्यामें पड़ी, (अविद्यारूपी) अवेसे जन्मी इस प्रजा (=जनता) में, मैं अवेसाही अविद्या (रूपी) अंदरों खोलकों फोड़कर, अनुत्ता (=सर्वश्रेष्ठ) सम्यक् संयोगि (=बुद्ध) को जानने वाला हूँ । मही ब्राह्मण लोकमें ज्येष्ठ धेष्ठ हूँ । मही ब्राह्मण ! न दुर्नैवाला योग्य आरम्भ किया, विस्मरण रहित स्मृति मेरे समुल थी, अ क्षम और क्षम (मेरा) शरीर था, एकाग्र समाहित चित था । सो ब्राह्मण ! मैं ॥ वितर्क स विचार विवेकमे उत्पन्न प्रीति सुख वाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा । वितर्क और विचार क्षान्त हो, भीतरी क्षान्ति, चित्तकी एकाग्रता, अ वितर्क, अ विचार, समाधिसे उत्पन्न प्रीति सुख,=वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा । प्रीतिसे भी विरक्त, और उपक्षर हो विहरता हुआ स्मृति मान्, अनुभव (=संप्रज्ञप्ति) धान् हो, कायासे सुखको भी अनुभव करता हुआ, जिसको कि आर्य लोग —उपेक्षक, स्मृतिमान्, सुख-विहारी-कहते हैं । (बेया हो) तृतीय ध्यानको प्राप्तहो विहरने लगा । सुख और दु खके प्रधान (=परित्याग) से, सौमनस्य (=चित्तोत्थास) और दौर्मनस्य (चित्त सन्ताप) के पहिलेही अस्त हो जानेसे, अ दु ख, अ सुख, उपक्षा, स्मृतिकी परिशुद्धता (रूपी) चतुर्थ ध्यानमें प्राप्त हो विहरने लगा । सो इस प्रकार चित्तके समाहित परिशुद्ध=पर्यवदात अङ्गण रहित=उपेक्षा (=म) रहित, मृदु भूत=काम लायक, स्थिर=अचलता-प्राप्त=समाहित हो जानेपर, पूर्ण जन्मोंका स्मृतिके ज्ञान (=पूर्ण निवासानुस्मृति-ज्ञान) के लिये वित्तको मेने छुड़ाया । फिर मैं अनेक पूर्ण निवासोंको स्मरण करने लगा—जैसे एक जन्म भी दो जन्म भी आकार सहित उद्देश सहित, धनक पूर्व निवासोंका स्मरण करने लगा । ब्राह्मण ! यह रातके पहिले धाममें, उस प्रकार प्रमाद रहित, तत्पर, आत्म-संयम युक्त विहसते हुये, सुखे पहिली विद्या प्राप्त हुई, अविद्या गई, विद्या आई, तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ । ब्राह्मण ! अवेसे सुर्गोंके बच्चेकी तरह यह पहिली फूट हुई ।

" सो इस प्रकार चित्तक परिशुद्ध = होनेपर प्राणियोक जन्म मरणके लिये मैं चित्तक शुकाया । सो अ-मानुष दिव्य विशुद्ध चक्षु (= नेत्र) से अच्छे घुरे, सुवर्ण दुर्वर्ण, धातु (= अच्छी गतिम गये) दुर्गम, मरते उत्पन्न होते, प्राणियोको दर्शने लगा । सो० कर्मानुषासित गतिको प्राप्त प्राणियोको जानने लगा । ब्राह्मण ! रातके विचले पहरम यह द्वितीय विद्या उत्पन्न हुई, अविद्या गई० । ब्राह्मण ! अण्डेसे सुर्गोंके बच्चेका भांति यह दूसरी फूट हुई ।

" सो इस प्रकार चित्तके०, आत्मबोके क्षयके ज्ञानके लिये, मैंने चित्तका शुकाया— 'यह दुःख है' इसे यथार्थ जान लिया 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थ जान लिया । 'यह दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद् है' इसे यथार्थ जान लिया । 'यह आत्मव है' इसे यथार्थ जान लिया । 'यह आत्मव निरोध है' इसे यथार्थ जान लिया । 'यह आत्मव निरोध-गामिनी प्रतिपद् है' इसे यथार्थ जान लिया । सो इस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते हुये चित्त कामात्मक से मुक्त हो गया । भगवान् से भी विमुक्त हो गया । अ-विद्यात्मकोसे भी विमुक्त हो गया । छूट (= विमुक्त) जानेपर 'छूट गया' ऐसा ज्ञान हुआ । 'जन्म रतम हो गया, प्रसन्न हो गया, करना था सो कर लिया, अब यहाँके लिये कुछ (शेष) नहीं' इसे जाना ब्राह्मण ! रातके पिछले याम (= पहर) में (यह) तृतीय विद्या प्राप्त हुई । अविद्या चली गई । विद्या उत्पन्न हुई । तम गया, आलोक उत्पन्न हुआ । ब्राह्मण ! अण्डेसे सुर्गोंके बच्चेकी भांति यह तीसरी फूट हुई' ।

एसा कहनेपर वेरजक ब्राह्मणने भगवान् को कहा—“ आप गौतम ! ज्येष्ठ हैं, आप गौतम ! श्रेष्ठ हैं । आश्चर्य ! हे गौतम ! आश्चर्य ! हे गौतम !० उपासक धारण करें ।”

वेरजा-वर्षावास । (वि. पृ. ४६०) ।

“ भन्ते ! भिक्षु संघ-सहित भगवान् वेरजामें वर्षावास स्वीकार करें । ” भगवान्ने मौनसे उभे स्वीकार किया । भगवान्को स्वीकृतिको जान वेरजक ब्राह्मण आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया ।

उस समय परंजा दुर्भिक्ष युक्त दो ईतिषा (अकाल और महामारी) से युक्त द्रव्य इष्टियावाली, सूखी रेतोवाली थी । भिक्षा करके गुजर करना पड़ता था । उस समय उत्तरा-पथके घोड़ोक सौदागर पाँच सौ घोड़ाक साथ वेरजाम वर्षावास = (करने थे) । घोड़ाके डामि बन्हावे भिक्षुओंको प्रस्थभर चावल बाँध करण था ।

भिक्षु पूर्वाह्न समय (चीवर) पहनकर पात्र चीवर ले वेरजाम पिंड-चारके लिये प्रवेशकर, पिंड न पा, घोड़ोंके डेरा (= अश्वमेडलिका) में भिक्षाचारकर प्रस्थ प्रस्थ चावल (= पुलक) पा, आराममें छावर, ओखलमें कूट कूटकर खात थे । आयुष्मान् आनन्द प्रस्थभर पुलकको साक्षर पीसकर, भगवान्को देते थे, भगवान् उसे भोजन करते थे ।

भगवान्ने ओखलका शब्द सुना । जाते हुये भी तथागत पूछते हैं । (पूछनेका) काल जान पूछते हैं) । (न पूछनेका) काल जान नहीं पूछते । अर्थ युक्तको पूछते हैं, अनर्थ-युक्तको नहीं । अनर्थ सहित तथागतोंका सत्तु घात (= मयादा खंडन) है । दो कारणास बुद्ध भिक्षुओंको पूछते हैं, (१) घर्म-दशना करनेके लिये वा (२) श्रावकाका शिक्षा पद (= भिक्षु नियम) विधान करनेके लिये । तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“ आनन्द ! क्या यह ओम्पलका शब्द है ? ”

आयुष्मान् आनन्दने वह (सब) बात भगवान्को बत दी ।

“ साधु ! साधु ! आनन्द ! तुम मत्तुरुषोने (लाऊंगा) जीत लिया । आनेवाला जनता (तो) पुलाव (= क्षालि मास-ओन्न) चाहंगा । ”

+

+

+

+

एकान्त-स्थ ध्यान अवस्थित आयुष्मान् सारिपुत्र चित्तम इस प्रकार वितर्क उत्पन्न हुआ—“ किन २ बुद्ध भगवानाका प्रक्षवर्ष (= सम्प्रदाय) विर म्थावा नहीं हुआ ? किन २ बुद्ध भगवानोंका प्रक्षवर्ष चिरस्थायी हुआ ? ” तब म्भ्या समय आयुष्मान् सारिपुत्र ध्यानसे बढकर, जहा भगवान् थे, वहा गये, जाकर भगवान्का अभिवादनकर एक ओर बढ गये । एक ओर बढ आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से कहा—

“ भन्ते ! एकान्त स्थित ध्यानावस्थित होनके समय, मर चित्तम इम प्रकारका परि वितर्क उत्पन्न हुआ—किन २ बुद्ध भगवाना, भो भन्ते । किन २ बुद्ध भगवानोंका ० ? ”

‘ सारिपुत्र । भगवान् विपश्यी, भगवान् सिद्धी और भगवान् विषमू (= वेत्समू) का प्रक्षवर्ष चिरस्थायी नहीं हुआ । सारिपुत्र । भगवान् ककुत्स्थ (= ककुत्थेन्द्र), भगवान् कोनागमन और भगवान् कदयपका प्रक्षवर्ष चिरस्थायी हुआ । ”

१ पासाजिका १ २ इस मन्त्रकल्पने ३ बुद्ध हैं, उपरान्त छ, और सातव गौतम बुद्ध ।

“भन्ते ! क्या हेतु है, भन्ते ! क्या प्रत्यय है (=कार्य कारण), जिससे कि भगवान् विपश्यी शिली विश्वभूके प्रहस्यर्च्य चिरस्थायी न हुये ?”

“सारिपुत्र ! भगवान् विपस्मी सिली वेस्समू आवकोको विस्तारसे धर्म उद्गत करनेम आलसी (=किन्नासी) थे। ‘उनने सुत्त (=सूत्र), गेप्प (=गेय), वेय्याकण (=व्याकरण=व्याख्यान), गाथा, उदान, इतिवृत्तक (=इतिवृत्तक) जातक, अद्भुत धम्म (=अद्भुत-धर्म), वेदल्ल थोड़े थे। उन्होंने शिक्षा पद्धति (=भिक्षु-नियम=विनय) का विधान नहीं किया था, प्रातिमोक्षका उद्देश्य नहीं किया था। उन बुद्ध भगवानोंके अन्तर्धान होनेपर, उनके बुद्ध-भक्त बुद्ध श्रावकोंके अन्तर्धान होने जाद, नाना नाम, नाना गोत्र, नाना जाति, नाना कुलसे प्रयोजित (जो) पिठे श्रावक (=शिष्य) थे, उन्होंने उन प्रहस्यर्च्यको प्राप्त ही अन्तर्धान कर दिया। जैसे सारिपुत्र ! सूत्रमें विना पियेये नाना फल तत्तेपर रखे हो, उनको हवा बिखेरती है, विधमन=विध्वंसन करती है। सो किस हेतु ? चूँकि सूत्रसे पिठा (=संगृहीत) नहीं हैं, इसी प्रकार सारिपुत्र ! उन बुद्ध भगवानोंके अन्तर्धान होनेपर, उन प्रहस्यर्च्यको शीघ्र ही अन्तर्धान कर दिया। ।”

“भन्ते ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जिससे कि भगवान् ककुप्प कोनागमन कस्सपक प्रहस्यर्च्य चिरस्थायी हुये ?”

“सारिपुत्र ! भगवान् ककुप्प कोनागमन कस्सप श्रावकोंको विस्तार पूर्वक धर्म देशना करनेमें निर् आलस थे। उनके (उपदेश किये) सूत्र, गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवृत्तक, जातक, अद्भुत धर्म, वेदल्ल बहुत थे। (उन्होंने) शिक्षा पद्धति विधान किये थे, प्रातिमोक्ष (=प्रातिमोक्ष) उद्देश्य किये थे। उन बुद्ध भगवानोंके अन्तर्धान होनेपर, बुद्धात्त बुद्ध श्रावकोंके अन्तर्धान होनेपर, जो नाना नाम, नाना गोत्र, नाना जाति, नाना कुलसे प्रयोजित पिठेके शिष्य थे, उन्होंने उन प्रहस्यर्च्यको चिर कर, दीर्घकाल तक स्थापित रखा। जैसे सारिपुत्र ! सूत्रमें संगृहीत (=गूँये) तत्तेपर रखे नाना फल हो, उनको हवा नहीं बिखेरती। सो किस लिये ? चूँकि सूत्रसे संगृहीत है। ।

तब आयुष्मान् सारिपुत्रने आसनसे उठ, उत्तरासंग (=चादर)को एक कंधेपर (दाहिने कंधेको छोड़े हुये रख) कर, जिध्रा भगवान् थे, उबर हाथ जोट भगवान्से कहा—

“इसीका भगवान् ! काल है, इसीका सुगत ! समय है, कि, भगवान् श्रावकोंके लिये शिक्षा पद्धति विधान करें, प्रातिमोक्षका उद्देश्य करें, जिससे कि यह प्रहस्यर्च्य अच्वनीय=चिरस्थायी हो।”

“सारिपुत्र ! ठहरो, सारिपुत्र ! ठहरो, तयागत काल जानेंगे। सारिपुत्र ! शास्ता (=गुरु) तब तक श्रावकोंके लिये शिक्षापद्धति विधान नहीं करते प्रातिमोक्ष उद्देश्य नहीं करते, जब तक कि संघमें कोई आश्रय (=चित्त मल)वाले धर्म (=पदार्थ) प्रादुर्भूत नहीं हो जाते। सारिपुत्र ! जब यहाँ संघमें कोई कोई आश्रयवाले धर्म प्रादुर्भूत हो जाते हैं, तब शास्ता श्रावकोंको शिक्षा पद्धति विधान करने हैं, प्रातिमोक्ष उद्देश्य करते हैं, उन्हीं आश्रय

१ बुद्धके उपदेश इन नौ प्रकारके हैं। २ भिक्षुओंका पाप निवेदन नियम।

स्थानीय धर्मोंके प्रतिघातके लिये । सारिपुत्र । स्वर्गमें तब तक कोई आर्य स्थानीय धर्म उत्पन्न नही होते, जब तक कि सध सत्त्व महत्त्व (= सत्त्वगुण महत्त्व) की प्राप्ति हो । सारिपुत्र । जब सध सत्त्व महत्त्वकी प्राप्ति हो जाता है, तब यहाँ स्वर्गमें कोई कोई आर्य स्थानीय धर्म उत्पन्न होते हैं, और तबही शास्त्रा आचार्योंके लिये शिक्षा पद विधान पतते हैं, प्रातिमोक्ष उद्देश करते हैं । तब तक सारिपुत्र । स्वर्गमें कोई आर्यस्थानीय धर्म नहीं उत्पन्न होते, जब तक कि सारिपुत्र । उसको त्रेपुल्य मात्त्व०, उत्तम (वस्तुओंके) लाभकी वधाई (= लाभग महत्त्व, को०, वाहु सध० । सारिपुत्र । (इस समय) सध अर्पुद (= मल) रहित = आदिनव रहित, कान्तिमा रहित, शुद्ध, सारम स्थित है । इन पाँचसौ भिक्षुओंमें जो सबसे पिछड़ा भिक्षु है, वह स्रोत आपत्ति (फल) को प्राप्त, दुर्गति से रहित, स्थिर सगोधि = परायण (= परम ज्ञान प्राप्तिम निश्चल) है । ”

यह कह भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको संगोषित किया—

“आनन्द ! यह तथागतोंका आचार है, कि जिनने द्वारा निर्ममित हो वर्षा-वास करते हैं, उनको बिना देते (पूछे) नही जाते । बरें आनन्द ! वेरंज ब्राह्मणको दर्श । ”

“अच्छा भन्ते ! ” (वह) आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान् (चीवर) पहिन पात्र चीवर ले० आनन्दको अनुगामी बना, जहाँ वेरंज ब्राह्मणका घर था, वहाँ गये । जाकर बिछे आसन पर बैठ । वेरंज ब्राह्मण भगवान्के पास, आकर, भगवान्को अभिवादनकर एक ओर उठ गया । एक ओर वह वेरंज ब्राह्मणको भगवान्ने कहा—

“ब्राह्मण ! तुझसे निर्मित हो, हमने वर्षा प्राप्ति कर लिया । अब तुमको देखने आये हैं । हम जनपद चारिका (= देशाटन) को जाना चाहते हैं । ”

“हे गौतम ! सच मुचही मैंने वर्षा वासके लिये निर्मित किया था—मेरा जो देनेका धर्म था, वह (मैंने) नहीं दिया । सो न होनेका कारण नहीं, और न देनेकी इच्छासे (भी नहीं) । सो (मौका) कैसे मिले ? गृहमें वचना (= गृहस्थाश्रम) बहुत काम, बहुत धृत्योपाय (होता है) । आप गौतम कलके लिये भिक्षु सध-सहित मेरा भोजन स्वीकार करें । ”

भगवान् ने मौन रह स्वीकार किया । तब भगवान् वेरंज ब्राह्मणको धार्मिक कथासे संदर्शन करा आसनसे उठकर चल दिये ।

वेरंज ब्राह्मणने उस रातके भीत जानेपर, अपने घरमें उत्तम रात्रि-भोजन तय्यार करा, भगवान्को कालकी सूचना दी । तब भगवान् पूजाद समय (चीवर) पहिनाकर, पात्र चीवर ले, जहाँ वेरंज ब्राह्मणका घर था, वहाँ गये । जाकर भिक्षु सध-सहित बिछे आसन पर बैठ । वेरंज ब्राह्मणने अपन हाथसे शुद्ध प्रमुख भिक्षु सधको उत्तम स्वाद्य भोजनसे सतर्पित कर, पूर्णकर, स्नाकर पात्रसे हाथ धुवा लनेपर, भगवान्को तीन चीवरसे आच्छादित किया ।

१ (१) अन्तरावसथ (= दुहरी) (२) उत्तरावसथ (= दूधरी चहर), (३) मध्यादी (= दुहरी चहर) ।

एक एक भिक्षुको एक एक धुम्से (= धान, जोट्टेसे आच्छादित किया। भगवान् धैर्यजब्राह्मणको धर्म उपदेश कर आसनमे उठ चल दिये।

भगवान् परजामे इच्छागुमार विहारकर, १सोमेय्य, २संकाश्य (= संकस्स), ३अन सुब्बज (= वणकुब्ज, कपौज) होते हुये, जहाँ प्रयाग-प्रतिष्ठान (= पयाग-पविट्टान) था वहाँ गये। जाकर प्रयाग प्रतिष्ठानमे गङ्गा नदी पारकर, जहाँ धाराणसी थी, वहाँ गए। तब भगवान् धाराणसीमें इच्छागुमार विहारकर, जहाँ पैशाली थी, वहाँ चारिकाके लिए रुक दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ पैशाली थी वहाँ पहुँचे। पैशालीमें भगवान् महान् धुटागारशालामें विहार करते थे।

१दुद्धोपा आचार है, वर्षा धान्य समाप्तकर २प्रवारणा करके लोक-संग्रहके लिये देश-रत्न करते हुये महा मण्डल, मध्य मण्डल, अन्तिम मण्डल इन तीन मण्डलोंमें से एक मण्डलमें चारिका करते हैं। महामण्डल जो सौ योजन है, मध्य-मण्डल ६०० योजन और अन्तिम मण्डल तीनसो योजन है। जब महामण्डलमें चारिका करना चाहते हैं, तो महाप्रवारणा (= आश्विन पूर्णिमा) को प्रवारणाकर, प्रतिपदके दिन महा भिक्षु-संग्रहके साथ निकलकर ग्राम गिरिम (= कल्या) आदिमें अन्न पान आदि (= आमिष) ग्रहणकर लोगोपर कृपा करत, धर्म दान (= धर्मोपदेश) से उनके पुण्यकी वृद्धि करते, नव मासमें देशादन समाप्त करते हैं। यदि वर्षाकालमें भिक्षुओंकी दामय-विपश्यना (= सामाधि प्रज्ञा) अपरिपक्व (= तरुण) होती है, तो महाप्रवारणाको प्रवारणा न कर, कार्तिककी पूर्णमासीको प्रवारणाकर, मार्ग शीर्षक पहिले दिन महा भिक्षु संघ सहित निकलकर, उपरोक्त प्रकारसे ही मध्य-मण्डलमें आठ महीनेमें चारिका समाप्त करते हैं। यदि वर्षा समाप्त करनेपर भी विनयाकाक्षी सत्त्वोंकी भावना नहीं होती, तो उनकी भावनाके परिपक्व होनेके लिए मार्ग शीर्षमास भर भी वहीं यासकर, पून (= पुन्य) मासके पहिले दिन, महा भिक्षु संघ सहित निकलकर, उक्तक्रमसे ही अन्तिम मण्डलमें सात महीनेमें चारिका समाप्त करते हैं।

+

+

+

+

+

१ सोरो (जिगण्ठा)। २ संकिमा वसन्तपुर (जि० फर्रुखाबाद)। ३ इलाहाबाद। ४ विनयदृष्ट कथा, पाराजिका १। ५ आश्विन पूर्णिमाके उपोसथको प्रवारणा कहते हैं।

वनारसमे । वैशालीमें । (वि. प्र. ४५९) ।

१ ऐसा भी सुना—एक समय भगवान् वाराणसीमें ऋषि पतन स्मृत्यावम विहार करने थे ।

वहाँ भगवान् पूजाह्न समय (जीवर) पहिन्नर पात्र चीरर वाराणसीमें पिंड चार क लिये प्रवेश किया । १ गो योग लक्ष्य पिंड चार करने, भगवान्ने क्रिया शून्य हन्य (=रिक्त), बहिर्मुख-चित्त (=बाह्य) मूढ स्मृति, सप्रज्ञर रहित अ यमाधान चित्त = विधात चित्त प्राप्त इन्द्रिय (=साधारण काम भोगी जना जया) मिथुको दत्ता । दत्तक उम मिथुको कहा—

“ मिथु ! मिथु ! अपनेको तू ज्ञान मत बना । ज्ञान ये दुर्गन्धसे लिप्त हुये तुझपर कहीं भक्तिरथा न आपर्षे, (तुने) भलि न करे । (तरे लिये) यह उचित नहीं है । ”

भगवान् द्वारा इस प्रकारके उपदेशसे उपदिष्ट हो, वह मिथु तैराग्य (=सर्ग) को प्राप्त हुआ । भगवान्ने वाराणसीमें पिंडचारकर, भोजनान तर मिथुभाका संशोधित किया—

“ मिथुको ! आज मैंने पूर्वाह्न समय० मिथुको दत्ता । देखकर मिथुको कहा—
‘मिथु ! मिथु ! अपनेको तू ज्ञान मत बना० तब मिथुको ! वह मिथु मेरे इस उपदेशसे उपदिष्ट हो, भोगको प्राप्त हो गया ।’

पसा कहनेपर एक मिथुने भगवान्से पूजा—

“ क्या है मन्ते ! जठन (=कटुविष), क्या है दुर्गन्ध (=आमर्गध), क्या है भक्तिरथा ? ”

“ मिथु ! अभिध्या (=लोभ, राग) जठन है, व्यापार (=द्रोह) आमर्गध है, और पाप अ कृष्ण चित्तक (=धुरे विचार) भक्तिरथा है ।

वैशालीमें ।

१ उम समय वैशालीके नासिदूर कलन्दक-धाम नामका (गाव) था । वहाँ लक्ष्म कलन्धपुत्र नामर सेठका लड़का रहता था । तब सुदिन कलन्धपुत्र बहुतमे मित्रों साथ, किसी कामके लिये वैशाली गया । उस समय भगवान् बड़ी भाँति परिपक्व साथ २२, धम उपदेश कर रहे थे । सुदिन कलन्दपुत्रने भगवान्को उपदेश करते दत्ता । देखकर उसने चित्तमें हुआ—म भो क्यों न धर्मे सुन । तब सुदिन कलन्धपुत्र जहाँ वह परिपक्व थी, वहाँ गया । जाकर एक ओर बठ गया । एक ओर बठ हुय सुदिन कलन्धपुत्रका यह हुआ—‘ जेने जेते में भगवान्के उपदिष्ट धर्मको जान रहा हूँ, (उससे जान पड़ता है कि) यह सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध पराई श्रेष्ठता उज्ज्वल प्रत्यक्ष, धर्म बसे (=गृहस्थ रहते) को सुख नहीं है । क्यों न मैं शिर दादी मुझा, कापाय बर पडि, घरसे गेहर हो प्रयत्नित होजाऊँ ? तब भगवान्क धार्मिक उपदेश को (सुन) वह परिपक्व आयनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर,

१ अ नि ३३६ । २ “ बलहट्टेमें उगा एक पाकड़रा वृक्ष । अ क ३ विनय, पारायिका १ ।

प्रदक्षिणाकर चली गई । परिपत्रके चले जानेके थोड़ीही देर बाद, सुन्नि कलन्द पुत्र जहाँ भगवान्‌धे वहाँ गया, जाकर भगवान्‌को अमिवादनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे सुन्नि कलन्द पुत्रने भगवान्‌को कहा—

“ जैसे जेमे भन्ते ! मे भगवान्‌के उपदिष्ट धर्मको जान रहा हूँ० भन्ते ! मैं मित्र-दाता सुष्टा० प्रयजित होना चाहता हूँ । भन्ते ! भगवान्‌ मुझे प्रयजित कर ।”

“ सुदिन्न ! क्या घरसे वेधर हो प्रयजित होनेके लिये तुम माता पिताक द्वारा अनुज्ञात हो ।”

“ भन्ते ! घरसे वेधर प्रयजित होनेके लिये, मैं माता पिता-द्वारा अनुज्ञात नहीं हूँ ।”

“ सुन्नि ! तथागत माता पिता द्वारा अनुज्ञात पुत्रको प्रयजित नहीं करते ।”

“ तो मे भन्ते ! ऐसा कहेगा, जिसमें० प्रयजित होनेकी अनुज्ञा (= आज्ञा) देवे ।”

तब सुन्नि कलन्द-पुत्र वेदालीम उम कार्यको मुक्ताकर, जहाँ कलन्द-ग्राम था, जहाँ माता पिता थे, वहाँ गया । जाकर माता पिताको बोला—

“ अम्मा ! तात ! जैसे जैसे मैं भगवान्‌के० उपदिष्ट धर्म० । मैं० प्रयजित होना चाहता हूँ । मुझे० प्रयजित होनेको अनुज्ञा दो ।”

ऐसा कहनेपर सुदिन्न० के माता पिताने सुदिन्नको० यह कहा—“ तात ! सुदिन्न ! तुम हमारे प्रिय = मनाप, सुखमें बड़े, सुखमें पले एक पुत्र हो । तात ! सुदिन्न ! तुम दुःख कुत्र भी नहीं जानने । मरनेपर भी हम तुमसे अनिच्छुक न होंगे, फिर हम तुम्हें जीतेजी, कैसे बरसे वेधर प्रयजित होनेकी अनुज्ञा देंगे ?”

दूसरी बारभी सुदिन्नने० माता पिताको यह कहा ०।० ।

तीसरी बार भी ०।० ।

तब सुदिन्न कलन्द पुत्र—‘मुझे माता पिता घरसे वेधर प्रयजित होनेकी अनुज्ञा नहीं देते’—(सोच) वहाँ भगी धरतीपर पड़ गया—‘यहाँ मेरा मरण होगा या प्रयज्या’ । तब सुन्नि०ने एक (बारका) भात (= भोजन) न खाया, दो भी०, तीन भी०, चार०, पाँच०, छ०, मात० । तब सुन्नि०के० माता पिताने सुदिन्नको० यह कहा—

“ तात ! सुदिन्न ! तुम हमारे प्रिय० एक पुत्र हो० । मरनेपरभी हम तुमसे अकाम न होंगे० । उठो तात ! सुदिन्न खाओ पीओ (सुखो) हो । खाते पीते सुखसे काम-पुण्य भोगते पुण्य करते रमण करो । हम तुम्हें प्रयजित होनेकी अनुज्ञा न देंगे ।”

ऐसा बोलेपर सुदिन्न० चुप रहा ।

दूसरीबार भी ०।० ।

तामरीबार भी ०।० ।

तब सुदिन्न० के मित्र जहाँ सुन्नि था, वहाँ गये, जाकर सुदिन्न० को बोले—

“ सौम्य ! सुन्नि ! तुम माता पिताके प्रिय० एक पुत्र हो । मरनेपर भी तुम्हारे माता पिता० प्रयजित होने की आज्ञा न देंगे । उठो सौम्य सुदिन्न ! खाओ, पीओ० पुण्य करते रमण करो । मात-पिता तुम्हें प्रयजित होनेकी आज्ञा न देंगे ।”

एसा थोलनेपर सुदिन० चुप रहा ।

दूसरीवार भी ०।० ।

तीसरीवार भी ०।० ।

तब सुदिनके० मित्र जहाँ सुदिन०के माता पिता थे, वहाँ गये । जाकर या—

“अम्मा ! तबत । यह सुदिन नंगी धरतापर पड़ा (कहता है) —‘यहा मरण होगा या प्रमज्या’ । यदि ०प्रमज्याका अनुचा न दोगे, तो वहीं मा जायगा । यदि सुदिनको ०प्रमज्याकी अनुज्ञा देदोगे, तो प्रमजित होनेपर उसे देजोगे । यदि सुदिनको ०प्रमज्या भव्ठी न लगी, तो उसकी दूसरी और क्या गति होगी ?—यहीं लौट आयेगा । सुदिनको० प्रमज्याकी अनुज्ञा दोगे ।”

“तातो । हम सुदिनको ०प्रमज्याका अनुचा दत है ।”

तब सुदिन कलन्द पुत्रक मित्र जहाँ सुदिन कलन्द पुत्र था वहा गया, जाकर सुदिन कलन्द-पुत्रको बोले—

“उठो मौम्य ! सुदिन ! ०प्रमज्याके लिये माता पिता द्वारा अनुचात हो ।”

तब सुदिन कलन्द पुत्र—‘०प्रमज्याके लिये माता पिता द्वारा अनुचात हूँ’—(जान) उठ=उठप हायसे शरीर पाऊने, उठ खड़ा हुआ । तब सुदिन० कुछ दिनमें तारुत पाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बस गया । एक ओर बैठ हुये, सुदिन कलन्द पुत्रने भगवान्को कहा —

“भन्ते ! ०प्रमज्याके लिये मैं माता पिता द्वारा अनुजात हूँ । मुझे भगवान् प्रमजित करें ।”

सुदिन कलन्द पुत्रने भगवान्के पास प्रमज्या (=श्रमगर्भाव) और उपमपदा (=भिक्षु भाव) पाई । उपमपदा (=भिक्षु होने)के थोड़ी ही दूर याद, सुदिन इन श्रुत (=अवधूत)—गुणोंसे युक्त हो ब्रह्मा (दश)के एक ग्राममें निहार करने लगे—जैसे, आरण्यक (=वनमें रहना), विड पातक (=सधूकरी खाना, निमग्रण आदि नहीं), पाशु-दलिक (=पैके चीथड़ीको ही लौकर पहिना), और स पदान चारी निरंतर (चारिक) चलतेरहना ।

+

+

+

‘भगवान्ने तेरहवीं (वर्षा) खालिय पर्वतम (बिताई) ।

सीह-मुत्त (वि. पू. ४५८) ।

‘एसा मेने सुना—एक समय भगवान् वेदालीमे महावनकी वृग्गार शालाम बिस करत थे ।

उस समय बहुतमे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवी सम्थागार (= प्रजापति समागार) बठ हुये, एकत्रित हुये, बुद्धका गुण बखानते थे, धर्मका, संघका गुण बखानते थे । उस समय निगठो (= जेना) का आचार्य सिंह सेनापति उस समामे बेटा था । तब सिंह सेनापतिक बिय हुआ—‘ नि सशय वह भगवान् अहंत् अम्यक् संजुद्ध होंगे, तब तो वह बहुतसे प्रतिष्ठित लिच्छवी बखान रहे हैं । क्यों न मैं उन भगवान् अहंत् सम्मत्-संजुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ ।’

तब सिंह सेनापति जहाँ निगठ नाथ पुत्त थे, वहाँ गया । जाकर निगठ नाथ पुत्तको बाला

“ भन्ते ! मे भ्रमण गौतमको दर्शनके लिये जाना चाहता हूँ । ”

“ सिंह ! क्रियावादी होते हुये, तू क्या अक्रियावादी भ्रमण गौतमके दर्शन जायगा । सिंह ! भ्रमण गौतम अक्रियावादी है, आचरको अ क्रियावादीक उपा करता है । ”

तब सिंह सेनापतिकी भगवान्के दर्शनके लिये जानेकी जो इच्छा थी, वह शात होगई

दूसरीबार भी बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवी० । तब सिंह सेनापति जहाँ नि नाथ पुत्त थे, वहाँ गया० कहा० ।

“ क्या तू सिंह ! क्रियावादी होकर, अक्रियावादी भ्रमण गौतमके दर्शनको जायगा० दूसरीबार भी सिंह सेनापतिकी० इच्छा० शात होगई ।

तीसरीबार भी बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवी० । ‘तू या न पूछूँ, नि नाथ-पुत्त मेरा क्या करैगा ? क्यों न निगठ नाथ पुत्तकी बिना पूछे ही, मैं उन भगवान् अ सम्मत्-संजुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ ।’

तब सिंह सेनापति पाँच सौ रथोंके साथ, दिन ही दिन (= दो पहर) को भगवान् दर्शनके लिये, वेदालीसे निकला । जितना यान (= रथ) का रास्ता था, उतना यानसे जा यानसे उतर, पैर ही आराममें प्रविष्ट हुआ । सिंह सेनापति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर घेठ गया । एक ओर घेठे हुये सिंह सेनापति भगवान्को यह कहा—

“ भन्त ! मेने सुना है कि—भ्रमण गौतम अक्रियावादी है । अक्रियाके धर्म उपदेश करता है, उसीको ओर शिष्योंको ले जाता है । भन्ते ! जो एसा कहता है ‘ भ्रमण गौतम अक्रियावादी है० ।’ क्या वह भगवान्को ठीक कहता है ? अ (= जो नहीं है) से भगवान्की विन्दा तो नहीं करता ? धम्मनुसारही धर्मको कहता है । ”

कोई सह धार्मिक जादालुवाद तो निन्दित नहा होता ? भन्ते । हम भगवान्‌जी निन्दा करना नहा चाहते । ”

“ सिंह । ऐसा कारण है, जिस कारणसे ठीक ठीक कहते हुए, मुझे कहा जा सकता है—
‘ धम्म गौतम ‘अक्रिया-वादी है’ ।

“ सिंह । क्या कारण है, ‘ धम्म गौतम अ क्रिया वादी है’ ? सिंह । मैं काय दुश्चरित, वचन दुश्चरित, मन दुश्चरितको, अनेक प्रकारके पाप अकुशल धर्मोंको अक्रिया कहता हूँ । ”

“ सिंह । क्या कारण है जिस कारणसे—‘ धम्म गौतम क्रिया वादी है, क्रियाके लिये धर्म उपदेश करता है, उभीसे श्रावकोंको ले जाता है’ । सिंह । मैं काय-सुचरित (=अ हिंसा, चोरी न करना, अ च्यभिचार), मासु-सुचरित (=सब गोहत्या, बुराई न करना, मोठा वचन, चक्रवाद् न करना), मन-सुचरित (=अ लोभ, अ द्रोह, सम्यक् दृष्टि) अनेक प्रकारके कुशल (=उत्तम) धर्मोंको क्रिया कहता हूँ । सिंह । यह कारण है जिस कारणसे मुझे ‘ धम्म गौतम क्रियावादी ’ है । ”

“ उच्छेदवादी० । जुगुप्सु० । वेनायिक० । तपस्वी० । अपगर्भ० ।

“ सिंह । क्या कारण है जिस कारणसे ठीक ठीक कहनेवाला मुझे क’ सकता है—
‘ धम्म गौतम अस्समन्त (=आश्रमन्त) है, आश्रमके लिये धर्म-उपदेश करता है, उभीसे श्रावकोंको ले जाता है’ । सिंह । मैं परम आश्रमसे आश्रमिन हूँ, आश्रमके लिये धर्म उपदेश करता हूँ, आश्रम (४ मार्ग) से ही श्रावकोंको ले जाता हूँ । यह कारण । ”

ऐसा कहनेपर सिंह सेनापतिने भगवान्‌जी कहा—

“ आश्चर्य । भन्त । आश्चर्य । भन्ते । ० उपासक मुझे स्वीकार कर । ”

“ सिंह । सोच समझकर करो० । तुम्हारे जेबे समझान्त मनुष्योंका साव समझकर (शिष्य) करना ही अच्छा है । ”

“ भन्ते ! भगवान्‌के इस कथनमे मैं और भी सन्तुष्ट हुआ । भन्ते ! कृपे तर्पिक मुझे धावक पाकर, सारी रेशालीमें पताका उगात—सिंह सेनापति हमारा धारण (=बेला) हो गया । लेकिन भगवान्‌ मुझे कहते हैं—‘ सोच समझकर सिंह ! करो० । यह मैं भन्ते ! दूसरी बार भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु मन्त्री भी० । ”

“ सिंह ! तुम्हारा कुछ दीर्घकालसे निगमेक लिये प्याउकी तरह रहा है, उनके जानपर पिंड न देना (चाहिये) ’ ऐसा मत समझना । ”

“ भन्ते ! इससे मैं और भी प्रसन्न मन, सन्तुष्ट, और अभिरत हुआ । ० । यों सुना था भन्ते ! कि धम्म गौतम ऐसा कहता है—‘ मुझे ही दान देना चाहिये, दूसरोंको दान न देना चाहिये’ । भन्त । भगवान्‌ तो मुझे निर्माणको भी दान देनेको कहते हैं । हम भी भन्ते ! इसे युक्त समझते । यह भन्त । मैं तीसरी बार भगवान्‌की शरण जाता हूँ । ”

१ अक्रियावादी, उच्छेदवादी, जुगुप्सु तपस्वी, अप गर्भकी व्याख्या नेरजमुत्त (पृष्ठ १३८, १३९) में देखो । २ उपासि-मुत्त देखो ।

तत्र भगवान्ने सिंह सेनापतिको आनुपूर्वी कथा कही, जेते—दान कथा, शील-कथा, स्वर्ग कथा, कामभोगोंके दोष, अपकार और इश, और निष्कर्मताका माहात्म्य प्रकाशित किया । जब भगवान्ने सिंह सेनापतिको अरोग चित्त, मृदु चित्त, अनाच्छादित चित्त, वर चित्त, प्रमत्त चित्त जाना । तत्र वह जो बुद्धोकी स्वयं उठानेवाली धर्म देशना है, उसे प्रकाशित किया—दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग । जंसे कालिमा रहित शुद्ध वस्त्र अच्छा प्रकार रङ्ग परकृतता है । इसी प्रकार सिंह सेनापतिको उसी आमनपर विमल, विरज, धर्म-शुद्ध उत्पन्न हुआ—

‘जो कुछ समुदय धर्म है, वह सब निरोध धर्म है’ । सिंह सेनापति दृष्ट धर्म = प्राप्त धर्म = विदित धर्म = परि अवगाह-धर्म, सदृह रहित, वाद विवाद रहित, विचारदत्ता प्राप्त, शास्त्रोंके शासनसे स्तुत हो आ । और भगवान्ने यह बोला—

“भन्ते ! भिक्षु मघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें ।”

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया । तब सिंह सेनापति भगवान्की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ भगवान्को अमियादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया ।

तत्र सिंह सेनापतिने एक आदमीसे कहा—

“हे आदमी ! जा तू तट्टवार मासको देख तो ।”

तब सिंह सेनापतिने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें उत्तम खाद्य भोज्य तट्टवार का, भगवान्को कालकी सूचना दी । भगवान् पूर्वाह्न समय (चीवर) पहनकर पात्रवाहक ले जहा सिंह सेनापतिका घर था, वहाँ गये । जाकर भिक्षु मघके साथ बिछे आसनपर बैठ । उस समय बहुतसे निर्गठ (= जेनसाधु) वेशालीमें एक सड़कसे दूसरी सड़कपर, एक चौरस्तेपर दूसरी चौरस्तेपर, बाँह उठाकर चिल्लाते थे—‘आज सिंह सेनापतिने मोटे पशुको मारकर, अमण गोतमने लिये भोजन पकाया, अमण गोतम जान बूझकर (अपनेही) उद्देश्यसे किये, उस (मास) को खाता है ।

तत्र कोई पुरुष जहाँ सिंह सेनापति था, वहाँ गया । जाकर सिंह सेनापतिके कारमें बोला—

“भन्ते ! जानते हैं, बहुतसे निर्गठ वेशालीमें एक सड़कसे दूसरी सड़कपर बाँह उठाकर चिल्ला रहे हैं—आज० ।”

“जाने दो आर्या (= अर्य्यो) । चिरकालसे यह आयुष्मान् (= निर्गठ) बुद्ध० धर्म० संघकी निन्दा चाहने वाल हैं । यह आयुष्मान् भगवान्की असत्ता, तुच्छ, मिथ्या, अ भूत निन्दा करते नहीं शरमाते । हम तो (अपने) प्राणके लिये भी जान बूझकर प्राण न मारेंगे ।”

तब सिंह सेनापतिने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु मघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य भोजन समर्पित (कर), परिपूर्ण किया । भगवान्को भोजनकर पात्रसे हाथ रौंघ लेनेपर, सिंह सेनापति एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ हुये सिंह सेनापतिको भगवान्, धार्मिक कथासे सदृश कर , आसनसे उठकर चले दिये ।

+ + + + +

मेरुदक-दीक्षा । विशाखा । (वि. पू. ४५८) ।

‘तत्र भगवान् वेदशालीमे इच्छानुसारं विहारकरं ग्राह्यं वारहस्यो भिक्षुर्वापि महाभिक्षुमघके साथ, जिधर २ भदिया थी, उधर चारिकाके लिये चर गिय । क्रमशः चारिका करते जहाँ भदिया थी, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् भदिया (= मद्रिका) में जातिया (= जातिका) वनमें विहार करते थे । मेरुदक गृहपतिने सुना कि—‘शाक्य कुलसे प्रवर्जित शाक्य पुत्र श्रमण गौतम भदियामें आए हैं, जातिया वनमें विहार करते हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याण (= मङ्गल) कीर्ति शब्द फैला हुआ है—‘वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-समुद्ध, विद्या आचरण संयुक्त, सुगत, लोक विद्, अनुत्तर (= सर्वश्रेष्ठ) पुरुषोंके दम्य सारथी (= वाहक मगर), देव-मनुष्योंके शान्ता, उद्ध भगवान् हैं । वह देव मार ब्रह्मा सहित इस लोकको, श्रमण-ब्राह्मणों सहित, देव मनुष्यों सहित (इस) प्रजा (= जनता) को, स्वयं (परम तत्त्वज्ञ) जानकर साक्षात्स्वर जतलाते हैं । वह आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, अवमान (अन्तम)-कल्याण, अर्थ सहित = धर्मजनसहित, धर्मको उपश्रुते हैं, और केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध, प्रहर्षयुक्त प्रकाश करते हैं । इस प्रकारके अर्थसोना दर्शन उत्तम होता है ।’

तत्र मंडक गृहपति भद्र (= उत्तम) भद्र यानोंको शुद्धाकर, भद्र यानपर शारू हो, भद्र भद्र यात्रोंके साथ, भगवान्के दर्शनके लिये भद्रिकासे निकला । यदुवसे संधियों (= पंथायियों)ने दूरसे ही मंडक गृहपतिको आते हुये देखा । स्वयं मंडक गृहपतिको कहा—

“गृहपति ! तू कहाँ जाता है ?”

“भन्ते ! मैं श्रमण गौतमके दर्शनके लिये जाता हूँ ।”

“क्यों गृहपति ! तू क्रियावादी होकर अ क्रियावादी श्रमण गौतमके दर्शनको जाता है ? गृहपति ! श्रमण गौतम अ क्रियावादी है, अ क्रियाक लिये धर्म उपदेश करता है, उसी (शस्त्र)से श्रावकोंको भी ठे जाता है ।”

तत्र मंडक गृहपतिको हुआ—

“नि मंदय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-समुद्ध हाग, जिसलिये कि वह तर्पिक निग करते हैं ।”

(और) जितना शान्ता यानस था, उतना यानसे जाकर (फिर) यानमें उतर, वैद्व हो जहा भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे मंडक श्रेष्ठोंको भगवान्ने आनुपूर्विक ३ कथा कहो ०१० मंडक गृहपतिसे उयो आसनपर विमल विरज धर्म क्षु उत्पन्न हुआ—‘जो कुछ समुच्च धर्म है, उद् गौतम धर्म है । ०१ तत्र दृष्टधर्म ० मंडक गृहपतिने भगवान्को कहा—‘आश्रय ! भन्ते ॥ आश्रय ! भन्ते ॥ जय कि भन्ते ॥ ० मैं भगवांकी शरण जानता हूँ, धर्म सार भिक्षु संघकी भी । जानते भगवान्

मुझे साजलि दारणागत उपासक जान । भन्ते ! भिक्षु मंघ महित भगवान् मेरा कलक मोन स्वीकार कर । ”

“ भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया । ”

मैंडक गृहपति भगवान्को स्वीकृतिको जान, आसनमे उठ, भगवान्को अभिवादन प्रसिणाकर चला गया ।

तब मंडक गृहपतिने उस रातके पीतनेपर उत्तम खाद्य भोज्य तय्यार करा, भगवान्को फाल सूचित कराया० । भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र चीवर ले, जहाँ तक श्रेष्ठीका घर था, वहाँ गये । जाकर भिक्षुमंघ महित जिष्ठे आसनपर बटे । तब मंडक गृहपतिभाया, पुत्र, पुत्र-बन्धु (= सुणिता) और दास जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये ; जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । उनको भगवान्ने आनुपूर्विक कथा कही० । उनको दया आसनपर त्रि-मल त्रि-रज धर्म-चतु उत्पन्न हुआ० । तब दृष्ट-धर्म० उन्होंने भगवान्को कहा—

“ आश्चर्य । भन्ते ! आश्चर्य । भन्ते ॥० हम भन्ते ! भगवान्की शरण जाते हैं, धर्म और भिक्षु सधकी भी । आजसे हम भन्ते !० उपासक जानें । ”

तब मैंडक गृहपतिने अपने हाथसे बुद्ध प्रमुख भिक्षु मंघको उत्तम खाद्य भोज्यसे संतर्पित कर, पूर्णकर, भगवान्को भोजनकरा, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर० एक ओर बैठ गया । एक ओर के मैंडक गृह-पतिने भगवान्को कहा—

“ जब तक भन्ते ! भगवान् भक्षियामें विहार करते हैं, तब तक मे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु मंघकी धुर भक्त (= समर्पणके भोजन) से (सेवा करूँगा) । ”

तब भगवान् ! मैंडक गृहपतिको धार्मिक कथा (कह) आसनसे उठकर चल गये ।

+ + + +

विशाखाका जन्म (वि पू ४६५) ।

विशाखाका जन्म अगदेशके भक्षिया नगरमें मंडक श्रेष्ठीके पुत्र धनजय श्रेष्ठीकी अप्रमहिषी सुमना देवीकी कोखमें हुआ था । उसकी सात वर्षकी अवस्थामें शास्ता दैल प्राणग आविको (बोध करानेके लिये) महाभिक्षु-मंघके साथ चारिका करते हुये, उस नगरको प्राप्त हुये । उस समय मैंडक गृहपति उस नगरके पाँच महापुण्यत्माओमें प्रधान (= ज्येष्ठ) होकर, (नगर-) श्रेष्ठी-पद (पर) काम करता था । पाँच महापुण्य थे—मैंडक श्रेष्ठी, चन्द्र-पञ्च उसकी प्रधान भाया, उसका ज्येष्ठ-पुत्र धननय, इसकी भार्या सुमना देवी, मैंडक श्रेष्ठीका दास पूरण । केवल मैंडक श्रेष्ठी ही नहीं, बियमार राजाके राज्यमें पाँच (जने) अमित भोगवाये—जोतिय, जटिल, मैंडक, पुण्णक, (= पूर्णक), और काक बलिय ।

उनमेंसे मैंडक श्रेष्ठीने दश-बल (= बुद्ध) के अपने नगरमें आनेकी बात जानकर, पुत्र धनजय श्रेष्ठीकी कन्या विशाखाको खलाकर कहा—

“ अम्म ! तेरा भी मंगल है, हमारा भी मंगल है । अपने परिवारकी पाँचमौ क-याजों (तथा) पाँचमौ दासियोंके साथ, पाँचसौ रथोंपर चढ़ दशबलकी लगवानी कर । ”

१ धम्मपद अ क ४८ । २ गंगाके तटिण, घतमान भागलपुर और मुंगेर जिष्ठे (विहार) ।

उपने 'अच्छा' कह वैसा ही किया । कारण अ कारण जाननेमें कुशल होनेसे जितना मार्ग यानका था, उतना यानमे जा उतरकर पेड़ ही शास्ताके पास जा बन्नाकर एक ओर गड़ी हो गई । भगवान्ने उसे चयाके संबंधम दशनाकी । दशनाक अन्तम वह पांचमो कन्याओंके साथ स्रोत आपत्ति फलमें प्रतिष्ठित हुई । मेषक श्रेष्ठीने भी शास्ताके पास आकर, धर्म-कथा सुन स्रोत आपत्ति फलमें प्रतिष्ठित हो, दूसरे तिनके लिये, निमंत्रितकर, वृत्ते दिा अपने घरमें उत्तम स्वाद्य भोज्य बुद्ध प्रसुप्त भिक्षु संबंधी परोसर, इस प्रकार आठ मास महान्न निया । शास्ता भदिया (=मुरे) नगरम इच्छानुसार विचारकर, चरे गये ।

उस समय विन्ध्यसार और प्रसेनजित् कोमल एक दूसरेके बहनोई थे । एक दिन कोमल राजाने सोचा—'विन्धारके राज्यम पांच अमित भोगमले (आदमी) बसने हैं, मेरे राज्यमें एक भी वैसा नहीं है । क्यों न विन्धारके पास जाकर, पर महापुण्यको माग लऊ ।' वह वहाँ जाकर, राजाके सातिर करनेके बाद—'किम कारणसे आये ?' पूछे जायेपर—'तुम्हारे राज्यमें पांच अमित भोग महापुण्य बसते हैं, उनमेंसे एकको मैं जानेक लिये आया हूँ । उनमेंमे एक सुखे दो ।' -

"महाकुलोको हम ददा नहीं सकने ।"—कहा ।

"दिना पाये न जाऊँगा ।"—कहा ।

राजाने अमात्योसे सलाह करके—

"जोति आति महाकुलोका चलाना पृथिवीके चलानेके समान है । मेषक महाश्रेष्ठीका पुत्र धनंजय श्रेष्ठी है, उसक साथ मलाहका, तुम्ह उत्तर दूँगा ।" कह, उसको बुलवाकर—

"तात ! कोमल राजा-एक धनी श्रेष्ठी ल जानेकी कहता है । तुम उसके साथ जाओगे ?"

"आपके भेजेपर, देव ! जाऊँगा ।"

"तो तात ! प्रबंध करके जाओ ।"

उपने अपना कृत्य समाप्त कर लिया । राजाने भी उसका बहुत सत्कार करने—'हसे ल जाओ'—कह प्रसेनजित् राजाको दे दिया । वह उसको लेकर एक रास्तेमें एक रात टहरकर जाने हुए, एक स्थान पर डेरा डाल दिया । धनंजय श्रेष्ठीने पूछ—

"यह किसका राज्य है ?"

"मेरा है, श्रेष्ठी !"

"यहाँसे धावस्ती कितनी दूर है ?"

"यहाँसे सात योजनपर ।"

"नगरके भीतर बहुत भीड़ होती है, हमारा परिवन (=नोकर वाकर) भारी है । यदि आज्ञा हो तो, देव ! यहाँ बस ।"

राजा, 'अच्छा' कह, उस स्थान पर नगर बनवा, उने देकर चला गया । साथे साथ स्थान पानेके कारण "साकेत" यही नगरका नाम हुआ ।

१ अयाध्या, जि० पंजायाद (युक्तप्रान्त) ।

‘तव भक्षियामे’ इच्छानुसार विहारकर, मेंढक गृहपतिको बिना पूछेही, साढ़े बारह सौ मद्दान् भिक्षु संघके साथ, भगवान् जहाँ ‘अंगुत्तराप’ था, वहाँ चारिकाके लिये बन् दिव। मरु गृहपतिने सुना, कि भगवान्० अंगुत्तरापको चारिकाके लिये चले गये। तब मेंढक गृहपति दासों और कमफ़ोको आज्ञा दी—

“ तो भणे ! यहूत सा छोन, तेल, मधु, तंदुल और खाद्य गादियोंपर लट्का आओ। साढ़े बारह सौ खाये भी, साढ़े बारह सौ धेनु (=दूध देने वाली) गायोंको लकर आओ। जहाँ हम भगवान्को देखो, वहाँ गर्भधारवाले दूधके साथ भोजन करायेंगे।”

तब मेंढक गृहपतिने रास्तेमें एक जंगल (=कातार) में भगवान्को पाया। जो भगवान् थे वहाँ गया, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुए, मेंढक श्रेष्ठोंने भगवान्को कहा—

“ भन्ते ! भिक्षु संघ-सहित भगवान् कलका मेरा भात स्वीकार करें।”

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब मेंढक श्रेष्ठी भगवान्की स्वीकृतिको जान, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाएँ चला गया।

मेंढक गृह-पतिने उस रातके मोत जानेपर, उत्तम खाद्य भोज्य तय्यार करा, भगवान्को काल सूचित कराया०। तब भगवान् पूर्वाह्न समय, पहिनकर पात्रचीवर ले, जहाँ मेंढक गृहपति का परोमना था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु संघ-सहित बिठे आसनपर बैठे। तब मेंढक गृहपति साढ़े बारह सौ गोपालोंको आज्ञा दी—

“तो भणे। एक एक गाय ले, एक एक भिक्षुके पास रखे हो जाओ, गर्भधारवाले दूधसे भोजन करायेंगे।” तब मेंढक गृह पतिने अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य-भोज्यसे सतर्पित किया, पूर्ण किया। गर्भधारके दूधसे आना कानी करते, भिक्षु (उत्ते) ग्रहण न करते थे।

(तब भगवान्ने कहा)—“ ग्रहण करो, परिभोग करो, भिक्षुओ !”

मेंढक गृह पति बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघको उत्तम खाद्य भोज्य तथा धार-उष्ण दूधसे, अपने हाथसे सतर्पितकर पूर्णकर० एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मेंढक गृहपतिने भगवान्से कहा—

“ भन्ते ! जल रहित, खाद्य रहित, कातार (=वीरान) मार्गभी हैं, बिना पाथेयक (उनसे) जाना सुकर नहीं। अच्छा हो, भन्ते ! भगवान् पाथेयकी अनुज्ञा दें।”

तब भगवान् मेंढक श्रेष्ठोंको धर्म-उपदेश (कर) आसनसे उठकर चल दिये। भगवान्ने इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“ अनुना करता हूँ, भिक्षुओ ! पाच गोरमकी—दूध, दही, तक्ष (=छाछ), नवनात (=मक्खन) और धी (=सर्पिण्)।

१ महावग्ग ६। २ मुंजर भागलपुर जिलेका गंगाके उत्तरका भाग। अङ्ग-उत्तर आप = पानी (=गंगा)के उत्तरका अङ्ग।

“ भिक्षुओ ! (कोई कोई) जल रहित, खाद्य रहित, कातार माग १, (जितने) बिना पायेयके जाना सुरू नहीं । अनुत्ता देता हूँ, भिक्षुओ ! तंडुलार्थी (= तंडुल चाहनेवाला) तंडुलका, मूँग चाहनेवाला मूँगका, उदद चाहनेवाला उददका, लोन चाहनेवाला लोनका, गुड़ चाहनेवाला गुड़का, तेल चाहनेवाला तेलका, घी चाहनेवाला घीका पायेय दूँ । ”

“ भिक्षुओ ! (कोई कोई, श्रद्धालु और प्रयत्न मनुष्य होते हैं । वह कष्टियकारक (= भिक्षुका अनुचर गृहस्थ) के हाथमें हिरण्य (= सोना या सोनेका मिक्का) देते हैं — ‘इससे आर्यको जो विहित है, वह ले देना ’ । भिक्षुओ ! उससे जो विहित हो, उसे उपभोग करनेकी अनुत्ता देता हूँ । किन्तु, भिक्षुओ ! जातरूप (= सोना) — रजत (= चाँदी) का उपभोग करना या सग्रह करना, ये किसी भी हालतमें नहीं करता । ”

क्रमशः चारिका करत हुए भगवान् जहाँ आपग था, वहाँ पहुँचे ।

+

+

+

+

पोतलिय सुत्त । (वि. पू. ४५८)

१ ऐसा मने सुना—एक समय भगवान् अंगुत्तराप (देश) में अंगुत्तरापेकि आपण नाम निगम (= कस्वे) में विहार करते थे ।

तत्र भगवान् पूर्वाह्न समय (चीवर) पहिनकर पात्र चीवर ले, भिक्षा चारके भि आपणमें प्रविष्ट हुये । आपणमें पिंड-चार करके पिंड पात (= भोजन)-समाप्तका, एक क्षण में दिनके विहारके लिये गये । भीतर जाकर दिनके विहारके लिये एक वृक्षके नीचे बैठे । पोतलिय गृह पति भी निशामन (= पोशाक) प्रावरण (= चादर) पहिने, छाता जुता धारण किये, जवा त्रिहार (= चहल कदमी) के लिये टहलता, जहां वह वनखंड या वहां गया । वनखंडमें घुसकर, जहां भगवान् थे वहां पहुंचा । जाकर भगवान् साथ संमोदन कर (और) एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये पोतलिय गृह पतिको भगवान् यह कहा—

“ गृहपति ! आसन विद्यमान हैं, यदि चाहते हो, तो बसो । ”

ऐसा कहने पर पोतलिय गृह पति—‘ गृहपति (= गृहस्थ, वश्य) ’ कहकर सुप्त भगवान् गोतम पुकारता है—‘ कुपित और असन्तुष्ट हो चुप रहा ।

दूसरी बार भी० । ० ।

तीसरी बार भी० । तत्र पोतलिय गृहपतिने—‘ गृहपति कहका० ’—‘ कुपित और असन्तुष्ट हो भगवान्से कहा—

१ म नि २१४ (यहाँ अट्ठकथामें है)—“ अट्ठही यह जनपद है । मही (१ गंगा) नदीके उत्तरमें जो पानी है, उसने अ दूर उत्तर होनेसे उत्तराप कहा जाता है । किस महीके ‘ उत्तरमें ’ ? महामहीके । । यह जम्बूद्वीप दश सहस्र योजन बड़ा है । इसमें चार हजार योजन प्रदेश जलसे भरा होनेसे, समुद्र कहा जाता है । (और) तीन हजार योजनमें मनुष्य बसते हैं । तीन हजार योजनमें चौरासी हजार कूटे (= चोटियों) से सुशोभित, चारों ओर बहती पांच सौ नदियोंसे विचित्र, पांच सौ योजन ऊँचा हिमवान् (= हिमालय) है । जहाँ पर कि—लम्बाई, चौड़ाई गहराईमें पचास पचास योजन, घेरेमें डेढ़सौ योजन, अनन्ततः दह, कण्ठमुंड-दह, रथकार-दह, छल्ल दह, कुणाल-दह, मंदाकिनी, सिंह-प्रातक (= सिंह प्रपातक) यह सात महासरोवर प्रतिष्ठित हैं । अनंतत-दह, सुदर्शन-कूट, चित्र कूट, काल कूट, गंधमादन-कूट, कैलाश कूट इन पाँच कूटों (= गिरि शिखरों) से विराट है । । इसने चारों ओर सिंह मुख, हस्ति मुख, अश्व-मुख, गो (= वृषभ) मुख—चार मुख हैं । जिनसे चार नदियाँ निकलती हैं । सिंह मुखसे निकली नदीके किनारे सिंह बहुत होते हैं । हस्ति आदि मुखोंसे (निकली नदियोंके किनारे) हस्ती, अश्व और बैल । गन्ना, यमुना, अंबिकवती (= राप्ती), सरयू (= सरयू, घाघरा), मही (= गंडक) यह पाँच नदियाँ हिमवान्से निकलती हैं । इनमें जो यह पाँचवीं मही है, वही यहाँ महीसे अभिप्रेत है । । इस अंगुत्तराप जनपदमें आपण निगममें बास हजार आपणों (= दुकानों) के सुंद विमल थे । इस प्रकार आपणों (= दुकानों) से भरे होनेसे, आपण नाम हो गया । उस निगमके अन्तर्, नदीतीर पर घनी छायागला रमणीय भूमि भगवान् जन-स्वंड था । उपमें भगवान् विहरते थे ।

“हे गौतम ! तुम्ह यह उचित नहीं, तुम्ह यह योग्य नहीं, जो मुझे गृह-पति कहकर पुकारते हो । ”

“गृहपति ! तेरे यही आकार हैं, यही लिङ्ग हैं, यही निमित्त (=लिङ्ग) हैं, जैसे कि गृह पति के । ”

“चूँकि हे गौतम ! मने सारे कमान्त (=तेनी) प्रोद दिये, सारे व्यवहार (=व्यवहार, वाणिज्य) समाप्त कर दिये । हे गौतम ! भर पाय जो धन, धान्य, रात (=चाँदी), जातरूप (=सोता) था, सब पुत्रादि सत्ता दे दिया । सो म (गेती आदिमें) न ताकोई करनेवाला, न कटु कहनेवाला हूँ, सिर्फ़ ग्यान पहिरने भरमे वास्ता रखने वाला (हो), बिहरता हूँ । ”

“गृहपति ! तू जिन प्रकार व्यवहारक उच्छेदना कहता है । आर्योऽन्यनियम व्यवहार-उच्छेद, (हस्त) दूसरी ही प्रकार होता है । ”

“तो भन्ते ! आर्येऽन्यनियम व्यवहार उच्छेद कैसे होता है ? अच्छा ! भन्ते ! भगवान् मुने उस प्रकारका धम उपदेश कर, जसे कि आर्येऽन्यनियम व्यवहार उच्छेद होता है । ”

“तो गृहपति ! सुनो, अच्छी तरह समझें करो, कहता हूँ । ”

“अच्छा भन्ते ! ” पोतलिय गृह पतिने भगवान् को कहा । भगवान् ने कहा—

“गृहपति ! आर्येऽनियम (=आर्ये धम, आर्ये नियम) में यह आठ धम व्यवहार उच्छेद करनेके लिये हैं । कोन से आठ ? (१) अ प्राणातिपात (=अहिंसा) के लिये, प्राणातिपात छोड़ना चाहिये । (२) दिपा लब्धे (=दिनाशन) के लिये, अ दिनाशन (=चोरी, न दिया लेना) छोड़ना चाहिये । (३) सत्य योजनेके लिये, सृष्टावाद छोड़ना चाहिये । (४) अ पिगुण वचन (=न चुगली काना) के लिये, पिगुण वचन छोड़ना चाहिये । (५) अ गृह-लोभ (=निर्लोभ) के लिये गृह लोभ छोड़ना चाहिये । (६) अ निराश्रय के लिये, निन्दा छोड़ना चाहिये । (७) अ कोप-उपपाप (=परतानी) के लिये कोप उपपाप छोड़ना चाहिये । (८) अ अतिमाने के लिये, अतिमान (=अभिमान) को छोड़ना चाहिये । गृहपति ! संक्षिप्ते को, विस्तारसे न विभाजित किये, यह आठ धर्म, आर्येऽन्यनियम व्यवहार-उच्छेद करनेके लिये हैं । ”

“भन्ते ! भगवान् ने जो मुझे विस्तारसे न विभाजित किये, संक्षिप्त, आठ धर्मों कह । अच्छा हो भन्ते ! (यदि) भगवान् अनुकम्पाका (उन्हें) विस्तारसे विभाजित करें । ”

“तो गृहपति ! सुनो, अच्छा तरह मनर्ष करो, कहता हूँ । ”

“अच्छा भन्ते ! ” पोतलिय गृहपतिने भगवान् को उत्तर दिया । भगवान् बोले—

“गृहपति ! ‘अप्राणातिपातक लिप प्राणातिपात छोड़ना चाहिये, यह जो कहा, किंय कारणसे कहा ? गृहपति ! आय आश्रय तथा सोचता है—‘जिन संयोजनोक्त कारण मैं प्राणातिपाती होऊँ, उन्हीं संयोजनोक्त छोड़नेके लिये, उच्छेदके लिये मैं लगा हुआ हूँ, और मैं ही प्राणातिपाती होना । प्राणातिपातक कारण, आत्मा (=अपना चित्त) भी मुझ धिक्कारता

है। प्राणातिपातके कारण, बिज लोग भी जानकर धिक्कारते हैं। प्राणातिपातके कारण, काया छोड़नेपर, मरनेके बाद, दुर्गति भी होनी है। यही संयोजन (=बंधन) है, यही नाश (=दहन) है, जो कि यह प्राणातिपात। प्राणातिपातके कारण जो विवात परिदाह (=दह जलन) और आस्रव (=चित्त दोष) उत्पन्न होते हैं, प्राणातिपातसे विरतको वह विवात परिदाह, आस्रव नही उत्पन्न होते। 'अ प्राणातिपातके लिये, प्राणातिपात छोड़ना चाहिए यह जो कहा, वह इसी कारणसे कहा।

“दिक्षादानके लिये अदिक्षादान छोड़ना चाहिये, यह जो कहा, किम कारणसे कहा? गृहपति! आर्य-भ्रात्रु मेमा मोचता है, जिन संयोजनोंके हेतु मैं अदिक्षादायी (=विना दिक्षा एनेवाला) होता हूँ, उन्हीं संयोजनोंके छोड़नेके लिये, उच्छेद करनेके लिये, मैं लगा हुआ हूँ, और मैं ही अ दिक्षादायी होगया। अ-दिक्षादानके कारण आत्मा भी मुझे धिक्कारता है। अ दिक्षा दानके कारण बिज लोग भी जानकर धिक्कारते हैं। अ दिक्षादानके कारण काया छोड़नेपर, मरनेके बाद दुर्गति भी होनी है। यही संयोजन है, यही नीवरण है, जो कि यह अ दिक्षादान। अ दिक्षा दानके कारण विवात (=पीडा) परिदाह (=जलन) (और) आस्रव उत्पन्न होते हैं। अ दिक्षादान विरतको वह नहीं होते। 'दिक्षादानके लिये अ-दिक्षादान छोड़ना चाहिये' यह जो कहा, वह इसी कारण कहा।

“अ पिशुन घषनके लिये०।

“अ गृध्र-लोभके लिये०।

“अ-निन्दा रोपके लिये०।

“अ क्रोध उपायासके लिये०।

“अन्-अतिमानके लिये०।

“गृहपति यह आठ। सक्षिप्तसे कह, विस्तारसे विभाजित, आर्य विनयम व्यवहार उच्छेद करनेवाले हैं। (किन्तु इनसे) सर्वथा मत्र कुछ व्यवहारका उच्छेद नहीं होता।”

“तो कैसे भन्ते! आर्य विनयम...सर्वथा मत्र कुछ व्यवहार उच्छेद होता है? अच्छा हाँ भन्ते! भगवान् मुझे ऐसे धर्मका उपदेश कर, जैसे कि आर्यविनयम सर्वथा मत्र कुछ व्यवहारका उच्छेद होता है?”

“तो गृहपति! सुनो, अच्छी तरह मनम करो, कहता हूँ।”

“अच्छा भन्ते।” ०।०।

“गृहपति! जगें भूपसे अति दुर्बल कुक्कुर गो घातकरे सूता (=मांस कानेकी पीडा) के पास सड़ा हो। धनुर गो घातक या गो-घातकका अन्तेवासी उमकी मांस रहित लोहमें मनी हड्डी फट दे। तो क्या मानने हो, गृहपति! क्या वह कुक्कुर उम हड्डी को मारकर, भूमकी दुर्बलताको हटा सकता है?”

“नहीं, भन्ते!”

“तो किम हेतु?”

“भन्ते! वह लोह में सुपड़ी मांस-रहित हड्डी है। वह कुक्कुर मजल परशाना = पीड़ाकाही भागी होगा।”

“ ऐसे ही गृहपति ! आर्य श्रावक सोचता है—‘ बहुत दुःख बहुत परेशानीवाले दृष्टी-से भगवान् ने भोगोंको कहा है, इनमें बहुतसी बुराईयाँ हैं । अतः इसको यथार्थसे, अच्छी तरह प्रज्ञासे, देखकर, जो यह अनेकतावाली अनेकमें लगी उपेक्षा है, उसे छोड़, जो यह एकता वाला एकान्तमें लगी (उपेक्षा) है, जिसमें लोकने आमिष (=विष) का उपान्न (=ग्रहण, स्वीकार) सर्वथा ही टूट जाते हैं, उसी उपेक्षाकी भावना करता है ।

“ जैसे गृहपति ! गिद्ध, कौवा या चील्ह माँसने टुकड़ेको लेकर उड़े, उसको गिद्ध भी, कौवा भी, चील्ह भी पीछे उड़ उड़कर नोचें, समोदें । तो क्या मानता है गृहपति ! वह गिद्ध कौवा या चील्ह, यदि शीघ्र ही उस माँसने टुकड़ेको न गेड़ दे, तो क्या वह उसके कारण मरणको या मरणान्त दुःखको पायेगा ? ”

“ ऐसा ही, भन्ते ! ”

“ ऐसे ही, गृहपति ! आर्य-श्रावक सोचता है—भगवान् ने माँसने टुकड़ेकी भाँति बहुत दुःखवाले बहुत परेशानीवाले कामोंको कहा है, इनमें बहुतसी बुराईयाँ हैं । इस प्रकार इसको अच्छी तरह प्रज्ञासे देखकर, जो यह अनेकताकी, अनेकमें लगी उपेक्षा है, उसे छोड़, जो यह एकताकी एकान्तमें लगी उपेक्षा है, जिसमें लोकामिषक उपादान (=ग्रहण) सर्वथा ही उच्छिन्न हो जाते हैं, उसी उपेक्षाकी भावना करता है ।

“ जैसे गृहपति ! पुरष तृणकी उल्का (=मशाल, लुझरी) को ले, हवाके खब पाये । तो क्या मानते हो, गृहपति ! यदि वह पुरष तृण ही उस तृण उल्काको न छोड़ दे, तो (क्या) वह तृण उल्का उसके हथेलीको (न) जला देगी, या बाँहको (न) जला देगी, या इसके अंग प्रत्येगको न जला देगी ? ”

“ ऐसा ही, भन्ते ! ”

“ ऐसे ही, गृहपति ! आर्य श्रावक सोचता है—तृण उल्काकी भाँति बहुत दुःखवाले बहुत परेशानीवाले हैं ॥ १० ॥

“ जैसे कि गृहपति ! धूम रहित, अग्नि (=लौ)-रहित अगारका (=मठ, अग्नि चूर्ण) हो । तब जीवित इच्छुक, मरण अनिच्छुक, सुख इच्छुक, दुःख अनिच्छुक पुरुष आये, उसको दो पञ्चान् पुरुष अनेक प्राहुओंसे पकड़कर अङ्गारकामें डालें ॥ तो क्या मानते हो गृहपति ! क्या वह पुरुष हम प्रकार चिताहीमें शरीर (नहीं) डालेगा ? ”

“ हाँ भन्ते ! ”

“ सो किम हेतु ? ”

“ भन्ते ! उस पुरुषको मालूम है, यदि मैं इन अङ्गारकाओंमें गिरूँगा, तो उसके कारण मरूँगा या मरणात्त दुःख पाऊँगा । ”

“ ऐसेही गृहपति आर्य श्रावक यह सोचता है—अङ्गारका की भाँति दुःख ॥ इममें बहुत बुराईयाँ हैं ॥ १० ॥

“जमे गृह पति । पुरष आरामकी रमणीयता युक्त, वन-रमणीयता-युक्त, मणि रमणीयता-युक्त, पुष्करिणी-रमणीयता-युक्त स्वप्नको देखे । सो जागनेपर कुत्र न दवे । ऐश्वर्य गृहपति । आर्य धारक यह सोचना है—भगवान् ने रत्न समान (=स्वप्नोपम) बहुत दुःख कहा है । १० ।

“जमे वि गृह पति । (किमी) पुरष (के पास) मँगनीके भोग, यान या पुरषके उत्तम मणि कुटल—हो । यह ० उन भगवान् भोगों के साथ बाजारमें जाये । उसको देखकर आदमी कहै—कसा भोग-मपन पुरष है । भोगों लोग ऐसे ही भोगका उपभोग करते हैं । सो उसको मालिक (=स्वामी) ० जहाँ देखें वहाँ कनात लगायें । तो क्या मानने हो, गृहपति । क्या उस पुरुषका दूसरा (भावसमग्रता) युक्त है ?”

“हाँ, भन्ते !”

“सो किम हेतु ?”

“ (क्योकि जेवरोवे) मालिक कनात घेर देते हैं । ” -

“ ऐसेही गृहपति । आर्य धारक ऐसा सोचता है—मँगनीकी चीजें समग्र (=याचितरूपम) ० कहा है । १० ।

“ जैसे गृहपति । आम या निगमसे अ दूर, भारी वन-खण्ड हो । वहाँ फल सम्पन्न = उत्पन्न फल वृक्ष हो, कोई फल भूमिपर न गिरा हो । सब फल इच्छुक, फल गेपक = फल पोषी पुरुष घूमते हुये आये । वह उस वनके भीतर जाकर, उस फल सम्पन्न वृक्षको देखे । उसको यह हो—यह वृक्ष फल सम्पन्न ० है, कोई फल भूमिपर नहीं गिरा है, मैं वृक्षपर जानता हूँ । क्यों न मैं चढ़कर इच्छा-भर खाऊँ, और फाट (=उच्छेद, उत्सर्ग) भर ले चलूँ । तो दूसरा फल इच्छुक, फल गेपकी = फलपोषी, पुरुष घूमता हुआ तेज कुल्हाड़ा लिए उस वन खण्डके भीतर जाकर, उस वृक्षको देखे । उसको ऐसा हो—यह वृक्ष फल सम्पन्न ० है, मैं वृक्षपर चढ़ना नहीं जानता, क्यों न इस वृक्षको जड़से काटकर इच्छा भर खाऊँ, और फाट भर ले चलूँ । वह उस वृक्षको जड़से काटे । तो क्या मानते हो, गृहपति ! वह जो पुरुष पेड़पर पहिने चढ़ा था, यदि जलदीही न उतर आये, तो (क्या) वह गिरता हुआ वृक्ष उसने हाथको (न) तोड़ देगा, परन्तु (न) तोड़ देगा, या दूसरे अङ्गप्रत्यङ्गको (न) तोड़ देगा । वह उसके कारण क्या मरणको (न) प्राप्त होगा, या मरणान्त दुःखको (न प्राप्त होगा) ?

“ हाँ, भन्ते ! ”

“ ऐसे ही गृह-पति ! आर्य धारक सोचता है—वृक्ष फल समान कामोंको ० कहा है । इनमें बहुत सी घुराइया (=आग्नि नव) हैं । इस प्रकार इसको यथार्थत, अच्छी प्रकार, प्रज्ञासे देखकर, जो यह अनेकता-बाला अनेकमें लगी उपेक्षा है, उसे छोड़, जो यह एकताकी, एकतामें लगी उपेक्षा है, निम्नमें लोक-आमिषका उपानान (=ग्रहण) सर्वथाही उचित हो जाता है, उसी अपेक्षाकी भावना काता है ।

“ सो वह गृहपति । आर्य-धारक इसी अनुपम (=अनुसार) उपेक्षा, स्मृतिकी पारिशुद्धि (=रक्षणों शुद्धि करने वाली उपेक्षा) को पाकर, अनेक प्रकारके पूर्व निबन्ध

(=पूर्व जन्मों) को स्मरण करता है,—जैसे कि एक जन्म भी, दो जन्म भी, तीन जन्म भी०^१ इस प्रकार आकार सहित उद्देश (=नाम) सहित, अनेक प्रकारक पूर्व निमासाको स्मरण करता है ।

“सो वह गृह पति । आर्य श्रावक इसी अनुपम उपेक्षा स्मृति पारिशुद्धिको पान्न, दिव्य वि शुद्ध अ-मानुष निव्य चक्षुसे, मस्ते उत्पन्न होते, नीच ऊँच, सुवर्ण-शुवर्ण, सुगत दुर्गत० कर्मानुसार (फलसे) प्राप्त, प्राणियोंको जानता है ।

“सो वह गृह-पति ! आर्य-श्रावक इसी अनुपम उपेक्षा स्मृति पारिशुद्धिको पान्न, इसी जन्ममें शास्त्रों (=चित्त-नेपो) के क्षयसे, अन्-आन्त्र चित्त निमुक्तिसे जानकर, प्राप्तकर, विहरता है । गृहपति ! आर्य-विनयमें इस प्रकार सर्वथा सभी कुछ मत्र व्यवहारका उच्छेद होता है । तो क्या मानता है, गृह पति ! जिस प्रकार आर्य विनयम मन्था सभी कुछ व्यवहार उच्छेद होता है, क्या तू वेसा व्यवहार ममुच्छेद अपनेम देखना है ?”

“भन्ते ! वहाँ मैं और कहा आर्य विनयम व्यवहार-ममुच्छेद । भन्ते ! पहिले अन् आज्ञानीय अन्य तैर्थिक (=पथाई) परिवाजकाको, हम आज्ञानीय (=परिगुद्ध, शुद्ध जातिमा) समझते थे, अज्ञानीय होतोंको आचानीयका भोजन कराते थे, अन् आचानीय होतोंको आज्ञानीय स्थानपर स्थापित करते थे । अज्ञानीय भिक्षुओंको अन् आज्ञानीय समझते थे, आज्ञानीय होतोंको अन् आज्ञानीय भोजन कराते थे, अज्ञानीय होतोंको अन् आज्ञानीय स्थानपर रखते थे । भन्ते ! अब हम अन् आज्ञानीय होते अन्य तैर्थिक परिवाजकोंको अन् आचानीय जानेंगे, ०अन् आचानीय भोजन करावेंगे, ०अन् आज्ञानीय स्थानपर स्थापित करेंगे । भन्ते ! अब हम आचानीय होते भिक्षुओंको आज्ञानीय समझेंगे, ०आज्ञानीय भोजन करावेंगे, ०आचानीय स्थानपर रखेंगे । अहो ! भन्ते ! अगरान्ने सुने श्रमणोम श्रमण ग्रेम पन्ना का निधा, श्रमणो (=माधुओं) मे श्रमण प्रयाद (=श्रमणोंके प्रति प्रमत्ता), ०श्रमण गौरव० । आश्चर्य । भन्ते ! आश्चर्य ! भन्ते ! ० आज्ञासे भगवान् मुय अज्ञलि-यद्ध ग,णागत उपासक प्राप्त करें ।”

सेल-सुत्त (वि पू. ४५८) ।

प्रेमा मेने सुना—एक समय भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महाभिक्षुओं साथ, अंगुत्तराप (दशमं) चारिका करते हुये, जहाँपर आपण नामक निगम (=कम्पा) था, वहाँ पहुँचे ।

केणिय जटिलने सुना—शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य पुत्र भ्रमण गौतम साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु रुक्के साथ, अंगुत्तरापम चारिका करते हुए, आपणमें आये हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याण कीर्ति-शब्द पेला हुआ है ०।०२ । इस प्रकारक जहाँपर दर्शन उत्तम होता है ।

तब केणिय जटिल जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्के साथ समास कर, (कुशल प्रदन पूछ) एक ओर बठ गया । एक ओर बड़े केणिय जटिलको भगवान्के धर्म उपदेदाकर, सम्मर्शन, समावपन, समुत्तेजन, सप्रशसन किया । भगवान्के धर्म उपदेश श्राव्य सदर्शित हो, केणिय जटिलने भगवान्को कहा—

“ आप गौतम भिक्षु सघ सहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करें । ”

प्रेमा कहने पर भगवान्ने केणिय जटिलको कहा—

“ केणिय । भिक्षु सघ बड़ा है, साढ़े बारह सौ भिक्षु हैं, और तुम प्राद्वणामे प्रसन्न (= भ्रष्टालु) हो । ”

दूसरी बार भी केणिय जटिलने भगवान्को कहा—

“ क्या हुआ है गौतम । जो बड़ा भिक्षु सघ है, साढ़े बारहसौ भिक्षु हैं, और प्राद्वणामे प्रसन्न हूँ ? आप गौतम भिक्षु सघ सहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करें । ”

दूसरी बार भी भगवान्ने केणिय जटिलको यही कहा—० ।

०तीसरी बार भी केणिय जटिलने भगवान्को यही कहा—० ।

भगवान्ने मौन रहकर स्वीकार किया ।

तब केणिय जटिल भगवान्की स्वीकृतिमें जान आसानी उठ, जहाँ उसका आश्रम था वहाँ गया । जाकर मित्र-अमात्य, जाति विरादरीवालोंको कहा—

“ आप सब भैर मित्र-अमात्य, जाति विरादरी सुन—मैंने भिक्षु सघ सहित भ्रमण गौतमको कलको भोजनके लिये निमंत्रित किया है, सो आप लोग शरीरसे सेवा करें । ”

“ अच्छा, हो । ” केणिय जटिलको, ०मित्र अमात्य, जाति-विरादरीने कहा । (उनमें) कोई चूल्हा खोदने लगे, कोई लकड़ी फाड़ने लगे, कोई वर्तन धोने लगे, कोई पानीक माल (=मणिक) रखने लगे, कोई आसन बिछाने लगे । केणिय जटिल स्वयं पट मंडप (=मंडप माल) तैयार करने लगा ।

उस समय निघण्टु, कल्प (=केटुभ) —अक्षर प्रभेद सहित तीनों घेद तथा पाचवें इतिहासम पारङ्गत, पदक (=कवि), वैयाकरण, लोकायत (शास्त्र) तथा महापुरुषलक्षण (=सामुद्रिक शास्त्र) में निपुण (=अनन्य), शैल नामक ब्राह्मण आपणम, वास करता था , और तीनों विद्यार्थियों (=माणव) को मंत्र (=पेद) पढ़ाता था । उस समय शल ब्राह्मण कणिय जटिल म अत्यन्त प्रसन्न (=श्रद्धागार) था । । तत्र (वह) तीनों माणवको के साथ जहा विहार (=चहल कदमी) के लिये दल्लता हुआ, जहाँ केणिय जटिलका आश्रम था, वहाँ गया । शैल ब्राह्मणने देखा कि केणिय जटिल जटिलो (=जटा धारी, वाणप्रस्थी शिष्यो) म, कोई चूल्हा खोद रहे हैं०, तत्र केणिय जटिल स्वयं मंडल-भाल तयार कर (रहा है) । देखकर (उसने) केणिय जटिलसे कहा—

“ क्या आप केणियके यहाँ आवाह होगा, विवाह होगा, या महा यन आ पहुँचा है ? क्या बल काय (=सेना) सहित मगध राज श्रेणिक विचमा, कलके भोजनके लिये निमंत्रित किया गया है ? ”

“ नहीं, शैल ! न मेरे यहाँ आवाह होगा, न विवाह होगा, और न बल काय सहित मगध-राज श्रेणिक विचमार कलक भोजनके लिये निमंत्रित है । बल्कि मैं यहाँ मरता हूँ । शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य पुत्र भगव गौतम मारे बाह्यो भिक्षुयाके महा भिक्षु तब रसाय भंगुत्तापम चारिका करते, आपगम आये ह । उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल कर्ति शब्द फैला हुआ है—यह भगवान् अर्हत्, सम्मत्-समुद, विद्या आचरणसपत्र, सुगत, लोकविद्, अनुत्तर (=अनुपम) पुराणे चातुक् पत्रार, देव मनु गोक शास्ता, बुद्ध भगवान् है । यह भिक्षु संन सहिन कल मेरे यहाँ निमंत्रित हुये हैं । ० ।

“ हे केणिय ! (क्या) ‘ बुद्ध ’ कह रहे हो ? ”

“ हे शैल ! (हा) ‘ बुद्ध ’ कह रहा हूँ । ”

“ ० बुद्ध कह रहे हो ? ”

“ ० बुद्ध कह रहा हूँ । ”

“ ० बुद्ध कह रहे हो ? ”

“ ० बुद्ध कह रहा हूँ । ”

तत्र शैल ब्राह्मणको हुआ—‘ बुद्ध ’ ऐसा घोष (=आवाज) भी शोरूम दुर्लभ है । हमारा मंत्रोर्म महापुरुषाने बचीस सङ्ग आण हुए हैं, जिनसे युक्त महापुरुषकी दोहो गतिपा हैं । यदि यह घाम वास काता है, तो चारों छोर तकका राज्यभाला, धार्मिक धम राजा चरुती ‘ राजा (होता) है । यह मागर पणत्त इस पृथिवीको बिना दण्ड शास्त्र, धमसे वित्तय का शासन काता है । और यदि घर छोड़ बेघर हो, प्रव्रजित होता है, (तो) शाक्य आच्छादर रहित अर्हत् सम्मत्-समुद होता है । ’ ‘ हे केणिय ! तो फिर कहा यह आप गौतम अर्हत् सम्मत्-समुद, इस समय विहार करते हैं ? ’

एसा कहने पर केणिय जटिलने दाहिनी बांह पकड़कर, शैल ब्राह्मणको यह कहा—

“ हे शैल ! जहाँ यह शैल वन जाती है । ”

तब शैल तीनमौ माणवकोके साथ जहां भगवान् थे, चहां गया। तब शनू ब्राह्मणे उन माणवकोतो कहा—

“ आपलोग नि शब्द (=अल्प शब्द) हो, पैरके पाद पर रखने आव। गिहास भांति यह भगवान् अंकले बिचरनेवाले, (और) दुर्लभ होते हैं। और जब मैं भ्रमण गौतम माय मयाद कहूँ, तो आपलोग मेरे बीचमें बात न उठावें। आपलोग मेरे (बचन)का मनाति तरु सुप रहें। ”

तब शैल ब्राह्मण जहां भगवान् थे, वहां गया, जाकर भगवान् के साथ संमोदक (कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर शैल ब्राह्मण भगवान् के शरीर महापुरुषोंके उत्तीस लक्षण गोजने लगा। शैल ब्राह्मणने वत्तीस महापुरुष लक्षणामसे तेरा छोट अधिकार भगवान् के शरीरमें देख लिये। दो महापुरुष लक्षणो—मिर्लीसे डकी पुरुष-गुणों, और अति दीर्घ-जिह्वा—के जरैमें सहमें था। तब भगवान् ने इस प्रकारका योगवन प्रश्न किया, जिससे कि शैल ब्राह्मणने भगवान् के कोप आच्छादित वस्ति गुणको देखा। फिर भगवान् जीभ निरालर (उत्तम) दोनो कानाक मोतरो छुआ, सारे ललाट मेंडलको जीमक गंक दिया। तब शैल ब्राह्मणको ऐसा (विचार) हुआ—भ्रमण गौतम अ-परिपूर्ण नहीं, परिपूर्ण वत्तीस महापुरुष लक्षणोंसे युक्त है। लेकिन कह नहीं सकता—युद्ध है, या नहीं। युद्ध=महल्लक ब्राह्मणों आचार्य प्रचार्यको कहते सुना है—कि जो अर्हत् सम्पक् सयुद्ध होते हैं, वह अपने गुण कह जायेपर अपनेको प्रकाशित करते हैं। क्यों न मैं भ्रमण गौतमक समुपयुक्त गाथाओंसे स्तुति करूँ। तब शैल ब्राह्मण भगवान् के सामने उपयुक्त गाथापाठ स्तुति करने लगा—

“ परिपूर्ण-काया सुन्दर रघि (=काति) वाले, सुजान, चार दर्शन।
सुवर्णवर्ण हो भगवान्। सुशुभ-दांत हो, (और) धीर्यवान् ॥ १ ॥
सुजात (= सुन्दर जन्मवाले) नरके जो व्यंजन (=लक्षण) होते हैं।
वह सभी महापुरुष-लक्षण तुम्हारी कायामे (हैं) ॥ २ ॥
प्रसन्न (= निर्मल)-नेत्र, सुमुख, बड़े सीपे, प्रताप-यान्।
(आप) भ्रमण संवके बीचमें आदित्यकी भांति विराजते हो ॥ ३ ॥
कल्याण-दान दे मिश्रु। कचन समान शरीरवाले।
ऐसे उत्तम वर्णवाले तुम्ह भ्रमण भाव (=मिश्रु होने) में क्या (रह्या) है ॥ ४ ॥
तुम तो चारो ओरने राज्यवाले, जम्बूद्वीपके स्वामा।
रथर्यभ, चक्रवर्ती, राजा हो सकते हो ॥ ५ ॥
क्षत्रिय भोज राजा (=माहलिक राजा) तुम्हारे अनुयायी होगे।
हे गौतम। राजाधिराज मनुजेन्द्र हो, राज्य करो ॥ ६ ॥ ”

(भगवान्-) “ शैल। मैं राजा हूँ, अनुपम धर्मराजा।

मैं न पलटनेवाला चक्र धर्मके साथ चला रहा हूँ ॥ ७ ॥ ”

तैलप्राक्षण) “अनुपम धर्म राजा सबुद्ध (अपनेको) कहते हो ?
 हे मौतम । ‘धर्मसे चक्र चला रहा हूँ’ कह रहे हो ॥ ८ ॥
 कौन सा शास्ताका दन्तप (= नाम) श्रावक आपका सेनापति है ?
 कौन इस चलाये धर्म चक्रको अनु चालनकर रहा है ॥ ९ ॥

भगवान्—शैल !) “मेरे द्वारा संचालित चक्र, अनुपम धर्म चक्रको ।
 तथागतका अनुजात (= पीछे उत्पन्न) सारिपुत्र अनुचालितकर रहा है ॥ १० ॥
 ज्ञातव्यको जान लिया, भावनीयकी भावना करनी ।
 परित्याज्यको छोड़ दिया, अतः हे प्राक्षण । मैं बुद्ध हूँ ॥ ११ ॥
 प्राक्षण ! मेरे विषयक सशय हगओ, ओहो ।
 बार बार सबुद्धोंका दशन दुर्लभ है ॥ १२ ॥
 लोकमें जिसका बार बार प्रादुर्भाव दुर्लभ है ।
 वह मे (राग आदि) शल्यका छेदनेवाला अनुपम, सबुद्ध हूँ ॥ १३ ॥
 प्रह्व-भूत, तुलना रहित, मार (=समाधि शत्रु) सेनाका प्रमत्तक ।
 (सुमे) देवकर कौन न सलुष्ट होगा, चाहे वह कृष्ण भूमिजातिक क्या न हो ॥ १४ ॥”

शैल—“जो मुझे चाहता है, (वह मेरे) पीछे आन, जो नहीं चाहना वह जाये ।
 (मे) यहाँ उत्तम प्रजावाल (बुद्ध) के पास प्रमजित होऊँगा ॥ १५ ॥”

शैलक शिष्य) “यदि आपको यह सम्यक् सबुद्धका शासन (= धर्म) रुचता है ।
 (तो) हम भी वर प्रज्ञके पास प्रमजित होंगे ॥ १६ ॥
 यह जितने तीनसौ प्राक्षण हाथ जोड़े हैं ।
 (वह) सभी भगवन् ! तुम्हारे पास ब्रह्मचर्य चरण करंगे ॥ १७ ॥”

भगवान्—शैल !) “(यह) सादृष्टिक अकालिक स्वारवात ब्रह्मचर्य है ।
 जहाँ प्रमाद शून्य सोमनेवालेकी प्रमज्या अमोघ है ॥ १८ ॥”

शैल प्राक्षणने परिपू सहित भगवान्के पास प्रमज्या और उपसपदा पाई ।

तत्र केणिय जटिलने उस शतके गीतनेपर, अपने आधमर्म उत्तम खाद्य भोज्य तय्यार
 करा, भगवान्को काल्पनी सूचना दिलवाई । तत्र भगवान् पूवाङ्क समय पहिनकर पात्र पीवर
 ल, जहाँ केणिय जटिलका आश्रम था, वहाँ गये । जाकर जिले आसनपर भिक्षु-सघके साथ बैठे ।
 तत्र केणिय जटिलने बुद्ध प्रसूत भिक्षु सघको अपने हाथमे, सतर्पित किया, पूर्ण किया । केणिय
 जटिल भगवान्के भोजनकर, पानमे हाथ हटा देनेपर पुरु नीचा आसन ले, एक ओर धै गया ।
 एक ओर बैठ हुये केणिय जटिलको भगवान्ने इन गाथाओसे (दान) अनुमोदित किया—

“यज्ञोम सुख लभि होत्र है, छन्दोर्म सुख (=सुख) नावित्री है ।
 अनुज्योर्म सुख राजा है, नदियोंमें सुख सागर है ॥ (१)

१ दुर्गुणोंसे भरा । २ प्रत्यक्ष फलप्रद । ३ न कालान्तरम फल प्रद । ४ सुन्दर प्रकारसे
 व्याख्या किया गया । ५ सावित्री गायत्री ।

नक्षत्रोंमें सुप्त चन्द्रमा है, तपनेवालोंमें सुप्त आदित्य है ।

इच्छित्तोंमें (सुप्त) पुण्य (है), यजन (= पूजा) करनेमें सुख मंग है ॥ (१)

भगवान् केणिय जटिलको इन गाथाओंसे अनुमोदितकर आसनसे उठकर चल दिने ।

तब आयुमान् शैल परिपद्-सहित पुरान्तमें प्रमाद-रहित, उद्योग-युक्त, आत्म किया हो विहरते अचिरमें ही, जिसके लिये कुल पुत्र घरसे नेघर हो प्रयजित होते हैं, उस अनुम ब्रह्मचर्यके अन्त (= निग्राण) को, इसी जन्ममें राज्य जानकर, साक्षात्कर, प्राप्त, विहार लगे । ' जन्म क्षय हो गया, ब्रह्मचर्य वास पूरा हो गया । करणीय कर लिया गया, और यहाँ कुछ करना नहीं '—यह जान गये । परिपद्-सहित आयुमान् शैल अर्हत् हुए ।

तब आयुमान् चलने शास्ता (= बुद्ध) के पास जाकर, चीवरकों (दक्षिण कथा स्या रत्न) एक कपेपर (रत्न), जिसर भगवान् ये, उधर अञ्जलि जोंडकर, भगवान्को गाथाभाष कदा—

हे चक्षु मान् ! जो मे आजसे आठ दिन पूर्व तुम्हारी शरण आया ।

हे भगवान् ! तुम्हारे शासनमें सातही रातमें मे दात हो गया ॥ (१) ॥

तुम्हीं बुद्ध हो, तुम्हीं शास्ता हो, तुम्हीं मार विजयी मुनि हो ।

तुम (राग आदि) अनुदायोको छिन्नकर, (स्वयं) उत्तीर्ण हो, इस प्रजाको तारते हो ॥ २ ॥

उपधि तुम्हारी हट गई, आसन तुम्हारे विदारित हो गये ।

सिंह समान भय (-सागर) की भीषणतासे रहित, तुम उपादान रहित हो ॥ (३) ॥

यह तीन सौ भिक्षु हाथ जोड़े खड़े हैं ।

हे धीर ! पाद प्रसारित करो, (यह) नाग (= पाप रहित) शास्ताकी वंदना करें ॥ ४ ॥

केणिय जटिल । रोजमछ उपासक । आपणसे श्रावस्ती । (वि पृ ४५८) ।

तब केणिय जटिलको हुआ—म भ्रमण गौतमक लिये क्या किया चर्च । फिर केणिय जटिलको हुआ—‘ जो कि वह ब्राह्मणोंके पूर्वक भ्रमि, भ्रमोंको रगोवाले (= रत्ता), भ्रमोंको प्रयत्न (= वाचन) करनेवाले थे,—जिनके पुराने मन्त्र पन्थों, गौतमों, कथितकों, समीहितकों, आज्ञात्म ब्राह्मण अनुगमन करते हैं, अनु भाषण करते हैं, भाषितको ही अनु भाषण करने हैं, याचको ही अनु वाचा करते हैं,—जैसेकि—अष्टक, वामक, वामेय, विधामित्र, वसदमि, अद्विरा, सारदाज, धमिष्ठ, कश्यप, भृगु । (यह) शतको (भोजनसे) उपरत थे, विकाल—(मध्याह्नोत्तर) भोजनसे विरत थे । यह इस प्रकारक पान (पीनेकी चीज) पीते थे । भ्रमण गौतम भी शतको उपरत = विकाल-भोजनसे विरत हैं । भ्रमण गौतम भी इस प्रकारके पान पी सकते हैं । ’ (यह सोच) बहुतसा पान तय्यार करा, बँहगो (= काज) से उटकाकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । जाकर भगवान्के साथ संमोदन किया (और) एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये केणिय जटिलने भगवान्को कहा—

“ हे भवान् (= आप) ! गौतम यह मेरा पान ग्रहण करें । ”

“ केणिय ! तो भिक्षुओंको ले । ”

भिक्षु आगा पीछा करते ग्रहण नहीं करते थे ।

“ अनुज्ञा देता हूँ भिक्षुओं ! आठ पानकी । आद्य पान, जम्बू पान, योव पान, मोत्र (= पला) पान, मधु पान, सुदिक (= अमूर) पान, सादक (= फाईकी जड़) पान, और फादमक (= फालसा) पान । अनुज्ञा देता हूँ सभी पत्र रसकी एक अनाजके पत्र रसको छोड़ । सभी पत्र रसकी, एक टाकने रसको छोड़ । सभी पुष्प रसकी एक महुनेक पृष्ठा रस छोड़ । अनुज्ञा देता हूँ ऊपरके रसकी ।

तब आपणमें इच्छानुसार विहारकर भगवान् साथ बारहसौ भिक्षुआक भिक्षु संघ-सहित जहाँ कुम्भीनारा था । उधर चारिकाके लिये चर्च दिये । कुम्भीनाराके ‘मछोन सुता—सादे बारहसौ भिक्षुओंके महासंघके साथ भगवान् कुम्भीनारा आ रहे हैं । उन्होंने नियम किया—‘ जो भगवान्की आगशानीको नहीं जाये, उसको पाँव सौ दंड ’ । उस समय रोज नामक मछ आनन्दका मित्र था । भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ कुम्भीनारा था । यहाँ पहुँचे । कुम्भीनाराके मछोने भगवान्का प्रत्युद्गमन (= अगशानी) किया । रोजमछ भी भगवान्का प्रत्युद्गमन कर, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया । जाकर पानद्रो अभिवादाकर, एक ओर खड़ा हो गया, । एक ओर खड़े हुये रोज मछको आयुष्मान् आनन्दन कह—

“ आयुष्म रोन ! यह तेरा (इत्य) बहुत सुन्दर (= उदार) है, जो तूने भगवान्की भगवानी की । ”

“ भन्ते ! आनन्द ! मैंने बुद्ध, धम्म, सधम्म मन्गल नहीं किया, बल्कि भन्ते ! आनन्द ! ज्ञातिये, दण्डके मयसे ही मैंने भगवान्का प्रत्युद्गमन किया । ”

१ महावग्ग ६ । २ कम्पया, जि० गोरखपुर । ३ आनन्दकी संथार जाति ।

तब आयुमान आनन्द अ-सन्तुष्ट हुये—“कैसे रोजमल ऐसा कहता है ?”

आयुमान् आनन्द जहा भगवान् ये कहा गये । भगवान्को अभिमानकर, एक का धैर्य गये । एक ओर बैठे हुये, आयुमान् आनन्दने भगवान्को कहा—

“भन्ते ! रोज मल्ल विभय-सम्पन्न अभिजात = प्रसिद्ध मनुष्य है । इसका मत मनुष्योका इस धर्म विषयमे प्रमाद (= धृष्ट) होना अच्छा है । अच्छा हो, भन्ते ! भाग्य वसा करे, जिसमें रोज मल्ल इस धर्म विनय (= बुद्धधर्म) मे प्रमत्त होये ।” तब भगवान् राजा शत्रु प्रति मित्रता-पूण (= मैत्री) चित्त उत्पन्नकर, आसनेसे उठ विहारमें प्रविष्ट हुये । तब रोज मल्ल भगवान्के सत्र चित्तक स्पर्शसे, छोटे गड्ढे वाली गायकी भाँति, एक विहारमे दूसरा विहार, एक परिणामसे दूसरा परिणाम जानकर मिथुओंको पूछता था—

“भन्ते ! इस वक्त वह भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध कहाँ विहार कर रहे हैं, हम सब भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धका दर्शन करना चाहते हैं ?”

“आबुस, रोज ! यह दर्राजा बन्द विहार है । नि शब्द हो धीरे धीरे वहा जाऊँ । आलिन्दमें प्रवेशकर खाँसकर जजीरको खटपटाओ, भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोल देंगे ।”

तब रोज मल्लने जहा वह बन्द द्वार विहार था, वहा नि शब्द हो धीरे धीरे जाकर आलिन्दमें घुसकर, खाँसकर जजीर खटपटाई । भगवान्ने द्वार खोल दिया । तब रोज मल्ल विहारमे प्रवेशकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये रोजमल्ल भगवान्ने आनुपूर्विक कथा०—“रोजमल्लको उषा आमापर विरज विमल धर्म चतु उत्पन्न हुआ—‘जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सब विनाश होने वाला है ।’ तब रोजने दृढधर्म का भगवान्का कहा—

‘अच्छा हो, भन्ते ! अर्य (= आर्य = मित्र लोग) मेराही शीघ्र, मित्र पाऊँ (= भिक्षा), शयनासन (= आसन), ग्लान प्रत्यय भेषज्य पण्डिकार (= दवा पथ्य) प्राप्त कर, औरोंका नहीं ।”

“रोज तेरी तरह जिन्हाने अपूर्णज्ञान और अपूर्ण-दर्शनसे धर्म देखा है, उनको एका ही होता है—‘क्या ही अच्छा हो, अथवा मेरा ही० ग्रहण कर, औरोंका नहीं ।”

तब भगवान् कुपीनारामे इच्छानुसार विहार कर०, जहाँ आतुमा थी, वहा चारिण लिये चल दिये । उस समय आतुमामे बुद्धापेमें प्रजित्त हुआ, अत पूरे हजाम (= नहाने) एक (= मित्र) निगम करता था । उसके दो पुत्र थे, (जो) अपनी पढितार्थ और धर्म सुन्दर, प्रतिभाशाली, दक्ष, शिल्पमे परिशुद्ध थे । बुद्ध-प्रजित्त (= बुद्धापेमें प्रजित्त) सुना कि, भगवान् आतुमा था रहे हैं । तब उस बुद्ध-प्रजित्तने उन दोनों पुत्रोंको कहा—

“तातो ! भगवान् आतुमामे आरहे हैं । तातो ! हजामतका मामान लेकर नाला आवापकके साथ घर घरमें फेरा लगाओ, (और) होम, तेल, तड़ुल और खाद्य (पदार्थ) संपद करो । आनेपर भगवान्को यवागृ (= सिक्की) दान देंगे ।”

"अच्छा तात !" वृद्ध प्रमजितको यह, पुत्र हजामतका सामान ले० होन, तेल, तड़ुल, साब संप्रद करते घूमन लगे । उन लड़कोंको सुन्दर, प्रतिभा संपन्न देवकर, जिाको (क्षोर) न कराना था, यह भी करते थे, और अधिक देते थे । तब उन लड़कोंने घुसत सा लोन भी, तेल भी, तड़ुल भी, साब भी बंभह किया । भगवान् कमल धारिका करते, जहाँ आनुमा थी, वहाँ पहुँचे । वहा आनुमाम भगवान् शुभागासम विहार करते थे । तब वह बुद्धा प्रमजित उम रातके बीत जानेपर, घुसत सा यागू तय्यार करा, भगवान्के पास ले गया— 'भते ! भगवान् मेरी पिचटो स्वीकार करें' । भगवान्ने उम वृद्ध-प्रमजितसे पूछा— "कहाँने मिनु ! यह खिचटो दे ? "

उस वृद्ध प्रमजितने भगवान्को (सत्र) बात फन दी । भगवान्ने धिक्कारा ।
"सोघ पुरण (=नालायक) । (यह तेरा कहना) अनुचित=अनुलोम=प्रतिरूप, अमग कर्तव्यके विरुद्ध, अविहित (=अकम्पिय) =अकरणीय है । बने तू सोघ पुरण । अविहित (चीन) के (जमा करने के लिये) कहाँ ? "

भिक्षुओंको आसन्नित किया—
"मिनुओ ! भिक्षुको निषिद्ध (=अकम्पिय) के लिये आग (=समापन) नहीं देनी चाहिये । जो आना दे, उमको 'दुष्ट' की आपत्ति, और भिक्षुओ ! सूतपूर्ण हजामतको हजामतका सामान न ग्रहण करना चाहिये । जो ग्रहण करे, उमे 'दुष्ट'की आपत्ति । "

तब भगवान् आनुमामें ह्वागुमार शिदारक, जिधर श्रायस्ती थी, उधर धारिकाके लिये चल गये । प्रमग धारिका करते, जहाँ श्रायस्ती थी, वहाँ पहुँचे । वहा श्रायस्तीमें भगवान् अनार-पडकक आराम जेनयामे विहार करने थे । उम समय श्रायस्तीमें घुसत सा यास पड था । मिनुओ भगवान्को यह बात कही ।

"अनुचा देता हूँ, सत्र याच फलोके लिये । "
उम समय संपके धीनको व्यक्तित्व (=पौद्गलिक) येनमें रोपने थे, पौद्गलिक धीनको सपने लेम रोपते थे । भगवान्को यह बात कही—

(भगवान्ने कहा—) "संपक बीजको यदि पौद्गलिक लेतम रोपा जाय, तो भाग दकर परिभोग करना चाहिये । पौद्गलिक बीजको यदि सपने येतम बोया जाये, तो भाग दकर परिभोग करना चाहिये । "

"जो मैंने भिक्षुओ ! 'यह नहीं विहित है' (कहकर) निषिद्ध कहा किया, यदि यह निषिद्ध (=अकम्पिय=हम) व अनुलोम हो, और विहित (=कम्पिय=दुलाल) का विरोधी, (तो) यह तुम्हे हला नहीं है । भिक्षुओ ! जिसे मैंने 'यह विहित नहीं है' (कहा) निषिद्ध नहीं किया, यदि यह कम्पियने अनुलोम है, और अकम्पियका विरोधी, (तो) यह तुम्हें कम्पिय है । भिक्षुओ ! जिसे मैंने 'यह कम्पिय है' (कहा) अनुमा नहीं है, यदि यह अकम्पियके अनुलोम (=अविरोधी) है, और कम्पियका विरोधी, तो यह तुम्हे कम्पिय नहीं है । भिक्षुओ ! जिसे मैंने 'यह कम्पिय है' (कहा) अनुमा नहीं है, यदि यह कम्पियके अनुलोम है, और कम्पियका विरोधी, तो यह तुम्हें कम्पिय है । "

१ (अदृश्यता) "दमर्ग आग दकर । यह जम्बुद्वीप (=भारत) में पुराना खाज (=पोराण-वाग्नि) है । इसलिये दक्ष भागम एक भाग भूमिने मालिकाको देना चाहिये ।

चल-हृत्थिपदोपम-सुत्त (वि. पृ. ४५८) ।

१ ऐमा १ मो सुगा—एक समय भगवान् श्रावस्ती अनाथ पिंडकने आराम नेतवने विहार करते थे ।

उस समय जाणुस्सोणि (= जानुधोणि) ब्राह्मण सर्वदेवत घोड़ियोक रथपर सवार हो, मध्याह्नको श्रावस्तीक बाहर जा रहा था । जानुधोणि ब्राह्मणने पिण्डोतिर परिव्राजकको दूसरी गते देखा । देखकर पिण्डोतिक परिव्राजकसे यह कहा—

“ हन्त ! वात्स्यायन (= वज्ज्यायन) ! आप मध्याह्नमें कहाने आ रहे हैं ? ”

“ भो ! मैं भ्रमण गौतमके पाससे आ रहा हूँ । ”

“ तो आप वात्स्यायन भ्रमण गौतमकी प्रज्ञा, पाण्डित्यको क्या समझते हैं ? पण्डित मानते हैं ? ”

“ मैं क्या हूँ, जो भ्रमण गौतमका प्रश्न-पाण्डित्य जानूँगा ? ”

“ आप वात्स्यायन उदार (= बड़ी) प्रशंसा द्वारा भ्रमण गौतमकी प्रशंसा कर रहे हैं ? ”

“ मैं क्या हूँ, और मैं क्या भ्रमण गौतमको प्रशंसा करूँगा ? प्रशस्त प्रशस्न (हो) है आप गौतम, दूर अनुप्योष श्रेष्ठ हैं । ”

आप वात्स्यायन त्रिय कारणसे भ्रमण गौतमके विषयमें इतने अभिप्रमत्त हैं ?

“(जमे) कोट चतुर नाग धनिक (= हाथीके उमलका शास्त्री) नाग-बामे प्रवेश करे । यह वहाँ गड़े भारी (ग्रे चोट्टे) हाथीके घेर (= हस्ति पट)को देते । उसको विश्वास । जाय—भरे, घटा भारी नाग है । इसी प्रकार भो ! जब मेने भ्रमण गौतमके बार पद देखे, तो विश्वास होगया—कि (वह) भगवान् सम्यक्-संयुद्ध हैं, भगवान्का धर्म स्वाख्यात है, भगवान्का श्रावक संघ सुप्रतिपन्न (= सुन्दर प्रकारसे रास्तेपर लगा) है । कौनसे चार ? मैं देखता हूँ, बालकी गाल उतारनेवाले, दूसरोंसे वाद-विवाद किये हुये, निपुण, कोई कोई क्षत्रिय पंडित, मार्गे प्रज्ञामें स्थित (तत्त्व) से, दृष्टिगत (= धारणामें स्थित तत्त्व) को खड़ा खड़ी करते चलते हैं— सुनते हैं—भ्रमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें आयेगा । वह प्रश्न तत्पार करते हैं—‘ इस प्रश्नको हम भ्रमण गौतमके पास जाकर पूछेंगे । ऐसा हमारे पूछनेपर, यदि वह ऐसा उत्तर देगा, तो हम इस प्रकार वाद (= शास्त्रार्थ) रोपेंगे । ’ वह सुनते हैं—भ्रमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें आगया । वह जहाँ भ्रमण गौतम होता है, वहाँ जाते हैं । उनको भ्रमण गौतम धार्मिक उपदेश कहकर दशाता है, समादपन, = समुत्तेजन, संप्रदासा करता है । वह भ्रमण गौतमसे धार्मिक उपदेश द्वारा संदर्शित, समादपित, समुत्तेजित, सप्रशमित हो, भ्रमण गौतमसे प्रश्न भी नहीं पूछते, उसके (साथ) वाद कहाँसे रोपेंगे ? बल्कि और भी भ्रमण गौतमसे ही श्रावक (= शिष्य) हो जाते हैं । भो ! जब मैंने भ्रमण गौतममें यह प्रथम पद देखा, तब मुझे विश्वास हो गया—भगवान् सम्यक् संयुद्ध हैं ।

१ अ नि अ क २ ४ ४—“ चौहर्वी (वषा) भगवान्ने जेतवनम विताई । २ अ नि १ ३ ७ ।

“और फिर भी ! मैं देखता हूँ, यहाँ कोई कोई बालकी बाल उतारने वाले, वृषगंसे बाल विवादमें संकर, निपुण ब्राह्मण पण्डित० । ०मेने श्रमण गौतम म यह वृषस पद देसा ।

“ ०गृहपति (= वेद्य) पण्डित० । ० यह तीसरा पद० ।

“ ०श्रमण (= प्रव्रजित) पण्डित० । वह श्रमण गौतमके धार्मिक उपदेशद्वारा ०समुत्तेजित संप्रसादित हो, श्रमण गौतमके प्रथम भी नहीं पूजते, उसके (साथ) बाद कहाँसे रोपेंगे ? बलिक और भी श्रमण गौतमसे घरमे बेचर(को) प्रश्रयके लिये माना मांगते हैं । उनको श्रमण गौतम प्रव्रजित करता है, उपसम्पन्न करता है । वह वहाँ प्रव्रजित हो, अनेक पदान्तसेवी, प्रसाद रहित, तत्पर, आत्म संयमी हो गिरह करने, अचिर ही म, जिसके लिये कुल-पुत्र घरमे बेचर हो, प्रव्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचय करने इसी जन्ममें स्वयं जान कर, माक्षात्कर, प्राप्तकर, गिरहते हैं । वह ऐसा कहते हैं—“मनको भी । नाश किया, मनको भी । प्रनाश किया । हम पहिले अ श्रमण होत हुये भी ‘हम श्रमण हैं’ श्राफा करते थे, अ ब्राह्मण होते हुये भी ‘हम ब्राह्मण हैं’ दावा करते थे । अब यहव होते हुये भी ‘हम यहव हैं’ दावा करते थे । अब हम श्रमण हैं, अब हम ब्राह्मण हैं, अब हम यहव हैं ।” श्रमण गौतममें जब हम चौथे पदको देखा, तब मुझे विश्वास हो गया—भगवान् सम्यक् समुद्ध हैं० । भी । मने जब इन चार पदोंको श्रमण गौतमम देखा, तब मुने विश्वास हो गया० ।”

ऐसा कहते पर जानुश्रोणि ब्राह्मणने सर्व-श्रेष्ठ धाडीने राखे उत्तरकर, एक वचनपर उत्तरा संग (= चार) करने, जिधर भगवान् थे उधर अङ्गलि जोड़कर, तीनों तर यह उद्दान कह—“नमस्कार है, उस भगवान् अहव सम्यक् समुद्धको, ” नमस्कार है० । । “नमस्कार है० । ” क्या म कभी किसी समय उन गौतमके साथ मिल सकूँगा ? क्या कभी कोई क्या-मेलाप हो सकेगा ?

तब जानु श्रोणि ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान् साथ ०समोदनकर (कुशलप्रश्न पूछ) एक ओर बठ गया । एक ओर भू हुये जानु श्रोणि ब्राह्मण ने, जो कुछ पितृव्यतिक परिव्राजकके साथ क्या-मेलाप हुआ था, सब भगवान्को कह दिया । ऐसा कहनेपर भगवान्ने जानु श्रोणि ब्राह्मणको कहा—

“ब्राह्मण ! इतने (ही) विस्तारमे हस्ति पद उपमा परिपूर्ण नहीं होती । ब्राह्मण ! जिस प्रकारके विस्तारसे हस्ति पद उपमा परिपूर्ण होती है, उसे सुनो और मनम (धारण) करो ।”

“अच्छा भी ।” कह जानु श्रोणि ब्राह्मणने भगवान्को उन्ना दिया । भगवान्ने कहा—

“जैसे ब्राह्मण नाग बनिम नाग वनम प्रवेश करे । वहाँ पर नाग वनमें वह चड़े भारी० हस्ति पदको देखे । जो चतुर नाग-बनिम होता है वह विश्वास नहीं करता—‘अर ! यही भारी नाग है’ । किसलिये ? ब्राह्मण । नाग वनमें रामकी (= बँववा) नामकी हथिनिया भी महा पंगाली होती है, उनका वह पैर ही सकता है । उसके पीछे चरम हुए यह नाग वनम चड़े भारी (ग्ये गड़े) हस्ति पद चार ऊँच डीलको देखना है । जो चतुर नाग-

१ ‘नमो तस्य भगवतो अरहतो मग्गा सम्युद्धस्स’ ।

“ नहीं, हे गौतम ! क्षत्रिय भी प्राण हिसा-विरत० सुगति स्वर्ग लोकमें उतरता सकता है, ब्राह्मण भी०, वैश्य भी०, शूद्र भी०, सभी चारों वर्ण० । ”

“ आश्वलाय ! ब्राह्मणोंको क्या बल० ? । ० ”

“ तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! क्या ब्राह्मण ही वर-रहित द्वेप-रहित मै-चित्तकी भावनाकर सकता है, क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं, शूद्र नहीं ? ”

“ नहीं, हे गौतम ! क्षत्रिय भी इस स्थानमें० भावना कर सकता है०।०। सभी चारों भावनाकर सकते हैं । ”

“ यहाँ आश्वलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल० ? ” ०।

“ तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! क्या ब्राह्मण ही मंगल (= मन्त्रित) स्नान-लेकर नदीको जा, मेल धो सकता है, क्षत्रिय नहीं० ? ”

“ नहीं, हे गौतम ! क्षत्रिय भी मंगल स्नान-चूर्ण ले, नदी जा मेल धा सकता है, सभी चारों वर्ण० । ”

“ यहाँ आश्वलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल० ? ” ०

“ तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! (यदि) यहाँ मृदां भिषिक्त क्षत्रिय राजा, गल जातिके मौ पुरुष इकट्ठे करे (और उन्हें कहे)—आव आप सध, जो कि क्षत्रिय कुलसे, ब्राह्मण कुलसे, और राजन्य (= राजमंतान) कुलसे उत्पन्न हैं, और शाल (= मातृ) का या सरल (वृक्ष) की या चन्दन की या पद्म (काष्ठ) की उत्तरारणी लेकर आग बनाने, तेज प्रादुर्भूत करें । (और) आप भी आवें जो कि चण्डालकुलसे, निपादकुलसे बसोर (= वसु)—कुलसे रथकार-कुलसे, पुष्कमकुलसे उत्पन्न हुये हैं, और कुत्तेके पीनेकी, सूअरके पानेकी फट्टीकी, धोबीकी कट्टीकी, या रेंडकी लकड़ीकी उत्तरारणी लेकर, आग बनावें, तब प्रादुर्भूत करें। तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! जो वह क्षत्रिय ब्राह्मण-वैश्य-शूद्रकुलसे उत्पन्न-द्वारा शाल सरल-चन्दन-पद्मकी उत्तरारणीको लेकर, अग्नि उत्पन्नकी गई है, तब प्रादुर्भूत किया गया, क्या वही अर्चिमान् (= लौबाला), वर्णवान् प्रभास्वर अग्नि होगा ! उसी आगसे अग्निका काम लिया जा सकता है, और जो वह चाटाल निपाद बसोर रथकार पुष्क-कुलोत्पन्नों द्वारा श्वपान-कट्टीकी शूकर-पान-कट्टीकी, रेंड-काष्ठकी उत्तरारणीको लेकर उत्पन्न आग है, प्रादुर्भूत तेज (हे) वह अर्चिमान् वर्णवान् प्रभास्वर न होगा ? उस आगसे अग्निका काम नहीं लिया जा सकेगा ? ”

“ नहीं, हे गौतम ! जो वह क्षत्रिय० कुलोत्पन्न द्वारा० अग्नि बनाई गई है० वह भी अर्चिमान० अग्नि होगी, उस आगसे भी अग्निका काम लिया जा सकता है, और जो वह चाटाल० कुलोत्पन्न द्वारा० अग्नि बनाई गई है० वह भी अर्चिमान्० अग्नि होगी । सभी आगसे अग्निका काम लिया जा सकता है । ”

“ यहाँ आश्वलायन ! ब्राह्मणोंका क्या बल० ? ” ०।

“ तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! यदि क्षत्रिय-कुमार ब्राह्मण-कन्याक साथ संगत कर । उनके सहवाससे पुत्र उत्पन्न हो । जो वह क्षत्रिय-कुमार द्वारा ब्राह्मण कन्याम पुत्र उत्पन्न

ना है, क्या वह माताके समान और पिताके समान, 'क्षत्रिय (है)', 'ब्राह्मण (है)' कहा जाना चाहिये ? " "हे गौतम ! कहा जाना चाहिये । "

"आश्वलायन ! यदि ब्राह्मण-कुमार क्षत्रिय-कन्याके साथ संवास करे 'ब्राह्मण (है)' कहा जाना चाहिये ? " " 'ब्राह्मण (है)' कहा जाना चाहिये । "

"आश्वलायन ! यहां घोड़ीको गद्देसे जोड़ा खिलायें, उनके जोड़से विशोर (= बड़ा) उत्पन्न हो । क्या वह माता० पिताके समान, 'घोड़ा है' 'गन्हा है' कहा जाना चाहिये ? "

" हे गौतम ! वह अश्वतर (= खर) होता है ! यहा भेद देखता हूँ । उन स्रोमं कुछ भेद नहीं देखता । "

"आश्वलायन ! यहा दो माणवक जमुये भाई हो । एक अध्ययन करनेवाला, और उपनीत (= उपनयन द्वारा गुरुके पास प्राप्त) है, दूसरा अन्न-अध्यायक और अन्न उपनीत है । ब्राह्म, यज्ञ या पाहुनाई (= पाहुने)में, ब्राह्मण किसको प्रथम भोजन करावेंगे ? "

" हे गौतम ! जो वह माणवक अध्यायक और उपनीत है उसीको० प्रथम भोजन करावेंगे । अन्न अध्यायक अन्न उपनीतको देनेसे क्या महाफल होगा ? "

" तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! यहा दो माणवक जमुये भाई हो । एक अध्यायक उपनीत, (किंतु) दु शील (= दुराचारी) पाप धर्म (= पापी) हो, दूसरा अन्न अध्यायक अन्न उपनीत, (किंतु) शीलवान् कल्याण धर्म । इनमें किसको ब्राह्मण साध्य या यन्न या पाहुनाईमें प्रथम भोजन करावेंगे ? "

" हे गौतम ! जो वह माणवक अन्न अध्यायक, अन्न उपनीत, (किंतु) शीलवान् कल्याण धर्म है, उसीको ब्राह्मण० प्रथम भोजन करावेंगे । दु शील = पाप धर्मको दान देनेसे क्या महा फल होगा ? "

" आश्वलायन ! पहिले तू जातिपर पहुँचा, जातिपर जाकर संश्रो पर पहुँचा, मन्त्रोंपर जाकर अब तू चातुर्वर्णी शुद्धिपर आगया, जिसका कि मैं उपदेश करता हूँ । "

ऐसा कहनेपर आश्वलायन माणवक चुप होगया, मूक हो गया, अचोमुख्य विनित्त, निःप्रतिम हो बैठा ।

तब भगवान्ने आश्वलायन माणवकको चुप मूक० निःप्रतिम बैठे देख कहा—

" पूर्वकालमें आश्वलायन ! जंगलमें, पर्णकुटियोमें वास करते हुये सात ब्राह्मण ऋषियोंको, इस प्रकारकी पाप दृष्टि (= दुरी धारणा) उत्पन्न हुई—ब्राह्मणही श्रेष्ठ यज्ञ है० । आश्वलायन ! तब अमित देवल ऋषिने सना, ०मात ब्राह्मण ऋषियों को इस प्रजारकी पाप दृष्टि उत्पन्न हुई है० । तब आश्वलायन ! असित देवल ऋषि सिर दाढी मुंडा मंजीरके रंगरत्न (= छाल) धुम्सा पहिन, खड़ाऊँपर चढ़, सोने चाँदीका दंड धारणकर, गालों ब्राह्मण ऋषियोंको कुंगीके आंगनमें प्रादुर्भूत हुये। तब आश्वलायन ! अमित देवल ऋषि साता मात्स्य ऋषियोंके कुंगीके आंगनमें रहलते हुये कहने लगे— " १ ! आप ब्राह्मण ऋषि क्या

“नहीं, हे गौतम ! क्षत्रिय भी प्राण हिसा-विरत० सुगति स्वर्ग लोकें तक प्राप्त करता है, ब्राह्मण भी०, वैश्य भी०, शूद्र भी०, सभी चारों वर्ण० ।”

“आश्वलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल० ? ।”

“तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! क्या ब्राह्मण ही वर-रहित द्वय-रहित न-चित्तकी भावनाकर सकता है, क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं, शूद्र नहीं ?”

“नहीं, हे गौतम ! क्षत्रिय भी इस स्थानमें० भावना कर सकता है०।०। समाचार भावनाकर सकते हैं ।

“यहाँ आश्वलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल० ?” ०।

“तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! क्या ब्राह्मण ही मंगल (=स्वस्ति) स्नान-पूजन कर नहीं जा, मेल धो सकता है, क्षत्रिय नहीं० ?”

“नहीं, हे गौतम ! क्षत्रिय भी मंगल स्नान-चूर्ण ले, नहीं जा मेल धो सकता है, सभी चारों वर्ण० ।”

“यहाँ आश्वलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल० ?” ०

“तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! (यदि) यहाँ मूढा भिषिक क्षत्रिय राजा, गण जातिके सौ पुरुष इकट्ठे कहे (और उन्हे कहे)—आवें आप सब, जो कि क्षत्रिय कुलसे, ब्राह्मण कुलसे, और राजन्म (=राजसत्ता) कुलसे उत्पन्न हैं, और शाल (=साव) का सरल (वृक्ष) की या चन्दन की या पत्र (काष्ठ) की उत्तराणी लेकर आग बनाएँ, तेज प्रादुर्भाव कर । (और) आप भी आवें, जो कि चण्डालकुलसे, निषादकुलसे बसोर (=वेणु) कुलसे रथकार-कुलसे, पुष्कसकुलसे उत्पन्न हुये हैं, और कुत्ते के पीनेकी, सूअरके पीने की, कटरीकी, धोषीकी कटरीकी, या रडकी एकट्टीकी उत्तराणी लेकर, आग बनाएँ, त प्रादुर्भाव करें। तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! जो वह क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य शूद्रकुलों उत्पन्नो-द्वारा शाल सरल-चन्दन-पत्रकी उत्तराणीको लेकर, अग्नि उत्पन्नकी गई है, त प्रादुर्भाव किया गया, क्या वही अर्चिमान् (=लोवाला), वर्णवान् प्रभास्वर अग्नि होगी। उसी आगसे अग्निका काम लिया जा सकता है, और जो वह चण्डाल निषाद बसोर रथकार पुष्कस-कुलोत्पन्नो द्वारा अपान-कटरीकी शूकर-पान-कटरीकी, रड-काष्ठकी उत्तराणीको लेकर उत्पन्न आग है, प्रादुर्भाव तेज (है) वह अर्चिमान् वर्णवान् प्रभास्वर न होगा ? उस आगसे अग्निका काम नहीं लिया जा सकेगा ?”

“नहीं, हे गौतम ! जो वह क्षत्रिय० कुलोत्पन्न द्वारा० अग्नि बनाई गई है० वह भी अर्चिमान्० अग्नि होगी, उस आगसे भी अग्निका काम लिया जा सकता है, और जो वह चण्डाल० कुलोत्पन्न द्वारा० अग्नि बनाई गई है० वह भी अर्चिमान्० अग्नि होगी । समाचार आगसे अग्निका काम लिया जा सकता है ।”

“यहाँ आश्वलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल० ?” ०।

“तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! यदि क्षत्रिय-कुमार ब्राह्मण-कन्याके साथ संग्रह कर । उनके सहवाससे पुत्र उत्पन्न हो । जो वह क्षत्रिय-कुमार द्वारा ब्राह्मण कन्याम पुत्र उत्पन्न

आ है, क्या वह माताके समान और पिताके समान, 'क्षत्रिय (है)', 'ब्राह्मण (है)' कहा जाना चाहिये ? " "हे गौतम ! कहा जाना चाहिये ।"

"आश्वलायन ! यदि ब्राह्मण-कुमार क्षत्रिय-कन्याके साथ संवास करे 'ब्राह्मण है', कहा जाना चाहिये ? " " 'ब्राह्मण (है)' कहा जाना चाहिये ।"

"आश्वलायन ! यहाँ घोड़ीको गर्दसे जोड़ा खिगायें, उनके जोड़से किशोर (=उत्तर) उत्पन्न हो । क्या वह माता० पिताके समान, 'घोड़ा है', 'गर्द है', कहा जाना चाहिये ? "

"हे गौतम ! वह अश्वतर (=वधर) होता है । यहा भेद देखता हूँ । उन सूतोंमें कुछ भेद नहीं देखता ।"

"आश्वलायन ! यहा दो माणवक जमुये भाई हो । एक अध्ययन करनेवाला, और उपनीत (=उपनयन द्वारा शुरूके पास प्राप्त) है, दूसरा अन् अध्ययक और अन् उपनीत है । श्राद्ध, यज्ञ या पाहुनाई (=पाहुणे) में, ब्राह्मण किसको प्रथम भोजन करावेंगे ? "

"हे गौतम ! जो वह माणवक अध्ययक और उपनीत है, उसीको० प्रथम भोजन करावेंगे । अन् अध्ययक अन्-उपनीतको देनेसे क्या महाफल होगा ?"

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! यहा दो माणवक जमुये भाई हो । एक अध्ययक उपनीत, (किंतु) दु शील (=दुराचारी) पाप धर्म (=पापी) हो ; दूसरा अन्-अध्ययक अन् उपनीत, (किंतु) शीलवान् कल्याण धर्म । इनमें किसको ब्राह्मण साध्य था या पाहुनाईमें प्रथम भोजन करावेंगे ?"

"हे गौतम ! जो वह माणवक अन् अध्ययक, अन् उपनीत, (किंतु) शीलवान् कल्याण धर्म है, उसीको ब्राह्मण० प्रथम भोजन करावेंगे । दु शील=पाप धर्मको दान देनेसे क्या महा फल होगा ?"

"आश्वलायन ! पहिले तू जातिपर पहुँचा, जातिपर जाकर मंत्रों पर पहुँचा, मंत्रोंपर जाकर अब तू चातुर्वर्णी शुद्धिपर आगया, जिसका कि मैं उपदेश काता हूँ ।"

येवा कहनेपर आश्वलायन माणवक चुप होगया, मूक हो गया, अधोमुख चिन्तित, निःप्रतिभ हो बैठा ।

तत्र भगवान्ने आश्वलायन माणवकको चुप मूक० निःप्रतिभ बटे देख कहा—

"पूर्वकालमें आश्वलायन ! जंगलमें, पर्णकुटियोंमें घास करते हुये मात ब्राह्मण-ऋषियोंको, इस प्रकारकी पाप दृष्टि (=दुरी धारणा) उत्पन्न हुई—ब्राह्मणही श्रेष्ठ वण है० । आश्वलायन ! तब अमित दैवल ऋषिने तना, ०सात ब्राह्मण ऋषियों को इस प्रकारकी पाप दृष्टि उत्पन्न हुई है० । तब आश्वलायन ! अमित दैवल ऋषि मिर-गाढी सुंदा मंगीष्क रगरा (=छाल) धुप्पा पहिन, म्बडार्कपर चढ़, सोने चांदीका दंड धारणकर, माता ब्राह्मण ऋषियोंको कुंजे आंगनमें प्रादुर्भूत हुया तब आश्वलायन ! अमित दैवल ऋषि माता ब्राह्मण ऋषियोंके कुंजे आंगनमें टपलते हुये काने ल्यो—“है ! आप ब्राह्मण ऋषि क्या

चले गये ? है ! आप ब्राह्मण-ऋषि कहा चले गये ?" तब आश्वलायन । उन सातों ऋषि-ऋषियोंको हुआ—'कौन है यह गँवार लडकेकी तरह सातों ब्राह्मण ऋषियोंके हुए आँगनमें टहलते ऐसे कह रहा है—हैं । आप० । अच्छा तो इसे शाप देव ।' तब आश्वलायन ! सात ब्राह्मण-ऋषियोंने असित देवल ऋषिको शाप दिया—'शूद्र ! (=वृषल) मनुष्य जा ।' जेमे जेसे आश्वलायन । सात ब्राह्मण ऋषि असित देवल ऋषिको शाप देते थे, वसहा के देवल ऋषि अधिक सुन्दर, अधिक दर्शनीय=अधिक प्रासादिक होते जा रह ५। तब आश्वलायन । सातों ब्राह्मण ऋषियोंको हुआ—'हमारा तप व्यर्थ है, ब्रह्मचर्य निष्फल है । हम पहिले जिनको शाप देते—'वृषल ! मनुष्य होजा', मनुष्यही होता था । इससे हम जेने जेसे शाप देते हैं, वसे तेसे यह अभिरूप-तर, दर्शनीय तर, प्रासादिक-तर होता जा रहा है ।' (देवलने कहा)—'आप लोगों का तप व्यर्थ नहीं, ब्रह्मचर्य निष्फल रहा । आप लोगोंका मन जो मेरे प्रति दूषित हो गया है, उसे छोड़ दें ।' (उन्होंने कहा)—'ज मनोपदोस (=मानसिक दुर्भाव) है, उसे हम छोड़ते हैं, आप कौन हैं ?' 'आप लोगोंने असित देवल ऋषिको सुना है ?' 'हाँ, ओ !' 'वही मैं हूँ ।'

"तब आश्वलायन ! सातों ब्राह्मण ऋषि, असित देवल ऋषिको अभिवादन करते लिये पास गये । असित देवल ऋषिने कहा—'मैंने सुना कि 'अरण्यके भीतर पर्णकुर्चियोंमें पास करते, सात ऋषियोंको इस प्रकारको उत्पन्न हुई है—ब्राह्मणही श्रेष्ठ वर्ण है० ।' "हाँ ओ !" "जानते हैं आप, कि जननी=माता ब्राह्मणहीके पास गई, अ ब्राह्मणके पास नहीं ?" "नहीं ।" "जानते हैं आप, कि जननी=माताकी माता सात पीढ़ी तक मातासह युगल (=नानी) ब्राह्मणहीके पास गई, अ ब्राह्मणके पास नहीं ?" "नहीं ओ ।" "जानते हैं आप कि जनिता=पिता० पितामह-युगल (=दादा) सातवीं पीढ़ी तक ब्राह्मणहीके पास गये, अ ब्राह्मणकीके पास नहीं ?" "नहीं ओ ।" "जानते हैं आप, गर्भ कैसे ठहरता है ?" "हाँ जानते हैं ओ । जब माता-पिता एकत्र होते हैं, माता ऋतुमयी होती है, और गर्भ (=उत्पन्न होने वाला, सत्त्व) उपस्थित होता है, इस प्रकार तीनोंके एकत्रित होनेसे गर्भ ठहरता है ।" "जानते हैं आप, कि यह गर्भ गर्भक्षत्रिय होता है, ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र हाता है ?" "नहीं ओ । हम नहीं जानते, कि वह गर्भ० ।" "जब ऐसा (है) तब जानते हो कि तुम कौन हो ?" "ओ । हम नहीं जानते हम कौन हैं ।"

"हे आश्वलायन ! असित देवल ऋषि-द्वारा जातिवादके विषयमें पूछे जानेपर, 'यह सातों ब्राह्मण ऋषि ओ (उत्तर) दे सके, तो फिर आज तुम क्या (उत्तर) दोगे, (जबकि) अपनी सारी पण्डिताई-सहित तुम उनके रसोईदार (=दर्विपाहक) (के समान) हो ।"

ऐसा कहने पर आश्वलायन माणवकने भगवान्‌को कहा—'आश्चर्य ! हे गौतम ! आश्चर्य ! हे गौतम !!० आजमे मुझे अंजलि-यज्ञ उपारुक्त धारण करें ।"

महाराहुलोवाद-सुच । अरुण-सुत (वि० पू० ४५८) ।

‘ऐसा मने मुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीम अनाथ पिंडवके आराम जेतवनम विहार करते थे ।

तब पूर्वाह्न समय भगवान् पहिनकर, पात्र-चीवरले श्रावस्तीम पिंड (चार) केलिये प्रविष्ट हुये । आयुष्मान् राहुलभी पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र चीवरले भगवान्के पीछे पीछे होलिये । भगवान्ने देखकर, आयुष्मान् राहुलको संबोधित किया—

“राहुल ! जो कुछ रूपहै—भूत भविष्य वर्तमान का शरीरके भीतर (= अज्वात्म) का, या बाहरका, महान् या सूक्ष्म, अच्छा या बुरा, दूर या समीप का—सभी रूप ‘न यह मेरा है’, ‘मैं यह हूँ’, ‘न यह मेरा आत्मा है’, इस प्रकार यथार्थ जानकर देवता (= समझना) चाहिये ।”

“रूपहीको भगवान् । रूपहीको सुगत !”

“रूपकोभी राहुल ! देवताकोभी, मंगलकोभी, सस्कारकोभी, विघ्नान्तकोभी ।”

तब आयुष्मान् राहुल—‘कौन आज भगवान्का उपदेश सुनकर, गावम पिंड चार के लिये जाये ?’ (सोच) बहासे छौटकर एक वृक्षके नीचे, आसन मार, शरीरको सीधा रख, स्मृतिको सन्मुख ठहराकर बैठगये । भगवान्ने आयुष्मान् राहुलको वृक्षके नाच० देखा देखा । देखकर मनोपित किया—

“राहुल ! आणापान सति (= प्राणापान) भावनाकी भावना (= ध्यान) कर । राहुल ! आणापान सति (= आनापान महा स्मृति, भावना किये जानेपर महाफलप्राप्त, बड़े माहात्म्यप्राप्ती होती है ।”

तब आयुष्मान् राहुल मार्यकालको ध्यानमे उठ, जहा भगवान् थे बहा गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर घटगये । एक ओर बैठ हुये आयुष्मान् राहुलने भगवान्को यह कहा—

“मन्ते ! किम प्रकार भावना कीगई, किम प्रकार प्रशङ्गाई, आणापान सति महा फलप्राप्त, बड़े माहात्म्यप्राप्ती होवा है ?”

“राहुल ! जो कुछ भी शरीरमें (= अज्वात्म), प्रतिशरीर म (= प्रत्यात्म) वर्कन, खर्चरा है, जैसे—केश, लोम, नाग, दांत, चमड़ा, मांस, रूपायु, अस्थि, अस्थि-मज्जा, शुक, हृदय, यकृत, प्रोमक, शोहा, पुष्पुष्म, आंत, पतली आंत (= भंत गुण = आंतकी रस्मी), पेक्का मल है । और जो और भी कुछ शरीरमें, प्रतिशरीरम ककना है । राहुल ! यह सन ! अज्वात्म पृथिवीधातु कहलाती है । जो कुछ कि अज्वात्म पृथिवीधातु है, और जो कुछ धातु, यह (सन) पृथिवी धातु, पृथिवी-धातु ही है । उसमे ‘यह मेरी

नहीं', 'यह मैं नहीं हूँ', 'यह मेरी आत्मा नहीं है' इस प्रकार यथार्थत जानकर इतना चाहिये। इस प्रकार इसे यथार्थत अच्छी प्रकार जानकर देखनेसे (मिथु) पृथिवी-धातुसे उदास होता है, पृथिवी-धातुसे चित्तको विरक्त करता है।

'क्या है राहुल ! आप-धातु ? आप (=जल) धातु (दो) है आध्यात्मिक (=शरीरमें की) और बाह्य। क्या है ? अध्यात्मिक आप-धातु १०। अतः धातु १० वायु-धातु०।

"क्या है राहुल ! आकाश-धातु ? आकाश धातु आध्यात्मिकभी है, और बाह्य भी। "राहुल ! आध्यात्मिक आकाश धातु क्या है ? जो कुछ शरीरमें, प्रतिशरीरमें आकाश या आकाश-विषयक है, जैसे कि—रूप छिद्र, नासिका-छिद्र, मुख-द्वार जिससे भक्षण खादन आस्यादन किया जाता है, और जहां खाना-पीना उहरता है, और जिससे कि अधोभागसे ग्याया-पिया ग्राहर निकलता है। और जो कुछ और भी शरीरमें प्रतिशरीर आकाश या आकाश-विषयक है। यह सब राहुल ! आध्यात्मिक आकाश धातु कहा जाता है। जो कुछ आध्यात्मिक आकाश-धातु है, और जो कुछ बाह्य आकाश धातु है, वह सब आकाश-धातु ही है। 'वह न मेरी है' १०, १०।

"राहुल ! पृथिवी-समान भावनाकी भावना (=ध्यान) कर। पृथिवी-समान भावनाकी भावना करते हुये, राहुल ! तरे चित्तको, दिलको अच्छे लगनेवाले स्पर्श—चित्तको चारों ओरसे पकड़कर न चिमटेंगे। जैसे राहुल ! पृथिवीमें शुचि (=पवित्र वस्तु) भी पकड़ते हैं, अशुचिभी पकड़ते हैं। पाखानाभी०, पेशाबभी०, कफ०, पीप०, लोहू०। वस्त्र पृथिवी दुःखी नहीं होती, ग्लानि नहीं करती, घृणा नहीं करती, इसी प्रकार, तू राहुल ! पृथिवी समान भावनाकी भावनाकर। पृथिवीसमान भावना करते राहुल ! तरे चित्तको अच्छे लगनेवाले स्पर्श चित्तको० न चिमटेंगे।

"आप (=जल)-समान०। जैसे राहुल ! जलमें शुचिभी धोते हैं०।

"तेज (=अग्नि)-समान०। जैसे राहुल ! तेज शुचिको भी जलाता है०।

"वायु समान०। जैसे राहुल ! वायु शुचिके पासभी बहता है।

"आकाश-समान०। जैसे राहुल ! आकाश किसी पर प्रतिष्ठित नहीं। इसीप्रकार राहुल ! आकाश समान भावनाकी भावनाकर। राहुल ! आकाश समान भावनाकी भावना करनेपर, उत्पन्न हुये मनको अच्छे लगनेवाले स्पर्श चित्तको चारों ओरसे पकड़कर चित्तको न चिमटेंगे।

"राहुल ! मेत्री (=सबको मित्र समझना)-भावनाकी भावनाकर। मेत्री भावनाकी भावना करनेसे राहुल ! जो व्यापाद (=द्वेष) है, वह छूट जायेगा।

"राहुल ! कर्णा (=सब प्राणिपर दया करना) भावनाकी भावना कर। कर्णा भावनाकी भावना करनेसे राहुल ! जो तेरी विहिंसा (=पर पीड़ा-करण) है, वह छूट जायेगी।

"राहुल ! मुदिता (=सुखी देख प्रसन्न होना)-भावनाकी भावनाकर।

० राहुल ! जो तेरी अ रति (=मन न लगना) है वह हट जायेगा ।

“ राहुल ! उपक्षा (=शत्रुकी शत्रुताकी उपक्षा)-भावनाकी भावना कर । = जो तेरा प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) है, वह हट जायेगा ।

“ राहुल ! अ शुभ (=सभी भोग उरे हे)-भावनाकी भावना कर । = जो तेरा राग है, वह चला जायेगा ।

“ राहुल ! अ-नित्य-संज्ञा (=सभी पदार्थ अ नित्य हैं) भावनाकी भावनाकर । = जो तेरा अरिमान (=अहंकार) है, वह छूट जायेगा ।

“ राहुल ! आगापान सति (=प्राणायाम)-भावनाकी भावना कर । आणा पान सति भावना करना यशाना, राहुल ! महा फल प्रप्तये साहाय्यशाला है । राहुल ! आगा-पान सति-भावना भावित होनेपर, उदाई जानेपर कैसे महा-फल प्रदं होती है ? राहुल ! भिक्षु आण्यमें बृक्षके नीचे, या शून्य गृहमें आसन मारकर, दारीरकी सीधा धारण कर, स्मृति को मनुमुख रख, यशना है । यह स्मरण रखने माम छोड़ता है, स्मरण रखने सास लेता है, स्मृति को मनु छोड़ते ‘ लक्ष्मी सांस छोड़ रहा हूँ ’ जानता है । ‘ लक्ष्मी सांस लेते ‘ लक्ष्मी साम ले रहा हूँ ’ जानता है । छोटी सांस छोड़ते० । छोटी सास लेते० । ‘ सारे कामको अनुभ्र (=प्रतिसंवेदन) करते सांस छोड़ूँ, सीखता है । ‘ सारे कामको अनुभ्र करते सांस लूँ, सीखता है । कायाके संस्कारों ग्राह्य आदि को दबाते हुये सांस छोड़ूँ, = सांस लूँ, सीखता है । ‘ प्रीतिको अनुभ्र करते माम छोड़ूँ ’० । ‘ ० सांस लूँ, सीखता है । ‘ सुख अनुभ्र करते० । ‘ चित्तके संस्कारको अनुभ्र करते० । ‘ चित्त संस्कारको दबाते हुये० । ‘ चित्तको अनुभ्र करते० । ‘ चित्तको प्रमोदित करते० । ‘ चित्तको समाधान करते० । ‘ चित्तको (राग आदिमें) विमुक्त करते० । ‘ (सब पदार्थों को) अनि य देखने-वाला हो० । ‘ (सब पदार्थोंमें) विरागकी दृष्टि मे० । ‘ (सब पदार्थों में) निरोध (=विनाश)का दृष्टिसे । ‘ (सब पदार्थों में) परित्यागकी दृष्टिसे सांस छोड़ूँ, सीखता है । ‘ परित्यागकी दृष्टिसे सांस लूँ, सीखता है । राहुल ! इस प्रकार भावना की गई, उदाई गई आगा-पान सति-महा फल-दायक, और बड़े साहाय्यशाली होती है । राहुल ! इस प्रकार भावनाकी गई, उदाई गई आणा पान सतिते जो वह अविम आधास (=सांस छोड़ना) प्रक्षाम (=सास लेना) है, वह भी विदिम होकर, ज्य (=निरुद्ध) होते हैं, अ विदिम होकर नहीं । ”

भगवान् ने यह कहा । आयु-मान् राहुलने संतुष्ट हो, भगवान् को भाग्यका अभिनन्दन किया ।

अभ्युपगम सुत्त ।

“ एसा भैंन एता—एक समय भगवान् यावन्तोर्ध्व अनाय पिंडरुके आराम जेतवनम विहार करते थे ।

वहां भगवान् ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

“ भिक्षुओ ! ”

अ नि ८१३८ ।

“ भद्रन्त ! ” (कह) उन मिश्रुओने उत्तर दिया । तत्र भगवान् ने उन मिश्रुओको कहा

“ मिश्रुओ ! ‘ लोक क्षण-वृत्त्य है, क्षण-वृत्त्य है ’ ऐसा अज्ञ (= अश्रुतवान्) प्रश्न कहता है लेकिन यह क्षण या अ क्षणको नहीं जानता । मिश्रु महाचर्य-वासके लिये यह अक्ष-क्षण = अ-समय है । कौनसे आठ ? मिश्रुओ ! लोकमें तथागत बहुत मन्त्र-संज्ञ विद्या-आचरण सपन्न, सुगत, लोक विद्, अनुपम पुरुषके चातुर-सवार, देव मनुष्य उपरान्त युद्ध भगवान् उत्पन्न हो । यह सुगतके ज्ञात, उपज्ञात करनेवाले, निर्वाणको लानेवाले, सत्त्व (= परमज्ञान)-गामी धर्मको उपदेश करते हो । (१) (उस समय) यह पुत्रल (= पुत्र) गर्भमें उत्पन्न हो । (२) पशु-योनिमें उत्पन्न हो । (३) प्रेतलोकमें उत्पन्न हो । (४) किमी दीर्घायु देव-समुदायमें । (५) (ऐसे) प्रत्यन्त (= सीमान्त) देशमें, अविज्ञान (= के देव) में उत्पन्न हो जहां मिश्रु मिश्रुनियो, उपासक, उपासिकाभात्री गति नहीं । (६) मध्यमजनपदों (= मज्झिमेसु जनपदेसु) में उत्पन्न हुआ हो, (किंतु) मिथ्या इति = अच्छी मतका हो—दातृ (कुठ) नहीं, यज्ञ (कुठ) नहीं, सुकृत दुष्कृत कर्मोंका फल = विपात कुठ नहीं, यह लोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं है, पिता नहीं है, उत्पन्न होनेवाले (= माता पातिका) प्राणी (कोई) नहीं । लोकमें अच्छी तरह पहुँचे, अच्छी तरह (तत्त्वको) प्राप्त हुये, धर्मग्राहण (कोई) नहीं है, जो कि इस लोक और परलोकको स्वयं जानकर = माहात्म्य कर, जतलायें । (७) यह पुत्रल मध्यम देशमें पैदा हुआ हो, लेकिन यह है, दुष्प्रज्ञ, अघ्नमूर्ख (= षट्मूग = भेड़ गूँगा) ; सुभाषित, दुभाषितके अर्थको जाननेमें असमर्थ, मिश्रुओ ! महाचर्य-वासके लिये सातवाँ अ-क्षण = अ समय है ।

“ (८) और फिर मिश्रुओ ! लोकमें तथागत उत्पन्न हो, उपदेश करते हो, उस समय यह पुत्रल मध्यम देशमें पैदा हुआ हो, और प्रज्ञावान्, अजड़, अन्-षट्मूग, सुभाषित दुभाषितके अर्थ जाननेमें समर्थ हो । यह मिश्रुओ ! महाचर्य-वासके लिये, आठवाँ अ-क्षण = अ-समय

“ यह मिश्रुओ ! महाचर्यवासके लिये तीन अ क्षण = अ-समय हैं । मिश्रुओ महाचर्य-वासके लिये एक ही क्षण = समय है । कौन सा एक ? मिश्रुओ ! लोकमें तथागत उत्पन्न हो, उपदेश करते हो, और यह पुत्रल मध्यम देशोंमें पैदा हुआ हो, और वह प्रज्ञावान्, अजड़, अन्-षट्मूग सुभाषित दुभाषितके अर्थ जाननेमें समर्थ । यही मिश्रुओ एक क्षण = समय है, महाचर्यवासके लिये ।

+

+

+

+

पोद्दपाद-सुत्त (वि. पू ४५८) ।

१ ऐसा मने सुना—एक समय भगवान् अनाथ-पिंडकके आराम-जेतवनम् विहार करते थे ।

तत्र भगवान् पूवाह समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, श्रावस्तीमे पिंडके लिये प्रविष्ट हुये । तब भगवान्को यह हुआ—‘श्रावस्तीमे पिंडाचारके लिये बहुत सेरा है, क्यों न मैं समय-प्रवादक (=मित्र मित्र मतोके बादका स्थान) एक-सालरू (=एक बड़ा शालावाले) मल्लिका (=कोसदेश्वर-महिषी)के आराम तिनदुकाचीरमे, जहाँ पोद्दपाद परित्राजक है, वहाँ चलूँ ।’ तब भगवान् जहाँ० तिनदुकाचीर था, वहाँ गया ।

उस समय पोद्द (=प्रोष्ठ) पाद परित्राजक, राज-कथा, चोर-कथा, महात्म्य-कथा, सेना-कथा, मय कथा, युद्ध-कथा, अन्न कथा, पान-कथा वस्त्र कथा, दायन कथा, गर्ध कथा, माला-कथा, जाति (=कुल)-कथा, धान (=युद्ध-यात्रा)-कथा, ग्राम-कथा, निगम कथा, नगर-कथा, जन पद-कथा, स्त्री कथा, गूर कथा, विशिखा (=चोरम्ता) कथा, कुम्भ स्थान (=पन प)-कथा, पूर प्रेत (=पहिने मतोकी) कथा, नानात्व-कथा, लोक-आख्यायिका, समुद्र-आख्यायिका, इति-भवाभव (=ऐसा हुआ, ऐसा नहीं हुआ)-कथा आदि निरर्थक कथाय कहती, नाद करती, शोर मचाता, बड़ी भारी परित्राजक-परिपदक साथ धैठ था । पोद्द-पाद परित्राजकने दूर हासे भगवान्को आते देखा । देखकर अपनी परिपदको कहा—‘आप सन नि शब्दहों, आप सब शब्द मत करें । धमग मौतम आ रहे हैं । वह आयुमान् नि शब्द-प्रेमी, नि (=अल्प)-शब्द-प्रशस्तक हैं । परिपदको अल्प शब्द दख सभव है, (इत्थ) आय ।’ ऐसा कहनेपर (वे) परित्राजक चुप हो गये ।

तब भगवान् जहाँ पोद्द पाद परित्राजक था, वहाँ गए । पोद्द पाद परित्राजकने भगवान्को कहा—

“आइये भन्ते ! भगवान् । स्वागत है भन्ते ! भगवान् । त्रिर (काल) व याद भगवान् यहाँ आये हैं । बैठिये भन्त । भगवान् यह आसन बिठा है ।”

भगवान् बिठे आसनपर थे गये । पोद्द पाद परित्राजक भी एक नीचा आसन लेकर, एक ओर धैठ गया । एक ओर धैठ हुये पोद्द पाद परित्राजकको भगवान्ने कहा—

“पोद्द-पाद ! किस कथामें इस समय बठ थे, क्या कथा बोचमें हो रही थी ?”

एसा कहनेपर पोद्द पाद परित्राजकने भगवान्को यह कहा—

“जाने दीजिये भन्ते ! इस कथाको, जिस कथामें हम इस समय बठ थे । एयो कथा, भन्त ! भगवान्को पोछे भी सुननेम दुर्लभ न होगी । पिउने दिनके पहिले भन्ते ! कुल्ल-शालामें जमा हुये, जाना तीर्या (=पंथों) के धमग प्राज्ञाणार्थ अभिमंशा निरोध (=एक समाधि) पर कथा चली—‘ओ ! अभिमंश-निरोध कैसे होता है ?’ वहाँ किन्हीं

१ यो नि १९ । २ वर्तमान चरित्राय (सेंट मरेट), जि बहराइच ।

कहा—‘बिना हेतु = बिना प्रत्ययही पुरुषकी संज्ञा (= चेतना) उत्पन्न भी होती है, निरुद्ध भी होती है । वह उस समय संज्ञा रहित (= अ-संज्ञी) होता है । इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा निरोधका प्रसार करते हैं ।’ उसको दूसरेने कहा—‘भो ! यह ऐसा नहीं हो सकता । संज्ञा पुरुषका आत्मा है । वह आता भी है, जाता भी है । जिस समय आता है, उस समय संज्ञा पान् (= संज्ञी) होता है, जिस समय जाता है, संज्ञा-रहित (= अ-संज्ञी) होता है । इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा निरोध यत्नलाते हैं । उसको दूसरेने कहा—‘भो ! यह ऐसा नहीं होगा । (कोई कोई) भ्रमग ब्राह्मण महा-ऋद्धि-मान् = महा अनुभाव-वान् हैं । वह इस पुरुषकी संज्ञाको ढालते भी हैं, निकालते भी हैं । जिस समय ढालते हैं, उस समय संज्ञा होता है । जिस समय निकालते हैं, उस समय अ-संज्ञी होता है । इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा निरोध यत्नलाते हैं ।’ उसको दूसरेने कहा—‘भो ! यह उसे न होगा । (कोई कोई) भगवान् महा-ऋद्धि-मान् = महा अनुभाव-वान् हैं । वह इस पुरुषकी संज्ञा ढालते भी हैं, निकालते भी हैं । इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोध यत्नलाते हैं ।’ तब भुमको भन्ते ! भगवान् योमेही स्मरण आया—‘अहो अवश्य वह भगवान् सुगत हैं’ जो इन धर्मा (= अभि-संज्ञा) में चतुर हैं ।’ भगवान् अभि-संज्ञा निरोधके प्रवृत्ति (= स्वभाव) हैं ।’ कैसे भन्ते ! अभि-संज्ञा-निरोध होता है ?”

“पोट्टपाद ! जो वह भ्रमग ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—‘बिना हेतु = बिना प्रत्ययही पुरुष संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, निरुद्धभी होती हैं । आदिसेही उन्होंने भूल की । वह किप लिये सहेतु (= कारणसे) = स प्रत्यय पोट्ट-पाद पुरुषकी सनायें उत्पन्न होती हैं, निरुद्ध भी होती हैं । शिक्षासे कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती है, शिक्षासे कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती है ।”

“और शिक्षा क्या है ?”

भगवान्ने कहा—“पोट्टपाद ! यहाँ लोकमें सयागत उत्पन्न होते हैं,—सम्यक्-संज्ञा विद्या-आचरण सपन्न, सुगत, लोक-विद्, अनुपम पुरुष चातुर्क-प्रकार, देव मनुष्य उपदेष्टुर्भू भगवान् । सो इस देव-मार प्रह्लाद-सहित लोकको ० । ० धर्म-देशना करते हैं ० । ० धर्म-यथ, धधन, छापा मारने आलोप (= ग्राम आदि विनाश करने), डाका डालनेमें विरत होते हैं । इस प्रकार पोट्टपाद ! भिक्षु शीलसम्पन्न होता है । ० । उमे इन पाँच नीवर्णोंसे मुक्त । अपनेको देखनेसे प्रमोद उत्पन्न होता है । प्रमुदितकी प्रीति उत्पन्न होती है । प्रीति सर्व-वित्त-पालेकी काया अ-चंचल (= प्रथग्ध) होती है । प्रथग्ध काय वाला सुख-अनुभूत काता-सुखितका चित्त समाहित (= प्रकाश) होता है । वह कामसे पृथक् हो, अ-कुशल धर्मोंसे पृथक् हो, स-वित्तके चित्तसे उत्पन्न प्रीति-सुख वाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । उसकी यह पहिलेकी काम-सना है, वह निरुद्ध (= नष्ट) होती है । विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुख सूक्ष्म सत्य संज्ञा उम समय होता है । जिससे कि वह उस समय सूक्ष्म सत्य संज्ञी होता है । इस-शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई निरुद्ध होती हैं ।

“और भी पोट्टपाद । मिथु वितर्क विचारके उपशात होनेपर, भीतरके संप्रसाद (= प्रसन्नता) = चित्तकी प्रकाशताको, वितर्क-विचार रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाले द्वितीय ध्यानको, प्राप्त हो विहरता है । उसको जो वह पहिली त्रिषेन्न प्रीति-सुख-वाली सूक्ष्म सत्य संज्ञा थी, वह निरुद्ध होती है । समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाली सूक्ष्म-सत्य संज्ञा-बानही वह उस समय होता है । इस शिक्षामें भी कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती है, कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती है । यह शिक्षा है ।”

“और फिर पोट्टपाद । मिथु प्रीति और विरागसे उपेक्षक ० तृतीय ध्यानी प्राप्त हो विहरता है । उसकी वह पहिलेकी समाधि प्रीति सुख-वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा निरुद्ध होती है । उपेक्षा सुख वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा उस समय (पेदा) होती है । उपेक्षा-सुख-सत्य सनीही वह उस समय होता है । ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती है, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं । यह शिक्षा है ।”

“और फिर पोट्टपाद । मिथु सुख और दुःखकें निनाशसे ० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । उसकी वह जो पहिलेकी उपेक्षा-सुख-वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा (थी, वह) निरुद्ध होती है । बहुत-अल्प सूक्ष्म सत्य-संज्ञा, उस समय होती है । उस समय (वह) बहुत अल्प सूक्ष्म-सत्य-संज्ञाही वह होता है । ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं । यह शिक्षा है ।”

“और फिर पोट्टपाद । मिथु रूप-संज्ञाओंके सर्वथा छोड़नेसे, प्रतिष्ठ (= प्रतिहिंसा) - मज्जाओंके अन्त होजानेसे, ज्ञानापन (= ज्ञानात्त्व) की मज्जाओंको मनमें र करनेसे, ‘अनन्त आकाश’ इस आकाश आनन्द आयतनको प्राप्त हो विहरता है । उसकी जो पहिलेकी रूप-मज्जा थी, वह निरुद्ध हो जाती है, आकाश आनन्द आयतनवाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा उस समय होती है । आकाशआनन्द आयतन सूक्ष्म सत्य मनी ही वह उस समय होता है । ऐसी शिक्षासे भी० ।” “और फिर पोट्टपाद । मिथु आकाश आनन्द आयतनको सर्वथा अतिरमणर ‘विज्ञान अन्त’ है । इस विज्ञान आनन्द आयतनको प्राप्त हो विहरता है । उसकी वह पहिलेकी आकाश आनन्द आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा नष्ट होती है । विज्ञान आनन्द आयतनवाली सूक्ष्म सत्य-मज्जा होता है । विज्ञान आनन्द आयतन-सूक्ष्म सत्य मनी ही (वह) उस समय होता है ।० ।”

“और फिर पोट्टपाद । मिथु विज्ञान-आनन्द आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर ‘बुद्ध नहीं है’ इस आर्किचन्य (= बुद्ध-भी पा) -आयतनको प्राप्त हो विहार करता है । उसकी वह पहिलेकी विज्ञान आनन्द आयतनवाली सूक्ष्म सत्य संज्ञा नष्ट होजाती है आर्किचन्य आयतनवाली सूक्ष्म सत्य संज्ञा ही० वह आर्किचन्य-आयतन-सूक्ष्म सत्य सनी ही उस समय होता है ।० ।”

“बुद्धि पोट्टपाद । मिथु स्वक-संज्ञी (= अपनेमें संज्ञा ग्रहण करने-वाला) होता है, (इसलिये) वह वहाँसे वहाँ, वहाँसे वहाँ, क्रमशः श्रेष्ठ-तर संज्ञा प्राप्त (= स्पर्श)

करता है । श्रेष्ठतर सज्ञापर स्थित हो, उसको यह होता है—‘मेरा चिंतन करना बहुत ऊँचा (= पापीयम्) है, मेरा न चिंतन करना, बहुत अच्छा (= श्रेयस्) है । यदि मैं न चिंतन करूँ, न अभिसंस्करण करूँ, तो यह सन्तान मेरी नष्ट होजावेगी, और और भी विशाल (= बड़ा) सन्तानें उत्पन्न होगी । क्योंकि मैं न चिंतन करूँ, न अभिसंस्करण करूँ ।’ उसके चिंतन करने, अभिसंस्करण न करनेसे, वह सन्तानें नाश हो जाती हैं, और दूसरी उदार सन्तानें उत्पन्न नहीं होतीं । वह निरोधको स्पर्श (प्राप्ति) करता है । इस प्रकार पोट्टपाद । सज्ञा अभिसंज्ञा (= मंज्ञा = चेतना) निरोधगती सप्रज्ञात-समापत्ति (= सप्रज्ञात समापत्ति = सज्ञा जात समाधि) उत्पन्न होती है ।

“ तो क्या मानते हो, पोट्टपाद ! क्या तुमने इससे पूर्व इस प्रकारकी क्रमशः सज्ञा निरोध सप्रज्ञात-समापत्ति सुनी थी ? ”

“ नहीं, भन्ते ! भगवान् के माधन करनेसे ही मैं इस प्रकार जानता हूँ । ”

“ चूँकि पोट्टपाद ! किन्तु यहाँ स्वरूप सज्ञा होता है । (इसलिये) वह वहनित कर, वहाँसे वहाँ, प्रथम सज्ञाके अग्र (= उत्तम) को प्राप्ति (= स्पर्श) करता है । सज्ञाके अग्र (= सर्वोत्तम) पर स्थित हो, उसको ऐसा होता है—‘ मेरा चिंतन करना बहुत बुरा है, चिंतन करना मेरे लिये बहुत अच्छा है । ’ वह निरोधको स्पर्श करता है । इस प्रकार पोट्टपाद । क्रमशः अभिसंज्ञा-निरोध सप्रज्ञात समाधि होती है । ऐसे पोट्टपाद १० ”

“ भन्ते ! भगवान् क्या एक हीको सज्ञा अग्र (= सज्ञाओंमें सर्व श्रेष्ठ) यत्नगती या प्रथक् पृथक् भी सज्ञाओंको कहते हैं ? ”

“ पोट्टपाद ! मैं एक भी सज्ञाप्र यत्नगती हूँ, और पृथक् पृथक् भी सज्ञाओं यत्नगती हूँ । पोट्टपाद ! जैसे जैसे निरोधको प्राप्ति (= स्पर्श) करता है, वैसे वैसे सज्ञाओंको मैं कहता हूँ । इस प्रकार पोट्टपाद । मैं एक भी सज्ञाप्र यत्नगती हूँ, और पृथक् पृथक् भी सज्ञाओंको यत्नगती हूँ । ”

“ भन्ते ! सज्ञा पहिले उत्पन्न होती है, पीछे ज्ञान, या ज्ञान पहिले उत्पन्न होता पीछे सज्ञा, या सज्ञा और ज्ञान न-पूर्व न पीछे उत्पन्न होते हैं ? ”

“ पोट्टपाद ! सज्ञा पहिले उत्पन्न होती है, पीछे ज्ञान । सज्ञाकी उत्पत्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है । वह यह जानता है—इस कारण (= प्रत्यय) मे ही यह मेरा उत्पन्न हुआ है । पोट्टपाद ! इस कारणसे यह जानना चाहिये कि, सज्ञा प्रथम उत्पन्न होती है, ज्ञान पीछे, सज्ञाकी उत्पत्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होता है । ”

“ सज्ञा (ही) भन्ते ! पुरुषका आत्मा है, या सज्ञा अलग है, आत्मा अलग ? ”

“ किन्तु पोट्टपाद ! तू आत्मा समझता है ? ”

“ भन्ते ! मैं आत्माको स्थूल (= औदारिक) रूप मानूँ, चार महाभूतों का कवल-कारके स्थानेवाला (= कवलिकार आधार) मानता हूँ । ”

“ तो पोट्टपाद ! तेरा आत्मा यदि स्थूल, स्थी, चतुर्माहात्मिक, कवलिकार आधार मानूँ, तो ऐसा होनेपर पोट्टपाद ! सज्ञा दूसरी ही होगी, आत्मा दूसरा ही होगा । ”

इस कारणसे भी पोट्टपाद ! जानना चाहिये, कि संज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा । पोट्टपाद ! रहने दो इसे—आत्मा स्थूल० है, (इस) के होनेहीसे इस पुरुषकी दूसरी ही संज्ञाय उत्पन्न होती है, दूसरी ही संज्ञायें निरुद्ध होती हैं । सो इस कारणसे भी पोट्टपाद ! जानना चाहिये, संज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा । ”

“ भन्ते ! मे आत्माको समझता हूँ—मनोमय सन अंग प्रत्यगजाला, इन्द्रियसे बाहीन । ”

“ ऐसा होनेपर भी पोट्टपाद ! तेरी संज्ञा दूसरी होगी और आत्मा दूसरा । सो इस कारणसे भी पोट्टपाद ! जानना चाहिये, (कि) संज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा । पोट्टपाद ! सर्वोक्त प्रत्यग-युक्त इन्द्रियोसे बाहीन मनोमय आत्मा है, सभी इस पुरुषकी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं । इस कारणसे भी पोट्टपाद ! ० । ”

“ भन्ते ! मे आत्माको रूप रहित संज्ञा-मय समझता हूँ । ”

“ यदि पोट्टपाद ! तेरा आत्मा रूप रहित संज्ञामय है, तो ऐसा होनेपर पोट्टपाद ! (इस) कारण से जानना चाहिये, कि संज्ञा दूसरी होगी, और आत्मा दूसरा । पोट्टपाद ! रूप-रहित संज्ञा-मय आत्मा है ही, सभी इस पुरुषकी० ।

“ भन्ते ! क्या मैं यह जान सकता हूँ—कि संज्ञा पुरुषकी आत्मा है, या मज्ञा दूसरी (चीज) है, आत्मा दूसरी (चीज) ? ”

“ पोट्टपाद ! ‘ भिन्न दृष्टि (= धारणा) वाले, भिन्न क्षाति (= चाह) वाले, भिन्न शक्तिवाले, भिन्न-आयोग वाले, भिन्न आचार्य रखनेवाले तैरे लिये—‘संज्ञा पुरुषकी आत्मा है० ’—जानना मुश्किल है । ”

“ यदि भन्ते ! भिन्न दृष्टि-वाले० मेरे लिये ‘संज्ञा पुरुषकी आत्मा है० ’—जानना मुश्किल है । सो फिर क्या भन्ते ! ‘ लोक नित्य (= शाश्वत) है, ’ यही सच है, दूसरा (अनित्यता का विचार) निरर्थक (= मोघ) है ? ”

“ पोट्टपाद !—‘लोक नित्य है, ’ यही सच है, और दूसरा (वाद) निरर्थक है—यह मैंने अ-व्याकृत (= कथनका विषय न होने से अ-कथित) किया है । ”

“ क्या भन्ते !—‘लोक अ-शाश्वत (= अनित्य) है, ’ यही सच और सन (वाद) कथ्य है ? ”

“ यह भी पोट्टपाद ! ‘ लोक अ-शाश्वत० ’ मैंने अ-व्याकृत किया है । ”

“ क्या भन्ते !—‘ लोक अन्त-वान् है ’० ? ”

“ यह भी पोट्टपाद !० अ-व्याकृत० । ”

“ क्या भन्ते !—‘लोक अन् अन्त-वान् है० ? ”

“ यह भी पोट्टपाद !० अ-व्याकृत० । ”

“० ‘ यही जीव है, यही शरीर है,० ? ” “० अ-व्याकृत० । ”

“० ‘ जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है,० ? ” “० अ-व्याकृत० । ”

“० ‘ मरनेक बाद उद्भूत फिर (पैदा) होता है० ? ” “० अ-व्याकृत० । ”

“० ‘ मरने के बाद फिर तथागत नहीं होता ’ ० १ ” “ ० अ-व्याकृत ० । ”

“ ० ‘ ० होता है, और नहीं भी होता है ’ ० १ ” “ ० अ-व्याकृत ० । ”

“ ० ‘ मरने के बाद तथागत न होता है, न नहीं होता है ’ ० १ ” “ ० अ-व्याकृत ० । ”

“ किम लिये भन्ते ! भगवान् ने इसे अ-व्याकृत किया है ? ”

“ पोट्टपाद ! न यह अर्थ-युक्त (= स प्रयोजन) है, न धर्म-युक्त, न आदि ग्रहण उपयुक्त, न निरुद्ध (= उदासीनता) केलिये, न विराग केलिये, न निरोध (= क्लेश विनाश) केलिये, न उपशम (= शांति) के लिये, न अभिज्ञाकेलिये, न संशोधि (= परमार्थ ज्ञान) केलिये, न विमोक्षण केलिये, है । इसलिये मैंने इसे अ-व्याकृत किया । ”

“ भन्ते ! भगवान् ने क्या क्या व्याकृत किया है ? ”

“ पोट्टपाद ! ‘ यह दुःख है ’ (इसे) मैंने व्याकृत किया है । ‘ यह दुःख-स्तुन है ’ मैंने व्याकृत किया है । ‘ यह दुःख-निरोध है ’ ० । ‘ यह दुःख निरोध-नामिनी प्रतिपत्ति (= मार्ग) है ’ ० । ”

“ भन्ते ! भगवान् ने इसे क्यों व्याकृत किया है ? ”

“ पोट्टपाद ! यह अर्थ-उपयोगी, धर्म-उपयोगी, आदि-ग्रहण-उपयोगी है । यह निरुद्धकेलिये, विरागकेलिये, निरोधकेलिये, उपशमके लिये, अभिज्ञाके लिये, संशोधि के लिये, विमोक्षणके लिये है । इसलिये मैंने इसे व्याकृत किया । ”

“ यह ऐसाही है, भगवान् । यह ऐसाही है, सुगत ! अब भन्ते, भगवान् जिसका काल समझते हो (कर) । ”

तत्र भगवान् आमनसे उठकर चल दिये ।

तत्र परिव्राजकोने भगवान् के जानेके थोड़ीही देर बाद, पोट्टपाद परिव्राजकोको धाँ ओरसे वाग्-गणसे जर्जरित करना शुरू किया—“इसी प्रकार आप पोट्टपाद, जो जो धर्म गौतम कहता (रहा), उसीको अनुमोदन करते (रहे) ‘यह ऐसाही है भगवान् । यह ऐसाही है सुगत ।’ हमतो भ्रमण गौतमका कहा कोई धर्म एकमा नहीं देखते, कि—‘लोक शाश्वत है’, ‘लोक-अशाश्वत है’, ‘लोक अन्तर्गन्त है’, ‘लोक अन्-अन्त गन्त है’, ‘वही जाव है’, ‘वही क्षीर है’, ‘दूसरा जीव है, दूसरा शरीर है’, ‘तथागत मरनेके बाद होता है’, ‘तथागत मरनेके बाद नहीं होता’ ‘तथागत मरनेके बाद होता है, नहीं भी होता है ।’ ‘तथागत मरनेके बाद न होता है, न नहीं होता है ।’

ऐसा कहनेपर पोट्टपाद परिव्राजकोने उन परिव्राजकोको यह कहा—“मैं भी भो ! भ्रमण गौतमका कहा कोई धर्म एकमा नहीं देखता ‘लोक शाश्वत है’ ० । चरित् भ्रमण गौतम ‘भूत = तथ्य (= यथार्थ) धर्मम स्थित हो, धर्म-नियामक-प्रतिपत्ति (= मार्ग, ज्ञान) को चरता है । (तो फिर) मेरे जैसा चित्र, भ्रमण गौतम के सुमापितको सुमापितके तोरपर केंद्र अनुमोदन न करै ? ”

तत्र ते तीन दिनोंके गौतमपर, चित्र हलिय-सारीपुत्त और पोट्टपाद परिव्राजक जहाँ भगवान् थे, बसा गये । जाकर चित्र हलिय मारीपुत्त भगवान् को अभिवादाकर एक ओर बग ।

पोट्ट-पाद परिवाजक भगवान्‌को साथ संभोदना कर , एक ओर घैग्या । एक ओर बेंडे
पोट्ट-पाद परिवाजकने भगवान्‌को कहा—

“उस समय भन्ते ! भगवान्‌के चचे जानेने थोड़ीही देरवाद (परिव्राजक) मुझे चारों
ओरसे जर्जरित कतेलगे—‘इसी प्रकार आप पोट्ट पाद । ०।० मर जेमा बिज्जु सुभाषितको०
से अनुमोदन नहीं करें ?”

“पोट्ट पाद । मभी यह परिव्राजक अन्धे = चतुर रहित हूँ । तूही उनम एक चतु-मान्
हूँ । पोट्ट-पाद ! मने (कितनेही) धर्म एकाशिक कहे हैं = प्रमाणन किये ह । कितनेही धर्म
अन्ध एकाशिक भी कहे हैं० । ‘पोट्ट पाद ! मैने कौनसे धर्म अन्ध-एकाशिक उपदेश किये हैं० ?
लोक शाश्वत है’ इसको मैने अनकाशिक धर्म कहा है० । ‘लोक अ-दाश्वन ह’ अनेकाशिक
धर्म०।० । ‘तथागत मरनेके बाद न होता है, न नहीं होता है’ मने अनकाशिक धर्म उपदेश
किया है० । यह पोट्ट-पाद ! न अर्थ-उपयोगी है, न धर्म उपयोगी हैं, न आदि ब्रह्मचर्य-
उपयोगी हैं । न निवेदके लिये ०, न त्रिराग्यके लिये ० । इसलिये इन्हें मैने अन्ध एकाशिक
उपदेश किया०

“पोट्ट पाद ! मैने कौनसे एक-अशिक धर्म कहे हैं = प्रहापित किए हैं ? ‘बह दुःख
है’ ०।० यह दुःख निरोध गामिनी प्रतिपन्न है’ इसे पोट्ट-पाद ! मने एकाशिक धर्म बतलाया
है० । यह पोट्ट-पाद ! अर्थ-उपयोगी है० । इसलिये मैने उन्हें एकाशिक धर्म कहा है =
प्रहापित किया है ।”

“पोट्टपाद ! कोई कोई भ्रमण ब्राह्मण ऐसे वाद (= मत)-पाले = ऐसी दृष्टिवाले
हैं—‘मरनेके बाद आत्मा अरोग, एकान्तसुखी (= केवल सुखी) होता है’ । उनमे से यह
कहता हूँ—‘सब सुख तुम सब आयुमान् हम वादपाले = इस दृष्टिवाले हो—‘मरने के बाद
आत्मा अरोग एकान्त सुखी होता है’ ? यह जब ऐसा पूछनेपर मुझे ‘हां’ कहते हैं । सब
उनको मैं यह कहता हूँ—‘क्या तुम सब आयुमान् एकान्त सुखवाले लोकको जानने,
देवते, विहार करते हो’ ? ऐसा पूछनेपर ‘नहीं’ कहते हैं । उनको मैं यह कहता हूँ—‘क्या
तुम सब आयुमान् एक रात या एक दिन, आधी रात या आधा दिन एकान्त सुखवाले
आत्माको जानने हो’ ? यह पूछनेपर ‘नहीं’ कहते हैं । उनको मैं यह कहता हूँ—‘क्या
आप सब आयुमान् जानने है, यही मार्ग = यही प्रतिपन्न एकान्त-सुखवाले लोकके
साक्षात्कारके लिये हैं ? ऐसा पूछनेपर ‘नहीं’ कहते हैं । उनको मैं यह पूछता हूँ—‘क्या आप
सब आयुमान् जो यह दवता एकान्त सुखवाले लोकमें उत्पन्न है, उनको भाषित शब्दको
सुनते हैं एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये—‘माप । सु-प्रतिपन्न (= लोकमें पहुंचे)
हो , मार्प । अद्भुत प्रतिपन्न (= अ-कुटिपत्तासे प्राप्त) हो , हम भी मार्प । एमे हो प्रतिपन्न
(= भागारुह) हो, एकान्त सुख वाले लोकमें उत्पन्न हुये हैं ?” ऐसा पूछनेपर ‘नहीं’ कहते हैं ।
तो क्या मानते हो पोट्ट-पाद ! क्या ऐसा होनेमे उन भ्रमण ब्राह्मणोंका बंधन प्रमाण
(= प्रतिहरण) रहित नहीं होता ?”

“अवश्य, भन्ते ! ऐसा होनेपर उन भ्रमण ब्राह्मणोंका कथन प्रतिहरण रहित
होता है ।”

“ जेसे कि पोट्ट-पाद ! कोई पुरुष ऐसा कहे—इस जनपद (=देश) में जो उत्तर कल्याणी (=देशकी सुदरतम स्त्री) है, मैं उसको चाहता हूँ, उसकी कामना करता हूँ। उम्मे यदि (लोग) ऐसा कहें—‘हे पुरुष जिस जन-पद कल्याणीको तू चाहता है=कामना करता है, जानता है, कि वह क्षत्रियाणी है, ब्राह्मणी है, वैश्य-स्त्री है, या शूद्रा है ? ऐसा पूछता ‘नहीं’ बोले, तब उसको यह कहें—‘हे पुरुष ! जिस जन पद-कल्याणीको तू चाहता है, जानता है० (वह) अमुक नाम वाली अमुक गोत्र वाली है, लम्बी छोटी या मझोला, काश, श्यामा या, मद्गुर (=मगुर मछली) के वर्णकी है, इस ग्राम निगम या नगरमें (रहती) है ? यह पूछनेपर ‘नहीं’ कहे। तब उसको यह कहें—‘हे पुरुष जिसको तू नहीं जानता, निम्न तूने नहीं देखा, उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है ? ऐसा पूछनेपर ‘हां’ कहे। तो क्या मानते हो पोट्ट पाद ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रतिहरण रहित नहीं हो जाता ?”

“ अवश्य भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रतिहरण-रहित हो जाता है। ”

“ इसी प्रकार पोट्ट-पाद ! जो वह श्रमण ब्राह्मण इस तरह वाद वाले=हृष्टि प्राप्त है—‘मरनेके बाद आत्मा अ-रोग एकान्त-सुखी होता है’, उनको मैं यह कहता हूँ—मरनेके तब सब आयुष्मान् ०।०। तो पोट्ट-पाद ! क्या० उन श्रमण ब्राह्मणोंका कथन प्रतिहरण रहित नहीं है ?”

“ अवश्य ! भन्ते ०। ”

“ जेसे पोट्ट-पाद ! कोई पुरुष चौराहे (=वातुर्महापथ) पर, महत्पर चढ़नेके स्थि नीची बनाये। तब उसको (लोग) यह कहें—‘हे पुरुष ! जिस (प्रासाद)के लिये हम नीची बनाते हो, जानने हो वह प्रासाद पूर्व दिशामें, दक्षिण दिशामें, पश्चिम दिशामें, (या) उत्तर दिशामें, है ? ऊँचा, नीचा, (या) मझोला है ? ऐसा पूछने पर ‘नहीं’ कहे। उसको यह कहें—‘हे पुरुष ! जिसको तू नहीं जानता, तूने नहीं देखा, उस प्रासादपर चढ़नेके लिये सादा बना रहा है ? ऐसा पूछनेपर ‘हां’ कहे। तो क्या मानते हो पोट्ट पाद ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रमाण-रहित नहीं हो जाता ?”

“ अवश्य भन्ते ! ० ”

इसी प्रकार पोट्टपाद ! जो वह श्रमण ब्राह्मण० “ मरनेके बाद आत्मा अ रोग एकान्त सुखी होता है ” ०।०।

“ अवश्य भन्ते ! ० ”

“ पोट्टपाद ! तीन आत्म-प्रतिलाभ (=शरीर ग्रहण) है, स्थूल (=भौतिक) आत्म-प्रतिलाभ, मनोमय आत्म-प्रतिलाभ, अ रूप आत्म प्रतिलाभ। पोट्टपाद ! स्थूल आत्म-प्रतिलाभ कौन है ? रूपान् चार महा भूतोसे बना करलिकार (=प्रास प्रास कर) भक्ष्य वाला, यह स्थूल आत्म प्रतिलाभ है। मनोमय आत्म-प्रतिलाभ कौन है ? रूप (=रूपान्, साकार) मनोमय सर्व आहार सर्वअग प्रत्यक्ष वाला, इन्द्रियोसे अ हान, यह मनोमय आत्म-प्रतिलाभ है। अ-रूप (=रूप रहित = निराकार) आत्म प्रतिलाभ कौन है ?

। रूपी संज्ञामय, यह अ रूप आत्मप्रतिलाम (=शरीर ग्रहण) है । पोट्टपाद । में स्थूल शरीर परिग्रहसे छूनेके लिये धर्म उपदेश करता हूँ, इस तरह मार्गारूढ हुओंके 'संज्ञेस = संज्ञेस मल) उत्पादक धर्म छूट जायेंगे । 'व्ययदानोय धर्म, प्रज्ञाकी परिपूर्णता, विपुलताकी तस होंगे, (और वह) इसी जन्ममें स्वयं जानकर साक्षात्कर, प्राप्तकर विहरेंगा । शायद टुट पाद । तुझे (यह विचार) हो—'संज्ञेशिक धर्म छूट जायेंगे', इसी जन्ममें प्राप्तकर विहरेंगा, (किन्तु) वह विहरता कठिन (=दुख) होगा ।' पोट्ट पाद । एसा नहीं समजना चाहिये, ० । उसे प्रामोद्य ' = प्रमोद) भी होगा, प्रीति, प्रमन्धि, स्पृति, सम्प्रजय और मुक्त विहार भी होगा ।'

" मनोमय शरीर परिग्रहके परित्यागके लिये भी पोट्ट-पाद । में धर्म उपदेश करता हूँ । जैससे कि मार्गारूढ होने वालोंके संकेशिक धर्म छूट जायेंगे । ० । ० मुक्त विहारभी होगा ।"

" अ-रूप (= निराकार) शरीर परिग्रहके परित्यागके लिये भी पोट्टपाद । में धर्म उपदेश करता हूँ । ० । ० सुखविहार भी होगा ।"

" दूसरे लोग यदि पोट्टपाद । हर्षे पूछें—'क्या है आहुमो ! यह स्थूल शरीर-परिग्रह (=आत्म प्रतिलाम), जिसके ग्रहाण (=परित्याग) के लिये तुम धर्म उपदेश करने हो, और जिस प्रकार मार्गारूढ हो, इसी जन्ममें स्वयं जानकर विहरोगे ?' उनके ऐसा पूछनेपर हम उत्तर देंगे—' यह है आहुमो । वह स्थूल शरीर-परिग्रह, जिसके ग्रहाणके लिये हम धर्म उपदेश करते हैं । ० ।

" दूसरे लोग यदि पोट्टपाद हमें पूछें—क्या है आहुमो । मनोमय शरीर-परिग्रह ० । विहरोगे ?

" दूसरे लोग यदि पोट्टपाद । हमें पूछें—क्या है आहुमो ! अ-रूप शरीर परिग्रह ० । ० । ० ।

" जैसे पोट्ट-पाद । कोई पुरुष प्रामादपर चढ़ने के लिये उम्मी प्रामादके नीचे सीढ़ी बनावे । उसको यह पूछें—'हे पुरुष ! जिस प्रामादपर चढ़नेके लिये तुम सीढ़ी बनाते हो, जानते हो, वह प्रामाद पूर्ण दिशामें है, या दक्षिण ०, ऊँचा है या नीचा या मसोला ?' यह यदि कहें—यह है आहुमो ! वह प्रामाद, जिसपर चढ़नही, उम्मी नीचे से सीढ़ी बनाता हूँ ।' तो क्या मानते हो पोट्टपाद । ऐसा होनेपर क्या उस पुरुषका मापण प्रामाणिक होगा ?"

" अवश्य, भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका मापण प्रामाणिक होगा ।"

" इसी प्रकार पोट्टपाद ! यदि दूसरे हमें पूछें—आहुमो ! वह स्थूल शरीर परिग्रह क्या है ० । ० । ० ।

" ० आहुमो ! वह मनोमय शरीर परिग्रह क्या है ० । ० । ० ।

" ० आहुमो ! वह अ रूप शरीर-परिग्रह क्या है, जिसके ग्रहाण (=परित्याग) के लिये, तुम धर्म उपदेश करते हो, ०, ० ? उनके ऐसा पूछनेपर हम यह उत्तर देंगे—'यह

(पूर्वोक्त) है आतुसो ! यह अ रूप शरीर परिग्रह ० । ० तो क्या मानते हो पाटुपाद !
ऐसा होनेपर क्या उम पुरुषका भाषण प्रामाणिक होता है ? ”

“ अवश्य भन्ते । ० ”

ऐसा कहनेपर चित्त हृत्थि-सारि-पुछने भगवान्‌को कहा—“ भन्ते जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है, उस समय मनोमय शरीर-परिग्रह तथा अ रूप शरीर परिग्रह भाव (= मिथ्या) होते हैं, स्थूल शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है । जिस समय भन्ते ! मनोमय शरीर परिग्रह होता है, उस समय स्थूल शरीर परिग्रह तथा अ रूप शरीर परिग्रह मिथ्या होते हैं, मनोमय शरीर परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है । जिस समय भन्ते ! अ-रूप शरीर-परिग्रह होता है, उस समय स्थूल शरीर परिग्रह तथा मनोमय शरीर परिग्रह मिथ्या होते हैं, अ रूप शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है । ”

“ जिस समय चित्त ! स्थूल शरीर परिग्रह होता है, उस समय ‘ मनोमय शरीर परिग्रह ’ नहीं समझा जाता । न ‘ अ रूप शरीर-परिग्रह ’ यही समझा जाता है । ‘ स्थूल शरीर परिग्रह ’ है, यही समझा जाता है । जिस समय चित्त ! मनोमय शरीर परिग्रह ० । जिस समय अ रूप शरीर परिग्रह ० । यदि चित्त ! तुझे यह पूछे—तू भूत कालमें था, नहीं तो तू न था ? भविष्य कालमें तू होगा (= रहेगा) ? नहीं तो तू न होगा ? इस समय तू है ? नहीं तो तू नहीं है ? ”

“ ऐसा पूछने पर भन्ते ! मे यह उत्तर दूँगा—‘ मे भूत कालमें था, (मे नहीं तो न) था । भविष्य कालमें मैं होऊँगा, नहीं तो मैं न होऊँगा । इस समय मैं हूँ, नहीं तो मैं नहीं हूँ ’ । ऐसा पूछने पर मैं भन्ते । इस प्रकार उत्तर दूँगा । ”

“ यदि चित्त ! तुझे यह पूछे—जो तेरा भूतकालका शरीर परिग्रह था, वही तेरा शरीर परिग्रह सत्य है, भविष्यका और वर्तमानका (क्या) मिथ्या है ? जो तेरा भविष्यमें होनेवाला शरीर-परिग्रह है, वही ० सच्चा है, भूतका और वर्तमानका (क्या) मिथ्या है ? जो इसे समय तेरा वर्तमान शरीर परिग्रह है, वही तेरा शरीर परिग्रह सच्चा है, भूतका और भविष्यका (क्या) मिथ्या है ? ऐसा पूछनेपर चित्त तू कैसे उत्तर देगा ? ”

“ यदि भन्ते । तुझे ऐसा पूछेंगे ‘ जो तेरा भूतकालका शरीर परिग्रह था ० । ’ ऐसा पूछनेपर भन्ते ! मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा—‘ जो मेरा भूतका शरीर परिग्रह था, वही मेरा परिग्रह मेरा उस समय सच्चा था, भविष्य और वर्तमानके ० असत्य थे । जो मेरा भविष्यमें अन् आगत शरीर-परिग्रह होगा, वही शरीर परिग्रह मेरा उस समय सच्चा होगा, भूत और वर्तमानके शरीर परिग्रह असत्य होंगे । जो मेरा इस समय वर्तमान शरीर परिग्रह है, वही शरीर परिग्रह मेरा (इस समय) सच्चा है, भूत और भविष्यके शरीर परिग्रह असत्य हैं । ऐसा पूछनेपर भन्ते ! मैं यह उत्तर दूँगा । ”

“ ऐसे ही चित्त ! जिस समय स्थूल शरीर परिग्रह होता है, उस समय मनोमय शरीर परिग्रह नहीं कहा जाता, न उस समय अ रूप शरीर-परिग्रह कहा जाता है ; स्थूल शरीर-परिग्रह

ही उस समय कहा जाता है । जिस समय चित्त ! मनोमय शरीर परिग्रह० । जिस समय चित्त ! अरूप शरीर परिग्रह होता है, उस समय 'स्यूत शरीर-परिग्रह है' नहीं कहा जाता, न 'मनोमय शरीर परिग्रह है' कहा जाता है । 'अरूप शरीर परिग्रह है' यही कहा जाता है । जैसे चित्त । गायसे दूध, दूधसे दही, दहीसे नवनीत (= नू), नवनीतसे घी (= सर्पिप्), सर्पिपमे सर्पिप् मड (= घीका सार) होता है । जिस समय दूध होता है, उस समय न दही होता है, न नवनीत०, न सर्पिप०, न सर्पिप् मड०, दूध ही उस समय उसका नाम होता है । जिस समय दही० । नवनीत० । सर्पिप० । सर्पिप् मड० । ऐसे ही चित्त । जिस समय 'स्यूत शरीर परिग्रह होता है० । मनोमय० । अरूप० । यह चित्त । लौकिक सत्तायेँ हैं = लौकिक निरक्तियाँ हैं = लौकिक व्यवहार है = लौकिक प्रवृत्तियाँ हैं, तथागत इनसे विना लिप्त हुये व्यवहार करते हैं । ”

ऐसा कहनेपर पोट्टपाद परित्राजकने भगवान्‌को कहा—

“ आश्चर्य ! भन्ते ॥ आश्चर्य ! भन्ते ॥ ० आजमे आप गौतम मुझे अनलि घट उपासक धारण करें । ”

चित्त हत्थि सारि पुत्त (= चित्र हन्ति मारि पुत्र) ने भगवान्‌को कहा—

“ आश्चर्य ! भन्ते ॥ आश्चर्य ! भन्ते ॥ ० । भन्ते । मे भगवान्‌का शरणागत हूँ, धर्म और भिक्षु सघना भी भन्ते । भगवान्‌के पास मुझे प्रज्ज्या मिले, उपसंपदा मिले । ”

चित्त हत्थि सारि पुत्तने भगवान्‌के पास प्रज्ज्या पाई, उपसंपदा पाई । आयुष्मान् चित्त हत्थिमारिपुत्त उपमन्यन् प्राप्त करनेके थोड़े ही दिन बाद, एकाकी, एकातवासी, प्रमाद रहित उद्योगी, आत्म समी हो, विहार करते हुये, जलदी ही निसर्ग लिये कुछ पुत्र अच्छी तरह धरसे देत्र हो प्रव्रजिन होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्य-फलको, इसी जन्ममें जानकर = साक्षात्कर = पाकर, विहार करने लगे । ‘ जन्म क्षाण होगया, ब्रह्मचर्य प्राप्त हो लिया, करना था, सो कर लिया, और कुट्ट करनेको नहीं रहा । ’ यह जान गय । आयुष्मान् चित्त हत्थि-सारि पुत्त अर्हतामेंसे एक हुये ।

तृतीय-खंड ।

(१)

तेविज्ज-सुत्त (वि पृ. ४५७) ।

ऐसा मेने सुना—एक समय भगवान् कोसल देशमें पांचमौ भिक्षुओंके मठामिश्र सघके साथ बारिका करते, जहाँ मनसाकट नामक कोसलोंका ब्राह्मण प्राग या, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् मनसाकटमें, मनसाकटके उत्तर तरफ अचिरवती नदीक तीर आश्रममें विहार करते थे ।

उस समय बहुत से अभिजात (= प्रसिद्ध) अभिजात ब्राह्मण महाशाल (= महा धनिक) मनसाकटमें निवासकर रहे थे, जैसे कि—चंडिक ब्राह्मण, तारस्प ब्राह्मण, पोक्खर साति ब्राह्मण, जानुस्सोणि ब्राह्मण, तोदेव्य ब्राह्मण और दूसरे भी अभिजात अभिजात ब्राह्मण महाशाल ।

तब चहलकदमीके लिये रहलते हुये, विचरते हुये, वाशिष्ट और भारद्वाजमें रास्तेमें बात उत्पन्न हुई । वाशिष्ट माणवकने कहा—

“यही मार्ग (देसा करनेवालेको) ब्रह्म-सलोकताके लिये जल्दी पहुँचानेवाला, सीधा रे जानेवाला है, जिसे कि यह ब्राह्मण पौष्करसातिने कहा है ।”

भारद्वाज माणवकने कहा—“यही मार्ग है, जिसे कि ब्राह्मण तारक्षने कहा है ।”

वाशिष्ट माणवक भारद्वाज माणवकको नहीं समझा सका, न भारद्वाज माणवक वाशिष्ट माणवकको (ही) समझा सका । तब वाशिष्ट माणवकने भारद्वाज माणवकको कहा—

“यह भारद्वाज ! शाक्य कुलमें प्रसिद्ध शाक्य पुत्र भ्रमण गौतम मनसाकटमें, मनसाकटके उत्तर अचिरवती (= राप्ती) नदीके तीर, आश्रममें विहार करते हैं । उन भगवान् गौतमके लिये ऐसा मंगल कीर्ति शब्द फैल हुआ है—वह भगवान् बुद्ध भगवान् हैं । चलो भारद्वाज ! जहाँ भ्रमण गौतम हैं, वहाँ चले । चलकर इस बातको भ्रमण गौतमसे पूछें । जैसा हमको भ्रमण गौतम उत्तर देंगे, वैसा हम धारण करेंगे ।”

“अच्छा भो !” कह भारद्वाज माणवकने उत्तर दिया ।

तब वाशिष्ट और भारद्वाज (दोनों) माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्क साथ संमोदक कर (कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर धँद गये । एक ओर धँदते हुये वाशिष्ट माणवकने भगवान्से कहा—

“हे गौतम ! रास्तेमें हमलोगार्थ यह बात उत्पन्न हुई । यहाँ है गौतम ! विप्र है, श्रोतृ है, नानावाद हैं ।”

१ ही नि १ १३ । २ युक्तप्रतीके पञ्चावाद गोदा, यदराहच, सुस्तानपुर पारायकी, और जिने, तथागोरखपुर जिनेका कितना ही भाग । ३ चंडिक आपमाद निवामी, तारस्प निवामी, पोक्खरसाति उद्धटा-नामी जानुस्सोणि श्रावस्ती निवामी, तोदेव्य

तृतीय-खंड ।

(१)

तेविज्ज-सुत्त (वि. पृ. ४५७) ।

ऐसा मेने सुना—एक समय भगवान् कोसल देशमें पांचवीं मिश्रुओंक महाभिन्नु-संधके साथ चारिका करते, जहाँ मनसाकट नामक कोसलोंका ब्राह्मण ग्राम था, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् मनसाकटमें, मनसाकटके उत्तर तरफ अचिरवती नदीक तीर आश्रनमें विहार करने थे ।

उस समय बहुत से अभिजात (= प्रसिद्ध) अभिजात ब्राह्मण महाशाल (= महा धनिक) मनसाकटमें निवासकर रहे थे, जैसे कि—^१चंकि ब्राह्मण, चारुम्व ब्राह्मण, पोक्खर माति ब्राह्मण, जानुल्लोणि ब्राह्मण, तोदेव्य ब्राह्मण और दूसरे भी अभिजात अभिजात ब्राह्मण महाशाल ।

तब चहलकत्तीके लिये दहलते हुये, विचरते हुये, वाशिष्ठ और भारद्वाजमें रास्तेमें बात उत्पन्न हुई । वाशिष्ठ माणवकने कहा—

“यही मार्ग (पैसा करनेवालेको) ब्रह्म-संलोकताके लिये जलशी पहुँचानेवाला, सीधा ले जानेवाला है, जिसे कि यह ब्राह्मण पौष्करसातिने कहा है ।”

भारद्वाज माणवकने कहा—“यही मार्ग है, जिसे कि ब्राह्मण तारुक्षने कहा है ।”

वाशिष्ठ माणवक भारद्वाज माणवकको नहीं समझा सका, न भारद्वाज माणवक वाशिष्ठ माणवकको (ही) समझा सका । तब वाशिष्ठ माणवकने भारद्वाज माणवकको कहा—

“यह भारद्वाज ! शाक्य कुलसे प्रसजित शाक्य पुत्र श्रमण गौतम मनसाकटम, मत्सा-कटके उत्तर अचिरवती (= राप्ती) नदीके तीर, आश्रनमें विहार करते हैं । उन भगवान् गौतमके लिये पैसा संगल कीर्ति शब्द फैल हुआ है—यह भगवान् पुत्र भगवान् हैं । चलो भारद्वाज ! जहाँ श्रमण गौतम हैं, वहाँ चले । चलकर इस बातको श्रमण गौतमसे पूछें । जैसा हमको श्रमण गौतम उत्तर देंगे, वैसा हम धारण करेंगे ।”

“अच्छा भो !” कह भारद्वाज माणवकने उत्तर दिया ।

तब वाशिष्ठ और भारद्वाज (दोनों) माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्क साथ संमोदन फल (कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये वाशिष्ठ माणवकने भगवान्से कहा—

“हे गौतम ! रास्तेमें हमलोगोंमें यह बात उत्पन्न हुई । यहाँ हे गौतम ! विप्रद है, विवाद है, नानावाद है ।”

१ दो नि १ १३ । २ युक्तप्रातके फेजाबाद गोंडा, यहराइच, मुन्तानपुर, बारार्षी, और कन्तीक जिले, तथागोरखपुर जिल्हा कितना ही भाग । ३ चंकि आपत्त्यद निवासी, चारुम्व इच्छानगल निवासी, पोक्खरमाति उच्छल-वासी जानुल्लोणि धावस्ती निवासी, तोदेव्य पुरीगाम निवासी ।

“क्या वाशिष्ठ ! तू ऐसा कहता है—‘यही मार्ग० है, जिसे कि ब्राह्मण पौत्र-सन्नि-
हता है’ ? और भारद्वाज मानवक यह कहता है—‘जिसे कि ब्राह्मण ताखने कही है।
ता वाशिष्ठ ! किम विषयमें तुम्हारा विग्रह० है ?”

“हे गौतम ! मार्ग-अमार्गके संबन्धमें ऐतरेय ब्राह्मण तैत्तिरीय ब्राह्मण, छन्दोग
ब्राह्मण, छन्दोग-ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य-ब्राह्मण अन्य अन्य ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते हैं। तब
यह (वैसा करनेवालेको) ब्रह्माकी सलोकता को पहुँचाते हैं। जैसे हे गौतम ! ग्राम या निगमे
अ-दूरमें बहुतसे नाना मार्ग होते हैं, सो भी वे सभी ग्राममें ही जानेवाले होते हैं। ऐसे
हे गौतम ! ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते हैं, ० । ० ब्रह्माकी सलोकताको पहुँचाते हैं।”

“वाशिष्ठ ! ‘पहुँचाते हैं’ कहते हो ? ” “‘पहुँचाते हैं’ कहता हूँ।”

“‘वाशिष्ठ ! पहुँचाते हैं, कहते हो ? ” “‘पहुँचाते हैं’ ० । ”

“वाशिष्ठ ! पहुँचाते हैं, कहते हो ? ” “‘पहुँचाते हैं’ ० । ”

“वाशिष्ठ ! त्रैविध्य ब्राह्मणोंमें क्या एक भी ब्राह्मण है, जिसने ब्रह्माकी अपन
आँखसे देखा हो ? ”

“नहीं हे गौतम । ”

“क्या वाशिष्ठ ! त्रैविध्य ब्राह्मणोंका एक भी आचार्य है, जिसने ब्रह्माकी अपन
आँख से देखा हो ? ”

“नहीं हे गौतम ! ”

“क्या वाशिष्ठ ! त्रैविध्य ब्राह्मणोंका एकभी आचार्य प्राचार्य है० ? ” “नहीं हे गौतम ! ”

“क्या वाशिष्ठ ! त्रैविध्य ब्राह्मणोंके आचार्यकी सातवीं पीढ़ी तकमें कोई है ० ? ”

“नहीं हे गौतम । ”

“क्या वाशिष्ठ ! जो त्रैविध्यब्राह्मणोंके पूर्वज, मन्त्रोंके कर्ता, मन्त्रोंके प्रवक्ता श्री
(धे)—जिनके कि गीत, प्रोक्त, समीहित पुराने मंत्र-गदको आजकल त्रैविध्य ब्राह्मण अनुगाए,
अनुभाषण, करते हैं, आपितको अनुभाषण करते हैं, बाँचको अनु-वाचन करने हैं, जेमे कि अश्वि,
वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अङ्गिरा, भरद्वाज, वाशिष्ठ, कश्यप, शृगु । इन्हीं का
(क्या) यह कहा—जहा ब्रह्मा है, जिसके साथ ब्रह्मा है, जिस विषयमें ब्रह्मा है, इस सब
जानते हैं, हम यह देखते हैं ? ”

“नहीं हे गौतम ! ”

“इस प्रकार वाशिष्ठ ! त्रैविध्य ब्राह्मणोंमें एक ब्राह्मण भी नहीं, जिसने ब्रह्माकी अपनी
आँखसे देखाहो । ० एक आचार्य भी ० । एक आचार्य-प्राचार्य भी ० । सातवीं पीढ़ी
तकने आचार्योंमें भी ० । जो त्रैविध्य ब्राह्मणोंके पूर्ववाले ऋषि ० । और त्रैविध्य ब्राह्मण
ऐसा कहते हैं !—‘ जिसको न जानते हैं, जिसको न देखने है, उसको स लोकताकेलिये हम
मार्ग उपदेश करते हैं ’ । यही मार्ग ब्रह्म सलोकताके लिये जल्दी-पहुँचानेवाला, है ! ”
क्या मानते हो, वाशिष्ठ ! क्या ऐसा होनेपर त्रैविध्य ब्राह्मणोंका ‘कयन अ प्रामाणिकताको
नहीं प्राप्त होजाता ? ”

“अवश्य, हे गौतम ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन अ प्रामाणिकताकी प्राप्ति होजाता है ।”

“अहो ! वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको न जानते हैं, जिसको न देखते हैं, उसकी सलोकताके मार्गका उपदेश करते हैं—यही ० सीधा मार्ग है । यह उचित नहीं है । जैसे वाशिष्ठ ! अन्धोंकी पाँती एक दूसरेमें जुड़ी, पहिलेवाला भी नहीं देखता, बीचवालाभी नहीं देखता, पीछेवालाभी नहीं देखता । ऐसेही वाशिष्ठ ! अन्ध वेणीके समानहो त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन है, पहिले वालेमेंभी नहीं देखा ० । (अतः) उन त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन प्रलापही ठहरता है, ० अर्थात् ०, त्रिंश ० = ३० ० । तो वाशिष्ठ ! क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्यकी तथा दूसरे बहुतसे जनोको, देखते हैं, कि कहाँसे वह उगते हैं, कहाँ गिरते हैं, जो कि (उनकी) प्रार्थना करते हैं, स्तुति करते हैं, हाथ जोड़कर नमस्कार करते घूमते हैं ?”

“हाँ, हे गौतम ! त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्य तथा दूसरे बहुत जनोको देखते हैं । ०”

“तो क्या मानते हो, वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिन चन्द्रसूर्य या दूसरे बहुत जनोको, देखते हैं, कहते ० । क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्यकी सलोकता (=सहज्यता = एक स्थान निवास) के लिये मार्ग का उपदेश कर सकते हैं—‘यद्यपि ऐसा करनेवाले को, चन्द्र सूर्यकी सलोकताके लिये ० सीधा मार्ग है ?’”

“नहीं हे गौतम ।”

“इस प्रकार वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिनको देखते हैं, ० प्रार्थना करते हैं ० । उन चन्द्र सूर्यकी सलोकताके लिये भी मार्गका उपदेश नहीं कर सकते, कि ० यही सीधा मार्ग है, तो फिर ब्रह्माको—जिसे न त्रैविद्य ब्राह्मणोंने अपनी आँखोंसे देखा, ० न त्रैविद्यब्राह्मणोंके पूर्व वाले ऋषियोंने ० । तो क्या वाशिष्ठ ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन अ प्रामाणिक (नहीं) (=अव्याप्तिहीन) ठहरता ?”

“अवश्य, हे गौतम !”

“अरुण वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसे न जानते हैं, जिसे न देखते हैं, उसकी सलोकताके लिये मार्ग उपदेश करते हैं—० यही सीधा मार्ग है । ० यह उचित नहीं । जैसे कि वाशिष्ठ ! पुरुष ऐसा कहे—हम जनपद (=देश) में जो जापद कल्याणी (=देशकी सुशक्तता की) है, मैं उसको चाहता हूँ ० । तब उसको यह पट्टे—हे पुरुष ! जिसको तू नहीं जानता, जिसको तूने नहीं देखा, उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है ॥ ऐसा पूजने पर ‘हाँ’ कहे । तो वाशिष्ठ ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुष का भाषण अ प्रामाणिक नहीं ठहरता ?”

“अवश्यक हे गौतम । ।”

“ऐसे ही हे वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंने ब्रह्माको अपनी आँखोंसे नहीं देखा ० । अहो ! यह त्रैविद्य ब्राह्मण यह कहते हैं—जिसे हम नहीं जानते ० उसकी सलोकता के लिये मार्ग उपदेश करते हैं ० । तो क्या वाशिष्ठ ! ० भाषण अ प्रामाणिक नहीं होता ?”

“अवश्य हे गौतम ! ८”

“साउ, वाशिष्ठ ! अहो ! वाशिष्ठ ! त्रेविद्य ब्राह्मण जिसको नहीं जानते० उपदेश करते हैं । यह युक्त नहीं । जैसे वाशिष्ठ ! कोई पुरुष चोराहेपर महलपर, चढ़नेके लिये सीढ़ी गाने० १० ।”

“अवश्य हे गौतम ! ९”

“साउ, वाशिष्ठ ! ० । यह युक्त नहीं । जैसे वाशिष्ठ ! इस अचिरवती (=रापती) नदीकी धार उदरुने पूर्ण (=समस्तितिका) काठयेया हो, तब पार अर्था=पारगामी=पार गयेपी=पार जानेकी इच्छावाला पुरुष आये, वह इस किनारे पर खड़े हो दूसरे तीरको आह्वान करे-‘हे पार इस पार चले आओ ।’ ‘हेपार ! इस पार चडे आओ’, तो क्या मानो हो, वाशिष्ठ ! क्या उस पुरुषके आह्वानके कारण, या याचनाके कारण, या प्रार्थना के कारण, या लभिमन्त्रके कारण अचिरवती नदीका पारवाला तीर इस पार आ जायेगा ?”

“नहीं हे गौतम ।”

“इसी प्रकार वाशिष्ठ ! त्रेविद्य ब्राह्मण—जो ब्राह्मण बनानेवाले धर्म हैं उनको छोड़कर जो अ ब्राह्मण बनानेवाले धर्म हैं, उनसे युक्त होते हुये कहते हैं—

“(हम) ‘इन्द्रको आह्वान करते हैं, इंद्रानको आह्वान करते हैं, प्रजापतिको आह्वान करते हैं, जताको आह्वान करते हैं, महर्दिको आह्वान करते हैं, यमको आह्वान करते हैं ।’ वाशिष्ठ ! अहो ! त्रेविद्य ब्राह्मण, जो ब्राह्मण बनाने वाले धर्म हैं० उनको श्रेष्ठतर, आह्वान करने कागः काया उठने पर मरनेके बाद ब्रह्माकी सलोकताको प्राप्त टाजायेगा, यह संभव नहीं है ।

“जैसे वाशिष्ठ ! इस अचिरवती नदीकी धार उदक पूर्ण, (करारपर बढे) कौयेको भी पीने लायक हो । ० पार जानेकी इच्छावाला पुरुष आन । वह इसी तीरपर हड साँकलसे पीछे बाँध करके मज्जन बंधासे बंधा हो । वाशिष्ठ ! क्या वह पुरुष अचिरवतीके तीरसे परले तीर चला जायेगा ?”

“नहीं, हे गौतम ।”

“इसी प्रकार वाशिष्ठ ! यहाँ पाँच काम गुण आर्य विनयमे जंजीर कहे जाते हैं, बंधन कहे जाते हैं । कौनसे धाम ? (१) चक्षुसे विज्ञेय इष्ट=कृत=मनाप=प्रिय रूप काम युक्त, रूप रामोत्पादक है । (२) श्रोत्रसे विज्ञेय शब्द = । घ्राणसे विज्ञेय = गंध । (३) जिह्वासे विज्ञेय = रस । (४) काय (=त्वक्) से विज्ञेय = स्पर्श । वाशिष्ठ ! यह पाँच काम गुण० बंधन कहे जाते हैं । वाशिष्ठ ! त्रेविद्य ब्राह्मण इन पाँच काम गुणोंसे मूर्छित, लिप्त, अ-परिणाम दर्शा हैं, इनसे निरुत्पन्नेका ज्ञान न करके (=अनिस्सरण पञ्चा) भोग कर रहे हैं । वाशिष्ठ ! अहो !! यह त्रेविद्य ब्राह्मण, जो ब्राह्मण बनानेवाले धर्म हैं, उन्हें छोड़कर ०, पाँच काम गुणोंको ० भोग करने हुये, कामने बंधनमे बंधे हुये, काया छूटनेपर, मरनेके बाद ब्रह्माओंकी सलोकताको प्राप्त होगे, यह संभव नहीं ।

* कुल अंश क्रम १ ३५ १, मूल ३४ ३४ ३५ में है ।

“ वाशिष्ठ ! इस अविद्यती नदीकी धार०, पुरुष आये, वह इस तीरपर मुह टाँककर छेद जाये । तो ० परले तीर चला जायगा ? ”

“ नहीं, हे गौतम ! ”

“ ठेसे ही, वाशिष्ठ ! यह पाँच नीवरण आर्य विनय (= आर्य धर्म, बौद्ध धर्म) में आवरण भी कहे जाते हैं, नीवरण भी कहे जाते हैं, परि अवनाद (= बंधन) भी कहे जाते हैं । कौनसे पाँच ? (१) कामच्छन् नीवरण, (२) व्यापाद०, (३) स्त्यानमूढ०, (४) आदित्य कौटूहल०, (५) विचिकित्सा० । वाशिष्ठ ! यह पाँच नीवरण आर्य विनयमें आवरण भी० षट्तेजाते हैं । वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मण इन पाँच नीवरण (से) आवृत=गिरत, अवनद=पयवनद (=बंधे) हैं । वाशिष्ठ ! कहो ! त्रैविद्य ब्राह्मण जो ब्राह्मण बनोगाले० पाँच नीवरणासे आवृत० बंधे०, मरनेके बाद ब्रह्माओंकी मनोल्लाको प्राप्त होंगे, यह रुभव नहीं ।

“ तो वाशिष्ठ ! क्या तुमने ब्राह्मणोंके बृद्ध=महल्लका आचार्य प्रवापाको कहते सुना है—ब्रह्मा म परिग्रह है, या अ परिग्रह ? ” “ अ परिग्रह, हे गौतम ! ”

“ स वैर चित्त, या वैर रहित चित्तगाला ? ” “ अवर चित्त हे गौतम । ”

“ म व्यापाद (=श्लोद) चित्त या व्यापाद रहित चित्तगाला ? ” “ अल्लपाद विचि हे गौतम । ”

“ मक्केद (=चित्त मल)-युक्त चित्तगाला या मक्केद चित्त ? ” “ अमक्केद चित्त हे गौतम । ”

“ वरावती (=अपरतत्र, जितेन्द्रिय) या अ वरावती ? ” “ वरावती हे गौतम । ”

“ तो वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मण सपरिग्रह है या अपरिग्रह ? ” “ म परिग्रह, हे, गौतम । ”

“ ० सवैर चित्त० १०। १० सव्यापाद चित्त० १०। १० मरिष्ट चित्त० १०। ०वरावती० १०

“ अ-वरावती हे गौतम ! ”

“ इस प्रकार वाशिष्ठ । त्रैविद्य ब्राह्मण सपरिग्रह हैं, और ब्रह्मा अ परिग्रह हैं । क्या म परिग्रह त्रैविद्य ब्राह्मणोंका परिग्रह रहित ब्रह्माके साथ समान होना, मिलना, हो मरता है ? ”

“ नहीं, हे गौतम ! ”

“ साधु, वाशिष्ठ ! कहो ! सपरिग्रह त्रैविद्य ब्राह्मण काया छोड़ मरनेके बाद परिग्रह (=स्त्री) रहित ब्रह्माके साथ मल्लोक्ताको प्राप्त करेंगे, यह संभव नहीं । ”

“ ० सवैर चित्त त्रैविद्य ब्राह्मण०, अवैरचित्त ब्रह्माके साथ मल्लोक्ता० संभव नहीं । ०सव्यापाद चित्त० । ०संक्रिष्ट चित्त० । ०वरावती० ।

“ वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मण वेरास्ते या संसे हैं, फंसकर विपादको प्राप्त हैं, सूत्रेय मानो तीर रहे हैं । इसलिये त्रैविद्य ब्राह्मणोंकी त्रिविद्या धीरान (=कानार) भी कही जाती है, विपिन (=जंगल) भी कही जाती है, व्यमन (=आफत) भी कही जाती है । ”

पसा कहनेपर वाशिष्ठ माणवकने भगवान्को कहा—“ मेने यह सुना है, हे गौतम । कि भ्रमण गौतम ब्रह्माओंकी मल्लोक्ताका मार्ग जानना है ? ”

“ तो वाशिष्ठ ! मनमाकट यहांसे समीप है ?, मनमाकट यहांसे दूर नहीं है ? ”

“ हां ! हे गौतम मान्माकट यहांसे समीप है, यहांसे दूर नहीं है । ”

“ तो वाशिष्ठ ! यहां एक पुरुष है । (जो कि) मनसा-कट्टीमें पड़ा हुआ है, यदा है । उसको मनसाकट्टीका रास्ता पूछें । वाशिष्ठ ! मनमाकटमें जन्मे, वड़े उस पुरुषको, मान्माकटका मार्ग पूछनेसे (उत्तर देनेमें) क्या देरी या जड़ता होगी ? ”

“ नहीं हे गौतम । ”

“ तो किम कारण ? ”

“ हे गौतम । उट पुरुष मनमाकटमें उत्पन्न और बड़ा है, उसको मनमाकटके सभी मार्ग सुविदित हैं । ”

“ वाशिष्ठ ! मनमाकटमें उत्पन्न और बड़े हुये उसपुरुषको मनमाकटका मार्ग पूछनेपर देरी या जड़ता हो सकती है, किंतु तयागतको ब्रह्मलोक या ब्रह्मलोक जानेवाला मार्ग पूछने पर, देरी या जड़ता नहीं होसकती । वाशिष्ठ ! मे प्रह्लाको जानता हूं, ब्रह्मलोकको और ब्रह्मलोक गामिनी-प्रतिपत् (= ब्रह्मलोकके मार्ग) कोभी, और जैसे मार्गास्त्व होनेसे ब्रह्मलोकमें उत्पन्न होता है, उसे भी जानता हूं । ”

ऐसा कहनेपर वाशिष्ठ माणनकने भगवान्को कहा—

“ हे गौतम ! मने यह सुना है, अमण गौतम ब्रह्माओं की सलोकताका मार्ग उपदेश करता है । अच्छा हो आप गौतम हम ब्रह्माकी सलोकताके मार्ग (का) उपदेश करें हे गौतम ! आप (हम) ब्रह्मण संस्तानका उद्धार करें । ”

“ तो वाशिष्ठ ! सुनो, अच्छी प्रकार मनमें (धारण) करो, कहता हूं । ”

“ अच्छा भो ! ” वाशिष्ठ माणनकने भगवान्को कहा । भगवान्ने कहा —

“ वाशिष्ठ ! यहां लोकमें तयागत उत्पन्न होते हैं । ०१ इस प्रकार भिक्षु शरीरके चीनर, और पेटके भोजनसे सन्तुष्ट होता है । इस प्रकार वाशिष्ठ । भिक्षु शील-संपन्न होता है । ०२ यह आपको इन पांच नीवरणोंसे मुक्त देख, प्रसुदित होता है । प्रसुदित प्रीति प्राप्त करता है, प्रीति-मानका शरीर स्थिर शांत होता है । प्रशब्ध (= शांत) शरीरवाला सुख अनुभव करेगा, सुखितका चित्त एकाम्र होता है ।

“ यह मित्र भाव युक्त चित्तसे एक दिशाको पूर्ण करके विहरता है, ० इसी दिशा ०, ० तीसरी दिशा ०, ० चौथी दिशा ० इसी प्रकार ऊपर नीचे आड़े-बेड़े सम्पूर्ण मनमें, सबकेलिये सारेही लोकको मित्र भाव-युक्त, विपुल, महान्, अ-प्रमाण, वेर-रहित, द्रोह रहित चित्तसे स्पर्श करता विहरता है । जैसे वाशिष्ठ । बलवान् शंख ध्मा (= शंख बजानेवाला) थोड़ी ही मिहानत से चारों दिशोंको गजा देवा है । वाशिष्ठ ! इसी प्रकार मित्र भावना से भाविन, चित्तकी विमुक्ति (= छुटने) से जितने प्रमाणों काम किया है, वह वहाँ अवशेष = खतम नहीं होता । यह भी वाशिष्ठ । ब्रह्माओंकी सलोकताका मार्ग है ।

“और फिर वाशिष्ठ ! कृष्णा युक्त चित्तसे एक दिशाको० । मुदिता युक्त चित्तसे०० , उपेक्षा-युक्त चित्तसे = सारेही ओङ्को उपेक्षा-युक्त विपुल, महान्, अ प्रमाण, वैर रहित, द्रोह-रहित चित्तसे स्पर्श करके विहरता है । जने वाशिष्ठ ! वल्लवान् नील म्मा ० । वाशिष्ठ ! इसी प्रकार उपेक्षासे भावित चित्तकी विमुक्तिसे जितने प्रमाणमें काम किया गया है, वही अवशेष = खतम नहीं होता । यह भी वाशिष्ठ ! ब्रह्माणाकी सलोकताका मार्ग है ।

“तो वाशिष्ठ ! इस प्रकारके विहार धारा भिन्नु, अ-परिग्रह है, या अ परिग्रह ?”

“अ परिग्रह है गौतम ।”

“अ वेर-चित्त या अ वेर चित्त ?” “अ वेर चित्त है गौतम ।”

“अ व्यापाद चित्त या अ व्यापाद चित्त ?” “अ व्यापाद चित्त है गौतम ।”

“संस्सिट्ट (= मलिन) चित्त या अ संस्सिट्ट चित्त ?” “अ-संस्सिट्ट चित्त है गौतम ।”

“वदा वत्ता (= जितेन्द्रिय) या अ वदा-वत्ता ?” “वदा वत्ता है गौतम ।”

“इस प्रकार वाशिष्ठ ! भिन्नु अ परिग्रह है, ब्रह्मा अ परिग्रह है, तो क्या अपरिग्रह भिन्नुकी अ-परिग्रह ब्रह्माके साथ समानता है, नैल है ?” “हां ! है गौतम ।”

“साधु, वाशिष्ठ ! वह अ परिग्रह भिन्नु काया छोड़ मरनेसे याद, अपरिग्रह ब्रह्माकी सलोकता को प्राप्त होने, यह संभव है । इस प्रकार भिन्नु अ वेर चित्त है० । वदा वत्ता भिन्नु काया छोड़ मरनेके बाद वदावत्ता ब्रह्माकी सलोकताको प्राप्त होवे, यह संभव है ।

ऐसा कहनेपर वाशिष्ठ और मारदाज माणवर्कोने भगवान् को कहा—

“आश्रयं हे गौतम । आश्रयं हे गौतम !० आजसे आप गौतम इस (लोगों)को अंशलि यह धारणागत उपासक धारण करें ।”

अम्बदठ-सुत्त (वि. पृ. ४५७) ।

‘ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ मित्रोंके सहान् मित्र-संघके साथ चारिका करते हुए, जहाँ इच्छार्त्तगल नामक कोमलोंका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् इच्छार्त्तगलमें इच्छार्त्तगल घनगण्डमें विहरते थे ।

उस समय पौष्कर साति ब्राह्मण, जनावीर्ण, तृणकाष्ठ उद्भक्त चान्य सहित कोसल-राज प्रसेन जिह्वा-द्वारा दत्त, राजा-भोग्य, राज दायज, धन-देय उद्भक्ताका स्वामित्व करता था ।

पौष्करसाति ब्राह्मणने सुना—दाक्ष्य कुलसे प्रसूत दाक्ष्य पुत्र धमण गौतम० कोमल-देशमें चारिका करते, इच्छा नगलमें० विहार कर रहे हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा संगल कीर्ति शब्द उठा हुआ है० । इस प्रकारके अर्हताका दर्शन अच्छा होता है । उस समय पौष्कर साति ब्राह्मणका शिष्य अम्बदठ नामक माणवक (था, जो कि), अध्यापक मंत्र धर, निष्णु केदुभ (= वल्लभ) अक्षर-प्रभेद (= शिक्षा निरूपक)-सहित तीनों वेद, पाँचवें इतिहासका पारङ्गत, पद ज्ञ, वैशाकाण, लोकायत (शास्त्र) तथा महापुराणलक्षण (= सामुद्रिक-शास्त्र) में परिपूर्ण, अपनी पटिताई, प्रवचामें—‘जो मैं जानता हूँ, सो तू जानता है, जो तू जानता है वह मैं जानता हूँ’ (कहकर आचार्य द्वारा) अनुपातप्रतिज्ञात (= स्वीकृत) था ।

तत्र पौष्करसाति ब्राह्मणने अम्बदठ माणवकको सन्वोधित किया—

“ तात ! अम्बदठ । दाक्ष्य कुलोत्पन्न० विहार करने हैं,० इस प्रकारके अर्हताका दर्शन अच्छा होता है । आओ तात ! अम्बदठ ! जहाँ धमण गौतम हैं, वहाँ जाओ । जानूँ धमण गौतमको जानो, कि आप गौतमका शब्द यथार्थ फेला हुआ है, या अ यथार्थ ? क्या० वैसे हैं या नहीं, जिसमें कि हम उन आप गौतमको जान ।

“ कैसे भो ! मे उन गौतमको जानूँगा—कि आप गौतम० वैसे हैं या नहीं ? ”

१ श्री नि ११ ।

२ अ क “ भगवान्की चारिका दो प्रकारकी होती थी—स्वरित-चारिका, और अस्वरित चारिका ।’ दूर योषनीय मनुष्योंको देखकर, उसके योषके लिये सहसा गमन, स्वरित-चारिका है । यह महाकाश्यप स्वविरके प्रत्युद्गमन (= अगमनी) आदिमें जानना चाहिये । भगवान्, महाकाश्यप स्वविरके प्रत्युद्गमनके लिये पुरु मुहूर्तमें तीन गन्धूति (= ३ योजन) मार्ग चले गये, आलवकके लिये सोस योजन, उतना ही अंगुलि-मालक लिये, पुस्कम्पातिके लिये ४५ योजन, महाकप्पिनक लिये १२० योजन, घनिकके लिये १०७ योजन गये । धर्म सेनापति (= सारिपुत्र) के शिष्य ब्रह्मसी तिप्प धामणेरके लिये १२० योजन तीन गन्धूति गये । । यह त्वरित चारिका है । जो गाँव निगमके क्रमसे प्रति दिन योजन, अर्द्ध योजन करके, पिडचार करते, लोकानुप्रद करते गमन करना है, यह अ त्वरित चारिका है । चालक (पौष्करसाति) तीनों वेदोंमें पारङ्गत, पंडित = व्यक्त हो, जम्बूद्वीपमें अथ ब्राह्मण हुआ । दूसरे समय उसने कोसल-राजको (अपना) गुण (= शिल्प) दिखलाया । तत्र उसके शिल्पसे प्रसन्न हो राजाने, उद्भक्ता नामक महानगरको ब्रह्म देय किया । ”

“ तात । अम्वट्ट ! हमारे मंत्रोमे यत्तोस महा पुरुष-गुण आये ह । जिनसे युक्त महा पुरुषकी दो ही गतियाँ होती हैं, तीसरी नहीं । यदि वह धरमें रहता है, ० चक्रवर्ती राजा होता है । यदि धरसे वेधर हो प्रयजित होता है, अर्हत् सम्यक् संबुद्ध होता है । तात । अम्वट्ट ! मे मन्त्रोका दाता हूँ, तुम मन्त्रोके प्रतिगृहीता हो । ”

पौष्कर-साति ब्राह्मणको “हाँ भो” कह अम्वट्ट माणवर, आसनसे उठ, अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, घोड़ीके रथपर चढ़, बहुत माणवकोंके साथ जिधर इच्छा-गल वन संड था, उधरको चला । जितनी रथकी भूमि थी, रथसे जाकर, यानसे उतर, पैदलही आराममें प्रविष्ट हुआ । उस समय बहुतमे भिक्षु पुछो जगहमें रहल रहे थे । तब अम्वट्ट माणवर जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गया, जाकर उन भिक्षुओं को बोला —

“भो ! आप गौतम इस समय कहा विहार कर रहे हैं ? हम आप गौतमके दर्शनके लिये यहाँ आये हैं । ”

तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—यह कुलीन प्रसिद्ध अम्वट्ट माणवर, अभिजात (= प्रख्यात) पौष्कर साति ब्राह्मणका शिष्य है । इस प्रकारके कुल पुत्रोंके साथ क्या संलाप भगवान्को सारी नहीं होता । (और) अम्वट्ट माणवरको कहा—

“अम्वट्ट ! यह द्वार-नन्द विहार है, यहाँ चुपचाप धीरे ने जाऊ, यरादेमें (= पलित्) प्रवेशकर लासन्, जजीरको खग्याओ, तालेको हिलाओ । भगवान् तुम्हारे स्थि द्वार खोल देंगे । ”

तब अम्वट्ट माणवरने जहाँ द्वार नंद विहार (= निरासवर) था, चुपचाप धीरे ने पड़ा जा० तालेको हिलाया । भगवान्ने द्वार खोल दिया । अम्वट्ट माणवरने प्रवेश किया । (दूसरे) माणवरोंने भी प्रज्ञा कर भगवान्के साथ समोदन किया (और) एक ओर बैठ गये । किंतु अम्वट्ट माणवर बैठे हुये भी, भगवान्के रहलते वक्त कुछ पूछता था, पड़े हुये भी बैठे हुये, भगवान्के साथ० ।

तब भगवान्ने अम्वट्ट माणवरको यह कहा—

“अम्वट्ट ! क्या वृद्ध = महल्लक आचार्य प्राचार्य ब्राह्मणोंके साथ क्या-संलाप, ऐसेही होता हैं, जैसेकि तू चलते पड़े बैठ हुये मरसाथ कर रहा है ? ”

“नहीं हे गौतम ! चलते ब्राह्मणके साथ चलने हुये, खड़े ब्राह्मणके साथ पड़े हुये, बैठ ब्राह्मणके साथ घटे हुये बात करना चाहिये । सोये ब्राह्मणके साथ सोये बातकर सन्ते है । मित्ति जो हे गौतम ! मूंडक, समण, इन्ध, काले, धक्का (= वज्र)के पैरकी संताप हैं, उनके साथ ऐसेही क्या संलाप होता है, जन्ताकि अगर गौतमके साथ । ”

“अम्वट्ट ! अर्थीकी भाँति तेरा यहाँ आना हुआ है । (मसुअ) निम्न अर्थके लिये आये, उसी अर्थको सममें करना चाहिये । अम्वट्ट ! तूने (गुरुकुल) नहीं धाम किया है; क्या वासको विनाही (गुरुकुल) वासका अभिमानी है ? ”

तब अम्वट्ट माणवरने भगवान्के (गुरुकुल) अ-वास करने से कुपित हो असंतुष्ट हो,

अम्बद्व-सुत्त (वि. पृ. ४५७) ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ मिश्रुओंके महान् मिश्रु-संघके साथ चारिका करते हुए, जहाँ इच्छानगल नामक कोमलोका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् इच्छानगलमें इच्छानगल घनारण्यमें विहरते थे।

उस समय पौष्करसाति ब्राह्मण, जनासीर्ण, लृणकाष्ठ उदक धान्य-सहित कोसल-राज प्रमेन जिह्-द्वारा दत्त, राजा-भोग्य, राज दायज, ब्रह्म-देय उक्कट्टाका स्वामित्व करता था।

पौष्करसाति ब्राह्मणने सुना—शाक्य कुलसे प्रसवित शाक्य पुत्र धमण गौतम० कोमल-क्षेत्रमें चारिका करते, इच्छा नगलमें० विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल कीर्ति शब्द उठा हुआ है०। इस प्रकारके अर्हंतोंका दर्शन अच्छा होता है। उस समय पौष्करसाति ब्राह्मणका शिष्य अम्बद्व नामक माणवक (था, जो कि), अध्यापक मंत्र धर, निषण्ण केट्टम (= कयप) अक्षर-प्रभेद (= शिक्षा निरक्त)-सहित तीनों वेद, पाँचवें इतिहासका पारङ्गु, पद ज्ञ, वेषाकरण, लोकायत (दास) तथा महापुरपलक्षण (= सामुद्रिक-शास्त्र) में परिपूर्ण, अपनी पंडिताई, प्रवचनमें—‘जो मे जानता हूँ, सो तू जानता है, जो तू जानता है वह मैं जानता हूँ’ (कहकर आचार्य द्वारा) अनुज्ञातप्रतिज्ञात (= स्वीकृत) था।

तब पौष्करसाति ब्राह्मणने अम्बद्व माणवकको संजोधित किया—

“ तात ! अम्बद्व ! शाक्य कुलोत्पन्न० विहार करने हैं,० इस प्रकारके अर्हंतोंका दर्शन अच्छा होता है। आओ तात ! अम्बद्व ! जहाँ धमण गौतम हैं, वहाँ आओ। जाकर धमण गौतमको जानो, कि आप गौतमका शब्द यथार्थ पछा हुआ है, या अ यथार्थ ? क्या० धर्म है या नहीं, जिसमें कि हम उन आप गौतमको जान।

“ वेसे भो ! मैं उन गौतमको जानूँगा—कि आप गौतम० वेसे हैं या नहीं ? ”

१ दी नि ११।

२ अ क “ भगवान् की चारिका दो प्रकारकी होती थी—स्वरित-चारिका, और अस्वरित-चारिका। ” दूर बोधनीय मनुष्यको देखकर, उसके बोधके लिये सहसा गमन, स्वरित चारिका है। यह महाकादयप स्थविरके प्रत्युद्गमन (= अगवान्) आदिमें जानना चाहिये। भगवान्, महाकादयप स्थविरके प्रत्युद्गमनके लिये, एक मुहूर्तमें तीन गव्यूति (= ३ योजन) मार्ग चले गये, आलवकके लिये तीस योजन, उतना ही अगुलि-मालके लिये, पुस्कुसातिके लिये ४५ योजन, महाकप्पिनके लिये १२० योजन, धनियके लिये १०० योजन गये। धर्म सेनापति (= सारिपुत्र) के शिष्य बनवासी तिप्प धामणेरके लिये १२० योजन तीन गव्यूति गये। । यह स्वरित चारिका है। जो गाँव निगमके क्रमसे प्रति दिन योजन अर्द्ध योजन करके, पिदचार करते, लोकानुपह करते गमन करता है, यह अ स्वरित चारिका है। बालक (पौष्करसाति) तीनों वेदोंमें पारङ्गु, पंडित (= व्यक्त) हो, जम्बूद्वीपमें अग्र ब्राह्मण हुआ। दूसरे समय उसने कोसल-राजको (अपना) गुण (= शिल्प) दिखलाया। तब उसके शिल्पसे प्रसन्न हो राजाने, उक्कट्टा नामक महानगरको ब्रह्म देय किया।

“ तात ! अम्वट्ट ! हमारे मंत्रोमे यत्तीस महा पुरप-रक्षण आये है । जिनसे युक्त महा पुरपकी दो ही गतियां होती है, तीसरी नहीं । यदि वह घरमें रहता है, चक्रवर्ती राजा होता है । यदि घरसे बेघर हो प्रयत्नित होता है, अहत् सम्यक् संबुद्ध होता है । तात ! अम्वट्ट ! मैं मन्त्रोका दाता हूँ, तुम मन्त्रोक्त प्रतिगृहीता हो । ”

पौप्पर माति ब्राह्मणको “हां भो” कह अम्वट्ट माणवक, आसनसे उठ, अभिग्रासन कर, प्रदक्षिणा कर, घोड़ीके रथपर चढ़, बहुत माणवकोंके साथ जिधर इच्छा-गल् वन संड था, उधरको चला । जितनी रथकी मूमि थी, रथसे जाकर, पानमे उतर, पैदलही आराममें प्रविष्ट हुआ । उस समय बहुतसे भिक्षु गुहां जगहमें रहल्लहे थे । तब अम्वट्ट माणवक जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गया, जाकर उन भिक्षुओं को बोला —

“भो ! आप गौतम इस सप्रय कहा विहार कर रहे हैं ? हम आप गौतमके दर्शनके लिये यहाँ आये हैं । ”

तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—यह कुलीन प्रसिद्ध अम्वट्ट माणवक, अभिज्ञात (= प्रख्यात) पौप्पर माति ब्राह्मणका शिष्य है । इस प्रकारके कुछ पुत्रों के साथ कया संलाप भगवान्को भारी नहीं होता । (और) अम्वट्ट माणवकको कहा—

“अम्वट्ट ! यह द्वार-यन्द विहार है, यहा चुपचाप धीरे से जाकर, बसगमे (= अलिप्त) प्रवेशकर खासकर, जजीरको म्पग्टाओ, ताण्को हिलाओ । भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोल देंगे । ”

तब अम्वट्ट माणवकने जहाँ द्वार यद विहार (= निगमवर) था, चुपचाप धीरे से वहा जा-ताण्को हिलाया । भगवान्ने द्वार खोल दिया । अम्वट्ट माणवकने प्रवेश किया । (दूसरे) माणवकोंने भी प्रवेश कर भगवान्के साथ समोदन क्रिया (और) एक ओर बैठ गये । किन्तु अम्वट्ट माणवक बैठ हुये भी, भगवान्के दहलते वक्त कुछ पूछरहा था, लड़े हुये भी बैठे हुये, भगवान्के साथ० ।

तब भगवान्ने अम्वट्ट माणवकको यह कहा—

“अम्वट्ट ! क्या तुव = महल्लक आचार्य प्राचार्य ब्राह्मणोंके साथ कया संलाप, ऐतेही होता है, जैतेकि तू चलते खड़े बैठे हुये मेरेसाथ कर रहा है ? ”

“नहीं हे गौतम ! चलते ब्राह्मणके साथ चलते हुये, खड़े ब्राह्मणके साथ खड़े हुये, बैठे ब्राह्मणके साथ बैठे हुये यात करना चाहिये । सोये ब्राह्मणके साथ सोये वातकर सकते हैं । किन्तु जो हे गौतम ! मुंडक, भ्रमण, इन्ध, काले, प्रह्ला (= वंश)के पैरकी संतान हैं, उनके साथ ऐसेही कया संलाप होता है, जैसाकि आप गौतमके साथ । ”

“अम्वट्ट ! अर्थोंकी मांति तेरा यहाँ आना हुआ है । (मनुष्य) जिन अर्थोंके लिये आये, उसी अर्थको मनमें करार चाहिये । अम्वट्ट ! तूने (गुरुकुल) नहीं वास किया है; क्या वासकर बिनाही (गुरुकुल) वासकरा अभिमानी है ? ”

तब अम्वट्ट माणवकने भगवान्के (गुरुकुल) अ वास कहने से कुपित हो अमंगुष्ट ही,

भगवान्को ही खुशामते (=सुन्तेन्तो) भगवान्को ही निन्दते, भगवान्को ही ताना देते 'श्रमण गौतम दुष्ट (=पापिक) होगा' (सोच) यह कहा—

“हे गौतम ! शाक्य जाति चंड है । हे गौतम ! शाक्य जाति क्षुद्र (=लघुक) है । हे गौतम ! शाक्य जाति बदमाश (=रभस) है । नीच (इष्म) समान होनेसे शाक्य ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते, ब्राह्मणोंका गौरव नहीं करते, ० नहीं मानते, ० नहीं पूजते, ० नहीं अपचय करते । हे गौतम ! सो यह अच्छा =अयोग्य है, जो कि नीच, नीच समान शाक्य, ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते ० ।”

इस प्रकार अम्बट्टो शाक्योपर यह प्रथम इन्ध्यावाद (=नीच करना) कह, आपेक्ष किया ।

“अम्बट्ट ! शाक्योंने तेरा क्या कसूर किया है ?”

“हे गौतम ! एक समयमें आचार्य घा० पौष्करसातिके किमी कामसे कपिलवस्तु गया । (वहाँ) जहाँ शाक्योंका संस्थागार (=प्रजातंत्र भवन) है, वहाँ गया । उस समय बहुत से शाक्य तथा शाक्य कुमार रूस्थागारमें ऊँचे आसनोपर, एक दूसरे को अंगुली गड़ते हँस रहे थे, खेल रहे थे, मुझेही मानो हँस रहे थे । किमीने मुझे आसनपर बठने को नहीं कहा । सो यह गौतम ! अच्छा =अयुक्त है, जो यह इन्ध्या तथा इन्ध्या-ममान शाक्य ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते ० ।”

इस प्रकार अम्बट्ट माणवकने शाक्योपर दूसरा इन्ध्यावाद का आक्षेप किया ।

“लड्डकिका चिद्धिया भी अम्बट्ट ! अपने घोंसलेपर स्वच्छंद आलापिनी होती हैं । कपिलवस्तु शाक्योंका अपना (घर) है, अम्बट्ट ! इस थोड़ी बातसे तुम्हे अमर्ष न करना चाहिये ।”

“हे गौतम ! चार वण हैं,—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र । इनमें हे गौतम ! क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह तीन वर्ण, ब्राह्मण के ही सेवक हैं । गौतम ! सो यह ० अयुक्त है ० ।”

इस प्रकार अम्बट्ट माणवकने शाक्योपर तीसरा इन्ध्यावादका आक्षेप किया । तब भगवान् को यह हुआ—यह अम्बट्ट माणवक बहुत बड़ बड़कर शाक्योपर इन्ध्यावादका आक्षेप कर रहा है, क्यों न मैं गोत्र पूछूँ । तब भगवान्ने अम्बट्ट माणवक को कहा—

“किस गोत्रवे हो, अम्बट्ट !”

“कृष्णायन हूँ, हे गौतम ।”

“अम्बट्ट ! तुम्हारे पुराने नामगोत्रके अनुसार, शाक्य आर्य (=स्वामि)-पुत्र होते हैं, । तुम शाक्योंके दासी पुत्र हो । अम्बट्ट ! शाक्य, राजा इक्ष्वाकु (=ओक्काक) को पितामह धारण करते (=मानते) हैं, पूर्व कालमें अम्बट्ट ! राजा इक्ष्वाकुने अपनी प्रिया =मनापा रानीके पुत्रको राज्य देने की इच्छासे, ओक्कामुख (=उल्का मुख), करण्ड, हत्थिनिक, और सिनीसुर (नामक) चार बड़े लड़कोंको राज्यसे निर्वासित कर दिया । वह निर्वासित हो, हिमालयके पास सरोवरके किनारे (एक) बड़े शाक वनमें वास करने लगे । जातिके

विगहनेके दरसे अपनी बहिनोके साथ उन्होंने संघाम (=संभोग) किया । तब अम्बट्ट ! राजा इन्धवाकुने अपने अमात्यो और दरबारियो को पूछा—'कहाँ है भो ! इस समय कुमार ?'

'देव ! हिमवान्के पास सरोवरके किनारे महाशाक वन (=याक मड) है, वहाँ हम वक् कुमार रहते हैं । वह जातिके विगहनेके दरसे अपनी बहिनोके साथ संघाम करने हैं ।'

'तब अम्बट्ट ! राजा इन्धवाकुने उदात्त कहा—'अहो ! कुमार ! शाक्य (=समर्थ) हैं रे ! महाशाक्य हैं रे कुमार !' तबसे अम्बट्ट ! वह शाक्यके नामही से प्रसिद्ध हुये, वही (=इन्धवाकु) उनका पूर्णपुरुष था । अम्बट्ट ! राजा इन्धवाकुकी पत्नी नामका दासी थी । उसे कृष्ण (=कण्ह) नामक पुत्र पैदा हुआ । पैदा होते ही कृष्णने कहा—'अम्मा ! धोओ मुझे, अम्मा !' पहलाओ मुझे, इस गंदगी (=अशुचि)से मुझे मुक्त करो, मे तुम्हारा काम आऊगा ।' अम्बट्ट ! जैसे आजकल मनुष्य पिशाचोको देखकर 'पिशाच' कहते हैं, उसे ही उस समय पिशाचोको, कृष्ण कहते थे । उन्होंने कहा—इसो पैदा होते ही ज्ञात को, (अतः यह) 'कृष्ण पैदा हुआ', 'पिशाच पैदा हुआ' । इसीसे आगे कृष्णायन प्रसिद्ध हुये, वह कृष्णायनो का पूर्व पुरुष था । इस प्रकार अम्बट्ट ! तेर माता पिताआके गोत्रको दयाल करके, शाक्य आर्य पुत्र होते हैं, तू शाक्योका दासी पुत्र है ।'

ऐसा कहनेपर उन माणवकोने भगवान्को कहा—

'आप गौतम ! अम्बट्ट माणवको कड़े दाम्नी पुत्र वादसे मत लजार्ने । हे गौतम ! अम्बट्ट माणवक सुजात है, कुल पुत्र है०, बहुधृत०, सुनका०, पंडित है । अम्बट्ट माणवक इस बातमें आप गौतमके साथ वाद कर सकता है ।'

तब भगवान्ने उन माणवकोको कहा—

'यदि तुम माणवरोको होता है—अम्बट्ट माणवक दुजात है, ०अ कुलपुत्र है, ०अल्प धृत०, ०दुवक्ता०, दुष्प्रज्ञ (=अ पंडित)० । अम्बट्ट माणवक श्रमण गौतमक साथ इस विषयमें वाद नहीं कर सकता । तो अम्बट्ट माणवक वड, तुम्हीं इस विषयमें मेरे साथ वाद करो । यदि तुम माणवकोको ऐसा है—अम्बट्ट माणवक सुजात है० । ० । तो तुम लोभ ग्रहरो, अम्बट्ट माणवको मेरे साथ वाद करने दो ।'

'हे गौतम ! अम्बट्ट माणवक सुजात है० । अम्बट्ट माणवक इस विषयमें आप गौतमके साथ वाद कर सकता है । हमलोभ लुप रहते हैं । अम्बट्ट माणवक हा आप गौतमक साथ इस विषयमें वाद करेगा ।'

तब भगवान्ने अम्बट्ट माणवकोको कहा—

'अम्बट्ट ! यह तुझपर धर्म-संबन्धी प्रश्न आता है, न झुंझा होते भी उत्तर दना चाहिये, यदि नहीं उत्तर दगा, या झूठ उघर करेगा, या लुप होगा, या चला जायेगा, तो यहीं तेरा दिग्ग मात टुकड़े हो जायगा । तो अम्बट्ट ! क्या तुमने बृद्ध=महत्त्वक ब्राह्मणा आचार्य प्राचार्योश्रमणोसे सुना है (कि) कबसे कृष्णायन हैं, और उनका पूर्ण पुरुष कौन था ?'

ऐसा पूछनेपर अम्बट्ट माणवक लुप होगया ।

दूसरीबार भी भगवान्ने अम्बट्ट माणवकोका यह पुष्ण-० ।

तत्र भगवान् नो अम्वष्ट माणवकं कथा —

“अम्वष्ट ! उत्तर नो, यह तुम्हारा सुप रहनेका समय नहीं । जो कोई तथागतसे तीव्रतर स्वधर्म-संबन्धी प्रश्न पूछे जानेपर भी उत्तर नहीं देगा, उसका शिर यहीं सात टुकड़े हो जायगा ।”

उस समय वज्रपाणि यक्ष उठे भारी आदीप्त = सप्रज्वलित = सप्रकाश लोह खंड (= अय कूट) को लेकर, अम्वष्ट माणवकके ऊपर आकाशमें खड़ा था — ‘यदि यह अम्वष्ट माणवक तथागतसे तीव्रतर स्वधर्म-संबन्धी प्रश्न पूछे जानेपर भी उत्तर नहीं देगा, (तो) यहीं इसके शिरको सात टुकड़े करेंगा ।’ उस वज्र-पाणि यक्षको (या तो) भगवान् देखते थे, या अम्वष्ट माणवक । तब उसे देख अम्वष्ट माणवक भयभीत, उद्ध्विग्न, रोमांचित हो, भगवान् के प्राण = लयन = शरण चाहता, बठर भगवान् के बोला —

“क्या थाप गौतमने कहा, फिरसे आप गौतम कहें तो ?”

“तो क्या मानने दो, अम्वष्ट ! क्या तुमने सुना है ?”

“ऐसा ही है गौतम । जता कि आप ने कहा । तबसे ही कृष्णायन हुये, और वही कृष्णायनोका पूर्व पुरुष था ।”

ऐसा कहनेपर माणवक उग्राट्ट = उग्रशब्द = महा-शब्द (= कोलाहल) करने लगे —

“अम्वष्ट माणवक दुजात है । अ-कुलपुत्र है । अम्वष्ट माणवक शाक्योंका दासी पुत्र है । शाक्य, अम्वष्ट माणवकके आर्य (= स्यामि)-पुत्र होते हैं । सत्यवादी भ्रमण गौतम को हम अश्रद्धेय करना चाहते थे ।”

तत्र भगवान् को यह हुआ — ‘यह माणवक अम्वष्ट माणवकको दासी पुत्र कहकर बहुत अधिक लज्जात है, क्या न मे (इसे) छुड़ाऊँ’ । तत्र भगवान् ने माणवको को कहा —

“माणवको ! तुम अम्वष्टमाणवक को दासी-पुत्र कहकर बहुत अधिक मत लजवाओ । वह कृष्ण महान् ऋषि थे । उन्होंने दक्षिण देशमें जाकर ब्रह्मसंन पदकर, राजा इक्ष्वाकुके पास जा क्षुद्र रूपी कन्याको मागा । तब राजा इक्ष्वाकुने- ‘अरे यह मेरी दासीका पुत्र होकर क्षुद्र-रूपी कन्याको मांगता है’ (सोच), क्रुपित हो असन्तुष्ट हो, बाण चढ़ाया । लेकिन उस बाणको न वह छोट सकता था, न समेट सकता था । तब अमात्य और पार्यद (= दर्बारी) कृष्ण ऋषिके पास जाकर बोले —

‘भद्रन्त ! राजाका मंगल हो, भद्रन्त ! राजाका मंगल (= स्वस्ति) हो ।’

‘राजाका मंगल होगा, यदि राजा नीचेकी ओर बाण (= क्षुरप्र) को छोड़ेगा । (लेकिन) जितना राजाका राज्य है, उतनी पृथ्वी विदीर्ण हो जायगी ।’

‘भद्रन्त ! राजाका मंगल हो, जनपद (= देश) का मंगल हो ।’

‘राजाका मंगल होगा, जनपदका भी मंगल होगा, यदि राजा ऊपरकी ओर बाण छोड़ेगा, (लेकिन) जहा तक राजाका राज्य है । वहा सात वर्ष तक वर्षा न होगी ।’

‘भद्रन्त ! राजाका मंगल हो जनपदका मंगल हो, देव भी वर्षा करें ।’

‘देवभी क्या करैगा, यदि राजा ज्येष्ठ कुमारपर बाण छोड़े । कुमार स्वस्ति पूर्वक (किंतु) गंजा हो जायेगा ।’

“ तब माणवको । अमात्योंने इक्ष्वाकुको कहा— ‘ ज्येष्ठ कुमारपर बाण छोड़ें, कुमार स्वस्ति-सहित (किंतु) गंजा होगा । राजा इक्ष्वाकुने ज्येष्ठ कुमारपर बाण छोड़ दिया । उस ब्रह्मदण्डसे भयभीत, उद्धिग्न, रोमाञ्चित, तर्जित राजा इक्ष्वाकुने सपित्री कन्या प्रदायी की । माणवको । अमृत माणवको दासी पुत्र कह, गुप्त भत बहुत अधिक लज्जाओ । पर कृष्ण महान् सपित्री । ”

सब भगवान्ने अमृत माणवको मनोहित किया—

“ तो अमृत ! यदि (एक) क्षत्रिय कुमार ब्राह्मण कन्याके साथ संगम करे, उनके संवाससे पुत्र उत्पन्न हो । जो क्षत्रिय कुमारने ब्राह्मण-कन्यामें पुत्र उत्पन्न होगा, क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन और पानी पायेगा ? ” “ पायेगा हे गौतम । ” “ क्या ब्राह्मण श्राद्ध, स्वादिष्ट पाक, यज्ञ या पशुनाईमें उसे खिलायेंगे ? ” “ खिलायेंगे हे गौतम । ” “ क्या ब्राह्मण उसे मंत्र (= वेद) बँचायेंगे ? ” “ बँचायेंगे हे गौतम । ” “ इसको स्त्री (पाने)में रक्षावट होगी, या नहीं ? ” “ नहीं रक्षावट होगी । ” “ क्या क्षत्रिय । इसे क्षत्रिय अभिषेकमें अभिषिक्त करेंगे ? ” “ नहीं, हे गौतम । माताजी ओरसे हे गौतम । अयुक्त है । ”

“ तो अमृत ! यदि एक ब्राह्मण कुमार क्षत्रिय कन्याके साथ संगम करता है, उनके संवाससे पुत्र उत्पन्न हो । जो वह ब्राह्मण कुमारने क्षत्रिय कन्यामें पुत्र उत्पन्न हुआ है, क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन, पानी पायेगा ? ” “ पायेगा हे गौतम । ” “ क्या ब्राह्मण श्राद्ध, स्वादिष्ट पाक, यज्ञ या पशुनाईमें उसे खिलायेंगे ? ” “ खिलायेंगे हे गौतम । ” “ क्या ब्राह्मण उसे मंत्र बँचाये, या नहीं ? ” “ बँचायेंगे हे गौतम । ” “ क्या उसे (ब्राह्मण) स्त्री (पाने)में रक्षावट होगी ? ” “ रक्षावट न होगी हे गौतम । ” “ क्या उसे क्षत्रिय क्षत्रिय-अभिषेकमें अभिषिक्त करेंगे ? ” “ नहीं, हे गौतम । ” “ सो किम् हेतु ? ” “ गौतम पितासे वह अनुपपन्न है । ”

“ इस प्रकार अमृत । स्त्रीसे करके स्त्री, पुरुष करके भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन है । तो अमृत ! यदि ब्राह्मण किसी ब्राह्मणको किसी कारणसे छुनेसे मुडितकरा, धोड़के चाबुक्ते मारकर, राष्ट्र या नगरसे निर्वासित करे । क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन, पानी पायेगा ? ” “ नहीं हे गौतम । ” “ क्या ब्राह्मण श्राद्ध स्वादिष्ट पाक, यज्ञ पशुनाईमें उसे खिलायेंगे ? ” “ नहीं, हे गौतम । ” “ क्या ब्राह्मण उसे मंत्र बँचायेंगे या नहीं ? ” “ नहीं, हे गौतम । ” “ उसे (ब्राह्मण) स्त्री (पाने)में रक्षावट होगी, या रक्षावट ? ” “ रक्षावट होगी, हे गौतम । ”

“ तो अमृत ! यदि क्षत्रिय (एक पुरुषको) किसी कारणसे छुनेसे मुडितकरा, धोड़के चाबुक्ते मारकर, राष्ट्र या नगरसे निर्वासित करे । क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन पानी पायेगा ? ” “ पायेगा हे गौतम । ” “ क्या ब्राह्मण उसे खिलायेंगे ? ” “ खिलायेंगे हे गौतम । ” “ क्या ब्राह्मण उसे मंत्र बँचायेंगे ? ” “ बँचायेंगे हे गौतम । ” “ क्या उसे स्त्रीमें रक्षावट होगी, या रक्षावट ? ” “ रक्षावट होगी हे गौतम । ”

“अम्बट्ट ! क्षत्रिय ऋतु ही निहीन (= नीच) होगया रहता है, जब कि इसको क्षत्रिय किसी कारणसे मुडितकर० । इस प्रकार अम्बट्ट । जन वह क्षत्रियोम परम नीचताको प्राप्त है, तर भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन है । ब्रह्मा सनत्कुमारने भी अम्बट्ट ! यह गाथा कही है—

“ गोत्र लेकर चलनेवाले जनोमें क्षत्रिय श्रेष्ठ है । ”

जो विद्या और आचरण युक्त है, वह देव-मनुष्योम श्रेष्ठ हैं ॥ ”

“ सो अम्बट्ट ! यह गाथा ब्रह्मा सनत्कुमारने उचित ही गायी (= सुगोता) है, अनुचित ही गायी है,—सुभाषित है, दुभाषित नहीं है, सार्थक है, निरर्थक नहीं, मे सो सहमत हूँ, मे भी अम्बट्ट कहता हूँ—“ गोत्र लेकर० । ”

“ क्या है, हे गोतम ! चरण, और क्या है विद्या ? ”

“ अम्बट्ट ! अनुपम विद्या-आचरण-सम्पदाको जातिवाद नहीं कहते, नहीं गोत्र-वाद कहते हैं, नहीं मान-वाद—‘ मेरे तू योग्य है ’, ‘ मेरे तू योग्य नहीं है ’ कहते हैं । जहाँ अम्बट्ट आवाह-विवाह होता है , वहीं यह जातिवाद , गोत्रवाद , मानवाद, ‘ मेरे तू योग्य है ’, ‘ मेरे तू योग्य नहीं है ’ कहा जाता है । ” अम्बट्ट ! जो कोई जातिवादमें बंधे हैं, गोत्र वादमें बंधे, (अग्नि-) मान-वादमें बंधे हैं, आवाह-विवाहमें बंधे हैं, यह अनुपम विद्या-चरण संपदासे दूर है । अम्बट्ट ! जाति वाद-बंधन गोत्र-वाद बंधन, मान वाद बंधन, आवाह विवाह बंधन छोड़कर, अनुपम विद्या चरण संपदा प्रत्यक्षकी जाती है ।

“ क्या है, हे गोतम ! चरण, और क्या है विद्या ? ”

“ अम्बट्ट ! लोकमें तथागत उत्पन्न होता है १० । ० । इसी प्रकार भिक्षु शरीरके चीपर, पेटके खानेमें मनुष्य होता है । ० । इस तरह अम्बट्ट । भिक्षु शील-रूपन्न होता है १० । वह प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानाको प्राप्त हो विहरता है । यह भी उसके चरणमें होता । १० द्वितीय ध्यान० । ० तृतीय ध्यान० । ० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, यह भी उसके चरणमें होता है । अम्बट्ट ! यह चरण, ज्ञानके प्रत्यक्ष करनेके लिये, (मनुष्यके) चित्तको नमाता है, झुकाता है । सो इस प्रकार वित्तके परिशुद्ध० १ । इस प्रकार आकार-सहित उद्देश सहित अनेक पूर्व निवासोंको जानता है । यह भी अम्बट्ट । उसकी विद्यामें है । १० दिव्य विशुद्ध चक्षुसे० प्राणियोंको देखता है । यह भी अम्बट्ट ! उसकी विद्यामें है । ० २१ जन्म खतम होगया, ब्रह्मचर्य पूरा

१ पृष्ठ १७२ ७४ ।

२ अ फ “तापस आठ प्रकारके होते हैं—(१) स पुत्र भार्य, (२) उच्छाचारी, (३) अन्न-अग्नि-पक्विक, (४) अ-स्वयं पाकी, (५) अन्न-मुष्टिक, (६) दन्तवल्कलिक, (७) प्रवृत्त फल-भोजी, (८) पाण्डु पलाशिक । इनमें जो केणिय जटिलकी भांति उडुम्ब सहित वास करते हैं, वह ‘स पुत्र भार्य’ कहलाते हैं । जो गांव कस्योसे चावलकी भिक्षा लेकर पकाकर खाते हैं, वह ‘अन्नग्नि पक्विक’ ० । जो गांवमें जाकर पकी भिक्षाको ग्रहण करते हैं, वह ‘अ स्वयं पाकी’ ० । जो मुडिया पत्थरसे बरकर (उपाङ्क) उपाङ्ककर खाते हैं, वह प्रवृत्त फल-भोजी । जो स्वयं गिरे फल पत्ते खाते, जीवन बापा करते हैं, वह पाण्डु-पलाशिक । यह तीन प्रकारके होते हैं, उत्कृष्ट, मध्यम और मृदुक

होगया, करना था मो कर लिया, अब यहाँके लिये कुछ नहीं है। यह भी जानता है। यह भी उसकी विद्यामें है। यह अम्बट्ट ! विद्या है। अम्बट्ट ! ऐसा मिथु विद्या सम्पन्न कहा जाता है। इस प्रकार चरण संपन्न, इस प्रकार विद्या-चरण संपन्न होता है। इस विद्या संपदा, तथा चरण सम्पत्तिसे बंधकर दूसरी विद्या-सम्पदा या चरण सम्पत्ति नहीं है।

“ अम्बट्ट ! इस अनुपम विद्या चरण सम्पत्तिसे चार अपाय सुख (= विघ्न) होते हैं। कौनसे चार ? कोई श्रमण या ब्राह्मण अम्बट्ट ! इस अनुपम विद्या चरण संपत्ति को पूरा न करके, चारों विविध (= चारों मंत्रा घाणप्रस्थीके सामान) लेकर—‘फल फलाहारी होऊँ’ (सोच) बन वासने लिये जाता है। यह विद्या, चरणसे भिन्न वस्तुका परिचारक (= सेवक) बनता है। इस अनुपम विद्या चरण संपत्ति का यह प्रथम अपाय सुख (= विघ्न) है। और फिर अम्बट्ट ! यहाँ कोई श्रमण या ब्राह्मण इस अनुपम विद्या चरण संपत्ति को पूरा न करके, फलाहारिताको भी पूरा न करके, कुदाल से ‘बन्द-मूल फलाहारी होऊँ’ (सोच) विद्या चरणसे भिन्न वस्तुका परिचारक बनता है। यह द्वितीय अपाय सुख है। और फिर अम्बट्ट ! फलाहारिताको न पूरा करके, गाँव न पान या निगम (= कम्पे) के पान अमिताला बना अग्नि परिचरण (= होम आदि) करता रहता है० यह तृतीय सुख है। और फिर अम्बट्ट ! अग्नि परिचर्याको भी न पूरा करके, चारों द्वारों वाला आगार बनाकर रहता है, कि जो यहाँ चारों दिशाओंसे श्रमण या ब्राह्मण आवेगा, उसका भयनाशक्ति = यथाशक्त सत्कार करेगा। यह इस प्रकार विद्याचरणसे भिन्न वस्तुका परिचारक बनता है। यह चतुर्थ अपाय सुख है। इस अनुपम विद्या-चरण संपत्तिसे अम्बट्ट ! यह चार विघ्न हैं।

“ तो अम्बट्ट ! क्या आचार्य सहित तुम इस अनुपम विद्याचरण-संपत्ति का उपदेश करने हो ?

“ नहीं है गौतम ! यहाँ आचार्य सहित मैं और कहीं अनुपम विद्या चरण संपत्ति ! है गौतम । आचार्य सहित मैं अनुपम विद्या चरण संपत्तिसे दूर हूँ ।”

“ तो अम्बट्ट ! इस अनुपम विद्या चरण संपत्ति को पूरा न कर, झोली आदि (= चारों विविध) लेकर ‘प्रवृत्त फल भोजी होऊँ’ (सोच), क्या तू बननासके लिये आचार्य सहित बनने प्रवेश करता है ?

“ नहीं है गौतम !”

“ ०।०। चारों द्वारों वाला आगार बनाकर रहता है, कि जो यहाँ चारों दिशाओंसे श्रमण या ब्राह्मण आवेगा, उसका भयनाशक्ति यथाशक्त सत्कार करेगा ?”

“ नहीं है गौतम !”

(= माधारण) । जो घेठने स्थानसे बिना उठ हाथ पहुँचने भरे स्थानके फलको खाते हैं, यह ‘उत्पट्ट’ । जो एक वृक्षसे दूसरे वृक्षको नहीं जाते वह ‘मध्यम’ । जो जिस किसी वृक्षके नीचे जाकर भोजनकर खाते हैं वह ‘मुदुक’ । यह आगे तापस प्रव्रज्यायें उन्हीं चारमें आ जाती हैं । कैसे ? इनमें ‘सुगुण भाय’ ‘उडाचारी’ ‘दानागार सेवन करते हैं’ । ‘अनग्नि पक्षिक और’ ‘अ स्वर्णपात्री, अन्यागार०’ ‘अश्व-मुष्टिक, और’ ‘दन्त वरुणलिक’ बन्दमूल फल भोजी० । ‘पादुपलाशी’ पट्ट फल भोजी० ।

‘इस प्रकार अम्बट ! आचार्य महित वृ इस अनुत्तर विद्या-चरण संपदासे भी हीन है, और यह जो अनुत्तर विद्या-चरण सम्पदाके चार अपाय सुप्त हैं, उनसे भी हीन। तब अम्बट ! आचार्य ब्राह्मण पौष्कर-सातितसे सीपकर यह बाणी बोली—‘कहाँ इहम, (=नीचा, इम्ब) काट, परसे उत्पन्न मुटक श्रमण हैं, और कहा त्रविद्य ब्राह्मणोंका साक्षात्कार’। स्वयं अपायिक (=दुर्गतिगामी) भी, (विद्या-चरण) में पूरा कगते (हुये भी), अम्बट ! अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातित्वा यह अपराध देख। अम्बट ! पौष्कर साति ब्राह्मण राजा प्रसेनजित् कोसलका दिया खाता है। राजा प्रसेनजित् कोसल उसको दर्शन भी नहीं देता। जब उसका साथ मंत्रणा भी करता है, तो बपड़ेकी आदसे मंत्रणा करता है। अम्बट ! जिसको धार्मिक हा हुई भिक्षाको (पौष्करसाति) ग्रहण करता है, यह राजा प्रसेनजित् कोसल उसे दर्शन भी नहीं देता॥ देता अम्बट ! अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिका यह अपराध !। तो क्या मानते हो अम्बट ! राजा प्रसेनजित् कोसल हाथी पर बंठा, या घोड़ेपर बंठा, या रथके ऊपर खड़ा उणके राय या राजन्योंके साथ कोई सलाह कर, और उस स्थानसे हटकर एक ओर पड़ा हो जाये। तब (कोई) शूद्र या शूद्र दास आजाय, वह उस स्थानपर खड़ा हो, उसी सलाहको करे—‘जमा राजा प्रसेनजित् कोसलने की थी, तो क्या वह राज कथनको कहता है, राजमंत्रणाको मणित करता है, इतनेसे वह राजा या राज अमात्य हो जाता है ?’

‘नहीं है गौतम !’

‘इसी प्रकार है अम्बट ! जो वह ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि मंत्र-कता, मंत्र प्रवक्ता (धे), जिनके कि पुराने गीत, प्रोक्त, समीहित (=विनित) मंत्रपन्को ब्राह्मण आजकल अनुगान, अनुभाषण करते हैं, भाषितको अनुभाषित, वाचितको अनु-वाचित करते हैं, जैसेकि—आह, वामन, वामदेव, पिश्वामित्र, यमदग्नि, अंगिरा, भरद्वाज, वशिष्ठ, कश्यप, भृगु। ‘उनके मंत्रोंका आचार्य-सहित में अध्ययन करता हूँ’ क्या इतने से तू ऋषि या ऋषिपुत्रके मार्ग पर आकर हो जायगा ? यह सभ्य नहीं।

‘तो क्या अम्बट ! तूने बृद्ध-महल्लु ब्राह्मणों आचार्या-प्राचार्योंको कहते सुना है, जो वह ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि० अष्टक० (धे), क्या वह ऐसे सुस्नात सु विलिप्त (=अगरा एगाये), केश मोट सँवारे मणिकुण्डल आभरण पहिने, स्वच्छ (=शेते) वस्त्र धारी पाचकाम गुणोम लिप्त, युक्त, धीरे रहते थे, जैसे कि आज आचार्य-सहित तू है ?’ ‘नहीं, है गौतम !’

१ अ क ‘वह (पौष्कर साति) सन्मुखार्जनी माया (=Hypnotism) जानता था। जब राजा महार्थ अलंकारसे अलंकृत होता, तब राजाके पास खड़ा होकर उस अलंकारका नाम लेता। नाम लेनेपर राजा ‘नहीं दूँगा’ नहीं कह सकता था। देकर फिर महोत्सवके दिन, ‘अलंकार लेआओ कह कर, देव। नहीं है’ तुमन ब्राह्मण पौष्कर सातिको देदिया’ कहने पर, ‘मने क्यों दिया ?’ पूछता। ये अमात्य ‘वह ब्राह्मण ‘आवर्जनी माया’ जानता है, उसीसे आपकी भरमा कर लेजाता है’ कहते। दूसरे राजाके साथ उसको परम मित्रताको न सहनकर कहते—‘देव ! हम ब्राह्मणके शरीरमें दीप्त कुट (तल्लसा उजला कोट) है। तुम हमको दलकर आलिंगन करते हो, छूते हो। यह कुट (रोग) काय समर्गसे अनुगमन करता है ऐसा मत करो।’ तबसे राजा उसको दर्शन नहीं देता। (लेकिन) चूँकि वह ब्राह्मण पंडित, क्षत्र-विद्यामें कुशल था, इसलिये उमर साथ सलाह करके किया काम नहीं निगडता, (सोच) कनातके भीतर खड़े हा बाहर खड़े उमरें साथ मंत्रणा करता। २ ‘ऊँचे ऊँचे अमात्य। ३ अभिषेक-रहित कुमार।

“ऐसे क्या यह शालिका भात, शुद्ध मांसका तेवा (=उपसेवा), बालिमारहित सूप (=दाल), अनेक प्रकारकी तराश (=व्यञ्जन) भोजन करते थे, जैसेकि आज आचार्य सहित तू ?” “नहीं, हे गौतम ।”

“तबसे क्या यह (सारो-)पेषित कमनीय गात्रवाली स्त्रियाँ सात रमने थे, जैसेकि आज आचार्य सहित तू ?” “नहीं, हे गौतम ।”

“ऐसे क्या यह फेबालोगाली घोड़ियोंके रथपर लम्बे डंशाले कोडोंसे बाहनोंकी पीठोंसे गमन करते थे, जैसे किं० ?” “नहीं, हे गौतम ।”

“ऐसे क्या यह ग्वाई-बोद, परिण (=फाट प्रकार) उठाये, भगर रक्षिकानाम (=गण रक्षारिक्तसु) दीर्घ आयु पुरुषोंसे रक्षा कर्मात थे, जैसे किं० तू ?” “नहीं, हे गौतम ।”

“इस प्रकार अम्यट्ट ! न आचार्य सहित तू ऋषि है, न अपित्वक मार्गपर आनन्द । अम्यट्ट मेरे विषयमें जो तेरा सहाय=विमति हो वह प्रथम फल, म उने उत्तरसे (बुर कहता) ।”

यह वह भगवान् विहारसे निकल, चंद्रम (=ठहलने) व स्थानपर पड़े हुये । अम्यट्ट मानवक भी विहारसे निकल चंद्रमपर गड़ा हुआ । तब अम्यट्ट मानवक भगवान्के पीठे पीठ गहलता भगवान्के शरीरमें ३० महापुरुष लक्ष्मणोंकी छंदता था । अम्यट्ट मानवकने दो को छोड़ बत्तीस महापुरुष लक्ष्मणोंसे अधिकांश भगवान्के शरीरमें देव्य लिये । ०१ । तब अम्यट्ट मानवकको प्रसा हुआ—‘अम्यग गौतम उत्तीस महापुरुष लक्ष्मणोंसे समन्वित, परिपूर्ण है’ और भगवान्को बोला—‘हन्त । हे गौतम ! अब हम नायेंगे, हम बहुत लक्ष्मणों से बहुत कामना है ।’

“सम्यट्ट ! निश्चय तू काल समस्तता है ?”

तब अम्यट्ट मानवक उठना (=घोड़ी) रथपर चढ़कर चला गया ।

उस समय पोकर साति ब्राह्मण उड़े भारी ब्राह्मण गणक साथ, उच्छ्रितसे निकटकर, अपने आराम (=उगीचे)में, अम्यट्ट मानवकका ही प्रतीक्षा करते बंग था । तब अम्यट्ट मानवक जहां स्वप्ना आराम था गड़ा गया । जितना यान (=रथ) का रास्ता था, उतना यानमें जाकर, यानमें उतर पड़लही जहाँ पोकरसाति ब्राह्मण था, वहाँ गया । जाकर ब्राह्मण पोकर सातिको अभिसानकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ अम्यट्ट मानवकको पोकर सातिने कहा—

“क्या तात ! अम्यट्ट ! उन भगवान् गौतमको देखा ?”

“देखा भो ! हमने उन भगवान् गौतमको ।”

“क्या तात ! अम्यट्ट ! उन भगवान् गौतमका यथार्थमें शब्द क्या हुआ है, या अथयार्थमें ? क्या आप गौतम वेसेही हैं, या दूसर (=अन्यादश) ?”

“यथार्थहीमें भो ! उन भगवान् गौतमके लिये शब्द पैदा हुआ है । आप गौतम वेसेही हैं, दूसरे नहीं । आप गौतम उत्तीस महापुरुष लक्ष्मणोंसे समन्वित, परिपूर्ण हैं ।”

“ तात ! अम्बट्ट ! क्या भ्रमण गौतमके साथ तुम्हारा कुछ कथा-संलाप हुआ । ”

“ हुआ भो ! मेरा भ्रमण गौतमके साथ क्या संलाप । ”

“ तात ! अम्बट्ट ! भ्रमण गौतमके साथ कैसा कथा-संलाप हुआ ? ” -

तब अम्बट्ट माणवक्के जितना भगवान्‌के साथ कथा संलाप हुआ था, सब पौप्फरसाति ब्राह्मणको कह दिया । ऐसा कहनेपर ब्राह्मण पौप्फरसातिने अम्बट्ट माणवक्के को कहा—

“अहो रे ! हमारा पंडित-पुत्र ॥ अहो रे ! हमारा बहुश्रुत-पुत्र ॥ अहो वत ! रे ॥ हमारा त्रेविद्य-पुत्र ! इस प्रकारके नीच कामसे पुरुष, काया छोड़ मरनेके बाद, अपाप = दुर्गति = निनिर्वात = नित्य (= नरक) में ही उत्पन्न होगा, जो अम्बट्ट ! उर आप गौतमसे इस प्रकार धुंसित करते दुबे तुमने बात की । और आप गौतम (ब्राह्मण) को भी ऐसे खोले गोल्लर भो ! अहोवत ! रे ॥ हमारी पंडिताई !!!, अहोवत ! रे ॥ हमारी बहुश्रुताई, अहोवत ! रे ॥ हमारा त्रेविद्य-पुत्र !!! ” (ऐसा कह पौप्फरसातिने) क्रुपित, असंतुष्ट हो, अम्बट्ट माणवक्के को घट्ट ही बहाते हटाया, और उसी वक्त भगवान्‌के दर्शनार्थ जानेको (तैयार) हुआ । तब उन ब्राह्मणोंने पौप्फर-साति ब्राह्मणसे यह कहा—

“ भो ! भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेको आज बहुत बिकाल है । दूसरे दिन आप पौप्फर साति भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जावें । ”

इस प्रकार पौप्फर साति ब्राह्मण अपने घरमें उत्तम पात्र भोज्य तय्यारकर, यानपर रतना, मसाल (= उल्का) की रोशनीमें उद्वृष्टसे निकल, जहाँ झुञ्झनगल वन खड था, उधर गया । जितनी यानकी भूमिथी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान्‌ था वहा गया । जानर भगवान्‌के साथ सम्मोदनकर (कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ पौप्फर-साति ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

“ हे गौतम ! क्या हमारा अन्तेवासी अम्बट्ट माणवक्क यहाँ आया था ? ”

“ ब्राह्मण ! तेरा अन्तेवासी अम्बट्ट माणवक्क यहाँ आया था ।

“ हे गौतम ! अम्बट्ट माणवक्के साथ क्या कुछ कथा-संलाप हुआ ? ”

“ ब्राह्मण ! अम्बट्ट माणवक्के साथ मेरा कुछ कथा संलाप हुआ । ”

“ हे गौतम ! अम्बट्ट माणवक्के साथ कैसा कथा संलाप हुआ ? ”

तब भगवान्‌ने, अम्बट्टके साथ जितना कथा-संलाप हुआ था, (वह) सब पौप्फर साति ब्राह्मणको कह दिया । ऐसा कहनेपर पौप्फर-साति ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

“ बालक है, हे गौतम । अम्बट्ट माणवक्क । क्षमा करें, हे गौतम ! अम्बट्ट माणवक्के । ”

“ छली होये, ब्राह्मण । अम्बट्ट माणवक्क । ”

तब पौप्फर साति ब्राह्मण भगवान्‌के शरीरमें ३२ महापुरुष-लक्षणोंको ढूँढ़ने लगा^१ । पौप्फर-साति ब्राह्मणको हुआ—भ्रमण गौतम बत्तीय महापुरुष लक्षणोंसे समन्वित, परिपूर्ण है, और भगवान्‌से योला—

“ भिक्षु-संघ-सहित आप गौतम आजका मेरा भोजन स्वीकार कर । ”

भगवान् ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब पौष्कर साति ब्राह्मणने भगवान् की स्वीकृति जान, भगवान् को काल निवेदन किया—
(यह भोजनका) काल है, हे गौतम । आत तय्यार है । तब भगवान् पहिनकर पात्र चीरर
ऐ, जहा ब्राह्मण पौष्कर सातिके परोसनेका रधान था, वहाँ गये । जाकर बिछे आसनपर बैठ
गये । तब पौष्कर साति ब्राह्मणने भगवान् को अपने हाथसे उत्तम खाद्य भोज्यमे सतर्पित =
सप्रवारित किया, और माण्डकोंने भिक्षु सघको । तब पौष्कर साति ब्राह्मण भगवान् के भोजन-
कर, पात्रसे हाथ हटा ऐनेपर, एक दूसर नीचे आसनको छे, एक छोर बंठ गया । एक ओर बैठ
हुये, पौष्कर साति ब्राह्मणको भगवान् ने ‘अनुपूर्वी कथा कही० पौष्कर साति ब्राह्मणको उसी
आसनपर विरज = विमल धर्म-चक्षु-’ जो कुछ समुद्रय धम है, उह निरोध धर्म है ’-उत्पन्न हुआ ।

तब पौष्कर-साति ब्राह्मणने दृष्ट-धर्म० हो भगवान् को कहा—

“ आश्चर्य ! हे गौतम ॥ ० पुत्र सहित भाषा सहित, परिपक्व सहित, अमात्य सहित, मे
भगवान् गौतमकी क्षरण जाता हूँ, धर्म ओर भिक्षु संघकी भी । आजमे आप गौतम मुझे
ब्रह्माजलि उपासक धाण कर । जते उक्कट्ठार्वे चार गौतम दूसर उपासक कुलार्वे आते है, पैत
ही पुष्कर साति-कुलमे भी आते । यहाँपर माण्डक (=तरुण ब्राह्मण) या माण्डिका जाकर
भगवान् गौतमको अभिवादन करेंगे, आसन या उदक देंगे । या (जापक प्रति) धितको
प्रसन्न करेंगे । वह उनक लिये विरहालतक हित सुपन्न लिये होगा । ”

“ सुन्दर (=कल्याण) कहा ब्राह्मण । ”

चंकिष्ठ (वि. पू. ४५७) ।

ऐसा भन सुना—एक समय महा-भिक्षुसंघके साथ भगवान् कोसलमें चारिका करत जहाँ ओपसाद नामक ओसलोका ब्राह्मण ग्राम था वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् ओपसादसे उत्तर देववन (गामर) शाल-वनमें विहार करते थे ।

उस समय चंकि ब्राह्मण, जनाकीर्ण वृण काष्ठ उद्क धान्य सम्पन्न राजभोग्य, राजा प्रमोजित कोसलगरा प्रदत्त, राज-दायज, ब्रह्मदेय, ओपसाद, का स्वामी हो, वास करता था ।

ओपसादवासी ब्राह्मणोंने सुना—शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य पुत्र भ्रमण गौतम कोसलमें चारिका करते, महा-भिक्षु-संघके साथ ओपसादमें पहुँच रहे, और ओपसादमें ओपसादसे उत्तर देववन शाल-वनमें विहार करते हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल कार्तिशब्द उठा हुआ है० पण्डित ब्रह्मचर्य प्रकाशित करते हैं, इस प्रकारके दर्शनका अच्छा होता है ।

तब ओपसादवासी ब्राह्मण गृहस्थ ओपसादसे निकलकर, छुण्डके छुण्ड उत्तर मुँहकी ओर जहाँ देववन शालवन था, उधर जाने लगे । उस समय चंकि ब्राह्मण, दिनके रायनके लिये ओपसादके ऊपर गया हुआ था । चंकि ब्राह्मणने देखा कि ओपसादवासी ब्राह्मण गृहस्थ उत्तर मुँहकी ओर उधर जा रहे हैं । इसका क्षत्ता (=महाभात्य) को सन्निहित किया—

“ क्या है, हे क्षत्ता ! (कि) ओप-सादवासी ब्राह्मण गृहस्थ जहाँ देववन शालवन है, उधर जा रहे हैं ।

“ हे चंकि ! शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र, भ्रमण गौतम कोसलमें चारिका करते महाभिक्षु संघके साथ देववन शालवनमें विहार कर रहे हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगलकार्ति शब्द उठा हुआ है० उन्हीं भगवान् गौतमके दर्शनके लिये जा रहे हैं ।”

“ तो क्षत्ता ! जहाँ ओपसादक ब्राह्मण गृहपति हैं, वहाँ जाओ । जाकर ओपसादक ब्राह्मण गृहपतियोंको ऐसा कहो—चंकि ब्राह्मण ऐसा कह रहा है—‘ थोड़ी देर आप सब ठहरें, चंकि ब्राह्मण भी भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा ।”

चंकि ब्राह्मणको “ अच्छा भो । ” कह, वह क्षत्ता जहाँ ओपसादक ब्राह्मण थे, वहाँ गया । जाकर बोला—

“ चंकि ब्राह्मण ऐसा कह रहा है—‘ थोड़ी देर आप सब ठहरें, चंकि ब्राह्मण भी भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा ।”

उस समय जाना देशके पाच सो ब्राह्मण किसी कामसे ओपसादमें वास करते थे । उन ब्राह्मणोंने सुना कि चंकि ब्राह्मण भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने वाला है । तब वह ब्राह्मण जहाँ चंकि ब्राह्मण था, वहाँ गये । जाकर चंकि ब्राह्मणको बोले—

“ सचमुच आप चंकि भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने वाले हैं ?”

“ हाँ भो ! मुझे यह हो रहा है, मैं भी भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाऊँ ।”

“ आप चंकि गौतमके दर्शनार्थ मत जाय । आपको भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाना उचित नहीं है । भ्रमण गौतमको ही आप चंकिने दर्शनार्थ जाना योग्य है । आप चंकि दोनों ओरसे सुजात (= कुलीन) हैं, मातासे भी पितासे भी, पितामह-युगलकी मात पीडियों तक, जाति-वादसे अक्षिप्त = अशु-उपहृष्ट (= अ निन्दित) हैं । जो आप चंकि दोनों ओर से सुजात हैं ० ; इस कारणसे भी आप चंकि भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं । भ्रमण गौतम ही आप चंकिने दर्शनार्थ आने योग्य है । आप चंकि आढ्य, महाधनी, महाभोगग्राहे हैं ; इस अंगसे भी ० । आप चंकि ० सोनो पेद्रो पारंगत ० । आप चंकि अभिरूप = दर्शनीय = प्रत्यक्षिक परम-वर्ण-सु-दातासे युक्त, महावर्ण वाग्ने, महावर्चस्वी, दर्शनके लिये अल्प भी अयकाश न रखने वाले ० । आप चंकि शीलवान् दृढशीली (= बड़ी हुई बोल गये), दृढशीलसे युक्त हैं ० । आप चंकि कल्याण वचन बोलनेवाले = कल्याण-वाक्करण = पौर (= आगरिक, सभ्य) वाणीसे युक्त ० । आप चंकि बहुतके आचार्य प्राचार्य हैं, तीन सौ माणवज्जोको मग्न पड़ाते हैं ० । आप चंकि शाना प्रमेनजित् कौसलसे मरुत = गुरुत = मानित, पूजित = अपचित हैं ० । आप चंकि पोकरमाति ब्राह्मणमे ० हैं ० । आप चंकि ० ओपमादके स्वामी हो बसने हैं । इस अंगसे भी आप चंकि भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं । भ्रमण गौतम ही आप चंकिने दर्शनार्थ आने योग्य है । ”

“ तो भो ! मेरी भी सुनो— (कसे) हमी भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य है, वर आप भ्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं हैं । भो ! भ्रमण गौतम दोनों ओरसे सुजात हैं ०, इस अंगसे भी हमी भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य है, आप भ्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं हैं । भ्रमण गौतम बहुत सा भूमिस्थ और आकाशस्थ हिरण्य सुवर्ण छोडकर, प्रजित हुये हैं ० । भ्रमण गौतम बहुत कान्हेकाशाले भद्रयौवनसे सुवृक्ष अतितरण प्रथम वयसमें ही घासे बेघर हो, प्रमथित हुये ० । भ्रमण गौतम माता पिताको अनिन्द्य अशुमुख रोते हुये, (छोड), शिर-दारी मुँडाकर, बापाय उल पहिना, घग्मे बेघर प्रवर्तित हुये ० । भ्रमण गौतम अभिरूप = दर्शनीय ० महावर्चस्वी, दर्शनके लिये अल्प भी अयकाश न रखनेवाले ० । भ्रमण गौतम शीलवान् ० । भ्रमण गौतम कल्याण वचन बोलनेवाले ० । भ्रमण गौतम बहुतोंके आचार्य-प्राचार्य हैं ० । काम राग विहीन ० । प्रपंच रहित ० । भ्रमण गौतम कमवादी त्रिया घादी ब्राह्मण-संतानके निष्पाप ० प्रणी हैं ० । भ्रमण गौतम अर्गन क्षत्रिय कुल, उच्च कुलसे प्रमजित हुये ० । महाधनी, महाभोगवान् आद्य कुलसे प्रमजित हुये ० । भ्रमण गौतमको देशसे बाहरसे, राष्ट्रके पारसे भी (लोग) पूजनेको आते हैं ० । भ्रमण गौतमकी अनेक सदृश देवता (अपने) प्राणसे दारणागत हुये हैं ० । भ्रमण गौतमका ऐसा योग्य कीर्ति शब्द उठा हुआ है ० । ० । भ्रमण गौतम यत्नीय महापुरुष-वृक्षणसे युक्त हैं ० । भ्रमण गौतमकी शाना मागध अंगिक विम्बलार पुन टार सहित ब्राह्मण पौष्कर-साति ० । ० । भ्रमण गौतम भो ! ओपसाम्य प्राप्त हुये हैं, ओपसादमें देवजन शास्त्रवर्ण विहारकर रहे हैं । जो कोई भ्रमण या ब्राह्मण हमारे गांव-पेतमें आते हैं, वह अतिथि होते हैं । अतिथि सत्करणीय = गुरुकरणीय = मानाय = पूजनीय है । चंकि भो ! भ्रमण गौतम ओपसादमें प्राप्त हुये ० । (अत) हमारे अतिथि हैं । भ्रमण गौतम अतिथि हो हमारे सत्करणीय ० । इस अंगसे भी ० । इतना ही सा ! मैं उन आप गौतमका गुण

कहता हूँ, लेकिन वर आप गौतम इतने ही गुणवाले नहीं हैं। वह आप गौतम अ-परिमाण गुणवाले हैं। एक एक अंगसे भी युक्त होनेपर, आप भ्रमण गौतम हमारे दर्शन करने लिये आने योग्य नहीं हैं, बल्कि हमीं उन आप गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं। इसलिये हम सभी भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ चलें।”

तब चंकी ब्राह्मण महान् ब्राह्मणोंके गणके साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के साथ समोदन कर एक ओर बैठ गया। उस समय भगवान् बृद्ध बृद्ध ब्राह्मणोंके साथ जुट (बात करते) बैठे हुये थे।

उस समय कापथिक नामक तरुण, सुंद्धित शिर, जन्मसे मोहलवर्षका, तीनों वेदाका पारंगत माणिक परिपक्वमे वंश था। वह बृद्धे बृद्धे ब्राह्मणोंके भगवान्‌के साथ बातचीत करते समय, बीच बीचमे बोल उठता था। तब भगवान्‌के कापथिक माणवकको मना किया।

“आयुष्मान् भारद्वाज। बृद्धे बृद्धे ब्राह्मणोंके बात करनेमें यात मत डालो। आयुष्मान् भारद्वाज! क्या समाप्त होने दो।”

(भगवान्‌के) ऐसा कहनेपर चंकि ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

“आप गौतम कापथिक माणवकको मत रोके, कापथिक माणवक कुल पुत्र (=कुलीन) हैं०, बहुधृत हैं०, सुवक्ता०, पंडित०। कापथिक माणवक आप गौतमके साथ इस बातमें वाद कर सकता है।”

तब भगवान्‌को हुआ—अवश्य कापथिक माणवककी क्या त्रिरेद प्रवचन (=वेदाध्ययन) मंत्रधी होगी, जिससे कि ब्राह्मण इसे आगे कर रहे हैं। उस समय कापथिक माणवकको (विचार) हुआ—‘जब भ्रमण गौतम मेरी आँखोंकी ओर आँस लायेगा, तब मे भ्रमण गौतमको प्रश्न पूछूँगा’। तब भगवान्‌ने (अपने) चित्तसे कापथिक माणवकके चित्त चित्तकंको जानकर, जियर कापथिक माणवक था, उधर (अपनी) आँस फेरी। तब कापथिक माणवकको हुआ—‘भ्रमण गौतम सुखे देख रहा है, क्यों न मे भ्रमण गौतमको प्रश्न पूछूँ?’ तब कापथिक माणवकने भगवान्‌से कहा—

‘हे गौतम। जो यह ब्राह्मणोंका पुराना मंत्रपद (=वेद) इस परम्परासे, षिण्डिक (=वचन समूह) -सम्प्रदायसे है। उमम ब्राह्मण पूर्णरूपसे निष्ठा (=शुद्ध) रखते हैं—‘यही सत्य है, और सत्र क्षत्र’। इस विषयमें आप गौतम क्या कहते हैं?’

“क्या भारद्वाज। ब्राह्मणोंमें एकमी ब्राह्मण है, जो कहे—मे इसे जानता हूँ, इसे देखता हूँ, यही सच है, और झूठ है?’ “हाँ, हे गौतम!”

“क्या भारद्वाज। ब्राह्मणोंका एक आचार्य भी०, एक आचार्य प्राचार्य भी, परमा चायो की सात पीढ़ी तरुमी०। ब्राह्मणोंके पूरुज ऋषि, ंअटक, वामक०, उन्होंने भी क्या कहा—‘हम इसको जानते हैं, हम इसको देखते हैं, यही सच है और झूठ है?’”

१ अ क “(अटक आदि ऋषियोंने) दिव्य-चक्षुसे देखकर भगवान् काश्यप सम्यक् संतुद्धके वचनसे साथ मिगकर, मंत्रोंको पर हिसा-गुन्य, ग्रथित किया था। उसमें दूसरे ब्राह्मणों प्राणि हिमा आदि खालकर तीन वेद बना, उद्ध वचनसे विरुद्ध कर लिया।”

“नहीं, हे गौतम !”

“इस प्रकार भारद्वाज ! ब्राह्मणार्थ एकभी ब्राह्मण नहीं है, जो कहे०।० । जैसे भारद्वाज । अंध-येणु परपरा (=अंधोको एकद्वीका तांता) लगी हो, पहिलेवाला भी नहीं देखता, बीचका भी नहीं देखता, पिछला भी नहीं देखता । ऐसेही भारद्वाज । ब्राह्मणोका कथन अंध-येणु (=अंधोको एकद्वी) के समान है, पहिलेवालाभी नहीं देखता, बीचका भी नहीं देखता, पिछला भी नहीं देखता । तो क्या मानने हो, भारद्वाज ! क्या ऐसा होनेपर ब्राह्मणो की श्रद्धा अमूलक नहीं होजाती ?”

“हे गौतम ! नहीं, ब्राह्मण श्रद्धाहीकी उपासना नहीं करते, अनुश्रव (=श्रुति) की भी उपासना करते हैं ।”

“पहिले भारद्वाज ! तू श्रद्धा (=निष्ठ) पर पहुँचा था, अब अनुश्रव करता है । भारद्वाज ! यह पाच धर्म इसी जन्ममें नौ प्रकारके विपाक (=फट) देनेवाले हैं । कौनसे पाच ? (१) श्रद्धा, (२) रुचि, (३) अनुश्रव, (४) आहार-परिवितर्क, (५) दृष्टि निश्चयनाश (=दिट्ठिनिज्झानकय) । भारद्वाज ! यह पाच धर्म इसी जन्ममें दो प्रकारके विपाक देनेवाले हैं । भारद्वाज ! सुदूर-तौरसे श्रद्धा किया भी रिक्त=तुच्छ और सृष्टा हो सकता है, सुश्रद्धा न किया भी यथार्थ=तथ्य=अन्य-अन्यथा हो सकता है । सुरुचि कियाभी० । सु-अनुश्रुत किया भी० । सु-परिवितर्क किया भी०, सु-निश्चयन किया भी० रिक्त=तुच्छ और सृष्टा हो सकता है । सु-निश्चयन न किया भी यथार्थ=तथ्य=अन्यथा हो सकता है । भारद्वाज ! सत्यानुरक्षक विश पुरुषको यद्वा एकाशमे (सोलहो आना) निष्ठा करना योग्य नहीं है, कि—‘यद्वा सत्य है, और याकी मिथ्या है ।’

“हे गौतम ! सत्यानुरक्षा (=सत्यकी रक्षा) कैसे होती है ? सत्यका अनुरक्षण कैसे किया जाता है, हम आप गौतमको सत्यानुरक्षण पूछते हैं ?”

“भारद्वाज ! पुरुषको यदि श्रद्धा होती है ‘यह मेरी श्रद्धा है’, कहते सत्यको अनुरक्षा करता है । किंतु यहाँ एकाशसे निष्ठा नहीं काता—‘यद्वा सत्य है और (सत्य) श्रद्धा’ भारद्वाज ! यदि पुरुषको रुचि होती है । ‘यह मेरी रुचि है’ कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है । किंतु यहाँ एकाशसे निष्ठा नहीं करता—‘यद्वा सत्य है, और श्रद्धा ।’

“भारद्वाज ! यदि पुरुषको अनुश्रव होता है । ‘यह मेरा अनुश्रव है’, कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है । किंतु यहाँ एकाशसे निष्ठा नहीं करता—‘यद्वा सत्य है, और श्रद्धा ।’ भारद्वाज ! यदि पुरुषको आहार-परिवितर्क होता है । ‘यह मेरा आहार-वितर्क है’ कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है; किंतु यहाँ एकाशसे निष्ठा नहीं करता—‘यद्वा सत्य है, और श्रद्धा ।’ भारद्वाज ! यदि पुरुषको दृष्टि निश्चयनाश होता है, ‘यह मेरा दृष्टि निश्चयनाश’, कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है । किंतु यहाँ एकाशसे निष्ठा नहीं करता ‘यद्वा सत्य है और श्रद्धा ।’ इतने से भारद्वाज सत्य अनुरक्षण होता है । इतनेसे सत्यका अनुरक्षाकी जाती है । इतनेमें हम सत्यका अनुरक्षण (=रक्षण) प्रमाणित करते हैं, किंतु (इतनेसे) सत्यका अनुबोध (=बोध) नहीं होता ।”

“हे गौतम ! इतनेसे सत्यानुरक्षण होता है, इतनेसे सत्यकी अनुरक्षाकी जाती है, इतनेसे सत्यका रक्षण हम भी देखते हैं । हे गौतम ! सत्यका बोध कितनेसे होता है, कितनेसे (नर) सच वृजता है । हे गौतम ! हम इसे आपसे पूछते हैं ।”

“भारद्वाज ! मिथु किसी धाम या निगमको आश्रयकर विहरता है । (या) गृहपति (= गृहस्थ) या गृहपति-पुत्र जाकर लोभ, द्वेष, मोह (इन) तीन धर्मांक विषयमें उसकी परीक्षा पाता है—‘क्या इस आयुष्मान्को वेसा लोभनीय धर्म (= वात) है, किस प्रकारका लोभ सम्बन्धी धर्मके कारण न जानते ‘जानना हूँ’ कहें ; न देखने ‘देखता हूँ’ कहें । या वेसा उपदेश करें, जो दूसरोंके लिये दीर्घकाल तक अहित और दुःखके लिये हो । इन आयुष्मान्का ध्याय तथाचार (= धार्मिक-आचरण) (और) यथा ममाचार (= धार्मिक-आचरण) धैर्य है, जैसा कि आलोचिका । (या) यह आयुष्मान् जिन धर्मका उपदेश करते हैं (क्या) वह धर्म गंभीर, दुर्दृश = दुर्गोप, दात, प्रणीत (= उत्तम), अतर्कवचर (= तर्कसे अप्राप्य) निपुण = पटित वेदनीय है ? वह धर्म लोभी-द्वारा उपदेश करना सुगम (तो) नहीं है ?”

“जब खोजते हुये लोभ-संबंधी धर्मोंसे (उसे) विशुद्ध पाता है । तब आगे द्वेष सम्बन्धी धर्मांक विषयमें उसकी परीक्षा करता है—‘क्या इस आयुष्मान्को धैर्य-द्वेष-सम्बन्धी धर्म हैं०, वह धर्म, द्वेषी द्वारा उपदेश करना (तो) सुगम नहीं ?”

“जब परीक्षा करते हुये, द्वेष सम्बन्धी धर्मोंसे उसे विशुद्ध पाता है । तब आगे मोह-सम्बन्धी धर्मांक विषयमें उसको टोलता है—‘क्या इस आयुष्मान्को धैर्य-द्वेष-सम्बन्धी धर्म तो हैं०, वह धर्म०, मोही (= मूढ़) द्वारा उपदेश करना सुगम (तो) नहीं ?”

“जब टोलते हुये उसे लोभनीय, द्वेषनीय, मोहनीय धर्मोंसे विशुद्ध पाता है, तब उसमें श्रद्धा स्थापित करता है । श्रद्धावान् हो पास जाता है, पास जाके परि-उपासन (= सेवन) करता है । पर्युपासना करके कान लगाता है, कान लगाके धर्म सुनता है । सुनकर धर्मका धारण करता है । धारण किये हुये धर्मके अर्थकी परीक्षा करता है । अर्थकी परीक्षा करके धर्म ध्यान करने लायक होते हैं । धर्मके निष्पान (= ध्यान) योग्य होनेसे स्मृति शक्ति (= छन्द) उत्पन्न होती है । छन्दवाला (= रचिगान्) उत्साह (= प्रयत्न) करता है । उत्साह करते उत्थान (= तोलन) करता है । तोलन करने पराक्रम (= पदहन) करता है । पराक्रमी हो, इसी कायामें ही परम-सत्यका साक्षात्कार (= दर्शन) करता है, प्रशंसे उसे नेत्रकर देखता है । इतनेसे भारद्वाज । सत्य-बोध होता है, इतनेसे सच वृजता है । इतनेसे हम सत्य अनुबोधित बतलाते हैं, किन्तु (इतने हीसे) सत्य अनुपत्ति नहीं होती ।”

“हे गौतम ! इतनेसे सत्यानुबोध होता है, इतनेसे सच वृजता है, इतनेसे हम भी सत्यानुबोध देखते हैं । परन्तु हे गौतम ! सत्य-अनुपत्ति कितनेसे होती है, कितनेसे सचको पाता है, हम आप गौतमसे सत्यानुपत्ति (= सत्य प्राप्ति) पूछते हैं ?”

“भारद्वाज ! उन्हीं धर्मोंके सेवने, भावना करने, बढानेसे सत्य-प्राप्ति होती है । इतनेसे भारद्वाज सत्य प्राप्ति होती है, सचको पाता है, इतनेसे हम सत्य प्राप्ति बतलाते हैं ।”

“इतनेसे हे गौतम ! सत्य प्राप्ति होती है० हम भी इतनेसे सत्य प्राप्ति देखते हैं

हे गौतम ! सत्य प्रासिका कौन धर्म अधिक उपकारी (=बहुकार) है, सत्य प्रासिके लिये अधिक उपकारी धर्मको हम आप गौतमसे पूछते हैं । ”

“भारद्वाज ! सत्य प्रासिका बहुकारी धर्म ‘प्रधान’ है । यदि प्रधान (=प्रयत्न) न करे, तो सत्यको (भी) प्राप्त न करे । चूँकि ‘प्रधान’ करता है, इसीलिये सचको पाता है, इसलिये सत्य प्रासिक लिये बहुकारी धर्म ‘प्रधान’ है । ”

“प्रधानके लिये हे गौतम ! कौन धर्म बहुकारी है । प्रधानके बहुकारी धर्मको हम आप गौतमसे पूछते हैं ? ”

“भारद्वाज ! प्रधानका बहुकारी उत्थान है, यदि उत्थान (=उद्योग) न करे, तो प्रधान नहीं कर सकता । चूँकि उत्थान करता है, इसलिये प्रधान करता है । इसलिये उत्थान प्रधानका बहुकारी है । ”

“०।० उत्साह उत्था (= तुलना) का बहुकारी । ” “०।० छन्द उत्साहका० । ” “०।० धम्म निज्झानक्ख (= धर्म निःपानाक्ष) छन्दका० । ” “अर्थ उपपरीक्षा (= अर्थका परीक्षा) धर्म निःपानाक्षका० । ” “०।० धर्म धारणा० । ” “धर्म श्रवण० । ” “०।० काल लगाना (= शोध अध्ययन) ०। ” “पर्युपासन (= सेवा) ०। ” “०।० पास जाना० । ” “०।० श्रद्धा० । ”

“सत्य-अनुरक्षणको हमने आप गौतमसे पूछा । आप गौतमन सत्यानुरक्षण हमने बचनाया, वह हमें रचना भी है, = रचना भी है । उससे हम सन्तुष्ट हैं । सत्य अनुरोध (=सचको पूछना) को हमने आप गौतमसे पूछा । सत्य प्रासिक० । सत्य प्रासिके बहुकारी धर्मको हमने आप गौतमसे पूछा । सत्य प्रासिके बहुकारी धर्मको आप गौतमने बतलाया । वह हमें रचना भी है = रचना भी है । उससे हम सन्तुष्ट हैं । जिस जिलेको हमने आप गौतमसे पूछा, उस उसीको आप गौतमने (हम) बतलाया । और वह हमको रचना भी है = रचना भी है । उससे हम सन्तुष्ट हैं ।

“हे गौतम ! पहिले हम ऐसा जानने थे, कहीं इन्ध (=नीच), काल, ब्रह्मज्ञे पैरने उत्तर (= शूद्र), सुद्धक श्रमण, और कदा धर्मका जानना । आप गौतमने सुझाव श्रमण प्रेम = धर्म प्रसाद० । आजसे आप गौतम मुने अजलिबद्ध क्षाणागत उपासक धारण करें । ”

चूल-दुमर-वखन्ध-मुत्त (वि. पू. ४५७) ।

१ ऐमा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देव) में कपिलवस्तुके न्यप्रोधाराममें विहार करते थे ।

तब महात्तम शाक्य जहां भगवान् थे, वहाँ आया । आकर भगवान्‌को अभिवादन करके और बठा । दूर ओर बैठ महात्तम शाक्यने भगवान्‌को कहा—

“भन्ते ! दीर्घ रात्र (=युक्त समय) से भगवान्‌के उपदिष्ट धर्मको मैं इस प्रकार जानता हूँ—लोभ चित्तका उपप्लेन (=मल) है, द्वेष चित्तका उपप्लेन है, मोह चित्तका उपप्लेन है । तो नी एतु समय लोभ प्राण धर्म मेरे चित्तको चिपट रहते हैं । तब मुझे भन्ते ! ऐमा होता है—कोन सा धर्म (=यात) मेरे भीतर (=अध्याम) से नहीं छूटा है, जिससे कि एक समय लोभधर्म० ?”

“महात्तम ! तेरा घरी धर्म भीतरसे नहीं छूटा, जिससे कि एक समय लोभ धर्म तेरे चित्तको० । महानाम ! यदि वह धर्म भीतरसे छूटा हुआ होता, तो तू घरमें वास न करता, कामोपभोग न करता । चूँकि महात्तम ! वह धर्म तेरे भीतरसे नहीं छूटा, इसलिये तू गृहस्थ है, कामोपभोग करता है । काम (=भोग) का प्रसन्न करनेवाले, बहुत दुःख देनेवाले, बहुत उपावास (=परेशानी) देनेवाले हैं । इनमें आदिनव (=दुष्परिणाम) बहुत हैं । महात्तम ! जब आर्य धावक यथार्थत अच्छी प्रकार जानकर इसे दण्ड लेता है । तो वह कामोले अकुशल (=हो) धर्मात्, अलग्गर्हाम प्राप्ति-सुख या उससे भी अधिक शाततर (सुख) नहीं पाता, तब वह कामोम 'लौटने वाला' होता है । महानाम ! आर्यधावकको जब काम (=भोग) का प्रसन्न करनेवाले, बहुत दुःख देनेवाले, बहुत परेशानी करनेवाले मालूम होते हैं । 'इनमें आदिनव बहुत हैं' इसे महानाम ! जब आर्य धावक यथार्थत अच्छी प्रकार जानकर इसे दण्ड लेता है, तो वह कामोले अलग्ग, या कुशल धर्मात् प्रीति सुख या उससे शाततर (वस्तु) पाता है, तब वह कामोकी ओर 'न फिरने वाला' होता है ।

“मुझे भी महानाम ! संयोधि (प्राप्त करने) से पूर्व बुद्ध न हुये, योधिसत्त्व होनेके समय, वह अप्रसन्न करने वाले, बहुत दुःख, बहुत परेशानी करनेवाले काम (होते थे), तब 'इनमें दुष्परिणाम बहुत हैं'—यह ऐसा यथार्थत अच्छी प्रकार जानकर मैंने देखा, किंतु कामोले अलग्ग अकुशल धर्मात् अलग्ग प्रीति सुख, या उससे शाततर (वस्तु) नहीं पासका । इसलिये मैंने उतनेसे कामोकी ओर 'न लौटने वाला' (अपने को) नहीं जाना । जब महानाम ! काम अप्रसन्नकर बहुत बहुत दुःख, बहुत आयासकर हैं, इनमें दुष्परिणाम बहुत हैं' यह ऐसा० । तो कामोले, अकुशलधर्मात् अलग्ग ही प्रीति-सुख (तथा) उससे भी शात-तर (वस्तु) पाई, तब मैंने (अपने को) कामोकी ओर 'न लौटने वाला' जाना ।

“महानाम ! कामोका आसवाद (=स्वाद) क्या है ? महानाम ! यह पांच काम गुणः । कोनसे पांच ? (१) इष्ट, काव, रुचि, प्रिय-रूप, काम-युक्त, (चित्त को) रञ्जन करनेवाला,

चक्षुसे विनैय (=जानने योग्य) रूप । (२) इष्ट कान्त० श्रोत्र विज्ञेय शब्द । (३) ०घ्राण विज्ञेय गंध । (४) ०जिह्वा विज्ञेय रस । (५) ०काय विनैय स्पर्श । महानाम । यह पांच काम-गुण हैं । महानाम । इन पांच काम गुणोंके कारण जो सुख या सोमनस्य (=दिल्ली मुशी) उत्पन्न होता है, यही कामोका जल्बाद है ।

“महानाम ! कामोका आदिनव (=दुष्परिणाम) क्या है ? महानाम ! कुन्-पुत्र जिम किसी शिल्पसे—चाहे मुद्रासे, या गणनासे, या मर्यादासे या कृषिसे, या वाणिज्यसे, गोपालनसे, या पाण ब्रह्मसे, या राजाकी नौकरी (=राज पोरिम) से, या किसी (अथ) शिल्पसे, शीतडंग पीड़ित (=पुरस्कृत), डस-मच्छर-हवा-वृष मरीचप (=साप निच्छ आदि) के स्पर्शसे उत्प्रेक्षित होता, भूत्व प्याससे मरता, जीविका करता है । महानाम ! यह कामोका दुष्परिणाम है । इसी जन्ममें (यह) दुःखोका पुत्र (=दुःख-स्वभाव) काम हेतु = काम-निदान, काम अधिहरण (=वासस्थान, विषय) कामोहोके कारण है । महानाम ! उस कुल-पुत्रको यदि इस प्रकार उद्योग करते = उत्थान करते, मेहनत करते, वह भोग नहीं उत्पन्न होते (तो) वह शोक करता है, दुःखी होता है, चिन्ताता है, छाती पोटकर म्रदन करता है, मूर्छित होता है—‘हाय ! मेरा प्रयत्न व्यर्थ हुआ, मेरी मेहनत निष्फल हुई !!’ महानाम ! यह भी कामोका दुष्परिणाम०, इसी जन्ममें दुःख स्वभाव० । यदि महानाम ! उस कुलपुत्रको इस प्रकार उद्योग करते० वह भोग उत्पन्न होते हैं । तो वह उन भोगोंकी रक्षार्थ विषयों दुःख = दौर्मस्य श्लेष्मता है—‘रुई मेरे भोगोंके राजा न हर लेजाय, धोर न नहर नजिये, आग न डोहे, पानी न बहाये अ प्रिय दयाद न लेजाय । उसने इस प्रकार रक्षा गोपन करते उन भोगोंको राजा लेजाते हैं०, वह शोक करता है०—‘जोभी मेरा था, वह भी मेरा नहीं है’ । महानाम ! यह भी कामोका दुष्परिणाम० ।

“और फिर महानाम ! कामोका हेतु = कामनिदान, कामवि भ्रगङ्गे (=अधिकरण) से कामोका लिये राजा भी राजाओंसे भ्रगङ्गते हैं, क्षत्रिय भोग क्षत्रियासे०, ब्राह्मण ब्राह्मणोंसे०, गृहपति (=वैश्य) गृह पतिओंसे०, माता पुत्रके साथ०, पुत्रभी माताके साथ०, पिताभी पुत्रके साथ०, पुत्रभी पिताके साथ०, भाई भाईके साथ०, भाई भगिनियोंके साथ०, भगिनी भाईके साथ०, मित्र मित्रके साथ भ्रगङ्गते हैं । वह वहाँ पलङ्ग = विप्रह = विचार करते, एक दूसरे पर हायासे भी आक्रमण करते हैं, डलो से भी०, डडोसे भी०, शत्रुओंसे भी आक्रमण करते हैं । यह वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, या मृत्यु समान दुःखों । महानाम ! यह भी कामोका दुष्परिणाम० ।

“और फिर महानाम ! कामोका हेतु० तलवार (=अभिचमन = तलवारकी चमड़ा) लेकर, धनुष (=धनुष पलाप = धनुषको बन्दी) बहा कर, दोनो ओरसे चूड़ रचे, संपाममें दौड़ते हैं । वागोका चलते जाते में, शक्तियोंके फंके जातेमें, तलवारोंकी चमकमें, वह वागोस विद्व होते हैं, शक्तियोंसे ताड़ित होते हैं, तलवार से क्षिर चिज्ज होते हैं । यह वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, या मृत्यु समान दुःखों । यह भी महानाम ! कामोका दुष्परिणाम० ।

“और फिर महानाम ! कामोका हेतु०, तलवार लेकर, धनुष बहाकर, भोगे लिये

हुये प्राणारो (= उपकारी = शहर पनाह) को दौड़ते हैं । बाणोंके चलाये जाते में० । वह वहां मृत्युको प्राप्त होते हैं० । यह भी महानाम ! कामोंका दुष्परिणाम० ।

“और फिर महानाम । कामोंके हेतु० संधमी लगाते हैं, (गांग) उजाड़कर लेजाते हैं, चोरी (= एकामारिक = एक घरको घेरकर चुराना) भी करते हैं, रहजनी (= परिपन्थ) भी करते हैं, परस्त्री-गमन भी करते हैं । तब उसको राजा लोग पकड़ कर नाना प्रकारकी सजा (= कम्मजरग) कराते हैं—चाबुके भी पिटाते हैं, बेंतसे भी०, जुमाना भी करते हैं, हाथभी काटते हैं, पैरभी काटते हैं, हाथ पैरभी काटते हैं, कानभी०, नाकभी०, कान नाकभी०, शिश्न वालिक भी करते हैं, शस्त्र मूर्धिका भी०, राहुमुख भी०, ज्योतिमालिका भी०, हस्त प्रज्योतिका भी०, एरक वार्तिका भी०, चीरक जामिका भी०, गणेरक भी०, बहिदा-मासिका भी०, कापाणक भी०, चारापनचित्रक भी०, परिघ-परिजलिक भी०, पल्लव पीठक भी०, तपाये तेलसे भी नहलाते हैं, कुत्तेसे भी बंधाते हैं, जीतेजी शूलीपर चढ़ाते हैं, तलवारसे शीश कटवाते हैं । वह वहां मरणको प्राप्त होते हैं, मरण समान दुःखको भी । यह भी महानाम ! कामों का दुष्परिणाम० ।

“और फिर महानाम । कामके हेतु० कायासे दुश्चरित (= पाप) करते हैं, बचनसे०, मनसे० यह काय०-वचन०-मनसे दुश्चरित करके, शरीर छोड़नेपर मरनेके बाद, अपाय = दुर्गति = विनिपात, निश (नर्क) में उत्पन्न होते हैं । महानाम ! जन्मान्तरमें यह कामोंका दुष्परिणाम दुःख पुंज काम-हेतु = काम निदान, कामोंका झगडा कामों हीके लिये होता है ।

एक समय महानाम ! मेरा राजगृहमें गृध्रद्वार पर्वतपर विहार करता था । उस समय बहुतसे निगठ (= जेन साधु) ऋषिगिरिकी कालशिंगपर चढ़े रहने (की व्रत) ले, आसन छोड़, उपव्रत करते, दुःख, कटु, तीव्र, वेदना झेल रहे थे । तब मेरा महानाम ! सार्यकाल ध्यानसे उठकर, जहां ऋषिगिरिके पास कालशिला थी, जहापर कि वह निगठ थे, वहां गया । जाकर उन निगठोंको बोला—‘क्या आबुसो ! निगठो ! तुम खड़े, आसन छोड़े दुःख, कटु, तीव्र वेदना झेल रहे हो ?’ ऐसा कहनेपर उन निगठोंने कहा—‘आबुस ! निगठ नाथपुत्र (= जैनतीर्थंकर महाश्री) सर्वज्ञ = सर्वदर्शी, आप अखिल (= अपरिशेष) ज्ञान = दर्शनको जानने हैं—‘चलते, चढ़ते, मोते, जागते, सदा निरंतर (उनको) ज्ञान = दर्शन उपस्थित रहता है’ । वह ऐसा कहते हैं—निगठो ! जो तुम्हारा पहिलेका किया हुआ कर्म है, उसे हम कड़वी दुष्कर क्रिया (= तपस्या) से नाश करो, और जो इस वक्त यहाँ काय वचन मनसे सत्कृत (= पाप न करनेके कारण रक्षित, गुप्त) हो, यह भविष्यके लिये पापका न करना हुआ । इस प्रकार पुराने कर्मोंका तपस्यासे अन्त होनेसे, और नये कर्मोंके न करनेसे, भविष्यमें बित्त अन्न आसन (= निर्मल) होंगे । भविष्यमें आसन न होनेसे, कर्मका क्षय (होगा), कम क्षय दुःखका क्षय, दुःख क्षयसे वेदना (= झेलना) का क्षय, वेदना क्षयसे सभी दुःख नष्ट होंगे । यह (विचार) रचना है—रामता है, इससे हम संतुष्ट हैं ।’

“ऐसा कहनेपर मेने महानाम । उन निगठोंको कहा—‘क्या तुम आबुसो ! निगठ जानते हो ‘हम पहिले थे ही, हम नहीं न थे ?’ ‘नहीं आबुस !’ ‘क्या तुम आबुसो ! निगठो ! जानते हो—हमने पूर्वमें पापकर्म किये ही हैं, ‘हाँ नहीं किये ?’ ‘नहीं आबुस !’ ‘क्या तुम आबुसो ! निगठो ! यह जानने हो—अमुक अमुक पाप कर्म किया है’ । ‘न

मगवान्त्रे, यह कहा—महानाम दास्यन्ते मत्पुत्रो भगवान्त्रे मायण्ण अभिवन्द्या किय।

कुटदन्त-सुत्त (वि. पू. ४५७) ।

ऐसा मेने सुना—एक समय पांच सौ भिक्षुओंके महा-भिक्षु-संभके साथ भगवान्। मगध-देशमें चारिका करते, जहां खाणुमत नामक मगधोका ब्राह्मण ग्राम था, वहां गये। वहां भगवान् खाणुमतमें अम्बलट्टिका (=आम्रयष्टिका) में विहार करते थे।

उस समय कुटदन्त ब्राह्मण, जनाकीर्ण, तृण काष्ठ-उदक धान्य संपन्न राज भोग्य राजा मागध श्रेणिक त्रिसार द्वारा दत्त, राज नाय, ब्रह्मदेय खाणुमतका स्वामी होकर रहता था। उस समय कुटदन्त ब्राह्मणको महायज्ञ उपस्थित हुआ था। सात सौ बल, सात सौ बठ्ठे, सात सौ बठड़िया, सात सौ बकरिया, सात सौ भेड़ें यज्ञके लिये स्थूण (=खम्भे) पर लाई गई थीं।

खाणुमत वासी ब्राह्मण गृहपतियोने सुना—शाक्य कुलसे प्रयोजित शाक्य पुत्र अमण गौतम० अम्बलट्टिकामें पिहार करते हैं। उन आप गौतमका ऐसा संगलकीर्ति शब्द सुना हुआ०। इस प्रकारके अहंतोका दर्शन अच्छा होता है। तब खाणुमतके ब्राह्मण गृहपति खाणुमतसे निकलकर, छुण्के छुण्ड जिघर अम्बलट्टिका थी, उधर जाने लगे। उस समय कुटदन्त ब्राह्मण प्रासादके ऊपर, दिनेके क्षयनके लिये गया हुआ था। कुटदन्त ब्राह्मणने छुण्डके पुण्ड खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थोको खाणुमतसे निकलकर, जिघर अम्बलट्टिका थी, उधर जाते देखा। तब उसने क्षत्ता (=महामात्य) को संबोधित किया—

“क्या है, हे क्षत्ता ! (जो) ०खाणुमतके ब्राह्मण-गृहस्थ० अम्बलट्टिका, जा रहे हैं ?”

“भो ! शाक्यकुल प्रयोजित० अमण गौतम० अम्बलट्टिकामें विहार कर रहे हैं। उन गौतमका ऐसा संगल कीर्तिशब्द उठा हुआ है०। उन्हीं आप गौतमके दर्शनार्थ जा रहे हैं।”

तब कुटदन्त ब्राह्मणको हुआ—“मेने यह सुना है, कि अमण गौतम सोलह परिष्कारा पाणी त्रिविध यज्ञ संपदाको जानता है। मैं महायज्ञ यज्ञ करना चाहता हूँ। क्या तब अमण गौतमके पास चलकर, सोलह परिष्कारोवाली त्रिविध यज्ञ संपदाको पढ़ूँ ?” तब कुटदन्त ब्राह्मणने क्षत्ताको संबोधित किया—

“तो हे क्षत्ता ! जहां खाणुमतके ब्राह्मण गृहपति हैं, वहां जाओ। जाकर खाणुमतके ब्राह्मण गृहपतियोको ऐसा कहो—कुटदन्त ब्राह्मण ऐसा कह रहा है ‘थोड़ी देर आप सब खरें, कुटदन्त ब्राह्मण भी अमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा।”

“कुटदन्त ब्राह्मणको ‘अच्छा भो !’ कह क्षत्ता वहां गया, जहां खाणुमतके ब्राह्मण गृहपति थे। जाकर यह कहा—‘कुटदन्त०’।

उस समय कई सौ ब्राह्मण कुटदन्तके महायज्ञको भोगनेके लिये खाणुमतमें वास करते थे। उन ब्राह्मणोंने सुना—कुटदन्त ब्राह्मण अमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा। तब वह ब्राह्मण जहां कुटदन्त था वहां गये। जाकर कुटदन्त ब्राह्मणको बोले—

“सधमुच आप कुटुम्बन्त भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेगले है ?”

“हां भो ! मुझे यह (विचार) हो रहा है (कि) मैं भी भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाऊँ ।”

“आप कुटुम्बन्त भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ मत जायें । आप कुटुम्बन्त भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं । यदि आप कुटुम्बन्त भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेंगे, (तो) आप कुटुम्बन्तका यश क्षीण होगा, भ्रमण गौतमका यश बढेगा । क्योंकि आप कुटुम्बन्तका यश क्षीण होगा, भ्रमण गौतमका यश बढेगा, इस बात (=अंग) से भी आप कुटुम्बन्त भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं । भ्रमण गौतम ही आप कुटुम्बन्तके दर्शनार्थ आने योग्य हैं० । आप कुटुम्बन्त बहुतोंके आचार्य प्राचार्य हैं, तीन सौ माण्यकोरो मन्त्र (=वेद) पढ़ते हैं । ताना दिशामोले, ताना देशोले यन्त्रसे माण्यक मन्त्रों लिये, मन्त्र पढ़नेके लिये, आप कुटुम्बन्तके पास आते हैं० । आप कुटुम्बन्त जीर्ण = वृद्ध = महत्त्वक = अध्वगत = वय प्राप्त हैं । भ्रमण गौतम सत्य है, सत्य साधु हैं० । आप कुटुम्बन्त राजा मागध धेनिक विषयारमे सत्कृत = गुरुकृत = मानित = पूजित = अपवित्र हैं० । आप कुटुम्बन्त ब्राह्मण पोषकस्नातिसे सत्कृत हैं० । आप कुटुम्बन्त ० छात्रमतेके स्वामी हैं । इस अंगसे भी आप कुटुम्बन्त भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं, भ्रमण गौतम ही आपके दर्शनार्थ आने योग्य हैं ।”

ऐसा कहोपर कुटुम्बन्त ब्राह्मणों, उन ब्राह्मणोंको यह कहा—

“तो भो ! मेरी भी सुनो, जैसे हमी भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, आप भ्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं हैं । भ्रमण गौतम भो ! दोनों ओरमे सुजात हैं०, इस अंगसे भी हमी भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, आप भ्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं हैं । भ्रमण गौतम बड़े भारी जाति सधको छोड़कर प्रयत्नित हुये हैं० । भ्रमण गौतम शीशुवाङ् आर्यशील युक्त कुशल शीशी = अच्छे गोलमे युक्त० । भ्रमण गौतम स्रक्ता = कल्याण वाक्कण० । भ्रमण गौतम बहुतोंके आचार्य प्राचार्य० । ० काम राग रहित, चपलता रहित० । ० कर्मवादी क्रियावादी० । ब्राह्मण संतानके निपाप श्रमणी० । ० अमिश्र उच्चकुल क्षत्रियकुलमे प्रयत्नित० । ० आदर महाधनी, महाभोगवान् कुलसे प्रयत्नित० । ० दूसरे राजा दूसरे जनपदोंसे पूठाक लिये आते हैं० । ० अनेक महत्त्व देवता प्राणसे शरणागत हुये० । भ्रमण गौतमके लिये ऐसा मंगल कर्ति शब्द उगा हुआ है — कि वह भगवान्० । भ्रमण गौतम पत्नी महापुरुष लक्षणोंसे युक्त हैं० । भ्रमण गौतम ‘आर्षो, स्वागत’ बोलेना, मर्मोन्मत्त, गम्भाकुटिक (=अकुटिल), उत्तान-मुद, पूर्वभाषी० । ० चारों परिपदेसे सत्कृत = गुरुकृत०० । भ्रमण गौतम बहुतसे देव और मनुष्य श्रद्धावान् हैं० । भ्रमण गौतम जिस धाम या नगरमें विहार करते हैं, उसे ३ मनुष्य (=देव, भूत आदि) वहीं सत्ताते० । भ्रमण गौतम सजी (=संघाधिपति) गणी, गणाचार्य, बड़े सोयस्रो (=संप्रदाय रथापन) में प्रधान कहे जाते हैं० । जैसे किसी भ्रमण ब्राह्मणका यश, जैसे जैसे हो जाता है, उस तरह भ्रमण गौतमका यश नहीं हुआ है । अनुचर (=अनुपम) विद्या चरण मंप्रदले भ्रमण गौतमका यश उत्पन्न हुआ । भ्रमण गौतमही, भो ! पुत्र सहित, भार्या-सहित, अमात्य-सहित राजा मागध धेनिक विषयार प्राणोसे शरणागत हुआ हैं० । ० राजा प्रसेनजित् कोस० । ० ब्राह्मण

पौत्ररमाति० । भ्रमण गौतम राजा० चित्रसागसे मत्कृत०० । ०राजा प्रसेनजित्०० । ०ब्राह्मण पौत्ररमाति०० । धनन गौतम खाणुमतमें आये हैं । खाणुमतमें अम्यलट्टिकामं विहार करते हैं । जो कोई भ्रमण या घाटाण हमारे गांव सेतमें आते हैं, वह (हमारे) अतिथि होते हैं । अतिथि हमारा सत्करणीय = गुरकरणीय = माननीय = पूजनीय है । चूंकि भो । भ्रमण गौतम खाणुमतमें आये हैं० । भ्रमण गौतम हमारे अतिथि हैं । अतिथि हमारा सत्करणीय० है । इस वगसे भो० । भो । म भ्रमण गौतमके इतने ही गुण कहता हूं । लेकिन वह आप गौतम इतने ही गुणवाले नहीं हैं, वह आप गौतम वा परिमाणगुणवाले हैं ।”

इतना कहनेपर उस ब्राह्मणने कुट्टदन्त ब्राह्मणसे कहा—

“जेमे आप कुट्टदन्त भ्रमण गौतमका गुण कहते हैं, (तबतो) यदि वह आप गौतम पहैसे सो जोनापर भी हो, तो भी पावेय बांधकर, श्रद्धालु कुलपुत्रको दर्शनार्थ जाना चाहिये । तो भो । हम सभी भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ चलेंगे ।”

तब कुट्टदन्त घाटाण महान् ब्राह्मण-गणने साथ, जहां अम्यलट्टिका थी, जहां भगवान् थे, पहुंच गया । जाकर भगवान्‌के साथ संमोदन किया । खाणुमतक ब्राह्मण गृहपतियोंमें सा पौत्र कोई भगवान्‌से अभिवादनकर एक ओर बट गये, कोई कोई संमोदनकर ०, ० निपर भगवान्‌ थे, उधर हाथ जोड़कर, ० चुपचाप एक ओर बट गये ।

एक ओर बैठे हुये कुट्टदन्त ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

“हे गौतम ! मेने सुना है कि—भ्रमण गौतम सोलह परिष्कार सहित त्रिविध यज्ञ संपन्नाको जानते हैं । भो । मेने सोलह परिष्कार सहित त्रिविध यज्ञ संपन्नाको नहीं जानना । म महायज्ञ करना चाहता हूं । अच्छा हो यदि आप गौतम, सोलह परिष्कार सहित त्रिविध यज्ञ संपन्ना मुझे उपदेश करें ।”

“तो ब्राह्मण ! सुन, अच्छी तरह मनमें कर, कहता हूं ।”

“अच्छा भो !” कुट्टदन्त ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा । भगवान् बोले—

“पूव कालमें ब्राह्मण । महाधनी, महाभोगवान्, बहुत सोना चांदीवाला, बहुत वित्त उपकरण (=साधन) वाला, बहुधा धान्यवान्, भरे कोश कोष्ठगारवाला, महानिजित नामक राजा था । ब्राह्मण ! (उग) राजा महाविजितको एकान्तमें विचारते चित्तम यह कथाल उत्पन्न हुआ—‘मुझे मनुष्योंके विपुल भोग मिले हैं, (मे) महान् पृथिवी मंडलको जीतकर, शासन करता हूं । क्यों न मे महायज्ञ करूं, जो कि चिरकालतक मेरे हित सुखके लिये हो ।’ तब ब्राह्मण ! राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको आकर कहा—ब्राह्मण ! यहां एकान्त में बैठ विचारते, मेरे चित्तमें यह कथाल उत्पन्न हुआ—‘क्यों न मे महायज्ञ करूं । ब्राह्मण ! मे महायज्ञ करना चाहता हूं । आप मुझे अनुशासन करें, जो चिरकाल तक मेरे हित सुखके लिये हो ।’ ऐसा कहनेपर ब्राह्मण । पुरोहित ब्राह्मणने राजा महाविजितको कहा—‘आप का देश सफ्टक, उत्पीडा सहित है । (राज्यमें) ग्राम घात (=ग्रामोंकी ह्त) भी दिखाई पड़ते हैं, बटभारी भी देखी जाती है । आप ऐसे सफ्टक उत्पीडा सहित जनपदसे बलि (=कर) एते हैं । इससे आप इस (देश)के अदृश्यकारी हैं । दायद आप का

(विचार) हो, दस्यु- (= दुष्ट) कीलको हम बच, धंधन, हानि, निन्दा, निर्जामने उपाइ दगे । लेकिन इस दस्यु कील (= छट पाट रुपी कील) को, इस प्रकार अच्छी तरह नहीं उपाइ जा सक्ता । जो मारोते बच रहगे, वह पीछे राजाके जनपदको सतायेंगे । यह दस्युकील हम उपायसे भली प्रकार उन्मूलन होमस्ता है । राजन् ! जो काइ आपके जनपदमें कृषि-गोपालन करनेका उत्साह रखते हैं, उनको आप धीज और भोजन सम्पादित कर । वाणिज्य करनेका उत्साह रखते हैं, उन्हें आप पूँजी (= प्राप्त) दें । जो राज पुर्पाई (= राजाको नोकरी) करोना उत्साह रखते हैं, उन्हें आप भत्ता पेटन (= भत्त पेटन) दें । (इस प्रकार) यह लोग अपन काममें लगे, राजाके जनपदको नहीं मथायगे । आप को महान् (धन धान्यकी) राशि (प्राप्त) होगी, जनपद (= देश) भी पीड़ा रहित, कटक रहित क्षेम युक्त होगा । मनुष्य भी गोदम पुत्राको नचातेसे, पुत्रे घर विहार करंगे । राजा महा विजितने पुरोहित ब्राह्मणको 'अच्छा भो ब्राह्मण !' कह, जो राजाके जनपदमें कृषि गोरक्षामें उत्साही थे, उन्हें राजाने धीज भत्ता सम्पादित किया । जो राजाके जनपदमें वाणिज्यमें उत्साही थे, उन्हें पूँजी सम्पादितरी । जो राजाके जनपदम राज पुर्पाईमें उत्साही हुये, उनको भत्ता पेटन ठाकर दिया । उन मनुष्योंके अपने-काममें लग, राजाके जनपदको नहीं सताया । राजाको महाराशि मिली । जनपद अर्द्धक अपोहित धेन रियत होगया । मनुष्य हर्षित, मोदित, गोदमे पुत्राको नचातेसे पुत्रे घर विहार करने लगे ।

“ब्राह्मण ! तब राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको उलार कर कहा—‘भो ! मेने दस्यु कील उखाड़ दिया । मेरे पास महाराशि है० । हे ब्राह्मण ! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ । आप मुझे अनुज्ञात करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-मुपक लिये हो ।’ तो आप । जो आपका जनपदमें जानपद (= नाम के), नगम (= शहर कल्पके) अनुयुक्त क्षत्रिय हैं, आप उन्हें कहें—‘मैं भो ! महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा (= आज्ञा) करें, जो कि मेरे चिरकालतक हित-मुपक लिये हो ।’ जो आपके जनपदम जानपद या नगम अमात्य (= अधिकारी) पारिषद्य (= सभासद) ० । जानपद में जानपद या नगम ब्राह्मण महाशाल (= प्रतिष्ठित धनी) ० । जानपद या नगम गृहपति (= वैश्य) नेचयिक ० । राजा महा विजितने ब्राह्मण पुरोहितको ‘अच्छा भो ! कहकर, जो राजाके जनपदम अनुयुक्त क्षत्रिय ० अमात्य पारिषद्य ०, ब्राह्मण महाशाल ०, गृहपति नचयिक (= धनी) ४, उन्हें राजा महाविजित ने आमंत्रित किया—‘भो ! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-मुपक लिये हो ।’ राजा ! आप यज्ञ करें महाराज यह यन्त्रकाल है ।’ यह चारों अनुमति पक्ष उभरी याये (चार) परिकार होते हैं ।

“(वह) राजा महाविजित आठ अंगोम युक्त था । (१) दोना ओरसे मुनात ० (२) अगिरूप = दर्शनीय ० त्रिदिवर्णी = प्रह्वृद्धि, दानके लिये श्वराज न रखने वाला । (३) शील-धान ० । (४) आठ महापात्रा महाभोग धार, उतुत चांदी साना वाला, बहुत चित्त-उपकरण वाला, बहुत धन धार-वाला, परिपूर्ण कोश भेष्टागारवाला, (५) वज्रवती चतुरगिनी सेनासे युक्त, अम्यसव (= आश्रय) के लिये श्वराज प्रतिकार (= श्वावाद-प्रतिकार) के लिये यशमे मानो शत्रुओंको सदावामा था । (६) ब्रह्मालु दायक = दानरति धर्मग-ब्राह्मण दक्षि-अर्थिक

(=मगता) वन्दीना (=वणिज्यक) याचोंके लिये मुद्र-द्वार-वाला प्याठ मा हा, पुण करता था । (७) बहुधुत, सुने हुणो, कदे हुओं का अर्थ जाता था—'हस कथन का यह अर्थ है, इन १५५५ यह अर्थ है' । (८) पंडित=व्यक्त मेधावी, भूत, भविष्य, वर्तमान संबंधी बातोंको सोचनेमें समर्थ । राजा महाविजित, इन आठ अंगोंसे युक्त (था) । यह आठ अंग उमी यन्त्र आठ परिवार हैं ।

“पुरोहित ब्राह्मण गर अगासं युक्त (था) ।—(१) दोनो ओरसे मुजात । (२) अध्यायक मंत्र-धर । गिनेद्र-पारंगत । (३) शीलमान् । (४) पंडित=व्यक्त मेधावा । मुजा (=दक्षिणा) ग्रहण करने वालोंमें प्रथम या द्वितीय था । पुरोहित ब्राह्मण इन चार अंगोंसे युक्त (था) । यह चार अंग भी उमी यन्त्र के परिष्कार होते हैं ।

“तत्र ब्राह्मण । पुरोहित ब्राह्मणने पहिले राजा महाविजितको तीन विधोंका उपदेश किया (१) यात्रारथकी इच्छा वाले आप को शायद कहीं अफमोम हो—'यद्दी धन राशि वनी जायेगी, सो आप राजाको यह अफमोम न करना चाहिये । (२) यन् करते हुये आप राजाका शायद वहीं अफमोम हो—'बलीजा रही है' । (३) यन् कर खुको पर आप राजाको शायद कहीं अफमोम हो—'यद्दी वन राशि चली गई, सो यह अफमोम आपनों न करना चाहिये' ब्राह्मण । इस प्रकार पुरोहित ब्राह्मणने राजामहाविजितको यन्ने पहिले तीन विध, बतलाये ।

“तत्र ब्राह्मण । पुरोहित ब्राह्मणने यन्ने पूर्वही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रतिप्राहण क प्रति (उत्पन्न होनेकी सम्भावना वांछे) दस प्रकारके विप्रतिमार (=चित्तको घुसा कर) हुणगे (१) आपके यन्म प्राणातिपाती (=हिंसात्मक) भी आवेंगे, प्राणातिपात-विरत (=स हिंसात्मक) भी । जो प्राणातिपाता है, (उनका प्राणातिपात) उन्हींके लिये है, जो वह प्राणातिपात विरत है, उनके प्रति आप यजन कर, मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न (=स्वच्छ) करें । (२) आपके यन्में अदिघ्नादायी (=चोर) भी आवेंगे, अदिघ्नादान विरत (=अ चोर) भी । जो वहाँ चोर है, वह अपने लिये है, जो वहाँ अ चोर हैं, उनके प्रति आप यजन कर मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें । (३) काम मिथ्याचारी (=व्यभिचारी), अ-व्यभिचारी भी । (४) मृषावादी (=झूठे), मृषावाद-विरत भी । (५) पिशुन-नाथी (=सुगुल सोर), पिशुन पवन विरत भी । (६) परप यात्री (=कटुगुण वाले), परप वचन विरत भी । (७) संप्रलापी (=बकवादी), संप्रलाप विरत भी । (८) अभिघ्न्यालु (=छोभी), अभिघ्न्या-विरत भी । (९) अ-व्यापन्न-चित्त (=द्रोही) अ-व्यापन्न-चित्त-भी । (१०) मिथ्यादृष्टि (=झूठे सिद्धांत वादी), सम्यग् दृष्टि (=सत्य सिद्धांतवादी) भी । जो वहाँ मिथ्यादृष्टि है, अपनेही लिये है, जो वहाँ सम्यग् दृष्टि हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें । आप अपने चित्तको भीतर से प्रसन्न करें, ब्राह्मण । पुरोहित ब्राह्मणने यन्ने पूर्वही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रतिप्राहणको (=दालने वाले) क प्रति (उत्पन्न होने वाले), इन दस प्रकार के विप्रतिमार (=चित्त मलिनता) अलग कराये ।

“तत्र ब्राह्मण । पुरोहित ब्राह्मणने यन्ने करते वक्त राजा महाविजितके चित्तका सोलह प्रकारसे सन्दर्शन=समावृण=समुत्तेजन=संप्रहर्षण किया—(१) शायद यन् करतेहुये आप राजाको कोई बोलनेवाला हो—राजा महाविजित महायज्ञ कर रहा है, किन्तु उसने नैगम जानपद

अनुयुक्त-क्षत्रियो = मांडलिक या जागीरदार राजाओंको आमंत्रित नहीं किया, तो भी यत्न कर रहा है। ऐसा भी आपको धर्मसे बोलनेवाला कोई नहीं है। आप नैगम (=शहरी) जानपद (=दीहारी) अनुयुक्त-क्षत्रियोको आमंत्रित कर चुके हैं। इससे भी आप इसको जान। आप यजन करें, आप मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (२) दायद० कोई बोलनेवाला हो—० नैगम जानपद अमात्यो (=अधिकारी अफसर^१, पार्षदो (=सभासद) को आमंत्रित नहीं किया०। (३)०० ब्राह्मण महाशाळो०। (४)०० नेचयिक गृहपतियो (=धनी, वैद्य) को०। (५) कोई बोलनेवाला हो—राजा महाविजित यत्न कर रहा है, किन्तु वह दोनों ओरसे सुनात नहीं है०। तो भी महायत्न यत्न कर रहा है। ऐसा भी आपको धर्मसे कोई बोलनेवाला नहीं है। आप दोनों ओरसे सुनात हैं। इससे भी आप राजा इसको जान। आप यजन करें, आप मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (६)०० अभिरूप = दर्शनीय०। (७)०० शीलवान्००। (८)०० आद्य महाभोगयान् बहुत सोना गरीमान्, बहुत जित-उपकरण वान्, बहु धन धान्य-वान्, कोश-कोषागार-परिपूर्ण००। (९)०० बलवती धनु रंगिनी सेनासे००। (१०)०० शत्रून् दायक००। (११)०० बहुश्रुत००। (१२)०० पंडित = व्यक्त मेधावी००। (१३)०० पुरोहित दोनो ओरम सुजात००। (१४)०० पुरोहित० अध्यायक मंत्रधर००। (१५)०० पुरोहित० शीलवान्००। (१६) पुरोहित० पंडित = व्यक्त००। ब्राह्मण! महायत्न यत्न करतेहुये, राजा महाविजितके चित्तको पुरोहित ब्राह्मणने इन सोल्ह विधोसे समुत्तेजित किया।

“ ब्राह्मण! उस यत्न गायें नहीं मारी गई, जक्रे-भेदे नहीं मार गये, सुगं सुभर नहीं मारे गये, न ताना प्रकारके प्राणा मार गये। न शूषके लिये शूष काटे गये। न पशु-हिंसाके लिये दम काटे गये। जो भी उसके दास, प्रेय्य (=नौकर), कर्मकर थे, उन्होंने भी दंड तर्जित, भय तर्जित हो, बाधमुक्त, रोतेहुये सेवा नहीं की। जिन्होंने चाहा उन्होंने किया, जिन्होंने नहीं चाहा उन्होंने नहीं किया। जो चाहा उसे किया, जो नहीं चाहा उसे नहीं किया। धी, सेल, मन्त्रजन, वही, मनु, गुह (=फाणित), ते ही वह यज्ञ समाप्तिको प्राप्त हुआ।

“ तब ब्राह्मण! जंगम-जानपद अनुयुक्त क्षत्रिय, अमात्य-पार्षद, महाराज (=धनी) ब्राह्मण, नेचयिक गृहपति (=धनी वैद्य) बहुतसा धन धान्यले, राजा महाविजितके पास जा कर, ऐसा बोले—‘ यह देन! बहुतसा धन धान्य (=सापतेय्य) देवन लिये लाये हैं, इसे देव स्वीकार करें’। ‘ नहीं भो! मेरे पास भी यह बहुतसा सापतेय्य, धर्मसे उपार्जित है। यह तु महाराहो रहे, यहासे भाँ और ले जाओ’। राजाके इन्कार करनेपर ण्कओर जाकर, उन्होंने सलाह की—‘ यह हमारे लिये उचित नहीं, कि हम इस धन धान्यको फिर अपने घरको गेग लेनाय। राजा महाविजित महायत्न कर रहा है, हन्त! हमभी इसके अनुयायी (=पीछे पीछे या करनेवाले) हों।

“ तब ब्राह्मण! यज्ञघाट (=यज्ञस्थान) के पूर्वओर जंगम जानपद अनुयुक्त-क्षत्रियोने अपना दान स्थापित किया। यज्ञघाटके दक्षिण ओर० अमात्य पार्षदोने०। पश्चिमओर०

१ अ-क- “शूष नामक महा-स्तम्भ खड़ा कर—” अमुक राजा, अमुक अमात्य, अमुक ब्राह्मणने दम प्रकारके तामबाले धागकी रिया नाम लिवावर रखते हैं।’

ब्राह्मण महाशालोने० । ० उत्तर ओर० नेचविक-वेइया ने० । ब्राह्मण ! उन (अनु) यज्ञमें भा गाय नहा मारी गई० । घी, तेल, मन्मथन, दही, मधु, म्वाँइसे ही वह यज्ञ समाप्तिको पास हुये ।

“ इस प्रकार चार अनुमति पक्ष, आठ अंगों से युक्त राजा महाभिजित, चार अंगों से युक्त पुरोहित ब्राह्मण, यह सोलह परिष्कार और तीन विधें हुई । ब्राह्मण ! इसेही त्रिविध यज्ञ संपदा और सोलह-परिष्कार कहा जाता है ।

ऐसा कहनपर वह ब्राह्मण उच्चाद=उच्चशब्द=महाशब्द करने लगे— ‘अहो यज्ञ ! अहो ! त्वं सम्पदा ॥ ’ कुटदन्त ब्राह्मण चुपचापही बैठा रहा । तब उन ब्राह्मणोंने कुटदन्त ब्राह्मणको यह कहा—

“ आप कुटदन्त किसलिये श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौर पर अनुमोदित नहीं करते ? ”

“ भो ! मैं श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौर पर अनुमोदन नहीं कर रहा हूँ । शिर भी उसका पट जायगा, जो श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौर पर अनुमोदन नहीं करेगा । मुझे यह (निवार) होता है, कि श्रमण गौतम यह नहीं कहते— ‘ऐसा मैंने सुना’, या ‘ऐसा हो सकता है’ । बल्कि श्रमण गौतमने— ‘ऐसा तब था, इसप्रकार तब था’, कहा है । तब मुझे ऐसा होता है— ‘ अवश्य श्रमण गौतम उस समय (या तो) यज्ञ-स्वामी राजा महाविजित थे, या उनके यात्रयिता पुरोहित ब्राह्मण थे । क्या जानते हैं, आप गौतम ! इसप्रकार ये यज्ञको फटके या कराके, (मनुष्य) काया छोड़ मरने के बाद सुगति स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है ? ’

“ ब्राह्मण ! जानता हूँ इस प्रकारके यज्ञ० । मैं उस समय उस यज्ञ का यात्रयिता पुरोहित ब्राह्मण था ”

“ हे गौतम ! इस सोलह परिष्कार त्रिविध यज्ञ-संपदासे भी कम मामूली (=अर्थ) वाला, फल क्रिया (=समारभ)-वाला, किंतु महाफल दायी यज्ञ है ? ”

“ हे ब्राह्मण । इस० से भी० महाफलदायी । ”

“ हे गौतम ! वह इस० से भी० महाफलदायी यज्ञ कौन है ? ”

“ ब्राह्मण ! वह जो प्रत्येक कुलमें शीलवान् (=सशायी) प्रनजितोंके लिये नित्य दान दिये जाते हैं । ब्राह्मण ! वह यज्ञ इस० से भी० महाफल दायी है । ”

“ हे गौतम । क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो वह नित्यदान अनु-कुल-यज्ञ इस० से भी० महाफलदायी है ? ”

“ ब्राह्मण ! इस प्रकारक (महा) यागोंमें अर्हत् (=सुकपुरप), या अर्हत्-मागल्ल नहीं आते । सो जिस हेतु ? ब्राह्मण ! यहाँ दण्ड प्रहार और गल ग्रह (=गला पकड़ना) भी देखा जाता है । इसलिये इस प्रकारके यागोंमें अर्हत्-नहीं आते । जोकि वह नित्यदान० है, इस प्रकारक यज्ञमें ब्राह्मण ! अर्हत् आते हैं । सो किसे हेतु ? यहाँ ब्राह्मण ! दण्ड प्रहार, गल ग्रह नहीं देखे जाते । इसलिये इस प्रकारके यज्ञमें० । ब्राह्मण ! यह हेतु है, यह प्रत्यय है, जिससे कि नित्यदान० उस० से भी० महाफलदायी है । ”

“ हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ, इस सोलह परिष्कार त्रिविध यज्ञसे भी अधिक फलदायी, इस नित्यदान अथु कुल-यज्ञसे भी अल्प-सामग्री वाला अल्प समारम्भवाला और महा फलदायी, महामाहात्म्यवाला, है ? ”

“ हे, ब्राह्मण ! ० । ”

“ हे गौतम ! वह यज्ञ कौनसा है, (जो कि) इस सोलह ० ? ”

“ ब्राह्मण ! यह जो चारों दिशाओंके संघके लिये (= चातुर्दिगं मघ उद्दिगं) विहार बनवाना है । यह ब्राह्मण ! यज्ञ, इस सोलह ० । ”

“ हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ, इस ० त्रिविध यज्ञसे भी ०, इस नित्यदान ० से भी, इस विहार दानसे भी अल्प सामग्रीक अल्प-क्रियावाला, और भद्रफलदायी महामाहात्म्यवाला है ? ”

“ हे, ब्राह्मण ! ० । ”

“ हे गौतम ! कौनसा है ० ? ”

“ ब्राह्मण ! यह जो प्रसन्न-चित्तहो उद्ध (= परमतत्त्व) की शरण जाता है, धर्म (= परमतत्त्व) की शरण जाना है, संघ (= परमनत्त्व रक्षकं समुत्थाय) की शरण जाना है, ब्राह्मण ! यह यज्ञ, इस ० त्रिविध यज्ञसे भी ० ० । ”

“ हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ ० ० इन शरण गमनोंसे भी अल्प सामग्रीक, अल्प क्रियावान्, और महामाहात्म्यवान् महा माहात्म्यवान् है ? ”

“ हे, ब्राह्मण ! ० । ”

“ हे गौतम ! कौनसा है, ० ? ”

“ ब्राह्मण ! वह जो प्रसन्न (= रुग्न्त) चित्त (जो) शिक्षापद (= धर्म नियम) ग्रहण करना है—(१) प्राणातिपात विरमण (= अहिंसा), (२) अविज्ञानान्न विरमण (= अचोरी), (३) काम मिथ्याचार विरमण (= अभिमिगार), (४) मृपावाद विरमण, (= मृड त्याग), (५) मुग्धा मेरय मघ प्रसाद तथा विरमण (= तृणात्याग) । यह यज्ञ ब्राह्मण ! ० ० इन शरण गमनोंसे भी ० महा माहात्म्यवान् है । ”

“ हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ ० ० इन शिक्षापदोंसे भी ० महा-माहात्म्यवान् है ? ”

“ हे, ब्राह्मण ! ० । ”

“ हे गौतम ! कौनसा है ० ? ”

“ ब्राह्मण ! महा लोकमें समागत उत्पन्न होते हैं १ ० । इस प्रकार ब्राह्मण शाल मरपत्त होता है ० । प्रथमध्यानाको प्राप्तहो विहरता है । ब्राह्मण ! यह यज्ञ पूर्वके यज्ञोंमें अल्प सामग्रीक और महामाहात्म्यवान् है । ”

“ क्या है हे गौतम ! ० ० इस प्रथमध्याने भी ० ? ”

“ हे ० । ” “ कौन है ० ? ”

“ ० ० द्वितीय ध्यान ० ० । ” “ तृतीय ध्यान ० ० । ” “ ० ० चतुर्थ ध्यान ० ० । ”
 “ ज्ञान दर्शाने लिये चित्तको लगावा, चित्तको झुकाता है ० ० । ” “ ० ० ० नहीं अब
 दूसरा यथा केसिये हैं जानता है ० ० । यह भी ब्राह्मण । यज्ञ पूर्वके यज्ञोत्तम अल्प सामग्र्य
 ० और ० महामाहात्म्यवान् है । ब्राह्मण ! इस यज्ञ-संपदासे उत्तरितर (= उत्तम) = प्रणा
 ततर दूसरी यज्ञ संपदा नहीं है । ”

ऐसा कहो पर कुटुम्ब ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

“ हे गौतम ! आश्चर्य ! हे गौतम ! आश्चर्य ! ० । मैं भगवान्‌ गौतमकी शरण जाता
 हूँ, धर्म और भिक्षु सबकी भी । आप गौतम आजसे मुझे अजलि-वृद्ध उपासक धारण कर ।
 हे गौतम ! यह मैं आतसों बेलों, सातसौ बट्टो, सातसौ बट्टियों, सातसौ बरुंगों, सातसौ
 भेड़ोंको छोड़कर देता हूँ, जीवन दान देता हूँ, (वह) हरी घासे खावूँ, ठंडा पानी पावूँ,
 ठंडी हवा जाके (लिये) चलूँ । ”

तब भगवान्‌ने कुटुम्ब ब्राह्मणको आनुपूर्वी कथा कही ० १ । कुटुम्ब ब्राह्मणको उस
 आसामें गिरज = विमल धर्म चतु उत्पन्न हुआ—“ जो कुटुम्ब उत्पत्ति धर्म है, वह विनाश धर्म
 है । तब कुटुम्ब ब्राह्मणने दृष्टधर्म ० हो भगवान्‌को कहा—

“ भिक्षु सबके साथ आप गौतम मेरा कर्मा भोजन स्वीकार करें । ”

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया । तब कुटुम्ब ब्राह्मण भगवान्‌की स्वीकृति जान,
 आसनसे उठकर, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया ।

तब कुटुम्ब ब्राह्मणने उस रातके बीचनेपर, यज्ञवाटमें उत्तम स्वाद्य-भोज्य तैयारकर,
 भगवान्‌को काल सूचित कराया ० । भगवान्‌ पूर्वाह्न-समय पहिनकर पात्र-चीर ले, भिक्षुसमूह
 साथ, जहाँ कुटुम्ब ब्राह्मणका यज्ञवाट था, वहाँ गये । जाकर बिठे आसनपर बैठे । कुटुम्ब
 ब्राह्मणने वृद्ध प्रमुखा भिक्षु-समूहको अपनेहाथसे उत्तम स्वाद्य-भोज्यसे संतर्पित = संप्रसारित किया ।
 भगवान्‌ने भोजनकर पात्रमे हाथ हटा लेनेपर, कुटुम्ब ब्राह्मण एक छोटा आसन ले, एक ओर
 बैठ गया । एक ओर बैठ हुये, कुटुम्ब ब्राह्मणको भगवान्‌, धार्मिक कथासे संदर्श समादपन,
 समुत्तेजन, सप्रहर्षणकर, आसनसे उठकर चल दिये ।

सोणदंड-सुत्त । महालि-सुत्त । तैविज्ज-वच्छगोत्त-सुत्त । (वि. पू. ४५७) ।

१ ऐसा मैं सुना—एक समय पाँच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ भगवान् २ अंग (देश)में चारिका करते, जहाँ ३ चम्पा है, यहाँ पहुँचे । वहाँ चम्पा भगवान् गंगरा पुष्करिणीके तीरपर विहार करते थे ।

उस समय सोणदंड (=स्यगंड) ब्राह्मण, जाकोण, गृण-काष्ठ उद्क-धान्य-सहित राज भोग्य राजा मागध धेनिक विषमार द्वारा दत्त, रात्र-शाय, ब्रह्मदय, चम्पाका राजा भी था ।

चम्पागिरासी ब्राह्मण गृहपतिमाने सुना—साययकूट प्रमजित० भ्रमण गौतम उपायम गंगरा पुष्करिणीके तीर विहारकर रहे हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा भगल कीर्ति शब्द उदा हुआ है—०१ । इस प्रकारके बर्हत्ताका दर्शन अच्छा होता है । तब चम्पा वासी ब्राह्मण गृहपति चम्पासे तिरस्कार सुण्डके सुण्ड जिधर गंगरा पुष्करिणी है, उधर जाने लगे । उस समय सोणदंड ब्राह्मण, दिनके दायके लिये प्रासादपर गया हुआ था । सोणदंड ब्राह्मणने चम्पा गिरासी ब्राह्मण गृहपतिको० जिधर गंगरा पुष्करिणी है, उधर० जाते गेया । देवकर क्षत्ताको संघोचन किया—०१० ।

उस समय चम्पामें माना देशोंके पाँच सौ ब्राह्मण किसी कामसे वास करने थे । उन ब्राह्मणोंने सुना—सोणदंड ब्राह्मण भ्रमण गौतमने दर्शनार्थ जायेगा । तब वह ब्राह्मण जहाँ सोणदंड ब्राह्मण था, वहाँ गया । जाकर सोणदंड ब्राह्मणको बोले—०१० ।

तब सोणदंड ब्राह्मण महान् ब्राह्मण गणके साथ, जहाँ गंगरा पुष्करिणी थी, वहाँ गया । तब वन रंडकी आदम गाँवपर, सोणदंड ब्राह्मणके चित्तम बितर्क उत्पन्न हुआ—‘यदि मैं ही भ्रमण गौतमको प्रश्न पूछूँ, तब यदि भ्रमण गौतम मुझे ऐसा कहें—ब्राह्मण ! यह प्रश्न इस तरह नहीं पूछा जागा चाहिये, ब्राह्मण ! इस प्रकारसे, यह प्रश्न पूछा जाना चाहिये । तब मुझे यह परिपद् तिरस्कार करैगी—या (=यात्) =अव्यक्त है, सोणदंड ब्राह्मण ; भ्रमण गौतमने गैकते (=गोत्रियों) प्रश्न भी नहीं पूछ सकता । निम्नको यह परिपद् तिरस्कार करैगी, उसका यश भी क्षीण होगा । निम्नका यश क्षीण होगा, उसका भोग भी क्षीण होगा । यशसे ही भोग मिलने है । और यदि मुझे भ्रमण गौतम प्रश्न पूछें, यदि मैं प्रश्नके उत्तरद्वारा उनका चित्त सन्तुष्ट न कर सकूँ । तब मुझे यदि भ्रमण गौतम ऐसा कहें—ब्राह्मण ! यह प्रश्न ऐसे नहीं उत्तर दूँगा चाहिये, ब्राह्मण ! यह प्रश्न इस प्रकारसे व्याकरण (=उत्तर, व्याख्या) करना चाहिये । तो यह परिपद् मुझे तिरस्कार करैगी० । मैं यदि इतना समीप जाकर भी भ्रमण गौतमको बिना देते ही छोड़ जाऊँ, तो इससे भी यह परिपद् मुझे तिरस्कार करैगी—यात् =अव्यक्त है, सोणदंड ब्राह्मण, मानो है, भयभीत है, भ्रमण गौतमने दर्शनार्थ जानेमें समर्थ नहीं हुआ । इतना समीप आकर भी भ्रमण गौतमको बिना देते ही, कैसे लगे गया । जिससे यह परिपद् तिरस्कार करैगी० ।”

१ दी ति १४ । २ बिहारप्रातमें भागलपुर सुंवर जिल्लाका, गंगाके दक्षिणका भाग । ३ चंपा-नगर (जि भागलपुर, बिहार) । ४ पृष्ठ ३५ । ५ इसी कुट्टंत सुत्त (यसकी बात छोड़कर) ।

तब सोणदण्ड ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्‌के साथ वन्दन कर० एक शोर मचा गया। चपा-निवासी ब्राह्मण गृहपति भी—कोई कोई भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये, थोड़े कोई संन्यस्तकर०, कोई कोई जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोड़कर०, कोई कोई नामगोत्र सुनाकर०, कोई कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये।

बरा भी कुछ-दन्त ब्राह्मण (चित्तमें) बहुतसा वितर्क करते हुये बैठे थे—‘यदि मैं ही श्रमण गौतमको प्रश्न पूछूँ। अहोव्रत। यदि श्रमण गौतम (मेरी) अपनी त्रैविध्य पंडिताई में (प्रश्न) पूछने, तो मैं प्रश्नोत्तर देकर उनके चित्तको सन्तुष्ट करता।’

तब सोणदण्ड ब्राह्मणके चित्तके वितर्कको भगवान्‌ने (अपने) चित्तसे जानकर सोचा—यह सोणदण्ड ब्राह्मण अपने चित्तसे मारा जा रहा है। क्यों न मैं सोणदण्ड ब्राह्मणको (उसकी) अपनी त्रैविध्य पंडिताईमें ही प्रश्न पूछूँ। तब भगवान्‌ने सोणदण्ड ब्राह्मणको कहा—

“ब्राह्मण ! ब्राह्मण लोग कितने अंगों (=गुणों)से युक्तको ब्राह्मण कहते हैं, वह ‘म ब्राह्मण हूँ’ कहते हुये सब कहता है, झूठ बोलने वाला नहीं होता ?”

तब सोणदण्ड ब्राह्मण को हुआ—‘अहो ! जो मेरा इच्छित = आकांक्षित = अभिप्रेत = प्रार्थित था—अहोव्रत ! यदि श्रमण गौतम मेरी अपनी त्रैविध्य पंडिताईमें प्रश्न पूछते०। तो श्रमण गौतम मुझे अपनी त्रैविध्य पंडिताईमेंही पृष्ठ रहे हैं। मैं अबद्वय प्रश्नोत्तरसे उनके चित्तको सन्तुष्ट करूँगा। तब सोणदण्ड ब्राह्मण शरीरको उठा कर, परिपक्व की ओर विलोकनस भगवान्‌से बोला—

‘हे गौतम ! ब्राह्मण लोग पाँच अंगोंसे युक्तको, ब्राह्मण यतएते हैं०। कौनने पाँच ? (१) ब्राह्मण दोनो ओरसे सुजात हो०। (२) अर्ध्यायक मंत्रधर० त्रिनेत्रधारगत०। (३) शमिरूप = दशनीय० घर्णपुष्कलतासे युक्त हो। (४) शीलवान्०। (५) पंडित, मेधावी, यत्न दक्षिणा (=सुजा) ग्रहण करनेवालोंमें प्रथम था द्वितीय हो। इन पाँच अंगोंसे युक्तको।”

“ब्राह्मण इन पाँच अंगोंसे पूरको छोड़ चार अंगोंसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है० ?”

“कहा जा सकता है, हे गौतम। इन पाँचो अंगोंसे हे गौतम ! वर्ग (३) को छोड़ते हैं। वर्ग (=रूप) क्या करेगा, यदि भो ! ब्राह्मण दोनो ओरसे सुजात हो०। अर्ध्यायक मंत्रधर० हो०। शीलवान्० हो०। पंडित मेधावी० हो। इन चार अंगोंसे युक्तको, हे गौतम ! ब्राह्मण लोग ब्राह्मण कहते हैं०।”

“ब्राह्मण ! इन चार अंगोंमेंसे एक अंगको छोड़, तीन अंगोंसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है० ?”

‘कहा जा सकता है, हे गौतम ! इन चारोंमेंसे हे गौतम ! मंत्रों (=वेद)को छोड़ता हूँ। मंत्र क्या करेगा, यदि भो ! ब्राह्मण दोनो ओरसे सुजात० हो। शीलवान्० हो। पंडित मेधावी० हो। इन तीन अंगोंसे युक्तको हे गौतम ! ब्राह्मण कहते हैं०।”

“ ब्राह्मण ! इन तीन अंगोंमेंसे एक अंगको उड़, दो अङ्गोंसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है० १”

“ कहा जा सकता है, हे गौतम ! इन तीनोंमेंसे हे गौतम ! जाति (१) को छोड़ते हैं, जाति (=जन्म) क्या करेंगी, यदि भो ! ब्राह्मण शीलपार० हो । पंडित मेधावी० हो । इन दो अङ्गोंसे युक्तको, ब्राह्मण कहते हैं० १”

ऐसा कहनेपर उन ब्राह्मणोंने सोणदंड ब्राह्मणको कहा—

“ आप सोणदंड ! ऐसा मत कहें, आप सोणदंड ऐसा मत कहें । आप सोणदंड वर्ण (=रंग) का प्रत्याख्यान (=अपवाद) करते हैं, मन्त्र (=वेद) का प्रत्याख्यान करते हैं, जाति (=जन्म) का प्रत्याख्यान करते हैं, एक अक्षरसे आप सोणदंड धर्मगण गौतमकेही वाचको स्वीकार कर रहे हैं । ”

तब भगवान्‌ने उन ब्राह्मणोंको कहा—

“ यदि ब्राह्मण ! तुमको यह हो रहा है—सोणदंड ब्राह्मण खल्व धृत है, ०अ सुवक्ता है, ०दुष्प्रज्ञ है । सोणदंड ब्राह्मण हम यातम धर्मगण गौतमके साथ वाद नहीं कर सकता । तो सोणदंड ब्राह्मण ठहर, तुम्हीं मेरे साथ वात करो । यदि ब्राह्मण ! तुमको ऐसा होता है—सोणदंड ब्राह्मण बहुधृत है, ०सुवक्ता है, ०पंडित है, सोणदंड ब्राह्मण हम यातम धर्मगण गौतमके साथ वाद कर सकता है, तो तुम ठहरो, सोणदंड ब्राह्मणको मेरे साथ वात करने दो । ”

ऐसा कहनेपर सोणदंड ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

“ आप गौतम ठहर, आप गौतम मोन धारण करें, मैं ही धर्मके साथ इसका उत्तर दूंगा । ”

तब सोणदंड ब्राह्मणने उन ब्राह्मणोंको कहा—

“ आप लोग ऐसा मत कहें, आप लोग ऐसा मत कहें—आप सोणदंड वर्णका प्रत्याख्यान करते हैं ० । मैं वर्ण या मन्त्र (=वेद) या जाति (=जन्म) का प्रत्याख्यान नहीं करता । ”

उस समय सोणदंड ब्राह्मणका भागिनेय अङ्गक नामका माणवक उस परिषद्‌में बैठा था । तब सोणदंड ब्राह्मणने उन ब्राह्मणोंको कहा—

“ आप सब हमारे भागिनेय (=भाजे) अङ्गक माणवकको देखते हैं १ ”

“ हा, भो ! ”

“ भो ! (१) अङ्गक माणवक अभिरूप = दत्तनीय = प्रासादिक, परमवर्ण (=रूप-रत्न) पुण्यश्रुता से युक्त ० है । हम परिषद्‌ में धर्मगण गौतमको छोड़कर, वर्णमें हमने परास्तरका (दूसरा) कोई नहीं है, (२) अङ्गक माणवक व्याख्यायक मंत्र घर (= वेद पाठो) निर्वदु-कल्प अक्षरप्रभेद सहित तीनों वेद और पाचवे इतिहासका धारणगत है, पदक (=कवि) वेदा-करण लोकायत महापुरष ऋषण (शास्त्रा) में पूर्ण है । मैं ही इसका मन्त्रो (=वेद) का पढ़नेवाला हूँ । (३) अङ्गक माणवक दोनों ओरसे सुजात है ० । मैं इसका माता पिताको

जानता हूँ। (यदि) अङ्क माणक प्राणोको भी मारे, चोरी भी करे, परस्त्रीगमन भा करे, शृणा (=शठ) भी बोले, मद्य भी पीये। यहा पर अब भो ! वर्ण क्या करैगा ? मत्त और जाति क्या (करेगी) ? जत्र कि ब्राह्मण (१) शीलवान् (=सदाचारी) वृद्ध शीली (=बड़े शीलवाला), वृद्धशीलसे युक्त होता है। (२) पंडित और मेधावी होता है, सुता (=यज्ञ दक्षिणा) ग्रहण करनेवालोंमें प्रथम या द्वितीय होता है। इन दोनों पक्षास युक्तों ब्राह्मण लोग ब्राह्मण कहते हैं। (वह) 'मे ब्राह्मण हूँ' कहते, सच कहता है, शठ बोलेवाला नहीं होता।"

"ब्राह्मण इन दो अङ्गोंमेंसे एक अङ्गको छोड़, एक अङ्गसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है ? ०"

"नहीं है गोतम ! शीलसे प्रक्षालित है प्रज्ञा (=ज्ञान)। प्रज्ञासे प्रक्षालित है शील (=आचार)। जहां शील है, वहां प्रज्ञा है, जहां प्रज्ञा है, वहां शील है। शीलवान्को प्रज्ञा (होती है), प्रज्ञावान्को शील। किन्तु शील लोकोमें प्रज्ञाओंका अगुमा (=अप) कहा जाता है। जैसे है गोतम। हाथसे हाथ धोने, पैरसे पैर धोय, पैसे ही है गोतम। शील प्रक्षालित प्रज्ञा है ०।"

"यह ऐसा ही है, ब्राह्मण ! शील-प्रक्षालित प्रज्ञा है, प्रज्ञा प्रक्षालित शील है। जहां शील है, वहां प्रज्ञा, जहां प्रज्ञा है, वहां शील। शीलवान्को प्रज्ञा होती है, प्रज्ञावान्को शील। किन्तु लोकोमें शील प्रज्ञाओंका सदा कह जाता है। ब्राह्मण ! शील क्या है ? प्रज्ञा क्या है ?"

"हे गोतम ! इस त्रिपय में हम इतना ही भर जानने ह। अच्छा हो यदि आप गोतम ही (इसे कहें)।"

"तो ब्राह्मण ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भो !" (कह) सोणदंड ब्राह्मणने भगवान्को उत्तर दिया। भगवान्ने कहा—

"ब्राह्मण ! तथागत लोकमें उत्पन्न होते हैं ०^१। इस प्रकार निक्षु शील-संपन्न होता है। यह भी ब्राह्मण वह शील है।

"०^१ प्रथमध्यान ०। ० द्वितीयध्यान ०। ० तृतीयध्यान ०। ० चतुर्थध्यान ०। ० ज्ञान ध्यान के लिये चित्तको लगाता है ०। "अथ कुठ यहाँ करनेको नहीं है" यह जानता है। यह भी उसका प्रज्ञामे है। ब्राह्मण ! यह है प्रज्ञा।"

ऐसा कहने पर सोण-दण्ड ब्राह्मणने भगवान्को यह कहा—

"आश्चर्य ! हे गोतम ॥ आश्चर्य ! हे गोतम ॥ ०। आजसे आप गोतम सुने अनलि-
शब्द शरणागत उपासक धारण करें। निक्षु साथ सहित आप मेरा कल्पा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तत्र सोण दण्ड ब्राह्मण भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ कर, भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया। ॥

तप सोण दण्ड ब्राह्मण० भगवान् भोजन कर पात्रमे हाथ द्या जनेपर, एक छोटा आसन ले, एक ओर बंठ गया । एक ओर बंठ हुये सोण दंड ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

“ यदि हे गौतम ! परिषद्मे बैठे हुये में आसनमे उठ कर, आप गौतमको अभिवादन करूं, तो मुझे यह परिषद् तिरस्कृत करेगा । यह परिषद् जिसका तिरस्कार करेगी, उसका यश भी क्षीण होगा । जिसका यश क्षीण होगा, उसका भोग भी क्षीण होगा । यशसे ही तो हमारे भोग मिटें हैं । मैं यदि हे गौतम ! परिषद्मे बैठ हाथ जोड़ूं, उसे आप गौतम मेरा प्रत्युपस्थान समझें । मैं यदि हे गौतम ! परिषद्मे बैठा साफा (= पछन) हजार्ज, उसे आप गौतम मेरा शिरसे अभिवादन समझें । मैं यदि हे गौतम ! यानमें बैठा हुआ, यात्रा उतर कर, आप गौतमको अभिवादन करूं, उससे यह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी० मैं यदि हे गौतम ! यानमें बैठा ही पनोद-रुट्टी (= कोट्टेका डंडा) ऊपर उठाऊँ । उसे आप गौतम मेरा यानमें उतरना धारण करें । यदि मैं हे गौतम ! यानमें बसा हाथ उगार्ऊँ, उसे आप गौतम मेरा शिरसे अभिवादन स्वीकार करें । ”

तप भगवान् सोण दंड ब्राह्मणको धार्मिक-कथाते० स्मृतोजित० कर, यामनमे उठ कर पल दिये ।

महालि सुत्त ।

१ ऐसा भने सुना—एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कृतागारशालामें विहार करते थे ।

उस समय बहुतसे कोसलके ब्राह्मण-वृत्त, मगधके ब्राह्मण-वृत्त वैशालीमें किसी कामसे यान करते थे । उन कोसल-मगधके ब्राह्मण वृत्तोंने सुना—शाक्यकुल प्रप्रचित शाक्यपुत्र भ्रमण गौतम वैशालीमें महावनकी कृतागारशालामें विहार करते हैं । उन आप गौतमके लिये ऐसा भगल कीर्ति शब्द सुनाई पड़ता है—१० । इस प्रकारके अहंताका दर्शन अच्छा होता है ।

तब यह कोसल-मगध-ब्राह्मणवृत्त जहां महावनकी कृतागारशाला थी, वहां गये । उस समय आयुष्मान् नागित भगवान्‌के उपस्थाक (= हजारी) थे । तब यह० ब्राह्मणवृत्त जहाँ आयुष्मान् नागित थे, वहां गये । जाकर आयुष्यमान् नागित से बोले ।—

“ हे नागित ! इस वक्त आप गौतम कहा विहरते हैं ? हम उन आप गौतमका दर्शन करना चाहते हैं । ”

“ आयुष्यो ! भगवान्‌के दर्शनका यह समय नहीं है । भगवान् ध्यान में हैं । ”

तब यह ब्राह्मणवृत्त वहीं एक ओर बंठ गये—‘ हम उन आप गौतमका दर्शन करना चाहते हैं । ओद्वद (= आप ओद्वगला) लिच्छवि भी, बड़ी भारी लिच्छवि परिषद् साय, जहां आयुष्मान् नागित थे, वहां गया । जाकर आयुष्मान् नागितको अभिवादन कर, एक ओर पड़ा होगया । एक ओर सड़े हुये ओद्वद लिच्छविने आयुष्मान् नागितका कहा—

“ भन्ते नागित ! इस समय वह भगवान् अर्हत् सम्यक् संजुद्धकदा विहार कर रहे हैं । उन भगवान् अर्हत् सम्यक् संजुद्धका हम दर्शन करना चाहते हैं । ”

“महालि ! भगवान्‌के दर्शनका यह समय नहीं है । भगवान्‌ ध्यानमें हैं ।”

ओट्टुद्ध लिच्छवि भी वहीं एक ओर बंठ गया ।—‘उन भगवान्‌ अर्हत्‌ सम्यक्‌-सुद्धका दर्शन करकेही जाऊंगा’ ।

तब सिंह श्रमणोद्देश जहां आयुष्मान्‌ नागित थे, वहां आया । आकर आयुष्मान्‌ नागितको अभिवादनकर, एक ओर चढ़ा हो गया । ० यह कहा—

“भन्ते काश्यप ! यह घटुत्से० ब्राह्मण दूत भगवान्‌के दर्शनके लिये यहां आये हैं । ओट्टुद्ध लिच्छवि भी मरती लिच्छवि परिषद्‌के साथ भगवान्‌के दर्शनके लिये यहां आया है । भन्ते काश्यप ! अच्छा हो, यदि यह जाता भगवान्‌का दर्शन पाये ।”

“तो सिंह ! तूही जाकर भगवान्‌से कह ।”

आयुष्मान्‌ नागितको “अच्छा भन्ते ।” कह, सिंह श्रमणोद्देश जहां भगवान्‌ थे, बंठा गया । जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर ओर चढ़ा हो ० भगवान्‌को कहा—

“भन्ते ! यह घटुत्से०, अच्छा हो यदि यह परिषद्‌ भगवान्‌का दर्शन पाये ।”

“तो सिंह ! विहारकी छायामें आसन पिठा ।”

“अच्छा भन्ते ।” कह, विहारकी छायामें आसन पिठाया । तब भगवान्‌ विहाले निश्चर, विहारकी छायामें बिठे आसनपर बंठ ।

तब यह ब्राह्मण-दूत जहां भगवान्‌ थे, वहां गये । जाकर भगवान्‌के साथ समोदन कर “ओट्टुद्ध लिच्छवि भी लिच्छवि परिषद्‌के साथ, जहां भगवान्‌ थे वहां गया । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बंठ गया । एक ओर बंठे हुये, ओट्टुद्ध लिच्छविले भगवान्‌को कहा—

“पिठे दिने (= पुरिमानि दिवमानि पुरिमतराणि) सुनस्सत्त लिच्छविपुत्त जहां मैं था, वहां आया । आकर मुझे बोला—महालि ! जिसने लिये मे भगवान्‌के पास आऊ-अधिक तीन वर्ष तर रहा—प्रिय कमनीय रंजनीय० दिव्य शब्द सुनूंगा, किंतु प्रिय कमनीय रंजनीय दिव्य-शब्द मेन नहीं सुना ।” भन्ते । क्या सुनस्सत्त लिच्छवि पुत्रने विद्यमानही ० दिव्यशब्द नहीं सुने, या अविद्यमान ?”

“महालि ! विद्यमान ही ० दिव्यशब्दोंको सुनस्सत्त०ने नहीं सुना, अविद्यमान नहीं ।”

“भन्ते ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जिससे कि विद्यमानही० दिव्यशब्दोंको सुनस्सत्त० ने नहीं सुना० ?”

“महालि ! भिक्षुको पूर्वदिशामें ० दिव्य रूपोंके दर्शनार्थ एकाक्ष समाधि भावित होती है, किन्तु ० दिव्य शब्दोंके श्रवणार्थ नहीं । यह पूर्व-दिशामें ० दिव्य रूपको देखता है, किन्तु ० दिव्य-शब्दोंको नहीं सुनता । सो किस हेतु ? महालि ! पूर्व दिशामें एकाक्ष भावित समाधि होनेसे ० दिव्य-रूपोंके दर्शनके लिये होती है, ० दिव्य शब्दोंके श्रवणके लिये नहीं । और फिर महालि ! भिक्षुको दक्षिण दिशामें, ० पश्चिम दिशामें, ० उत्तर-दिशामें, ० ऊपर, ० नीचे, ० तिष्ठ रूपोंके दर्शनार्थ एकाक्ष भावित समाधि होती है ० ।

“ महालि ! भिक्षुको पूर्व दिशामें ० दिव्य शब्दोंके श्रवणार्थ ० । ०दक्षिण-दिशा ० । ०पश्चिम दिशा ० । ०उत्तर दिशा ० ।

“ महालि ! भिक्षुको पूर्व दिशामें ० दिव्य रूपोंके दर्शनार्थ, और दिव्य शब्दोंके श्रवणार्थ उभयाश (= दो-तरफी) समाधि भावित होती है । यह उभयाश समाधिके भावित होनेसे पूर्व दिशामें ० दिव्य रूपोंको देखता है, ० दिव्य शब्दोंको सुनता है । ०दक्षिण-दिशामें ० । ०पश्चिम दिशामें ० उत्तर दिशामें ० । ०ऊपर ० । ०नीचे ० । ०तिरिक्त ॥”

“ भन्ते ! इन समाधि भावनाआपे साक्षात्कार (= अनुभूति) के लियेही, भगवान्‌के पास भिक्षु ब्रह्मचर्य पालन करते हैं ॥”

“ नहीं महालि ! इन्हीं ०के लिये (नहीं) ० । महालि ! दूसरे इनसे बढकर, तथा अधिक उत्तम धर्म है, जिनके साक्षात्कारके लिये भिक्षु भर पाम ब्रह्मचर्य पालन करते हैं । ”

“ भन्ते ! कौनसे इनसे बढकर तथा अधिक उत्तम धर्म है, जिनके ० लिये ० ब्रह्मचर्य पालन करते हैं ॥”

“ महालि ! भिक्षु तीन संयोजनों (= बंधनों) के क्षयसे, न पतित होनेवाला, नियत, संयोजि (= परमजान) की ओर जानेवाला, झोत-ध्यापन्न होता है । महालि ! ०यह भी धर्म है ० । और फिर महालि ! तीनों संयोजनोंके क्षय होनेपर, राग, द्वेष, मोहके निर्मल (= तनु) पड़नेपर, सङ्गदागामी होता है, = एक ही याग (= सङ्ग पुन) इस स्तरमें फिर आ (= जन्म) कर, दुःख का अन्त काता (= निर्गण प्राप्त होता) है । ०यह भी महालि ! ०धर्म है ० । और फिर महालि भिक्षु पाँचों अवयव-भागीय (= ओर-भागिय = यहाँ आवागमनमें रखनेवाले) संयोजनोंके क्षय होनेसे औपपात्ति = ब्रह्म (= स्वयम्भूतमें) निश्चय पातेवाला = (फिर ब्रह्म) न लौटकर आनेवाला होता है । ०यह भी महालि ! ०धर्म है ० । और फिर महालि ! आत्मज्ञे (= चित्तमला) के क्षय होनेसे, आत्मव रहित चित्त की मुक्ति को ज्ञानद्वारा हमी जन्मसे स्वयं ज्ञानरूप = साक्षात्कारकर = प्राप्तकर विहार करता है । ०यह भी महालि ! ०धर्म है ० । यह है महालि ! ०अधिक उत्तम धर्म, निजने साक्षात् करनेके लिये, भिक्षु भर पाम ब्रह्मचर्य पालन करने हैं । ”

“ क्या भन्ते ! इन धर्मोंके साक्षात् करनेके लिये मार्ग = प्रतिपद् है ? ”

“ है, महालि ! मार्ग = प्रतिपद् ० ।

“ भन्ते ! कौन मार्ग है, कौन प्रतिपद् है ० । ”

“ यही आर्य अष्टांगिक मार्ग, जैसे कि—(१) सम्यग् दृष्टि, (२) सम्यग्-संकल्प, (३) सम्यग्-वचन, (४) सम्यग्-कमान्त, (५) सम्यग् आशीर, (६) सम्यग् व्यायाम, (७) सम्यग्-स्मृति (८) सम्यग् समाधि । महालि ! यह मार्ग है, यह प्रतिपद् है, इन धर्मोंके साक्षात् करनेके लिये । ”

“ एक बार मैं महालि ! कोशाम्बुमें घोषिताराम विहार करता था । तब दो प्रयत्नित (= माधु) मंडिस्म परित्राजर, तथा दारु पात्रिकला शिष्य जालिय—जहाँ मैं था, वहाँ आये । आकर मेरे साथ संसोदमकर एक ओर गड़े हो गये । एक ओर गड़े हुए उन दोनों प्रयत्नितोंने

मुझे क्या—‘आहुम । गौतम ! क्या वही जीव है, यही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है, या दूसरा है ?’ ‘तो आहुतो ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।’ ‘अच्छा आहुम ।’ यह उा दोनो प्रश्नजिनोने मुझे कहा । तब मने कहा —‘आहुमो ! एतन्मं तयागत उत्पन्न होता है०’ इस प्रकार आहुमो भिक्षु जीव सम्पन्न होता है । १० प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । आहुमो ! जो भिक्षु ऐसा जानता = ऐसा देखता है, उसको क्या यह कहनेकी जरूरत है—‘यही जीव है, यही शरीर है, या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है ?’ आहुमो ! जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, क्या उसको यह कहनेकी जरूरत है—‘यही जीव है० ?’ म आहुमो ! इसे ऐसे जानता हूँ०, तो भी मैं नहीं कहता—‘यही जीव है, यही शरीर है, या ।’ द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । १० तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । १० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । आहुमो ! जो भिक्षु ऐसा जानता = ऐसा देखता है० । १० ज्ञान = दशैतरे लिये विचित्रो लगाता = सुखाता है० । आहुमो ! जो भिक्षु ऐसा जानता = ऐसा देखता है० । १० और अत्रयहाँ नहीं है—‘ज्ञानता है । आहुमो ! जो भिक्षु ऐसा जानता = ऐसा देखता है० । क्या उसको यह कहनेकी जरूरत है—‘यही जीव है, यही शरीर है, या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है ?’ आहुमो ! जो० ऐसा देखता है, उसे यह कहनेकी जरूरत नहीं है—० । मैं आहुमो ! ऐसे जानता हूँ०, तो भी मैं नहीं कहता—‘यही जीव है, यही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा ।’”

भगवान्ने यह कहा—‘गोहृद्ध लिच्छविने सन्तुष्ट हो, भगवान्ने भाषणको अनुमोदित किया ।

तेविज्ज वच्छगोत्त-सुत्त ।

१० ऐसा मने सुना—एक समय भगवान् वेदाश्रमीमें महावनकी कुशगार शालामें निवास करता थे ।

उस समय वच्छ-गोत्त (= वत्सगोत्र) परित्राजक एक-पुण्डरीक परित्राजक रामर्म वास करता था । भगवान् पूर्वाह्न-समय पहिरकर, पात्रचीवर ले, वेदाश्रमीमें पिंड चारने लिये प्रविष्ट हुये । तब भगवान्को ऐसा हुआ—अभी वेदाश्रमी पिंडचार करनेके लिये बहुत सरोर है । क्यों न मैं जहाँ एक पुण्डरीक परित्राजकाराम है, जहाँ वच्छ-गोत्त परित्राजक है, वहाँ चलाँ । तब भगवान् वहाँ गये ।

वच्छ गोत्त परित्राजकने दूरसे हा भगवान्को आते देखा । देखकर भगवान्को बोला—
“आह्वय भन्ते ! भगवान् ! स्वागत भन्ते । भगवान् ! बहुत दिन होगया भत्त । भगवान्को यहा आये । यथिये भन्ते । भगवान् !, यह आसना बिठा है ।”

भगवान् त्रिडे आसनपर बैठ गये । वत्स गोत्र परित्राजक भी एक नीचा आसना लेकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे वत्स गोत्र परित्राजकने भगवान्को कहा—

“सुना है भन्ते ।—‘श्रमण गौतम सर्वत्र = सर्वदशी हैं, निखिल ज्ञान-दर्शन (= ज्ञानको अनुभव करने) का दावा करने है । चल्ते, खड़े, सोने, जागते (भी उनको) निरंतर सदा ज्ञान

दर्शन उपस्थित रहता है । क्या भते ! (ऐसा कहनेवाले) भगवान्‌के प्रति यथार्थ कहने-वाले हैं, और भगवान्‌को अमत्य = अभूतसे निन्दा (= अम्बाप्यान) तो नहीं करते ? धर्मे अनुकूल (तो) यगेन करते हैं, ? कोई यह-धार्मिक (= धर्मानुकूल) वाक्का अ ग्रहण, गद्दा (= निन्दा) तो नहीं होती । ”

“ वत्स ! जो कोई मुझे ऐसा कहते हैं— ‘ भ्रमण गौतम सर्वत्र है । ’ वह मेर बारम यथार्थ कहनेवाले नहीं हैं । अ सत्य (= अभूत)से मेरी निन्दा करते हैं । ”

“ जैसे कहते हुये भन्ते ! हम भगवान्‌के यथार्थवादी होंगे, भगवान्‌को अभूत (= अमत्य) से नहीं निन्दित करेंगे । ”

“ वत्स ।— भ्रमण गौतम नैविघ (= तीन विघातोंका जाननेवाला) है,— ऐसा कहते हुये, मेरे घातेमें यथार्थवादी होगा । (१) वत्स ! मैं जब चाहता हूँ, अनेक किय पूर्वजन्मों (= पूर्वजन्मों)को स्मरण कर सकता हूँ, जैसे कि—एक जाति (= जन्म) । इस प्रकार आकार (= दारी आरुति आदि), नाम (= उद्देश) व सहित अनेक पृथक्जन्मोंको स्मरण करता हूँ । (२) वत्स ! मैं जब चाहता हूँ, ज मानुष विपुल दिव्य-वस्तुसे मरते, उत्पन्न होते मोच-ऊँच, सुवर्ण-दुर्बल, सुगत दुर्गत । कमलानुसार (गतिको) प्राप्त सत्त्वोंको जानता हूँ । (३) वत्स ! मैं आश्रमों (= राग द्वेष आदि)के क्षयसे आश्रम रहित चित्तरी विमुक्ति (= मुक्ति) प्रज्ञा द्वारा विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं साक्षात्कर = प्राप्त कर विहरता हूँ ।

ऐसा कहनेपर वत्स गोत्र परित्राजकने भगवान्‌का कहा—

“ हे गौतम ! क्या कोई गृहस्थ है, जो गृहस्थ संयोजनों (= संयोजनों)को बिना छोड़े, पायाको छोड़ दु गका अन्त करनेवाला (= निर्वाण प्राप्त करनेवाला) हो ? ”

“ नहीं वत्स ! ऐसा कोई गृहस्थ नहीं । ”

“ हे गौतम ! हे कोई गृहस्थ, जो गृहस्थ संयोजनोंको बिना छोड़े, काया छोड़ने (= मरने) पर, स्वर्गको प्राप्त होने वाला हो ? ”

“ वत्स ! एक ही नहीं सो, सौ नहीं दोसौ, ऽतीन्मो, ऽचारमो, ऽपांचमो, और भी बहुतसे गृहस्थ हैं, (जो) गृहस्थ संयोजनोंको बिना छोड़े, मरनेपर स्वर्गगामी होते हैं । ”

“ हे गौतम ! हे कोई श्राद्धीयक, जो मरनेपर दु चक्रा अन्त करनेवाला हो ? ”

“ नहीं, वत्स । ”

“ हे गौतम ! हे कोई आनीयक जो मरनेपर स्वर्गगामी हो ? ”

“ वत्स ! यहासे पकाने कल्प तक मैं स्मरण करता हूँ, किसीको भी स्वर्ग जानेवाला नहीं जानता, सिवाय पुत्रके, और वह भी कर्म वादी = क्रियावादी था । ”

“ हे गौतम ! यदि ऐसा है तो यह तीर्थायन (= पथ) शून्य ही है, यहा तक कि स्वर्ग गामियोंसे भी । ”

“ वत्स ! ऐसा होते यह ‘ पथ ’ शून्य ही है । ”

भगवान्‌ने यह कहा ! वत्स-गोत्र परित्राजकने सन्तुष्ट हो, भगवान्‌के भाषणको अनु मोदन किया ।

१५ वा वर्षवास । भरहु-सुत्त । शाम्य-कोलिय-विवाद । महानाम-सुत्त ।
कीटीगिरिमें । कीटीगिरि-सुत्त । (पि. पू. ४५७-५६) ।

१ पद्मार्थी वषा (भगवान्ने) कपिल वस्तुमें त्रिताई ।

भरहु-सुत्त ।

ऐसा मने सुना—एक समय भगवान् कोमलमें चारिका करते जहाँ कपिल-वस्तु था, वहाँ पहुँचे ।

महानाम शक्यने सुना—भगवान् कपिल-वस्तुमें आ पहुँचे हैं । तब महानाम शक्य जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान् को अभिवादन कर, एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये, महानाम शक्यको भगवान्ने कहा—

“जा महानाम ! कपिल-वस्तुमें ऐसा स्थान देव, जहाँ हम आज एक-रात विहार करें ।”

महानाम ने भगवान् को “भन्ते अच्छा, कह” कपिल-वस्तुमें प्रवेशकर, सारे कपिल-वस्तु को हींङ्ते हुये, ऐसा स्थान नहीं देखा, जिसमें भगवान् एक रात विहार करते । तब महानाम शक्य, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्से बोला—

“भन्ते ! कपिल-वस्तुमें ऐसा आश्रम (= अतिथि-शाला) नहीं है, जहाँ भगवान् एक रात विहार करें । भन्ते ! यह भरहु-कालाम भगवान् का पुराना स-ग्रह-चारी (= गुरु-मार्ग) है, शान्त भगवान् एक रात उसके आश्रम ही विहार करें ।”

“महानाम ! जा आसन (= सभार) ० बिठा ।”

“अच्छा भन्ते” ० कह महानाम, जहाँ भरहु-कालाम का आश्रम था, वहाँ गया । जाकर आसन बिठा, पर धोने के लिये जल रख कर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया । आकर भगवान् से बोला—

“भन्ते ! आसन बिठा गया । पर धोने के जल रख दिया । (अब) भगवान् जो उचित समझें (करें) ।”

तब भगवान् जहाँ भरहु-कालाम का आश्रम था, वहाँ गये । जाकर बिठे आसन का बंधन भगवान्ने पैर पसार । तब महानाम शक्यको हुआ—आज भगवान् की परि-उपासना का समय नहीं है, भगवान् वक्रे हुये हैं । कलमें भगवान् की परि-उपासना (= सत्संग) करूँगा । यह (सोच) भगवान् को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, चला गया ।

तब महानाम शक्य उस रात के धीतने पर जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया । आकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे महानाम शक्यको भगवान्ने कहा—

“महानाम ! लोक में तीन प्रकार के शास्ता (= गुरु) विद्यमान हैं । कोनसे तीन ? (१) यहाँ एक शास्ता महानाम । कामो की परिज्ञा (= त्याग) का उपदेश करते हैं, (लेकिन) रूपो की परिज्ञा, वेदनाओं की परिज्ञा नहीं प्रगपित करते । (२) ० कामो की परिज्ञा रूपों की

परिज्ञाको प्रज्ञापित करते हैं, (मिथु) वेदनाओंकी परिज्ञासे नहीं० । (३) ० कामोन्नी परिज्ञाको भी०, रूपोंकी परिज्ञाकी भी०, उदनाओंकी परिज्ञाकोभी प्रज्ञापन (= उपदेश) करते हैं । महानाम । लोभमें यह तीन प्रकारके शास्त्रा हैं । इन तीनों शास्त्राओंका महानाम । क्या एक निष्ठा (= धारणा) है, या अलग अलग निष्ठाएँ ? ”

ऐसा कहने पर भरहु कालामने महानाम शाक्यको कहा—

महानाम ! कह—‘एक है’ ।

ऐसा कहन पर भगवान्ने महानाम शाक्यको कहा—

‘महानाम ! कह—‘नानाहै’ ।’

दूसरी बारभी भरहु कालामने० । ० । ० ।

तीसरी बारभी० । ० । ० । ० ।

तब भण्डु कालामको हुआ—महेसक (= महासमर्थवान्) महानाम शाक्यके सामने धमण गौतमको मैंने तीनवार अ प्रमत्त किया । (अब) मुझे कपिलग्रस्तुसे चला जाना चाहिये । तब भरहु कालाम कपिलग्रस्तुसे चला गया । जो वह कपिलग्रस्तुसे निरला, तो वैसे चलाही गया कि फिर छोटकर न आया ।

शाक्य-कोलिय-विवाद ।

“ शाक्य और कोलिय, कपिलग्रस्तु और कोलिय नगरक बीचकी रोहिणी नदीको एकही नाथसे पारकर गेनी करते थे । तब जेठ महीनेमें रोहिणीकी सूखती देर, योग नगरक वाली कमकर (= मजदूर) एकत्रित हुये । वहाँ कोलिय नगरवासियोंने कहा—‘ यह पानी दोनो ओर लेजानेपर तुम्हारा ही पूरा होगा, न हमारा ही । हमारी रोहिणी एक पानासे ही पूरी होजायेगी, यह पानी हम लेनेदो’ । तबने भी कहा—‘ तुम्ह कोठियाँ भरकर खड़े देख, रत्न, सुवर्ण, नीलमणि, काले कापापग (= ताँबेके पैसे) लेकर पच्छि (= दोऊरा) पसिन्धक (= चोरा) आनि लेकर तुम्हारा द्वारापर हम नहीं घुसगे । हमारी भी रोहिणी पूरही पानीसे होजायेगी, यह पानी हमको लेनेदो ।’ ‘ हम नहीं देंगे ।’ ‘ हम भी नहीं देंगे ।’ जने बात बढ़कर, एकने दठकर पत्रपर हाथ छोड़ दिया । उनने भी दूसरेपर । इस प्रकार एक दूसरेको मारकर राज कुलो (शाक्य कोलिय धर्मों) की जातिमें बीचम डाल करहको बढ़ा दिया । कोलिय कर्मन्त्र कहते थे—

“ तुम कपिलग्रस्तु वासियोंको हराओ । जिन्हाने कुत्ते रथारका भीति अपना रहितोक्त साथ संवाम किया, उनके हाथी, घोड़े, डाल हथियार हमारा स्था कर मरन है ? ”

शाक्य कमकर बोल्ते—

“ तुम कोलियोंक ऋकोंको हटाओ, जाकि अनाथ निगरण बिट्टियाका भीति बोल (= धर) के सुक्षर घाम कस्त रह । इनके हाथी घोड़े डाल हथियार हमारा क्या कर सकते हैं ? ”

उन्होंने जाकर इस काममें शिथुव अमात्याको कहा । अमात्योंने राज-कुलोको कहा ।

तब शाक्य (ओर) कोलिय युद्धके लिये तैय्यार होकर निकले । शास्ताभी मरने वक्त लोकको देखने, जातिवालोंको देखकर, अकेलेही आकाशसे जाकर, रोहिणी नदी कीचमे आकाशम आसन मारकर बैठे । जातिवालो (= जातकों) ने शास्ताको देव, आयुष रत्नर उन्दना की ।

तब दारता (= बुद्ध) ने कहा ।

“ किम यातकी कहह है महाराजो ? ” “ भन्ते । हम नहीं जानते । ”

“ तत्र कोन जानता है ? ” “ सेनापति जानता है । ”

सेनापति ने—‘ उपराज जानता है । ’

इस प्रकार (एकके बाद एकको पूछते) दासो, कर्मकरोने पृष्ठने पर कहा—“ भन्ते ! पानीका क्षगड़ा है । ’

“ महाराजो । उदकका क्या मोल है ? ” “ भन्ते ! कुछ नहीं । ”

“ क्षत्रियोका क्या मोल है ? ” “ भन्ते ! अनमोल । ”

“ तुम लोगोको सुप्तक पानीके लिये अनमोल क्षत्रियोका नाश न करना चाहिये । ”

यह चुप हो गये । तब शास्ताने यह गाथायें कहीं—

“ हम जेरियोमें अजरी हो बहुत सुखसे जीते हैं ।

येरी मनुष्योंमें हम अजरी हो विहरते हैं ॥ ”

महानाम-सुत्त ।

ऐसा मेने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देश) में कपिलवस्तुके न्यग्रोधाराम में विहार करते थे ।

उस समय महानाम शाक्य बीमारीसे असी असी उठा था । उस समय बहुतसे भिक्षु भगवान् की चौर बना रहे थे—‘ चौर बनजाने पर तीन मास बाद भगवान् चारिकाके लिये जायेंगे । ’ । तब महानाम शाक्य जहा भगवान् थे, कहा गया । जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ, महानाम शाक्यने भगवान् को कहा—

“ भन्ते ! सुना हे—बहुतसे भिक्षु० चौर बना रहे हैं,० भगवान् चारिका (= रासत) को जायेंगे । सो भन्ते । नाना विहारो (= ध्यान आदि) से विहरते, हमलोगोंको किम विहारसे विहरना चाहिये ? ”

“ साधु, साधु, महानाम ! तुम्हारे जसे कुलपुत्रोंको यह योग्यही है, जो तुम तथागत के पास आकर पृष्ठते हो—‘ हमलोगोंको किस विहार० ’ । महानाम ! आराधक (= साधक = सुपुत्र) श्रद्धालु होने, अश्रद्धालु नहीं, उद्योगी (= आरद्धविरिष) होने, अन्-उद्योगी नहीं । ० (सर्वदा) उपस्थित-स्मृतिवाला होने, नष्ट-स्मृतिवाला नहीं । ० समाहित (= एकाग्रचित्त) होने, अ-समा-हित नहीं । ० प्रजावान् होने, दुष्प्रज्ञ नहीं । महानाम ! तुम इन पांच धर्मा में स्थित होकर, उत्तर-धर्मा की भावना करो ।

“ और फिर महानाम । तुम अपने त्याग (=दानको) स्मरण करो—सुते लाभ है, सुते बड़ा लाभ हुआ, जो मे मल-मत्सर-ल्लिप्त जनतामें मल मत्सर विरहित चित्त हो, मुक्त दानी, प्रयत्न पाणि (=खुले हाथ) दान विभाजित-रत हो, गृहस्थमें धाम्प्य रहा हूँ । जिस समय महानाम ।

“ महानाम । तुम तथागतका स्मरण करो—‘ मेरे वह भगवान् नहैं न सम्यक्सुबुद्ध, विद्याचरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, अनुपम पुरुष-द्रव्य सारथी, देव-मनुष्योक्त शास्ता है’ । जिस समय महानाम । आर्य-श्रावक तथागतको अनुस्मरण करता है, उस समय उसका चित्त न राग लसित होता है, न द्वेष लसित (=द्वेष पीर-उत्थित), न मोह-लसित । उस समय उसका चित्त अ कुटिल (=नञ्जुगत=सीधा) होता है । तथागतके प्रति अ कुटिल चित्त हो आर्य-श्रावक अर्थ वेद (=परमार्थ ज्ञान)को प्राप्त होता है, धर्म वेद (=धर्म ज्ञान) को प्राप्त होता है, धर्म संयुक्त प्रमोद (=चित्तके आनन्द) को प्राप्त होता होता है । प्रमुदित पुरुषको प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिमानका शरीर स्थिर होता है । स्थिर-काय सुख अनुभव करता है । सुगितका चित्त समा हिता (=एकाग्र) होता है । महानाम । तुम हम बुद्ध अनुस्मृतिको प्राप्त कर यह भावना करो । वैश्वमी भावना करो, छेदे भी० । कर्मान्त (=मेरी) की देख रेख (=अधिष्ठान) करते भी० । पुद्गलसे घिरी शय्यापर भी० ।

“ और फिर महानाम । तुम धर्मका अनुस्मरण करो—‘भगवान्का धर्म स्वात्म्यात है तरकाल फलदायक है समयांतरमें नहीं, यहाँ दिखाई देनेवाला, जिनमें अपने आपहीमें जानने योग्य है’ । जिस समय महानाम । धर्मको अनुस्मरण करता है० ।

“ और फिर महानाम । तुम संघको अनुस्मरण करो—‘भगवान्का श्रावक-संघ सुप्रतिपन्न है । भगवान्का सघ नञ्जु-प्रतिपन्न (=सीधे मार्गपर आरुढ़) है, ठीकने प्रतिपन्न है, यही भगवान्का श्रावक-संघ है, जोकि चार पुरुष-युगल, आठ पुरुष-व्यक्ति । यह आहुणेय = पादुणेय (=निमन्त्रित करने योग्य) (भिक्षा-) दान देने योग्य (=इक्षिणेय), अञ्जलि ओढ़ने योग्य, और लोकके पुण्य (करने)का क्षेत्र है ।

“ और फिर महानाम । तू अ-खंड=अ छिद्र,अ-शक्ल=कल्पमय रहित (=निर्पाप) उचित (=भुजिस्स), विजोसे प्रशंसित, अ भिन्नि, अपने शीले (=सदाचारे) को अनु स्मरण करो जिस समय० शीलका अनुस्मरण करता है ।०

“ और फिर महानाम । तुम देवताओंको अनुस्मरण करो—(१) चतुर्भुजारात्रि देवता हैं, (२) त्र्यस्थिदा देवता हैं, (३) याम०, (४) तुषित०, (५) निमण्वति०, (६) परिनिमित्त वराजती०, (७) ब्रह्मकायिक०, (८) उनसे उपरके देवता हैं । जिस प्रकाशकी श्रद्धामें युक्त हो, यह देवता यहाँसे सरस्व वहा उत्पन्न हुये, मेरे पास भी वैसी श्रद्धा है ।० शी० ।० धृत० । ० मेरे पास भी वैसा त्याग (=दान) है० । ० मेरे पास भी वैसी प्रज्ञा (=ज्ञान) है । जिस समय महानाम । तब श्रावक अपने और उन देवताओंकी श्रद्धा, शील, धृत, त्याग और प्रज्ञाको स्मरण करता है० । ० सुगितका चित्त समाहित (=एकाग्र) होता है । इसे कहते हैं महानाम । कि ‘आर्य श्रावक वि पम (=उन्मी) प्रज्ञामें समता (=सीधापन)को प्राप्त हो, बिदर रहा है ।

द्रोह-युक्त प्रजामें न द्रोह-युक्त विहर रहा है। धर्म-श्रोत (= धर्म प्रगाह) में प्रवृत्त हो, देवता अनुस्मृति की भावना कर रहा है। महानाम ! इस देवतानुस्मृतिको तुम चलने भी भावना करो, पड़े भी०, लड़े भी०, कमान्तरू का अधिष्ठान करते भी०, पुत्रासे विरो दक्ष्यापर भी०।

+ + + + +

कीटागिरिमें।

‘तत्र भागवतमें ईच्छानुसार विहारकर, भगवान् सारिपुत्र, भोगलान और पांच सौ भिक्षुओंके महासङ्घ साथ जटा कीटागिरि है, वहा चारिकाये लिये चले। अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओंने सुना—भगवान् पांच सौ भिक्षुओंके महामिक्षु संघ तथा सारिपुत्र, मौद्गल्यायन साथ कीटागिरि आ रहे हैं।

“तो आबुसो ! (आबो) हम सब मध्ये शयन आसनो बाँट लें। सारिपुत्र मौद्गल्यायन पाप (= उरी) - ईच्छाओंसे युक्त हैं। हम उन्हें शयन आसन न दोगे।” यह सौच शब्दोंने सभी साधिक शयन आसनो बाँट लिया।

तब भगवान् नम्रता चारिका करने, जहा कीटागिरि है, वहाँ पहुँचे। तब भगवान् वस्तुसे भिक्षुओंको कहा—

“जाओ भिक्षुओ ! अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओंके पास जाकर ऐसा कहो—‘आबुसो ! भगवान् आ रहे हैं। आबुसो ! भगवान्के लिये शयन आसन कीक करो, रखके लिये भी, और सारिपुत्र मौद्गल्यायनके लिये भी।”

“अच्छा भन्ते !” कह उन भिक्षुओंने जाकर अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओंको यह कहा—“०”। (उन्होंने कहा) —

“आबुसो ! (यहा) साधिक शयन आसन नहीं है, हमने सभी बाँट लिया। स्वागत है आबुसो ! भगवान्का। निम्न विहारमें भगवान् चाहे, उस विहारमें वास करें। (विन्तु) पापेच्छु है सारिपुत्र मौद्गल्यायन०, हम उन्हें शयनासन नहीं दोगे।”

“कहा आबुसो ! तुमने साधिक शयनासन (= घर, सामान) बाँट लिया ?”

“हा आबुस !”

तब उन भिक्षुओंने जाकर यह बात भगवान्को कही। भगवान्ने धिक्कार कर- भिक्षुओंसे कहा—

“भिक्षुओ ! यह पाप अ विभाज्य है, सब गण या पुद्गल (= व्यक्ति) द्वारा न बाँटे योग्य है। यादनेपर भी यह अविभक्त (= जिना बँटे) ही रहत है, जो बाँटता है, उसे स्थूल-यत्न्यपरा अपराध लगता है। कौनसे पाप ? (१) आराम या आराम वस्तु (= आरामका घर) । (२) विहार या विहार वस्तु । (३) मंच, पीठ, गद्दा, तकिया । (४) लोह कुंभ,

१ विनाय सुखमग ६। २ बनारससे अयोध्या (= साकेत) के रास्तेपर वर्तमान केराकत (जौनपुर) या उसके आसपास कोई स्थान रहा होगा। ३ सारे संघकी सम्पत्ति, एक व्यक्तिकी नहीं।

लोह-भाणक, लोह-चारक, लोह कटाह, वासी (= वसुला), फरमा, कुल्हाड़ी, उदाल, निषादन (= खननेका औजार) । (५) बछी, वास, मूँज, बलवन, नृण, मिट्टी, लकड़ीका बतन, मिट्टीका बर्तन ।”

‘कीटागिरि-सुत्त ।

‘ऐसा मैंने सुना—एक समय बड़े भारी भिक्षु संघके साठ भगवान् काशी देशमें चारिका करनेपे । वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“भिक्षुओ ! मैं रात्रि भोजनसे विरतहो भोजन करताहूँ । रात्रि भोजन छोड़कर भोजन करनेसे आरोग्य, उत्साह, बल, सुख पूर्वक त्रिहार अनुभव करताहूँ । आओ, भिक्षुओ ! तुम भी रात्रि भोजन विरतहो भोजन करो, रात्रिभोजन छोड़कर भोजन करनेमें तुमभी अनुभव करोगे ।

“अच्छा भन्ते !” उन भिक्षुओंने भगवान्को कहा ।

तब भगवान् काशी (देश)में क्रमशः चारिका करते, जहाँ काशियोगा निगम (= कम्पा) कीटागिरि था, वहाँ पहुँचे । वहाँ काशियोगे निगम कीटागिरिमें भगवान् त्रिहार करतेपे ।

उस समय अश्वजित्, और पुनर्वसु नामक (दो) आवागिक भिक्षु कीटागिरिमें रहतेपे । तब बहुतने भिक्षु जहाँ अवजित् पुनर्वसु थे, वहाँ गये । जाकर बोले—

‘आहुतो ! भगवान् रात्रि-भोजन विरतहो भोजन करते हैं, और भिक्षु संघ भी । रात्रि भोजन विरतहो भोजन करनेसे आरोग्य० । आओ, तुमभी आहुतो ! रात्रि भोजन विरतहो भोजन करो ।”

ऐसा करनेपर अश्वजित् पुनर्वसुयाने उन भिक्षुओंको कहा—

“हम आहुतो ! शामको भी खाते हैं, प्रातः, दिा (= मध्याह्न) और बिकालको (= दोपहरवाद) भी । सो हम साथ, प्रातः, मध्याह्न बिकालको भोजन कत भी आरोग्य० हो बिहरतेहैं । सो हम क्या प्रत्यक्ष (= सादृष्टिक) को छोड़कर, कालांतरके (= काष्णिक) लिये दीहें । हम साथभी खायेंगे, प्रातः भी, दिनभरभी, बिकालमेंभी ।”

जब वह भिक्षु अश्वजित् पुनर्वसु को न समझा सके, तो जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठकर उन भिक्षुओंने भगवान् से कहा—

“भन्ते ! हमने अश्वजित् पुनर्वसु व पान जा यह कहा—‘भगवान् रात्रि भोजन विरत०’ । ऐसा कहने पर भन्ते ! अश्वजित्, पुनर्वसु भिक्षुयाने कहा—‘हम आहुतो ! शामको भी खाते हैं’ ।” जय हम भन्ते ! अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओंको न समझा सके, तब हम यह पान भगवान्को कह रहेहैं ।”

तब भगवान्ने एक भिक्षुको आमंत्रित किया—

“आ भिक्षु ! तू मेरी बातसे अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओंको कह—‘शान्ता आहुतो’ मानो को बुलातेहैं ।”

“अच्छा भन्ते !” कह उस मिश्रुने अश्वजित् पुनर्जस मिश्रुओंके पास जाकर कहा-
‘शास्ता आयुष्मानोको बुलाते हैं’ ।”

“अच्छा आयुस !” यह अश्वजित् पुनर्जस मिश्रु ‘जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्‌ओं अमिवादा कर एक ओर बंठ गये । एक ओर बैठे अश्वजित्, पुनर्जस मिश्रुओंको भगवान्‌ने कहा—

“सच-सुच मिश्रुओ ! बहुतसे मिश्रु तुम्हारे पास जाकर बोले (थे)—आवुसो ! भगवान् रात्रि भोजन विरतहो० ऐसा कहने पर मिश्रुओ ! तुमने कहा० ?”

“हाँ भन्ते !”

“क्या मिश्रुओ ! तुम सुने ऐसा धर्म उपदेश करते जानतेहो—जो कुछ यह पुण्य पुण्य (= मनुष्य) सुप्त, दुःख, या अक्षय-अदुःख अनुभव करता है, (उससे) उसके अशुशल (= बुरे) धर्म नष्ट होजातेहैं, और कुशल धर्म बढ़ते हैं ?”

“नहीं भन्ते !”

“क्या मिश्रुओ ! तुम सुने ऐसा धर्म उपदेश करते जानतेहो—एकको इस प्रकारकी सुख वेदना (= अनुभव) अनुभव करते अकुशल-धर्म बढ़तेहैं, कुशल धर्म नष्ट होतेहैं । किन्तु एक को इस प्रकारकी सुख वेदनाको अनुभव करते अ-कुशल-धर्म नष्ट होतेहैं, कुशल धर्म बढ़तेहैं ।० दुःख वेदनाको अनुभव करते अ-कुशल धर्म बढ़तेहैं, कुशल-धर्म नष्ट होतेहैं । अकुशल-धर्म नष्ट होतेहैं० । एकको इस प्रकारकी असुप्त-अदुःखवेदनाको अनुभव करते० ? ० ?

“हाँ, भन्ते !”

“नाउ, मिश्रुओ ! यदि मैं अज्ञात, अदृष्ट, अविदित = असाक्षात्-दृष्ट = अस्पर्शितहो (कहता)—यहाँ किसीको इस प्रकारकी सुख वेदनाको अनुभव करते अकुशल धर्म बढ़ते हैं, और कुशल धर्म नष्ट होतेहैं० । ऐसा मैं जानते, यदि मैं इस प्रकारकी सुख-वेदनाको छोड़ो बोलता । तो क्या मिश्रुओ ! यह मेरे लिये उचित होता ?”

“नहीं, भन्ते !”

“चूँकि मिश्रुओ ! मेरे इसको देखा, जाना साक्षात्-क्रिया, स्पर्श किया, -नामक (कहता हूँ), इस लिये मैं कहता हूँ—‘इस प्रकारकी सुख वेदनाको छोड़ो’ । और यदि सुने यह अज्ञात, अदृष्ट होता, ऐसा मैं जाने यदिमे कहता—इस प्रकारकी सुख वेदनाको प्राप्तकर विहा करो, तो क्या मिश्रुओ ! यह मेरे लिये उचित होता ?”

“हाँ, भन्ते !”

“चूँकि मिश्रुओ ! यह सुने ज्ञात, दृष्ट, विदित, साक्षात्-दृष्ट, प्रज्ञासे स्पर्शित (है) यहाँ अपने० अकुशल-धर्म नष्ट होते हैं, कुशल-धर्म बढ़तेहैं । इस लिये मैं कहता हूँ ‘इस प्रकारकी सुख वेदनाको प्राप्तकर विहा करो’ ।

“मिश्रुओ ! मैं सभी मिश्रुओंको नहीं कहता कि—‘प्रमादरहितहो करो’ । और मैं सभी मिश्रुओंको ‘अप्रमाद रहितहो न करो’ कहता हूँ । मिश्रुओ ! जो मिश्रु अर्हत् = क्षीण-आत्म

(ब्रह्मचर्य) पूरा कर चुके, कृत कृत्य, भार-मुक्त, सच्चे अर्थको प्राप्त, भव-संयोजन (=बंधन)-रहित, अच्छी तरह जानकर मुक्त (=सम्यक्-आग विमुक्त) है। भिक्षुओ ! वैमोको में 'प्रमाद रहितहो करो' कहा कहता । सो किम हेतु ? उन्होंने प्रमाद-रहितहो (करणीय) कर लिया, यह प्रमाद (=आलस्य, भूल) कर नहीं सकते । भिक्षुओ ! जो शक्ष्य=न प्राप्त वित्त हैं, अनुपम योग क्षेम (=निवाण) के इच्छुनहो विहरते हैं । भिक्षुओ ! वेनेही भिक्षुओंको में 'प्रमाद रहितहो करो' कहता हूँ । सो किम हेतु ? शायद यह आयुष्मान् अनुत्तल शयन आमनरो सेवन करते, कल्याण मित्रो (=सुमित्रो)को सेवन करते, इन्द्रियोंको सथम करत, जियके लिये पुत्र पुत्र अच्छी तरह घरसे पेशाहो प्ररजित होते हैं, उम अनुत्तर (=सर्वात्म) ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कर, प्राप्तकर गिहें । भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको अप्रमादका यह फल देखते हुये में 'प्रमाद रहित हो' करो, कहता हूँ ।

“ भिक्षुओ ! सात पुद्गल (=पुरुष) लोकमें विद्यमान हैं । कौनसे सात ? (१) उभय तो भाग विमुक्त (२) प्रजाविमुक्त, (३) काय-साक्षी, (४) दृष्टि प्राप्त, (५) श्रद्धा विमुक्त, (६) धर्म-अनुयायी, (७) श्रद्धा अनुयायी ।

“ भिक्षुओ ! कोन पुद्गल (=पुरुष) उभयतो भाग विमुक्त है ? भिक्षुओ ! जो प्राणीकि विमोक्षको अतिप्रमणकर रूप (धातु)में आरूप्य (धातु)को प्राप्त है, उन्हें कोई पुद्गल कायासे स्पर्शकर विहार काता है । (उन्हें) प्रजासे देखकर उमने आसन्न (=चित्तमल) नष्ट होजाते हैं । भिक्षुओ ! यह पुद्गल उभयतो-भाग विमुक्त कहा जाता है । भिक्षुओ ! इस भिक्षुको 'अप्रमादसे करो' में नहीं कहता । किम हेतु ? क्योंकि वह प्रमाद रहितहो (करणीय) कर चुका । वह प्रमाद नहीं कर मरता ।

“ भिक्षुओ ! कोन पुद्गल प्रजा विमुक्त है ? भिक्षुओ ! जो प्राणीकि विमोक्षको पार कर, रूप (धातु)में आरूप्यको प्राप्त है, उन्हें कोई पुद्गल कायासे छूकर नहीं विहरते, (किंतु) प्रजासे देखकर उमने आसन्न नाश होजाते हैं । यह पुद्गल प्रजा विमुक्त कहे जाते हैं । ऐसे भिक्षुको भी 'अप्रमादसे करो' में नहीं कहता । ॥

“ भिक्षुओ ! कौन पुद्गल काय साक्षी है ? भिक्षुओ ! जो एक पुद्गल उन्हें कायासे छूकर नहीं गिहरता, प्रजासे देखकर उमने कोई कोई आसन्न नष्ट होजाते हैं । यह ०पाय साक्षा है । इस भिक्षुको भिक्षुओ ! 'अप्रमादसे करो', में कहता हूँ । सो किम हेतु ? शायद यह आयुष्मान् प्राप्त कर विहार करे ॥

“ भिक्षुओ ! कौन पुद्गल दृष्टि प्राप्त है ? भिक्षुओ ! ० कायासे छूकर नहीं गिहरता, ० कोई कोई आसन्न नष्ट होगये है । प्रनाद्वारा तथागतने बतलाये धर्म उमने जाने होते हैं । यह दृष्टि प्राप्त है ॥ १०॥

“ भिक्षुओ ! कौन पुद्गल श्रद्धाविमुक्त है ? ०, ० प्रजासे कोई कोई आसन्न उसके नष्ट होगये है, तथागतमें उसकी श्रद्धा प्रतिष्ठित=जड़ पकटी=निगिष्ट होती है । ० या श्रद्धा विमुक्त ॥ १०॥

“ भिक्षुओ ! कौन पुद्गल धर्मानुयायी है ? ०, ० प्रजाद्वारा तथागतने बतलाये धर्म उमने जाने मायदा (=हुं माप्राप्ते) नित्र्याप (=निदिष्याता)के योग्य होगये हैं । और उमको

यह धर्म प्राप्त है, जैसे कि—श्रद्धा-इन्द्रिय, वीर्य-इन्द्रिय, स्मृति-इन्द्रिय, समाधि-इन्द्रिय प्रज्ञा-इन्द्रिय। यह धर्मानुसारी० है।०।०।

“ भिक्षुओ ! कौन पुद्गल श्रद्धानुसारी है ? ०, ०, तथागतमें उसकी श्रद्धा-मात्र = प्रेम-मात्र होता है। और उसमें यह धर्म (प्राप्त) होते हैं, जैसे कि—श्रद्धा-इन्द्रिय० प्रज्ञा-इन्द्रिय० यह श्रद्धानुसारी०।०।०।

“ भिक्षुओ ! मैं आदिसेही ‘आज्ञा’ (=अज्ञा) की आराधना नहीं कहता, बल्कि भिक्षुओ ! क्रमशः शिक्षासे, क्रमशः क्रियासे, क्रमशः प्रतिपदमें आनामनी आराधना होती है। भिक्षुओ ! क्रमशः प्रतिपदसे जैसे आज्ञाकी आराधना होती है ? भिक्षुओ ! श्रद्धावान् हा (‘मैं जानीके’) समीप जाता है, समीप जातेसे, परि-उपासना करता है। परि-उपासना करनेसे कान लगाता है। कान लगानेसे धर्म सुनता है। धर्म सुनकर धारण करता है। धारण किये धर्म की परीक्षा करता है। अर्थकी उप-परीक्षा करने पर धर्म निष्पादन (=निश्चिन्ता) के योग्य होते हैं। धर्मके निष्पादन योग्य होनेपर, छन्द (=कवि) उत्पन्न होता है। छन्द होनेपर उत्साह करता है। उत्साह करनेपर उत्थान करता है (=सुतेति)। उत्थाकर प्रधान (=समाधि) करता है। प्रधानारम्भ (=समाहित-चित्त) हो, (इस) कारणासेही परम सत्यका साक्षात्कार करता है। प्रज्ञासे उसे वेद्यता है। भिक्षुओ ! वह श्रद्धा भी यदि न हुई। यह पास जानना (=उप-सम्पन्न) न हुआ०।०।० वह प्रधानभी न हुआ। (तो) विप्रतिपा (=अमाणा) हो भिक्षुओ ! मिथ्या-प्रतिपन्न०, भिक्षुओ ! यह मोघपुराण (=नालायक) इस धर्म विनश्वर पद दूर चले गये हैं।

“ भिक्षुओ ! चतुष्पद व्याकरण होता है, जिसके अर्थमें काने पर विनपुराण जल्दी (उने) प्रज्ञासे जानना है। भिक्षुओ ! तुम इसे समझने हो ?

अन्ते । कहा हम और कहा धर्मका जानना ?”

“ भिक्षुओ ! जो वह शास्ता (=गुरु) आसिप गुरु (=धन, भोगमें बड़ा), आसिप न्याय (भोगोंका लेनेवाला), आसिपोंसे लिप्त हो विहरता है, वह भी इस प्रकारकी वाणी (=पण) नहीं लगाता—‘यदि हम ऐसा हो, तो इसे करेंगे, यदि हम ऐसा न हो, तो नहीं करेंगे’। फिर भिक्षुओ तथागतका तो क्या (कहना है), (जो कि) सर्वथा आसिप (=धन, भोग)से अलिप्त हो विहार करते हैं। भिक्षुओ ! श्रद्धालु श्रावकको शास्ताके शासन (=धर्म) में परियोग (=योग) के लिये वर्ताने करते हुये यह अनु-धम होता है—‘भगवान् शास्ता (=गुरु) है, मैं श्रावक (=शिष्य) हूँ’, ‘भगवान् जानते हैं, मैं नहीं जानता’। भिक्षुओ ! श्रद्धालु श्रावक के लिये शास्ताके शासन में परियोगके लिये वर्तते समय, शास्ता का शासन शोज वान् होता है, श्रद्धालु श्रावकको यह दृष्टता होती है।—‘चाहे चमड़ा, नम, और हड्डी ही बच रहे, शरीरका रक्त-मांस सुख (क्यों न) जाये, (किन्तु), पुरपके स्थान = पुरुष-जीव = पुरुष पराक्रम से जो (बुद्ध) प्राप्य है, उसे बिना पाये (मेरा) उपयोग न रहेगा’। भिक्षुओ ! श्रद्धालु श्रावक को शास्ताके शासन में परियोगके लिये वर्तते समय, दो फलोंमेंसे एक फलकी उमेद (अवश्य) रखनी चाहिये—इसी जन्म में (परम ज्ञान) जानना, या उपाधि (=मल) रखनेपर अनामानि पण (पार्श्व)।”

भगवान् यह कहा। मनुष्य हो, उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अनुमोदन किया।

हृत्थरु-सुत्त । सन्दरु-सुत्त । महासकुलुदायि-सुत्त । सिंगालोपाद-सुत्त ।
(नि. पू. ४५६-५५) ।

१ तब भगवान् कीशगिरिम इच्छनुमार विहार कर जहा आलसी थी, वहा चारिका के लिये थे । क्रमशः चारिका करते जहा आलसी थी, वहा पहुँचे । वहा भगवान् आलसीमें अगालव (= अग्रालव) चेत्यम विहार करने थे ।

+ + + +

१ (भगवान्) सोलहवीं वषा आलसीको दमन कर, आलसीम (भित्त) ।

हृत्थरु सुत्त ।

पेमा १ मने सुता—एक समय भगवान् आलसीम अगालव चेत्यम विहार करतये ।

तब हृत्थरु-आलसीम पाँचपौ उपवासरीक साथ जहाँ भगवान्, वहाँ गया । आकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये, हृत्थरु-आलसीको भगवान्ने कहा—

‘हृत्थरु (= हस्तरु) । यह तेरी परिपद् उड़ी भारी है । येमे हृत्थरु । तू इस महती परिपद्को मिला सयना (= संप्रह कता) दे १’

“मत्त । आरौ जो चार संप्रह-उत्तुभावा उपदान कियाहे, उसामे म इस महता परिपद्को धारण करना हूँ । (१) भन्ते । म जिसको जानता हूँ यह न्या (= दान) मे संप्रह योग्य है, उसे दानमे संप्रह करता हूँ । (२) जिसको जानता हूँ, यह ‘पट्यावण’ (= स्वातिर) से संप्रह योग्य है उसे पट्या-वणमे संप्रह करता हूँ । (३) जिसे जानता हूँ, यह अर्थ उपाय (= प्रयोजन पूरा करने) से संप्रह योग्य है उसे अर्थ वपासे संप्रह करता हूँ । (४) जिसको जानता हूँ, यह समान आत्म तासे संप्रह योग्य है, उसे भवानात्मता (= धारारी) से संप्रह करता हूँ । भन्ते । मेरे कुलम भोग (= संपत्ति) है । इदि होने पर तो वह हमारी नहीं सुनना चाहते ।”

“साधु, साधु, हस्तरु ! महती परिपद् धारण कनेका यहो उपाय है । हस्तरु ! जिन्होंने पूर्वकालम महती परिपद् संप्रह की, उन सयान इनहो चार संप्रह उत्तुभावा महती परिपद्को धारण किया । हस्तरु ! जो कोई भविष्य कालम करेंगे, वह सभी इन्हीं । हस्तरु ! जो कोई आन-कल १० ।

तब हस्तरु-आलसी भगवान्ने धार्मिक-कथा द्वारा सन्तुष्टि = समादपित = समुपेजित संप्रतिष्ठित हो आसनमे उठ, भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया । तब भगवान्ने हृत्थरु आलसीको जानेने थोड़ीही दूर बाद, भिक्षुआको संबोधित किया—

१ सुक्कपग ६ । २ पंचाल चंडा आलसीको (दो नि ३ ९) कहनेसे आलसी (= आलसिकापुरी) पंचाल-देशमे थी । यह वर्तमान अर्वा (जि० कानपुर) हो सकता है । ३ अ नि अ क २ ३ १ । ४ अ नि ८ १ ३ ४ ।

“ भिक्षुओ ! इत्यरु-आलरुको आठ आश्चर्य = अद्भुत धर्मासे युक्त जानो । कौन्से आठ ? भिक्षुओ ! इत्यरु आलरु (१) अद्भालु है । ० (२) शीलवान् है । ० (३) होमान् (=रमाशी) है । ० (४) अवग्रपी (=धर्म-भीरु) है । ० (५) बहुश्रुत है । ० (६) त्यागवान् (=दानो) है । ० (७) प्रज्ञावान् है । ० (८) अल्प इच्छुक (=मनिच्छुक) है । इन ० आठ ० अद्भुत धर्मासे युक्त जानो । ”

तत्र भगवान् आलरुमें इच्छानुसार विहार कर जहाँ राजगृह है, उधर चारिका को चले ।

+ + + +

सन्दक-सुत्त ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कोताम्यीके घोषिताराममें विहार करते थे । उस समय पाँचमो परित्राजकोको महापरित्राजक-परिषद्के साथ, सन्दक परित्राजक ^१सुत्तामें ध्याय करता था ।

आयुष्मान् आनन्दे सार्यकाल ध्यानमे उठकर, भिक्षुओंको संबोधित किया—

“आहुमो । आओ जहाँ ^२देवरु-सोभ (= देवदूत श्रमण = रामाधिक अगम-द्वय) है, वहाँ देवनेक लिये चले । ”

“अच्छा आवुम ।” कह उन भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दिया । तब आयुष्मान् आनन्द बहुतसे भिक्षुओंके साथ, जहाँ देवरु सोभ था, वहाँ गये । उस समय सन्दक परित्राजक राजकथा ^३आदि निरर्थक कथा कहती, वादकस्ती, दोस्मचाती, बड़ीभारी परित्राजक परिषद्के साथ, वेग था । सन्दक परित्राजकने दूरहीसे आयुष्मान् आनन्दको आते देखा । इत्तर अपनी परिषद्को कइ—“आप सत्र चुप हो । मत शब्द करें । यह श्रमण गौतमका आश्चर्य धम्म आनन्द आरहा है । श्रमण गौतमके जितने श्रावक कौशाम्भीम वास करते हैं, उनमें एक, यह श्रमण आनन्द है । यह आयुष्मान् लोग नि शब्द प्रेमी, अल्प शब्द प्रशंसक होते हैं । परिषद्को अल्पशब्द देख, संभव है, (इधर) भी आय ।” तब यह परित्राजक चुप होगये ।

तत्र आयुष्मान् आनन्द जहाँ सन्दक परित्राजक था, वहाँ गये । सन्दक परित्राजकने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“आइये आप आनन्द । स्वागत है आप आनन्दका । चिरकाल बाद आप आनन्द वहाँ आये । बठिये आप आनन्द, यह आमन बिठा है । ”

आयुष्मान् आनन्द बिठे आमनपर बैठे । सन्दक परित्राजक भी एक तीव्र आसनत्रे, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे, सन्दक परित्राजकको आयुष्मान् आनन्दने कहा—

“सन्दक ! किम कथामे धैउये, धीचमे न्या कया होरही थी ? ”

“जाने टीजिये इस कथाको, हे आनन्द ! जिम कथामे कि हम इस समय बैठ थे ।

१ सुत्तग ६ । २ मज्झिम नि २ ३ ६ । ३ कोसलके पास पमोसा (निहलाहावाद) । ४ पमोसामे कोई प्राकृतिक जल रुंड था, । ५ ग्र १८९ ।

ऐसी कथा आप आनन्दको पीछे भी सुनोको दुर्लभ न होगी । अच्छा हो, आप आनन्द ही अपने आचार्यक (= धर्म) विषयक धर्मिक-कथा कहें ।”

“तो सन्दक ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा भो !” (कह) सन्दक परित्राजकने आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दिया । आयुष्मान् आनन्दने कहा—

“सन्दक ! उन जानकार, देखनहार, सम्यक् समुद्ध भगवान्ने चार अग्रहचर्य वास कहे हैं, और चार आश्रामन न देनेवाले ब्रह्मचर्य-वास (= संन्यास) कहे हैं, जिनमें बिन पुरुष अपनी शक्तिभर ब्रह्मचर्य-वास न करे । वास करनेपर न्याय (= निर्वाण), कुशल (= भन्ते) धर्मको न पा सकैगा ।

“हे आनन्द ! उन भगवान्ने कौनसे चार अग्रहचर्य वास कहे हैं ?”

“सन्दक ! यहाँ एक शास्ता (= गुरु, पंथ चलाने वाला) ऐसा वाद (= दृष्टि) रखने वाला होता है—‘नहीं है दान (का फल), नहीं है यज्ञ (का फल), नहीं है हवन (का फल) नहीं है सृष्टि दुष्कृत क्रमाका फल = विपाक, यह लोक नहीं है पर लोक नहीं है, माता नहीं पिता नहीं । औपपातिक (= अयोनिज, द्रव आदि) प्राणी नहीं हैं । लोकम (धर्म) सत्यको प्राप्त (= सम्पन्न) गत सत्यादि भ्रमण ब्राह्मण नहीं हैं, जोकि इस लोक परलोकका स्वयं जान कर, साक्षात्कर, (दूसरोंको) जलानेगे । यह पुरुष चातुर्वर्णभूतिक (= चार भूताना बना) है । जब मरता है, पृथिवी पृथिवी फाय (= पृथिवी) में मिल जाती, चली जाता है । आप (= पानी) आप-कायमें मिल जाता है । तेज (= अग्नि) तेज-कायमें मिल जाता है । वायु वायु कायमें मिल जाता है । इन्द्रिया आत्मामें (चली) जाती हैं । पुण्य सृष्ट (दारीर) को खाकर ले जाते हैं । जकाने तक पद (= चिह्न) जान पड़ते हैं । (फिर) इन्द्रिया कबूतरके (पंखों) सी (सफेद) हो जाती है । (पूर्वजन्तु) आहुतिया राख (हाँ) रह जाती है । यह दाता मूर्खोंका प्रभावण (= उपदेश) है । जो कोई आस्तिक-वाद कहते हैं, वह उपास सुच्छ = मूर्ख है । मूर्ख या पण्डित (समी) शरीर छोड़ने पर उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरनेक बाद (कोई) नहीं रहता । इस विषयमें विज्ञपुरुष ऐसे विचारता है—‘यह आप शास्ता इस वाद (= दृष्टि) वाले हैं—नहीं है दान ।’ यदि इन आप शास्ताका यवन सत्य है, तो (पुण्य) बिना किये भी, मैंने कर लिया, (ब्रह्मचर्य) बिना वास किये भी, रात कर लिया । अस्तिक गुरु शरीर में—हम दोनोंही यहाँ बराबर आश्रमण (= संन्यास) को प्राप्त हैं, जोकि मैं नहीं कहना, (हम) दोनों काया छोड़ उच्छिन्न = विनष्ट होंगे, मरनेक बाद नहीं रह जायगा । (फिर) यह शरीर शास्ता की (यह) नग्नता, मुँदता, उन्मत्तता (= उच्छिन्न-वस्त्रधारी) का समुद्र तोड़ता करता है” और जो मैंने पुत्राकीणहो, घर (= शयन) में वास करते, आनीक अशुद्धता माता, माता अर्ध-रूप धारण करते, सोना चाँदीका रखते, मरने पर इन आप शास्ताका समान गति पाऊँगा । तो मैं क्या समझकर, क्या देखकर, इन (नास्तिक-वादी) शास्ताका पाप ब्रह्मचर्य पावन कहूँ ? (इस प्रकार) वह, ‘यह अग्रहचर्य वास है’ समझ, उन ब्रह्मचर्य (= मायुष्य) से उद्धाम हो, हट जाता है । यह सन्दक ! उन भगवान्ने प्रथम अग्रहचर्य वास कहा है, जिनमें बिन पुरुष ।

“और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्ता ऐसे वाद (= मन) वाला होता है—‘कस्ते करवाते, हादते कटवाते, पकाते पकवाते, शोक कराते, परशान कराते, मथते भथाते, प्राण मास्ते, चोरी करने, सेंध लगाते, गाँव लूटते, घर लूटते, रहजनी करत पर-स्थी गमन-करने, झूठ बोलते, भी पाप नहा किया जाता । तुमसे तेज चक्र द्वारा जो इस पृथिवीके प्राणियोंका (कोर) एक मांसका रालियान, एक मांसका पुंज बनाद, तो इसके कारण उसे पाप नहीं होगा, पापका आगम नहीं होगा । यदि घात करने-कराते, काटने-कटाते, पकाते पकवाते, गंगाके दाहिने तीर पर भी जाये, तो भी इसके कारण उसको पाप नहीं, पापका आगम नहीं होगा । दान देते दान दिलाते, यन् करते यज्जकराते, गंगाके उत्तर तीर भी जाये, तो इसके कारण उसको पुण्य नहीं, पुण्यका आगम नहीं होता । दान, (इन्द्रिय-दम, समय, सचेपन (= सच उज) से पुण्य नहीं, पुण्यका आगम नहीं होता’ । सन्दक ! विज्ञ-पुरुष ऐसा विचारता है—यह आप शास्ता इस वाद = दृष्टि वाले हैं—करते करवात० । यदि इन आप शास्ताका वचन सच है० । तो हम दोनोंही बराबर भ्रामण्य (= सन्यास) को प्राप्त हैं, ‘दोनोंहीके करते पाप नहीं किया जाता’ । यह आप शास्ताकी नग्नता० । ० । यह सन्दक ! उन भगवान् ने द्वितीय अ ब्रह्मचर्य वास कहा है० ।

“और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्ता ऐसे वाद (= दृष्टि) वाला होता है—‘सत्वाक सन्देशका कोई हेतु = कोई प्रत्यय नहीं । बिना हेतु, बिना प्रत्ययके प्राणी संस्पर्श (= चित्तामा लिन्य) को प्राप्त होते हैं । प्राणियोंका (चित्ता) विशुद्धिका कोई हेतु = प्रत्यय नहीं है । बिना हेतु = प्रत्ययके प्राणी विशुद्ध होते हैं । बर नहीं (चाहिये), वीर्य नहीं, पुरुषका स्थान (= इद्रता) नहीं = पुरुष पराक्रम नहीं (चाहिये), सभी सत्त्व = सभी प्राणा = सभी भूत = सभी जीव अ जस = अ बर = अ वीर्य नियति (= अवित्ययता) के वशमें हो, छौं अभिजातियोंमें सुख दुःख अनुभव करते हैं । ० यदि० इन आप शास्ताका वचन सत्य है० । तो हम दोनोंही हेतु = प्रत्यय बिनाहा शुद्ध हो जायग । ० । यह सन्दक ! भगवान् ने तृतीय अ ब्रह्मचर्यवास कहा है० ।

“और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्ता ऐसा दृष्टि वाला होता है—‘यह सात अक्षत = अक्षतविध = अ निर्मित = निमाता-रहित, अवध्य = कृतस्थ, स्तम्भार (अचल) है । यह चर नहीं होते, विकारको प्राप्त नहीं होते, न एक दूसरेको हानि पहुँचाते हैं, न एक दूसरेके सुख, दुःख, या सुख-दुःखके लिये प्यास है । कौनसे मात ? पृथिवी काय, आप-काय, तेज काय, वायु काय, सुष, दुःख, और जीव—यह सात । यह सात काय अक्षत० सुख दुःखके योग्य नहीं हैं । यहाँ न हन्ता (= मारनेवाला) है, न घातयिता (= हनन करानेवाला), न सुननेवाला, न सुनानेवाला, न जाननेवाला न जतलनेवाला । जो तीक्ष्ण शत्रुसे शत्रु भी छेड़ते हैं, (तो भी) कोई किसीको प्राणमें नहीं मारता । सातों कायासे अलग, निरर (= खाली जगह) में शत्रु (= इधियार) गिरता है । यह प्रधान-योनि—चाँदहमो हजार (दूधरी) साठ-सौ, छियासठ-सौ, और पाचमो कर्म, और पाच कर्म और तीन कर्म, (एक) कम, और आधा कर्म, यासठ प्रतिशत, यासठ अन्तर-रूप, छ अभिजाति, यासठ पुरुषों की नृमियाँ, उवास सो आजीवरु, उवास सो परिव्राजक, उवास नागोंने आवास, तीसमो इन्द्रिय, तीसमो नरक, छत्तिस रजो धातु, सात

संजावान् गर्भे, सात छाःशी गर्भे, सात निद्रांशी गर्भे, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात सरोवर, सात गाँठ (= पसुर), सात प्रपात, सातसो प्रपात, सात स्वप्न, सातसौ स्वप्न—(इनमें) चौरासी हजार महाबल्यो तक दोड़कर = आवागमनाम पड़कर, मूर्ख और पंडित (ममी) दु म्का अंत (= निर्वाण प्राप्ति) करेंगे । वहाँ (यह) नहीं है—इस शील या नत, या तप, ब्रह्मचर्यसे मैं अपरिपक्व कर्मको पचाऊँगा, परिपक्व कर्मको भोग कर अन्त करूँगा । सुप, दु प, द्रोण (नाप) से नपे तुने हुये हैं, समारम घटना ज्ञाना, उत्कर्ष अपकर्ष उहा होता । जने कि सूतकी गोली पेंकनेपर उधरती हुई गिरती है, ऐसेही मूर्ख (= गल) और पण्डित दोड़कर = आवागमनम पड़कर, दु म्का अंत करेंगे । तहा सन्दक । विन पुरुष ऐसे विचारता है । —यह आप शास्ता ऐसे बाद = दृष्टिगाले हैं० । जैसे कि मूतकी गोली० । यदि इन आप शास्ताका वचन सत्य है, तो निना किये भी मैंने कर लिया । ० यह आप शास्ताका नमनता० । यह सन्दक । उा० भगवान्ने चतुर्थ अ ब्रह्मचर्य-वास कहा है० ।

“ सन्दक । उन० भगवान्ने यह चार अ-ब्रह्मचर्य वास कहे हैं० । ”

“ आश्चर्य ! हे आनन्द ! अद्भुत ! हे आनन्द ॥ जो यह उन० भगवान्ने यह चार अ ब्रह्मचर्य वास कहे हैं० । किन्तु, हे आनन्द ! उन० भगवान्ने कौनसे चार अनाध्यासिक ब्रह्मचर्य कहे हैं० ? ”

“ सन्दक ! यहा एक शास्ता सर्वत्र, सर्वत्र, अशेष ज्ञान दर्शन वाला होनेका दावा करता है—‘ चलते, खड़े होने, सोते, जागते, सदा सर्वदा मुझे ज्ञान दर्शन मोक्षद (= प्रत्युत्पन्नियत) रहता है । ’ (तो भी) वह सुन घबरे जाता है, (यहाँ) भिक्षा भी नहीं पाता, कुम्हुर भी फाट जाता है, चन्द्राभीमे भी मादना पड़ जाता है, चड धोड़ेसे भी सामना पड़ जाता है, चड घेलेसे भी० । (सर्वत्र होनेपर भी) छी पुरखोके नाम गोत्रको पूछता है । ग्राम निगमका नाम और रास्ता पूछता है । ‘ (आप स्वप्न होकर) यह क्या (पड़ते हैं) ’—पूछनेपर कहता है—‘सुने घबरे हमारा जाना बदा था, इसलिय गये । भिक्षा न मिली बदी थी, इसलिये न मिली । कुम्हुरका कामना था था० । ० हाजीसे मिलना बना था० । ० । तहाँ सन्दक । विन-पुरुष यह सोचता है—यह आप शास्ता० ठाना करन हैं० (तब) यह—‘ यह ब्रह्मचर्य (= पंध) अनाध्यासिक (= मनको सतोष न दूने वाला) है’—यह जान, उस ब्रह्मचर्यसे उदास हो हट जाता है । यह सन्दक । उम० भगवान्ने प्रथम अनाध्यासिक ब्रह्मचर्य कहा है० ।

“ और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्ता आनुश्रविक = अनुश्रव (= धृति) को सत्य मानने वाला होता है, । ‘ (धृतिम) वेमा’, ‘ (स्मृतिम) णमा’, परम्परास, पित्रस्य प्रदाय (= प्रणय प्रमाण) से, धमका उपदेश करता है । सन्दक ! आनुश्रविक = अनुश्रवको सच मान घाटे शास्ताका अनु श्र सुश्रुत (= शोक मुना) भी होकरना है, दु शुन भी, वेमा (= यथार्थ) भी हो सकता है, उरुग भी हो सकता है । यहाँ सन्दक ! विन पुरुष यह सोचता है—यह आप शास्ता आनुश्रविक हैं० । वह ‘यह ब्रह्मचर्य अनाध्यासिक हैं० । ० द्वितीय अनाध्यासिक ब्रह्मचर्य कहा है० ।

“ और फिर सन्दक । यहाँ एक शास्ता तार्किक = विमर्श होना है । वह तर्कसे = विमर्शसे प्राप्त, अपनी प्रतिमासे ज्ञात, धमका उपदेश करता है । सन्दक ! तार्किक = विमर्शक

“हे आनन्द ! इस धर्म विनय (= धर्म) में कितने मार्गदर्शक (= निर्वाता) हैं ?”

“सन्दर्भ ! एक सो ही नहीं, दो सोही नहीं, तीनमो, चारमो, पाँचमो, बरिह और भी अधिक निर्वाता इस धर्म विनयमें हैं ।”

“आश्चर्य ! हे आनन्द ! अद्भुत ! हे आनन्द ! १ अपने धर्म-रा उत्कर्ष (= तारीफ) करण, १ पर धर्मकी निन्दा करना, (ठोक) जगह (= आयतन) पर धर्म-वेदना ॥ इतने अधिक मार्ग दर्शक जान पड़ते हैं ॥ यह आजीवरू पूत-मरोके पूत तो अपनी बहाइ करते हैं । तीनको ही मार्गदर्शक (= निर्वाता) बतलाते हैं, जैसेकि—नन्द वात्स, कृष्ण साहज्य, और मन्सली गोसाइ”

तब सन्दर्भ परित्राजकने अपनी परिपत्रकी संबोधित किया—

“आप सब भ्रमण गौतमके पास ब्रह्मचर्य वास करें । हमारे लिये तो लाभ सत्कार प्रणामा छोड़ना, इस बात सुकर नहीं है ।”

ऐसे सन्दर्भ परित्राजकने अपनी परिपत्रको भगवान् के पास ब्रह्मचर्य-वास करने लिये प्रेरित किया ।

१ (भगवान् आलावीने चलकर) क्रमशः चारिका करते जहाँ राजगृह है, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् राजगृहमें वैश्वना कलन्दक-निर्वापमें विहार करते थे । उस समय राजगृहम दुर्मिक्ष था ।

+ + + +

१ सप्रद्वर्षी (वर्षा भगवान् ने) राजगृहमें (बिताई) ।

+ + + +

महासकुलुडायि सुत्त ।

१ ऐसा मेने सुना—एक समय भगवान् राजगृहम वैश्वना कलन्दक निर्वापमें विहार करने थे । उस समय बहुतने प्रसिद्ध प्रसिद्ध (= अभिज्ञात) परित्राजक मोर निराप परि मानवारात्ममें वास करते थे, जैसे कि—अनुगार वरचर और सकुल उदायो परित्राजक सग दूवर अभिज्ञात अभिज्ञात परित्राजक ।

तब भगवान् पूसाइ-समय पहिनकर पात्र घोर ९, राजगृहमें पिह चारके लिय प्रविष्ट हुये । तब भगवान् को यह हुआ—“राजगृहमें पिह चारके लिये ठासी बहुत सररा है, क्यों ?” भ जहा मोर निराप परित्राजकराम है, जहा सकुल-उदायि परित्राजक है, वहाँ चर । तब भगवान् जहा मोर निराप परित्राजकराम था, वहा गये । उस समय सकुल-उदायी परित्राजक ०४ बहुत भारी परित्राजक परिपत्रने साथ बैठा था । सकुल उदायी परित्राजकने दूरसे ही भगवान् को आते देखा । देखकर अपनी परिपत्रको कहा—०२ ।

भगवान् जहाँ सकुल-उदायी परित्राजक था, वहाँ गये । सकुल उदायी परित्राजकने भगवान् को कहा —

“आइये भन्ते ! भगवान् । स्वागत है, भन्ते ! भगवान् ! चिरकालपर भगवान् यहां धाये । भन्ते ! भगवान् । धैर्यिये, यह आसन बिठा है ।”

भगवान् बिठे आमन पर घडे । सज्ज उदायी परिवाजक भी एक नीचा आसन ऐका, एक ओर पेठ गया । एक ओर उठ सज्ज उदायी परिवाजकको भगवान् ने कहा —

“उदायी ! किस कथामे बैठे थे, क्या क्या बीचमें हो रही थी ?”

“जाने दीजिये, भन्ते ! इस कथाको, जिस कथामे हम इस समय बैठे थे । ऐसी क्या भन्ते ! आपकी पीठेभी सुनना दुर्लभ न होगी । पिउं निं भन्ते ! कुतूहल क्षालामें थे, एकत्रि तुण, नाग तीर्था (=पत्न्यो) के श्रमग प्राणगोके जीवनमें यह क्या उत्पन्न हुई । अन्न-मगधोका लाभ है, अन्न मगधोको अच्छा लाभ मिला, जहां पर कि राजगृहमें (एने २) संघपति = गणी = गणाचार्य ज्ञात = यशस्वी बहुजनको सुमम्मानित, तीर्थंकर (=पथ स्थापक) वर्षावासके लिये आये है । यह पूर्ण काश्यप संघी, गणी, गणाचार्य, ज्ञात, यशस्वी बहुजन-सुमम्मानित तीर्थंकर है, सो भी राजगृहमें वर्षागामने लिये आये हैं । ० यह मन्वरी गोमाल ० । ० अतिरिक्त केश-कम्बली ० । ० प्रमुध कात्यायन ० । ० सजय घेलट्टि-पुत्त ० । ० निर्गठ नाथपुत्त ॥ । यह श्रमण गोतम भी संघी ० । वह भी राजगृहमें वर्षावासके लिये आये हैं । इन संघी ॥ भगवान् श्रमण ब्राह्मणोंमें कौन श्रावकों (=शिष्यों) से (अधिक) सत्कृत = गुरुकृत = मानित = पूजित है ? कियेको श्रावक सत्कार, गौरव, मान, पूजाक विहरते हैं ?”

“वहाँ किन्हींने ऐसा कहा—यह जो पूर्ण काश्यप संघी ० है, ० सो श्रावकोसे न सत्कृत ॥ १ पूजित है । पूर्ण काश्यपको श्रावक सत्कार, गौरव, मान पूजा करने नहीं विहरते । पहिले (एक समय) पूर्ण काश्यप अनेक-सोकी रामाको धर्म उपदेश कर रहे थे । वहाँ पूर्ण काश्यपके एक श्रावको दण्ड किया—आप लोग इस बातको पूरा काश्यपने मत पूठ । यह रहते नहीं जानते । हम इसे जानते हैं । हमें यह बात पूठ । हम इसे आप लोगोंको बतलायेंगे । उस वक्त पूर्ण काश्यप बाँट परकड़कर, बिछाते थे—‘आप घर चुप रहें, दण्ड मत करें । यह लोग आप मन्त्रों नहीं पूठने । हमको पूठने है । हम इन्हे बतलायेंगे ।’—(किन्तु) नहीं (चुपकरा) पाते थे । पूर्ण काश्यपने दण्डसे श्रावक विवाद करके निवृत्त गये—‘तू इस घम त्रिनयको नहीं जानता, मैं इस धर्म त्रिनयको जानता हूँ ।’ ‘तू क्या इस धर्मको जानता ?’ ‘तू मिथ्या-भारुद्ध है, मैं मन्य-आरुद्ध (=सम्यक् प्रतिपत्त) हूँ ।’ ‘मेरा (वचन) सहित (=मार्थन) है, तेरा अ सहित है’ । ‘पहिले कहनेकी (बात तूने) पीछे कही, पीछे कहनेकी (बात) पहिले कही’ । ‘१ किये (=अविधीर्ण) को तूने उल्ट दिया’ । ‘तेरा वाद निग्रहमें आगया’ । ‘वाद छोड़ने केलिये (यत्न) करो’ । ‘यदि सकते हो तो खोल लो’ । इस प्रकार पूर्ण काश्यप श्रावकोसे न सत्कृत ॥ न पूजित है ० । बल्कि पूर्ण काश्यप सभाकी धिक्कार (=घमम्भस्कोस) से धिक्कारे गये है ।

“किसी किसीने कहा—यह मन्वरी गोमाल संघी ० भी श्रावकोसे न सत्कृत ॥ न पूजित है ० । ० । ० यह अतिरिक्त केश-कम्बली ० भी ० । ० । ० यह प्रमुध कात्यायन ० भी ० । ० । ० यह निर्गठ नाथपुत्त ० भी ० । ० । ० यह सजय घेलट्टि-पुत्त ० भी ० । ० । ० यह सजय घेलट्टि-पुत्त ० भी ० । ० । ० यह निर्गठ नाथपुत्त ० भी ० । ० । ०

“ किमी किसीने कहा—यह श्रमण गौतम मंत्री हैं । और यह धारमसे पूजित हैं । श्रमण गौतमका श्रावक सत्कार = गौरव, आलम्ब, विहरते हैं । पहिले एक समय श्रमण गौतम अनेक सौकी सभाको धर्म उपदेश कर रहे थे । वहा श्रमण गौतमके एक शिष्यने खांसा । दूसरे सगहचारी (= गुरुभाई) ने उसका पैर दबाया—‘आयुष्मान् ! चुप रहें, आयुष्मान् ! शब्द मत करें । शास्ता हमें धर्म-उपदेश कर रहे हैं ।’ नियम समझ श्रमण गौतम अनेकशत परिपक्वो धर्म उपदेश देते हैं, उस समय श्रमण गौतमके श्रावको का बुरे खांसनेका (भी) शब्द नहीं होता । उनकी जनता प्रशंसा करती, प्रत्युत्थान करती है—जो हमें भगवान् धर्म-उपदेश करेंगे, उसे एंतेगे । श्रमण गौतमके जो श्रावक सगहचारियोंके साथ विशद कथे (भिन्नु) शिक्षा (= नियम) को छोड़, हीन (गृहस्थ आश्रम) को छोड़ जाते हैं, वह भी शास्ताके प्रशंसक होते हैं, धर्मके प्रशंसक होते हैं, संघके प्रशंसक होते हैं । दूसरी नहीं, अपनीही निदा करते हैं—‘हमही भगवहीन हैं, जो कि ऐसे स्वात्पात धर्ममें प्रनजित हो, परिपूष परिशुद्ध गृहस्थको जीवनभर पालन नहीं करमके’, (और) वह भाराम-सेवक (= आरामिक) हो या गृहस्थ (= उपासक) हो, पात्र शिक्षापदोको ग्रहण कर रहते हैं । इस प्रकार श्रमण गौतम श्रावकोसे पूजित हैं । श्रमण गौतमको श्रावक सत्कार = गौरव का, आलम्ब विहरते हैं ।”

“ उदायी ! तू किन किन कितन धर्मोको दत्ता है, जिनमे सुखे श्रावक पूजते हैं ? ”

“ भन्त ! भगवान् म पाच धमाको पालता हूँ, जिनमे भगवान्को श्रावक पूजते हैं । कोनमे पाच ? भन्ते । भगवान् (१) अल्पाहारी अल्पाहारक प्रशंसक हैं, जो कि भन्ते ! भगवान् अल्पाहारी, अल्पाहारी-प्रशंसक हैं, इसको मैं भन्ते ! भगवान्में प्रथम धर्म देखता हूँ, जिससे भगवान्को श्रावक पूजते हैं । (२) जैसे तेमे चीवर (= वस्त्र) से सन्तुष्ट रहते हैं, जैसे तेमे चीवरसे संतुष्टताका प्रशंसक हैं । (३) जैसे तेसे पिंडपात (= भिक्षाभोजन) से संतुष्ट, संतुष्टता प्रशंसक हैं । (४) जयतामन (= घर, विस्तार) से संतुष्ट, संतुष्टता-प्रशंसक हैं । (५) उक्कान्तवासि, उक्कान्तवास प्रशंसक हैं । भन्ते ! भगवान्में मैं इन पाच धमाको देखता हूँ । ”

“ उदायी ! श्रमण गौतम अल्पाहारी, अल्पाहार प्रशंसक हैं । इससे यदि सुखे श्रावक पूजने, आलम्ब विहरते, तो उदायी ! मेरे श्रावक धोमक (= पुत्र) भर आहार करनेवाले, अन्न-कोसक आहारी, वाम (= वाम काष्ठर उभाया उठा धर्म) भर आहार करनेवाले, भाषा पाम आहारी भी हैं । मैं उदायी ! कभी कभी इस पात्रभर ग्याता हूँ, अधिक भी खाता हूँ । यदि ‘अल्पाहारी, अल्पाहार-प्रशंसक हैं’ इससे पूजते तो उदायी ! जो मेरे श्रावक आया-वासमाहारी हैं, वह सुखे इस धनसे न मत्कार करते । ”

“ उदायी ! ‘जैसे तेमे चीवरसे सन्तुष्ट, संतुष्टता प्रशंसक हैं’ इससे यदि सुखे श्रावक पूजते, तो उदायी ! मेरे श्रावक पामु वृत्तिक = रत्न चीवर धारी भी हैं । वह दयतानसे वृष्टिक दासे लुत्ते-चीवड़े धोतरक संधानी (= सिनुका ऊपरका दोहा वस्त्र) बना, धारण करते हैं । मैं उदायी ! किसी किसी समय वृद्ध शस्त्र रख, लौका जैसे रोम वाले (= मसमाल) गृहपत्नियोंके वस्त्रो भी धारण करता हूँ । ”

“ उदायी ! ‘०जने तमे पिंड पातसे सन्तुष्ट, ०संतुष्टता-प्रदासक०’ इससे यदि सुष्ठु श्रावक० पूतते०, तो उदायी ! मेरे श्रावक पिंड पातिक (=मधुकरी-वाले), सपदानगरी (=निरन्तर घन्ते रह, मिखा मागने वाले) उंड प्रतम रत भी हैं । वह गागमे आसनक स्त्रि निर्मत्रित होनेपर भी, (निमन्त्रग) नहीं स्त्रीकार करते । मैं तो उदायी ! कभी कभी निर्मन्त्रगमे धानका भात, कालिमा रहित अनेक सुप, अनेक व्यञ्जन (=तराही) भी भोजन करता हूँ । ॥

“ उदायी ! ‘०जसे तमे शयनासनसे सन्तुष्ट, ०सन्तुष्टता प्रदासक०’ इससे यदि सुष्ठु श्रावक० पूतते०, तो उदायी ! मेरे श्रावक वृक्ष मूलिक (=पेड़के नीचे सदा रहने वाले), अन्भोरसिक (=अभ्यर्चकाधिक=सग छोड़में रहनेवाले) भी हैं, वह आठ मास (वर्ष) चार मास जोड़) छतके नीचे नहीं आते । मैं तो उदायी ! कभी कभी लिपे-पोते वायु रहित, फियाड-विड़की उन्द कोठे (=कृतागारे)में भी विहरता हूँ । ॥

“ उदायी ! ‘०पूकान्तगामी पकान्तवास प्रदासक०’ इससे यदि पूतते, तो उदायी ! मेरे श्रावक आरण्यक (=सदा अरण्यमें रहने वाले), प्रान्त शयनासन (=वस्तीसे दूर हुआ घाटे) ह, (घा) अरण्यमें घनप्रत्ये=प्रान्तके शयनासनोम रहकर विहरते ह । वह प्रवेक अर्द्धमास प्रातिमोक्ष उद्देश (=अवसाध-स्वीकार)के लिये, संघके मध्यमें आते ह । मैं तो उदायी ! कभी कभी भिक्षुभो, भिक्षुनियो, उपासको, उपासिकाभो, राजा, राज महामात्या, तीर्थिको, तीर्थि श्रावकासे आकीर्ण हो विहरता हूँ । ॥ इस प्रकार उदायी ! मुझे श्रावक इन पांच धर्मासे नहीं ०पूजते० ।

“ उदायी ! दूसरे पांच धर्म हैं, जिनसे श्रावक मुझे ०पूजते हैं० । कौनसे पांच ? यहाँ उदायी ! (१) श्रावक मेरे शील (=आचार)से सम्मान करते ह—अमण गौतम शीलवाच हैं, परम शील-स्फण्ड (=आचार समुदाय)से सयुक्त हैं । जो कि उदायी ! श्रावक मेरे शीलम विवास करते हैं—०, यह उदायी ! प्रथम धर्म है, जिससे० ।

“ और फिर उदायी ! (२) श्रावक मुझे अभिज्ञान्त (= सुन्दर) ज्ञान दर्शन (=ज्ञान का मासे प्रत्यक्ष करने) में समानित करते हैं—ज्ञानकर, ही अमण गौतम कहते हैं—‘ज्ञानता हूँ’, देखकरही अमण गौतम कहते हैं—‘दिखता हूँ’ । अनुभवकर (=अभिज्ञाय) ही अमण गौतम धर्म उपदेश करते हैं, बिना अनुभव किये नहीं । स निदान (=कारण सहित) अमण गौतम धर्म उपदेश करते हैं, अ निदान नहीं । स प्रातिहार्य (=सकारण)०, अ प्रतिहार्य नहीं । ॥

“और फिर उदायी ! (३) श्रावक मुझे प्रज्ञामें समानित करते हैं—अमण गौतम परम प्रज्ञा स्फण्ड (=उत्तम ज्ञान समुदाय)से युक्त हैं । उनके लिये ‘अनागत (=अविष्य) के बाद विजादका मार्ग अनु-देखा है, (वह वर्तमानमे) उत्पन्न दूसरेके प्रज्ञाद (=संज्ञ) को धर्मके साथ न रोक सकेंगे’ यह समझ नहीं । तो क्या मानते हो उदायी ! क्या मेरे श्रावक ऐसा जानते हुये ऐसा देखते हुये, बीच बीचमें बात शेकेंगे ?”

“ नहीं भन्ते ! ”

“उदायी । मैं श्रावकोके अनुशासनकी अकाक्षा नहीं रखता, बल्कि श्रावक मेरेही अनुशासन को दोहराते हैं । ० ।

“और फिर उदायी । (४) दु ससे उत्तीर्ण, विगत-दु स हो, श्रावक, मुझे आकर, दु स आर्य सत्यको पूछते हैं । पूछे जानेपर उनको मैं दु स आर्य-सत्य व्याख्यान करता हूँ । प्रश्नोत्तरों में उनके चित्तको समुत्पन्न करता हूँ । वह आकर मुझे दु स समुदय आर्य-सत्य पूछते हैं ० । ० दु स निरोध ० । ० दु स निरोध गामिनी प्रतिपद् आर्य सत्य पूछते हैं ० । ० ।

“और फिर उदायी । (५) मैंने श्रावकोको प्रतिपद् (=मार्ग) बतला दिया है । जिस पर आरुढहो श्रावक चारों स्मृतिप्रस्थानोंकी भावना करते हैं—मिथु कायामं कायानुपश्यी हो विहरते हैं ०^१, ० वेदनानुपश्यी ०^२, ० चित्तानुपश्यी ०, धर्मे धर्मकी अनुपश्यना (=अनुभूति) करते, तत्पर, स्मृति संप्रजम्प युक्त हो, द्रोह = दौर्मनस्यको हटायकर सौम्य विहरते हैं । तिसमें बहुतसे मेरे श्रावक अभिजा व्यवसान प्राप्त = अभिजा पारमिता-प्राप्त (=अर्हत् प-प्राप्त) हो विहरते हैं ।

“और फिर उदायी । मैंने श्रावकोंको (६) प्रतिपद् बतला दिया है, जिस पर आरुढहो मेरे श्रावक चारों सम्पन्न प्रधानोंकी भावना करते हैं । उदायी । मिथु, (१) (वर्तमानम) उत्पन्न पाप = अ-कुशल (=दुःख) धर्मोंको न उत्पन्न होने देनेके लिये, छन्द (=सवि) उत्पन्न करने हैं, कोशिश करते हैं = धीर्य आरम्भ करते हैं, चित्तको निग्रह = प्रधान करते हैं । (२) उत्पन्न पाप = अ-कुशल धर्मोंके विनाशके लिये ० । (३) अनुत्पन्न कुशल-धर्मोंकी उत्पत्तिके लिये ० । (४) उत्पन्न कुशल धर्मोंकी स्थिति = असमोप, बुद्धि = विपुलताके लिये, भावना पूर्णकर छन्द उत्पन्न करते हैं ० । यहाँ भी बहुतसे मेरे श्रावक (अर्हत्-पद) प्राप्त हैं ।

“और फिर उदायी । मैंने श्रावकोंको प्रतिपद् बतलायी है, जिस पर आरुढहो मेरे श्रावक चारों ऋद्धि पादोंकी भावना करते हैं । यहा उदायी । मिथु (१) छन्द समाधि प्रधान-संस्कार युक्त ऋद्धि पादकी भावना करते हैं । (२) धीर्य समाधि प्रधान-संस्कार-युक्त ऋद्धि पादकी भावना करते हैं । (३) चित्त-समाधि ० । (४) विमर्ष-समाधि ० । यहा भी ० ।

“और फिर उदायी । ० जिस पर आरुढहो मेरे श्रावक पाँच इन्द्रियोंकी भावना करते हैं । उदायी । यहा मिथु (१) उपदाम = संबोधि की ओर जाने वाली, श्रद्धा इन्द्रियकी भावना करते हैं । (२) धीर्य इन्द्रिय ०, (३) स्मृति इन्द्रिय ० (४) समाधि-इन्द्रिय ० । ० ।

“ ० । ० पाँच बलोंकी भावना करते हैं । ० श्रद्धाबल ०, धीर्य बल ०, स्मृति बल ०, समाधि बल ०, प्रज्ञाबल ० ।

“ ० । ० सात बोधि-भगोंकी भावना करते हैं ।—यहा उदायी । मिथु विरेक-आश्रित, विराग आश्रित, निरोध आश्रित व्यवसर्ग-फलवाले (१) स्मृति-संबोधि-अगती भावना करते हैं, ० (२) धर्म विषय संबोध्यगकी भावना करते हैं । ० (३) कार्य संबोध्यग ० । (४) प्रीति-संबोध्यग ० । ० (५) प्रसन्नवि सरोध्यग ० । ० (६) समाधि-संबोध्यग ० । ० (७) उपेक्षा-संबोध्यग ० । ० ।

“और फिर० आर्य अष्टांगिक मार्गकी भावना करते हैं। उदायी ! यहाँ भिक्षु (१) सम्यग् दृष्टिको भावना करते हैं ।० (२) सम्यग्-संकल्प० ।० (३) सम्यग् वाक्० सम्यग् कर्मान्त० ।० (४) सम्यग्-आजीव० ।० (५) सम्यग्-ज्यायाम० ।० (६) सम्यग्-स्मृति० । (८) सम्यग्-समाधि० ।०।

“आठ विमोक्षको भावना करते हैं । (१) रूपी (=स्वप्ना) रूपोंको देखते हैं, यह प्रथम विमोक्ष है । (२) शरीरके भीतर (=अध्यात्म) अ रूप संज्ञी (=रूप नहीं है-क नाम वाले), बाहर रूपोंको देखते हैं० । (३) शुभ ही अधिभूत (=भुक्त) होते हैं० । (४) सर्वथा रूपमंगा (=रूपने रचाल)को अतिक्रमण कर, प्रतिहिंसाके रचालके लुप्त होनेसे, नामा पाके रचालको मात्र न करनेसे ‘आकाश अन्त है’ इस आकाश-आनन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरते हैं० । (५) सर्वथा आकाशानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर ‘विज्ञान (=चेतना) अन्त है’ इस विज्ञान आनन्त्य आयतनको प्राप्त हो विहरते हैं० । (६) सर्वथा विज्ञानानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर ‘कुत्र नहीं है’ इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो० । (७) सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमण कर, त्रैलोक्य-न-शमन्ता-आयतन (=जिस समाधिवा आत्मान न चेतनाही कहा जा सकता है, न अचेतना ही) को प्राप्त हो० । (८) सर्वथा न-सन्ताना सञ्जायतनको अतिक्रमण कर प्राग धेति निरोध (पञ्चावधित निरोध)को प्राप्त हो विहरते हैं, यह आठवाँ विमोक्ष है । इससे और इसमें मेर बहुतसे श्रावक (अर्हत् पद प्राप्त हैं) ।

“और फिर उदायी । आठ अभिभू-आयतनको भावना करते हैं । (१) पुरु (भिक्षु) शरीरके भीतर (=अध्यात्म) रूपका रचालगाला (=रूपसंज्ञी), बाहर सु-वर्ण दुर्बल क्षुद्र रूपा को देखता है । उन्हे अभिभूत कर विहरता है, यह प्रथम अभिभू-आयतन है । (२) अध्यात्ममें अरूप संज्ञी, बाहर सु-वर्ण, दुर्बल अ-प्रमाण (=द्रुत भारी) रूपोंको देखता है । ‘उन्हे अभिभूतकर जानता हूँ देखता हूँ’ इस रचालगाला होता है ।०। (३) अध्यात्ममें अ रूप-संज्ञी (=‘रूप नहीं है’ इस रचालगाला), बाहर सु-वर्ण दुर्बल क्षुद्र रूपोंका देखता है—०। (४) अध्यात्ममें अरूप संज्ञी, बाहर सु-वर्ण दुर्बल अ-प्रमाण रूपोंको देखता है—०। (५) अध्यात्ममें अरूप संज्ञी बाहर नील=नीलवर्ण=नील-निर्दशन नील-निभास रूपोंको देखता है । जेसेकि अलसीका फूल नील=नील वर्ण=नील-निर्दशन=नील निभास, जेसेकि दोनों ओर से विमृष्ट (कोमल, चिरुना) नील० बनारसी (वाराणसेयक) वृक्ष, ऐसेहा अध्यात्ममें अरूप संज्ञी एक (भिक्षु) बाहर नील० रूपोंको देखता है—‘उनको अभिभूतकर जानता हूँ देखता हूँ’ इसे जानता है० । (६) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी एक (भिक्षु) बाहर पीत (=पीला) = पीतवर्ण पीत निदर्शन=पीत निभास रूपोंको देखता है । जेसेकि पीत० कर्णिकार फूल या जेसे वह० पीत० बनारसी वृक्ष० ।०। (७) अध्यात्ममें अरूप संज्ञी (पुरुष) लोहित (=लाल) =लोहितवर्ण=लोहित निदर्शन=लोहित निभास रूपोंको देखता है । जेसेकि लोहित० पृथुजीवक (=‘बड़े हुल)का फूल, या जेसे लाल० बनारसी वृक्ष० ।०। (८) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी अवदात

१ अ क ‘वहा (बनारसी) क्यामसी कोमल, सूतकातनेवाली तथा बुलहे भी बुरा, जल्मी सु वि स्निग्ध (है) । वहाँका वृक्ष दोनों ही ओरसे कोमल ओर स्निग्ध होता है ।

(=सपेद)० स्योको देखता है । जैसेकि अजदात० शुभताग (=ओमघो-तात्का), या जैसेकि सपेद० बनारसी वग्न० ।०।

“ और फिर उदायी । ० दश कृत्स्न भाषान (=प्रसिधायन)की भाषना करते हैं । (१) एक पुरष ऊपर, नीचे, तिष्ठे, अद्वितीय, अप्रमाण पृथ्वी कृत्स्न (=पृथ्वी-कमिण=सारी पृथिवी ही) जानता है । (२) ० आय-कृत्स्न (=सारा पानी)० । (३) ० तेज कृत्स्न (=सारा तेज)० । (४) ० व्यायु-कृत्स्न (=सारी हवा ही)० । (५) ० गोल कृत्स्न (=सारा गोल)० । (६) ० पात कृत्स्न० । (७) लोहित कृत्स्न । (८) ० आनात-कृत्स्न (=सारा सफेद)० । (९) ० आकाश कृत्स्न० । (१०) ० त्रिधा कृत्स्न (=चतुर्नामय, चिन्मात्र) ।

“ और फिर उदायी ! ० चार ध्यानी भी भाषना करते हैं । उदायी ! भिक्षु, कामोसे अलग हो, अज्ञान धर्मा (=पुरा बातों)से अलग हो तितर विचार महित त्रिगुणसे उत्पन्न प्रीति-सुख-रूप) प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह इसी कायाको, विषयसे उत्पन्न प्रीति सुख द्वारा श्रवित, परिश्रवित करता है, परिपूर्ण=परिष्करण करता है । (उमरी) इस सारी कायाका कुछ भी (अतः) विवेक-ज प्रीति सुखसे अटूटा नहीं होता । जैसे कि उदायी । दश (=चतुर) नहापित (=नहलाने वाला), या नहापितका चेला (=न-तेवासी) कैसेके पालमें स्नानीय-चूर्णको डालकर, पानी सुखा सुखा छिलाने । सो इसकी नहापिंड़ी शुभ (=स्वच्छता) अनुगत, शुभ परिगत शुभसे अन्दर बाहर गिर हो पिघलता है । ऐसैही उदायी । भिक्षु इसी कायाको विवरण प्राप्ति सुखसे श्रवित आश्रवित करता है, परिपूर्ण=परिष्करण करता है ।०।

“ और फिर उदायी । भिक्षु तितर विचारोके उपपात होनेसे० १ द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह इसी कायाको समाधि-प्रीति-सुखसे श्रवित=आश्रवित करता है० । जैसे उदायी । पाता-चोड़कर निराला पानीका नह हो । उमरे न पूरे निद्रामें पानीके आनेका मार्ग हो, न पश्चिम दिशामें, न उत्तर दिशामें, न दक्षिण दिशामें । दब मो समय समयपर अछी तरह बार न बरसाये । तो भी उम पाना न पड़े (=उदक-हृद)से शीतल बारिधारा पृष्ठपर उम उदक हृदको शीतल जगमे श्रवित, आश्रवित करे, परिपूर्ण परिष्करण करे, इस मागे उदक-हृदका कुछ भी (अतः) शीतल जगसे अटूटा न हो । ऐसे उदायी ! इसी कायाको समाधि-प्रीति-सुखसे० ।

“ और फिर उदायी ! भिक्षु० १ तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह इसी कायाको निःप्रीतिक (=प्रीति रहित) सुखसे श्रवित करता है० । जैसे उदायी । उत्पलिकी (=उत्पल-समूह), पक्षिनी, पुण्डरीकिनीमें, कोई फोड उत्पल, पद्म, पुण्डरीक, पानीमें उत्पन्न, पानीमें बड़े, पानीसे (जाहर) न निर, भीतर छेदेही पोषित, मूलसे शिवा तर शीतल जलसे श्रवित० होते हैं० । ऐसैही उदायी । भिक्षु इसी कायाको निःप्रीतिक० ।

“ और फिर उदायी । १ चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह इसी कायाको, परिशुद्ध=परि अवदात चित्तसे श्रवितकर ब्रह्म होता है ।०। जैसे कि उदायी ! पुरष अवदात

(= शरीर) धर्मसे क्षिर तक रूपेतर बेटा हो। उसकी सारी कायाका कुठ भी (भाग) शरीर वस्त्रसे अनाच्छादित न हो। ऐसे ही उदायी ! मिश्रु इमी कायाको०। तहां भी मेरे बहुतसे श्रावक अभिन्ना व्यवसान-प्राप्त, अभिजा-पारमि-प्राप्त हैं।

“और फिर उदायी ! मैंने श्रावकोंको वह मार्ग बतला दिया है, जिस (मार्ग) पर आरुह्य हो, मेरे श्रावक ऐसा जानते हैं— यह मेरा शरीर रूपवान्, चातुर्महाभूतिक, मातापितासे उत्पन्न, भात गालसे बड़ा, अनित्य=उच्छेद=परिमर्दन=भेदन=विघ्नसन धर्मवाला है। यह मेरा विज्ञान (=चेतना) यहां बंधा=प्रतिबद्ध है। जैसे उदायी शुभ्र सुन्दरजाति की, अद्विकोनी, सुदूर पालिकाकी (=सुपरिकर्मट्ट), स्वच्छ=विप्रसन्न, सर्ग-आकार-युक्त चेदुर्यमणि (=हीरा) हो। उसमें नील, पीत, लोहित, अवदात या पांडु सूत पिरोया हो। उसका आंगगाला पुरूप हाथमें लेकर देखे—‘यह शुभ्र० चेदुर्यमणि है, ०सूत पिरोया है’। ऐसा उदायी। मैंने० बतला दिया है०। तहां भी मेरे बहुतसे श्रावक०।

“और फिर उदायी ! ० मार्ग बतला दिया है, जिस मार्गपर आरुह्य हो मेरे श्रावक, इस कायासे रूपवान् (=साकार), मनोमय, सर्वोक्त-प्रत्यंग-युक्त अलक्षित इन्द्रियोयुक्त वृत्ता कायाको निर्माण करते हैं। जैसे उदायी। पुरूप मूँजमेंसे सीक निकाले। उसको ऐसा हो—‘यह मूँज है, यह सीक। मूँज अलग है, सीक अलग है। मूँजसे ही सीक निकली है।’ जैसा कि उदायी। पुरूप म्यानसे तलवार निकाले। उसको ऐसा हो—‘यह तलवार है, यह म्यान है। तलवार अलग है, म्यान अलग। म्यानसेही तलवार निकली है।’ जैसे उदायी। पुरूप सांपकी पिण्डीसे निफाले०। ऐसेही उदायी ! ० मार्ग बतला दिया है०।

“और फिर उदायी ! ० मार्ग बतला दिया है, जिस मार्गपर आरुह्य हो, मेरे श्रावक अनेक प्रकारके नृद्धि-विघ्न (=योग-वमत्कार) को अनुभव करते हैं। एक होकर बहुत होना है। बहुत होकर एक होते हैं। आविभाव, तिरोभाव (करते हैं)। जैसे भीत पार प्रारार पार परत पार। आकाशमें जैसे विनालेष (पार) होजाते हैं। पृथिवीमें भी इतना उतराना करते हैं, जैसे कि जलमें। पानीमें भी जिना भीगे चलते हैं, जैसे कि पृथिवीमें। पक्षि (=शकुनी) का भाति आसन बांधे आकाशमें चलते हैं। इतने महर्द्धिक=महानुभाव (=तेजस्वी) इन चार सूर्यको भी हाथसे छूते हैं। ब्रह्मलोक तक कायासे वशमें रहते हैं। जैसे उदायी ! चतुर कुम्भकार, या कुम्भकारका चला, सिखाई मिट्टीसे जो जो विशेष भाजन चाहे, उसी उसीको बनाने=निर्पादन करे। या जैसे उदायी ! चतुर दन्तकार (=हाथीके दातका काम करनेवाला) या दंतकारका चला, सिखाये दांतसे जो जो दंत विवृति (=दांतकी चीज) चाहे, उसे बनाए=निर्पादन करे। या जैसे उदायी ! चतुर सुवर्ण कार या सुवर्णकारका चला, सिखाये सुवर्णस जिस जिस सुवर्ण-विवृतिको चाहे उसे बनावे०। ऐसेही उदायी ! ०।

“और फिर उदायी ! ० जिस मार्ग पर आरुह्य हो मेरे श्रावक त्रिव्य, विशुद्ध, अमात्रुप, ओषध धातु (=काम)से त्रिव्य और मानुष, दूरवर्ता और समीपवर्ता, दोनोंही तरहके शब्दोंको सुनते हैं। जैसे कि उदायी। वल्गवान् शंस धमक (=शस्त्र-बजानेवाला) अल्प-प्रयाससे चारा दिशाओंको जतलाए। ऐसेही उदायी०।

“और फिर उदायी । ० जैसे मार्ग पर आरुह्यो, मेरे धावक दूमेरे सत्त्वो = दूमेरे पुत्रलो के चित्तको (अपने) चित्तद्वारा जानते हैं । मराग चित्तको ‘राग सहित (यह) चित्त है’ जानते हैं । वीतराग चित्तको ‘वीत-नाग चित्त है’ जानते हैं । सट्रेप चित्तको ‘स द्वैप चित्त है’ जानते हैं । वीत द्वैप चित्तको० । स-मोह चित्तको० । वीत-मोह चित्तको० । मक्षित चित्तको० । विक्षित चित्तको० । महद्रत (= विशाल) चित्तको० । अ महद्रत चित्तको० । म उत्तर (= निमते बरकर भी है) चित्तको० । अन् उत्तर चित्तको० । समाहित (= एकत्र) चित्तको० । अ समाहित चित्तको० । विमुक्त (= मुक्त) चित्तको० । अ विमुक्त चित्तको० । जैसे उदायी । कोई शरीरन स्थो या पुरप, बालक या तरुण, परिशुद्ध = परि अवदात दण्ड (= आदर्श) या स्वच्छ जलभरे पात्रमें अपने मुख निमित्त (= मुखको शाल) को देखने हुये, म कणिक अग होने पर स-कणि-काग (= सद्योप अग) जाने, अ कणिकाग होनेपर अ कणिकाग जाने । ऐसेही उदायी० । ० ।

“और फिर उदायी ! जिन मार्ग पर आरुह्यो, मेरे धावक अनेक प्रकारके पूर्व-निर्गमो (= पूर्व जन्मो) को जानते हैं । जैसे कि, पुत्र जाति (= जन्म , भी, ने जातिभो०, तीन जातिभो, चार जातिभो, पाच जातिभो, बीस जातिभो, तीस जातिभो, चालीस जातिभो, पचास जातिभो, सो जातिभो, हजार जातिभो, सौहजार जातिभो, आठ सवर्त-कल्पो (= महाकल्पो) को भी, अनेक विपत्त कल्पो (= छष्टियो) को भी, अनेक सवर्त विपत्त कल्पोको भी, ‘म’ यहा इम नाम, इम गोत्र, इस वर्ण, इस आहार-बाला, ऐसे सुल दु खको अनुभव करने गाला इतनी आयु-पर्यन्त था । सो मैं यहासे च्युतहो, यहा उत्पन्न हुआ । वहाँ भी म० इतनी आयुपर्यन्त रहा । सो यहा च्युत (= च्युत) हो, यहा उत्पन्न हुआ’ । इस प्रकार स आहार (= आश्रित सहित) स-उद्देश (= नाम सहित) अनेक प्रकारके पूर्व निर्गमोको अनुगमन करने हैं । जैसे उदायी ! पुत्र अपने ग्रामसे दूसरे ग्राममें जाये । उस ग्राममें भी दूसरे ग्रामको जाय । वह उस ग्रामसे अपनेही ग्रामको लौट जाये । उसको ऐसाही—मे अपने ग्रामसे उस गावको गया, यहा ऐसे रहा हुआ, ऐसे बैठा, ऐसे गेला, ऐसे चुप रहा । उस ग्रामसे भी उस ग्रामको गया । वहाँ भी ऐसे पड़ा हुआ० ।

“और फिर उदायी । ० जैसे मार्ग पर आरुह्यो मेरे धावक दि०प, विशुद्ध, अ-मात्रुप ० पुत्रे, हीन, प्रणीत (= उत्पन्न), सुवर्ण वर्ण, सु-गत दुगत सत्त्वोको च्युत होने, उत्पन्न होने जाने हैं । कर्मानुसार (गति) प्राप्त सत्त्वोको जानते हैं—यह आप सत्त्व काय-दुगतरितने युक्त, वाग् टुद्वरितसे युक्त, मन दुश्चरितसे युक्त, आर्या के निन्दक, मिथ्या दृष्टि, मिथ्या दृष्टि कर्मको स्वीकार करनेवाले (ये), वह काया छोड़ मत्तेक बाद अपाय दुर्गति = निनिपात नर्कमें उत्पन्न हुये । और यह आप सत्त्व काय-सुचरितसे युक्त० आयोकि अन् उपयादक (= अति-दक) सम्पद्-दृष्टि, सम्पद् दृष्टिकर्मको स्वीकार करनेवाले (ये), वह० मुगति = स्वर्गलोकेमें उत्पन्न हुये हैं’ । इस प्रकार दि०प-च्युसे० द्रष्टे हैं । जैसे उदायी । समान द्वारवाले दो घर (दो), वहाँ आपबाला पुरप जीवमें सड़ा, मनुष्याको घरमें प्रवेश करते भी, निहलते भी, अनुगमन निचरण करने भी द्ये । ऐसे ही उदायी० । ० ।

“और फिर उदायी ! ० जिन मार्ग पर आरुह्यो मेरे धावक आन्धर्वाज निनाशने मर-धावक (= निमर) निराश विमुक्ति, प्रज्ञा विमुक्ति को इसी जन्ममें स्वयं जानकर माक्षात

कर, प्राप्तकर, वितरते हैं। जैसे कि उदायी। पर्यन्तसे घिरा स्वच्छ = विप्रसन्न = अन् आविष्ट
उत्तर हृद (= जगदाय) हो। वहाँ आंगमाहा पुरुष तीसपर गदा भीपको • धकड़-पत्थरको
भी, चान्ते सदे, मत्स्य शृङ्खको भी देते। ऐसेही उदायी ! ०।

“यह है उदायी। पाच धर्म जिनसे मुझे आशंक० पूजते हैं। ०।”

भगवान् ने यह कहा, समुत्तर उदायी परिब्राजकने भगवान् के भाषणका अनुमोदन किया।

सिगालोवाद-सुत्त।

एसा मेने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें धेणुवन कलन्द निशपमें बिहार
करा थे।

उग समय सिगाल (= नृगाल) नामक गृहपति पुत्र समूही उठकर, राजगृहमें निष्का
र, भीगे वन, भीगे-केश, हाथ जोड़े, पूर्व-दिशा, दक्षिण-दिशा, पश्चिम-दिशा, उत्तर दिशा,
नीचकी दिशा, उपरकी दिशा—नाना दिशाओं को नमस्कार कर रहा था।

तब भगवान् पूवाह-समय चीवर पहिन्कर पात्र-चीवर ले, राजगृहमें निष्काके लिये
प्रविष्ट हुये। भगवान् ने सिगालको० नाना दिशाओंको नमस्कार करते देखा। देखकर सिगाल
गृहपति पुत्रको यह कहा—

“गृहपति पुत्र। तू क्या, समूही उठकर० नमस्कार कर रहा है ?”

“भन्ते। मेरे पिताने मरते वक्त मुझे यह कहा है—तात। दिशाओंको नमस्का
करना। सो मैं भन्ते। पिताने वचनका सत्कार करते = गुरुकार करते, मान करते = पूजा
करते, समूही उत्तर० नमस्कार कर रहा हूँ।”

“गृहपति-पुत्र। आग-विनय (= आर्यधर्म) में इस तरह ८ दिशाएँ नहीं नमस्कार
की जाती ?”

“फिर कमे भन्ते। आर्य विनयमें ८ दिशाएँ नमस्कार की जाती हैं ? भन्ते। अच्छा
हो, जैसे आर्य विनयमें दिशाएँ नमस्कार की जाती हैं, वैसे भगवान् मुझे धर्म उपदेश करें।”

“तो गृहपति पुत्र। सुनो, अच्छा तरह मार्ग करो, कहता हूँ।”

“अच्छा भन्ते।”—यह सिगाल गृहपति पुत्रने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् ने यह कहा—

“गृहपति-पुत्र। जब आर्य श्रावकके चार कर्म छेस छूट जाते हैं। चार स्थानोंसे (बह)
पाप-धर्म नहीं करता। भोगो (= धन) के विनाशके ३ कारणोंको नहीं सेवन करता।
(तब) वह इस प्रकार चाँदह पापों (= उराहियों) से रहित हो, ८ दिशाओंको आच्छादित कर,
दोना लोकोक विजयमें सलग होता है। उसका यह लोक भी आराधित होता है, परलोक
भी। यह काया छोड़नेपर, मरनेक बाद, सुगति स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है।

“कैसे हमके चार कर्म छेस छूटते हैं ? गृहपति-पुत्र ! (१) प्राणातिपात (= हिंसा)
कर्म छेस है। (२) अदत्तादान (= चोरी) ०। (३) मृपावाद (= झूठ) ०। (४) काम
मि याचार ०। उसके यह चारो छेस छूट जाते हैं।”

भगवान्ने यह कहा । यह कहकर सुगत शास्ताने यह भी कहा—

“प्राणातिपात, अदत्तादान, मृपावाद (जो) कहा जाता है ।

और परदार-गमन (इत्यादि) पण्डित प्रशंसा नहीं करने ॥

“किन् चार स्थानोसे पापकर्मको नहीं करता ? (१) छन्द (=स्वच्छाचार) क रास्त में जाकर पाप कर्म करता है । (२) द्वेषके रास्तमें जाकर० । (३) मोहके० । (४) भय के० । चूँकि गृहपति पुत्र ! आर्ये श्रावक न छन्दन रास्ते जाता है । न द्वेषके०, न मोहके०, न भयके० । (अतः) इन चार स्थानोसे पाप कर्म नहीं करता ।—भगवान्ने यह कहा । यह कहकर शास्ता सुगतने फिर यह भी कहा—

“छन्द, द्वेष, भय और मोहसे जो धर्मको अतिप्रमग करता है ।

कृष्णपक्षने चन्द्रमाकी भाँति, उसका यश क्षीण होता है ॥

छन्द, द्वेष, भय और मोहसे जो धर्मको अतिप्रमग नहीं करता ।

शुक्लपक्षने चन्द्रमाकी भाँति, उसका यश वर्धमान है ॥

“कौनसे छ भागोके अपायमुख (=विनाशक कारण) हैं । (१) धरात्र नशा आदिका सेवन । (२) विकार (=सत्या) में चोरस्तेरी सेर (=विमिश्र चरिया) में तत्पर होना । (३) समग्र्या (=समाज=नाच-तमाशा) का सेवन । (४) गुप्ता, (और दूसरी) दिमाग निमाहनेकी चीज । (५) डर मित्र (=पाप मित्र) की मिताह । (६) शालस्पर्श फलना ।

“गृहपति पुत्र ! शास्त्र-नशा आदिक सेवनमें छ दुष्परिणाम हैं । (१) तत्काल धनकी हानि । (२) कष्टका घटना । (३) (यह) रोगोका घर है । (४) अयश उत्पन्न करनेवाला है । (५) राजा नाश करनेवाला है । और छ (=प्रति) बुद्धि (=प्रज्ञा) को दुर्बल करता है ।

“गृहपति पुत्र ! विकारमें चोरस्तेकी भंजन चार दुष्परिणाम हैं । (१) स्वयं भी वह अगुप्त=अशक्ति होता है । (२) उसने रती पुत्र भी अगुप्त=अशक्ति होते हैं । (३) उसकी धन संपत्ति भी अशक्ति होती है । (४) बुरी यातना होकर होती है । (५) शरी यात उसपर लागू होती है । (६) बहुतसे दुःख कारक कामाना करनेवाला होता है ।

“गृहपति पुत्र ! समग्र्याभिचरणमें छ दोष (=आदिप्रत) हैं । (१) (आज) कहाँ नाच है (इसकी परेशानी) । (२) कहाँ याच है ? (३) कहाँ आख्या है ? (४) कहाँ पाणिस्वर (हाथसे ताल देकर उत्पन्न गीत) है ? (५) कहाँ कुम्भ-धूम (वादन गीत) है ?

“गृहपति पुत्र ! दूत प्रमाद स्थानों व्ययनमें छ दोष हैं । (१) जय (होनेवा) सेर उत्पन्न करता है । (२) पराजित होनेवा (हार) धनकी मोच करना है । (३) तत्काल धनका सुरुषान । (४) समग्र गानेपर वजनका विद्वान् नहीं रहता । (५) मित्रों और अमात्यो द्वारा तिरस्कृत होता है । (६) शास्त्री विप्राद करनेवाले—यह जुबारा आदमा है, श्री का भरण-पोषण नहीं कर सकता—सोच, (क्या देनेमें) आपत्ति करने हैं ।

“ गृहपति पुत्र ! दुष्ट मित्रकी मिताईके छ दोष होते हैं । जो (१) धूर्त, (२) शौण्ड, (३) पियक्क (= पिपास), (४) कृतघ्न, (५) वचक और (६) गुन्दे (= साहमिक, खूनी) होते हैं, उही इसके मित्र होते हैं ।

“ गृहपति पुत्र ! आलस्यमें पड़नेमें यह छ दोष हैं—(१) ‘(हम समय) बहुत ढंढा है’ (सोच) काम नहीं करता । (२) ‘बहुत गर्म है’—(सोच) काम नहीं करता । (३) ‘बहुत शाम हो गई’ (सोच)० । (४) ‘बहुत सरोरा है’० । (५) ‘बहुत भूखा हूँ’० । (६) ‘बहुत त्याग हूँ’० इस प्रकार बहुतसे करणीय बातोंको (न करके) , अनुत्पन्न भोग उत्पन्न नही होते, और उत्पन्न भोग नष्ट हो जाते हैं । ” भगवान् ने यह कहा । यह कहकर शास्ता सुगतने फिर यह भी कहा—

‘जो (मध्य) पानमें सखा होता है, (सामने) प्रिय प्रिय बनता है, (वह मित्र नहीं) ।

जो काम हो जानेपर भी, मित्र रहता है, वही सखा है ॥

अति निद्रा, पर खी गमन, ३२ उत्पन्न करना, और आर्थ करना ।

बुरेकी मित्रता, और बहुत कजूसी, यह छ मनुष्यको बचाव कर देने हैं ॥

पाप मित्र (= बुरे मित्र वाला), पाप-सखा और पापाचारमें अनुरक्त ।

मनुष्य इस लोक और पर (लोक) दोनोंही से नष्ट भ्रष्ट होता है ॥

जूया, स्त्री, वारणी, नृत्य गीत, दिनकी निद्रा और अ-धर्मकी सेवा ।

बुरे मित्रोंका होना, और बहुत कजूसी, यह छ मनुष्यको बचाव कर देने हैं ॥

(जो) जूभा पेलते हैं, सुरा पीते हैं, पराई प्राण प्यारी खियों (का गमन करते हैं) ।

नोचका मेहन करते हैं, पंडितका सेवन नहीं, (वह) कृष्ण पक्षकी चन्द्रमासे क्षीण होते हैं ॥

जो वारणी-(रत्त), निर्धन, मुहताज, पियक्क, प्रमादा (होता है) ।

(जो) पानीकी तरह भ्रममें अवगाहन करता है, (वह) शीघ्रही अपनेको व्याकुल करता है ।

दिनम निद्राशील, रातके उठोको बुरा मानने वाला ।

सखा (नशामें) मस्त-खोंड गृहरथा (= घर-आवास) नहीं कर सकता ॥

‘बहुत दीत है’, ‘बहुत उष्ण है’, ‘अब बहुत सध्या होगई’,

इस तरह करते मनुष्य धन हीन हो जाते हैं ॥

जो पुरप काम करते शीत उष्णको तृणसे अधिक नहीं मानता ।

यह सुप्तमें वचित होने वाला नहीं होता ॥

“ गृहपति-पुत्र ! इन चारोंको मित्रके रूपमें अमित्र (= शत्रु) जानना चाहिये ।

(१) पर धन हारकको मित्र रूपमें अमित्र जानना चाहिये । (२) केवल यात बनाने वालेको० ।

(३) (सदा) प्रिय वचन बोलने वालेको० । (४) अपाय (= हानिकार कृत्योंमें)-सहायकको० ।

गृहपति पुत्र ! चार बातोंसे पर-धन हारकको० ।—

‘(१) पर धन हारक होता है । (२) थोड़े (धन) द्वारा बहुत (पाना) चाहता है ।

(३) भय (= विपत्ति) का काम करता है । (४) और स्वार्थके लिये सेवा करता है ॥

“ गृहपति पुत्र ! चार बातोंसे वचीपरम (= केवल यात बनाने वाले) को० ।—

(१) भूत (कालिक वस्तु) को प्रदर्शना करता है । (२) भविष्यकी प्रशम्भा करता है ।
(३) निरर्थक (बात) की प्रशम्भा करता है । (४) वर्तमानके काममें विपत्ति प्रदर्शन करता है ॥

“ गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे प्रियभाषी (= प्रिय वचन बोलने वाले) को० ।—

‘(१) बुरे काममें भी अनुमति देता है (२) अच्छे काममें भी अनुमति देता है । (३) सामने तारोक करता है । और (४) पीठ पीठे निन्दा करता है ॥

“ गृहपति पुत्र ! चार बातोंमें अपाय सहायकको० ।—

‘(१) सुख, मेरु, मद्य पान (जेसे) प्रमान्ये काममें फमनेमें साथी होता है । (२) देवक औरन्ता घूमनेमें साथी होता है (३) समझ्या देखनेमें साथी होता है । (४) आसेलने (जेसे) प्रमादके काममें साथी होता है ।

भगवान्ने यह कहकर, फिर यह भी कहा—

‘पर घन हारी मित्र, और जो वचोपरम मित्र है ।

प्रिय-भाषी मित्र और जो अपायोमें सहा है ॥

यह चारो अमित्र हैं ऐसा जानकर पत्ति (पुरुष) ।

एनरे गले रास्तेकी मति (उन्ह) दूरसे ही छोड़ दे ॥

“ गृहपति पुत्र ! इन चार मित्रोंको सुहृद् जानना चाहिये ।—

(१) उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये । (२) सुख दुःखको समान भागनवाले मित्रको० । (३) बर्ष (की प्रातिके उपायको) कहनेवाले मित्रको० । (४) अनुकंपक मित्रको० ।

“ गृहपति पुत्र चार बातोंसे उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—

(१) प्रमत्त (= भूल करने वाले) की रक्षा करता है । (२) प्रमत्तकी संपत्तिकी रक्षा करता है । (३) भयभीतका रक्षक (= नाश) होता है । (४) काम पड़ जाने पर, उसे दुगुणा कर उत्पन्न करवाता है ।

“ गृहपति पुत्र ! चार बातोंसे समान सुख दुःख मित्रको सहृद् जानना चाहिये—(१) इसे सुख (बात) बतलाता है । (२) इसकी सुख बातोंको सुख रखता है । (३) आपसमें इसे नहीं छोड़ता (४) इसके लिये प्राण भी दनको तैयार रहता है ।

“ गृहपति पुत्र ! चार बातोंमें अर्थ आरथायी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—

(१) पापका निवारण करता है । (२) पुण्यका प्रवेश कराता है । (३) न धृत (विद्या) को धृत करता है । (४) स्वर्गका मार्ग बतलाता है ।

“ गृहपति पुत्र ! चार बातोंसे अनुकंपक मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—

(१) मित्रके (घन संपत्ति) होनेपर खुश नहीं होता । (२) होनेपर भी सुख नहीं होता । (३) (मित्रकी) निम्न करनेवालेको रोकता है । (४) प्रशंसा करनेपर प्रशम्भा करता है ॥ । यह कहकर फिर यह भी कहा—

‘जो मित्र उपकारक होता है, सुख-दुःखों को सहा (बना) रहता है ।

जो मित्र अर्थ-आरथायी होता है, और जो मित्र अनुकंपक होता है ॥

“ गृहपति पुत्र ! दुष्ट मित्रकी मितार्थिक छ दोष होते हैं । जो (१) धूर्त, (२) शोण्ड, (३) पिक्वन् (= पिपास), (४) कृतघ्न, (५) वचक और (६) गुन्डे (= साहसिक, खली) होते हैं, वही इसके मित्र होते हैं ।

“ गृहपति पुत्र ! आलस्यमे पड़नेमे यह छ दोष हैं—(१) ‘(इस समय) बहुत ठंडा है’ (सोच) काम नहीं करता । (२) ‘बहुत गर्म है’—(सोच) काम नहीं करता । (३) ‘बहुत शाम हो गई’ (सोच) ० । (४) ‘बहुत सपेरा है’ ० । (५) ‘बहुत भूमा हूँ’ ० । (६) ‘बहुत त्याग्य हूँ’ ० इस प्रकार बहुतसे करणीय बातोंको (न करके) , अनुत्पन्न भोग उत्पन्न नहीं होते, और उत्पन्न भोग नष्ट हो जाते हैं । ” भगवान् ने यह कहा । यह कहकर शान्ता सुगतने फिर यह भी कहा—

‘जो (मद्य-)पानमें सखा होता है, (सामने) प्रिय प्रिय बनता है, (वह मित्र नहीं) । जो काम हो जानेपर भी, मित्र रहता है, वही सखा है ॥

अति निद्रा, पर स्त्री-गमन, और उत्पन्न करना, और अनर्थ करना ।

पुष्पकी मित्रता, और बहुत कजूसी, यह छ मनुष्यको बर्बाद कर देते हैं ॥

पाप मित्र (= बुरे मित्र वाला), पाप सखा और पापाचारमें अनुक्त ।

मनुष्य इस लोक और पर (लोक) दोनोंही से नष्ट-भ्रष्ट होता है ॥

जुआ स्त्री, वास्ती, नृत्य गीत, दिनकी निद्रा और अ समयकी सेवा ।

बुरे मित्रोंका होना, और बहुत कजूसी, यह छ मनुष्यको बर्बाद कर देते हैं ॥

(जो) जुआ लेलने है, सुरा पीने है, पराई प्राण प्यारी स्त्रियों (का गमन करते हैं) ।

नोचका मेघन करते हैं, पंडितका सेवन नहीं, (वह) कृष्ण पक्षकी चन्द्रमासे क्षीण होते हैं ॥

जो वास्ती (रत), निर्धन, सुहताज, पिक्वन्ड, प्रमादा (होता है) ।

(जो) पानीकी तरह धरणमें अवगाहन करता है, (वह) शीघ्रही अपनेको व्याकुल करता है ।

दिनमें निद्राशील, रातके उठनेको बुरा मानने वाला ।

सदा (नशामें) मस्त शौंड गृहस्थी (= घल-आश्रय) नहीं कर सकता ॥

‘बहुत शीत है’, ‘बहुत उष्ण है’, ‘अब बहुत सध्या होगई’,

इस तरह करते मनुष्य धन होन हो जाते हैं ॥

जो पुरय काम करते शीत-उष्णको लृणसे अधिक नहीं मानता ।

वह सुप्तमे वक्षित होने वाला नहीं होता ॥

“ गृहपति पुत्र ! इन चारोंको मित्रने रूपमें अमित्र (= शत्रु) जानना चाहिये । (१) पर धन हारकको मित्र रूपमें अमित्र जानना चाहिये । (२) केवल बात बनाने वालेको ० । (३) (मदा) प्रिय वचन बोलने वालेको ० । (४) अपाय (= हानिकार कृत्योंमें)-सहायकको ० । गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे पर धन-हारकको ० ।—

‘(१) पर धन हारक होता है । (२) थोड़े (धन) द्वारा बहुत (पाना) चाहता है । (३) भय (= विपत्ति) का काम करता है । (४) और स्वार्थके लिये सेवा करता है ॥

“ गृहपति पुत्र ! चार बातोंसे वचोपरम (= केवल बात बनाने वाले) को ० ।—

(१) भूत (कालिक यन्त्र) को प्रशंसा करता है । (२) भविष्यकी प्रशंसा करता है । (३) निरर्थक (बात) की प्रशंसा करता है । (४) वर्तमानके काममें विपत्ति प्रदर्शन करता है ॥

“ गृहपति पुत्र ! चार बातोंसे प्रियभाणी (= प्रिय वचन बोलने वाले) को० ।—

‘(१) घुरे काममें भा अनुमति देता है (२) अग्रे काममें भी अनुमति देता है । (३) भागने तारीफ करता है । और (४) पीठ पीठे निन्दा करता है ॥

“ गृहपति पुत्र ! चार बातोंसे अपाय महायज्ञो० ।—

‘(१) सुरा, मेरय, मद्य पा० (जेने) प्रमादके काममें कमनमें साथी होता है । (२) वेवत्त चौरस्ता घुमनेमें साथी होता है (३) समज्या देखनेमें साथी होता है । (४) जूभा सेग्ने (जेसे) प्रमादके काममें साथी होता है ।

भगवान्ने यह कहकर, फिर यह भी कहा—

‘पर धन हारी मित्र, और जो वजीपरम मित्र है ।

प्रिय भाणी मित्र और जो अपायामें सग्या है ॥

यह चारो अमित्र हैं जेना जानकर पत्ति (पुहप) ।

रानरे वाले रास्तेकी भांति (उन्हे) दूरसे ही छोड़ दे ॥

“ गृहपति पुत्र ! इन चार मित्रोंको सुहृद् जानना चाहिये ।—

(१) उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये । (२) सुरा दु स्को समान भागनेवाला मित्रको० । (३) अर्थ (की प्राप्तिके उपायको) कहनेवाले मित्रको० । (४) अनुकूपक मित्रको० ।

“ गृहपति पुत्र चार बातोंसे उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—

(१) प्रमत्त (= भूल जाने वाले) की रक्षा करता है । (२) प्रमत्तकी संपत्तिनी रक्षा करता है । (३) भयभीतका रक्षक (= धाण) होता है । (४) काम पड़ जाने पर, उसे दुगना प० उत्पन्न करवाता है ।

“ गृहपति पुत्र ! चार बातोंसे समान सुहृद् मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—(१) इसे गुह्य (बात) बनलाता है । (२) इसकी गुह्य बातको गुह्य रखता है । (३) आपद्में इसे नहीं छोड़ता (४) इसकी हित्य प्राण भी देनेको तैयार रहता है ।

“ गृहपति पुत्र ! चार बातोंसे अर्थ आह्वायी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—

(१) पापका निगारण करता है । (२) पुण्यका प्रवर्त करता है । (३) अ धृत (विद्या) को धृत करता है । (४) स्वर्गका मार्ग बतलाता है ।

“ गृहपति पुत्र ! चार बातोंसे अनुकूपक मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—

(१) मित्रके (धन संपत्ति) होनेपर सुख नहीं होता । (२) होनेपर भी सुख नहीं होता । (३) (मित्रकी) निन्दा करनेवालेको रोक्ता है । (४) प्रशंसा करनेपर प्रशंसा करता है ॥ । यह कहकर फिर यह भी कहा—

‘जो मित्र उपकारक होता है, सुरा-दु खमें जो सखा (यना) रहता है ।

जो मित्र अर्थ आह्वायी होता है, और जो मित्र अनुकूपक होता है ॥

यही चार मित्र हैं, उद्दिमान् जेमा जाकर ।

सत्कार-पूर्वक माता-पिता और पुत्रकी भांति उनकी सेवा करें ।

सदाचारी पंडित मधुमन्त्रीकी भांति भोगोको सचय करते ।

प्रज्वलित अग्निकी भांति प्रकाशमान होता है ॥

(उमका) भोग (=सपत्ति) जैसे बलभीक बढ़ता है, वैसे बढ़ते हैं ॥

इस प्रकार भोगोका सचयकर अर्थ-संपन्न कुम्भाला (जो) गृहस्थ ।

चार भागमें भोगोको विभाजित करें, वही मित्रोको पावैगा ॥

एक भागको स्वयं भोगे, दोभागोको काममें लगावे ।

चौथे भागको अपत्कारलमें काम आनेके लिये रखडोड़े ॥

“गृहपति पुत्र । यह दिशायेँ जाननी चाहिये । माता पिताको पूर्व दिशा जानना चाहिये । आचार्यको दक्षिण दिशा जाननी चाहिये । पुत्र-स्त्रीको पश्चिम दिशा ० । मित्र अमात्योको उत्तर दिशा ० । दास-कर्मकरको नीचेकी दिशा ० । श्रमग ब्राह्मणोको ऊपरकी दिशा ० ।

“गृहपति पुन । पाच तरहसे माता पिताका प्रत्युपस्थापन (=सेवा) करना चाहिये । (१) (इन्होंने मेरा) भरण पोषण किया है, अतः मुझे (इनका) भरण पोषण करना चाहिये । (२) (मेरा काम किया है, अतः) इनका काम मुझे करना चाहिये । (३) (इन्होंने कुल-वंश कायम रक्षना, अतः) मुझे कुल-वंश कायम रखना चाहिये । (४) (इन्होंने मुझे दायज (=परासन दिया, अतः) मुझे दायज प्रतिपादन करना चाहिये । मृत प्रेतोंके निमित्त श्राद्ध दान देना चाहिये । इन पाच तरहसे सजित (माता-पिता) पुत्र पर पांच प्रवर्तते अनुष्ठा करते हैं—(१) पापसे निवारण करते हैं । (२) पुण्यमें लगाते हैं । (३) शिल्प सिखाते हैं । (४) योग्य स्त्रोसे सन्ध कराते हैं । (५) समय पाकर दायज निपादन करते हैं । गृहपति पुन । इन पाच बातोंसे पुत्रद्वारा माता-पिता रूपी पूर्वदिशा प्रत्युपस्थानकी जाती है । इस प्रकार इस (पुत्र) की पूर्वदिशा प्रतिष्ठित (=ढकी, रक्षायुक्त) क्षेम-युक्त, भय रहित होती है ।

“गृहपति पुन । पाच बातोंसे शिष्यद्वारा आचार्य-रूपी दक्षिण-दिशा प्रत्युपस्थान (=उपमाना) की जाती है । (१) उत्थान (=तत्परता) से, (२) उपस्थान (=हानि) से, (३) सुश्रूपासे, (४) परिचर्या = सत्संग से, सत्कार पूर्वक शिल्प सीखनेसे ।

“गृहपति पुन । इस प्रकार पांच बातोंसे शिष्यद्वारा आचार्य सेवित हो, पांच प्रकार से शिष्यपर अनुष्ठा करते हैं—(१) सु विनयसे युक्त करते हैं । (२) सुन्दर शिक्षाको भली प्रकार सिखाते हैं । (३) ‘हमारा परिपूर्ण रहोगी’ सोच सभी शिल्प सभी धृत (=विद्या) को सिखाते हैं । (४) मित्र अमात्योको सुप्रतिपादन करते हैं । (५) दिशाकी सुक्षा करते हैं ।

“गृहपति पुन । पाच प्रकारसे स्वामि-द्वारा भार्या-रूपी पश्चिम-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये । (१) सन्मानने, (२) अपमान न करनेसे, (३) अतिचार (पर-स्त्री गमन आदि) न करनेसे, (४) अन्धर्य प्रदानने, (५) अन्धरा' प्रदानने । गृहपति पुन । इन पांच

प्रकारोंसे स्वामिद्वारा मार्थारूपी पश्चिम दिशा प्रत्युपस्थानकी जानेपर, स्वामिपर पाच प्रकारसे अनुकृपा करती है—(१) (भार्याद्वारा) कर्मान्त (= काम कर देने) मग्न प्रकार होते हैं । (२) परिजन (= नौकर-चाकर) बशमें रहते हैं । (३) (स्वयं) अतिचाखिणी नहीं होती । (४) अर्जितकी रक्षा करती है । (५) मग्न कामोंमें तिरालम् और रक्ष होता है ।

“गृहपति पुत्र ! पाच प्रकारसे मित्र-अमात्य रूपी उत्तर दिशा प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) दानमें, (२) प्रिय-वजनमें, (३) अथ यथा (= काम कर देने)से, (४) समानता (प्रदर्शन)से, (५) विश्वास प्रदानसे । गृहपति पुत्र ! इन पांच प्रकारोंसे प्रत्युपस्थानकी गई मित्र-अमात्यरूपी उत्तर दिशा, पाच प्रकारसे (उस) कुल पुत्रपर अनुकृपा करती है—(१) प्रमाद (= भूल, आलस्य) कर देनेपर रक्षा करने हैं । (२) प्रमत्तरी संपत्तिकी रक्षा करने हैं । (३) भयभीत होनेपर शरण (= रक्षक) होते हैं । (४) आपत्कालमें नहीं छोड़ने । (५) दूसरी प्रजा (= लोग) को (उसे मित्र अमात्यवा) इन पुरुषका सत्कार करती है ।

“गृहपति पुत्र ! पाच प्रकारसे आर्यक (= मालिक) द्वारा जिस तमकर रूपी त्रिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) उसके अनुसार कर्मान्त (= काम) देनेसे, (२) भोजन-येतन (भक्त-येतन) प्रदानसे, (३) रोगी मधुपासे, (४) उत्तम रम्यो (वा) पत्नी) को प्रदान करनेसे, (५) समयपर छुट्टी (= घोसग) देनेसे । गृहपति पुत्र ! इन पांचों प्रकारोंसे प्रत्युपस्थान किये जानेपर दास-कर्म कर पाच प्रकारसे मालिकपर अनुकृपा करती है—(१) (मालिकसे) पहिल, (निम्नतरसे) उठ जानेवाले होत है । (२) पीछे सोनेवाले होत है । (३) जियको (ही) लेनेवाले होते हैं । (४) कामोंसे अच्छी तरह करोगा होने हैं । (५) कीर्ति प्रशंसा पेलानेवाले होते हैं ।

“गृहपति पुत्र ! पाच प्रकारसे कुल पुत्रको श्रमण ब्राह्मण रूपी उपरकी त्रिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये । (१) मेघी भाव-युक्त कायिक कर्मसे, (२) मेघी भाव-युक्त वाचिक-कर्मसे, (३) ० मानसिक कर्मसे, (४) (वाचको भिक्षुकोपेलिये) सुने द्वारा वाला होनेसे, (५) आमिष (खान पान आदिकी वस्तु)के प्रदान करनेसे । गृहपति पुत्र ! इन पांच प्रकारोंसे प्रत्युपस्थान किये गये श्रमण ब्राह्मण इन ५ प्रकारोंसे कुल पुत्रपर अनुकृपा करते हैं—(१) पाप (= उराई)से तिरारण करा है । (२) कल्याण (= मगई) में प्रवेश कराते हैं । (३) कल्याण (प्रदान) द्वारा इनपर अनुकृपा करत है । (४) अश्रुत (घिया) को सुगत है । (५) श्रुत (घिया) को दृढ करने हैं । (६) स्वर्गाका रास्ता बतलाते हैं । ”

पेमा कहनेपर सिगाल गृहपति पुत्रने भगवान्को यह कहा—“ शाश्वर्ये [मत्त] ! अद्भुत ! भन्ते ! ! ० आगसे मुखे भगवान् अंगि उद्ग शरणागत उपासक धारण करें । ”

चूल-सुकुलदायि-सुत्त (वि. पू. ४५५) ।

पेसा भेने छा—एक समय भगवान् राजगृहमें त्रेणुवन कलन्दरु-निवाषमें विहार करते थे । उस समय सुकुल-उदायी परित्राजक महती परिपद्देका माथ परित्राजकारामम वाप करता था ।

“ भगवान् पूजा समथ ०१ । ० जहाँ सकुल उदायी परित्राजक था, वहाँ गये । तब सकुल उदायी परित्राजकने भगवान्को कहा—“ आइये भन्ते ० । ”

० । “ जाने धीजिये भन्ते ! इस कथाको ० । जत्र मे भन्ते ! इस परिपद्देका पाम नहीं होता । तत्र यह परिपद् अनेक प्रकारकी वयर्थकी कथायें (= तिरछाण कथा) कहती पडती है । और जत्र भन्ते । मे इस परिपद्देका पाम होता है, तत्र यह परिपद् मेरा हा सुख दलती वेडी होती है—‘हमे धम्मग उदायी जो कहैगा, उसे सुनेगे ’ । जत्र भन्ते ! भगवान् इस परिपद्देका पाम होते है, तत्र मे और यह परिपद् भगवान्का सुख लाकती वडी होती है—‘ भगवान् हमें जो धर्म उपदेश करगे, उसे हम सुनेगे । ’

“ उदायी ! तुझे ही जो मालूम पड़े, मुझे कह । ”

“ पित्रे दिना भन्ते । (जो वह) सर्वज्ञ = सर्वदर्शी, निखिल ज्ञान दर्शन (- नाता) होनेका नावा करते है—‘ चन्ते, पड़े, सोने, जागते भी (मुझे) निान्तर ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है ’ । वह मेरे शुरूसे लेकर प्रश्न पूछनेपर, इधर उधर जाने लग, बाहरी कथाम जाने लगे । उन्हो फोप, द्वेष और अविश्वास प्रकट किया । तत्र भन्ते । मुझे भगवान् के ही प्रति प्रीति उत्पन्न हुई—‘ अहो ! निश्चय भगवान् (है), अहो ! निश्चय सुगत (है), जो इन धर्मांमें पंडित (= कुशल) हैं । ’

“ कौन है यह उदायी । सर्वज्ञ = सर्वदर्शी ०, जो कि तेरे शुरूसे लेकर प्रश्न पूछनेपर इधर उधर जाने लगे ० अविश्वास प्रकट किये ? ”

“ भन्ते । निर्गठ नाथ-पुत्त । ”

“ उदायी ! जो अनेक प्रकारके पूर्व-जन्मोंको जानना है ०१, वह मुझे क्षारम्भ (= पूर्व-जन्त) के विषयमें प्रश्न पूछे, और उसको मे पूजान्तके विषयमें प्रश्न पूछे । वह मेरे पूजान्त विषयक प्रश्नका उत्तर देकर, मेरे चित्तको प्रमत्त करे, और मेरे उसके पूर्वान्त विषयक प्रश्नका उत्तर देकर, उमने चित्तको प्रसन्न करे । जो उदायी । “ दिव्य ० चक्षुसे ० सत्त्वोंको च्युत होते, उत्पन्न होते दलता है । वह मुझे दूसरे छोर (= अपर-जन्त) के विषयमें प्रश्न पूछे । मे उसे दूसरे छोरके विषयक प्रश्न पूछे । वह मेरे ० प्रश्नका उत्तर दे, मेरे चित्तको प्रमत्त करे, और ० में उसका चित्तको ० । या उदायी ! जाने दो पूर्व-जन्त, जाने दो उपर-जन्त । तुझे धर्म बतलाता है—‘ पेसा होनेपर, यह होता है, इसके उत्पन्न होनेसे, यह उत्पन्न होता है । इसके न होनेपर, यह नहीं होता । इसके विरोध (= विनाश) होनेपर, यह निरुद्ध होता है । ’

“ भन्ते ! भं, जो कुट्ट कि इसी शरीरमें अनुभव विद्या है, उसे भी आकार-उद्देश-मरित स्मरण नहीं कर सकता, कहाँसे भन्ते ! भं अनेक-गिहित पूर्व-निर्माण (= पूर्व जन्मों) से स्मरण करेगा—०, जमे कि भगवान् ? भन्ते ! मैं इस वक्त पास पिशाचक (= चुटैल) को भी नहीं देखता, कहाँसे फिर मे दिव्य-चक्षुसे० सर्वोको प्युत० उत्पन्न होते० देखूँगा०, जैसे कि भगवान् ? भन्ते ! भगवान् जो मुने कहा—‘ उपायी । जाओ दो पूवान्त० इसके निरोध होनेपर यह निरुद्ध होता है । ’ यह मर लिये अधिक पमन्द जान पड़ता है । क्या भन्ते ! मैं अपने मा (= आचार्यक) के अनुसार प्रभोत्तरद, भगवान् के चिन्तको प्रमत्त करूँ । ”

“ उपायी ! तैरे (अपने) मनम क्या होता है ? ”

“ हमारे मन (= आचार्यक) में भन्ते । ऐसा होता है—‘ यह परम-वर्ण (दे), यह परम वर्ण (है) । ”

“ उपायी ! जो यह तैरे आचार्यकमें क्या होता है—‘ यह परम वर्ण, यह परम वर्ण ’ यह कौन सा परम वर्ण है ? ”

“ भन्ते । जिस वर्णमें उत्तर तर = या प्रणीततर (= उत्तमततर) दूसरा वर्ण पता है, यह परम वर्ण है । ”

“ कौन है उदायी ! यह वर्ण, जिससे ० प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं है ? ”

“ भन्ते । जिस वर्ण (= रङ्ग) से ० प्रणीततर (= अधिक, उत्तम) दूसरा वर्ण नहीं है, यह परम वर्ण है । ”

“ उदायी ! यह तैरी (बात) दीर्घ (कालतक) भी चले—‘ जिस वर्णसे ० प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं ० ’ तोभी तू उस वर्णको नहीं बतला सकता । जमे कि उदायी ! (कोई) पुरुष ऐसा कहे—मैं जो इस जनपद (= देश) में जनपद-रक्षायणी (= सुन् रक्षायी रानी) है, उसको चाहता हूँ० तो क्या मानने हो उदायी ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका कथन अ-प्रामाणिक नहीं होता ? ”

“ अवश्य भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका कथन अप्रामाणिक होता है । ”

“ इसी प्रकार तू उदायी ! जिस वर्णसे ० प्रणीत तर दूसरा वर्ण नहीं, यह परम वर्ण है, कहता है, और उस वर्णको नहीं बतलाता । ”

“ तैरे भन्ते । शुभ्र, उत्तम जातिकी अष्टकोणी, पालिशकी हुई वेदुर्य-मणि (= हीरा), पादु बन्ध (= टाए पोसाए) में रखी, भाषित होती है, चमकता है, विरोचित होती है, मरोक यादभी आरमा इसी प्रकारके वर्णवाला हो, असोम (= अ विनाशी) हाता है । ”

“ तो क्या मानने हो, उदायी ! शुभ्र० वेदुर्य-मणि ० विरोचित होती है, और जो वह रातके अन्धकारमें जुगलु फीड़ा है, इन दोनों वर्णों (= रङ्गों) में कौन अधिक चमकीला (= अभिजाततर) और प्रणीततर है ? ”

“ जो यह भन्ते । रातके अन्धकारमें जुगलु फीड़ा है, यही इन दोनों वर्णों में अधिक चमकीला ० है । ”

चूल-मुकुलदायि-मुत्त (वि. पू. ४५५) ।

१ ऐमा धेने एगा—एक समय भगवान् राजगृहमें वेणुवन कठन्दक-निवासमें निहा करते थे । उस समय सकुल-उदायी परिभाजक महती परिपत्रक साथ परिभाजनकारामम वास करता था ।

“ भगवान् पूर्वाह्न समय ०१ । ० नहां सनु उदायी परिभाजक था, यहाँ गये । ज्ञा सकुल-उदायी परिभाजक भगवान्को कहा—“ आइये भन्ते ० । ”

० । “ जाने दीजिये भन्ते ! हम क्याको ० । जय मे भन्ते ! हम परिपत्रके पास नहा होता । तब यह परिपत्र अनेक प्रकारकी दपधकी कयायें (= तिरछाण कया) कहती घटती है । और जय भन्ते ! मे इस परिपत्रके पास होता हूँ, तब यह परिपत्र मेरा हा सुप देसगी वेडी होती है—‘हम अमग उदायी जो कहैगा, उसे सुनेंगे’ । जय भन्ते ! भगवान् इस परिपत्रके पास होते हैं, तब मैं और यह परिपत्र भगवान्का सुख साकती धेयी होती है—‘ भगवान् हम जो धर्म उपदेश करेंगे, उसे हम सुनेंगे । ’

“ उदायी । तुम ही जो मालूम पड़े, मुझे कह । ”

“ चित्ते दिनों भन्ते । (जो यह) सर्वज्ञ=सर्वदर्श, निखिल ज्ञान-दर्शन (=ज्ञाता) होनेका दावा करने ह—‘चन्ने, गइ, सोते, जागते भी (मुझे) निमित्त जान-दर्शन उपस्थित रहता है’ । यह मेरे शुरुसे लेकर प्रश्न पूजनेपर, इधर उधर जाने लग, बाहरी कथाम जागे लगे । उन्होंने फाँप, द्वेष और अविश्वास प्रकट किया । तब भन्ते ! मुझे भगवान् फ ही प्रति प्रीति उत्पन्न हुई—‘अहो ! निश्चय भगवान् (हैं), अहो ! निश्चय सुगत (हैं), जो इन धर्मोंम पंडित (=कुशल) हैं । ’

“ को ह यह उदायी । सर्वज्ञ=सर्वदर्शी ०, जो कि तेरे शुरुसे लेकर प्रश्न पूजनेपर इधर उधर जाने लगे ० अविश्वास प्रकट किये १ ”

“ भन्ते ! निगठ नाथ पुत्त । ”

“ उदायी । जो अनेक प्रकारके पूर्व-जन्मोंको जानना है ०१, वह मुझे आरम्भ (= पूर्व भन्त)के विषयमें प्रश्न पूछे, और उसको मे पूवान्तके विषयमें प्रश्न पूछूँ । यह मेरे पूर्वांत विषयक प्रश्नका उत्तर देकर, मेरे चित्तको प्रसन्न करे, और मैं उसके पूर्वांत विषयक प्रश्नका उत्तर देकर, अपने चित्तको प्रसन्न करूँ । जो उदायी । २ दिव्य ० चक्षुसे ० सत्त्वोंको च्युत होते, उत्पन्न होते । दम्बता है । वह मुझे दूसरे ओर (= अपर-अन्त)के विषयमें प्रश्न पूछे । मैं उसे दूसरे ओर विषयमें प्रश्न पूछूँ । वह मेरे ० प्रश्नका उत्तर दे, मेरे चित्तको प्रसन्न करे, और मैं उसके चित्तको ० । या उदायी ! जाने दो पूर्व-अन्त, जाने दो ऊपर अन्त । तुम धर्म बतलाता हूँ—‘ऐसा होनेपर, यह होता है, इसके उपपन्न होनेसे, यह उत्पन्न होता है । इसके न होनेपर, यह नहीं होता । इसके नितोद्य (= विनाश) होनेपर, यह निरुद्ध होता है । ’

“ भन्ते ! मे, जो कुछ कि इसी शरीरमें अनुभव किया है, उसे भी आकार-उद्देश-महित स्मरण नहीं कर सकता, कहासे भन्ते ! मे अनेक विहित पूर्व-निपासो (=पूर्व-जन्मों) को स्मरण करूँगा—०, जैसे कि भगवान् ? भन्ते । मैं इस वक्त पांसु पिशाचक (=सुडैल) को भी नहीं देखता, कहाँसे फिर मे दिव्य-चक्षुसे० सत्त्वानो च्युत० उत्पन्न होते० देखूँगा०, जैसे कि भगवान् ? भन्ते ! भगवान् जो मुझे कहा—‘ उपायी । जा दो पूवान्त० इसमें निरोध होनेपर यह निरुद्ध होता है । ’ यह मेरे लिये अधिक पसन्द जान पड़ता है । क्या भन्ते । मैं अपने मत (=आचार्यक) के अनुसार प्रश्नोत्तर, भगवान् के वित्तको प्रसन्न करूँ । ”

“ उदायी ! तेरे (अपने) मतम क्या होता है ? ”

“ हमारे मत (=आचार्यक) में भन्ते । ऐसा होता है—‘ यह परम-वर्ण (है), यह परम वर्ण (है) । ’

“ उपायी ! जो यह तेरे आचार्यकमें ऐसा होता है—‘ यह परम वर्ण, यह परम वर्ण ’ यह कौन सा परम वर्ण है ? ”

“ भन्ते । जिस वर्णसे उत्तर तर = या प्रणीततर (= उत्तमतर) दूसरा वर्ण नहीं है, वह परम वर्ण है । ”

“ कौन है उपायी ! वह वर्ण, जिससे ० प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं है ? ”

“ भन्ते । जिस वर्ण (=रङ्ग) से ० प्रणीततर (=अधिर, उत्तम) दूसरा वर्ण नहीं है, वह परम वर्ण है । ”

“ उदायी ! या तेरी (बात) दीर्घ (कालतर) भी चरे—‘ जिस वर्णसे ० प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं ० ’ तोभी तू उस वर्णको नहीं बतला सकना । जैसे कि उदायी । (कोरे) पुरुष ऐसा कहे—मैं तो इस जनपद (=देश) में जनपद कल्याणी (=सुन्दरियाओं वाली) है, उसको चाहता हूँ० तो क्या मानते हो उदायी । क्या ऐसा होनेपर उस पुण्य का कथन अ प्रामाणिक नहीं होता ? ”

“ अवश्य भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका कथन अप्रामाणिक होता है । ”

“ इसी प्रकार तू उपायी ! ‘ जिस वर्णसे ० प्रणीत तर दूसरा वर्ण नहीं, वह परम वर्ण है ’ कहता है, और उस वर्णको नहीं बतलाता । ”

“ जैसे भन्ते । शुभ्र, उत्तम जातिकी अटनी, पालिशकी हुई वंदुय मणि (=हीरा), पाहु बंजर (=हाल दोशाले) में रखी, भासित होती है, चमकती है, प्रियोचित होती है, मालव यादभी आत्मा इसी प्रकारके वर्णवाला हो, अरोग (=अविनाशी) होता है । ”

“ तो क्या मानने हो, उदायी । शुभ्र० वेदुर्य-मणि० प्रियोचित होती है, और जो २६ रातके अन्धकारमें जुगनू काड़ा है, इन दोनों वर्णों (=रङ्गों) में कौन अधिक चमकीला (=अभिक्रांततर) और प्रणीततर है ? ”

“ जो यह भन्ते । रातके अन्धकारमें जुगनू काड़ा है, यही इन दोनों वर्णों में अधिक चमकीला ० है । ”

‘तो क्या माने हो, उदायी । जो वह रातके अंधकारमें जुगन् कीड़ा है और जो वह रातके अंधकारमें तेलका प्रदीप (है), इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला या प्रणीततर है ?’

‘भन्ते । यह जो रातके अंधकारमें तेल-प्रदीप है० ।’

‘तो क्या माने हो उदायी । जो वह रातके अंधकारमें तेल-प्रदीप है, और जो वह रातके अंधकारमें महान् अग्नि स्कंध (=आगका टर) है । इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला है ?’

‘भन्ते जो यह० अग्नि स्कंध० ।’

‘तो० उदायी । जो वह रातके अंधकारमें महान् अग्निस्कंध है, और जो वह रातके अंधकारमें मेघ रहित स्वच्छ आकाशमें ओपधि तारा (=शुक्ल^१) है, इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला है ?’

‘भन्ते जो यह० ओपधि तारा० ।’

‘तो० उदायी । जो यह० ओपधि-तारा है, जो यह आधीरातको मेघ रहित स्वच्छ आकाशमें उस दिनके उषासको पूर्णिमाका चन्द्र है, इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला है ?’

‘भन्ते जो यह० चन्द्र० ।’

‘तो० उदायी । जो यह० चन्द्र है, और जो यह वर्षाक पिठे मास, शारदके समय मेघ रहित स्वच्छ आकाशमें मध्याह्नके समय सूर्य है, इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला है ?’

‘भन्ते । जो यह० सूर्य० ।’

‘उदायी । मे ऐसे बहुतसे दयताओंको जानता हूँ जिनमें इन चन्द्र सूर्यका प्रकाश नहीं लगता । तभी मैं नहीं कहता—‘जिस वर्णसे प्रणीत-तर० दूसरा वर्ण नहीं० । और तू तो उदायी । जो यह जुगन् कीड़ेसे भी हीन तर निरुष्ट-तर वर्ण है, वही परम वर्ण है, उमीका वर्ण (=तारीक) नखानता है ।’

‘कैसा यह अच्छा भगवान् । क्या यह अच्छा सुगत ।’

‘उदायी । क्या तू ऐसे कह रहा है—‘कैसा यह अच्छा० ।’

‘भन्ते ! हमारे आचार्यक (=मत्त)म ऐसा होता है—‘यह परम वर्ण है’, ‘यह परम वर्ण है’ । सो हम भन्ते ! भगवान्के साथ अपने आचार्यकके नियममें पूजने = अवगाहन करने = सम् अनुभाषण करनेपर रिक्त=तुच्छ=अपराधी (से) हैं ।’

‘क्या उदायी ! लोक एकान्त मुक्क (=सुप्त मथ) है ? एकान्त मुक्काले लोकक साक्षात्कारके लिये क्या (कोई) आकाशवती (=सविस्तर) प्रतिपद् (=मार्ग) है ?’

१ अ क “ओसधी तारका=सुक तारका (=शुक्लतारा) चूकि उसके उदय-आरम्भमें औपध ग्रहण करते भी हैं, पीते भी हैं, इसलिये ओसधीतारा कहा जाता है” ।

“ भन्ते । हमारे आचार्यरूप ऐसा होता है—एकान्त सुखवाला लोक है, एकान्त सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये आकार-वर्ती प्रति पद् भी है । ”

“ कौन सी है उदायी ! ० आकारवती प्रतिपद् ? ”

“ यहा भन्ते ! कोई (पुरुष) प्राणातिपातको छोड़, प्राण हिंसासे विरत होता है । अदत्तादान (= विनाशिया ऐसा = चोरी, छोड़, अदत्तादानसे विरत होता है, काम मिथ्याचार (= व्यभिचार) से विरत होता है । मृपावाद (= मूठ बोलने) से विरत होता है । किसी एक तपोगुणको लेकर रहता है । यह है भन्ते ! ० आकारवती प्रतिपद् । ”

“ तो ० उदायी ! जिस समय प्राणातिपात विरत होता है, क्या उस समय आत्मा एकान्त-सुखी (= वैयर्थ सुख अनुभव करने वाला) होता है, या सुख दुःखी ? ”

“ सुख दुःखी, भन्ते । ”

“ तो ० उदायी ! जिस समय ० अदत्तादान-विरत होता है, क्या उस समय आत्मा एकान्त सुखी होता है, या १ सुख-दुःखी ? ”

“ सुख दुःखी, भन्ते ! ”

“ तो ० उदायी ! जिस समय ० काम मिथ्याचार विरत ० । ० । मृपावाद ० । ० । ० किसी एक तपो गुणसे युक्त होता है । क्या उस समय आत्मा एकान्त सुखी होता है, या सुख-दुःखी ? ”

“ सुख-दुःखी भन्ते । ”

“ तो क्या मानते हो, उदायी । क्या व्ययकीर्ण (= मिश्रित) (पुरुष) को सुख दुःख (मिश्रित) मार्ग (= प्रतिपद्) को पाकर, एकान्त सुखवाले लोकका साक्षात्कार होता है ? ”

“ केसा यह अच्छा । भगवान् ! । कैसा यह अच्छा । सुगत । ”

“ उदायी ! क्या तू यह ऐसे कह रहा है—‘कसा यह अच्छा ० । ’ ”

“ भन्ते ! हमारे आचार्यक (= मत) में ऐसा होता है—एकान्त-सुखवाला लोक है, एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारकेलिये आकार-वर्ती प्रति पद् है । सो भन्ते ! हम भगवान् के भाषण करने पर सुख ० हैं । क्या भन्ते ! एकान्त सुखवाला लोक है ? एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारकेलिये आकारवती प्रतिपद् है ? ”

“ है उदायी । एकान्त-सुख लोक, है आकारवती प्रतिपद् । ”

“ भन्ते ! एकान्त सुखवाले लोकके साक्षात्कारकेलिये आकार-वर्ती प्रतिपद् जाननी है ? ”

“ यहा उदायी । मित्पु ० १ प्रथम ध्यानको प्राप्त हो निहरता है । ० द्वितीय-ध्यानसे ० । ० तृतीय ध्यानको ० । यह है उदायी । ० आकारवती प्रतिपद् । ”

“ भन्ते ! एकान्त सुखवाले लोकके साक्षात्कारकेलिये यही आकारवती प्रतिपद् है ? इतने हीसे भन्ते ! उसको एकान्त सुखलोकका साक्षात्कार होगया रहता है ? ”

“ नहीं, उदायी ! इतनेसे एकांत सुगन्धके लोकका साक्षात्कार (नहीं) होगया रहता ; यह तो एकांत सुगन्धके साक्षात्कारकी आकारवती प्रतिपद् है । ”

ऐसा कहनेपर सकुल उदायी परिवाजरुको परिपद् उद्गादिनी = उच्चशत्रु — महारान् (= बागहल) कानेवागी हुई — यहाँ हम अपने मतसे गए होंगे, या हम भ्रष्ट (= प्रणष्ट) होंगे । इससे अधिक उत्तम हम नहीं जानने । तब सकुल-उदायी परिवाजरु, उन परिवाजरुको चुपररा, भगवान्‌को कहा —

“ भन्ते ! किनसे इस (पुरष)को एकान्त सुगन्धके लोकका साक्षात्कार होता है ? ”

“ यहाँ उदायी ! भिक्षु सुगन्ध भी छोड़ो^१ चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, (तब) जितने देवता एकान्त पुष्पशोकमे उत्पन्न हैं, उन देवताओंक साथ ठहरता है, संशय जाता है, साक्षात्कार करता है । इतनेसे उदायी ! इसको एकांत सुगन्धाला लोक साक्षात्कर (= प्रत्यक्ष) होता है ।

“ उदायी ! इसी०के लिये मेरे पास ब्रह्मचर्य नहीं पालन करते । उदायी ! दूसरे उत्तर पर = प्रणीततर (= इससे भी उत्तम) धर्म है, जिनके साक्षात्कारके लिये भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य पालन करते हैं । ”

“ भन्ते ! वह धर्म० कानसे है ? ”

“ उदायी ! यहाँ लोकमें तथागत उत्पन्न होते हैं^२ बुद्ध भगवान्^३ । वह इन पाँच नीवरणोंको छोड़ चित्तके उपरेशा (= मर्त्य)को ० प्रथम-ध्यान०, ० द्वितीय ध्यान०, ० तृतीय ध्यान०, ० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरते हैं । यह भी उदायी । धर्म उत्तर तर = प्रणीततर है, जिनके साक्षात्कारके लिये भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य पालन करने हैं । वह^४ अनेक प्रकारके पूर्व निवासको अनुत्तरण करते हैं^५ । १०। च्युत और उत्पन्न होते प्राणियोंको जानते हैं^६ । १०। ० बुद्धनिरोध गामिनी प्रतिपद्^७ आसन्न निरोध गामिनी-प्रतिपद्को यथार्थत जानते हैं^८ । ० यहाँ कुछ नहीं है^९, जानते हैं, यह उदायी ! उत्तरि-तर० धर्म है, जिसके लिये मेरे पास ब्रह्मचर्य पालन करते हैं । ”

ऐसा कहनेपर उदायी परिवाजरुने भगवान् (से प्रसन्नया मागी, तब उसकी परिपद्) कहा —

“ उदायी ! आप श्रमण गौतमके पास मत ब्रह्मचर्यवास करें (= मत शिष्य हो), मत आप उदायी आचार्य होकर अन्तेवासी (= शिष्य)की तरह वास करें, जैसे कर्का (= मटकी) होकर पुरवा होंगे, इसी प्रकारकी यह सम्पत् (= अयम्या) आप उदायीकी होगी । आप उदायी ! श्रमण गौतम० । ”

इस प्रकार सकुल-उदायी०की परिपद्ने सकुल उदायी०को भगवान्‌के पास ब्रह्मचर्य पालन करनेमें विघ्न डाला ।

१८वीं वर्षा चालिय-पर्वतमें । दिद्विवज्ज-सुत्त । चूलि-ग्रस्तपुर-सुत्त ।
कजगला-सुत्त । (वि. पू. ४५४) ।

(भगवान्ने) १ अठारहवीं (वर्षा) चालिय पर्वतमें (चिताई) ।

+ + + +

दिद्विवज्ज सुत्त ।

ऐसा मने सुना—एक समय भगवान् चम्पाम गंगरा पुच्छरिणीय तीर विहार करते थे ।

तब वज्जिय महित गृहपति भगवान्के दर्शनको चम्पामे निकला । वज्जिय महित गृहपतिको यह हुआ—यह भगवान्के दर्शनका काल नहीं है, भगवान् प्यासम हागे । मन भावना करनेवाले भिक्षुओंके भी दर्शनका यह काल नहीं, यह मन भागना वाले भिक्षु भी (इस समय) ध्यानस्थ होंगे । क्यों न मे जहाँ अन्य तथिक (= दूसरे पथ गान्) परित्राजका आराम है, वहा चढ़े ।

तब वज्जिय महित गृहपति, जहाँ अन्य तथिक परित्राजका आराम था, वहा गया । उस समय अन्य-तथिक परित्राजक एकत्रित हो इच्छा करने, नाना प्रकारकी व्यग्र कथा कहते, वगैरे । उन अन्य तथिक परित्राजकोने दूरसे ही वज्जिय महित गृहपतिसे आते दृष्टा । देखकर पुरुने दूसरेको कहा—आप मन चुप हों, मत आप सर शब्द करें । यह धम्म गौतमका आवक वज्जिय-महित गृहपति आ रहा है । धम्म गौतमके जितने गृहस्थ सफेद वस्त्रधारी आवक चपामें चलने हैं, यह वज्जिय महित (= वज्जि दशमें समानित) गृहपति उनमेंसे एक है । यह आयुष्मान् अल्प-शब्द (= नि शब्द) आकाक्षी, अल्प शब्द प्रशंसक होते हैं । अल्प शब्द परिपट्टको देखकर, क्या जाने (इधर) आना चाह । ”

तब यह परित्राजक चुप हुये । वज्जिय-महित गृहपति जहाँ वह परित्राजक थे, वहाँ गया । पात जाकर उन अन्य तथिक परित्राजकोके साथ समोदा क, एक ओर रुक गया । एक ओर धके वज्जिय महित गृहपतिसे उन परित्राजकोने कहा—

“ सचमुच गृहपति ! (क्या) धम्म गौतम सभी तपोकी निन्दा करते हैं ? (क्या) सभी रक्ष आजोवा (= रुखा जीवन चिताने वाले) तपस्वियोंको भला बुरा (= उपरोक्त) कहते हैं ।

“ भते ! भगवान् सभी तपोकी निन्दा नहीं करते, न सभी० तपस्वियोंको भला-बुरा कहते हैं । निन्दनीयकी भगवान् निन्दा करते हैं, प्रशंसनीयकी प्रशंसा करते हैं । निन्दनीयकी निन्दा करते, प्रशंसनीयकी प्रशंसा करते हुये, वह भगवान् यहाँ विभज्यवादा (= विभाग कर प्रामाण्य अक्षर प्रशंसक और निन्दनीय अक्षर निन्दक) हैं । ”

ऐसा बहोपर एक परिव्राजकने वज्जिय महित गृह पतिको कहा—

“रहो द तू गृहपति ! जिस श्रमण गौतमकी तू प्रदीक्षा कर रहा है, वह श्रमण गौतम वेनयिक (= ३६१ करनेवाला) अ-प्रशंसित (= क्रिपीका प्रतिपादन न करनेवाला) है ।”

“भन्ने । म आयुष्मानोको धर्मक साथ कहता हूँ । भगवान्ने ‘यह कुशल (= मच्छा) है, प्रतिपादन किया है, भगवान्ने ‘यह अ-कुशल (= धुरा) है’ प्रतिपादन किया है । इस प्रकार कुशल, अ कुशल को प्रतिपादन करते हुये, भगवान् का प्रशंसित (= सिद्धान्त प्रतिपादक) हैं, अन्यथा = न प्रशंसित नहीं ।”

ऐसा कहने पर वह परिव्राजक चुप हो, मूक हो, कन्धा झुकाये, अधोमुख सोव कते प्रतिभा-दान हो गये । तब वज्जिय-महित गृहपति उन परिव्राजकोंको ० प्रतिभाहीनहो धैरे देस, आसामे उठ, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर धन्य । एक ओर २१ वज्जिय महित गृहपतिने जो कुछ कथा-संज्ञाप अन्य तीर्थिक परिव्राजकोंके साथ हुआ था, गन भगवान्से कह दिया ।

“साधु, साधु, गृहपति । उन मोघ पुरुषोंको समय समय पर इस प्रकारसे परालत करना चाहिये । गृहपति ! मैं नहीं कहता—‘सब तप तपना चाहिये, ’ न मैं कहता हूँ—‘सब तप नहीं तपना चाहिये ’ । गृहपति । मैं नहीं कहता हूँ—‘सब ...’ (व्रत) धारण काना चाहिये ’ । न मैं कहता हूँ—‘सब ...’ (व्रत) न धारण काना चाहिये ’ । गृहपति ! मैं नहीं कहता—‘सब प्रधानों (निर्जगत्संगी प्रयत्नों)में लगना चाहिये, ’ न मैं कहता हूँ—‘सब प्रधानों में न लगना चाहिये ।’ गृहपति ! मैं नहीं कहता—‘सभी वर्जन वर्जित करना चाहिये, ’ ० । गृहपति ! मैं नहीं कहता—‘सभी विमुक्तियाँ छोड़नी चाहियें, ’ ० ।

“गृहपति ! जिस तपको तपते इसके अकुशल धर्म (= पाप) बढ़ते हैं, कुशल-धर्म (= पुण्य) क्षीण होते हैं, ‘ऐसा तप न काना चाहिये’ कहता हूँ । जिस तपको तपते इसके अकुशल धर्म क्षीण होते हैं, कुशल-धर्म बढ़ते हैं, ‘ऐसा तप तपना चाहिये ’—कहता हूँ । जिस व्रत-प्रव्रणसे ० । जिस प्रधानमें लगनेसे ० । जिस प्रति निःसर्ग (= वर्जन)के वर्जित करने से ० । जिस विमुक्तिके छोड़नेसे ० ।”

तब वज्जिय-महित गृहपति भगवान्ने धार्मिक कथा द्वारा ० सुमुत्तेजित, संप्रशंसित हो, आत्मनसे उठ, भगवा को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, चला गया ।

तब वज्जिय महित गृह पतिके चले जानके थोड़ीही देर बाद, भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया ।

“भिक्षुओ ! जो भिक्षु इस धर्म विनयमें बरह मग्न जाला है, वह भी अन्य-तीर्थिक परिव्राजकोंको धर्मके साथ, इसी प्रकार सुनिष्ठके साथ, सुनिष्ठहीत (= सुपराजित) कते, जैसेकि वज्जिय-महित गृहपतिने निष्ठहीत किया ।

चूल अस्सपुर सुत्त ।

“ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् अंग(देश)में अगोंके कत्वे अश्वपुरमें विहार करते थे । वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ ।”

“मदन्त !” कह उन भिक्षुओं ने भगवान्‌को उत्तर दिया । भगवान् ने कहा—

“भिक्षुओ ! ‘अमण’ ‘अमण’ लोग नाम धरते हैं । तुमलोग भी, ‘तुम कौन’हो पूछनेपर (हम) अमण हैं’ उत्तर देते हो । ऐसी संज्ञा ऐसी प्रतिज्ञा— तुम लोगोंको ऐसा सीखा चाहिये—जो वह अमणको सच करनेवाला मार्ग है, हम उस मार्गपर अरुढ़ होंगे, हम प्रकार यह हमारी संज्ञा सच होगी, हमारी प्रतिज्ञा (=दावा) यथार्थ होगी । (और) जिनने (न्वे) घोषा (=वच), पिंड शत (=भिक्षा), शयनासन (=निवास), ग्लान प्रत्यय भेषज्य (=रोगीका औषध-पच्य) सामग्रीका हम उपभोग करते हैं । (तब) उनके (किये) हमारे प्रति वह (दान-) कार्यभी महाफलवाले महामाहात्म्यवाले होंगे, और हमारी भी यह प्रयत्नवा निर्मल सफल = स-उदय होगी ।

“ भिक्षुओ ! भिक्षु अमणको सच करनेवाले मार्ग (=अमण सामग्री प्रतिपदा) पर कैसे आरुढ़ नहीं होता ? भिक्षुओ ! जिस क्रिमी अमिध्यालु (=होमी) भिक्षुको अमिध्या नष्ट नहीं होती, द्रोह सहित चित्तशले (=व्यापन्नचित्त) का व्यापाद (=द्रोह) नष्ट नहीं हुआ रहता, क्रोधीका मोक्ष०, पापघ्नी (=उपनाही) का पापघ्न०, मर्षाकी कलक (=भारमर्ष = अमरत्व) ०, पलासी (=प्रज्ञाशी = मित्र) का पलास०, ईश्यालुकी ईर्ष्या०, मत्सरीका मत्सर (=वृषगता) ०, शत्रुकी शत्रुता०, मायावी (=वच) की माया०, पापच्छु (=बद-नीयत) की पापेच्छा०, मिथ्या दृष्टि (=च) मिथ्या दृष्टि (=च) मिथ्या दृष्टि (=भारी धारणा) नष्ट नहीं हुई रहती । वह इन अमण मलो = अमण-दोषो = अमण-वस्त्रा, अमणको छे जानेवाले, दुर्गतिको अनुमन करानेवाले कारणोंके, अ विनाशने ‘अमण सामग्री’ प्रतिपदापर आरुढ़ नहीं हुआ, (ऐसा) मैं कहता हूँ । जेने भिक्षुओ ! मद्र नामक तेज, दुधारा आयुध (=इधियार) होता है, वह संघाटीसे दँका लिपटा हो, उभर ही समान भिक्षुओ ! मैं इस भिक्षुकी प्रयत्नवा कहता हूँ ।

“ भिक्षुओ ! मे संघाटी (=भिक्षु-उख) वाँके संघाटी-धारण मात्रसे, अमणता (=आमण्य) नहीं कहता । अवेउरु (=वच-रहित) के नंग रहने मात्रसे आमण्य (=माधुपन) नहीं कहता । भिक्षुओ ! रजोत्रलिक (=कीचड़ रामा माधु) की रजोत्रलिकता मात्रसे आमण्य नहीं कहता । उद्वारोदक (=जल वासी) के जलगत मात्रसे ० । ०वृष-मूलिक (=सदा वृक्षके नीचे रहने वाले) के वृक्षक नीचे वास मात्रसे ० । ०अध्ययनादिक (=धीरे से रहने वाले) ० । ०उष्मदृक (=सदा खड़ा रहने वाले) ० । ०पर्याय मन्दिक (धीरे धीरे) निराहार रह, भोजन करने वाले) ० । ०अथ अध्यायक (=धृष्ट पानी) के मद्र आयुध मात्रसे मे आमण्य नहीं कहता । ०जटिल के जल धारण मात्रसे ० ।

“ भिक्षुओ ! यदि संघाटिक के संघाटी गण मात्रसे, अमिध्यालु का होम हू जाता, व्यापाद हट जाता, ०मोक्ष०, ०उपनाह०, ०मर्ष०, ०पलास०, ०ईश्या०, ०मात्मर्ष०, ०शत्रुता०, ०माया०, ०पापच्छा०, मिथ्या दृष्टिकी मिथ्या दृष्टि हट जाती, तो उसको मित्र समारय जाति-युग्म वेदा होते ही, संघाटिक बना देते, संघाटिकताका ही उपदेन करते— ‘आ मद्रमुख ! हू संघाटिक होजा । संघाटिक होनेपर संघाटी धारण मात्रसे, इस अमिध्यालुका

लोभ नष्ट हो जायगा । ० । मिथ्या-दृष्टिकी मिथ्या दृष्टि नष्ट हो जायगी । १ ॥ क्योंकि मिथुनो । मैं किसी किसी संघाटिको भी अभि-यालु, व्यापन्न-चित्त, क्रोधी, उपनाही, मर्फी, पणसा, ईर्ष्यालु, मत्सरी, शत्रु, मायावी, पापञ्चु, मिथ्या-दृष्टि देखता हूँ, इसलिये संघाटिके सधारी धारण मात्रमे धामण्य नहीं कहता ।

“ मिथुनो ! यदि अचेलरकी अचलरता मात्र से ० । ० रजोजलिलरकी रजोजलिलरता मात्रसे ० । ० उदकाउतेहकरे उदकावरोहण मात्रमे ० । वृक्ष मूलिककी वृक्ष-मूलिकता मात्रसे ० । ० अजगजगजिक ॥ ० उज्जगजिक ॥ ० पयाय भक्ति ० । ० मंत्र अभ्यास ० । ० जलिलरता-धारण मात्रसे ० अभिष्या ०—० मिथ्या-दृष्टि नष्ट होती ० ।

“ मिथुनो । भिक्षु श्रमण-नामीकी प्रतिपद् (= सच्चा धमण बनानेवाले मार्ग) पर कहे मार्गाण्ड होता है १ मिथुनो । जिस किसी अभि-यालु भिक्षुकी अभिध्या (= लोभ) नष्ट होती है, ०—० मिथ्यादृष्टि नष्ट होती है, (यह) इन धमण-मलों के विनाशसे धमण सामाची प्रतिपदपर मार्गाण्ड होनेहीसे कहता हूँ । (फिर) यह इन सभी पापक अलक्षण धर्मासे, अपाको विशुद्ध देखता है, अपनेको विमुक्त देखता है । (फिर) इन सभी पापक ० यमों में अपनेको विशुद्ध ० विमुक्त देखनेवाले उस (पुरुष) को, प्रमोद उत्पन्न होता है । प्रमुञ्चितको प्राप्ति उत्पन्न होती है । प्रीतिमान्की काया स्थिर होती है । स्थिर शरीर सुख अनुभव करता है । सुखितका चित्त समाहित (= एकाग्र) होता है । यह (१) मंत्रीयुक्त चित्तसे गुरुद्वाराको ह्यागितकर विहरता है, और दूसरी दिशा ०, और तीसरी ०, और चौथी ० इसी प्रकार ऊपर, नीचे, तिष्ठ, मन्त्री इच्छासे, समे अर्थ, सभी लोकको विपुल, महान्, अ प्रमाण, अ-र, हेष रहित मंत्री पूर्ण चित्तसे ह्यावितकर विहरता है । (२) कल्याण युक्त चित्तसे ० । (३) मुञ्जिता युक्त चित्तमे ० । (३) उपक्षा-युक्त चित्तमे ० ।

“ जमे मिथुनो । रक्ख, मधुर, शीतल जलजाली रमणीय सुन्दर घाटोवाली पुष्प रणी हो । यदि पूर्वदिशासे भी धाममें तथा (= धर्म अभितस) = धर्म परेत, धका, वृषिण = विपामित पुष्प थाये, वह उस पुष्करिणीको पाकर उदक पिपामाको वृर करे, धामने तापको वृर करे । पश्चिम दिशासे भी ० । उत्तर दिशासे भी ० । दक्षिण-दिशासे भी ० । जहाँ कहींत भी ० । ऐसे ही मिथुनो ! यदि क्षत्रिय कुलसे घरसे वेधर प्रव्रजित होवे, और वह तथागतक उपदेश किंये धर्मको प्राप्तकर, इस प्रकार मैत्री, कल्याण, मुदिता, उपेक्षाकी भावना करे, (तो वह) आध्यात्मिक शांतिको प्राप्त करता है । आध्यात्मिक शांति (= उपशम) से ही ‘श्रमण सामीची-पतिपदपर मार्गाण्ड है’ कहता हूँ । ० यदि ब्राह्मण-कुलसे ० । ० यदि वंदयकुलसे ० । ० जिस किसी कुलसे भी घरसे वेधर प्रव्रजित ० ।

“ क्षत्रिय कुलसे भी घरसे वेधर प्रव्रजित हो । और वह आस्रवो (= चित्त दोष) के क्षयसे, ‘आस्रव रहित चित्त त्रिमुक्ति प्रया-विमुक्तिको, इसी जन्ममें रचय जानकर = साक्षात्कर = प्राप्तकर विहरता है । आस्रवोंके क्षयमे श्रमण होता है । ब्राह्मण कुलसे भी ० । वंदय कुलसे भी ० । शूद्र कुलसे भी ० । जिस किसी कुलसे भी ० ॥”

भगवान् ने यह कहा, उा मिथुनो ने सन्तुष्ट हो भगवान् ने भाषणको अनुमोदित किया ।

कज्जगला-सुत्त ।

‘एमा मेने सुना—एक समय भगवान् ‘कज्जगला’म वणुपनमें विहार करते थे ।

तत्र वटुत्तसे कज्जगलाक उपासक जहाँ कज्जगला भिक्षुणी थी, वहाँ गये । जाकर कज्जगला भिक्षुणीको अभिषादनकर, एक ओर बैठा । एक ओर बैठे वे उपासक कज्जगला भिक्षुणी को बोले—

“अय्या ! भगवान् ने यह कहा है—‘महाप्रश्नामें एक प्रश्न, एक उद्देश=एक उत्तर, दो०, तीन०, चार०, पांच०, छ०, सात०, आठ०, नव०, दस प्रश्न, दस उद्देश दस उत्तर (=व्याकरण)’ है । अय्या ! भगवान् ने इस सक्षिप्त कथनका विस्तारसे केने अर्थ समझना चाहिये ?”

“आहुसो ! मैंने इसे भगवान् ने सुनने नहीं सुना, ० नहीं ग्रहण किया, और मनकी भावना करने वाले भिक्षुओंके मुखसे भी नहीं सुना, ० नहीं ग्रहण किया, यद्यपि यहाँ जो मुझे समझ पड़ता है, उसको सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कष्टता हूँ ।”

“अच्छा अय्या ।” कह उपसकोने उत्तर दिया । कज्जगला भिक्षुणीने कहा—

“एक प्रश्न, एक उद्देश, एक व्याकरण (=उत्तर)। ऐसा जो भगवान् ने कहा । सो किम कारण ऐसा कहा ? आहुसो ! एक वस्तुमें भिन्न अन्ती प्रसार निर्देश (=उत्पत्तीनता) को प्राप्त हो, अन्तीप्रकार विरक्त हो, अन्तीप्रकार विरक्त हो, अन्तीप्रकार अन्त दर्शा हो, समानताके अर्थको प्राप्त हो, इसी जन्ममें दुःखका अन्त करनेवाला होता है । किन्तु एक धर्म ? ‘समो सत्त्व (=प्राणा) आहार नियतिक (=आहारपर निर्भर) है ।’ आहुसो ! इस एक वस्तुमें भिन्न । जो भगवान् ने ‘एक प्रश्न, एक उद्देश, एक व्याकरण’ कहा, सो इसी कारणसे कहा । सो किम कारणसे ऐसा कहा ? आहुसो ! दो धर्मा में भिन्न अन्ती प्रसार निर्देश प्राप्त । किन्तु दो धर्मा में ? नाम और रूपम् । ० । ‘तीन प्रश्न तीन उद्देश तीन व्याकरण’ जो भगवान् ने ऐसा कहा, (सो) किन्तु कारणसे ऐसा कहा ? आहुसो ! तीन धर्मा में भिन्न अन्ती प्रसार निर्देशको प्राप्त । किन्तु तीन धर्मा ? तीनों वेदाओं (=छप्, दु स, न सुप् १ दु ख) म । ० ।

“चार प्रश्न, चार उद्देश, चार व्याकरण’ ऐसा जो भगवान् ने कहा, सो किन्तु कारणसे ऐसा कहा ? आहुसो ! चार धर्मा में भिन्न अन्ती प्रसार (=सम्बन्ध) चित्तको भावना कर (=सुभावित चित्त) अच्छी तरह अन्त-दर्शा, समानताके अर्थको प्राप्त हो, इसी जन्ममें दुःख का अन्त करने वाला होता है । किन्तु चार धर्मा में ? चार स्मृति प्रवृत्त । पाच धर्मा में सुभावित-चित्त । किन्तु पाच धर्मा में ? पाच इन्द्रियोसे । छ धर्मा में सुभावित चित्त । किन्तु छ धर्मा । नि सरणीय धातुओंम । ० सात धर्मा में सुभावित चित्त । ० सात बोध्यधर्म । ० आठ धर्मा में सम्बन्ध निर्देशको प्राप्त । ० नव सत्त्वावास (=प्राणियोंके देव मानुष आदि नव आवास) । ० दस धर्मा में सम्बन्ध सुभावित चित्त । ० द्वा दश कर्म पयोर्म । ० । ‘दस प्रश्न, दस उद्देश, दस व्याकरण’ ऐसा जो भगवान् ने कहा सो इसी

१ अ नि ११३८ । २ कंजोल (जि० स्यात् पणो) । ३ श्रु ११८०० ।

४ श्रु २६० । ५ देवो संगीत परिचाय सुत्त ।

कारणों कहा । इस प्रकार आवुसो ! भगवान् ने 'महाप्रश्नोत्तर, एक प्रश्न, एक उत्तर, दश व्याकरण०—० दश प्रश्न, दश उत्तर, दश व्याकरण' कहा । आवुसो ! भगवान् ने इस मन्त्रि कयनरा में ऐसा अर्थ जाननी है । आवुसो ! यदि चाहो, तो तुम भगवान् के पास जाकर इन बातों को पूछो, जेसा भगवान् व्याकरण, (= उत्तर) करे, तेसा धारण करो ।”

“अच्छा अच्छा !” कह, कजगला के उपासक कजगला भिक्षुगी के भाषण को मन्त्रि-मन्दितका, कजगला भिक्षुणी को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे कजगला-निवासी बना सकाने कजगला भिक्षुणी के साथ जितना कगा-मलाप हुआ था, उस सबको भगवान् को कह दिया ।

“साधु साधु, गृहपतियो ! कजगला भिक्षुणी पंडिता है । कजगला भिक्षुगी महा-पंडिता है । कजगला भिक्षुणी महाप्रज्ञा है । यदि गृहपतियो ! तुमने मेरे पास आकर इस बात का पूछा होता ; तो मैं भी इसे ऐसे ही व्याकरण करता, जैसे कजगला भिक्षुणी ने व्याकरण किया । यही उसका अर्थ (है,) इसीको धारण करना ।

इन्द्रिय-भावना-सुत्त । सम्बहुल-सुत्त । उदायि-सुत्त । मेरिय-सुत्त ।

(वि. पू. ४५४-५३) ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कज्जगल्लामें छेणुवन (= सुणेलुवन) में विहार करते थे ।

तब पारामितियका अन्तेयासी (= शिष्य) उत्तर-माणवक जहा भगवान् थे, वहा गया । जाकर भगवान्के साथ सेमोदन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर घट पारा शिष्यके अन्तेयासी उत्तर माणवकको भगवान्ने कहा —

“उत्तर ! क्या पारामितिय ब्राह्मण शिष्योंको इन्द्रिय-भाषना (मन्थरधी) उपदेश करता है ?”

“हे गौतम ! पारामितिय ब्राह्मण शिष्योंको इन्द्रिय भाषनाका उपदेश करता है ।”

“तो उत्तर ! कैसे ० इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करता है ?”

“हे गौतम ! आलसे रूप नहीं देखता, कानसे शब्द नहीं सुनता । इस प्रकार हे गौतम ! पारामितिय ब्राह्मण शिष्योंको इन्द्रिय-भाषनाका उपदेश करता है ।”

“जैसा पारामितिय ब्राह्मणका यथन है, वैसा हानेपर, उत्तर ! अन्धा इन्द्रिय-भाषना करनेवाला (= भावितेन्द्रिय) होगा, उधिर भावितेन्द्रिय होगा । क्योंकि उत्तर ! अन्धा आलसे रूप नहीं देखता, बहिरा कानसे शब्द नहीं सुनता ।”

ऐसा कहनेपर पारामितियका अन्तेयासी उत्तर माणवक चुप, झुक, गर्दन झुकाये, अधो मुख, सोचता, प्रतिमाहीन, हो बैठा । तब भगवान्ने ० उत्तर माणवकको चुप० जानकर आयु-प्मान् धानन्दको संबोधित किया—

“अनन्द ! पारामितिय ब्राह्मण धारणी (= शिष्यो) को दूरी तरह (= अन्यथा) इन्द्रिय भाषना उपदेश करता है, और आर्याक विनयमें दूरी तरह अनुत्तर (= सर्वात्पृष्ट) भाषना होती है ।”

“भगवान् इसका काल दे, सुगत ! इसीका काल दे, कि भगवान् कार्य विनय (= बौद्ध धर्म) क अनुत्तर इन्द्रिय भाषनाका उपदेश कर । भगवान्ने सुकर भिक्षु धारण करेंगे ।”

“तो अनन्द ! सुनो, अच्छी तरह मनम कर्तो, कहना हूँ ।” “अच्छा भन्त ।”

भगवान्ने यह कहा—

“जैसे अनन्द ! आय विनयम अनुत्तर इन्द्रिय भाषना होती है ? यहा अनन्द । एतु (= आप्त)से रूपको देवदर भिक्षुस भगव (= पमन्द मात्स) होता है, ज-मनाप होता है, मनाप अननाप होता है । यह ऐसा जानता है—‘यह सुने मनाप उत्पन्न हुआ, अ मनाप०,

१ स नि । ३ : ५ १० । २ ‘छेणुवन’, ‘सुणेलुवन’ भी पाठ है ।

कारणसे कहा । हम प्रज्ञा आबुमो ! भगवान् ने 'महाप्रदनोंमें, एक प्रदन, एक उद्देश, एक व्याकरण—०००० प्रदन, दश उद्देश, दश व्याकरण' कहा । आबुमो ! भगवान् के इस संक्षिप्त कथाका मैं ऐसा अर्थ जानती हूँ । आबुसो ! यदि चाहो, तो तुम भगवान् के पाम जाकर इस बात को पूछो, जेवा भगवान् व्याकरण, (=उत्तर) करें, जेवा धारण करो ।”

“अच्छा अध्या !” कह, कजंगलावे उपामर कजंगला भिक्षुगीके भाषणको अभि नन्दितवा, कजंगला भिक्षुणीको अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर प्रस्थित गये । एक ओर घेठ कजंगला-निवासी उपासकाने कजंगला भिक्षुणीक साथ जितना कथा-संलाप हुआ था, उस सबको भगवान् को कह दिया ।

“साधु साधु, गृहपतियो ! कजंगला भिक्षुणी पंडिता हैं । कजंगला भिक्षुणी महा पंडिता हैं । कजंगला भिक्षुणी महाप्रज्ञा हैं । यदि गृहपतियो ! तुमने मेरे पास आकर इस बातको पूछा होता ; तो मैं भी इसे जेसे ही व्याकरण करता, जेसे कजंगला भिक्षुणीने व्याकरण किया । यही उसका अर्थ (है,) इसको धारण करना ।



यदि चाहता है,—प्रतिष्ठा, अ प्रतिष्ठा दोनों वर्जित कर, स्मृति-सम्प्रजन्य युक्त उपक्षर दो विहार कर, यह स्मृति सम्प्रजन्य-युक्त उपक्षर दो विहरता है । इस प्रकार आनन्द । भावितेन्द्रिय आर्य (=सुख) हाता है ।

“हम प्रकार आनन्द । मैंने आर्य विनयकी अनुत्तर इन्द्रिय भावना उपदेश करदी, दोष्य प्रतिपद भी उपदेश कर दी, भावितेन्द्रिय आर्य भी उपदेश कर दिया । हितरी, अनुकम्पक शास्ता (=गुरु) को अनुकम्पा (=दया) करके, आवश्यक व लिये उसे करना चाहिये, क्या मैंने तुम लोगोके लिये कर दिया । आनन्द । यह वृक्षमूल (=वृक्षक नीचेकी भूमि) है, यह गून्ध घर है, ध्यान करो आनन्द । मत प्रमाद कर, पात्र अकमोस मत करा । यह तुम्हारे लिये हमारा अनुशासना है ।”

भगवान् ने यह कहा, आयुमान् आनन्द । सगुह हो, भगवान् भाषणको अनुमोदित किया ।

संग्रह सुत्त ।

“ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् मुझ (देश) में शिलावती में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् ने धोही रू पर बहुतसे प्रमाद रहित, उद्योगा, संयमी भिक्षु विहार करते थे । तब पापी मार, बड़ी जग बझाय, मृग धर्म पहिने, टोत्रे (=गोपानमी) का तरह कमरवाला बना था, डुकर डुकर तानने, गृहरत्न दंड लिये, प्रक्षणका रूप बना, जहा यह भिक्षु थे, वहा गया । जाकर उन भिक्षुओंका बोला—

“आप सब प्रव्रजित ! अति तरण, बहुत काटे केस-वाले, भद्र (=सुन्दर) प्रथम धौवनसे युक्त, कामोम (अभी) न रोते हुए हैं । आप सब मानुष कामोको भोग कर । वर्तमानको छोड़कर मत कालान्तरकी (चीज) के पीछे दौड़ ।”

“प्राक्षण ! हम वर्तमान छोड़कर कालान्तर का (चीज) क पाछे नहीं दौड़ रहे हैं । कालान्तरकी (चीज) छोड़कर प्राक्षण ! हम वर्तमानक पीछे दौड़ रहे हैं । प्राक्षण ! भगवान् ने कामोको बहुत दुःख-वाले, बहुत प्रयास-वाले, दुष्परिणाम वाले, कालिक (कालान्तरका) कहा है । यह धर्म नाट्यिक (=वर्तमानक फर्माद), न कालिक, यहाँ देसा जानेवाला, पाप पहुचाने वाला, पवित्रताद्वारा प्रविशतोरम अनुभव करो योग्य है”

ऐसा कहनेपर पापी मार सिर हिला, जीभ निकाल, उठा टेकते चला गया ।

उदायि सुत्त ।

“ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् मुझ (देश) में मुखोव कल्पे सेतसाण्णिममें विहार करते थे ।

तब आयुमान् उदायी जहा भगवान् थे, वहा गये । जाकर भगवान् को अभिवादा कर, एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ आयुमान् उदायीने भगवान् को कहा—

१ सं नि ४ उ १ । २ हजारीवाग और म्हाल-पगना विलोका वित्ताही अंश ।

३ सं नि ४५:३ १० ।

मनाप अ-मनाप ॥ । किन्तु यह संस्कृत (=कृत, कृत्रिम) =मौदारिक=प्रतीत्य-समुपग्र (=हेतु-जनित) है । यही शान्त, यही प्रणीत (=उत्तम) है, जो कि यह (रूप आग्नि) उपेक्षा । (तत्र) उसका वह उत्पन्न मनाप, उत्पन्न अ-मनाप, ० मनाप ॥ मनाप विरद (=नष्ट) होजाता है । उपेक्षा ठहरती है । जैसे आनन्द । आपसगला पुरष परक चदाकर गिरादे, परक गिराकर चदादे, इसी तरह आनन्द । जिस किसीको इतना शीघ्र, इतना जल्दी, इतनी आसानीसे, उत्पन्न मनाप, उत्पन्न अ-मनाप, उत्पन्न मनाप अमनाप दूर होजात है, उपेक्षा ठहरती है । यह आनन्द । आर्य विनयमें चपुसे जाने जानवाले (=चपुविनय) रूपोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय भावना कही जाती है । और फिर आनन्द ! श्रोत्रसे शब्दको सुनकर ॥ । ० उपेक्षा ठहरती है । जैसेकि आनन्द । बलगान् पुरष अप्रयास चुटकी बनाए, ऐसेही आनन्द । जिस किसीको इतना शीघ्र ० । यह आनन्द ! आर्य-विनयमें श्रोत्र विज्ञेय शब्दोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय भावना कही जाती है । और फिर आनन्द ! घ्राणसे गंधको सूँघकर ० । ० उपेक्षा ठहरती है । जैसे कि आनन्द । पत्र पत्रमें थोड़ीसी हवासे पानीके बुल-बुल उठने है, ठहरते नहीं, ऐसेही आनन्द । ० । ० यह ० घ्राण विज्ञेय गंधोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय भावना है । और फिर आनन्द ! जिह्वासे रस चपकर ० । ० उपेक्षा ठहरती है । जैसे कि आनन्द । बलगान् पुरष जिह्वाके नोकपर लेज पिंड (=चूक रुक) जमाका, अप्रयास हा फरदे, ऐसे ही आनन्द । ० । यह ० जिह्वा विज्ञेय रसके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है । और फिर आनन्द । काया (=तन्त्र)से स्पर्शके स्पर्शसे ॥ । ० उपेक्षा ठहरती है । जैसे कि आनन्द । बलगान् पुरष समेटी बाहको फलाने, पेटाई बांहको समेटे, ऐसेही आनन्द । ० । यह ० काय विज्ञेय स्पर्शके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है । और फिर आनन्द । माने धर्मको जानकर ० । ० उपेक्षा ठहरती है । जैसे कि आनन्द । बलगान् पुरष दिनमें तप लोहेके कड़ाहपर दो तीन पानीकी बूँद डाले, आनन्द ! पानीकी बूँद पड़कर तुरन्त ही क्षयको प्राप्तहो जाये । ऐसेही आनन्द । ० । यह मन विज्ञेय धर्मोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है ।

“यहाँ आनन्द ! चपुसे रूपको देखकर, मिश्रको मनाप (=प्रिय) उत्पन्न होता है, अ-मनाप उत्पन्न होता है, मनाप अमनाप उत्पन्न होता है । वह उस उत्पन्न मनाप, ० अमनाप, मनाप अमनाप से दुःखित होता है, घमराता है, घिना करता है । श्रोत्रसे शब्द सुनकर ० । घ्राणसे गंध सूँघकर ० । जिह्वासे रस चपकर ० । कायासे स्पर्शके स्पर्श ० । मनसे धर्म जानकर, मिश्रको मनाप ०, अमनाप ०, मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है । वह उस उत्पन्न मनाप, अ-मनाप, मनाप अमनापसे दुःखित होता है, घमराता है, घृणा करता है । इस प्रकार आनन्द ! शीघ्र (=जिमको अभी सीखना है, सीख-प्रतिपद (=मटिपदा) होती है ।

“रूपे आनन्द ! सावितेंद्रिय हो, आर्य (अर्हत्, अशोक्य=असेय) होता है ? यहाँ आनन्द ! चपुसे रूपको देखकर ० श्रोत्रसे ०, घ्राणसे ०, जिह्वासे ०, कायासे ०, मनसे धर्म जानकर, मनाप ०, ० अ-मनाप, ० मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है । वह यदि चाहता है, कि प्रतिकूल अ प्रतिकूल जान विहार करूँ, अ-प्रतिकूल जानतेही वहाँ विहार करता है । यदि चाहता है, कि अ प्रतिकूलम प्रतिकूल जान विहार करूँ, प्रतिकूल जानतेही वहाँ विहार करता है ।

यदि चाहता है,—प्रतिमूल, अ प्रतिमूल दोनो वर्जित कर, स्मृति सम्प्रजन्य युक्त उपेक्षक हो विहार करें, वह स्मृति सम्प्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो गिरता है । इस प्रकार आनन्द ! भावितेन्द्रिय आर्य (=सुक्त) होता है ।

“इस प्रकार आनन्द ! मेने आर्य विनयकी अनुत्तर इन्द्रिय भाग्य उपदेश करनी, श्रेष्ठ्य प्रतिपद भी उपदेश कर दी, भावितेन्द्रिय आर्य भी उपदेश कर दिया । हितेपी, अनुकम्पक दास्ता (=गुरु) को अनुकम्पा (=दया) करके, श्रावणों के लिये जैसे करना चाहिये, वंसा मेने तुम लोगके लिये कर दिया । आनन्द ! यह वृक्षमूल (=वृक्षके नीचेकी भूमि) है, यह शून्य घर है, ध्यान करो आनन्द ! मत प्रमाद करो, पीठ अफयोस मत करना । यह तुम्हारे लिये हमारा अनुशासन है ।”

भगवान् ने यह कहा, आयुष्मान् आनन्दने सन्तुष्ट हो, भगवान् के भाषणका अनुमोदित किया ।

संग्रहल सुत्त ।

‘ऐसा मेने सुना—एक समय भगवान् सुख (दश) में शिलावर्ती में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् से थोड़ी दूर पर बहुतसे प्रमाद रहित, उद्योगी, संयमा भिनु विहार करते थे । तब पापी मार, बड़ी जग बरागे, मृग चर्म पहिने, दोड़े (=गोपासी) का तरह कमरवाग मुड़ा बा, डुकुर डुकुर तारने, गूलरका दड लिये, ब्रह्मणसा रूप बना, जता गद मिश्रु थ, वहा गया । जाकर उन भिनुआसो बोला—

“आप सब प्रयत्नित ! अति तरण, बहुत काले केश बाळे, भद्र (=सुन्दर) प्रथम यौवनसे युक्त, कामोमें (अमी) न लेते हुये है । आप सब मानुष कामाको भोग करें । वतमानको छोड़कर मत कालान्तरकी (चीज) के पीछे लैई ।”

“ब्राह्मण ! हम वतमान छोड़कर कालान्तर की (चीज) के पीछे नहीं दाड़ रहे हैं । कालान्तरकी (चीज) छोड़कर ब्राह्मण ! हम वतमानके पीछे दौड़ रहे हैं । ब्राह्मण ! भगवान् ने कामोको गृह्त हुआ-वाले, बहुत प्रयास बाळे, दुष्परिणाम वाले, कारिक (कालांतरका) कहा है । यह धर्म साहचरि (=वर्तमानमें पराक्रम), न कारिक, यहीं दया जानेवाला, पास पहुंचाने वाला, पंडितोंद्वारा प्रतिशस्तरमें अनुभव करने योग्य है”

ऐसा कहनेपर पापी मार सिर हिला, जीभ निकाल, डडा टेकते चला गया ।

उदायि सुत्त ।

ऐसा मेने सुना—एक समय भगवान् सुख (दश) में सुहोने कम्बे सेतकाणिकमें विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् उदायी जहा भगवान् थे, वहा गये । जाकर भगवान् को अभिरादन-कन, एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ आयुष्मान् उदायीने भगवान् को कथा—

१ सं नि ४ ३:१ । २ हजारीबाग और सयाल पर्वत जिलाका बितनाही अंग ।
३ सं नि ४५ ३ १० ।

“ भन्ते । आश्चर्य ॥ भन्ते । अद्भुत ॥ भगवान्ने विषयमें प्रेम, गौरव, लज्जा, भय मेरे लिये स्थिता है । भन्ते । पहिले गृहस्थ होते मुझे धर्मसे बहुत लाभ न मिला था । समझते०। सो मैं भगवान्में प्रेम, गौरव, लज्जा, भयके कारण, घरमें बैठ कर हो प्रव्रजित हुआ । तब मुझे भगवान्ने धर्म उपदेश किया—एसे रूप हूँ, ऐसे रूपोंकी उत्पत्ति (= समुत्पद्य) है, ऐसे रूपोंका विनाश है । एसा वेदना है, ऐसे वेदनाकी उत्पत्ति है, ऐसे वेदनाका अस्तगमन (= विनाश) है । एम सना हे० । एते मस्कार० । एते विज्ञान० । सो मने भन्ते । शून्य-आगामें रहते, हृत्त पाच उपादान-स्फोको उरटा सीधाकर दोहराते—‘ यह दुःख है ’ इत्थे ययार्थसे जाना, ‘ यह दुःख समुत्पद्य है ’०, ‘ यह दुःख निरोध है ’०, ‘ यह दुःख निरोध गामिनो प्रतिपद् है ’० । धम्मका भेद भन्ते ! दण्ड लिया, मार्ग मिल गया । वह मेरे द्वारा भावित = पहुँची हृत्त (हो) ऐसा विहार करते—सुख चेतने भावको ले जायगा, जिसमें कि मैं जानूँगा—‘ जाति (= जन्म) क्षय होगई, ब्रह्मचर्यव्रत पूरा होचुका, करना था, सो कर लिया, (अब) दूसरा यहाँके लिये (हृत्त करना) नडा (है) ’—‘ स्मृति संबोध्यग भन्ते । मुझे मिल गया । वह मेरे द्वारा भावित चहुलीहृत्त हो० । उपेक्षा समोध्यग भन्ते । मुझे वह मार्ग मिल गया, वह मेरे द्वारा भावित हो० ।

“ साधु, साधु, उदायी ! उदायी ! तुझे वह मार्ग मिल गया । जो तेरे द्वारा भावित = पहुँचीहृत्त हो, वैसे तेरे विहार करने, तेसे भावको ले जायगा, जिसमें कि तू जानैगा—‘ जाति क्षय होगई, ब्रह्मचर्यव्रत पूरा होचुका, करना था सो कर लिया (अब) दूसरा यहाँ (करनेको) नहीं है । ’

२ भगवान्ने उन्नीमर्ग (वर्षा) भी चालिय-पर्वतम (बिताई) ।

+ + + + +

मेधिय सुत्त ।

२ एसा मने सुना—एक समय भगवान् चालिका (= चालिय)में चालिकपर्वतपर विहार करते थे ।

उम समय आयुष्मान् मेधिय भगवान्के उपस्थित (= हजरी) थे । तब आयुष्मान् मेधिय जहा भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खड़े हो गये एक ओर पड़े आयुष्मान् मेधियने भगवान्को कहा—

“ भन्ते ! मैं जन्तु ग्राममें पिंडके (= भिक्षा)के लिए जाना चाहता हूँ । ”

“ मेधिय ! जिसका तू काल समझता है, (चेसाकर) । ”

तब आयुष्मान् मेधियने पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जन्तु-ग्राममें पिंड प्राप्त लिये प्रवेश किया । जन्तु ग्राममें पिंड-वारका, भोजनके बाद हृमि-काला नदीके तीरपर गये जाकर हृमि नाला नदीके तीर चट्टल कम्मी (= उँचा विहार) करते, विचरते उन्होंने सुन समीप आश्रय देया—

“ ओहो ! यह योगाभिजापी कुलपुत्रके अभ्यास (= प्रधान)के योग स्थान है । यदि भगवान् सुने आशा दें, तो मैं योगके लिये इस आश्रममें आऊँ । ”

तब आयुष्मान् मेधिय जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे । एक ओर बैठ आयुष्मान् मेधियो भगवान्‌को कहा—

“ भन्ते ! मे पूराहु समय पहिनाऊ पात्र घेउर ह, जतु प्रामर्म पिदक लिये गया । ० भोजनके बाद कृमिकाला नदीके तीरपर गया । ० सु-र रमणीय आम वा दण्ड । देसपर सुने ऐसा हुआ—ओहो ! यह ० । यदि भन्ते ! भगवान् सुन अनुष्ठान दें, तो उस आश्रममें प्रधान (= योग प्रवर्त) क लिये जाऊँ । ”

ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने आयुष्मान् मेधियको कहा—

“ मेधिय ! तब तक रुदरो, जब तक कि दूसरा कोई भिक्षु आ जाये । मैं जाकेला हूँ । ”

दूसरी बार भी आयुष्मान् मेधियने भगवान्‌को यह कहा—

“ भन्ते ! भगवान्‌को (भव) आगे कुछ करनेको नहीं है । क्लेशका लोप करना (= प्रतिषेध) नहीं है । सुने भन्ते ! आगे करनेको है, निषेध तोप करना है । यदि भन्ते ! भगवान् सुने आशा दें ० । ”

दूसरी बारभी भगवान्‌ने आ० मेधियको कहा—“ मेधिय । तब तक रुदरो ० । ”

तीसरी बारभी ० मेधियने ० यह कहा—“ भन्ते ! भगवान्‌को आगे कुछ करनेको नहीं है ० । ”

“ मेधिय ! ‘ प्रधान (= योग) ’ करनेवाले का क्या कहें ? मेधिय । जिसका लोप काल समये (वैसा कर) । ”

तब आयुष्मान् मेधिय आश्रममें उठकर, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, जहाँ वह आसका बाग था, वहाँ गये । जाकर उस आश्रममें भीतर घुसकर, एक वृक्ष नीचे निकले निहारको घेरे । तब आयुष्मान् मेधियको उस आश्रममें निहार करते, अधिकतर तीन पाप = ल-कुशल वितर्क (मनन) पैदा होते थे । जिनके काम निवर्त (= काम भाग संशय विचार), व्यापाद = द्वेष वितर्क, विहिंसा (= हिंसा) वितर्क । तब आयुष्मान् मेधियका हुआ—

“ आश्चर्य ! ओ ! ! अद्भुत ! ओ ! ! श्रद्धाले मैं घाते वेउर हो प्रज्जित हुआ हूँ । तो भी मैं तीन पाप ० वितर्क मैं—काम वितर्क, व्यापाद वितर्क, विहिंसा वितर्कें युक्त हूँ ।

तब आयुष्मान् मेधिय सायंकाल भावनासे उठकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ आयुष्मान् मेधियने कहा—

“ आश्चर्य ! ओ ! ! ॥ ० । ”

“ मेधिय ! अ परिपक्व चित्त-विमुक्तिको परिपक्व करके लिये पांच धर्म (= धानें) हैं । कौनसे पाप ? (१) मेधिय ! भिक्षु क-याण मित्र (= अच्छे मित्रों वाला) = कल्याण सहाय होना, अपरिपक्वचित्त विमुक्तिके परिपक्व करके लिये यह प्रथम धर्म है । (२) फिर मेधिय ।

भिन्नु शीलवान् होता है, प्रातिमोक्ष (रूपी) संवर (=रक्षा) से रक्षित, आचारगोचरसे मयुक्त, छोटे दोषोंमें भी भय खानेवाला होता है। शिक्षापदो (=सदाचार नियमा) को ग्रहण कर अभ्यास करता है। मेघिय ! अपरिपक्व चित्त विमुक्तिके परिपक्व करनेके लिये यह द्वितीयधर्म है। और फिर मेघिय ! जो यह कथायें सुभनेवाली, चित्तको पोलनेमें सहायक, बबल निर्ग (उदासीनता), विराग, निरोध = उपशम, अभिज्ञा = संगोच, निर्वाणके लिये है, जेसे— अत्यच्छ कथा, सन्तुष्टि कथा, प्रविवेक कथा, अ-संसर्ग-कथा, वीर्याम्म (=उद्योग) कथा, शील कथा, समाधि कथा, प्रज्ञा कथा, त्रिमुक्ति (=मुक्ति)-कथा, विमुक्ति ज्ञान दशन कथा। ऐसी कथाओंको प्रिना कठिनाईक (सुनने) पाता है। मेघिय ! ० यह तृतीय धर्म है। (४) और फिर मेघिय ! भिन्नु अकुशल धर्मांक हटानेके लिये, कुशल धर्मांकी प्राप्तिके लिये उद्योगी (=आरग्य वीर्य) = स्थामवान् = दृढ पराक्रम होता है। कुशल धर्मां = अच्छे कामों में जुभा न फँसनेवाला ०। मेघिय ! यह चतुर्थ धर्म है। (५) और फिर मेघिय ! भिन्नु प्रज्ञावान् हो = उदय अस्त हो जानेवाली, आर्य निर्बोधिक, भली प्रकार दुःख-क्षयकी ओर ल जानेवाली प्रज्ञासे युक्त होता है। मेघिय ! ० यह पंचम धर्म है ०।

“मेघिय ! कल्याण मित्र, = कल्याण सहाय भिक्षुके लिये यह आवश्यक है, कि यह शीलवान् हो। ० यह आवश्यक है, कि कथा सुभनेवाली ०। ० यह आवश्यक है, कि कुशल धर्मांक हटानेके लिये ०। ० यह आवश्यक है, कि प्रज्ञावान् हो ०।

“मेघिय ! उस भिक्षुको इन पांच धर्मां स्थित हो, ऊपरके (इन) चार धर्मांकी भावना करनी चाहिये—(१) रागने प्रहाण (=नाश)के लिये अशुभा (-भावना) भावना करनी चाहिये, (२) व्यापाद (=द्वेष)के प्रहाणके लिये-मंती (भावना) भावना करनी चाहिये। (३) त्रितक नशके लिये आनापान-स्मृति (=प्राणायाम) करनी चाहिये। (४) अहंकार (=अस्मिमान) के विनाशके लिये अनित्य-संज्ञा (=सब क्षणिक अनित्य है, यह ज्ञान) ०। अनित्य संज्ञी (=सत्यको अनित्य समझनेवाले)को मेघिय ! अनु-भारम लक्षा ठहरती है। आत्म संज्ञी अस्मिमानके नाशको प्राप्त होता है, इसी जन्ममें निराणको (प्राप्त होता है)।”

तत्र भगवान् इम अर्थको जानकर उसी समय यह उद्दान बोले—

“मनके उत्पीडक, ऊपर न निकडे, जो क्षुद्र वितर्क, सुदम वितर्क हैं। इन मनके वितर्कोंको न जानकर भ्रात-चित्त (पुरप) आवागमनमें दोड़ता है। इन मनके वितर्कोंको जानकर स्मृतिमान् (पुरप), उत्तर हा संयम करता है। बुद्धने मनके इन अशेष उद्गम उत्पीडाओंको विनाशकर दिया।”

(जीवक-चरित्र । वि. पू. ४५२) ।

बीसवीं वर्षां (भगवान्) राजगृह ही में बसे ।

+

+

+

+

जीवक-चरित ।

उस समय वेशाली नरुद्ध = रुक्मिणी (= मनुस्मृतिकाली), वज्रना = मनुष्योत्तम, सुमित्रा (= अत्रपान संपन्न) थी । उसमें ७७७७ प्रमाण, ७७७७ वृत्तगार, ७७७७ आराम, ७७७७ पुष्करिण्या थीं । गणिका अम्यापाली अमिरूप = दर्शनीय = प्रासादिक, परम रूपवती, नाच, गीत और वाद्यमें चतुर थी । चाहनेवाले मनुष्योंके पास पचास कापापिण रतपर जाया करती थी । उससे वेशाली और भी प्रसन्न शोभित थी । तब राजगृहका नेगम किसी कामसे वेशाली गया । राजगृहके नेगमने वेशालीको देखा—नरुद्ध । राजगृहका नेगम वेशालीमें उस कामको खतम कर, फिर राजगृह लौट गया । लौटकर जहाँ राजा भागध श्रेणिक बिखसार था, वहाँ गया । जाकर राजा० बिखसारको बोला—

“देव ! वेशाली नरुद्ध = रुक्मिणी और भी शोभित है । अच्छा हो देव ! हम भी गणिका खड़ी करें ?”

“तो भणें ! वैसी कुमारी हूँ, जिसको तुम गणिका खड़ी कर सरो ।”

उस समय राजगृहम सालवती नामक कुमारी अभिरूप दर्शनीय थी । तब राजगृहक नेगमने सालवती कुमारीको गणिका खड़ी की । सालवती गणिका थोड़े कालमें ही नाच, गीत और वाद्यमें चतुर हो गई । चाहनेवाले मनुष्योंके पास सौ (कापापण) स रतभर जाया करती थी । तब वह गणिका स बिगमें ही गर्भवती होगई । तब सालवती गणिकाको यह हुआ—गर्भिणी की पुरणोंका नापमद् (= अ मनाप) होता है, यदि सुते कोई जानना—सालवती गणिका गर्भिणी है, तो मेरा सब सत्कार चला जायेगा । क्यों न मैं नीमार बन जाऊँ । तब सालवती गणिकाने दौवारिक (= दौवारिक) को आज्ञा दिया—

“भणें ! दौवारिक ! ! कोई पुरुष आर और सुने पूछे, तो कहदेना—बीमार है ।”

“अच्छा भाय । (= अच्छे) ” उस दौवारिकने सालवती गणिकाको कहा ।

“सालवती गणिकाने उस गर्भके परिपक्व होनेपर एक पुत्र बना । तब सालवती ने दासीको हुकुम दिया—

“हन्त ! जे ! इस बच्चेको कच्चेके समय रखकर वृद्धे ऊपर छोड आ ।”

दासी सालवती गणिकाको “अच्छा भाय ।” कह, उस बच्चेको कच्चेके समय रख, लैनाका वृद्धे ऊपर रख आई ।

१ अ नि अ क २ ४ ५ । २ महावग ८ । ३ उस समयका एक तापका चौकोर मिश्रा, जिसकी मध्य शक्ति आजकलके चार आनेके बराबर थी ।

उस समय अमर-राजकुमारने सकालमेंही राजाकी हाजिरीको जाते (समय), कौमोसे विरे उस वधेको देखा । देखकर मनुष्योंको पूछा —

“ भणे । (= रे !) यह कौमोसे घिरा क्या है । ” “ देव ! बधा है ”

“ भणे पीता है ? ” “ देव जीता है । ”

“ तो भणे ! इस वधेको ले जाकर, हमारे अन्त पुरमें ठासियोंको पोसनेके लिये दे दाओ । ”

“ अच्छा देव । ” ‘उस वधेको समय राजकुमारके अन्त पुरमें ठासियोंको पोसनेके लिये दे आया । ‘जीता है (जीवति)’ करके उसका नाम भी जीवक रखवा । कुमारने पोसा था, इन्द्रिये कामार-भृत्य नाम हुआ । जीवक कौमार भृत्य न बिरही न विश हा गया । तब जीवक कौमार-भृत्य जहा अमर राजकुमार था, बहा गया, जाकर अमर-राजकुमारको बोला—

“ देव ! मेरी माता कौन है, मेरा पिता कौन है ? ”

“ भणे जीवक ! मे तेरी माको नहीं जानता, और मैं तेरा पिता हूँ, मैंने तुझ पोसा है । ”

तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

“ राजकुल (= राजद्वार) मानी होता है, बिना शिल्पके जीविता करना मुश्किल है । क्यो न मैं शिल्प सीखूँ । ”

उस समय तक्ष शिलाम (एक) दिशा-प्रमुख (= दिगंत-प्रसिद्ध) वेद्य रहता था । तब जीवक अमर राजकुमारको बिना पूछे, जिधर तक्ष-शिला थी, उधर चला । क्रमश जहा तक्ष शिला थी, जहा वह वेद्य था, बहा गया । जाकर उस वेद्यको बोला—

“ आचार्य ! मैं शिल्प सीखना चाहता हूँ । ”

“ तो भणे जीवक ! सीखो । ”

जीवक कौमार-भृत्य बहुत पढ़ता था, जल्दी धारणकर लेता था, अच्छी तरह समझता था, पढ़ा हुआ हमको भूलता न था । सात वर्ष बीतनेपर जीवकको यह हुआ—‘ बहुत पढ़ता हूँ, पढ़ते हुये मात घर्ष हा गये, लेकिन इस शिल्पका अन्त नहीं मालूम होता, कब इस शिल्पका अन्त जान पड़ेगा ? ’ तब जीवक जहा वह वेद्य था, बहा गया, जाकर उस वेद्यको बोला—

“ आचार्य ! मैं बहुत पढ़ता हूँ । कब इस शिल्पका अन्त जान पड़ेगा ? ”

“ तो भणे जीवक ! खनती (= खनित्र) लेकर तक्ष शिलाके योजन योजन चारां भोत घूमकर जो अ भैषज्य (= दवाके अयोग्य) देखो उसे ले आओ । ”

१ अ क. ‘ जैसे दूसरे क्षत्रिय आदिके छड़के आचार्यको धन देकर कुछ काम न कर विद्या सीखते हैं, उसने बेसे नहीं (किया) । वह कुछ भी धन न दे धर्म अन्तेवासी हो, एक समय उपाध्याय वा नाम धरता, एक समय पढ़ता था । ’ २ शाहजीकी देरी, स्थान तक्षसिला, जि० रावलपिन्दी ।

“अच्छा आचार्य !” जीवक ने ‘कुठ भी अ भेषज्य न देखा, (और) आकर उस वैद्यको कहा—

“आचार्य ! तक्षशिलाके योजन योजन घास ओर म घूम आया, (किंतु) मैंने कुठ भी न भेषज्य नहीं देखा ।”

“सोच चुके, भग्रे जीवक । यह तुम्हारी जीविकाके लिये पर्याप्त है ।” (कह) उसने जीवक कोमार-भृत्यको थोड़ा पाथेय दिया । तब जीवक उस स्वल्प-पाथेय (= राह-खर्च) को ल, जिस राजगृह था, उधर चला । जीवकका यह स्वरूप पाथेय रास्तेमें साकेत (= अयोध्या) में स्वतन्त्र होगया । तब जीवक कोमार भृत्यको यह हुआ—“अन्न पान रहित जगलो रास्ते में, बिना पाथेयके जाना मुकर नहीं है, क्या न म पाथेय द्रव्य ।”

उस समय साकेतमें श्रेष्ठ (= नगर सेठ) का भायाको सात वर्षसे शिर दर्द था । बहुतसे बड़े बड़े दिग्गज-विद्वान्त वैद्य आकर नहीं अ रोगवर सके, (और) बहुत हिरण्य (= अक्षरों) सुवर्ण फेकर घने गये । तब जीवकने साकतमें प्रवेशकर भास्मियोंको पूछा—

“भग्रे ! कोई रोगी है, जिसकी म चिकित्सा कर्त्तें ?”

“आचार्य ! इस श्रेष्ठ भायाको सात वर्षका शिर दर्द है, आचार्य । जाओ श्रेष्ठ भायाकी चिकित्सा करो ।”

तब जीवकने जहा श्रेष्ठ गृहपतिका मकान था, वहाँ जाकर दीवारिका हुकुम दिया—

“भग्रे ! दीवारिक ! श्रेष्ठ भायाको कह—‘आय्य ! वद्य आया है, वह तुम्ह दखना चाहता है ।’”

“अच्छा आर्य !” कह दीवारिक ‘जाकर श्रेष्ठ भायाको बोला—

“आर्य ! वैद्य आया है, वह तुम्ह देखना चाहता है ।”

“भग्रे दीवारिक ! केसा वैद्य है ?”

“आर्य ! तदण (= दहरक) है ?”

“वय भग्रे दीवारिक ! तदण वैद्य मेरा क्या करेगा ? उहुतने बड़े बड़े दिग्गज विद्वान्त वैद्य ।”

तब वह दीवारिक जहा जीवक कोमार-भृत्य था, बहा गया । जाकर ‘शला—

“आचार्य ! श्रेष्ठ भाया (= सेठानी) एने कहती है—‘वय भग्रे दीवारिक !’”

“जा भग्रे दीवारिक ! सेठानीको कह—आर्य ! वद्य मेरे कहता है—‘आय्य । पहिले कुठ मतदो, जध आरोग होजाना, तो जो चाहना सा दना ।”

“अच्छा आचार्य !” दीवारिकने श्रेष्ठ भायाको कहा—आय्य ! वद्य एत कहता है ० ।”

“तो भग्रे ! दीवारिक ! वैद्य आर ।”

“अच्छा आय्य ।” जीवक कह—“आचार्य ! सेठानी तुम्हें बुलाती है ।”

जीवक० सेठानीके पास जाकर, रोगको पहिचान, सेठानीको बोला—

“अय्या ! मुझे पसर-भर घी चाहिये ।”

सेठानीने जीवक०को पसरभर घी दिलवाया । जीवक०ने उस पसरभर घीको नाता दबाइयोसे पकाका, सेठानीको चारपाईपर उतान लेटवाकर नयनोंमें दे दिया । नाक से दिया वह घी सुलने निकल पड़ा । सेठानीन पीकदानमें थूकर, दासीको हुक्म दिया—

“हन्ने ! हम घीको यताम रूप ले ।”

तब जीवक कौमार भृत्यको हुआ—‘आश्रय ! यह घानी कितनी कृपण है, जा कि इस फकने छायाक घीको वर्तनमें रखगती है । मेरे बहुतसे महार्थ ओषध हममें पड़े ह, इसके लिये यह क्या देगी ?’ तब सेठानीने जीवक०के भावको ताहकर, जीवक० को कहा—

“आचार्य ! तू किपलिप्र उदाम है ।”

“मुझे ऐसा हुआ—आश्रय ! १० ।”

“आचार्य ! हम गृहस्थिने (=आगारिका) हैं, इस संयमको जानती ह । यह घी दासी कनकरोक पेरने मलने, और दीपकमें डालनेको अच्छा है । आचार्य ! हम उदास मत होओ । तुम्हें जो देना है, उसमें कमी नहीं होगी ।”

तब जीवकने सेठानीके सात धरके शिर-दर्दको, एकही नाससे निकाल दिया । सेठानीने अरोग हो जीवकको चार हजार दिया । पुत्रने ‘मेरी माताको निरोग कर दिया’ (सोच) चार हजार दिया । यहूने ‘मेरी सासको निरोग कर दिया’ (सोच) चार हजार दिया । श्रेष्ठ गृहपतिने ‘मेरी भावाको निरोग कर दिया’ (सोच) चार हजार, एक दास, एक दासी, और एक घोड़ेका रथ दिया । तब जीवक उन सोलह हजार, दास, दासी और अश्वरथ को ले जहाँ राजगृह था, उधर चला । क्रमशः जहा राजगृह, जहा अभय राजकुमार था, पहुँचा गया । जाकर अभय-राजकुमारको बोला—

“देव ! यह—सोलह हजार, दास, दासी और अश्व-रथ मेरे प्रथम कामका फल है । इसे देव ! पोमाई (=पोसावनिक) में स्वीकार करें ।”

“नहीं, भगे जीवक ; (यह) तेरा ही रहे । हमारे हो अन्तःपुर (=हवेलीका भीमा) में मरान बनवा ।”

“अच्छा देव !” कह जीवक ने अभय-राजकुमारके अन्तःपुरमें मकान बनवाया ।”

उस समय राजा मागध श्रेणिक बिस्मरकको भगंदरका रोग था । धोतिया (=सादक) खूनसे सन जाती थीं । देविया देखकर परिहास करती थीं—‘इस समय देव मृतमती है, देवको फूल उत्पन्न हुआ है, जलदी ही देव प्रसव करेंगे ।’ इससे राजा मूक होता था । तब राजा बिस्मरके अभय-राजकुमारको कहा—

“भगे अभय ! मुझे ऐसा रोग है, जिससे धोतियां खूनसे सन जाती हैं । देविया देखकर परिहास करती हैं । तो भगे अभय ! ऐसे वंशको दूँदो, जो मेरी चिकित्सा करे ।”

“देव ! यह हमारा तरंग वेद्य जीवक अच्छा है, वह द्रव्यी चिकित्सा करेगा ।”

“तो भणे सम्य ! जीवक वेद्यको आज्ञा दो, वह मेरी चिकित्सा करे ।”

तब अभय-राजकुमारने जीवकको हुकुम दिया—

“भणे जीवक ! जा राजाकी चिकित्सा कर ।”

“अच्छा देव !” कह जीवक कोमार भृत्य नग्नम् द्वाग्जहाँ राजा बिस्मार था, वहाँ गया । जाकर राजा बिस्मारको बोला—

“देव ! रोगको देखें ।”

तब जीवकने राजा बिस्मारक भगदर रोगको एक ही ल्यसे निकाल दिया । तब राजा बिस्मारने निरोग हो, पाचसौ छियोंको सत्र अलवारोस अल्लुत = भूपितकर, (फिर उस आभूषणको) छोड़वा पुज बनवा, जीवक को कहा—

“भणे ! जीवक ! यह पाँचसौ स्त्रियोंका आभूषण तुम्हारा है ।”

“यही वस है कि द्रव मेर उपकारको स्मरण कर ।”

“तो भणे जीवक ! मेरा उपस्थान (=सेवा चिकित्साद्वारा) करो, रमयाम और शुद्ध प्रमुख मिश्र-संघका भी (उपस्थान करो) ।”

“अच्छा, देव !” (कह) जीवकने राजा बिस्मारको उत्तर दिया ।

उस समय राजगृहके श्रेष्ठीको सातवपका शिरद था । गृहसे बड़े बड़े दिग्गज विद्यापति (= निमा पामोन्स) वंश आकर निरोग व कर सक, (और) गृहत सा हिरण्य (=अशर्फी) लेकर चले गये । वंशोने उसे (द्रव कानेस) जवाब दे दिया था । किन्हीं वया न कहा—पाचों दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा । किन्हीं वयोने कहा—पाचों दिन । तब राजगृहके नैगमको यह हुआ—‘यह श्रेष्ठी गृहपति राजाका और नैगमका भी बहुत काम कलवाला है, लेकिन वेयोने इसे जवाब दे दिया है० । यह राजाका तरंग वंश जीवक अच्छा है । क्यों न हम श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्साके लिये राजासे जीवक वेद्यको भोंगे । तब राज गृहके नैगमने राजा बिस्मारके पास जा कहा—

“देव ! यह श्रेष्ठी गृहपति देवका भी, नैगमका भी बहुत काम करने वाला है । लेकिन वेयोने जवाब दे दिया है० । अच्छा हो, द्रव जीवक वेद्यको श्रेष्ठी गृहपति की चिकित्साके लिये आज्ञा दें ।”

तब राजा बिस्मारने जीवक कोमार भृत्यको आज्ञा दी—

“नाओ, भणे जीवक ! श्रेष्ठी गृहपति की चिकित्सा करो ।”

“अच्छा देव !” कह, जीवक श्रेष्ठी गृहपतिक विचारको पहिचान कर, श्रेष्ठी गृहपति को बोला—

“यदि मैं गृहपति ! तुझे निरोग करूँ, तो मुझ क्या दोगे ?”

“आचार्य ! सत्र धन तुम्हारा हो, और मैं तुम्हारा दास ।”

“क्यों गृहपति ! तुम एक करवशसे सातमास लेटे रह सकने हो ?”

जीवक० सेठानीके पास जाकर, रोगको पहिचान, सेठानीको बोला—

“अय्या ! मुझे पसर भर धी चाहिये ।”

सेठानीने जीवक०को पसरभर धी दिलवाया । जीवक०ने उस पसरभर धीका नाना दवाइयोंसे पकाका, सेठानीको चारपाईपर उतान छेड़वाकर नपनाम दे दिया । नारु से दिया वट धी मुझे निम्न पड़ा । सेठानीने पीकदानमें थूककर, दासीको हुक्म दिया—

“हृन्दजे । इस धीको वर्तारं रख ले ।”

तब जीवक कौमार नृत्यको हुआ—‘आश्चर्य । यह धरना कितनी कृपण है, जो कि इस फलने लयक धीको वर्तनमें रखवाती है । मेरे बहुतसे महार्थ औषध इसमें पाए हैं, इसने लिये यह क्या देगी ?’ तब सेठानीने जीवक०के भावको साइकर, जीवक० का कहा —

“आचार्य । तू किमलिये उदास है ।”

“मुझे ऐसा हुआ—आश्चर्य । ० ।”

“आचार्य । हम गृहस्थिन (=आगारिका) हैं, इस संयमको जानती हूँ । यह धा दासा कमरुके पेरमें मलने, और दीपकमें डालनेको अच्छा है । आचार्य । तुम उदास मत होओ । तुम्हें जो देना है, उसमें कमी नहीं होगी ।”

तब जीवकने सेठानीके सात वर्षके शिर-दर्दको, एकही नाससे निकाल दिया । सेठानीने अरोग हो जीवकको चार हजार दिया । पुत्रने ‘मेरी माताको निरोग कर दिया’ (मौच) चार हजार दिया । यहने ‘मेरी सासको निरोग कर दिया’ (मौच) चार हजार दिया । श्रेष्ठ गृहपतिने ‘मेरी भाषाको निरोग कर दिया’ (सोच) चार हजार, एक दास, एक दासी, और एक घोड़ेका रथ दिया । तब जीवक उन सोलह हजार, दास, दासी और अश्वरथ को ले जहाँ राजगृह था, उधर चला । क्रमशः जहाँ राजगृह, जहाँ अभय राजकुमार था, पहुँचा गया । जाकर अभय-राजकुमारको बोला—

“देव । यह—सोलह हजार, दास, दासी और अश्व-रथ मेरे प्रथम कामका फल है । इसे देव । पोसाई (=पोसावनिक) में स्वीकार करें ।”

“नहीं, भणें जीवक ; (यह) तेरा ही रहे । हमारे ही अन्त पुर (=हरेलीकी सीमा) में मकान बनना ।”

“अच्छा देव !” कह जीवक ने अभय-राजकुमारके अन्त-पुरमें मकान बनवाया ।”

उस समय राजा मागध क्षेणिक बिम्बसारको भगदरका रोग था । धोतिया (=साठक) खूनसे सन जाती थीं । देविया देवकर परिहास करती थीं—‘इस समय देव धनुषी हैं, देवको फूल उत्पन्न हुआ है, जल्दी ही देव प्रसव करेंगे ।’ इससे राजा मूक होता था । तब राजा विषमारने अभय राजकुमारको कहा—

“भणें अभय ! मुझे ऐसा रोग है, जिससे धोतियाँ खूनसे सन जाती हैं । देवियाँ दलर परिहास करती हैं । तो भणें अभय । ऐसे वंशको दूँ, जो मेरी चिकित्सा करें ।”

“देव ! यह हमारा तरुण वंश जीवक अच्छा है, वह देवकी चिकित्सा करेगा ।”

“तो भगे अभय ! जीवक वैद्यको आज्ञा दो, वह मेरी चिकित्सा करे ।”

तब अभय राजकुमारने जीवकको हुट्टम दिया—

“भगे जीवक ! जा राजाकी चिकित्सा कर ।”

“अच्छा देव !” कह जीवक कौमार भृत्य नवमें दवाए जहा राजा विग्रमार था, वहां गया । जाकर राजा विवसारको बोला—

“देव ! रोगको देख ।”

तब जीवकने राजा विग्रमारके भगदर रोगको एक ही लपटे निशान दिया । तब राजा विवसारने नितोग हो, पाचसौ स्त्रियोंको सन अलंकारसे अलङ्कृत = भूषितकर, (फिर उस आभूषणको) छोड़वा पुज बनरा, जीवक को कहा—

“भगे ! जीवक ! यह पाचसौ स्त्रियोंका आभूषण तुम्हारा है ।”

“यही वस है कि देव मेरे उपकारको स्मरण करे ।”

“तो भगे जीवक ! मेरा उपस्थान (=सेवा चिकित्साद्वारा) करो, रत्नराम और बुद्ध प्रसुप्त भिक्षु संघका भी (उपस्थान करो) ।”

“अच्छा, देव !” (कह) जीवकने राजा विग्रमारको उत्तर दिया ।

उस समय राजगृहक श्रेष्ठीको सातनर्यका शिरश्च था । बहुतसे बड़े बड़े निगन्त विरपात (= गिरा पामोक्ख) वंश आकर नितोग न कर सक, (और) बहुत सा हिरण्य (=अमर्षी) लेकर चले गये । वेद्योंने उसे (दण्ड कानेसे) जवाब दे दिया था । किन्हीं वैद्यों १ कहा—पाँचवें दिन श्रेष्ठी गृहपति मरगा । किन्हीं वंद्योंने कहा—पातरे दिन० । तब राजगृहके नैगमको यह हुआ—‘ यह श्रेष्ठी गृहपति राजाका ओर नैगमका भी बहुत काम करनेवाला है, लेकिन वेद्योंने इसे जवाब दे दिया है० । यह राजाका तरुण वंश जीवक अच्छा है । क्यों न हम श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्साके लिये राजासे जीवक वंशको भागे । तब राज-गृहके नैगमने राजा विग्रमारके पास जा कहा—

“देव ! यह श्रेष्ठी गृहपति देनका भी, नैगमका भी बहुत काम करने वाला है । लेकिन वेद्योंने जवाब दे दिया है० । अच्छा हो, दूज जीवक वंशको श्रेष्ठी गृहपति की चिकित्साके लिये आज्ञा दो ।”

तब राजा विग्रमारने जीवक कौमार भृत्यको आज्ञा दी—

“पाओ, भगे जीवक ! श्रेष्ठी गृहपति की चिकित्सा करा ।”

“अच्छा देव !” कह, जीवक श्रेष्ठी गृहपतिक विचारको पहिचान कर, श्रेष्ठी गृहपति को बोला—

“यदि मैं गृहपति ! तुझे नितोग करदूँ, तो मुझे क्या दोग ?”

“आचार्य ! सब धन तुम्हारा हो, और मैं तुम्हारा दास ।”

“क्या गृहपति ! तुम एक करवने सातमास लटे रह सकने हो ?”

जीवक० सेठानीके पास जाकर, रोगको पहिचान, सेठानीको बोला—

“अय्या ! मुझे पसर-भर घी चाहिये ।”

सेठानीने जीवक०को पसरभर घी दिलवाया । जीवक०ने उस पसरभर घीको नागा दवा-दगामे पकाकर, सेठानीको चारपाईपर उतान लेटवाकर नथनोंमे दे दिया । नाग से गिया वह घी सुसमे निकल पड़ा । सेठानीने पीकदानमें थूककर, दासीको हुक्म दिया—

“हन्दजे ! इस घीको बर्तनमें रख ले ।”

तब जीवक तामार भृत्यको हुआ—‘आश्चर्य ! यह घरनी कितनी कृपण है, जो कि इस फलने लायक घीको बर्तनमें रखवाती है । मेरे बहुतसे महार्घ औषध इसमें पड़ है, इसने लिये यह क्या देगी ?’ तब सेठानीने जीवक०के भावको ताड़कर, जीवक० को कहा—

“आचार्य ! तू किमलिये उदाम है ।”

“मुझे पेसा हुआ—आश्चर्य !० ।”

“आचार्य ! हम गृहस्थिने (=आगारिका) है, इस संयमको जानती है । यह घा दासा कमररोक पेरमें मलने, और दीपकमें डालनेको अच्छा है । आचार्य ! तुम उदास मत होओ । तुम्हें तो देना है, उसमें कमी नहीं होगी ।”

तब जीवकने सेठानीके मात धर्पके शिर दर्दको, एकही नामसे निकाल गिया । सेठानीने अरोग हो जीवकको० चार हजार दिया । पुत्रने ‘मेरी माताको निरोग कर दिया’ (मोच) चार हजार गिया । यहूने ‘मेरी सासको निरोग कर दिया’ (मोच) चार हजार दिया । भ्रेष्टि गृहपतिने ‘मेरी भार्याको निरोग कर दिया’ (सोच) चार हजार, एक दास, एक दासी, और एक घोड़ेका रथ दिया । तब जीवक उन सोलह हजार, दास, दासी और अश्वरथ को ले वहाँ राजगृह था, उधर चला । क्रमशः जहाँ राजगृह, जहाँ अभय राजकुमार था, वहाँ गया । जाकर अभय-राजकुमारको बोला—

“देव ! यह—सोलह हजार, दास, दासी और अश्व-रथ मेरे प्रथम कामका फल है । इसे देव । पोसाई (=पोसावनिह) में स्वीकार कर ।”

“नहीं, भगने जीवक ; (यह) तेरा ही रहे । हमारे ही अन्त पुर (=हमारेका सीमा) में भ्रमण करना ।”

“अच्छा देव !” कह जीवक ने अभय राजकुमारके अन्त पुरमें भ्रमण करना ।”

उस समय राजा मागध भ्रेष्टि बिंध्यमारको भगदस्का रोग था । घोषिया (=सायक) ग्रासे मल जाती थी । दधिया देखकर परिहास करती थी—‘इस समय देव कटुमती है, देवको पूल उत्पन्न हुआ है, जल्दी हा देव प्रसव करेंगे ।’ इससे राजा मूक होता था । तब राजा ‘बिंध्यमारने अभय राजकुमारको कहा—

“भगने अभय ! मुझे ऐसा रोग है, जिससे घोषियां ग्रासे मल जाती हैं । देखियां दधकर परिहास करती हैं० । तो भगने अभय । ऐसे देवको दूँदो, जो मेरी चिकित्सा करे ।”

“देव ! यह हमारा तरुण वंश जीवक अच्छा है, वह देवकी चिकित्सा करेगा ।”

“तो भगे अभय ! जीवक वेद्यको आज्ञा दो, वह मेरी चिकित्सा करे ।”

तब अभय-राजकुमारने जीवकको हुकुम दिया—

“भगे जीवक ! जा राजाकी चिकित्सा कर ।”

“अच्छा देव !” कह जीवक कौमार-भृत्य नवमें दपार जहां राजा विषमार था, वहां गया । जाकर राजा विषमारको बोला—

“देव ! रोगको देखें ।”

तब जीवकने राजा विषमारके भगदर रोगको एक ही लेपसे निशाल दिया । तब राजा विषमारने निरोग हो, पाचसो स्त्रियोंको सत्र अर्हकारोंसे अलहृत = भूषितकर, (फिर उस आभूषणको) छोड़वा पुत्र बनना, जीवक को कहा—

“भगे ! जीवक ! यह पाँचसौ स्त्रियोंका आभूषण तुम्हारा है ।”

“यही वस है कि देव मेरे उपकारको स्मरण कर ।”

“तो भगे जीवक ! मेरा उपस्थान (= सेवा चिकित्साद्वारा) करो, रात्रास और शुद्ध प्रमुख मित्र-संघका भी (उपस्थान करो) ।”

“अच्छा, देव !” (कह) जीवकने राजा विषमारको उत्तर दिया ।

उस समय राजगृहके श्रेष्ठोको सातवर्षका सिरन्द था । बहुतसे बड़े बड़े दिगन्त विप्रात (= तिसा पामोम्ब) पद्य आकर निरोग न कर सके, (और) बहुत सा हिरण्य (= अक्षौ) लेकर चले गये । वेद्योने उसे (दवा कम्पेसे) जवाब दे दिया था । किन्हीं वधो न कहा—पाचवें दिन श्रेष्ठा गृहपति मरैगा । कीर्द्धी वधोने कहा—पाचवें दिन० । तब राजगृहके जैगमको यह हुआ—‘यह श्रेष्ठी गृहपति राजाका और नेगमका भी बहुत काम करनेवाला है, लेकिन वेद्योने इसे जवाब दे दिया है० । यह राजाका तरुण वंश जीवक अच्छा है । क्यों न हम श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्साके लिये राजासे जीवक वेद्यको मागे । तब राज-गृहके नेगमने राजा विषमारके पास जा कहा—

“देव ! यह श्रेष्ठी गृहपति देवका भी, जैगमका भी बहुत काम करने वाला है । लेकिन वेद्योने जवाब दे दिया है० । अच्छा हो, अब जीवक वेद्यको श्रेष्ठी गृहपति की चिकित्साके लिये आज्ञा द ।”

तब राजा विषमारने जीवक कौमार भृत्यको आज्ञा दी—

“जाओ, भगे जावक ! श्रेष्ठी गृहपति की चिकित्सा करो ।”

“अच्छा देव !” कह, जीवक श्रेष्ठी गृहपतिके चिकित्साको पहिचान कर, श्रेष्ठी गृहपति को बोला—

“यदि मैं गृहपति ! तुम निरोग करदूँ, तो मुझे क्या दोगे ?”

“आचार्य ! सब धन तुम्हारा हो, और मैं तुम्हारा दास ।”

“क्या गृहपति ! तुम एक करवर्षे सातमास लेटे रह सक्ते हो ?”

“आचार्य ! मैं एक करग्रसे सातमास रुका रह सकता हूँ ।”

“क्या गृहपति ! तुम दूसरी तरवटसे सात मास रुके रह सकते हो ?”

“आचार्य ! सकता हूँ ।”

“क्या उतान सात मास रुके रह सकते हो ?” “आचार्य ! सकता हूँ ।”

तब जाकर ने श्रेष्ठी गृहपतिको चारपाई पर लिटाकर, चारपाईसे बांधकर, शिरक चमड़ेको फाँका खोपड़ी खोल, दो जन्तु पिकाल लोगोंको दिखलाये—

“दोनों यह दो जन्तु हैं—एक बड़ा है, एक छोटा । जो यह आचार्य यह कहते थे—पाँच दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा, उन्होंने इस घड़े जन्तु को देखा था, पाँच दिनमें यह श्रेष्ठी गृहपति की गुद्दी चाट लेता, गुद्दीक चाट लेनेपर श्रेष्ठी गृहपति मर जाता । उन आचार्योंने ठीक देखा था । जो यह आचार्य यह कहते थे—सातवेंदिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा, उन्होंने इस छोटे जन्तु को देखा था॥”

खोपड़ी (=सिन्धनी) जोड़ेका, शिरक चमड़ेको सीका, लेप कर दिया । तब श्रेष्ठी गृहपतिन सप्ताह बीतन पर जाकर को कहा—

“आचार्य ! मैं, एक करग्रमे सातमास नहीं रुक सकता ।”

“गृहपति ! तुमने मुझे क्यों कहा था—‘सस्ता हूँ’ ।”

“आचार्य ! यही मैंने कहा था, तो मर भूँ ही जाऊँ, किंतु मैं एक कवटसे सात मास रुका रह सकता हूँ ।”

“तो गृहपति ! दूसरी करव सात मास रुको ।”

तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतने पर जीवक को कहा—

“आचार्य ! मैं दूसरी करवटसे सातमास नहीं रुक सकता ।”॥०॥

“तो गृहपति ! उतान सात मास रुको ।”

तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतनेपर कहा—

“आचार्य ! मैं उतान सात मास नहीं रुक सकता ।”

“गृहपति ! तुमने मुझे क्यों कहा था—‘सस्ता हूँ’ ।”

“आचार्य ! यदि मैंने कहा था, तो मर भूँ ही जाऊँ, किंतु मैं उतान सात मास रुका रह सकता हूँ ।”

“गृहपति ! यदि मैंने यह न कहा होता, तो इतना भी तू न देखता । मैं तो जानता था, तीन सप्ताहोंमें श्रेष्ठी गृहपति निरोग हो जायेगा । उठो गृहपति ! निरोग हो गये । जानते हो, मुझे क्या देना है ?

“आचार्य ! सन घन तुम्हारा और मैं तुम्हारा दास ।”

“यस गृहपति ! सन घन मेरा मत हो, और मैं तुम मेरे दास । राजाको सौहजार दंडों और सौहजार सुखे ।”

तब गृहपतिने नितंगहो सौहजार राजाको दिया, और सौहजार जीवक कौमार भृत्यको ।

उस समय बनारसके श्रेष्ठी (= नगर सेठ) के पुत्रको मन्त्रविषा (= शिरके घल घुमरी काटना) सेल्ले अँतघोमें गाँठ पड़जाने का रोग (होगया) था, जिससे पीई जाउर (= यागु = यवागू) भी अच्छी तरह नहीं पचती थी, खाया भातभी अच्छी तरह न पचता था । पसाब, पाखानाभी ठीकने न होता था । वह उससे कुछ, रश्म = दुर्वर्ण पीला छरी (= धमनि-सन्पत-गत्त) भर रह गयाथा । तब बनारसके श्रेष्ठीको यह हुआ—
‘मेरे पुत्रको वैसा रोगहै, जिससे जाउर भी० । क्यों मे राजगृह जाकर अपने पुत्रकी चिकित्साके लिये, राजासे जीवक वैद्यको माँगू ।’ तब बनारसका श्रेष्ठी राजगृह जाकर राजा विषसारको यह बोला—

“देव । मेरे पुत्रको वैसा रोग है० । अच्छा हो यदि देव मेरे पुत्रकी चिकित्साके लिये वैद्यको आज्ञा दें ।”

तब राजा विषसारने जीवक को आज्ञा दी—

“भणे जीवक ! बनारस जाओ, और बनारसके श्रेष्ठीके पुत्रकी चिकित्सा करो ।”

“अच्छा देव ।” कह बनारस जाकर, जहाँ बनारसके श्रेष्ठीका पुत्र था, वहाँ गया । जाकर श्रेष्ठी-पुत्रके विकारको पन्चान, लोगोको हटाकर, कनात परया, रंभोँनो बँधवा, भार्याको सामने रख, पेटके चमड़ेको फाड़, आँतको गाँठको निकाल, भाँयासे दिखलाया—

“देखो अपने स्वामीका रोग, इसीसे जाउर पीनाभी अच्छी तरह नहीं पचना था० ।”

गाँठको मुलसफिर अँतड़ियोको (भीतर) बालसर, पेटके चमड़ेको सीकर, लेप लगा दिया । बनारसके श्रेष्ठीका पुत्र थोड़ी ही देरमें निरोग हो गया । बनारसका श्रेष्ठीने ‘मेरा पुत्र निरोग कर दिया’ (सोच) जीवक काँसार भूयसो सोलह हजार दिया । तब जीवक उन सोलह हजारको ले फिर राजगृह लौट गया ।

उस समय राजा प्रद्योतको पांडु रोगकी बीमारी थी । बहुतसे बड़े बड़े दिग्गज विख्यात वैद्य आकर निरोग न कर सके, बहुत सा हिरण्य (= अक्षरों) लेकर चले गये । तब राजा प्रद्योतने राजा मागध श्रेणिक विषसारके पास दूत भेजा—

“मुझे देव ! ऐसा रोग है, अच्छा हो यदि देव जीवक वैद्यको आना दे, कि यह मेरी चिकित्सा करे ।”

तब राजा विषसारने जीवक को हुक्म दिया—

“जाओ भणे जीवक ! उज्जैन (= उज्जैनो) जाकर, राजा प्रद्योतकी चिकित्सा करो ।”

“अच्छा देव !” कह जीवक उज्जैन जाकर, जहाँ राजा प्रद्योत (= पद्योत) था, वहाँ गया । जाकर राजा प्रद्योतके विकारको पहिचानकर बोला—

“देव ! घी पकाता हूँ, उसे देव पीयें ।”

“भणे जीवक ! बस, घी के बिना (और) जिससे तुम निरोग कर सको, उसे करो । घी से मुझे घृणा = प्रतिकृता है ।”

तब जीवक • को यह हुआ—‘इस राजाका रोग ऐसा है, कि धीक बिना आराम नहीं किया जा सकता, क्योंकि न म धीको कपाय-वर्ण, कपाय-गंध, कपाय रस पकाऊँ ।’ तब जीवक • ने नाना औषधोंसे कपाय वर्ण कपाय-गंध, कपाय-रस धी पकाया । तब जीवक को यह हुआ—‘राजाको धी पीकर पचते पच उवात होता जान पड़ेगा । यह राजा चंड (बोधा) है, मुझे न धा १ खाले । क्यों न मैं पहिलेही ठीक कर रखूँ । तब जीवक जाकर राजा प्रद्योतको बोला—

“१२ ! इमलोग यह है, वैसे वैसे (विद्योष) सुहृत्तमें मूल उवाड़ते हैं, औषध संग्रह करती हैं । भन्ना हो, यदि देव वाहन शालाओं और नगर द्वारोंपर आज्ञा दृष्ट कि जीवक जिन वाहनसे चाहे, उस वाहनसे जाये, जिन द्वारसे चाहे, उस द्वारसे जाये, जिन समय चाहे, उस समय जाये, जिस समय चाहे, उस समय (नगरके) भीतर आवे ।”

तब राजा प्रद्योतने वाह्यागारों और द्वारों पर आज्ञा ददी—‘जिन वाहन से०’ । उस समय राजा प्रद्योतकी भद्रवतिका नामक हथिनी (दिनमें) पचास योजन (चलने) वाली थी । तब जीवक कौमार भृत्य राजाके पास धी ले गया—‘देव ! कपाय पिये’ । तब जीवक राजाकी धी पिलाकर हथि सारमें जा भद्रवतिका हथिनी पर (सवार हो), नगरसे निकल पड़ा । तब राजा प्रद्योतने उस पिये धीने उवात दिया । तब राजा प्रद्योतने मनुष्योंको कहा—

“ भगे ! दुष्ट जीवकने मुझे धी पिलाया है, जीवक वंशको दूँगे ।”

“ देव ! भद्रवतिका हथिनीपर नगरसे गहर गया है ।”

उस समय अमनुष्यसे उत्पन्न काक न मर राजा प्रद्योतका दास (दिनमें) साठ योजन (चलने) वाला था । राजा प्रद्योतने काक दासको हुकुम दिया—

“ भगे काक ! जा जीवक वंशको लूँटा ला—‘आचार्य ! राजा तुम्हें लोडाना चाहते हैं ।’ भगे काक ! यह वेच लोग बड़े मायावी होते हैं, उस (के हाथ) का कुट मत लेना ।”

तब कानने जीवक कौमार भृत्यको मार्गमें कोशाम्बीमें कण्ठ कटते देखा । काकदासने जीवक को कहा—

“ आचार्य ! राजा तुम्हें लूँटगते हैं ।”

“ ठहरो भगे काक ! जब तक ग्वालू । हन्त भगे काक ! (तुममी) खाओ ।”

“ क्या आचार्य ! राजाने आज्ञा दी है—‘यह वंश लोग मायावी हाते हैं, उस (के हाथ) का कुट मत लेना ।’”

उस समय जीवक कौमार भृत्य नखसे दवा लगा आँवला खाकर, पानी पीता था । तब जीवक ने काक को कहा—

“ तो भगे काक ! आँवला खाओ, और पानी पियो ।”

तब काक दासने (सोचा) ‘यह वेच आँवला खा रहा है, पानी पी रहा है, (इसमें) कुट भी अनिष्ट नहीं हो सकता ’—(और) आधा आँवला ग्वाया, और पानी पिया । उसका खाया वह आधा आँवला वहीं निकल गया । तब काक (दास) जीवक कौमार भृत्यको बोला—

“ आचार्य ! क्या मुझे जीना है ?”

“ भगे काक ! दर मत, तू भी निरोग होगा, राजा भी । वह राजा घट है, तुझे मरवा न डाले, हस्तछिये मैं नहीं लौटूँगा । ” (—कह) भद्रवतिरा हथिनी काफ़ी दे, जहाँ राजगृह था, वहाँको चला । क्रमशः जहाँ राजगृह था, जहाँ राजा विवमार था, वहाँ पहुँचा । पहुँचकर राजा विवमारको यह (सब) बात कह डाली ।

“ भगे जीवक ! अच्छा किया, जो नहीं लौटा । वह राजा घट है, तुझे मरवा भी डालता । ”

तब राजा प्रद्योतने निरोग हो, जीवक कौमार मृत्युके पास दूत भेजा— ‘ जीवक भाव, घर (= इनाम) दूँगा ’ ‘यम आय ! देव मेरा उपकार (= अधिकार) पाद रखें । ’ उस समय राजा प्रद्योतको घृष्ट भी हजार दुशालेके जोड़ोंमें अप्र=श्रेष्ठ=मुत्प=उत्तम=प्रवर शिवि (देव) के दुशालेका एक जोड़ा प्राप्त हुआ था । राजा प्रद्योतन उस शिवि दुशालेको, जीवकके शिरे भेजा । तब जीवक कौमार मृत्युको यह हुआ—

“ राजा प्रद्योतने मुझे वह शिविका दुशाला जोड़ा भेजा है । उन भगवान् अर्धवत् सम्पत्क संदुद्धि बिना या राजा तथागत श्रेणिक विवमारके बिना, दूसरा कोई हमने योग्य नहीं है । ”

उस समय भगवान्का शरीर दोष प्रस्त था । तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

“ आनन्द तथागतका शरीर दोष प्रस्त है, तथागत जुलाव (= विरज) ऐसा चाहते हैं । ”

“ आयुष्मान् आनन्द ! जहाँ जीवक था, वहाँ जाकर बोले—

“ आयुम जीवक ! तथागतका शरीर दोष प्रस्त है, जुलाव सेना चाहते हैं । ”

“ तो भन्ते ! आनन्द ! भगवान्के शरीरको कुछ दिन सिग्ध कर (= चिकित्सा करें) । ”

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान्का शरीरको कुछ दिन स्नेहित कर जाकर जीवक को बोले—

“ आयुम जीवक ! तथागतका शरीर अब सिग्ध है, अब जिसका समय समझो (समा करो) । ”

तब जीवक कौमार-मृत्युको यह हुआ—

‘ यह मेरे लिये योग्य नहीं, कि मैं भगवान्की मामूली जुलाव दूँ । ’ (इमलिये) तीन = उत्पल हस्तको नाना औपधोने आवृतकर, जाकर भगवान्को एक उत्पलहस्त (= वस्त्र) दिया—

“ भन्ते । इस पहिले उत्पल हस्तको भगवान् सूँघ, यह भगवान्को तब बार जुलाव लगायेगा । इस दूसरे उत्पल हस्तको ० नूँघ ० । इस तीसरे उत्पलहस्तको भगवान् सूँघ ० । इस प्रकार भगवान्को तीन जुलाव होंगे । ”

१ वर्तमान सीनी (त्रिलोचिन्तानके आस पासका प्रदेश) या शोरकट (पंचाव) के आस पासका प्रदेश ।

जीवक भगवान्को तीस जुलाबके लिये औषध दे, अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया । तब जीवकको बड़े दरवाजेमें निकलनेपर यह हुआ—‘मैंने भगवान्को तीस जुलाब दिया । तथागतका शरीर दोष रहित है, भगवान्को तीस जुलाब न होगा, एक कम तीस जुलाब होगा । तब भगवान् जुलाब होजानेपर नहायेंगे, तब भगवान्को एक और विरेचन होगा ।’ तब भगवान्ने जीवकके चित्तके वितर्कको जानकर, आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“जाओ ! जीवकको बड़े दरवाजे से निकलनेपर ० । इसलिए आनन्द ! गर्म जल तैयार करो ।”

“अच्छा भन्ते !” कह आयुष्मान् आनन्दने जल तैयार किया । तब जीवक जाकर भगवान्से बोला—

“सुखे भन्त ! बड़े दरवाजेसे निकलने पर ० । भन्ते ! स्नान करें सुगत ! स्नान करें ।”

तब भगवान्ने गर्म जलसे स्नान किया । नहाने पर भगवान्को एक (और) विरेचन हुआ । इस प्रकार भगवान्को पूरा तीस विरेचन हुये । तब जीवकने भगवान्को यह कहा—

“जब तक भन्ते ! भगवान्का शरीर स्वस्थ नहीं होता, तब तक मैं जूम पिंड पात (दूँगा) ।”

भगवान् का शरीर थोड़े समयमें ही रक्षित हो गया । तब जीवक उस शिविका दुशाळे को ले, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक थोड़ा घेडा । एक ओर बड़े जीवक ने भगवान्को यह कहा—

“म भन्ते ! भगवान्से एक घर मागता हूँ ।”

“जीवक ! तथागत घरके पो होगये हैं ।”

“भन्ते ! जो युक्त है, जो निर्दोष है ।”

“बोलो, जीवक ।”

“भन्ते ! भगवान् पासुरलिक (=लत्ताधारो) हैं, और भिक्षु संघ भी । भन्ते ० भूत यह शिविका दुशाला जोड़ा, राजा प्रद्योतने भेजा है । भन्ते ! भगवान् मेरे इस शिविके दुशाल जोड़ेको स्वीकार करें, और भिक्षु संघको गृहस्थोंके विधे चीवर (=गृहपति चीवर) की आज्ञा ० ।”

भगवान्ने शिविके दुशाळे को स्वीकार किया । भिक्षुसंघको आमंत्रित किया—

“भिक्षुआ ! गृहपति-चीवर (क उपयोग ही) अनुज्ञा देता हूँ । जो चाहे पासुरलिक रहे, जो चाहे गृहपति चीवर धारण करे । (दोनोंमें) किसीसे भी मे संसृष्टि कहता हूँ ।”

उस समय काशिराजने जीवक कोमार श्रुत्य को पांचमौका करल भेजा । जीवकने भगवान्को कहा—

१ अ क “भगवान्के बुद्धत्व प्राप्तिसे बीम वर्पितन किसीने गृह पति चीवर धारण नहीं किया । तब पासुरलिक ही रहे ।”

“मन्ते ! मुझे 'काशि-राजने' यह पात्र्यौका बंगल भेजा है । मन्ते ! भगवान् कम्बल को स्वीकार करें, जो कि दीर्घ-रात तक मेरे हिन-सुपने लिये हो ।”

भगवान् ने स्वीकार किया ।

“मिश्रुओ ! त्व प्रकारके चीउरोकी अनुत्ता देता हूँ, (१) क्षाम (२) कापासिरु (=कपा सका), (३) कापेय (=रेक्षम), (४) कम्बल, (५) सान (=सनका), (६) भंग ।

उस समय मिश्रु अचिउत्रक (=विना काटका जोड़े) ही कपाय (बखो) को धारण करते थे । तत्र भगवान् राजगृहमें यथेच्छ विहारकर जहा दक्षिणागिरि है, वहा चारिकाको गये । भगवान् ने मगधके गेतेको अवि (=बधारी) उद्ध, पालि (=मेड) बद्ध = मयादाबद्ध, शृङ्गाटक- (=फोनोका मेल) उद्ध देखा । दप्पर आयुमान् आनन्दको संबोधित किया—

“आनन्द ! देखने हो मगधके गेतेको—अर्चि बद्ध ० ? ” “मन्ते ! हा ”

“आनन्द ! मिश्रुओं कलिये इस प्रकारका चीवर बना सकते हो ?”

“भगवान् ! (बना) सकता हूँ ।”

दक्षिणागिरिमें ह्छात्रानुमार विहारकर भगवान् पुन राजगृहमें छोट आये । तत्र आयुमान् आनन्द यहूतमे मिश्रुओंके चीवरोको उनाका, जहा भगवान् थे वहा गये, जाकर भगवान् को यह बोले—

“मन्ते ! भगवान् देव, मेने चीवर बनाये हैं ।”

भगवान् ने इसी निदान = इसी प्रकारसे धार्मिक क्या कहका मिश्रुओंको आमंत्रित किया—

“मिश्रुओ ! आनन्द वञ्जित है, मिश्रुओ ! आनन्द महाप्रम है, इसने मर संक्षेपसे कहे का विस्तारसे अर्थ जान लिया । बुभी भी बनाई, भाघी कुभी भी बनाई । मंडल भी बनाया, भाघा मंडल भी बनाया । विवर्त भी बनाया अनु विवर्त भी बनाया । ग्रैयैक भी बनाया, आपयक भी० । वाहन्त भी० । छिन्नक (=चंडवैडकर जोड़ा चीवर) मत्थ ल्छ (=शास्त्र रक्ष) चीवर, अमजोके योग्य, प्रत्यर्थियों (=चोर आदि) क (लिये) रेकामका होगा ।”

“मिश्रुओ ! छिन्नक-मघाटी, निन्नक उत्तरामग, छिन्नक-अन्तरवासकी अनुत्ता फाता हूँ ।”

जीवक भगवान्को तीस जुलाबके लिय औपध दे, अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर कल दिया। तब जीवकको बड़े दरवाजेसे निकलनेपर यह हुआ—‘येने भगवान्को तीस जुलाब दिया। तथागतका शरीर दोष प्रसूत है, भगवान्को तीस जुलाब न होगा, एक कम तीस जुलाब होगा।’ तब भगवान् जुलाब होजानेपर नहायेंगे, तब भगवान्को एक और विरचन होगा। तब भगवान्को चीवरके बित्तके बित्तके जानकर, आयुमान् आनन्दको कहा—

“आने ! जीवकको बड़े दवाजे से निकलनेपर ०। इमलिए आनन्द ! गर्म जल तैयार करो ।”

‘बच्छा भते !’ कह आयुमान् आनन्दने जल तैयार किया। तब जीवक जाकर भगवान्से बोला—

“सुते भन्ते ! बड़े दवाजेसे निकलने पर ०। भन्ते ! स्नान कर सुगत ! स्नान कर ।”

तब भगवान् गर्म जलसे स्नान किया। नहाने पर भगवान्को एक (और) विरचन हुआ। इस प्रकार भगवान्को दूरे तीस विरचन हुये। तब जीवकने भगवान्को यह कहा—

“जब तक भन्ते ! भगवान्का शरीर स्वस्थ नहीं होता, तब तक मैं जल सिंघ पात (दूँगा) ।”

भगवान् का शरीर थोड़े समयमें ही स्वस्थ हो गया। तब जीवक उस शिविक दुगारे को ए, जहा भगवान् थे, कहा गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक और बोला। एक और बड़े जीवक ने भगवान्को यह कहा—

“मैं भन्ते ! भगवान्से एक वर मागता हूँ ।”

“जीवक ! तथागत तूके पुरे होगये है ।”

“भन्ते ! जो युक्त है, जो निर्णेप है ।”

“गोली, जीवक ।”

“भन्ते ! भगवान् पासुहलिक (= लताधारी) है, और भिक्षु संघ भी । भन्ते ! यह शिविका दुशाला जोड़ा, राजा प्रयोतने भेजा है । भन्ते ! भगवान् मेरे इस शिविके दुशाले जोड़ेको स्वीकार करें, और भिक्षु संघको ग्रहस्थोके लिये चीवर (= ग्रहपति चीवर) की आना है ।”

भगवान्ने शिविके दुशाले को स्वीकार किया। भिक्षुसंघको आमंत्रित किया—

“भिक्षुओ ! ग्रहपति चीवर (के उपयोग की) अनुज्ञा देता हूँ। जो चाहे पासुहलिक जो चाहे ग्रहपति चीवर धारण करें। (दोनोंमें) किसीसे भी मैं संतुष्टि कहता हूँ ।”

उस समय काशि राजने जीवक कोमार-भृत्यने पांचमौका कयल भेजा।

भगवान्को कहा—

१ अ क ‘भगवान्के’ कुछ नहीं किया। सब पासुहलिक ही रहे ।

किसीने ग्रह पति चीवर

“भन्ते ! मुझे काशि राजने यह पाचमौका बँजल भेजा है । भन्ते ! भगवान् कम्बल को स्वीकार करें, जो कि दीर्घ-रात तक मेरे हित-सुखके लिये हो ।”

भगवान्ने स्वीकार किया ।

“भिक्षुओ ! छ प्रकारके चीरोंकी अनुना देता हूँ, (१) क्षाम (२) कापामिक (=कपा-सका), (३) कौपेय (=रेशम), (४) कम्बल, (५) सान (=सनका), (६) भंग ।

उस समय भिक्षु अच्छिन्नक (=जिना फाटकर जाड़े) हो कपाय (घटो) को धारण करते थे । तब भगवान् राजगृहमें यथेच्छ विहारकर जहा दक्षिणागिरि है, वहा चारिकाको गये । भगवान्ने मगधके ऐतको अर्बि (=कपास) रद्ध, पालि (=मट) रद्ध = मर्यादा-रद्ध, श्रद्धा-रद्ध (=कोनोका मेल) -रद्ध देगा । दक्षकर आयुमान् शान-दको संयोजित किया—

“आनन्द ! देखने हो मगधक ऐतोंको—अर्बि रद्ध ० १ ” “भन्ते ! हा ”

“आनन्द ! भिक्षुओं केलिये हम प्रकारका चीर बना मरते हो १”

“भगवान् ! (बना) सकता हूँ ।”

दक्षिणागिरिमें हच्छानुसार विहारकर भगवान् पुन राजगृहमें लौट आये । तब आयुमान् आनन्द बहुतसे भिक्षुओंक चावोरो बनाकर, जहा भगवान् थे वहा गये, जाकर भगवान्को यह बोले—

“भन्ते ! भगवान् देखें, मेने चीवर बनाये हैं ।”

भगवान्ने इसी निदान = हमी प्ररक्षण धार्मिक बया कहकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“भिक्षुओ ! आनन्द पंडित है, भिक्षुओ ! आनन्द महाप्रज्ञ है, इसने मेरे संनैपसे कहे का विस्तारसे अर्थ जान लिया । कुमी भी बनाई, आधी कुमी भी बनाई । मंडल भी बनाया, बाधा मंडल भी बनाया । विवर्त भी बनाया, अनु विवर्त भी बनाया । धैर्यक भी बनाया, जापेयक भी० । वाहन्त भी० । छिन्नक (=छड़थंडकर जोड़ा चीवर) मत्थ एत्थ (=शख दक्ष) चीवर, अमणोंके योग्य, प्रवर्धियों (=चोर आदि) न (गिये) रेनामका होगा ।”

“भिक्षुओ ! छिन्नक-मघादी, निन्नक उत्तरासग, छिन्नक-अन्तरवामसी अनुना करता हूँ ।”

चोरीकी (२) पाराजिका । त्रिवीकर-विधान । मैथुन (१)

पाराजिका । (वि. पू. ४५१) ।

१ उस समय भगवान् राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर विहार करते थे ।

ऋतसे सन्नान्त = संष्ट मिथु ऋषिगिरि (= हसिगिरि) की गलम तृण-कुटी बना घपावास करते थे । आयुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्र भी तृण-कुटी बना घपावास करते थे । तब वह मिथु घपावासकर तीन मासके बाद तृण-कुटियोंको उजाड़, तृण और काष्ठ मयूरकर, जनपद धारिया (= रामत) को चले गये । किन्तु आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्र, जहाँ घपामें गये, वहाँ हमन्तम, वहाँ घोषम भी । आयुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्रक गाँवमें पिंडपात (= मिष्टा) के लिये जानेपर, तृण हारिणिर्वा, काष्ठ-हारिणिर्वा तृण-कुटीको उजाड़कर, तृण और काष्ठ लेकर चली गई । दूसरीवार भी आयुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्रने तृण और काष्ठ जमाकर तृण-कुटी बनाई । दूसरीवार भी आ० धनिय० के गाँवमें० । तीसरीवार भी० । तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रको यह हुआ — तीसरीवार भी मेरे गाँवमें पिंडपातके लिये जाँवर ० तृण और काष्ठ लेकर चली गई । मैं अपने आचार्यक (= पेशा) कुम्भकार काममें सु शिक्षित हूँ । वर्षों न मैं स्वयं कीचड़ मईनकर सारी मट्टी होकी कुटी बनाऊँ । तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्रने स्वयं कीचड़ मईनकर सारी मृत्तिका-मय कुटी बना, तृण, गोश लकड़ी इकट्ठाकर उन कुटीको पकाया । वह अभिरूप = दर्शनीय = प्रासादिक लालरंगकी हुई, जैसे कि बीर बहूश (= इन्द्र गोश) । जेबे किंकिमोका शब्द, वेते ही उस कुटीका शब्द होता था ।

भगवान्ने ऋतसे मिथुआके साथ गृध्रकूट पर्वतसे उतरते उस अभिरूप० लाल कुटिका को दया । देखकर मिथुओंको आमंत्रित किया —

“ मिथुओ ! यह अभिरूप० लाल बीर-बहूटी जैसी क्या है ? ” तब भगवान्ने इन मिथुआने वह (सन) बात कही । भगवान्ने धिक्कारा —

“ मिथुओ ! उस नालायकको यह अनु-अनु-ठविरु = अनु-अनुलोम = अ प्रतिरूप (= अयोग्य), श्रमग आचारके विरुद्ध, अ-रुल्य = अ कारणीय है । कैसे मिथुओ ! उस मोघ पुरुषने सारी मृत्तिकामयी कुटी बनाई ? मिथुओ ! मोघ पुरुषको प्राणियोंपर दया = अनुकृपा = अ विहिंसा न होगी । जाओ मिथुओ इसे तोड़ डालो, जिनमें आनेवाली जनता प्राणतिगात में न पड़े । और मिथुओ ! सर्वमृत्तिकामयी कुटी न बनाना चाहिये । जो बनावे उसका दुष्कृत की आपत्ति ।

“ अच्छा भते । ” भगवान्को कह, वह मिथु जहाँ वह कुटिका थी, वहाँ गये ; जाकर (उन्हाने) उस कुटिकाको फोड़ डाला । तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्रने उन मिथुओंको कहा —

“ आयुषो ! तुम मेरी कुटिकाको क्यों फोड़ते हो ? ”

१ पाराजिका २ ।

“आहुस ! भगवान् फोड़वा रहे हैं ।”

“आहुसो ! फोड़ो यदि धर्म-स्वामी फोड़वाते हैं ।”

तत्र आयुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्रको यह हुआ—“तीन तीन बार मेरे गाँवमें पिंड पातके लिये जानेपर, तृण हरिणियां० तृण, काष्ठ उद्यो ले गईं । जो मां सवमृत्तिहामयी कुटी बनाई, वह भी भगवान्ने फोड़वा दी । दास गृहमें (= काठ-गोदाम) में गणक (= क्लार्क) मेरा परिचित (= सँदिद्ध) है । क्यों न मैं दासगृहमें गणकमें एकड़ी माग्नर एकड़ीके भीतवाली कुटी बनाऊँ । तब आयुष्मान् धनिय० जहाँ दासगृह का गणक था, वहाँ गये । जाकर दासगृहके गणकको बोले—

“आहुस ! तीन बार गाँवमें मेरे पिंडपातक लिये जानेपर० । आहुस ! मुझे एकड़ी दो, एकड़ीके भीतवाली कुटी बनाना चाहता हूँ ।”

‘भते ! वैसे काष्ठ नहीं है, जिन्हें मैं आर्यको दूँ । भन्ते ! यह राजकीय (= दसगृह) काष्ठ । नगरकी मरम्मतके लिये रखे हैं । यदि राजा दिलगुन, तो भन्ते ! उसे लेजाओ ।’

“आहुस ! राजाने (दे) दिया है ।”

तत्र दासगृहके गणकने—‘ यह धान्यपुत्रोय श्रमण (= संन्यासी) धर्म पारा, समचारी, प्रसवारी, सत्ववादी, शीलवान् वचनवाण वमा होते हैं । राजाभा इनपर अभिप्रसन्न है । अदिन (= न दिये) को दिन (= दिया) नहीं यह सकने ।—मोच, आयुष्मान् धनिय० को यह कहा—

‘भते ! ले जाओ’

आयुष्मान् धनिय० ने उन काष्ठको खडागडो कणकर, गारीम दुल्लाकर एकड़ीके भीतकी कुटी बनाई ।

तत्र मगधका महामात्य वर्षकार ब्राह्मण राजगृहमें कर्मन्ते (= कामा) का निरीक्षण (= अनुसन्धान) करने, जहाँ दास गृहका गणक था, वहाँ गया । जाकर दास-गृह गणक को बोला—

“ भगे ! जो वह राजकीय काष्ठ नगरकी मरम्मतकेलिये = आपत्के लिये रखे थे, यह कहा है ? ”

“ स्वामी ! देवने उन काष्ठको आय धनिय कुम्भकार पुत्रको दे दिया ।”

तत्र वर्षकार ब्राह्मण मगध महामात्य रज हुआ—‘ केषु दशने नगरको मरम्मत कलिये, आपत्केलिये वसे राजकीय काष्ठको धनिय कुम्भकार (= पुत्रको) कैसे दे दिया ? ” तत्र वर्षकार मगध महामात्य जहाँ राजा त्रिमल था, वहाँ गया, जाकर राजा विमल को बोला—

१ अ क “नगरकी मरम्मतके उपकरण । ‘आपत् के लिये० आगलगने या पुराना होनेसे, या शत्रुराजाके घेरावनेसे या गौपुर, अटालक, राजाका अन्तपुर, हथमार आदिकी विपत्ति ।

“ क्या सच-मुच दाने नगरकी मरम्मतकेलिये, आपत्केलिये रखे राजकीय काष्ठको धनिय कुम्भकार पुत्रको दे दिया ? ”

“ किन्तु ऐसा कहा ? ”

“ देख । दारु गृहके गणक ने । ”

“ ता दारु गृह गणकको थाग दो । ”

तब धर्षकार ब्राह्मण मगध-महामातृके दारु-गृह-गणकको बाधनेका हुकुम दिया । आयुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्रने दारु-गृह-गणकको बाधकर ले जाते देखा । देखकर दारु-गृह गणकको पूछा—

“ आबुस ! (तुम्हे) क्यों बाधकर ले जा रहे हैं ? ”

“ भन्ते ! उन लकड़ियोंके लिये ? ”

“ चलो आबुस ! मैं भी आता हूँ । ”

“ भन्ते ! मेरे मार जानेसे पहिले जाना । ”

तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्र जहा राजा बिस्सारका निवास था, वहाँ गये । जाकर निज आसनपर बैठे । तब राजा बिस्सार जहा आयुष्मान् धनिय थे, कहा गया । जाकर आयुष्मान् धनिय को अभिषादनका, एक ओर बठ गया । एक ओर बठे राजा बिस्सारने आयुष्मान् धनिय को कहा—

“ भन्ते ! क्या मेन सचमुच राजकीय काष्ठ आर्यको दिये ? ”

“ हा, महाराज । ”

“ भन्ते ! हम राजा लोग बहुवृत्त्य = बहुकरणीय (= बहुत कामगार) होते हैं, दक भी नहीं स्मरण करते । अच्छा तो (= इध) भन्ते ! स्मरण करावें । ”

“ महाराज । याद है, प्रथम अभिषेक होनेपर यह वचन बोले थे—धमण ब्राह्मणोंको तृण-काष्ठ उदक दे दिया, (उनका) परिमोग कर । ”

“ भन्ते ! याद करता हूँ, धमण-ब्राह्मण लज्जावान्, संदेहवान्, संयम आकाक्षी (होते हैं) उन्हें थोड़ी सी (बात)में भी सन्देह उत्पन्न होता है । उनके खयालसे मेने कहा (था) और वह तो जगलमें बेमालिकके (तृण-काष्ठ-उदक)के विषयमें (था) । सो भन्ते ! तुमने उस बातसे लदिय (= निना दिये) दारु (= काष्ठ)को ले जाना मान लिया । भन्ते ! मेरे जेमा (आदमी) राज्यमें बसते कैसे कोई धमण या ब्राह्मणका हनन करे, या बंधन करे, या देशसे निकाले (= पञ्चाजेय) । भन्ते ! जाओ लोम (= रोयें)से बँच गये । फिर ऐसा मत करना । ”

१ अ क “ जैसे (कुछ) धूर्त मास छानेके लिये महार्घ-लोमगाली भेड़को पकड़ ले जाय । तब उसको दूसरा विज्ञ पुरुष देखकर, ‘ इस भेड़का मास एक कार्यापण मूल्यका है । लोम (= बाल) तो हर कटाईके समय अनेक कार्यापण मूल्यके हैं ’ (साच), दो लोम रहित भेड़ दे, ले जाये । इस प्रकार वह भेड़ विज्ञ पुरुषको पा लोमके कारण मुक्त हो जाय । ऐसे ही तुम इस प्रव्रज्या चक्र रूपी लोमसे, भेड़की तरह विज्ञ पुरुषको प्राप्त हो, मुक्त हो गये । ”

मनुष्य (इसे कुम्भकर) सोचते, कुदते धिक्कारते थे—‘ शाक्य पुत्रीय श्रमण निर्लज्ज हैं, ऋद्धील (=दुराचारी) मृषावादी हैं । यह (अपने लिये) धर्म चारी सम चारी ब्रह्मचारी, सत्यवादी, शीलवान्, कल्याण धर्मा (होनेका) दावा करते हैं । इनमें श्रमण पन (=श्रामण्य), नहीं है, इनमें ब्राह्मण्य नहीं है । इका श्रामण्य नष्ट हो गया, इका ब्राह्मण्य नष्ट हो गया । कहा है इनको श्रामण्य ? कहा है इनको ब्राह्मण्य ? श्रामण्यमें यह दूर है । राजाको भी यह ठगते हैं, और मनुष्याको तो बात क्या ?’ भिक्षुओं ने उन मनुष्योंको सोचते कुदते, धिक्कारते सुना । तब जो अल्लेच्छ, संतुष्ट, लज्जावान्, चिन्तावान् (=कौटिल्यक) मंदम-हृदयक भिक्षु थे, वह सोचने कुदने, धिक्कारने लगे—‘कैसे आयुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्रने विना दिये राजाके दाव ले लिये ।’ तब उन भिक्षुओंने भगवान्को यह बात कही । भगवान्ने इसी निदान = इसी प्रकाणमें भिक्षु संघको एकत्रितकर आयुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्रको पूछा—

“ धनिय ! क्या तूने सचमुच राजाके अदत्त काष्ठका आदान (=ग्रहण) किया ? ”

“ भगवान् सच मुच । ”

भगवान्ने धिक्कारा—“ मोघ पुरुष ! (तूने यह) अन् भनुच्छविक = अन् भनुगोमिक = अ-प्रतिरूप (=अयोग्य), अ श्रामण्य = अ-कल्प्य = अ-करणीय (किया) । मोघ पुरुष ! राजाके अदत्त काष्ठको तूने कैसे आदान किया ? मोघ पुरुष ! यह अ-प्रमत्तोंको प्रमत्त करनेके लिये नहीं, प्रमत्तों (की प्रमत्तता) को बढ़ानेके लिये नहीं । बल्कि मोघ पुरुष ! अ प्रमत्तोंको अप्रसन्न करनेके लिये, प्रमत्तोंमें भी कितनोंको अभ्यया (=उल्टा) कर देनेके लिये है । ”

उस समय भिक्षुओंमें प्रव्रजित हुआ, एक भूत पूर्ण शयनहार आमास्य (=जन, न्यायाधीन) भगवान्ने अ विदूर (=समीप) बैठा था । भगवान्ने उस भिक्षुको पूछा—

“ भिक्षु ! राजा माग्य श्रेणिक बिजमार कितने (व अपराध) से चोरको पकड़ कर मारता है, बाँधता है, या देश निकाल देता है ? ”

“ पादसे भगवान् ! या पादके बाहर मूल्य होने से । ”

उस समय राजगृहमें पाच भापक (=मासा) का पाद होता था । तब भगवान्ने आयुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्रको धिक्कार कर—

‘ जो कोई भिक्षु ग्राम या अरण्यसे चारी मानी जानेवाली अन्त (वस्तु) ग्रहण कर जितनेक अदत्तात्मानने राजाके चोरको पकड़कर—(१) चोर है, बाल है, मूढ़ है, स्तेन है (२) मारें, बाँधें या देश निकाल दें । उतनेक अदत्त आदान (=विना दिया देने) से भिक्षु पाराजिक होता है, (भिक्षुओंके साथ) न वास करने लायक ।

‘ पाराजिक होता है ’ = जैसे डेपसे टूटा पीला पत्ता (फिर) हरा होने लायक नहीं होता, ऐसेही भिक्षु पाद या पाद-मूल्यक या पादसे अधिक चोरी माने जानेवाले अदत्तोंको आदानकर, अ श्रमण अ शाक्य पुत्रीय होता है, इस लिये कहा ‘ पाराजिक होता है ’ ।

१ अ क “ पाच भापका पाद होता था । उस समये राजगृहमें बीस मासेका कापापण (=कहापण) होता था, इसलिये पाच मासेका पाद । इस लक्षणे से सब जनपदोंमें कहापणका चतुर्थ भाग पाद जानना चाहिये । यह पुरानेनील कहापणके वारमें है, दूसरे रजदामक आदिके (कहापणोंके वारेमें) नहीं ।

त्रिचीवर-विधान।

राजगृहम यथेच्छ विहारकर भगवान् जहा वेशाली है, वहा चारिका केलिये चले। राजगृह और वेशालीक बीचके मार्गमें जाते, भगवान्ने बहुतसे भिक्षुओंको चीवरोंकी गयी— शिरपरभी चीवरकी गठरी, कन्धेपरभी चीवरकी गठरी, कमरमेंभी चीवरकी गठरी—ऐकर आते देखा। देखकर भगवान्को हुआ—“बड़ी जट्टदी यह नालायक (=मोघ-पुरष) क्यों लग पड़े। क्यों न मे भिक्षुओं केलिये चीवर-सीमा=चीवर मर्यादा। रथापित करूं। क्रमशः चारिका करने भगवान् जहा वेशाली है, वहा पहुँचे। वहा वेशालीमें भगवान् गौतम चेत्यमें गिराए करते थे। उस समय भगवान् छण्डी अन्तरट्टका (माघ और फाल्गुनके बीचकी आठ वर क) हेमन्तकी रातोंमें हिमपातके समय सुली जगहमें एक चीवर ले २। भगवान्को ठंडक न मालूम हुई। प्रथम याम चीतजाने पर (=१० बजनेके बाद) भगवान् को ठंडक मालूम हुई, भगवान्ने दूसरा चीवर ओढा, भगवान्को ठंडक न मालूम हुई। मध्यम याम चीत जानेपर (=२ बजनेके बाद) भगवान्को ठंडक मालूम हुई, भगवान्ने, एक और चीवर ओढा, भगवान्को ठंडक न मालूम हुई। पश्चिम (=पिछले) याम (=पहर) की चीतजानेपर, टाली पेलते, रात्रिके नन्दिमुखी होते समय, भगवान्को ठंडक मालूम हुई, भगवान्ने चौथा चीवर ओढा, भगवान्को ठंडक न मालूम हुई। तब भगवान्को यह हुआ—जोभा वह शीताल भी कुछ-पुत्र हय धर्ममें प्रयत्नित हुये हैं, वह भी तीन चीवरसे गुज्रा कर सकते हैं, क्यों न मे भिक्षुओंके चीवर का सीमा बाँध, मर्यादा स्थापित करूं, नि जीरका अनुत्ता (=आज्ञा) दूं। तब भगवान्ने भिक्षुओंको आमन्त्रित किया

“भिक्षुओ! तीन चीवरकी अनुत्ता देता हूँ—दोहरी संघादी, एकहारा उत्तराण्ड (=ऊपरकी चादर), पञ्चरा अन्तर्वासक (=लुगी)।”

मैत्रुन-(१) पाराजिका।

उस समय वज्जीम दुर्मिक्ष था।। तब आयुष्मान् सुन्निहको यह हुआ—“इस समय वज्जीम दुर्मिक्ष है, उँछ परिग्रहसे (जीवन) थापन करना मुश्किल है। और वेशालीमें मेरी जातिनाले बहुत आरण्य=महाधनी=महाभोगवाले बहुत-सोना-चाँदीवाले, बहुत वित्त उपकरणवाले, बहुत धन धान्यवाले हैं। क्यों न मे जातिनालोका आश्रय ले विहार करूं। जातिनाले सुते दान देंगे, पुण्य करेंगे, भिक्षुओंका लाम पायेंगे, मे भी पिंडसे सत्कलीक न पाऊंगा।” तब आयुष्मान् सुदिघ्न क्षयनासन सँभालकर, पात्रचीवर ले, जिघर वेशाली थी, उधर चले। क्रमशः जहा वेशाली थी, वहा पहुँचे। वेशालीमें आ० सुदिघ्न महावनमें विहार करते थे। आयुष्मान् सुन्निह जातिनालो (=जातक) ने सुना—सुदिघ्न कण्ठ पुत्त वेशालीम आय हैं। तब यह आयुष्मान् सुदिघ्नके लिये साठ स्यालिपाक भोजनार्थ ले आये। आयुष्मान् सुदिघ्न उन साठ स्यालि-पाकोंसे भिक्षुओंको देकर, पूवाङ्क समय (चीवर) पहिनकर, पात्र चीवर हाथमें ले, कण्ठ ग्राममें पिण्ड चार करते जहाँ अपने पिताका घर था, वहा गये।

उस समय आयुष्मान् सुदिघ्नकी गृहदाम्नी (=जाति-दासी) वासी (=अभि शेषिक)

१ पाराजिका १।

ढाल (=कुम्मास, कुलमाप) को पेंकना चाहती थी । आयुष्मान् सुदिन्नने उस शक्ति-दासीको कहा—

“भागिनी ! यदि वह पेंकनेको है, तो यहा मेरे पान्मे ढाल दे ।”

आयुष्मान् सुदिन्नकी ‘शक्ति-दासी, उस बासी कुलमापको’ पात्रमें ढालते वस्त्र, हाथ, पैर और स्वरको अनुहारको पहिचान गई । तब शक्ति-दासी जाकर आयुष्मान् सुदिन्नकी माताको बोली—

“अरे अय्या ! जानती हो, आर्य-पुत्र सुदिन्न आ पहुँचे हैं ।”

“यदि जे ! (=मगही ने ।) मच बोलती है, तो तुझे अ-दासी करती हूँ ।”

“आयुष्मान् सुदिन्न उस बासी कुलमापको एक भीतकी जड़में बैग्यर स्वाते थे । आयुष्मान् सुदिन्नके पिताने कर्मान्त (=काम) परसे आते, आयुष्मान् सुदिन्नको उस बासी कुलमापको ० खाते देखा । देखकर जहा आयुष्मान् सुदिन्न थे, वहा गया । जाकर बोला—

“अरे ! तात सुदिन्न ! बासी कुलमाप खा रहे हो ? क्या तात सुदिन्न ! अपने घर नहीं चलता है ?”

“गया था गृहपति ! तौरे घर, यहीं मे यह बासी कुलमाप (मिला) है ।”

तब आयुष्मान् सुदिन्नका पिता हाथसे पकड़कर यह बोला—

“आपो तात सुदिन्न ! घर चलें ।”

तब आयुष्मान् सुदिन्न जहा उनके पिताका घर था, वहा गये । जाकर बिटे आमनपर बैठे । तब आयुष्मान् सुदिन्नके पिताने कहा—

“तात ! सुदिन्न भोजन करो ।”

“बस गृहपति ! आज मैं भोजन कर चुका ।”

“तात सुदिन्न ! कल्ला भोजन स्वीकार करो ।”

आयुष्मान् सुदिन्नने मोनमे स्वीकार किया । तब आयुष्मान् सुदिन्न आमनमे उग्यर खड़े गये ।

आयुष्मान् सुदिन्नकी माताने उस रातक बोतनेपर, हर गोबरसे पृथिरीको लिपाकर दो हर लगवाये, एक हिरण्य (=अशर्फी) का, और एक सुवर्ण (=सोना) का । इतने बड़े पुँन हुये, कि इधर रगड़ा पुरुष, उधर खड़े पुरुषको नहीं देख सकता था, न उधर सड़ा पुरुष इधर खड़े पुरुषको देख सकता था । उन पु जोंबो खयईसे वक्या, बोवम आसन बिट्या, कजाव पिरवा, आयुष्मान् सुदिन्न की पुरानी स्त्रीको सयोधित किया—

“तो वह ! जिम अल्लकारसे अल्लूट हो, मेरे पुत्र सुदिन्नको प्रिय=मनाप लगा करता थी, उस अल्लकार से अल्लूट हो ।”

१ अ क. “मगवान् (के बुद्धत्व) के शारद्वे वषम सुदिन्न प्रमत्तिन हुये, दोमये वष पतिहृत्तम पिंडके लिये प्रविष्ट हुये, स्वर्ण प्रमज्यामें आठ वर्षक थे इमलिय उसे यह शक्ति-दासी इल्लहर भा नहीं पहिचानती थी ।”

“अच्छा, अया ॥”

तब आयुमान् सुदिन पूर्वाह्न समय (चीवर) पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ उनके पिता का घर था, वहाँ गये। जाकर निछे वासनपर बैठे। तब आयुष्मान् सुदिनका पिता जहाँ आयुष्मान् सुदिन थे, वहाँ आया। आकर उन पुत्रोको खोलवा कर, आयुष्मान् सुदिनको बोला—

“तात सुदिन। यह कबल तेरी माताका स्त्रीधन है, पिताका, पितामहका अलग है। तात सुदिन। गृहस्थ बनकर भोगभी भोगनेको मिल सकता है। पुण्यभी करने को। आओ तात सुदिन। फिर गृहो बनकर भोगोको भोगो, और पुण्योको करो ॥”

“तात। (मे) नहीं चाहता, (मैं) नहीं (कर) सकता, अभिरत (=अनुरत) हो ब्रह्मचर्य पालन कर रहा हूँ ॥”

दूसरी रात्री बोला०। तीसरी वारभी तात सुदिन! वह तेरा०।

“गृहपति। यदि बहुत रज न हो, तो तुझे बोलू ॥”

“तात सुदिन। बोलो ॥”

“तो तू गृहपति! बड़े बड़े योरे बनकर हिरण्य मुजुर्ण भरकर, इसे गाड़ियाँसे डुबवा, गंगाकी धाराके बीचम डाल दे। सो किम हेतु? गृहपति। जो तुझे इसके कारण भय, जड़ता, रोमाच, रखवाली करती, पड़गा वह इससे न होगी ॥”

ऐसा करने पर आयुष्मान् सुदिनका पिता दुःखी हुआ—‘पुत्र सुदिन ऐसा कैसे करेगा?’ आयुष्मान् सुदिनका पिताने आयुष्मान् सुदिन की स्त्रीको बुलाया—

“तात, तू भी कह, क्या जाने पुत्र सुदिन तेरा पचन ही माने ॥”

आयुष्मान् सुदिन की स्त्री आयुष्मान् सुदिनका पेर पकड़कर, आयुष्मान् सुदिन को बोली—

“आर्यपुत्र। वह कैसे अप्सरायें हैं, जिनकेलिये तुम ब्रह्मचर्य चर रहे हो?”

“भगिनी। मे अप्सराओकेलिये ब्रह्मचर्य नहीं कर रहा हूँ ॥”

तब आयुष्मान् सुदिन की स्त्री—‘आज आर्यपुत्र सुदिन मुझे भगिनी कहकर पुकारते हैं’, (सोच) वहाँ मूर्छित हो गिर पड़ी। तब आयुष्मान् सुदिनने पिताको कहा—

“गृहपति। यदि मुने भोजन देनाहो, तो दो, तर्जनीफ मत दो।

“तात सुदिन। आओ ॥” तब आयुष्मान् सुदिनको माता और पिताने उत्तम साथ भोज्यसे अपने हाथ संतर्पित=संप्रवारित किया। आयुष्मान् सुदिनकी माता, आयुष्मान् सुदिनके खाकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर बोली—

“तात सुदिन। यह आद्य० कुल है, तात सुदिन। गृहीयनकर भी भोग भोगनेको तथा पुण्य करनेको मित्र सकता है। आओ तात सुदिन। गृहीयन, भोग भोगो और पुण्य करो ॥”

“अम्मा ! मे नहीं चाहता, नहीं सकता, अभित हो महाचर्य चर रहा हूँ ।”

दूसरी बार भी० । तीसरी बार भी माताने सुदिनको कहा—

“तात सुदिन ! यह हमारा आख्यं कुं है । (अच्छा) तात सुदिन ! योजक (=वीरसे उत्पन्न पुत्र) ही दो, ऐसा न हो कि हमारी अ पुत्रक संपत्ति लिच्छवी ले जाय ।”

“अम्मा ! (यह) मुझसे किया जा सकता है ।”

“तात सुदिन ! कहा इस वक्त तुम विहार करते हो ।”

“अम्मा ! महावनसे ।” तब आयुष्मान् सुदिन आसनसे उठ चले गये ।

आयुष्मान् सुदिनकी माताने आयुष्मान् सुदिनकी स्त्रीको आमंत्रित किया—

“ (अच्छा) तो बहू ! जब नतुनी होना, जब तुझे पुत्र उत्पन्न हो, तो मुझे कहना ।”

“अच्छा अम्मा !” ।

तब आयुष्मान् सुदिनकी पुराण दुर्तायिका (=स्त्री) नतुनी हुई, उसे पुत्र उत्पन्न हुआ । तब माताको कहा—

“मे नतुनी हूँ अम्मा ! मुझ पुत्र उत्पन्न हुआ है ।”

“तो बहू ! जिस अलंकारसे अलंकृत हो भरे पुत्र सुदिनको प्रिय = मनाप लगती थी, उस अलंकारसे अलंकृत होओ ।”

“अच्छा अम्मा !” ।

आयुष्मान् सुदिनकी माता० सुदिनकी स्त्रीको लेकर जहां महावा था, जहां आयुष्मान् सुदिन थे, वहां गई, जाकर आयुष्मान् सुदिनकी बोली—

“तात सुदिन ! यह हमारा आख्यं कुं है ।”

दूसरीबार भी० । तीसरीबार यह बोली—

“तात सुदिन ! ०नात सुदिन ! योजक ही दो, ऐसा न हो, कि हमारा अ पुत्रक संपत्ति लिच्छवी ले जायें ।”

“अम्मा ! यह मुझसे किया जा सकता है ।”

(कह आ० सुदिनने) स्त्री की याह परड़कर महावनके भीतर घुसकर, शिक्षापद (=मिथु नियम) के प्रनाथित न होनेके समय, दुष्परिणामको न दृष्टि स्त्रीके साथ तीनवार मीथुन धर्म सेवन किया । उससे वह गर्भवता हुई ।

तब आयुष्मान् सुदिनकी स्त्रीने उस गर्भवत परिपक्व होनेपर पुत्र प्रसव किया । आयुष्मान् सुदिनके मित्रोने उस पुत्रका नाम योजक रक्खा । आयुष्मान् सुदिनकी स्त्रीका नाम योजक-माता०, और आयुष्मान् सुदिनका नाम योजक पिता । विष्णु समयमें वह दोनों घाते पेपर प्रवर्तित हो अर्हत्त्वपद (=मुक्ति) को प्राप्त हुये ।

१ अ क. “हमलोग लिच्छवी गण राजाओंके राज्यमें बसते हैं । वह सर पिताके मरने पर इस सम्पत्ति, इस महान् विभवको, रक्षक पुत्र न होनेसे, अ पुत्रक कुलजनको अपने राज अन्त पुरमें ले जायेंगे ।”

“अच्छा, आया !”

तब आयुष्मान् सुदिन्न पूवाह्न समथ (चीवर) पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ उनके पिता का घर था, वहाँ गये । जाकर निछे आसनपर बड़े । तब आयुष्मान् सुदिन्नका पिता जहाँ आयुष्मान् सुदिन्न थे, वहाँ आया । आकर उन पुत्रोको गोल्वा कर, आयुष्मान् सुदिन्नको बोला—

“तान सुदिन्न । यह केवल तेरी माताका छोधन है, पिताका, पितामहका मलम है । तात सुदिन्न । गृहस्थ बाकर भोगभी भोगनेको मिल सकता है । पुण्यभी करने को । आओ तात सुदिन्न । फिर गृहा बाकर भोगोको भोगो, और पुण्याको करो ।”

“तात । (म) नहीं चाहता, (म) नहीं (कर) सकता, अभिरत (=अनुरक्त) हो ब्रह्मचर्य पाटन कर रहा हूँ ।”

दूसरी बारभी बोला० । तीसरी बारभी तात सुदिन्न । यह तेरा० ।

“गृहपति ! यदि बहुत रज न हो, तो तुझे गोल् ।”

“तात सुदिन्न । बोरो ।”

“तो तू गृहपति ! उड़े उड़े थोरे बनवाकर, हिरण्य सुवर्ण, भरकर, इसे गाड़ियोंसे डुबा, गंगाको धाराके बीचमें डाल द । सो किस हेतु ? गृहपति । जो तुझे हमके कारण भय, जड़ता, रोमाच, रखवाली करनी, पडगी वह इससे न होगी ।”

पेसा कहने पर आयुष्मान् सुदिन्नका पिता दुःखी हुआ — ‘पुत्र सुदिन्न पेसा कैसे काँगा ?’ आयुष्मान् सुदिन्नके पिताने आयुष्मान् सुदिन्न की स्त्रीको बुलाया—

“ता गृह, तू भी कह, क्या जाने पुत्र सुदिन्न तेरा उचन ही माने ।”

आयुष्मान् सुदिन्न की स्त्री आयुष्मान् सुदिन्नका पैर पकड़कर, आयुष्मान् सुदिन्न को बोली—

“आर्यपुत्र । यह कैसे आसराये हैं, जिनकेलिये तुम ब्रह्मचर्य चर रहे हो ?”

“भगिनी । मैं अप्सराओकेलिये ब्रह्मचर्य नहीं कर रहा हूँ ?”

तब आयुष्मान् सुदिन्न की स्त्री—‘आज आर्यपुत्र सुदिन्न मुझे भगिनी कहकर पुकारते हैं, (सोच) वहीं सूत्रित हो गिर पटी । तब आयुष्मान् सुदिन्नने पिताको कहा—

“गृहपति । यदि मुझे भोजन देनाहो, तो दो, तज्जीफ मत दो ।

“तात सुदिन्न । आओ” तब आयुष्मान् सुदिन्नकी माता और पिताने उभर पाद्य भोज्यसे अपने हाथ संतर्पित = संप्रवारित किया । आयुष्मान् सुदिन्नकी माता, आयुष्मान् सुदिन्नके खाकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर बोली—

“तात सुदिन्न ! यह धान्य० कुल है, तात सुदिन्न ! गृहीतनकर भी भोग भोगनका तथा पुण्य करनेको मिल सकता है, आओ तात सुदिन्न ! गृही बन, भोग भोगो और पुण्य करो ।”

“अम्मा । भं नहीं चाहता, नहीं सकता, अभिरत हो महाचर्यं चर रहा हूँ ।”

दूसरी बार भी० । तीसरी बार भी माताने सुदिन्नको कहा—

“तात सुदिन्न ! यह हमारा आद्य०कुं है । (अच्छा) तात सुदिन्न । राजक (=वीर्यसे उत्पन्न पुत्र) हो दो, ऐसा न हो कि हमारी अ पुत्रक संपत्ति लिच्छवी ७ जाय ।”

“अम्मा । (यह) मुझसे किया जा सकता है ।”

“तात सुदिन्न ! कहा इस वक्त तुम विहार करते हो ।”

“अम्मा ! महाचर्ये ।” तब आयुष्मान् सुदिन्न आमनते उ० चने गये ।

आयुष्मान् सुदिन्नकी माताने आयुष्मान् सुदिन्नकी स्त्रीको आमंत्रित किया—

“ (अच्छा) तो बहुत ! जब भक्तुनी होंगी, जब तुझे पुत्र उत्पन्न हो, तो मुझे कहना ।”

“अच्छा अम्मा !” ।

तब आयुष्मान् सुदिन्नकी पुराण दुतीयिका (= स्त्री) भक्तुनी हुई, उसे पुत्र उत्पन्न हुआ । तब माताको कहा—

“भं भक्तुनी हूँ अम्मा ! मुझे पुत्र उत्पन्न हुआ है ।”

“तो बहुत ! जिस अलंकारसे अलंकृत हो मेरे पुत्र सुदिन्नको प्रिय = मनाप लगती थी, उस अलंकारसे अलंकृत होओ ।”

“अच्छा अम्मा !” ।

आयुष्मान् सुदिन्नकी माता० सुदिन्नका स्त्रीको लेकर जहां महाजन था, जहां आयुष्मान् सुदिन्न थे, वहां गई, जाकर आयुष्मान् सुदिन्नकी बोली—

“तात सुदिन्न ! यह हमारा आद्य०कुं है ।”

दूसरीवार भी० । तीसरीवार यह बोली—

“तात सुदिन्न ! तात सुदिन्न ! याचक हो दो, ऐसा न हो, कि हमारी अ पुत्रक संपत्ति लिच्छवी ७ जाय ।”

“अम्मा ! यह मुझसे किया जा सकता है ।”

(वह आ० सुदिन्ने) स्त्री की याह परकृत महावाके भीतर घुसकर, शिक्षापत्र (= भिक्षु नियम) के प्रजापित ७ होनेके समय, दुष्परिणामको न दृष्ट स्त्रीक साथ तीनवार मैथुन धर्म सेवन किया । उससे वह गर्भवता हुई ।

तब आयुष्मान् सुदिन्नकी स्त्रीने उस गर्भने परिपक्व होनेपर पुत्र प्रसव किया । आयुष्मान् सुदिन्नक मिश्रने उस पुत्रका नाम बीजरु रक्खा । आयुष्मान् सुदिन्नकी स्त्रीका नाम बीजरु-माता०, और आयुष्मान् सुदिन्नका नाम बीजरु-पिता । पिछले समयमें वह दोनों वरम वेधर प्रजाजित हो अर्हत् पद (= मुक्ति) को प्राप्त हुये ।

१ अ क. “हम लोग लिच्छवी गण राजाओंके राज्यमें वसते हैं । वह तरे पिताके मरने पर इस सम्पत्ति, इस महान् विभयको, रखक पुत्र न होनेसे, अ पुत्रक कुलधनको वापने राज अन्त पुर्म ले जायेंगे ।”

तत्र उ० भिक्षुओंने आयुष्मान् सुदिनको अनेक प्रकारसे धिक्कारकर, भगवान्को वात कही। । तत्र भगवान्ने उसके अनुच्छविक=उसके अनुकूल धर्म-कथा कह, भिक्षुओंको समोधित किया—

“अच्छा तो भिक्षुको ! दस बातोंका खयालकर भिक्षुओंके लिये शिक्षापद (=नियम) प्रजापन करता हूँ—(१) संघकी अच्छाई (=सुष्ठुता)के लिये (२) संघकी कायदा (=आसानी)के लिये। (३) उच्छृङ्खल-पुरषोके निग्रहके लिये। (४) अच्छे (=पेशा) भिक्षुओंके आसानीसे विहार करनेके लिये। (५) इस जन्मके आस्रवो (=चित्तमल)के निराकरणके लिये। (६) जन्मान्तर (=संपरायिक)के आस्रवोके नाशके लिये। (७) अप्रमत्तो (=समग्र-चित्त)के प्रसन्न (=निर्मल-चित्त) होनेके लिये। (८) प्रसन्नोकी और शान्तीके लिये। (९) सद्वर्त्मकी चिरस्थितिके लिये। (१०) विनय (=सयम)की सहायता (=अनुग्रह)के लिये। ।

“जो भिक्षु भिक्षुओंकी शिक्षा (=कायदा) और साजीव (=नियम)से युक्त है, शिक्षाको बिना प्रत्याख्यान (=परित्याग) किये, दुर्बलताको बिना प्रकट किये, अन्तर्न (=यदा तदा किं) पशुमे भी मैथुन धर्मका सेवन करै, वह पाराजिक होता है, (भिक्षुओंके साथ) महाबासके अयोग्य होता है। ”

मनुष्य-इत्या (३) पाराजिका । उत्तर-मनुष्य-धर्म (४) पाराजिका । (वि. पू. ४५१) ।

‘उस समय बुद्ध भगवान् वंशालीम महावाकी कृटागर शालाम विहार करते थे ।

भगवान् भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे अशुभ (= पदार्थोंकी अनन्यता) कथा कहते थे, अशुभ (भावना करने) की तारीफ करते थे, आदि आदि अशुभ समापत्तियों (ध्यातों) की तारीफ करने थे । तब भगवान् भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“भिक्षुओ ! मे आद्य-महोना एकान्त ध्यान (= पटिमहान) में रहना चाहता हूँ । पिंड पात (= भिक्षा) लानेवालेको छोड़कर (और) किसीको (मेरा पाम) न जाना चाहिये ।”

“उन भिक्षुओंने भगवान्को अच्छा भन्ते । बहुर । एक पिंड पात हारक भिक्षुको छोड़ दूसरा कोई बड़ा नहीं जाया था । भिक्षुओंने (सोचा)—भगवान्ने अनेक प्रकारसे अशुभ की तारीफ की है, (इस लिये वह भिक्षु अनेक, आकार प्रकारकी अशुभ भावनाओंसे युक्त हो, विहार करने लगे । यह कार्यामें घिन करते, हेरान होत, जुगुप्सा करते थे, जैसे शिरसे नहाया गीकीन तण्ण स्त्री या पुरुष भरे साँप, या मर कुत्ता, या मनु-ल-शरके कठमे लगने पर त्रिगता ० है । पेसेही वह भिक्षु अपनी कार्यासे घृणा जुगुप्सा करते, अपनेको अपनेसे मारते थे, एक दूसरे को भी जानसे मारते थे । मृगलदिक समण कुत्तरों पाम जाकर भी कहते थे—

“आतुस । अच्छा हो (यदि) हर्म जानसे मारदों, वह पात्र चीवर तुम्हारा होगा ।”

तब मृगलदिक समण-कुत्तर पात्र-चीवरके लोभमें, बहुते भिक्षुओंको जानसे मारकर, खूनी तलवारको छेकर जह । बरगुमुदा नत्ते थो, बहा गया ।

तब मृगलदिक समण-कुत्तरको खून सनी तलवार धोते मनमें पश्चात्ताप हुआ, येद हुआ—अज्ञान है मुझे, लाभ नहीं हुआ मुझे । दुःख है मुझे, सुख नहीं हुआ । मी नट्टा ही पाप (= अ पुण्य) कमाया, जो मने शालवान्, कण्वाण धर्मा भिक्षुओंको प्राणसे मार डाला । तब मार लोकके किमी दबताने, बिना दूधते पानीपर खड़े होकर ० समण-कुत्तरको कहा—

“साधु, साधु सत्पुरुष । लाभ है मुझे सत्पुरुष, सुख है मुझे, सुख सत्पुरुष । तूने सत्पुरुष । बहुत पुण्य कमाया, जो तूने अ गीणों (= न उतारों) को उतार दिया ।”

तब ० समण-कुत्तरने (सोचा) ‘ लाभ है मुझे ० ’, (और) ताक्ष्ण तलवार लेकर एक विहारसे दूसरे विहार, एक परिवेण (= चोक) से दूसरे परिवेणमें जाकर ऐसा कहता—कौन अतीर्ण है, किसको तारू ? वहाँ जो वह अ-वीत राग भिक्षु थे, उन्हें उस समय भय होता था, जडता ०, रोमाच होता था । किन्तु जो भिक्षु वीतराग थे, उनको उस समय भय ०, जडता ०, रोमाच ० होता था । तब ० समण-कुत्तरने एक दिनमें एक भिक्षुको भी जानसे मारा, ० दो भिक्षुको भी ०, ० तीन ०, ० चार ०, ० पांच ०, ० दस ०, ० बीस ०, ० तीस ०, ० चालीस ०, ० पचास ०, ० साठ ० ।

भगवान्ने आध माम्म वीतनेपर पटिमल्लान्ते उठरु, आयुप्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

“व्या है आनन्द ! भिक्षुमघ बहुत कम रोगया हे ?”

“चूँकि भन्ते ! भगवान्ने भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे अशुभ भावना० की तारीफ का। सो भिक्षु०।०। समग उत्तरेने भी० साठ भिक्षुकोभी एक दिनमें मारा। अच्छा हो। भन्ते। दूसरे पयांथ (=प्रकारान्तर, उपदेश) को भगवान् कहें, जिसमें यह भिक्षुसंघ आश (=परम जान) में स्थित हो।”

“तो आनन्द ! जितने भिक्षु वैशालीमें निहार करते हैं, उन सबको उपस्थान शालामें पकड़ित करो।”

“गच्छा भन्ते !” आयुप्मान् आनन्दने पकड़ित कर, जाकर, भगवान्को कहा—

“भन्त ! भिक्षु संघ पकड़ित हो गया। अब भन्ते ! भगवान् जिसका काल समझे (बसा कर)।” तब भगवान् जहाँ उपस्थान शाला थी, वहाँ गये। जाकर बिड़ आसन पर बैठे। बैठकर भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“भिक्षुओ ! यह आणापान मति (=प्राणायाम) समाधि भावना करनेसे, बदानस, शान्त=प्रणीत आसेचनरु (=सुख) और सुख विहारशाली है, वेदा होनेवाले पापक=अकुशल (=दुःख) धमाको त्यागपर अत्यन्त कर्तव्य है, उपशमन करती है। जैसे भिक्षुओ ! प्रीत्य पिउने मासम उठी बड़ी धूँआँको, महा अजल मेघ स्थानही पर (=अवही) अत्यन्त कर देता है, उपशमन कर देता है। ऐसेही भिक्षुओ ! यह प्राणायाम०। भिक्षुओ ! कैसे आणापान (=प्राणायाम) सति समाधि भावना करने पर बदाने पर शान्त० ? भिक्षुओ ! भिक्षु जंगलमें, या वृक्षके नीचे, या शून्य आगारमें आसनमार, शरीरको सीधा रख, स्मृतिको समुल रखकर, बडता है। वह स्मरण रखते इवास छोड़ता है, स्मरण रखते इवास लेता है। लम्बी सासनेते ‘लघ्वीसांस छेता हूँ, जानता हूँ’ विरागकी अनुपदयना करते (=विरागाउ पम्मी)०, निरोध अनुपदयी०, ‘प्रतिनिस्सर्ग (=परिनिर्वाण) अनुपदयी इवास छोड़, सीखना है, प्रति निस्सर्ग-अनुपदयी इवास ल’ सीखना है। इस प्रकार भिक्षुओ ! भावना की गई आणापान सति-समाधि, इस प्रकार बढ़ाई गई०।”

तब भगवान्ने इसी निदान=इसी प्रकरणमें भिक्षुओंको पूछा—

“भिक्षुओ ! क्या भिक्षुओने सचमुच अपनेको अपनेसे मारा० ?”

“सचमुच भगवान् !”

भगवान्ने धिक्कारा।

“इस प्रकार भिक्षुओ ! इस शिक्षापदका उद्देश (=पाठ, धारण) करना चाहिये—

“जो पुरुष जानकर मनुष्य-शरीरको प्राणसे मारे, या शस्त्रसे मारे, या मरनेकी तारीफ

करै, मरनेके लिये प्रेरित करै—अरे आदमी ! तुझे क्या (है) इस पापी दुर्जाबनसे, जीनेसे मरना अच्छा है । इस प्रकारके चित्त विचारसे, इस प्रकारके चित्त सत्कृपसे अनन्त प्रकारसे जो मरनेकी तारीफ करै, या मरनेके लिये प्रेरित करै । यह भी पाराजिक होता है, अ-संवास (होता है) ।

उत्तर-मनुष्य धर्म (४) पाराजिका ।

१ उस समय भगवान् वैशालीमें महायनकी कृत्तगार शालाम विहार करते थे ।

उस समय बहुतसे र हट = संभ्रान्त भिक्षु वग्गुमुदा नदीके तीरपर वर्षा-वासक लिये गये । उस समय वज्जीमें दुर्भिक्ष० था० । तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—इस समय वज्जीमें दुर्भिक्ष० है० । किन्तु उपायसे भोजन हो सुख (पूर्वक) वर्षावास किया जाये । किसी किसीने ऐसा कहा—हन्त आहुसो ! हम गृहस्थोंकी ऐसीकी दल भाग कर, इस प्रकार वह हमें (भोजन) देना पसन्द करैग, इस प्रकार हम एकत्र हो सुखसे वर्षावास करैग । किसी किसीने ऐसा कहा—नहीं आहुसो ! क्या गृहस्थोंकी ऐसी (= वसन्त) की दल भाल करना ? आहुसो ! हम गृहस्थोंका दूतका काम करै, इस प्रकार० । क्या गृहस्थोंके तब कमसे ? हन्त आहुसो ! हम गृहस्थोंके (सम्मुख) एक दूसरेके उत्तर मनुष्य धर्म (= नित्य शक्ति) का तारीफ करै—अमुक भिक्षु प्रथम-ध्यानका लाभ (= पानेवाला) है, अमुक भिक्षु द्वितीय-ध्यानका०, तृतीय०, चतुर्थ० । अमुक भिक्षु श्रोत आपस है, अमुक भिक्षु पञ्च-अभिज्ञ (= छ अभिज्ञाओंवाला) । इस प्रकार वह० । आहुसो ! यही सत्से अच्छा है, जो हम एक दूसरेके उत्तर मनुष्य धर्मकी तारीफ करै० ।

मनुष्य (सोचते—) हमें लाभ है, हमें सुख है हुआ, जो हमारे पास हमें शीलवान् भिक्षु वर्षावासके लिये आये । जैसे यह शीलवान् कल्याण धर्म है, हमें भिक्षु पहिले हमारे पास वर्षावासके लिये न आये । इसलिये यह बला भोजन न अपने ग्याते, न माता पिताकी देते, न श्री बन्धोंको देते, न दास कर्मकर पुरुषोंको०, न मित्र अमात्योंको०, न जाति विराद्रीको० । जैसा कि भिक्षुओंको देते थे । यह क्या० पान न अपने पीते०, जैसा कि भिक्षुओंको देते । तब वह भिक्षु रूपवान् मोटे (= पीण इन्द्रिय), प्रसन्न-मुख वन, विप्रमन्न उद्विग्न (= सुन्दर चमड़ेके रूपवाले) होगये । वर्षावासकी समाप्तिपर भगवान्के दर्शनके लिये जाना, भिक्षुओंका आधार था । तब वह भिक्षु वर्षावास समाप्तपर तानमान बाद, शयनासन सँभाल कर, पात्र धीवर ले जिधर वैशाली थी, उधर चले । अमश जहा वैशाली महावन कृत्तगार शाला थी, जहा भगवान् थे, वहा पहुँचे । पहुँचका भगवान्को अभिषादनपर एक क्षण बैठ गये । उस समय (और) दिशाशोसे वर्षावास काये आये भिक्षु वृक्ष, रश्मि, दुर्वर्ण, पीने छत्रा-मात्र रह गये थे । किन्तु वग्गुमुदा तीरपर भिक्षु रूपवान्, मोटे० । बुद्ध भगवान्का आचार है कि आगन्तुक भिक्षुओंके साथ प्रतिमम्मोदन (= कुशल प्रश्न) करै । तब भगवान् वग्गुमुदा तीरपर भिक्षुओंको बोले—

“ भिक्षुओ ! अनुकूल (= समनोय) तो था, शरीर यात्रा योग्य (= यापयोग्य) तो था ? समोदन करते अ विवाद करते अन्तर्गत एक वर्षावास तो बने, और मित्रासे सङ्गीत तो नहीं पाये ? ”

तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌को यह बात बतलायी ।

“ क्या भिक्षुओ ! सच था (तुम्हारा उत्तर-मनुष्य धर्म कहना) ? ”

“ असत्य (=अनृत) भगवान्‌ । ”

शुद्ध भगवान्‌ने धिक्कारा—

“ मोघ-पुरषो ! (यह) अन्-अनुच्छविक = अन्-अनुलोमिक = अ प्रतिस्प (=अनुचित), अ-धामनक, अ-कल्प्य = अ-करणीय है । मोघ पुरषो ! तुमने उदरके लिये गृहस्थोंको एक दूसरेके उत्तर मनुष्य धर्मकी कैसे सारीफ की ? गाय काटनेके तेज धुरेसे (अपना) पट फाड़लेना अच्छा था, किंतु उदरके कारण दूसरेकी द्विद्य-शक्तिका कहना (अच्छा) नहीं । सो हिम हेतु ? उम (धुरा मारने)से मोघ पुरुषो ! तुम मरण पाते, या मरण-समान हु खको । उनके कारण शरीर छोड़ मरनेके बाद अपाय = दुर्गति नर्कमें तो न उत्पन्न होते । । ”

धिक्कारकर धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“ भिक्षुओ ! लोकमें यह पांच महाचोर है । कौनसे पांच ? भिक्षुओ ! (१) (जैसे) एक महाचोरको पेमा होता है—मे कुदस्यु (= छोटा बाकू) हूँ, सौ या हजारके साथ हत्या करते कटाते, काटते फटगते, पकाते पकवाते, ग्राम, निगम, राजधानीको मथन करे । तब यह दूसरे समय मौ, हजारके साथ० मथन करे । ऐसेही भिक्षुओ ! यहाँ किनी पाप भिक्षुको पेमा होता है—मे कुदस्यु नामक हूँ,० सौ, हजारके साथ ग्राम, निगम राजधानीमें गृहस्थों और प्रव्रजितोंसे सत्कृत = गुरु-कृत = मानित = पूजित = अपचित हो विचरते, घीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान प्रत्यय भैषज्य (= पथ्य, औषध) परिष्कार पाने वाला होऊँ । भिक्षुओ ! लोकमें यह प्रथम महाचोर है । (२) और फिर भिक्षुओ ! एक पाप भिक्षु (= दुष्ट भिक्षु) तथागत प्रेरित (= साक्षात्कृत) धर्म विनयको सीखका अपने पास रखता है, (और उसे) अपना (आविष्कार) बतलाता है । यह द्वितीय महाचोर है । (३) एक भिक्षु परिशुद्ध ब्रह्मचर्य पालन करते शुद्ध ब्रह्मचारीको, गृहही ॥ ब्रह्मचर्य का फलक लगाता है । यह तृतीय महाचोर है । (४) एक भिक्षु जो वह संघके बड़े भाण्ड = बड़े परिष्कार (= सामान) ह, जैसेकि—आराम (वाग), आरामके स्थान (= आरामस्थल), विहार (= मठ), विहार बत्थु, मच (= चारपाई) पीठ, गदा तकिया, छोहेका घड़ा, लोह भानक, लोह बारक, लोह फटाह, बेंसूला, फरसा, कुल्हाड़ी, कुदाल, लंठी, बली, वांस, मूँज, बष्पज (= रस्सी रूनेका तृण) तृण, मटो, लकड़ोकी चीज (= दार-माड), मटोकी चीज (= मृत्तिका-भाण्ड) हैं, उनसे गृहस्थोंको खुश करता है, . . . यह चतुर्थ महाचोर है । (५) भिक्षुओ ! देव-मार-ब्रह्मा-सहित लोकमें, श्रमण ब्राह्मण देव-मनुष्य (सहित) जनतामें यह अग्र (= सर्वोपरि) महाचोर है, जो कि अविद्यमान, असत्य उत्तर मनुष्य धर्म (= दिव्य शक्ति) को बखानता है । सो किसलिये ? भिक्षुओ ! चोरीसे (उसन) राष्ट्र-पिंड (राष्ट्रके अन्न) को खाया ।—

‘ अपने दूसरी प्रकार होते (जो) अपने को दूसरी प्रकार प्रकट करे ।

उसका वह, सुआरीकी तरह ठगकर, चोरीसे खाया हुआ ।

कंठमें कापाय डाले बहुते ऐसे अस्वयमी पाप धर्मा हैं;

बह पापी पाप कर्मोंसे नर्कमें उत्पन्न होते हैं ?

जो दु दौल अस्वयमी (मनुष्य) राष्ट्र पिंडको खाये, इससे आगकी लौकी तरह दहकते लोहेके गोलेका खाना अच्छा है ।' तब भगवान् बग्गुमुदा तीरके भिक्षुओंको अनेक प्रश्नरत्ने धिक्कार कर ।

“ इस प्रकार भिक्षुओं ! इस शिक्षापदको उद्देश (= धन, धारण,) करना—

‘ जो भिक्षु अविद्यमान (= अन्-अभिज्ञान) उत्तर मनुष्य धर्म = अलम्-आर्य ज्ञान दर्शनको अपनेमें धर्यमान कहता है—‘ऐसा-जानता हूँ’ = ‘ऐसा देखता हूँ’ । तब दूसरे समय श्रेष्ठ जाने पर या न पड़े जाने पर, बद्ध-नीयत (= पापेच्छ) हो, या विशुद्धापेक्षी हो (बद्ध) — आहुस । न जानते ‘जानता हूँ’ कहा, न देखते ‘देखता हूँ’ कहा, मुच्छ = मृषा (= झूठ) बोलें कहा । वह पाराजिक क संवास होता है, ‘अधिमानने यदि न (कहा) हो ।’

उत्तर मनुष्य-धर्म = (१) ध्यान, (२) विमोक्ष, (३) समाधि, (४) समापत्ति, (५) ज्ञान दर्शन, (६) मार्ग-भावना, (७) फल-साक्षात्कार, (८) क्लेश प्रहाण (९) विनीवरणता, (१०) चित्तका शुन्यागारमें अभिरति (= अनुसंग) । अलम् आर्य ज्ञान = तीन विधायें = दर्शन । जो ज्ञान है वही दर्शन है, जो दर्शन है वही ज्ञान है ।

विशुद्धापेक्षी = गृही होनेकी इच्छासे, या उपासक होनेकी इच्छामे, या आरामिक (= आराम-सेवक) होनेकी इच्छासे, या धामणेर होनेकी इच्छासे ।

ध्यान = (१) प्रथमध्यान, (२) द्वितीयध्यान (३) तृतीयध्यान, (४) चतुर्थध्यान ।

विमोक्ष = (१) शून्यता-विमोक्ष, (२) अनिमित्त विमोक्ष, (३) अ प्रणिहित विमोक्ष ।

समाधि = (१) शून्यता समाधि, (२) अनिमित्त०, (३) अप्रणिहित० ।

समापत्ति = (१) शून्यता समापत्ति, (२) अनिमित्त० (३) अप्रणिहित० ।

ज्ञान = तीन विधायें ।

मार्ग भावना = (१) चार स्मृति प्रस्थान, (२) चार मन्थक् प्रधान (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पाँच इन्द्रिय, (५) पाँच बल, (६) मात बोधव्यंग, (७) आर्य अष्टांगिक-मार्ग ।

फल-साक्षात्कार = (१) क्षीत आपत्ति फलका साक्षात् करना, (२) मज्झिमागामी०, (३) अनागामी०, (४) अर्हत्त्व० ।

क्लेश प्रहाण = (१) रागका प्रहाण (= विनाश) (२) द्वेष प्रहाण, (३) मोह प्रहाण ।

विनीवरणता = (१) रागसे चित्तकी विनीवरणता (= मुक्ति) (२) द्वेषसे चित्त विनीवरणता, (३) मोहसे चित्त-विनीवरणता ।

शून्यागारमें अभिरति = (१) प्रथमध्यानसे शून्य स्थानमें संतोष (२) द्वितीयध्यानसे० (३) तृतीयध्यानसे०, (४) चतुर्थध्यानसे०,

१ वस्तु प्राप्त कर लेने पर ‘जैने पालिया’ सम्मना, कहना अधिमान कहा जाता है ।

1

1

चतुर्थ खंड ।

(१)

चौर-विषय । विशाखा-चरित । विशाखाको आठ वर । (वि. पू. ४५१)

तब वशाखीर्म यथेच्छ विद्वरका भगवान् त्रिंश वाराणमा (=वनारम) थी, उधर चारिकाके लिये चने । क्रमश चारिका करते जहा वाराणमा थी, वहा पहुँच । वहा वाराणमी र्म भगवान् क्षपिपन्न मृगदावर्म विहार करते थे ।

उस समय एक भिक्षुके अन्तशायक (=रुंगी) में छिद्र था । तब उस भिक्षुको यह हुआ—भगवान्ने तीन चौथराको अनुभादी है (१) दोहरी संघाटी, (२) एकहरा उत्तरासंग, (३) एकहरा अन्तर्जायक । यह मेरा अन्तशायक छेदवाला है, क्यों न मैं पेंचेंद (=अगल) लगाऊँ, चारा ओर दोहरा होगा, चौथर्म एकहरा । तब वह भिक्षु पेंचेंद लगाने लगा । भगवान्ने शयनासन चारिका (=मठ दृश्यनेके लिये भूमना) करते, उस भिक्षुको पेंचेंद लगाते देखा । दृष्टकर जहा वह भिक्षु था, उहा गया । जाकर उन भिक्षुम यह बोले—

“ भिक्षु ! तू क्या कर रहा है ? ”

“ भगवान् ! पेंचेंद लगा रहा हूँ । ”

“ साधु, साधु भिक्षु ! अच्छा है, भिक्षु ! तू पेंचेंद लगा रहा है । ”

तब भगवान्ने हमी निदान=इसी प्रकरणमें, धार्मिक कथा कह, भिक्षुआका सपाधित किया—

“ अनुशा करता हूँ भिक्षुओ । नये कपड़े या नये जमे करड़ेका दोहरी संघाटी, एकहरा उत्तरासंग, एकहरा अन्तशायक की । पुराने कपड़ेका चौहरी संघाटी, दोहरा उत्तरासंग और दोहरा अन्तर्जायक, पासकृष्ट (=पेंके चौथड़े) में यथेच्छ । बाजारा दुकानोंकी खोजना चाहिये । भिक्षुओ ! बटे या पुने पेंचेंद, (सीनेकी) मुदरी, और हरीकम (=रफ) करनेका अनुशा करता हूँ । ”

तब वाराणसीमें इच्छानुसार त्रिहारकर भगवान् जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ चारिकाके लिये चने । क्रमश चारिका करते जहाँ श्रावस्ती थी, वहा पहुँचे । वहाँ भगवान् श्रावस्तीर्म अनाथ पित्रक आराम जेतयनमें विहार करते थे ।

तब विशाखा मिगारमाता जहा भगवान् थे वहाँ आई, आरु, भगवान्को अभिवादनकर एक ओर घट गई । एक ओर बैठी विशाखा मिगार-माताको भगवान् धार्मिक-कथा

१ अ नि अ क १ ७ २ । (देखो टिप्पणी पृष्ठ १५२ १५३) ।—

त्रिशाखा-चरित ।

“श्रावस्तीम कोशल राजाने विन्वमारके पास (पत्र) भेजा—भोर आश्वत्थी देनाम

से समुत्तेजित, संप्रश्रुत क्रिया । तत् विशाखा मृगार-माताने भगवान्को यह कदा—

अमित भोग-वाला कुल नहीं है, हमारे लिये एक अमित-भोग कुल भेजो। राजाने अमात्योके माथ सलाह की । अमात्याने कहा—

“महाकुलको नहीं भेजा जा सकता, एक श्रेष्ठ-पुत्रको भेजो।” वह, मेढक श्रेष्ठ पुत्र धनजय सेवका (नाम) लिया । राजाने उनके वचनको सुनकर, उसे (धनजय सेवका) भेजा । तब कोसल राजाने श्रावस्तीसे सात योजन ऊपर, साकत नगरमें उसे श्रेष्ठका पद देकर बसा दिया ।

श्रावस्तीमें मृगार श्रेष्ठका पुत्र पूर्ण-वर्द्धन कुमार वय प्रास (=जवान) था, तब उसके पिताने—मेरा पुत्र वय प्रास है, अब इसे गृहस्थके बंधनसे बांधनेका समय है—जान, —हमार समान जाति कुन्ती कन्या रोजो—(कह), कारण अकारण जाननर्म कुशल पुरवाका भेजा । वह श्रावस्तीमें अपनी रचिकी कन्याको न देख, साकेत (=अयोध्या) को गय । उस दिन विशाखा, अपनी समवयस्का पाच सौ कुमारियोंके साथ, उत्सव मनानेके लिये एक महावापी पर गई था । वह पुरुष भी नगरके भीतर अपनी रचिकी कन्या न देख, बाहर, नगरके द्वारपर खड़े थ । उसी समय पानी बरसना शुरू हुआ । तब विशाखाके साथ गई कन्यार्य, भीगनेके डसे गगने ढोड़कर बालामें घुस गई । उन पुरुषोंने उन (कन्याओं) में भी किसीकी अपनी रचिक अनुसार न देखा । उन सबके पीछे विशाखा, मेघ बरसनेकी, पवाह न कर, मन्दगतिसे भागती हुई, बालाम प्रविष्ट हुई । उन पुरुषोंन उसे देख सोचा—दूसरा भी इतनी ही रूपवतिथा होगी । रूप किसी किसीका एक नारियल (=करक पक) की तरहमा होता है । जात चलाकर जान, कि मधुर वचना है या नहीं । तब उसको बोले—

“अम्म ! तू बड़ी बड़ी स्त्रीकी तरह मालूम होती है ? ”

“ताता ! क्या दुष्टकर (ऐसा) कहते हो । ”

“तेरे साथ खेलनेवाली दूसरी कुमारिया भीगनेके भयसे जलदोसे आकर बालामें घुस गई, और तू बुढियाकी तरह चलना छोड़कर नहीं आती, साड़ी भीगनेकी भी पवाह नहीं करती । यदि हाथी या घोड़ा पीछा करे, तो भी क्या ऐसा ही करेगा ? ”

“ताता ! साड़िया दुर्लभ नहीं हैं, मेरे कुलमें साड़िया मुलभ है । तर्क स्त्री (=वय-प्रास मातृग्राम) बिकाऊ वर्तनकी तरह है । हाथ या पैर टूटनेपर, बिकल अगवाली स्त्राते (लोग) घृणा करते (हैं), (और) नहीं ग्रहण कत । इसलिये धीरे धीरे आई हूँ । ”

उन्होंने—जम्बूद्वीपमें इसके समान स्त्री नहीं है । रूपमें जेयी, मधुर अलापमें भी वमाहा है । कारण अकारणको जानकर कहती है ।—(सोच) उसके ऊपर गुदिरकर माला पेंकी । तब विशाखा—मैं पहिल अपरिगृहीत (=सगाई गिना) थी, अब परिगृहीत हूँ—(साव) विनय सहित भूमिपर धीट गई । तब उसे वहीं कनकसे घेर दिया । दासीगण पक्षित घर गई ।

मृगार श्रेष्ठका आदमी भी उसीके साथ धनजय श्रेष्ठके घर गये ।

“ताता ! तुम किय गांवके रहनेवाले हो ? ”

“ हम आपसी भगवत् शृंगार छोड़ने जान्नी है । तुम्हारे घरमें क्या प्राप्त किया है, सुकर हमारे सेटने हमें भेजा है । ”

“ अच्छा, तातो । तुम्हारा छोटी धन्य हमने छोड़ा ही भगवत् है, किंतु जातिमें बाहर है । सब त हतो रमान तो मित्रा मुक्ति है । जाओ मेठको हमारा स्वीकृति की बात कहो । ”

उन्होंने उसकी बात सुकर, धावत्ती जा, शृंगार छोड़ने की तृप्ति और तृप्ति निर्माणकर—
“ स्वामी ! हम आपकेमें धनजय छोड़ने घरम क्या मिला है ?—पहा । उसको सुकर शृंगार सेटने—‘ महाशुभ घरमें हम क्या मिला ’ (जान), संतुष्ट त्रित ही उसी समय धनजय छोड़ने पत्र (= शासन) भेजा—“ इसी समय हम बन्धकों लारंग, प्रयत्न करना ही सो करें । ”
उसने भी उत्तर (= प्रतिज्ञा) भेजा—“ यह हमारे लिये भारी नहीं है, छोटी अपना प्रयत्न करना ही सो करें । ”

उसने (= शृंगार सेठ) ने कोमल-राजा के पास जाकर कहा—

“ देव ! मैं यहाँ एक मंगल काम है । आपके पास सुन्दर-कर्ण के लिए भगवत् छोड़ने की क्या विन्यासों होने जाना है, मुझे सावेत गार जानकी भाना है । ”

“ अच्छा महाशेठ ! क्या हमें भी चाना है ? ”

“ देव ! तुम्हारा लीनों का जाना कहाँ मित्र मकता है ? राजा, महाकुल-पुत्रको मनुष्य कानकी हृष्टता से ‘ छोटी ! मैं भी चाना ’—स्वीकारकर शृंगार मेठके साथ सावेत गार गया ।
“ जय सेटने—‘ शृंगार सेठ कोशल राजा को लेकर जाता है ’ सुन, भगवत्तिर, राजा को अपने घर ल गया । उसी समय राजा प्रमनजित कोसल, राज धल (= राजा के नौर बाहर आदि) और शृंगार सेठ के लिये पास-स्थान और माला, भय, वय, आदि उपस्थित किये । ‘ यह इसको मित्रता चाहिये ’, यह इसको मित्रता चाहिये, यह छोटी मर स्वयं जानता था । प्रत्येक आत्मी सोचता था—छोटी हमारा मित्र कर रहा है । ”

तब एक दिन राजा ने धनजय सेठको शासन (= पत्र) भेजा—

“ चिराल तक छोटा हमारा भरण पोषण नहीं कर सकने, बन्धारी पिदाई का समय बतलाव । ”

उसने भी राजा को शासन भेजा—

“ हम समय वर्षाकाल आगया, चार मास चलना नहीं हो सकता । आपके बल-काय (= लोग पाग) को जो जो चाहिये, वह सब मार मेर ऊपर है, देव ! मेरे भेचने पर जाये । ”

तबसे साकल नगर, नित्य महोत्सववाला भाव होगया । इस प्रकार तीन मास व्यतीत हुये । धनजय सेठका लड़की का महालता आभूषण तब तक भी तयार न हुआ था । उसके कारपत्रा (= कर्मन्ताधिदायक) आकर बोले—

“और तो किसी की कमी नहीं है, किन्तु बलकायके भोजन-बनानेकेलिये एकड़ी पूरी नहीं है।”

“तातो जाओ ! हस्तिशाला, अश्वशाला, गोशाला उजाड़कर भोजन पकाओ !”

ऐसे पकाते भी साथ महीना बीता। उन्होंने फिर कहा—

“रघामी ! एकही पूरी नहीं पड़ती।”

“तातो ! इस समय एकही नहीं मिल सकती। कपड़ेके गोदाम (=दुस्स कोठगार) खोलकर, मोटी मोटी साड़ियों (=साटक)को लेकर घसी बना, तेलमें भिगा, भोजन पकाओ।”

इस प्रकार पकाते हुये, चार मास पूरा हुआ। तब धनंजय सेठने कन्याके महालता प्रसाधनको तय्यार जाकर—बल कन्याको भेजूंगा—(सोच) कन्याको पासमें बैठा—‘अम्म ! पतिकुलमें वास करनेके लिये यह यह आचार सीखना चाहिये—उपदेश दिया। मृगार सेठने भी घरके भीतर लेटे धनंजय सेठके उपदेशको सुना। धनंजय सेठ कन्याको बोला—

“अम्म ! देवशुर-कुलमें वास करते (१) भीतरकी आग बाहर न ले जानी चाहिये, (२) बाहरकी आग भीतर न ले जानी चाहिये। (३) देतेहुयेको देना चाहिये, (४) न देते हुये को न देना चाहिये। (५) देते हुये, न देतेहुयेको भी देना चाहिये। (६) सुखसे बैटना चाहिये। (७) सुखसे खाना चाहिये। (८) सुखसे लेटना चाहिये (९) अग्नि परिचरण करना चाहिये। (१०) भीतरके देवताओंको नमस्कार करना चाहिये”।

एन दश प्रकारके उपदेशोंको दे, सभी श्रेणियों(=वर्णिक-सभाओं)को जमाकर राज सेनाके धीचमें आठ कुटुम्बियों (=पंचों) को जामिन (=प्राप्तिभोग) लेकर—‘यदि गय स्थान पर मेरी कन्याका अपराधहो तो तुम परिशोध करना’—कह नव करोड़ मूल्यके महालता आभूषणसे कन्याको आभूषित कर, स्नान-चूर्णके मूल्यके लिये चौवन सौ (=५४००) गाड़ी धन देकर, कन्याके साथ अनुरक्त पाँच सौ वासिया, पाँच सौ उत्तम (=आजन्म) रथ, पाँच सत्कार सौ सौ दे, कोसल राजा और मृगार-सेठको विमर्जित (किया)।

विशाखाने (थावस्ती) नगरके द्वार पर पहुचनेके समय सोचा—‘हैंके यानमें बैठ कर, नगरमें प्रवेश करूँ, या रथ पर खड़ी हो कर। तब उसको यह हुआ—‘हैंके यानमें बैठ कर, प्रवेश करने पर महालता-प्रसाधनकी विशेषता न जान पड़ेगी। इस लिये वह सारे नगरको अपनेको निसाती, रथपर बैठ, नगरमें प्रविष्ट हुई। थावस्ती-वासियोंने विशाखाकी संपत्तिको देखकर कहा—

“यह विशाखा है। यह रूप और यह संपत्ति इसीके योग्य है।”

इस प्रकार यह महादूष्यके साथ मृगार सेठके घरमें प्रविष्ट हुई।

आनेके दिनही सारे नगरवासियोंने—‘धनंजय सेठने अपने नगरमें जानेपर, हमारा बड़ा सत्कार किया—(सोच) यथाशक्ति=यथाबल भेंट भेजी। विशाखाने भेजी हुई सभी भेंट उसी नगरमें, एक दूसरे कुलमें बयना (=सर्वार्थक) दे दिया। तब उसके आनेकी रातके ही भागमें, एक आजन्म (=उत्तम सेतकी) घोड़ीको गर्भ वेदना हुई। तब वह दामियोंते दंड दापिका (=मृगार) ग्रहण करवा वहाँ जा, घोड़ीको गर्भ पानीसे नहलवा, तेलमें मालिश करावा, अपने कामग्यानको गई।

मृगार सेठने भी एक सहाह (तक) क्षत्रजा विवाह-मत्कार (= उत्तर) करते, धुरा विहार (= निरन्तर विहार करनेक स्थान) में घूमते हुये तयागतको, मनम न कर, सातवें दिन मय घरको भरते नम्र श्रमणकोको धनकर विनाशाने पास शासन भेजा—

“आने मेरी कन्या, अर्हत् लोगोकी चन्ना करे ।”

वह छोट आपन भार्य आविश ‘अर्हत्’ शब्द सुन, हृष्ट तुष्ट हो, उनके धनकी जगह जा, उन्हें देख—‘एसे ही अर्हत् होते हैं । मेरे स्वगुरुने इन लम्हा मय विजितोके पास मुझे क्यों बुलवाया ?’ (कह), ‘धिक्-धिक्’ से धिक्कारकर, अपने दास स्थानको चली गई । मन श्रमणोंने उसे देखकर, एक बारगी सेठको धिक्कारा—

‘गृहपति ! क्या तुम दूसरी कन्या नहीं मिली ? श्रमण गौतम की आविश (इस) महाकुलसगा (= महाकालसगा) को क्यों इस घरम प्रविष्ट किया ? इसे इस घरसे जल्दी निकाल ।’

तब सेठने—‘हारी यातमे इसे घरमे नहीं निशाल सकने, महाकुलकी यह कथा है’—सोच, “आचार्यों ! बच्चे जो जाया देनेमान करें, तो आप लोग क्षमा करें ।” कह गोंको विनाकर, बड़े क्षामन पर बैठ, सोनेकी करठी ले सोनेकी थालीमें परोसा जाता निर्जल मसुरे खीर भोजन करने लगा । उसी समय एक पिंडचारी स्थविर (भिक्षु) पिंड चार करते, सठके गृहद्वारपर पहुँचा । विशाखा उसे देख, ‘श्वशुरको कहना उचित नहीं’ सोच, जैसे वह स्थविरको देखकर, वैसे हटकर खड़ीहो गई । वह बाल (= मूर्ख) स्थविरको देखकरभी, नहा देयता हुआ सा हो, नीचे मुड़कर, पायमको माता था । विशाखाने—मेरा श्वशुर स्थविरको देखकर भी इसारा नहा करता है—जान, स्थविरके पास जा—‘आगे जाइये अन्ते ! मेरा ममुर पुराना सा रहा है’—बोली ।

“वह तो ‘निगंडो’ (= जेन साधुओं)के कहनेके समयहीसे (धुरा) मान गया था, ‘पुराना सा रहा है’ सुनते ही भोजनपरसे हाथ मींचकर बोला—

“इस पायमको यदासे ले जाओ, इसे भी इस घरसे निकालो । यह मुझे ऐसे मंगल धर्म अशुचि-खादक बना रही है ।”

उस घरमें सभी दास कर्मकर विशाखाके अधिकारमें थे, हाथ और पैरसे कौन पकड़ेगा, मुझसे भी कोई न थोल सकता था । तब विशाखा समुको बात सुनकर बोली—

“तात ! इतने बचनसे नहीं निकलती । तुम मुझे पनधामे कुम्भदासी (= पनभरनी दामी) की तरह नहीं छाये हो । जीते माता पिता की कथाय इतने से नहीं निरुत्साह करती । हमी कारण मेरे पिताने यदा आनेके दिन आठ कुटुम्बिकोको बुलाकर—यदि मेरी कन्याका शपराय हो तो तुम शोध काना’ कहकर, उनके हाथमें सौंपा था । उनको बुलवाकर मेरे दोषा-दोष की शोध करो ।”

सेठने—‘यह अचंग कह रही है,—(सोच), आठों कुटुम्बिकों (पंचों) को बुलाकर—

“भन्ते ! भिक्षु संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें ।”

भगवान् ने मौनमे स्वीकार किया । तब विद्याया मृगार माता भगवान् की स्वीकृति के जान, आसनसे उठ भगवान् को अभिषादन कर प्रदक्षिणा कर चली गई । उस समय उस रात के बीतने पर, चारो द्वीपवाला महामेघ बरसा । तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—

“भिक्षुओं ! यह जैसे जेत वनमे बरस रहा है, वैसेही (यह) चारो द्वीपोंमे बरस रहा है, भिक्षुओ ! यथा स्नान करो यह अंतिम चातुर्दशीपिक महामेघ है ।”

“अच्छा भन्ते ।” कह भिक्षु भगवान् को उत्तर दे, बीवरको अलग कर, शरीरसे वर्षा स्नान करने लगे । तब प्रिशाखा मृगार माताने उत्तम खाद्य भोज्य तैयार कर, दासीने आज्ञा दिया—

“जे ! जा, आराममें जाकर काल सूचित कर—(भोजनका) काल है, भन्ते । मोन सध्या होगया ।”

“अच्छा आर्ये !” कह उस दासीने आराममें जा, उन भिक्षुओंको बीवर फँक, वर्षा स्नान करते देखा । देखकर—‘आराममें भिक्षु नहीं है, आजीवर वर्षा स्नान कर रहे हैं’ (सोच) जहाँ विद्याया मृगार-माता थी, वहाँ गई, जाकर विद्यायाको कहा—

“आर्ये ! आराममें भिक्षु नहीं है, आजीवर वर्षा-स्नान कर रहे हैं ।”

तब पंडिता = व्यक्ता मेधाविनो विद्यायाको यह हुआ—‘नि संशय आर्य बीवरको छोड़ वर्षा स्नान कर रहे हैं, सो इस ताला (= मूल) ने समझा—आराममें भिक्षु नहीं हैं ।’

अत्यन्त अनुरक्त कुलकी कन्या हूँ, हम भिक्षु-संघ (की सेवा) के विना नहीं रह सकते । यदि अपनी रुचिके अनुसार भिक्षु सघकी सेवा करने पाऊँ, तो रहूँगी ।”

“अम्म ! तू यथा रवि अपने श्रमणों की सेवा कर ।”

तब प्रिशाखाने दश-बल (= बुद्ध) को निर्मत्रित कर, दूसरे दिन घरको भरते हुये, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको बैठाया । नंगोंकी जमात (= नग्न परिपक्व) भी, भगवान् के मृगारसेठके वा जानेकी बात सुन, वहाँ जाकर घरको घेर कर बठी । विद्यायाने दानका जल (= दक्षिणोदक) दे, शासन (= संदेश) भेजा—‘सब सत्कार होगया, मेरे समुद्र आकर दश-बलको परोसें’ । उसने—‘निर्गोंकी बात सुनकर मेरी बेी ‘सम्यक् सबुद्धको परोसें’ कह रही है । विद्यायाने भोजन समाप्त हो जाने पर, फिर शासन भेजा—‘मेरे समुद्र आकर दश-बलका धर्म-उपदेश सुनें’ । तब ‘अब न जाना बहुतही अनुचित होगा’, (सोचकर) जाते हुये उसे नग्न श्रमणों ने कहा—‘श्रमण गौतमका धर्म-उपदेश कनातके बाहरही रहकर सुनो’ । मृगारसेठ जाकर, कनातके बाहरही पडा । तथामतने—‘तू (चाहे) कनातके बाहर बठे (चाहे) भीतकी आड़में या पहाड़की आड़में या चक्रवालके पार बठे ; मैं बुद्ध हूँ, तुझे अपना शब्द सुना सकता हूँ । (सोच) सुनहले, पक्के फलों वाले अम्रपृष्ठकी टाली पकड़ कर हिलातेकी भाँति, धर्म-उपदेश किया । उपदेश के समाप्त होने पर सेठने स्रोतआपत्तिफलमें म्रितहो, कनातको हटा, पाँचों (अंगों)को (भूतलमें) प्रतिष्ठित कर, शास्ताके परोरफि बन्धनाकर, शास्तिके सामने ही—‘अम्म ! तू आजसे मेरी माता है’ कह, विद्यायाको माताके स्थानपर प्रतिष्ठित किया । तबने विद्याया ‘मृगार माता’ नामवाली हुई ।

फिर दासीको कहा—‘जे जा० ।’ तब वह भिक्षु गात्रको ठंडाकर चीवरले, अपने अपने विहारो (=कोठरियों) में चले गये थे । तब उस दासीने आरामम जा, भिक्षुओंको न देख—
‘आराममें भिक्षु नहा हैं, आराम सूना है ।’ (सोच) जाकर विशाखा को कहा—

“आयें ! आराममें भिक्षु नहीं हैं, आराम शून्य है ।”

तब पंडिता = व्यक्ता मेधाविनी विशाखाको यह हुआ—‘नि संशय आर्य गात्रको ठंडाकर चीवरले अपने अपने विहारमें चले गये । सो इस बालाने समझा—‘आराममें भिक्षु नहीं हैं । फिर दासीको कहा—‘जे । जा० ।’

तब भगवान्ने भिक्षुओंको कहा—

“भिक्षुओ ! पात्र चीवर तट्यार करो, भोजनका समय है ।”

“अच्छा भन्ते !”

तब भगवान् पूवाह्न समय पहिनकर पात्र चीवरले, जेने बनवान् पुरुष यटोरी बाहको फैलावे, फेली बाहको यटोरे, धैसे ही (अप्रयास) जेतनमें अस्तवधान हो, विशाखा शृंगारमाताके कौठपर प्रादुर्भूत हुये । भिक्षु-संघके साथ भगवान् निठे आसनपर बैठे । तब विशाखा शृंगारमाताने—
‘आश्चर्य रे ! अद्भुत रे ! तयागतकी महानुद्धिमत्ता = महानुभावता, जो जाघभर, कमर भर पानीकी बाढ होनेपर भी एक भिक्षुका पैर या चीवरभी नहीं भीगा है ।—हृष्ट = उद्यम हो छद्म प्रमुख भिक्षुमण्डको, उत्तम खाद्य भोज्यमे अपने हाथ सन्तर्पित सप्रसारितकर, भगवान्को भोजन का, भगवान्के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक ओर बैठ गई । एक ओर धैरी हुई विशाखा शृंगार-माताने भगवान्से कहा—

“भन्ते ! मैं भगवान्से (कुत्र) वरोकी मागती हूँ ।”

“विशाखे ! तयागत वरोसे परे हूँ ।”

“जो भन्ते ! फलप्य है = निर्दोष है ।”

“बोले, विशाखे !”

“भन्ते ! मैं सधको यावत्-जीवन वषाकी लूंगी (=वन्धिसर साटी) देना चाहती हूँ, आगन्तुक (=नयागत) को भोजन देना०, यात्रापर जानेवाले (=गमिर) को भोजन०, रोगी को भोजन०, रोगी परित्रारकको भोजन०, रोगीको औषध०, सर्वदा यागू (=रिचड़ी)०, और भिक्षुणी-पक्षको उदर-न्याटी (=स्तुमतीका कपड़ा) देना० ।”

“विशाखे ! तू किस कारणसे तयागतसे आठ वर मागती है ?”

“भन्ते ! मैंने दासीको आज्ञा दी—‘जे ! आराम जाकर कालकी सूचना दे, काल है भन्ते ! भोजन तट्यार है’ । तब भन्ते ! वह आकर मुझसे बोली—‘आर्य ! आराममें भिक्षु नहीं हैं, आजीवक शरीरमे वर्षा स्नानकर रहे हूँ ।’ भन्त ! भंगापा गंदा, घृणित, निरुद्ध (वात) है, इस कारणको देख, भन्ते ! मंदको यावज्जीवन बर्षिक शरीर दना चाहती हूँ । और फिर भन्ते ! आगन्तुक (=नयागत) भिक्षु गले, और गन्तव्य स्थानमे अपरिचितको यथे माद पिंडवार करते हैं । वह मेरा आगन्तुक-भोजन ग्रहणकर घीघि कुशल, गोर कुशल, पराष्ट-रहित हो पिंडवार करेगे० । और फिर भन्ते ! गमिक भिक्षु अपने भोजनकी

शोध करेंगे (सोच), चार देवपुत्रोंके साथ आया । देवपुत्रोंने चूहेके बच्चाका रूप धारण कर पकड़ी घेरमें दारु-मंडलिकाके बांधनेकी रस्सीको काट दिया, ओढ़नेके कपड़ेको हवाने उड़ा दिया । दारु-मंडलिका गिरते वक्त उसके पैरपर गिरी । दोनों पैरोंके पजे कट गये । मनुष्योंने— 'धिरू ! धिरू !' बन्मुखी (= कालकर्णी), सम्यक् सेतुद्वपर टोप लगा रही थी, (कह), शिरपर यूक, डेला-डंडर हाथमें ले, जेतवनसे बाहर निकाल दिया । तब तयागतके लोचन-पत्रसे बाहर जाते ही धरतीने फटकर उसे जगह दी । ”

रोगि-सुश्रूषक बुद्ध ।

×

×

×

×

उस समय एक भिक्षुको पेटनी बीमारी थी । वह अपने पेशाब पाखानेमें पड़ा हुआ था । तब भगवान् आयुष्मान् आनन्दको पीठे लिये घूमते, जहाँ उस भिक्षुका बिहार था, वहाँ पहुँचे । । जहाँ यह भिक्षु था, वहाँ गये । जाकर उस भिक्षुको पूछा—'भिक्षु ! तुझे क्या रोग है ?' । 'पेटकी बीमारी है, भगवान् !' 'भिक्षु तेरा कोई परिचारक है ?' 'नहीं भगवान् !' 'क्यों तेरी सेवा नहीं करते ?' 'भन्ते ! मैं भिक्षुओंका कुछ न करने वाला हूँ, इसलिये ।' तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—'जा आनन्द ! पानी ला, इस भिक्षुको नहला देगे ।' आनन्द पानी लाये । भगवान्ने पानी डाला, आयुष्मान् आनन्दने धोया । भगवान्ने शिरसे पकड़ा, आयुष्मान् आनन्दने पेरसे । उठाकर चारपाईपर लिटाया । तब भगवान्ने इसी प्रकरणमें भिक्षुओंको इकट्ठाकर । 'भिक्षुओ ! तुम्हारी माता नहीं, पिता नहीं, जोकि तुम्हारी सेवा करेंगे । यदि तुम एक दूसरेकी सेवा न करोगे, तो कौन सेवा करेगा ? जो रोगीकी सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है । यदि उपाध्याय हो, उपाध्यायको जीवनभर उपस्थान (= सेवा) करना चाहिये । यदि आचार्य । शिष्य ।' गुरु-भार । यदि न उपाध्याय है न आचार्य , तो संघको सेवा करनी चाहिये । सेवा न कर तो दुष्टकी आपत्ति है ।

पूर्वारांम निर्माण ।

एक उत्सवके दिन लोगोंको मंडित = प्रसाधित हो, धर्म-श्रवणके लिये बिहार जात देख, विशाखाने भी निर्मित स्थानपर मोजनकर, महालता प्रसाधनसे अलंकृत हो, लोगोंके साथ बिहार जा, आभरणोंको उत्तर दासकी दिया । ।—

'अम्म ! इन प्रसाधनों (= जेवरों) को रख, शास्ताके पाससे लौटते समय इन्हें पहनूँगी ।' उसको देकर शास्ताके पास जा धर्म उपदेश सुना । धर्म-श्रवणके बाद भगवान्को वन्दना कर, उठ कर चल पड़ी । वह उसकी दासी भी भूषणोंको भूल गई । धर्म छनकर परिपक्व के बने जाने पर जो कुछ भूला होता, उसे आनन्द स्वयं सँभालते थे । इस प्रकार उन्होंने उस दिन महालता प्रसाधनकी देव शास्ताको कहा—

“ भन्ते ! विशाखाका प्रसाधन छूट गया है । ”

“ एक ओर रखदो आनन्द । ”

स्थविरने उसे उठाकर सीढ़ीके पास लगाकर रख दिया । विशाखा भी सुप्रिया (दासी) के साथ, आगन्तुक, गमिक, रोगी आदिके कामको जाननेके लिये विहारक भीतर विचरती रही । दूसरे द्वारसे निकलकर विहारके पास खड़ी हो—‘अम्म ! प्रसाधन, ला, पहिन्नीं !’ उस समय यह दासी भूल आनेकी बात जान—‘आयें । भूल आई हूँ’—बोली । ‘तो जाकर ले आ, लेकिन यदि मेरे आर्य आनन्द स्थविरने उठाकर दूसरे स्थानपर रखवा हो, तो मत लाना, आर्यहीको मैंने उसे दिया’ । ‘। स्थविर भी दासीको देखकर—‘किसलिये आई’—पूछकर, ‘अपनी आयाका जेवर भूल गई हूँ’—बोलनेपर, ‘मैंने इस सीढ़ीके पास रख दिया है, जा उसे लेजा’ बोली । उसने—‘आर्य ! दुम्हार हाथके छूने ने उसे मेरी आर्यके पदिननेके अयोग्य बना दिया’—कहकर, खाली हाथही जा, ‘अम्म, क्या है ?’ विशाखाके यह पूछनेपर, उस बातको कह दिया । ‘अम्म । मैं अपने आर्यकी छूई चीजको नहीं पहिन्नीं, मैंने आर्यको दे दिया । किन्तु आर्यको रखवालीमें तकलीफ होगी, उसको देकर योग्य (=कल्प्य) चीज लाऊंगी । जा उसे ले आ ।’ यह जाकर ले आई ।

विशाखाने उसे न पहिन कमाँरो (=सुनारो)को बुलाकर दाम करवाया । ‘नर करोड़ मूल्यका हुआ, और बनवाई सौ हजार ।’—कहने पर ‘तो इससे बंध दो’ बोली । उतना धन देकर कोई परी न सकेगा । तब विशाखाने स्वयं उसका दामदे, नर करोड़ सौ हजार गाडियो पर लदवा, विहारमें लाने पान्ताको चन्दना कर—

“मन्ते । मेरे आर्य आनन्द स्थविरने मेरा आभूषण हाथसे छु दिया, उनके छूनेक समयहीसे मैं उसे नहीं पहिन सकती थी, ‘उसको देकर क्या य (=भिषुओंको प्राण) लाऊंगी, (मोघा) उसे दाने वक्त दूसरेको उसके लानेमें समर्थ न दान, मही उसका दाम उठवाकर लाई हूँ । भूते । भिक्षुओंके चारो पत्यथा (=प्राण वस्तुओं) में से किसको लाऊँ ।”

“विशाने ! संवक लिये पूर्व दवाजे पर वास-स्थान बनवाना युक्त है ॥

“मन्ते । ठीक ॥ (कह) सन्तुष्ट हो विशाखाने नर करोड़म भूमिहो खरीदा । दूसरे नर करोड़ से विहार उताना आरंभ किया ।

तब एक दिन शास्ता प्रत्युप समय लोकावलोकन करते, देवलोकमें व्युत हो भद्रिय (=भृंगार) नगरमें धेष्टी-कुलम उत्पन्न हुये, भद्रिय धेष्टी पुत्रको (भागम) दान, अनाथ पिंडकके घर भोजनकर, उत्तरद्वारकी ओर हुये । स्वभावतः शास्ता विशाखाके घर भिक्षा ग्रहणकर, दक्षिणद्वारसे निकल, जेतवनमें वास करते थे, अनाथ पिंडकके घर भिक्षा ग्रहणकर, पूर्वद्वारसे निकलकर, पूर्वाराधन घाम करते थे । उत्तर-द्वारकी ओर भगवान् को जाते देखकर ही (योग) जान जाते (कि) धारिकाके लिये जा रहे हैं । विशाखा भी उस दिन ‘उत्तरद्वारकी ओर गये’ यह उनकर जल्दीसे जाकर चन्दनाकर बोली—

१ सुख घण्टा ६ । “उस समय विशाखा सुगार माता संवक लिये आलिङ्ग (=पराश) सहित हस्तिनख (=हाथोंके नख या श्वेतके आङ्कितिका) प्रसाद बनवाना चाहती थी । तब भिक्षुओंको यह हुआ—‘क्यों भगवान् ने प्रासादका परिभोग (=ग्रहण, सेवन) अनुमति किया है ! भगवान् ने इस घण्टाको पूछा ।—‘भिक्षुओं ! सभी (प्रकार) के प्रासादोंके परिभोगकी अनुमति करता हूँ ।’

“भन्ते ! चारिकाक लिये जाना चाहते हैं ?”

“हा, विशासे !”

“भन्ते ! आपके लिये इतना धन देकर बिहार बनवाती हूँ, भन्ते ! लौट चहें ।”

“विशासे ! यह गमन लौटनेका नहीं है ।”

“तो भन्ते ! मेरे लिये छूत-अकूतका जानकार एक मिश्रु लौटाकर जायें ।”

“विशासे ! उस (मिश्रु) का पात्र ग्रहणकर” । उसके दिलमें कुछ तो आनन्द स्थविर को झुञ्झा हुई । (फिर)—‘महामोक्षलयायन स्थविर ऋद्धिमान् हैं, उनके द्वारा मेरा काम जल्दी समाप्त हो जायगा’—सोचकर, स्थविरके पात्रको ग्रहण किया । स्थविरने शास्ताका धार देखा । शास्ताने—‘अपने परिवारक पाँच साँ मिश्रुके, मोगलान ! लौट जाओ’—कहा उन्होंने ऐसाही किया । उनकी महिमासे, पचास साठ योजनपर वृक्ष या पाषाण केलिये गये (मनुष्य) ऋद्धि १० क्षो और पाषाणको लेकर उसी दिन लौट आते थे । गाड़ियाँ वृक्षो और पाषाणको रखनेमें, तरुचोफ नहीं पाते थे, १ धुरा दटना था । उन्होंने जल्दी ही शास्त्रका प्रामाद बना डाला । नीचेके तलार पाच सो गर्भ (=कोठरिया) और ऊपरके तलार पाच सो गर्भ,—दूक हजार गर्भसे मडिग (वह) प्रामाद था ।

देवदह-सुत्त (नि. पू. ४५०)

ऐसा मने सुना—एक समय भगवान् शास्त्र (देश) में, शास्त्रों के निगम देव-दहमें बिहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“ भिक्षुओ ! ” “ भदन्त ! ” ।

भगवान्ने कहा—“ भिक्षुओ ! कोई कोई भ्रमण प्राकण इस घाट—इस दृष्टिवाले हैं—
‘जो’ कुछ भी यह पुरुष = पुत्रल सुख, दुःख, या मृत्यु पर असुख अनुभव करता है, यह सब पहिले किये हेतुमे । इस प्रकार पुरान कर्मोंका तपस्यासे अन्त करनेसे, भये कर्मोंके न करनेसे, भविष्य में परिणाम रहित (= अन्-अवलम्ब) (होता है) । परिणाम रहित होनेमे कर्मक्षय, कर्मक्षयमे दुःख क्षय, दुःख क्षयसे वेदना क्षय, वेदना क्षयमे सभी दुःख जोर्ण हो जाते हैं । ’

“ भिक्षुओ ! यह निगड मंत्र ऐसा पूठने पर ‘ हा ’ कहने है । उनको मैं यह कहता हूँ—
‘आहुषो निर्गदो ! क्या तुम जानतेहो—हम पहिले येही, हम नहीं न रे ? ’ ‘ नहीं आहुष ! ’
‘ क्या तुम आहुषो निर्गदो ! जानतेहो—हमन पूर्वमें पाप कर्म कियाही है, नहीं नहीं किया है ? ’
‘ नहीं आहुष ! ’ ‘ क्या तुम आहुषो निर्गदो ! जानतेहो—एसा एसा पाप-कर्म किया है ? ’ ‘ नहीं आहुष ! ’
‘ क्या० जानने हो—इतना दुःख नाश हो गया, इतना दुःख नाश करना है, इतना दुःख नाश हो जानेपर, सब दुःख नाश हो जायेगा ? ’ ‘ नहीं आहुष ! ’ ‘ क्या० जानने हो—
इसी जन्ममें अकुशल (घुटे) धर्मोंका प्रहाण (= विनाश) और कुशल धर्मोंका लाभ (होना है) ? ’
‘ नहीं आहुष ! ’ ‘ इस प्रकार आहुषो निर्गदो ! तुम नहीं जानते—हम पहिले थे, या नहीं० इसी जन्ममें अकुशल धर्मोंका प्रहाण होना है, और कुशल धर्मोंका लाभ । क्या होनेपर आयुष्मान् निर्गदोका यह कथन युक्त नहीं—‘जो कुछ भी यह पुरुष = पुद्गल० अनुभव करता है० । यदि आहुषो निर्गदो ! तुम जानने होते—‘ हम पहिले थे हा० । ’ ऐसा होनेपर आयुष्मान् निर्गदोका यह कथन युक्त होता—‘ जो कुछ भी यह पुरुष० । आहुषो निर्गदो ! जैसे (कोइ) पुरुष विपत्ते उपलस गाद शल्य (= शस्त्र वन) में निद हो । वह शल्यके कारण दुःखद, कटु, ताम वेदना अनुभव करता हो । उसके मित्र = अमात्य जाति विरादरी उसे शल्य-चिकित्सकके पास ले जायें । वह शल्य चिकित्सक शस्त्रमे उसके ग्रन्थ (= घाव) को मुखरो कोटे । वह शस्त्रसे घन मुख काटनेसे भी दुःखद, कटु, तीव्र वेदनाको अनुभव करे । शल्य-चिकित्सक खोजनेकी शलाकासे शल्यको खोजे । वह शलाकामे शल्यन खोजनेके कारण भी दुःखद० वेदना अनुभव करे । वह शल्य चिकित्सक उसके शल्यको निकाले, वह शल्यके निकालनेके कारण भी० वेदना अनुभव करे । शल्य चिकित्सक उसने घन-मुखपर धवाई राये, ० ।

१ म नि ३ १ १ । अक. देव कहते हैं राजाओं को । वहा शास्त्र राजाओंकी सुंदर मंगल पुस्तकें थी, जिन पर पहना रहना था । वह दगाका दह (= पुस्तकाली) होनेके कारण देव दह कहा जाता था । उसीको लेकर वह निगम (= कथा) भी देवदह कहा जाता था । भगवान् उस निगमके सहार लुम्बिनी वनमें बाम करते थे । २ निगड तथ-पुच्छा वाद ।

वह दूसरे समय पात्रने पुर जानेमे निरोग, सुखी स्वयंसी, इच्छानुसार फिरेवाला, हा आ। उसको यह हो—म पहिले ०शल्यमे जिद्ध था० दवाई रखनेके कारण भी दुःखद० वेदना अनुभ करता था। सो म अब ०निरोग, सुखी० हूँ। ऐसे ही आयुसो निर्गठो ! यदि तुम जाने हो—‘हम पहिले ने ही, नहीं नहीं ये०। ऐसा होनेपर आयुष्मान् निर्गठोका यह कथन युक्त होता—‘जो कुछ भी०’। चूँकि आयुसो निर्गठो ! तुम नहीं जानने—‘हम पहिले ये’, हमलिये आयुष्मान् निर्गठोका यह कथन युक्त नहीं—‘जो कुछ भी०’।

“ऐसा कहने पर भिक्षुओ ! उन निर्गठोने मुझे कहा—‘आयुस ! निर्गठ नाथपुत्र मर्त्य = सर्वदर्शी, असिद्ध ज्ञान = दर्शनको जानते है। चलने, खड़े, मोते, जागते, सदा निर्गत (उल्टे) ज्ञान = दर्शन उपस्थित रहता है, यह ऐसा कहते है—‘आयुसो निर्गठो ! जो तुम्हारा पहिलेका किया हुआ कर्म है, उसे इस कड़वी दुष्कर कारिका (= तपस्या) से नाश करो, और जो इस वक्त यहा काय उचन-मनसे रक्षित (= संतुल) हो, यह भविष्यकेलिये पापका न करना हुआ। इस प्रकार पुराने कर्माका तपस्यामे अन्त होनेसे, और नये कर्मके न करनेसे, भविष्यमें तुम) अन् अवसन्न (होंगे)। भविष्यमें अवसन्न न होनेसे, कर्मका क्षय, कर्मके क्षयसे दुःख क्षय, दुःख क्षयसे वेदना-क्षय, वेदना-क्षयसे सभी दुःख नष्ट = निर्जोर्ण होजायेंगे। यह हमको स्वता है = समता है। इसमे हम सतुष्ट है।”

“ऐसा कहनेपर भिक्षुओ ! मेने उन निर्गठोको यह कहा—आयुसो निर्गठो ! यह पाँच धर्म इसी जन्ममें दो प्रकारके विपाक वाले है। कोनसे पाच ? (१) छद्वा, (२) रचि, (३) अनुश्रव, (४) आकार परिवर्तक, (५) दृष्टि-निश्चयान क्षान्ति। आयुसो निर्गठो ! यह पाँच धर्म इसी जन्ममें दो प्रकारके विपाक-वाले है। यहा आयुष्मान् निर्गठोका अतान भदा गानी शास्ता (= निर्गठ नाथपुत्र) म आपकी क्या श्रद्धा, क्या रचि, क्या अनुश्रव, क्या आकार परिवर्तक, क्या दृष्टि-निश्चयान क्षान्ति है ? भिक्षुओ ! निर्गठोके पास ऐसा कहकर भी म धर्मसे कोई भी वाद परिहार (= उत्तर) नहीं देगता।”

“और फिर भिक्षुओ ! मे उन निर्गठोको यह कहता हूँ—तो क्या मानते हो, आयुसो निर्गठो ! जिस समय तुम्हारा उपक्रम (= आरम्भ) तीव्र होता है, = प्रधान तीव्र (होता है)। उस समय (उस) उपक्रम सन्धो दुःखद, तीव्र, कटुक, वेदना अनुभव करते हो, जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र नहीं होता = प्रधान तीव्र नहीं (होता), उस समय वेदना अनुभव नहीं करते ? ‘जिस समय आयुस ! हमारा उपक्रम तीव्र होता है०, उस समय ०तीव्र० वेदना अनुभव करते है। जिस समय० उपक्रम तीव्र नहीं होता०, ०तीव्र० वेदना अनुभव नहीं करते।’

“इस प्रकार आयुसो निर्गठो ! जिस समय तुम्हारा उपक्रम = प्रधान तीव्र होता है, उस समय, तीव्र वेदना अनुभव करते हो, जिस समय तुम्हारा उपक्रम० तीव्र नहीं होता, ०तीव्र वेदना अनुभव नहीं करते। ऐसा होनेपर आयुष्मान् निर्गठोका यह कथन युक्त नहीं—‘जो कुछ भी यह पुरुष = पुद्गल०। यदि आयुसो निर्गठो ! जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र होता है, उस समय दुःखद वेदना रहती ही है, जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र० नहीं होता, उस समय दुःखद वेदना नहीं रहती, ऐसा होनेपर यह कथन युक्त नहीं—जो कुछ भी०।

“चूँकि आहुतों ! जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र होता है, उस समय दुःखद वेदना अनुभव करते हो, जिस समय उपक्रम तीव्र नहीं होता, वेदना अनुभव नहीं करते, तो तुम स्वयंही उपक्रम संस्थी दुःखद वेदना अनुभव करते, अविद्यासे, अज्ञानसे, मोहसे उल्टा समझ रहे हो—‘जो कुछ भी’ । भिक्षुओं ! निर्गठके पास ऐसा कहकर भी मैं धर्मसे कोई भी वाद परिहार (उनकी ओरसे) नहीं देखता ।

“और फिर भिक्षुओं ! मैं उन निर्गठों को ऐसा कहता हूँ—तो क्या मानते हो आहुतों निर्गठों ! जो यह इसी जन्ममें वेदनीय (=भोग करनेवाला) कर्म है, वह उपक्रमसे=या प्रधानसे संपराय (=दूसरे जन्ममें) वेदनीय किया जा सकता है ?’ ‘नहीं, आहुतों !’ ‘और जो यह जन्मान्तर (=संपराय) वेदनीय कर्म है, वह—उपक्रमसे=इस जन्ममें वेदनीय—किया जा सकता है ?’ ‘नहीं आहुतों !’ ‘तो क्या मानते हो आहुतों ! निर्गठों ! जो यह सुख वेदनीय (=सुख भोग करनेवाला) कर्म है, क्या वह उपक्रमसे=या प्रधानसे दुःख-वेदनीय किया जा सकता है ?’ ‘नहीं आहुतों !’ ‘जो यह दुःख-वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रमसे=सुख-वेदनीय किया जा सकता है ?’ ‘नहीं आहुतों !’ ‘तो क्या मानते हो आहुतों निर्गठों ! जो यह परिपक्व (=अवस्था=बुढ़ापा) में वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रमसे=अपरिपक्व वेदनीय किया जा सकता है ?’ ‘नहीं आहुतों !’ ‘जो यह अपरिपक्व (=शैशव, जवान्) -वेदनीय कर्म है, क्या वह परिपक्व-वेदनीय किया जा सकता है ?’ ‘नहीं आहुतों !’ ‘तो क्या मानते हो, आहुतों निर्गठों ! जो यह नु वेदनीय कर्म है, क्या वह अपर वेदनीय किया जा सकता है ?’ ‘नहीं आहुतों !’ ‘जो यह अपर वेदनीय कर्म है ?’ ‘नहीं आहुतों !’ ‘तो क्या मानते हो आहुतों निर्गठों ! जो यह वेदनीय (=भोग करनेवाला) कर्म है, क्या वह उपक्रमसे=अवेदनीय किया जा सकता है ?’ ‘नहीं आहुतों !’ ‘अवेदनीय कर्म=वेदनीय किया जा सकता है ?’ ‘हाँ’ । ‘इस प्रकार आहुतों निर्गठों ! जो यह इसी जन्ममें वेदनीय कर्म है, अवेदनीय कर्म है, वह भी वेदनीय नहीं किया जा सकता । ऐसा होनेपर अयुमान् निर्गठोंका उपक्रम निष्फल हो जाता है, प्रधान निष्फल हो जाता है ।

“भिक्षुओं ! निर्गठ लोग इस बात (के मानने) वाले हैं । ऐसे बड़बाले निर्गठोंके वाद=अनुवाद घमानुसार दस रूपाणाम् वेदनीय (=अयुक्त) होता है । यदि भिक्षुओं ! प्राणी पहिले किये (कर्मों)के कारण सुख दुःख भोगते हैं, तो भिक्षुओं ! निर्गठ लोग अवश्य पहिले शुरु काम करनेवाले थे, जो इस पक्ष इस प्रकार दुःखद, तीव्र, कटु वेदनाय भोग रहे हैं । यदि भिक्षुओं ! प्राणी ईश्वरके वनानेक कारण (=ईश्वर निमाग हेतु) सुख दुःख भोगते हैं, तो अवश्य भिक्षुओं ! निर्गठ लोग पापी (=धुर) ईश्वर द्वारा वनाने भोग हैं, जोकि इस पक्ष, दुःखद वेदनायें भोग रहे हैं । यदि भिक्षुओं ! प्राणी सगति (=साथी)के कारण सुख दुःख भोगते हैं, तो अवश्य भिक्षुओं ! निर्गठ लोग पाप (=धुरी) संगति (=साथी) वाले थे, जो इस पक्ष । यदि भिक्षुओं ! प्राणी अभिजातिक कारण । यदि इसी जन्ममें उपक्रमसे कारण सुख दुःख भोगते हैं, तो अवश्य भिक्षुओं ! निर्गठोंका इस जन्मका उपक्रम शुरु (=पाप) है, जोकि इस पक्ष, दुःखद वेदनायें भोग रहे हैं ।

“यदि भिक्षुओ ! प्राणी पूर्व किये (कर्मा) के कारण सुख दुःख भोग रहे हैं, तो निर्गट गर्हणीय हैं, यदि ईश्वरके निर्माणके कारण, भवितव्यता (= संगति) के कारण, अभिजातिके कारण, इसी जन्मके उपक्रमके कारण सुख दुःख भोगते हैं, तो निर्गट गर्हणीय हैं । भिक्षुओ ! निर्गट ऐसा मत (= वाद) रखते हैं । ऐसे वादवाते निर्गटके वाद = गजुपाट धर्मानुसार दम स्थानोंमें निन्दनीय होते हैं । दम प्रकार भिक्षुओ ! (उनका) उपरम निर्गट होता है, प्रधान निष्फल होता है ।

“ भिक्षुओ ! पांच उपक्रम सफल हैं, प्रधान सफल है । भिक्षुओ ! (१) भिक्षु दुःखसे धर्माभिभूत (= अ पीडित) शरीरको दुःखसे अभिभूत नहीं करता । (२) धार्मिक सुखका परित्याग नहीं करता । (३) उस सुखमें अधिक हृष्य (= मूर्छित) नहीं हो जाता । (४) वह ऐसा जानता है—इस दुःख कारणसे संस्कारके अभ्यास करने वालेको, संस्कारके अभ्यास में, विराग होता है, (५) हम दुःख निदानकी उपेक्षा करने वालेको उपेक्षाकी भावना करने, विराग होता है । वह जिस दुःख निदानसे संस्कारके अभ्यास करनेसे संस्कारके अभ्यासमें विराग होता है, उस संस्कारको अभ्यास करता है । जिस दुःख निदानकी उपेक्षा करने से, उपेक्षाकी भावना करनेसे, विराग होता है, उस उपेक्षाकी भावना करता है । उस उस दुःख निदानके संस्कारके अभ्यासमें विराग होता है, हम प्रकार भी इसका वह दुःख जीर्ण होता है । उस उस दुःख निदानकी उपेक्षाकी भावना करने वालेको विराग होता है, हम प्रकार भी हमका वह दुःख जीर्ण होता है ।

“भिक्षुओ ! जैसे पुरुष (किमी) चीम अनुरक्त हो, प्रतिशब्दचित्त तीव्र रागी = तीव्र अपेक्षी हो । वह उस चीम की दूसरे पुरुषके साथ खड़ा, बात करती, जगघन करती = हँसता देवे । तो क्या मानने हो, भिक्षुओ ! उस चीम की दूसरे पुरुषके साथ हँसती देख क्या, उस पुरुषकी शोक = परित्य, दुःख = दोषमन्य = उपायास उत्पन्न नहीं होंगे ? ”

“ हाँ, मन्ते ? ”

“ सो किसलिये ? ”

“ वह पुरुष मन्ते । उस चीम अनुरक्त है । इस लिये उस चीम की दूसरे पुरुषके साथ हँसती देख, उस पुरुषकी शोक उत्पन्न होगी । ”

“ तब भिक्षुओ ! उस पुरुषको ऐसा हो—मे इस चीम अनुरक्त हूँ । सो इस चीम की दूसरे पुरुषके साथ हँसते देव शोक उत्पन्न होते हैं । क्यों न मे जो मेरा इस चीम छद्म = राग है, उसको छोड़ दूँ । वह (फिर) जो उस चीम उसका छन्द = राग है, उसे छोड़ दे । फिर दूसरे समय वह उस चीम की दूसरे पुरुषके साथ हँसने देवे, तो क्या मानने हो भिक्षुओ ! क्या उस चीम की दूसरे पुरुषके साथ हँसते देख, उस पुरुषकी शोक उत्पन्न होगी ? ”

“ नहीं मन्ते । ”

“ सो किस लिये ? ”

“ वह पुरुष मन्ते ! उस चीमसे बात राग है, इसलिये उस चीम की हँसते देख, उस पुरुषकी शोक उत्पन्न नहीं होते । ”

“ ऐसे ही भिक्षुओ ! भिक्षु दुःखसे अन्-अभिभूत शरीरको दुःखसे अभिभूत नहीं करता । इस प्रकारभी इसका वह दुःख जीर्ण होता है । इस प्रकार भिक्षुओ ! उपक्रम सफल होता है, प्रधान सफल होता है ।

“ और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु ऐसा सोचता है—सुप्त पूर्वक विहार करतेभी मेरे अ-कुशल धर्म बढ़ते हैं, कुशल धर्म क्षीण होते हैं, (लेविन) अपनेको दुःखमें लगाते अकुशल धर्म क्षीण होते हैं, कुशल-धर्म बढ़ते हैं, क्यों न मैं दुःखमें अपनेको लगाऊँ । इस प्रकार वह अपनेको दुःखमें लगाता है, दुःखमें अपनेको लगाते हुये उसके अकुशल धर्म क्षीण होते हैं, कुशल धर्म बढ़ते हैं । वह उसके बाद दुःखमें अपनेको नहीं लगाता । सो किम लिये ? भिक्षुओ ! वह भिक्षु जिसके लिये दुःखमें अपनेको लगाता था, वह उसका मतलब पूरा होगया, इसलिये दूसरे समय दुःख में अपनेको नहीं लगाता । जेमे भिक्षुओ ! इषुकार (=वाण बनानेवाला रोहदार) दो अंगारो (=अलात) पर तेज्जन (=धाण-फल) को तपाता है, सीधा करता है । जय भिक्षुओ ! इषुकारका तेज्जन दो अङ्गारापर आत्तापित=परितापित (हो चुका) होता है, सीधा (हो गया) होता है । तो फिर दूसरी बार वह इषुकार तेज्जनको दो अङ्गारापर आत्तापित परितापित नहीं करता, (नहीं) सीधा करता । सो किमलिये ? भिक्षुओ ! जिम मतलबसे इषुकार आत्तापित परितापित कर रहा था । वह उसका मतलब पूरा होगया । इसलिये दूसरी बार ० । ऐसे ही भिक्षुओ ! भिक्षु ऐसा सोचता है—सुप्त पूर्वक विहार करते भी अकुशल धर्म बढ़ते हैं, कुशल धर्म क्षीण होते हैं ० इसलिये दूसरे समय दुःखमें अपनेको नहीं लगाता । इस प्रकारभी भिक्षुओ ! उपक्रम सफल होता है, प्रधान सफल होता है ।

“ और फिर भिक्षुओ ! वहाँ लोकम तयागत आर्हव, सम्यक्-संयुद्ध विद्या आचरण युक्त सुगत ० । उत्पन्न होते हैं । ० धर्म-उपदेस करते हैं । ० घर छोड़ पेघर हो प्राजित होता है । ० । वह इस आय शील स्कंधसे संयुक्त हो, अपनेमें निर्दोष सुप्त अनुभूत करता है । ० वह इस आर्य इन्द्रिय-संवरसे युक्त होता है । ० । वह इस आर्य शील-स्कंधसे युक्त हो, इस आय इन्द्रिय संवरसे, इस आर्य स्मृति मंत्रज-वसे युक्त हो, पुरात वास स्थान, वृक्षके नीचे, पर्वत, कंदरा, गिरिगुहा, वनशान वन-प्रस्थ, मैदान, पयालका ढेर, सेजन करता है । वह भोजनके बाद आमन मार शरीरको सीधा रख, स्मृतिको संमुख उपस्थितकर, येव्ना है । वह लोकम लोभ (=अभिष्या) को छोड़, अभिष्या-रहित चित्तसे विहरता है, अभिष्यासे चित्तको परिगुद करता है । व्यापाद=प्रद्वेष (=द्वेष)को छोड़, न व्यापन्न चित्त हो, मय प्राणिवोर हित=शुक्लम्प हो विहरता है ० । स्त्थान-मृद छोड़, औदत्य कौट्य छोड़, विचिकित्सा छोड़ ० । यह इन पाँच चित्तके नीपरणोको छोड़ ० । प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । उसका भिक्षुओ ! उपक्रम सफल होता है ० ।

“ और फिर भिक्षुओ ! ० द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो ० । ० उपक्रम सफल होता है ० ।

“ और फिर ० । ० तृतीय ध्यानको प्राप्त हो ० । इस प्रकार भी ० ।

“ और फिर ० । ० चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो ० । इस प्रकार भी ० ।

“यत्तु इस प्रकार समाहित चित्त० अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोको अनुस्मरण करता है। इस प्रकार भी०।

“यत्तु इस प्रकार समाहित चित्त० दिव्य चक्षुसे प्राणियोंको व्युत्पन्न होते, उत्पन्न होते जानता है। इस प्रकार भी०।

“यत्तु इस प्रकार समाहित चित्त० ‘जन्म खतम होगया०’ जानता है। इस प्रकार भी०।

“भिक्षुओ ! तथागत ऐसे वाद (के मानने) वाले हैं। ऐसे वादवाले तथागत धर्मानुसार (= न्यायानुसार) प्रशंसाके दस स्थान होते हैं। (१) यदि भिक्षुओ ! प्राणी पूर्व किये कर्मोंके कारण सुख दुःख भोगते हैं, तो अवश्य भिक्षुओ ! तथागत पहिलेके पुण्य करनेवाले रहे हैं, जो कि इस समय आत्मा (= मल) विहीन सुख-वेदनाको अनुभव करते हैं। (२) यदि भिक्षुओ ! ईश्वर निमाणके कारण०, तो अवश्य भिक्षुओ ! तथागत अच्छे ईश्वरसे निर्मित हैं, जो कि इस समय०। (३) अवितर्क्यताके कारण०, तथागत उत्तम भवितव्यता वाले हैं०। (४) अभिजातिके कारण०, तथागत उत्तम अभिजातिवाले०। (५) इसी जन्मके उपक्रमके कारण०, तथागत इस जन्मके सुन्दर उपक्रमवाले०। (६) यदि भिक्षुओ ! प्राणी पूर्वकृत (कर्मा)के कारण सुख दुःख अनुभव करते हैं, तो तथागत प्रशंसनीय हैं, यदि पूर्वकृत (कर्मों)के कारण सुख दुःख नहीं अनुभव करते, तो (भी) तथागत प्रशंसनीय हैं। (७) यदि भिक्षुओ ! प्राणी ईश्वर-निमाणके कारण०, ईश्वर निर्माणके कारण नहीं०। (८) अवितर्क्यताके कारण०, अवितर्क्यताके कारण नहीं०। (९) अभिजातिके कारण नहीं०। (१०) इस जन्मके उपक्रमके कारण०, इस जन्मके उपक्रमके कारण नहीं०। भिक्षुओ ! तथागत इस वाद (के मानने) वाले हैं। ॥”

भगवान्ने यह कहा। संतुष्ट हो उन भिक्षुओने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

केसपुत्तिय-मुत्त । पूर्वोराममे प्रथम वर्षावास । आलपक-मुत्त (वि. पू. ४५०-४६) ।

ऐसा^१ मैंने सुना—एक समय भगवान् कोसलमें चारिज करते बड़े भारी भिक्षु संघके साथ जहाँ कालामो का केम पुत्त नामक निगम था, वहाँ पहुँचे ।

केमपुत्तिय (= पंच पुत्रीय) कालामो ने सुना—शाक्य पुत्रश्रमण गौतम केसपुत्तमें प्राप्त हुये हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा भगल कीर्ति शब्द फैल चुका—^२० । इस प्रकारने कईतोंका दर्शन अच्छा होता है । तब केमपुत्तिय कालाम जहाँ भगवान् गौतम आये । आकर कोई कोई भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये, कोई कोई भगवान् को सम्मोदा कर एक ओर बैठ गये । कोई कोई जिधर भगवान् गये उत्र हाथ जोड़ कर^३ । कोई कोई नाम-गोत्र सुनाकर एक ओर बैठ गये । कोई कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ केमपुत्तिय कालामोने भगवान् को यह कहा—

“भन्ते । कोई कोई श्रमण ब्राह्मण केम पुत्तमें आते हैं, अपने ही वाद (= मत) को प्रकाशित करते हैं, घोषित करते हैं, दूसरेके वाद पर नाराज होते हैं (= खुसेन्ति) निन्दा करते हैं, परित्यक्त करते हैं । भन्ते । दूसरे भी कोई कोई श्रमण ब्राह्मण केम-पुत्तमें आते हैं, वह भी अपनेही वादको^४ । तब भन्ते । हमको काशा = विचिकित्सा (= संशय) होता है—कौन इन आप श्रमण गौतमोंमें सब कहता है, कौन नूत^५ । ”

“कालामो ! तुम्हारी काशा = विचिकित्सा ठीक है, काक्षणाय स्थानम् ही तुम्हें सन्देह उत्पन्न हुआ है । आओ कालामो ! मत तुम अनुभव (= ध्रुव) से, मत परम्परामें, मत ‘पमाही है’ से, मत पित्र संप्रदाय (= अपने मा-य शास्त्रही अनुवृत्ता) से, मत तत्त्वक कारणोंसे, मत तप (= तपस्य) हेतुमें, मत (वक्ताके) आकारके विचारमें, मत अपने विचारित मनमें अनुवृत्त होनेसे, मत (वक्ताके) अभ्य रप होनेसे, मत ‘श्रमण हमारा नुर (= वडा) है’ से, (प्रियवास करो) । जब कालामो तुम अपनेही जानो—यह धर्म अकुशल, यह धर्म सदोष, यह धर्म विज्ञान निम्न (है), यह लेने, ग्रहण करनेपर अहित = दुःखनेलिये होते हैं, तब कालामो ! तुम (उसे) छोड़ देना । तो क्या मानने हो कालामो ! पुरुषों भीतर उत्पन्न हुआ लोभ हितरन्ध्रि दाता है, या अहित केन्त्रि^६ ? ” “अहितके लिये, भन्ते ! ”

“कालामो ! यह लुब्ध (= लोभमें पटा) पुरुष = पुरुष, लोभमें अभिमूल (= लिप्त) = परिगृहीत वित्त, प्राण भी मारता है, चोरी भी करता है, पर स्त्री गमन भा करता है, शूद्र भी बोलता है, दूसरेको भी बेसा करनेमें प्रेरित करता है, जो कि चिरकाल तक उपपन्न अहित = दुःखने लिये होता है । ” “हाँ, भन्ते । ”

“तो क्या मानने हो कालामो ! पुरुष भीतर उत्पन्न हुआ द्वेष हितरन्ध्रि क्षिप्त होता है, या अहितके लिये^७ ? ” “अहितके लिये भन्ते ! ”

आलम्बक सुत्त ।

१०मा मने सुता—एक समय भगवान् आलम्बीमें गायोंके मार्ग (=गो-मग) में सिरम वन (=सिंपवा-वन) में पत्तेके बित्रोनेपर विहार करते थे ।

तब हस्तक आलम्बकने जंवाविहार (=चहलकदमी) के लिये टहलने विचलने हुये, भगवान्को गोमार्ग सिंपवा वनमें पर्ग मंस्तपर घट देगा । देखकर जहा भगवान् थे, वहा पहुँचका भगवान्को अभिवादनका, एक ओर यडा । एक ओर यडे हस्तक आलम्बक भगवान्को फटा—

“ भन्ते ! भगवान् सुपसे तो सोये ? ”

“ हा कुमार ! सुपसे सोया, जो लोकमें सुबसे सोते हैं, म उनमेंसे एक हूँ । ”

“ भन्ते ! (यह) हेमन्तकी शीतल रात, हिम-पातका समय १अन्तराष्टक है ।

१ गो घटक दल कटी भूमि है, पगामन पतला है, वृक्षके पत्र विरल है, कापाय घस शाकल है, चाबाई पायु शीतल है, तब भी भगवान् ऐसा कहते हैं—“ हा कुमार ! सुपसे सोया ० । ”

“ तो कुमार ! तुम ही पूछा है, जंवा गुप्ते ठीक लगे, यसा मुझे उत्तर दे । तो क्या

कुमार ! (किमी) गृहपति (=घरप) या गृहपति पुत्रका स्त्रीया पोता, वायु रहित, दारपद, पिङ्गको घन्ट पृथागर (=फोडा) हो, यहा चार ०गुण पोम्तीनडा बिडा (=गोणरुथन), पट्टो बिडा, कालीन बिडा, उत्तम कादली मृग उर्म बिडा, दोनो (=मिरहाने) पेहने) ओर लाल तक्रियोशाला, ऊरा त्रिनाशाला पहन हो, तेल-प्रदीप भी जल रहा हो । चार भावाय सु दर सुन्तर (सेवाभा) क साथ हाजिर हो, तो क्या मानने हो, कुमार । वह सुपसे सोयेगा या नहीं, यहा तुम्हें केपा होता है ? ”

“ भन्ते ! वह सुपसे सोयेगा । जो लोकमें सुबसे सोते हैं, वह उनमें से एक होगा । ”

“ तो क्या मानने हो कुमार । ० यदि उस गृहपति या गृहपति-पुत्रको, रागसे उत्पन्न होनेवाले कायिक या मानसिक परिदाह (=जन्म) उत्पन्नहो, तो उन रागज परिदाहोस जन्म हुये क्या वह तुमसे सोयेगा ? ”

“ हा, भन्ते ! ”

“ कुमार ! वह गृहपति या गृहपति पुत्र जिस रागज परिदाहसे=जलनमे दुखसे सोते हैं, तथागतका वह (रागज परिदाह) नष्ट—उच्छिन्न-मूल=मस्तक-च्छिन्न ताल्की तरह किया=अभाव प्राप्त, अविष्यमे न उत्पन्नहोने लायक (होगया है), इसलिये म सुखसे सोया । तो क्या माते हो, कुमार । यदि उस गृहपति ० को द्वेषसे उत्पन्न (=द्वेषन) ० । ० मोहसे उत्पन्न (=माहज) कायिक या मानसिक परिदाह उत्पन्न हों ० ? ”

१ अ नि ३ ४ ५ । २ अ क “ माघके अन्तके चार दिन, और फागुनके आदिके चार दिन अंतराष्टक कहे जाते हैं । ” ३ अ क “ पानी घरमेंपर गायों जाने आनेके स्थानपर खुतोसे कीचड़ उमड़ आता है, वह धूँध हवासे सूबरर आनेके दातकी तरह दु ल-स्पर्श होता है, उसीको ट्यालकर मोकंटर हत कहा । ”

ऐसा कहने पर राष्ट्रपाल कुल-पुत्रके माता पिताने राष्ट्रपाल ० को कहा—

“ तात राष्ट्रपाल ! तुम हमारे प्रिय=मनाप, सुखमें बड़े, सुखमें पड़े एक पुत्र हो । तात राष्ट्रपाल ! तुम दुःख कुलभी गईं जानने । आओ तात राष्ट्रपाल ! खाओ, पियो, विचरो । खाते पीते विचरते, कामोंका परिभोग करते, पुण्य करते रमण करो । हम तुम्हें ० प्रमज्याकेलिये आज्ञा न देंगे । मरने परभा हम तुमसे पे-वाह न होगे, तो फिर कैसे हम तुम्हें जीते जी ० प्रमजित होनेकी आज्ञा देंगे । ”

दूसरी बार भी ० । तीसरी बार भी ० ।

तब राष्ट्रपाल कुलपुत्र माता पिताके पास प्रमज्या(की आज्ञा) को न पा, वहीं नंगी धरतीपर पड़ा गया ।—‘ यहीं मेरा मरण होगा, या प्रमज्या ’ । तब ०माता पिताने राष्ट्रपाल ० को कहा—

“ तात राष्ट्रपाल ! तुम हमारे प्रिय ० एक पुत्र हो ० । ”

ऐसा कहनेपर राष्ट्रपाल कुल पुत्र चुप रहा ।

०दूसरीबार भी ० । ० । ०तीसरीबार भी राष्ट्रपाल कुल-पुत्र चुप रहा ।

तब राष्ट्रपाल ०के माता पिता जहाँ राष्ट्रपाल कुलपुत्रके मित्र थे, बटा गये । जाकर कहा—

“ तातो ! यह राष्ट्रपाल कुलपुत्र नंगी धरतीपर पड़ा है—‘ यहीं मरण होगा या प्रमज्या ’ । आओ तातो ! जहा राष्ट्रपाल है, बटा आओ । जाकर राष्ट्रपाल ०को कहो—सौम्य राष्ट्रपाल ! तुम माता पिताके प्रिय ० एक पुत्र हो ० । ”

तब राष्ट्रपाल ०के मित्र राष्ट्रपाल ०के माता-पिता(की बात)को सुनकर, जहा राष्ट्रपाल था, बटा गये । जाकर ० कहा—

“ सौम्य राष्ट्रपाल ! तुम माता पिताके प्रिय ० एक पुत्र हो ० । ”

ऐसा कहनेपर राष्ट्रपाल ० चुप रहा । दूसरीबार भी ० । ० । तीसरीबार भी ० । ० ।

तब राष्ट्रपाल ०के मित्रों (=सहायक) ० राष्ट्रपाल ०के माता पिताने कहा—

“ अम्मा ! तात ! यह राष्ट्रपाल ० वहीं नंगी धरतीपर पड़ा है—‘ यहीं मेरा मरण होगा, या प्रमज्या । ’ यदि तुम राष्ट्रपाल ०को अनुज्ञा न दोगे, तो वहीं उसका मरण होगा, यदि तुम आज्ञा दोगे, प्रमजित हुये भी उसे देखोगे ; यदि राष्ट्रपाल ० प्रमज्यामें मन न लगा सका, तो, उसकी और दूसरी क्या गति होगी ? यहीं लौट आयेगा । (अतः) राष्ट्रपाल ०को प्रमज्याकी अनुज्ञा दो । ”

“ तातो ! हम राष्ट्रपाल ० की प्रमज्याकी अनुज्ञा (=स्वीकृति) देते हैं, लेकिन प्रमजित हो, माता पिताको दर्शन देना होगा । ”

तब राष्ट्रपाल कुल-पुत्रके सहायक ०, जाकर राष्ट्रपाल ० को बोले—

“ सौम्य राष्ट्रपाल ! तु माता-पिताका प्रिय ० एक पुत्र है ० । माता पिताने प्रमज्याकेलिये तु अनुज्ञात है । लेकिन प्रमजित हो माता पिताको दर्शन देना होगा । ”

रटदूपाल-सुचा (वि. पू. ४४६) ।

ऐसा मने सुना—एक समक भगवान् बुरु (देश)म महाभिषु-संधके साथ वासि करते, जहा धुलकोटित नामक बुरुभोका निगम (=कल्या) था, वहाँ पहुँचे ।

धुलकोटित (=सूलकोटित) वासी ब्राह्मण गृहपतियोने सुना—वाक्यपुत्र^० धर्मगतम धुल कोटितमे प्राप्त हुये हैं^० । ^०इस प्रकारके अर्हतोका दर्शन अच्छा होता है । तब धुलकोटितके ब्राह्मण गृहपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर कोई कोई अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । कोई कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे धुल-कोटित वासी ब्राह्मण गृहपतियोंको भगवान्ने धार्मिक कथासे सज्जित, प्रेरित, समुत्तेजित, सप्रदीप्त किया ।

उस समय उसी धुलकोटितके अग्र-कुलिकया पुत्र राष्ट्र पाल उस परिषदमें बैठा था । तब राष्ट्र पाल को ऐसा हुआ जैसे भगवान् धर्म उपदेश कर रहे हैं, यह अत्यन्त परिशुद्ध संन्यासा धुल ब्रह्मचर्य पालन गृहमें वास करते सुकर नहीं है । क्यों मैं वैशा श्मश्रु मुंशकर, वापस चला पहिनकर, घरसे घेघर हो प्रजित होजाऊँ । तब धुलकोटित-वासी ब्राह्मण-गृहपति भगवान्से धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सप्रदीप्त हो, भगवान्के भाषणको अभिन्दन, अनुमोदन कर, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादन कर, प्रदक्षिणाकर, चले गये । तब राष्ट्र पाल बुरुपुत्र ब्राह्मणोंक चले जानेके थोड़ी ही देर बाद जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे राष्ट्रपाल बुरु पुत्रने भगवान्का कहा—

“भन्ते ! जेसे जैसे मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको समझता हूँ, यह^० दाँप लिखित ब्रह्मचर्य पालन गृहमें वास करते सुकर नहीं है । भन्ते ! मैं भगवान्के पास प्रज्या पाऊँ उपसपदा पाऊँ ।”

“राष्ट्र पाल ! क्या तुने मातापितासे घरमें घेघर प्रज्याके लिये आज्ञा पाई है ?”

“भन्ते । ^० आना नहीं पाई ।”

“राष्ट्रपाल ! माता पितासे बिना आज्ञा पायेको तथागत प्रजित नहीं करते ।”

“भन्ते । सो मैं वेमा कहँगा, जिसमें माता-पिता मुझे ^० प्रज्याके लिये आना दें ।”

“तब राष्ट्रपाल बुरु-पुत्र आसासे उठकर, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर जहा माता-पिता थे, वहाँ गया । जाकर माता-पिताको कहा—

“अम्मा ! तात ! जेसे जेसे मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको समझता हूँ, यह^० दाँप लिखित (=छिटे शीशकी तरह निर्मल द्रव्य) ब्रह्मचर्य-पालन, गृहमें वास करने सुकर नहीं है । मैं प्रजित होना चाहता हूँ । घरसे घेघर हो प्रजित होनेके लिये मुझे आज्ञा दो ।”

ऐसा कहने पर राष्ट्रपाल कुल-पुत्रके माता-पिताने राष्ट्रपाल ० को कहा—

“ तात राष्ट्रपाल ! तुम हमारे प्रिय=मनाप, सुखमें बड़े, सुखमें पड़े एक पुत्र हो । तात राष्ट्रपाल ! तुम दुःख कुलभी नहीं जानते । आओ तात राष्ट्रपाल ! आओ, पियो, विचरो । खाते पीते विचरते, कामोंका परिभोग करते, पुण्य करते मरण करो । हम तुम्हें ० प्रमज्याकेलिये आज्ञा न देंगे । मरने परभी हम तुमसे वे-चाह न होंगे, तो फिर कैसे हम तुम्हें जीने जी ० प्रमजित होनेकी आज्ञा देंगे । ”

दूसरी बार भी ० । तीसरी बार भी ० ।

तब राष्ट्रपाल कुलपुत्र माता पिताके पास प्रमज्या(की आज्ञा)को न पा, वहीं नंगी धरतीपर पड़ा गया ।—‘ यहीं ’ मेरा मरण होगा, या प्रमज्या ’ । तब ०माता पिताने राष्ट्रपाल ० को कहा—

“ तात राष्ट्रपाल ! तुम हमारे प्रिय ० एक पुत्र हो ० । ”

ऐसा कहनेपर राष्ट्रपाल कुल पुत्र चुप रहा ।

०दूसरीबार भी ० । ० । ०तीसरीबार भी राष्ट्रपाल कुल पुत्र चुप रहा ।

तब राष्ट्रपाल०के माता पिता जहाँ राष्ट्रपाल कुलपुत्रके मित्र थे, वहाँ गये । जाकर कहा—

“ तातो ! यह राष्ट्रपाल कुलपुत्र नंगी धरतीपर पड़ा है—‘ यहीं मरण होगा या प्रमज्या ’ । आओ तातो ! जहाँ राष्ट्रपाल है, वहाँ जाओ । जाकर राष्ट्रपाल०को कहो—सौम्य राष्ट्रपाल ! तुम माता पिताके प्रिय ० एक पुत्र हो ० । ”

तब राष्ट्रपाल०के मित्र राष्ट्रपाल०के माता पिता(की बात)को सुनकर, जहाँ राष्ट्रपाल ० था, वहाँ गये, जाकर ० कहा—

“ सौम्य राष्ट्रपाल ! तुम माता पिताके प्रिय ० एक पुत्र हो ० । ”

ऐसा कहनेपर राष्ट्रपाल० चुप रहा । दूसरीबार भी ० । ० । तीसरीबार भी ० । ० ।

तब राष्ट्रपाल०के मित्रो (=सहायक)ने ० राष्ट्रपाल०के माता पिताने कहा—

“ सम्मा ! तात ! यह राष्ट्रपाल० वहीं नंगी धरतीपर पड़ा है—‘ यहीं मेरा मरण होगा, या प्रमज्या । ’ यदि तुम राष्ट्रपाल०को ०अनुज्ञा न दोगे, तो यहीं उसका मरण होगा, यदि तुम ०आज्ञा दोगे, प्रमजित हुये भी उसे देखोगे; यदि राष्ट्रपाल० प्रमज्यामें मन न लगा सका, तो, उसकी और दूसरी क्या गति होगी ? यहीं लौट आयेगा । (अतः) राष्ट्रपाल०को प्रमज्याकी अनुज्ञा दो । ”

“ तातो ! हम राष्ट्रपाल० की ०प्रमज्याकी अनुज्ञा (=स्वीकृति) देते हैं; लेकिन प्रमजित हो, माता पिताको दर्शन दना होगा । ”

तब राष्ट्रपाल कुल-पुत्रके सहायक०, जाकर राष्ट्रपाल० को बोले—

“ सौम्य राष्ट्रपाल ! तू माता-पिताका प्रिय ० एक पुत्र है ० । माता पितासे ०प्रमज्या कलिये तू अनुज्ञात है । लेकिन प्रमजित हो माता पिताको दर्शन दना होगा । ”

तब राष्ट्रपाल० उठकर, बल ग्रहणकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर० एक ओर बैठ हुये० भगवान्‌को कहा—

“भन्ते ! मैं माता पितासे० प्रव्रज्याके लिये अनुज्ञात हूँ। मुने भगवान् प्रव्रजित करें।”

राष्ट्रपाल०ने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या और उपसम्पत्ता प्राप्त की। तब आयुष्मान् राष्ट्रपालके उपसम्पन्न (= भिक्षु होना) होनेके थोड़ीही देरके बाद, आधामान् उपसम्पन्न होनेपर, भगवान् धुलकोट्टितमे यथेच्छ विहारकर जिधर श्रावस्ती थी, उधर चारिकाके लिये चल पड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडकके आराम जेतवामें विहार करते थे। तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल ० आत्म-संपन्न हो विहरते जलदी ही, जिसके लिये कुल-पुत्र ठीकसे घरसे वेधर हो प्रव्रजित होते हैं, उन सगोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं अभिमानकर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर विहरनेको। ‘जाति (= जन्म) क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पाला हो चुका, करना था सो कर लिया, और महा वरनेको नहीं है’—जान लिया। आयुष्मान् राष्ट्रपाल अर्हतामें एक हुये।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल जहाँ भगवान् थे, जाकर, भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे भगवान्‌को बोले—

“भन्ते ! यदि भगवान् अनुज्ञा द, तो मैं माता-पिताको दर्शन देना चाहता हूँ।”

तब भगवान्‌ने मनसे राष्ट्रपालके मनके विचारको जाना। तब भगवान्‌ने जानलिया, राष्ट्रपाल कुल-पुत्र (भिक्षु-) शिक्षाको छोड़, गृहस्थ-वननेके अयोग्य है, तब भगवान्‌ने आयुष्मान् राष्ट्रपालको कहा—

“राष्ट्रपाल ! जिसका इसवक्त समय समझे, (वेसाकर)।”

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल आसनसे उठकर भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर, दायनासन सभाल (= जिम्मे लगा), पात्र चीवर ले, जिधर धुलकोट्टित था, उधर चारिकाके लिये चल पड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ धुल-कोट्टित था, वहाँ पहुँचे। वहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल धुलकोट्टितमें राजा कोरव्यके मिगाचौर (नामक उद्यान)में विहार करते थे।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल पूर्वाह्न समय पहन कर पात्र चीवर ले, धुल-कोट्टितमें गिरके लिये प्रविष्ट हुये। धुलकोट्टितमें बिना थहरे पिंडधार करते, जहाँ अपने पिताका घर था, वहाँ पहुँचे। उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता बिचली द्वारशालामें धातु बनवा रहा था। पिताने दूरसे ही आयुष्मान् राष्ट्रपालको आते देखा। देखकर कहा—‘इन मुंडको श्रमणकाने मेरे प्रिय=सनाप एकलान्ते पुत्रको प्रव्रजित कर लिया।’ तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने अपने पिताके घरमें न दान पाया, न प्रत्याख्यान (= इन्कार), बल्कि फट्कार ही पाई। उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपालकी शांति दाम्नी वासी कुलमाप (= दाल) फेंकना चाहती थी। तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने उस जाति-दासी (= जातिवालोंकी दासी)को कहा—

“भगिनी ! यदि दासी कुलमापको फेंकना चाहती है, तो यहाँ मेरे पात्रम डाल दे।”

तब ०नातिदासीने उस घासी कुलमापको आयुष्मान् राष्ट्रपालके पात्रम डालते समय, हाथों, पैरों, और स्वरको पहिचान लिया । तब ०नाति दासी जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माता थी, वहाँ गई, जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माताका बोली—

“अरे ! अय्या ॥ जानना हा, आर्यपुत्र राष्ट्रपाल आये हैं ?”

“जे । यदि सब बोलती है, तो अन्गामी हामी ।”

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माता कहा आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता था, वहाँ जाकर बोली—

“अरे ! गृहपति ॥ जानते हो, राष्ट्रपाल कुल पुत्र आया है ?”

उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपाल उस घासी कुलमापको किमी भीतरे सहार (धँद कर) ला रहे थे । आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपालकी बोली—

“तात राष्ट्रपाल ! घासी दाल खाते हो । तो तात राष्ट्रपाल ! घर चलना चाहिये ।”

“गृहपति ! घर छोड़ घेघर हुये हम प्रमजितारा घर कहा ? गृहपति ! हम घेघरके हैं । तुम्हारे घर गया था, वहाँ न गन पाया । प्रत्यागतया, बलिक फर्कार हो पाई ।”

“आओ, तात राष्ट्रपाल ! घर चल ।”

“न गृहपति ! आज ये भोजन कर चुका ।”

“तो तात राष्ट्रपाल ! बलका भोजन स्वीकार करो ।”

आयुष्मान् राष्ट्रपालने भोजन स्वीकार किया ।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता, आयुष्मान् राष्ट्रपालकी स्वीकृतिको जानकर, जहाँ अपना घर था, वहाँ जाकर, हिरण्य (=अक्षरों), सुवर्णकी बड़ी राशि खरवा, बटाइने देकराकर, आयुष्मान् राष्ट्रपालकी छिपोंका आमंत्रित किया—

“आओ बहुओ ! जिस अलंकारमे अलंकृत हो पहिने, राष्ट्रपाल तुल पुत्रको तुम प्रिय=मनाप होती थीं, उन अलंकारोंमे अलंकृत होओ ” तब आयुष्मान् राष्ट्रपालके पिताने उस रातके बीच जाने पर, अपने घरमें उत्तम व्याघ्र भोज्य तय्यार कर, आयुष्मान् राष्ट्रपाल को काल सूचित किया—‘काल है तात राष्ट्रपाल । भोजन तय्यार है’ । तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल पूराई समय पहिने कर पात्र बीयर ने जहाँ उनका पिताका घर था, वहाँ गये । जाकर बिटे आसन पर बैठ । तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल का पिता हिरण्य, सुवर्णकी राशिको खोल कर आयुष्मान् राष्ट्रपालसे बोला—

“तात राष्ट्रपाल ! यह तेरी माताका (=मातृ) घन है, पिताका पितामहका अलग है । तात राष्ट्रपाल ! भोग भी भोग करने हो, पुण्य भी कर सकते हो । आओ तुम तात राष्ट्रपाल ! (भिभु)विश्रा (=दीक्षा) को छोड़ गृहस्थ बन, भोगोंको भोगो, और पुण्योंको करो ।”

“यदि गृहपति ! तू मरा वान करे, तो इस हिरण्य-सुवर्ण पुंजको गाढ़ियोपर रखवा,

तब राष्ट्रपाल० उठकर, बल ग्रहणकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर० एक ओर २७ हुये० भगवान्‌को कहा—

“ भन्ते ! मे माता पितासे० प्रमज्याके लिये अनुज्ञात हूँ । मुझे भगवान् प्रमजित कर ।”

राष्ट्रपाल० ने भगवान्‌के पास प्रमज्या और उपसम्पदा प्राप्त की । तब आयुष्मान् राष्ट्रपालके उपसम्पन्न (= भिषु होना) होनेके थोड़ीही देरके बाद, आधामाम उपसम्पन्न होनेपर, भगवान् धुलकोटितमें यथेच्छ विहारकर जिधर श्रावस्ती थी, उधर चारिकाके लि चत्र पड़े । क्रमश चारिका करते जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडकके आराम जेतवामें विहार करते थे । तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल ० आत्म-संयमी हो विहरते जलने ही, जिसके लिये कुल-पुत्र ठीकसे घरसे घेयर हो प्रमजित होते हैं, उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको हमी जन्ममें स्वयं अभिज्ञानकर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर विहरनेला । ‘जाति (= जन्म) क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पालन हो चुका, करना था सो कर लिया, और यहाँ परनेकी ‘हाँ है’—जान लिया । आयुष्मान् राष्ट्रपाल अर्द्धतोमें एक हुये ।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल जहाँ भगवान् थे, जाकर, भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर घटे भगवान्‌को बोले—

“भन्ते ! यदि भगवान् अनुज्ञा द, तो मे माता-पिताको दर्शन देना चाहता हूँ ।”

तब भगवान्‌ने मनसे राष्ट्रपालके मनके विचारको जाना । जब भगवान्‌ने जानलिया, राष्ट्रपाल कुल-पुत्र (भिषु-) शिक्षाको छोड़, गृहस्थ-वननेके अयोग्य है, तब भगवान्‌ने आयुष्मान् राष्ट्रपालको कहा—

“राष्ट्रपाल ! जिनका इसवत् समय ममशे, (वेसाकर) ।”

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल आसनमे उठकर भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा का, शयनासन समाल (= जिम्मे लगा), पात्र चीवर ले, जिधर धुलकोटित था, उधर चारिकाके लिये चल पड़े । क्रमश चारिका करते जहाँ धुल-कोटित था, वहाँ पहुँचे । वहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल धुलकोटितमें राजा कौरव्यके मिगाचीर (नामक उद्यान)में विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल पूर्वाह्न समय पहन कर पात्र चीवर ले, धुल-कोटितमें पिंडक लिये प्रविष्ट हुये । धुलकोटितमे बिना ठहरे पिंडचार करते, जहाँ अपने पिताका घर था, वहाँ पहुँचे । उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता बिचली द्वारशालामें बाल बनवा रहा था । पिताने दूरमे ही आयुष्मान् राष्ट्रपालको आते देखा । देखकर कहा—‘इन सुँडकों श्रमणकोने मेरे प्रिय=मनाप पकड़ते पुत्रको प्रमजित कर लिया ।’ तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने अपने पिताके घरमें न दान पाया, न प्रत्याख्यान (= इन्कार), बल्कि फट्कार ही पाई । उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपालकी जाति दासी बामी कुलमाप (= दाल) फेंकना चाहती थी । तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने उस जाति-दासी (= जातिगालोकी दासी)को कहा—

“ भगिनी ! यदि दासी कुलमापको फेंकना चाहती है, तो यहाँ मेरे पात्रमें डाल दे ।”

तब ऽज्ञातिदासीने उस घासी कुलमापको आयुष्मान् राष्ट्रपालक पात्रम डालते समय, हाथो, पैरो, और स्वरको पहिचान लिया । तब ऽज्ञाति नामी जहां आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माता थी, वहां गई, जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माताको बोली—

“अरे । अय्या ॥ जानता हो, आयुष्य राष्ट्रपाल आये हैं ?”

“जे । यदि सच बोलती है, तो अदासी होगी ।”

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माता जहां आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता था, वहां जाकर बोली—

“अरे । गृहपति ॥ जानते हो, राष्ट्रपाल कुल पुत्र आया है ?”

उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपाल उस घासी कुलमापको किसी भीतक सहारे (गठ कर) ला रहे थे । आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता जहां आयुष्मान् राष्ट्रपाल थे, वहां गया, जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपालको बोली—

“तात राष्ट्रपाल ! घासी गाल खाते हो । तो तात राष्ट्रपाल ! घर चलना चाहिये ।”

“गृहपति ! घर छोड़ देवर हुए हम प्रजनितोका घर कहा ? गृहपति ! हम देवरके हैं । तुम्हारे घर गया था, वहां न पान पाया न प्रत्याख्यान, बलिक फत्कार ही पाई ।”

“आओ, तात राष्ट्रपाल ! घर चल ।”

“धन गृहपति ! आज मे भोजन कर चुका ।”

“तो तात राष्ट्रपाल ! कलका भोजन रत्रीकार करो ।”

आयुष्मान् राष्ट्रपालने मौनसे स्वीकार किया ।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता, आयुष्मान् राष्ट्रपालकी स्वीकृतिको जानकर, जहां अपना घर था, वहां जाकर, हिरण्य (=अदार्फा), मुण्णकी बड़ी राशि करवा, चढ़ाईमें बैठाकर, आयुष्मान् राष्ट्रपालकी छियाका आमंत्रित किया—

“आओ बहुरो ! जिस अलंकारमे अलङ्कृत हो पहिले, राष्ट्रपाल कुल पुत्रको तुम प्रिय=मनाप होती थीं, उन अलंकारोसे अलङ्कृत होओ ” तब आयुष्मान् राष्ट्रपालके पिताने उस रातके घीत जाने पर, अपने घरमें उत्तम खाद्य भोज्य तय्यार कर, आयुष्मान् राष्ट्रपालको काल सुचित किया—‘काल है तात राष्ट्रपाल ! भोजन तय्यार है’ । तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल पूरा समय पहिन कर पात्र चीर ले जहां उनका पिताका घर था, वहां गया । जाकर बिड़ आसन पर बैठे । तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल का पिता हिरण्य, मुण्णकी राशियो ग्योल कर आयुष्मान् राष्ट्रपालसे बोला—

“तात राष्ट्रपाल ! यह तेरी माताका (=मावुक) धन है, पिताने पितामहका अलग है । तात राष्ट्रपाल ! भोग भी भोग सकने हो, पुण्य भी कर सकत हो । आओ तुम तात राष्ट्रपाल ! (मिषु) शिक्षा (=दीक्षा) को छोड़ गृहस्थ बन, भोगाको भोगो, और पुण्योको करो ।”

“यदि गृहपति । तू भरी बान करे, तो हम हिरण्य-मुण्ण पुत्रको गार्दियोंपर रखवा,

हुल्लाकर गंगा नगीची बीच धारमें डाल दे । मो किमलिये ? गृहपति ! हमके कारण तुम शोक = परिदेय, दुःख = दोर्मनल्य = उपायास न उत्पन्न होगे ।”

तत्र आयुष्मान् राष्ट्रपालको प्रत्येक माथायें पेर पकड़ आयुष्मान् राष्ट्रपालको घोर्नी—

“ आर्यपुत्र ! कैसी यह अप्सरायें हैं, जिनके लिये तुम ब्रह्मचर्य पालन कर रहे हो ?”

“ रहिनो ! हम अप्सराओंके लिये ब्रह्मचर्य नहीं पालन कर रहे हैं ।”

भगिनी (= पहिन) कहकर हमें आर्य पुत्र राष्ट्रपाल पुकारते हैं (सोच), वह वहाँ मूर्छित हो गिर पड़ीं । तत्र आयुष्मान् राष्ट्रपालने पिताको कहा—

“ गृहपति । यदि भोजन देना है, तो दे । हमें कुछ मत दे ।”

“ भोजन करो सात राष्ट्रपाल ! भोजन तय्यार है ।”

तत्र आयुष्मान् राष्ट्रपालके पिताने उत्तम खाद्य भोज्यसे अपने हाथ आयुष्मान् राष्ट्रपालको संतर्पित सप्रशस्ति किया । तत्र आयुष्मान् राष्ट्रपालने भोजनकर पात्रसे हाथ धो, खड़े खड़े यह गाथायें कहीं—

“ देखो (इस) त्रिचित्र बने विष (=आकार)को, (जो) घणपूर्णा, सजित ।

आतुर, बहु-सकटप (है), जिमकी स्थिति स्थिर (=ध्रुव) नहीं है ॥

देखो त्रिचित्र बने रूपको, (जो) मणि और कुंडलके साथ ।

हड्डी चमड़ेसे बँधा, घसके साथ शोभता है ॥

महावर लो पर, घूर्णक (=पौडर) पोता मुँह ।

धालक (=मूर्ख) को मोहनमें समर्थ है, पार गयेपीको नहीं ।

बल पड़े केश, अजन अजित नेत्र ।

बालकको मोहनमें समर्थ हैं, पार-गयेपीको नहीं ।

नई विचित्र अंजन नालीकी भाति अलकृत (यह) सड़ा क्षीर ।

बालकको ० ।

उपाधाने जाल फैलाया, (किंतु) मृग जालमें नहीं आया ।

चाराको साकर व्याधोके रोते (छोड़) जा रहा हूँ ॥ ”

तत्र आयुष्मान् राष्ट्रपालने खड़े खड़े इन गाथाओंको कहकर, जहा कौरव्यका मिगावा (उधान) था, वहाँ गये । जाकर एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठे ।

तत्र राजा कौरव्यने मिगव(नामक माली)को संबोधित किया—

“ सौम्य मिगव (=मृगयु) ! मिगाचीरको साफ करो, उधान भूमि = सुभूमि देखनेके लिये जाऊँगा ।”

मिगवने राजा कौरव्य को “ अच्छा देव ! ” कह कर, मिगाचीरको साफ करते, एक वृक्षके नीचे दिनके विहारेकेलिये बैठ आयुष्मान् राष्ट्रपालको देखा । देखकर जहाँ राजा कौरव्य था, वहाँ गया, जाकर कौरव्यको बोला—

“ देव ! मिगावीर साफ है, और वहा इसी धूलकोद्वितके अग्रकुलिकका राष्ट्रपाल नामक

कुल पुत्र, जिपकी कि आप हमेशा तारीफ करते रहते हैं, एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठा है ।”

“तो सौम्य मित्र । आज अब उद्यान भूमि जाने दो, आज उन्हीं आप राष्ट्रपालकी उपासना (=मत्संग) करेंगे ।”

तब राजा कौरव्य, जो कुछ राघव भोज्य तैयार था, सबको ‘छोड़ दो ।’ कह, अच्छे अच्छे यान जुड़वा, (एक) अच्छे यानपर चढ़ अच्छे अच्छे यानोंके साथ उड़े राजसी गडसे आयुष्मान् राष्ट्रपालके दर्शनके लिये, युत्तकोटितसे निकल । जितनी यानकी भूमि थी, उतना यानसे जा, (फिर) यानसे उतर पैदल ही छोटी मंडलीके साथ जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपालके साथ संमोचन किया (आर) एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये राजा कौरव्यने आयुष्मान् राष्ट्रपालको कहा—

“आप राष्ट्रपाल यहा गलीचे (=हल्यल्यर)पर बंठ ।”

“नहीं महाराज ! तुम बैठो, मैं अपने आसनपर बंठा हूँ ।”

राजा कौरव्य थिये आसनपर बंठ गया । बंठ कर राधा कौरव्यने आयुष्मान् राष्ट्रपालको कहा—

“हे राष्ट्रपाल ! यह चार हानियाँ (=पारिवृज्ज) हैं, जिन हानियों से युक्त कोई कोई पुरुष केश श्मश्रु सुंझवा, कापाय वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रमजित होते हैं । कौनने चार ? जरा-हानि, व्याधि हानि, भोग हानि, ज्ञाति हानि । कौन है हे राष्ट्रपाल ? जराहानि ? (१) हे राष्ट्रपाल ! कोई (पुरुष) जीर्ण=वृद्ध=महल्लूक=अगमल=वय प्राप्त होता है । वह ऐसा सोचता है, मैं इस समय जीर्ण=वृद्ध हूँ, अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त करना या प्राप्त भोगोंको भोगना सुरू नहीं है । क्या मैं केश श्मश्रु सुंझाकर कापाय वस्त्र पहिन प्रमजित हो जाऊँ ? यह उस जरा हानिसे युक्त हो प्रमजित होता है । हे राष्ट्रपाल ! यह जराहानि कही जाती है । लेकिन आप राष्ट्रपाल तक्षण, बहुत काले केशोवाले, सुन्दर शौचनसे युक्त, प्रथम वयमके हैं । तो आप राष्ट्रपालको जराहानि नहीं है । आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर, घरसे बेघर हो प्रमजित हुये ? (२) हे राष्ट्रपाल ! व्याधि हानि क्या है ? हे राष्ट्रपाल ! कोई (पुरुष) रोगी दुःखी सख्त बीमार होता है, वह ऐसा सोचता है—‘मैं अब रोगी दुःखी सख्त बीमार हूँ, अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त । यह व्याधि हानि कही जाती है । लेकिन आप राष्ट्रपाल इस समय, व्याधि-रहित आर्तक रहित, न भति शीत, न अति-उष्ण, सम विपाकवाली पाचनशक्ति (=ग्रहणी)से युक्त हैं, तो आप राष्ट्रपालको व्याधि हानि नहीं है । (३) हे राष्ट्रपाल ! भोग हानि क्या है ? हे राष्ट्रपाल ! कहर (पुरुष) आन्ध्र, महाधनी महाभोग-वान् होता है, उसके वह भोग क्रमशः क्षय हो जाते हैं । वह ऐसा सोचता है—‘मैं पहिले आढ्य था, तो मेरे वह भोग क्रमशः क्षय होगये, अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त करना । आप राष्ट्रपाल तो इसी युत्तकोटितमें अग्रदुल्लिखके पुत्र हैं । तो आप राष्ट्रपालको भोग हानि नहीं है ।”

“(४) हे राष्ट्रपाल ! ज्ञाति हानि क्या है ? हे राष्ट्रपाल ! रिपि (पुरुष) के बहुतमे मित्र, अमात्य, छाति (=जाति), सालोहित (=रक्तपवनी) होते हैं, उसके वह जातिवाले

क्रमशः क्षयको प्राप्त होते हैं । वह ममा सोचता है—पहिले मेरे बहुतसे मित्र अमात्य जाति-विरादरी थी, वह मेरी जातिगाले क्रमशः क्षय हो गये, अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त करना० । लेकिन आप राष्ट्रपालके तो इसी धुलकोटितमें बहुतसे मित्र-अमात्य, जाति विरादरी हैं । मो आप राष्ट्रपालको जाति हानि नहीं है । आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर, घरसे घेवर हो प्रव्रजित हुये ? हे राष्ट्रपाल ! यह चार हानिया हैं, जिन हानियोंसे युक्त कोई (युत्तर) केश दमधु मुंडा कापाय पञ्च पहिन घरसे घेवर हो प्रव्रजित होते हैं, वह आप राष्ट्रपालको नहीं हैं । आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर घरसे घेवर हो प्रव्रजित हुये ? ”

“महाराज ! उन भगवान्, जाननहार, देखनहार, अर्हत् सम्यक्-संबुद्धने चार धर्म-उद्देश कहे हैं, जिनको जानकर, दखकर, सुनकर मैं घरसे घेवर हो प्रव्रजित हुआ । कौनसे चार ? (१) (यह) लोक (=ससार) अध्रुव (है), उपनीत हो रहा है, यह उस भगवान् ने प्रथम धर्म-उद्देश कहा है, जिसको देखकर प्रव्रजित हुआ । (२) लोक प्राण रहित, आश्वासन रहित है० । (३) लोक अपना नहीं है, सब छोड़कर जाना है० । (४) लोक कर्मतावाला तृणाका प्राप्त है० । यह महाराज ! उन भगवान् ने चार धर्म उद्देश कहे हैं, जिनको जानकर मैं प्रव्रजित हुआ । ”

“उपनीत हो रहा (=छ जाया जा रहा) है, लोक अध्रुव है’ आप राष्ट्रपालके इस कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ? ”

‘तो क्या मानने हो, महाराज ! ये तुम (कभी) घीस घपके, पचीम-वर्षके ? (यह तुम) संग्राममें हाथीकी मजारीमें होशियार, घोड़ेकी सयारीमें होशियार, रथकी सवारीमें होशियार, धनुषमें होशियार, तलवारमें होशियार, उरसे बलिष्ठ, बाहुमें बलिष्ठ थे ? ”

“बलिक ह राष्ट्रपाल ! मानो एक समय ऋद्धिमान् हो मे अपने बलके समान (क्रियाको) देखता ही न था । ”

“तो क्या मानने हो महाराज ! आज भी संग्राममें तुम घसे ही० उर-बली, बाहु-बली, सामर्थ्य युक्त हो ? ”

“नहीं हे राष्ट्रपाल ! इस वक्त मैं जीर्ण-वृद्ध० हूँ, अल्पी वर्षकी मेरी उम्र है । बलिक एक समय हे राष्ट्रपाल ! मे ‘यहा तक पैर (=पाद) रखूँ, (विचार) दूसरे (समय) चोयाई ही (दूर तक) रख सकना हूँ । ”

“महाराज ! उन भगवान् ने इसीको सोचकर कहा—‘उपनीत हो रहा है, लोक अध्रुव है, जिसको जानकर मैं प्रव्रजित हुआ । ”

“आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल ! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल ! जो यह उन भगवान् का मुभाषित—‘उपनीत हो रहा है०, (=छे जाया जा रहा है), लोक अध्रुव है । ” हे राष्ट्रपाल ! इस राज कुलमें हस्ति-काय (काय=समुदाय) भी है, अश्व काय भी, रथ-काय भी, पशु-काय भी, जो हमारी आपत्तियोंमें युद्धके लिये हैं । ‘लोक प्राण रहित, आश्वासन-रहित है’ यह (जो) आप राष्ट्रपालने कहा ? हे राष्ट्रपाल ! इस कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ? ”

“ तो क्या मानते हो महाराज ! है तुम्हें कोई आनुनायिक (= साथ रहनेवाली) यीमारी ? ”

“ हे राष्ट्रपाल ! मुझे आनुनायिक वायुमार्ग है । बलिक एकवार तो मित्र अमात्य जाति विरादरी पेरकर खड़ी थी,—‘अब राजा कोरव्य मरेगा’ । ‘अब राजा कोरव्य मरेगा’ ।

“ तो क्या मानते हो महाराज । क्या तुमने मित्र अमात्यो जाति विरादरीको पाया—
‘आवे आप मेरे मित्र अमात्य०, समो सत्व (= प्राणी), इस पीडाको वांट ल, जिसमें मे हल्की पीडा पार्ज ’, या तुमनेही उस वेदनाको सहा ?

“ राष्ट्रपाल ! उन मित्र अमात्यो० को मैंने सहा पाया०, बलिक मैं हूँ उन वेदनाको सहता था । ”

“ महाराज ! इसीको सोचकर उन भगवान्० ने ० ।

“ आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल ! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल ! ० । हे राष्ट्रपाल ! इस रात्रि म बहुतमा हिरण्य (= अश्वार्थ) सुवर्ग भूमि और आकाशमें है । ‘लोक अपना’ तर्ही (= स्वयं) है, सब छोड़कर जाना है’ यह आप राष्ट्रपालने कहा । हे राष्ट्रपाल ! इस कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ? ”

“ तो क्या मानते हो महाराज ! जमे तुम आज कल पाच कामगुणोसे युक्त = समंती भूत विचरते हो, बाद (जन्मान्तर)में भी तुम (तुम्हें) पाओगे— ‘जमेही मैं पाच कामगुणोसे युक्त० विचरूँ, या दूसरा इस भोगको पायेगे, और तुम अपने कर्मानुसार जाओगे ?

“ राष्ट्रपाल ! जमे मैं इस वक्त पाच कामगुणोसे युक्त० विचरता हूँ, बाद (= जन्मान्तर) में भी ऐसेही मैं हूँ पाच कामगुणोसे युक्त० विचरूँ न पाऊँगा । बलिक दूसरे इस भोगको लेंगे, मैं अपने कर्मानुसार जाऊंगा । ”

“ महाराज इसीको सोचकर उन भगवान्० ने ० । ”

“ आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल ! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल ! ० । ‘लोक कमतीवाला नृपणाका नाम है’ यह आप राष्ट्रपालने जो कहा । हे राष्ट्रपाल ! इस कथनका कसे अर्थ समझना चाहिये ? ”

“ तो क्या मानते हो महाराज ! समृद्ध कुरु (देश) का स्वामित्व कर रहे हो ? ”

“ हा, हे राष्ट्रपाल ! समृद्ध कुरुका स्वामित्व कर रहा हूँ । ”

“ तो क्या मानते हो महाराज । तुम्हारा एक अश्वेय विश्वास पात्र पुरुष पूर्व दिशासे आये, वह तुम्हारे पास आकर ऐसा बोले—‘हे महाराज ! जानने हो, मैं पूर्व दिशासे आ रहा हूँ । वहा मैंने बहुत समृद्ध = स्फीत बहुत जनोशाला, मनुष्योमे आकीर्ण जनपद (= देश) देखा । वहां बहुत हस्तिनाय, अश्वनाय, रथनाय, पत्ति (= पैदल) नाय है । वहा बहुत दात, मृगधर्म हैं । वहा बहुत सा कृत्रिम अश्वत्रिम हिरण्य, सुवर्ग है । वहा बहुत सो खिया प्राप्त होती है । यह क्षत्ती ही सेवासे जीता जा सकता है, जातिये महाराज !’ तो क्या करोगे ? ”

“ हे राष्ट्रपाल ! उमे भी जातकर मैं स्वामित्व करूँगा । ”

क्रमशः क्षयको प्राप्त होते हैं । यह एसा मोचता है—पहिले मेरे बहुतसे मित्र अमात्य जाति-विरादरी भी, यह मेरी जातिवाले क्रमशः क्षय हो गये, अब मेरे लिये अप्राप्त भोगाका प्राप्त करना० । लेकिन आप राष्ट्रपालके तो इसी युलकोद्वितमं बहुतसे मित्र-अमात्य, जाति विरादा हैं । तो आप राष्ट्रपालको जाति हानि नहीं है । आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर घस्ते वेघर हो प्रव्रजित हुये ? हे राष्ट्रपाल ! यह चार हानिया हैं, जिन हानियोंसे युज को कोई (युरप) केन्द्र दमधु मुँडा कापाय वस्त्र पहिन घस्ते वेघर हो प्रव्रजित होते हैं, बा आप राष्ट्रपालको नहीं हैं । आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर घस्ते वेघर हो प्रव्रजित हुये ? ”

“महाराज ! उन भगवान्, जाननहार, देखतहार, अर्हत् सम्यक्-संशुद्धने चार धर्म उद्देश कहे हैं, जिनको जानकर, देखकर, सुनकर मैं घस्ते यघर हो प्रव्रजित हुआ । कौनने चार ? (१) (यह) लोक (=ससार) अधुन (है), उपनीत हो रहा है, यह उस भगवान् ने प्रथम धर्म-उद्देश कहा है, जिनको देखकर प्रव्रजित हुआ । (२) लोक त्राण रहित, आधात्म रहित है० । (३) लोक अपना नहीं है, मन छोड़कर जाना है० । (४) लोक कमनीवाला वृणाका दास है० । यह महाराज ! उन भगवान् ने चार धर्म-उद्देश कहे हैं, जिनको जानकर मैं प्रव्रजित हुआ । ”

“उपनीत हो रहा (=रू जाया जा रहा) है, लोक अधुन है, आप राष्ट्रपाल इन कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ? ”

“तो क्या मानने हो, महाराज ! ये तुम (कभी) बीस वर्षके, पच्चीस-वर्षके ? (जब तुम) सपामर्म हाथीकी सगरीमें होशियार, घोड़ेकी सवारोंमें होशियार, रथकी सवारोंमें होशियार, धनुषमें होशियार, तलवारमें होशियार, उरसे बलिष्ठ, बाहुसे बलिष्ठ थे ? ”

“बलिक हे राष्ट्रपाल ! माना एक समय ऋद्धिमान् हो मे अपने बलके समान (किमीको) देखता ही न था । ”

“तो क्या मानते हो महाराज ! आज भी संग्रामम तुम धसे ही० उर-बली, बाहु-बल, सामर्थ्य युक्त हो ? ”

“नहीं हे राष्ट्रपाल ! इस वक्त मैं जीर्ण-वृद्ध हूँ, अस्ती वर्षकी मेरी उम्र है । बलिक एक समय हे राष्ट्रपाल ! मैं ‘यहा तक वैर (=पाद) रखूँ, (विचार) दूसरे (समय) थोथाई ही (दूर तक) रख सकना हूँ । ”

“महाराज ! उन भगवान् ने इसीकी सोचकर कहा—‘उपनीत हो रहा है, लोक अधुन है, जिनको जानकर मैं प्रव्रजित हुआ । ”

“आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल ॥ अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल ॥ जो यह उन भगवान् का सुभाषित—‘उपनीत हो रहा है०, (=रू जाया जा रहा है), लोक अधुन है । ’ हे राष्ट्रपाल ! इस रान उल्लेखे हस्ति काय (काय=समुदाय) भी है, अश्व काय भी, रथ-काय भी, पराक्ती काय भी, जो हमारी आपत्तियोंमें युद्धके लिये है । ‘लोक त्राण रहित, आधात्मन-रहित है’ वह (जो) आप राष्ट्रपालने कहा ? हे राष्ट्रपाल ! इस अर्थ कैसे जानना चाहिये ? ”

“ तो क्या मानते हो महाराज ! है तुम्हें कोई आनुशायिक (=साथ रहनेवाली) शोमारी ? ”

“ हे राष्ट्रपाल ! तुम्हें आनुशायिक वायुरोग है । यत्कि एकबार तो मित्र-अमात्य जाति घिरादरी घेकर चढ़ी थी,—‘अथ राजा कोरज्य मरेगा’ । ‘अथ राजा कोरज्य मरेगा’ ।

“ तो क्या मानते हो महाराज ! क्या तुमने मित्र अमात्यो जाति जिशन्दरीको पाया—
‘आवें आप मेरे मित्र अमात्य०, समी सत्व (=प्राणी), हम पीड़ाको नांद ल, जिनमें मैं हल्की पीड़ा पाऊँ’, या तुमोही उम वेदनाओ सहा ?

“ राष्ट्रपाल ! उन मित्र अमात्यो० को मने नहीं पाया०, यत्कि मैं ही उम वेदनाओ सहता था । ”

“ महाराज ! इसीको सोचकर उन भगवान्० ने ० ।

“ आश्रय ! हे राष्ट्रपाल ! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल ! ० । हे राष्ट्रपाल ! इस राजकुल में बहुतसा हिरण्य (=अश्वर्षी) सुवर्ण भूमि और आवागमन है । ‘लोक अपना नहीं (=स्व-स्वक) है, सब छोड़कर जाना है’ यह आप राष्ट्रपालने कहा । हे राष्ट्रपाल ! इस कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ? ”

“ तो क्या मानते हो महाराज ! जैसे तुम आज कन पाच काम गुणोसे युक्त = समीगी श्रुत विचरते हो, याद (जन्मान्तर) में भी तुम (उन्हें) पाओगे— ‘जैसे ही मैं पाच काम गुणोसे युक्त० विचरूँ, या वृत्ते इस भोगको पावेंगे, और तुम अपने कर्मानुसार जाओगे ?

“ राष्ट्रपाल ! जैसे मैं इस यत्न, पाच काम गुणोसे युक्त० विचरता हूँ, याद (=जन्मान्तर) में भी ऐसेही मैं इन काम गुणोसे युक्त० विचरता पाऊँगा । यत्कि दूसर इस भोगको लेंगे, मैं अपने कर्मानुसार जाऊँगा । ”

“ महाराज इसीको सोचकर उन भगवान्० ने ० । ”

“ आश्रय ! हे राष्ट्रपाल ! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल ! ० । ‘लोक कर्मतीबाला गुण्याका दास है’ यह आप राष्ट्रपालने जो कहा । हे राष्ट्रपाल ! इस कथनका अर्थ अथ समझना चाहिये ? ”

“ तो क्या मानते हो महाराज ! समृद्ध कुल (देव) का स्वामित्व कर रहे हो ? ”

“ हा, हे राष्ट्रपाल ! समृद्ध कुलका स्वामित्व कर रहा हूँ । ”

“ तो क्या मानते हो महाराज ! तुम्हारा एक श्रेष्ठ मित्रास-पात्र पुत्र पूर्ण दिशामे आवे, वह तुम्हारे पास आकर ऐसा बोले—‘हे महाराज ! जानने हो, मैं पूर्ण दिशासे आ रहा हूँ । वहा मैंने बहुत समृद्ध = स्फीत बहुत जनोवाला, मनुष्योंमे आकीण जनपद (=देस) देखा । वहा बहुत हस्तिकाय, अश्वकाय, रथकाय, पति (=पैदल) काय है । वहा बहुत दात, मृगवर्म है । वहा बहुत सा कृत्रिम अकृत्रिम हिरण्य, सुवर्ण है । वहा बहुत मो खिया प्राप्त होती है । यह इतनी ही सेनासे जीता जा सकता है, जीतिये महाराज ।’ तो क्या करोगे ? ”

“ हे राष्ट्रपाल ! उसे भी जानकर मैं स्वामित्व करूँगा । ”

“ तो क्या माते हो महाराज । ०विश्वासपात्र पुरष पश्चिम दिशासे आये० ।” ०।

“ ०उत्तर दिशासे० ।” ०। “ दक्षिण दिशासे० ।” ०।

“ महाराज । इसीको मोचकर उन भगवान् ० ने ० ० । ”

“ आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल ! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल ! ”

आयुमान् गृहपालने यह कहा । यह कहकर फिर यह भी कहा—

“ लोकमें धनवान् मनुष्योंको देखता हूँ, (जो) वित्त पाकर मोहसे दान नहीं मात ।
लोभी हो धनका संवय करते हैं, और भी अधिक कामों (= भोगों) की चाह करते हैं ॥ १ ॥

“ राजा बलपूर्वक पृथ्वीको जीत, सागर पर्यन्त महीपर शासन करते । समुद्रके तट
पागसे गुप्त न हो, समुद्रके उस पारकोभी चाहता है ॥ २ ॥

“ राजाही की भांति दूसरे बहूतसे पुरषभी तृष्णा-रहित न हो मरण पाते हैं ।
कर्मतीनागे होकरली शरीर छोड़ते हैं, लोकमें (किसी की) कामोंसे तृप्ति नहीं है ॥ ३ ॥

“ जाति बाल बिलेरकर मन्दन करती है, और कहती है ‘ हाय हमारा मर गया ’
वस्त्रने दाककर उसे छेजाकर, चितापर रखकर फिर जला देते हैं ॥ ४ ॥

“ यह शूलसे कूँचा जाता, भोगोंको छोड़ एक बच्चे साथ जलाया जाता है ।
मरनेवालेके जाति मित्र = सहाय रक्षक नहीं होते ॥ ५ ॥

“ दायाद उसके धनको हरते हैं, प्राणी तो जहाँ कर्म है (बहा) जाता है ।
मरने हुयेके पीछे, पुत्र, दारा, धन, और राज्य नहीं जाता ॥ ६ ॥

“ धन द्वारा सभी आयु नहीं पा सकते हैं, और न वित्त द्वारा जराको नाशकर सकता
है । धीरेने इस जीवनको स्वल्प, अशाश्वत, अंगुर कहा है ॥ ७ ॥

“ धनी और दृष्टि (काम)-रपशोंको छूते हैं, बाल और धीर (= पंडित) मा
पेसेही हैं । बाल (= मूर्ख) मूर्खतासे विचलित हो पड़ता है, किंतु धीर स्पर्श स्पृष्ट
हो नहीं विचलित होता ॥ ८ ॥

“ इसलिये धनसे प्रजाही श्रेष्ठ है, जिससे कि (सत्त्व-) निश्चयको प्राप्त होता है ।
मुक्त न होनेसे वह मोहबश आवागमनमें (पड़े) पाप कर्मोंको करते हैं ॥ ९ ॥

“ (वह) लगातार संस्कार (= अवसागर) में पड़कर गर्भ और परलोकको पाता है ।
अल्प प्रशवान् उसपर विश्वास कर गर्भ और परलोकको पाता रहता है ॥ १० ॥

“ संध के ऊपर पकड़ा गया पापी चोर, जैसे अपने कामसे मारा जाता है । इसी प्रकार
पापी जनता मरकर दूसरे लोकमें अपने कामसे मारी जाती है ॥ ११ ॥

“ विचित्र मयूर मनोरम काम (= भोग) नाना रूपसे विलाको मथते हैं । इसलिये
काम भोगोंके दुष्परिणामको देखकर, हे राजन् ! मैं प्रवर्जित हुआ हूँ ॥ १२ ॥

“ बृलके फलकी भांति तरुण और बृद्ध मनुष्य शरीर छोड़कर गिरते हैं । ऐसे भी देखकर
प्रवर्जित हुआ, (क्योंकि) न मरनेवाला मिथुपन (= भ्रामण्य) ही श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥

सुन्दरी-सुत । कृशागौतमी-वसित । द्वात्मण-धम्मिय-सुत्त । (वि.पू. ४४८-४७) ।

१ ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय भगवान् सत्तृत्त=गुरुत्त=मानित=पूजित=अपचित थे, चारर पिंड पात शयनासन ग्लान प्रत्यय भेषज्यके लामी (=पानेवाले) थे । भित्तु संघ भी० पूजित० चीवर० का लामी था । दूसरे तीर्थ (=पंथ) वाले परिभाजक अमत्तृत्त=अ गुरुत्त=अ-मानित=अ पूजित=अन्-अपचित थे, चीवर०के अ-लामी थे । तब वह तीर्थीय भगवान् और भिक्षु-संघके सत्कारको न सहन कर, जहां सुन्दरी परिभाजितायी बहा गये । जाकर सुन्दरी परिभाजिकाको बोले—

“भगिनी ! क्या जातिकी भलाई करना चाहती हो ?”

“आर्यों ! क्या मैं कहूँ ? मे क्या नहीं कर सकती ? चातिरे लिये मैंने तो जीवन ही द दिया है ।”

“तो भगिनी ! बराबर जेतवन जाया करो ।”

“अच्छा आर्यों !” कह सुन्दरी परिभाजिका बराबर जेतवन जाने लगी । जब उन अन्य तीर्थीय परिभाजकोंने जाना—“बहुत नेगेने सुन्दरी परिभाजिका को बराबर जेतवन जाते देख लिया ।” तब उसे जानसे मारकर, वहीं जेतवनकी खाई में कुआ खोदकर दग दिया, और जहाँ राजा प्रसेन जित् कोसल था, वहाँ गये । जान्त्र प्रसेनजित् कोसलको बोले—

“महाराज ! जो वह सुन्दरी परिभाजिका थी, वह हम दिव्याई नहीं पड़ रही है ।”

“तुम्हें क्या सन्देह है ?”

“जेतवनमें, महाराज ।”

“तो जेतवनमें तलाश करो ।”

तब वह अन्य-तीर्थीय परिभाजक जेतवनमें तलाश करत, खोदे परित्वा दूधसे निकालकर चारपाई पर रख, श्रावस्तीमें लेजा, (एक) सड़कमें (दूसरी) सड़कपर, चोराहटे चोराहटे पर जाकर लोगोंको कहने लगे—

“देखो आर्यों ! शाक्य पुत्रीय धम्मणाका कर्म ॥ यह शाक्यपुत्रीय धम्मण निर्म्मज्ज, दुःशील, पापी, मिथ्या-वादी, अमहत्तकारी हैं । यह धर्म-चारी, सम चारी, ब्रह्मचारी, सत्यवादी शीलवान्, पुण्यात्मा होनेका दावा करते हैं । इनको धामण्य नहीं, ब्राह्मण्य नहीं । कहाँसे इन्हें धामण्य, कहाँसे इन्हें ब्राह्मण्य ? यह धामण्य (=संन्यासीके धर्म)से पतित हैं, यह ब्राह्मण्य (=ब्राह्मण पन)से पतित हैं । कैसे पुरुष पुरुषका काम करके, स्त्रीको जानमे मार डालेगा ?”

उस समय धावस्तीम लोग भिक्षुओं को देखकर असम्य, परम (=कड़ी) बचनोसे धिक्कारते, पट्कारते, कोप करते, पीड़ित करते थे ।—

“ यह शाक्यपुत्रीय धमण निर्लज्ज० ।”

तब बहुतसे भिक्षु पूवाङ्ग समय पहिँकर पात्र-धीर ले, श्रावस्तीमें पिंडके लिये गये । श्रावस्तीमें पिंड चार करके भोजनके बाद जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्‌के अभिमान पर एक ओर बठ बोले—

“ भन्ते । इस समय श्रावस्तीमें लोग भिक्षुओंको देखकर असम्य, परम बचनोसे धिक्कारते हैं०—‘यह शाक्य पुत्रीय धमण निर्लज्ज० ।’

“ भिक्षुओ । यह श्रावस्ती देर तक नहीं रहेगा, सप्ताहहीभर रहेगा, सप्ताह बीतनेपर अन्तर्धान हो जायगा । तो भिक्षुओ ! जो लोग भिक्षुओंको देखकर असम्य० बचनोसे धिक्कारते हैं, उन्हें इस गाथासे तुम जवाब दो—

‘ अ भूत (= अ यथार्थ)-वादी नरकको जाता है, और वह भी जो कि करके ‘नहीं किया’ कहता है । दोनोही नीचकर्मजाले मनुष्य मरकर परलोकमें समान होते हैं ।’

तब भिक्षु भगवान्‌के पाससे इस गाथाको सीखकर, जो मनुष्य भिक्षुओंको देखकर असम्य० बचनोसे धिक्कारते थे, उन मनुष्योंको इस गाथासे जवाब देते थे—“अभूत-वादी०” ।

लोगोंको हुआ—

“ यह शाक्य-पुत्रीय धमण अकारक हैं, इन्होंने नहीं किया । यह शाक्य-पुत्रीय धमण शपथ कर रहे हैं । ”

वह शब्द देर तक न रहा, सप्ताह भर रहा, सप्ताह बीतनेपर अन्तर्धान हो गया । तब बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ भगवान्‌को बोले—

१ तुलना करो पृष्ठ १० ।

२ अ क “ राजाने जिनने सुन्दरीको मारा, उनके पता लगानेको आठमियाको हुकुम दिया । तब वह (मारनेवाले) उदमाश (= धूर्त) उन कार्यापणोंसे शराब पीते आपसमें झगड़ बैठे । उनमेंसे एकने एकको कहा—

“ तू सुन्दरीको एकही प्रहारसे मारकर भालाके पट्टेके भीतर पेंक, उससे मिले चेतसे मुझे पीता है ? हो ! हो ! ! ”

राज पुरोपनि उसे सुन उठा उदमाशको पकड़कर राजाको दिखलाया । राजाने पूछा—“तुमने उसे मारा ? ‘हा, देव ।’ “किनने मरवाया ? ” “देव ! दूसरे तैरिँकोने” राजाने तैरिँकोको उलगाकर उस घातको रबीकर करवा, आना दी—“ जाओ नगरमें थह कहते धूमो—“ उन धमण गौतमकी बदामी करनेके लिये यह सुन्दरी हमने मरवाई, गौतम या गौतम श्रावकोंका दोष नहीं है, हमाराही दोष है ।”

उन्होंने वेसा किया ।

“आश्चर्य ! भन्ते ॥ अद्भुत ! भन्ते ॥ भन्ते ॥ भगवान्का सुभाषित (= टीका कहना) कैसा है—‘मित्रुओ यह शब्द देर तक नहीं होगा ॥’ भन्ते । यह शब्द अ-तर्पण हो गया ।”

तब भगवान्ने इस बातको जान उसी समय यह उद्गान कहा—

“अ संयमी जन वचनसे पेघते हैं, जैसे संग्रामम शत्रुओ द्वारा कुत्तर ।

अ-दुष्ट चित्त मित्रुको कटु वाक्य सुनकर भी मनम न हाना चाहिये ॥”

कृशा गौतमी-चरित ।

“इस अंतिम जन्ममें (कृशा गौतमी) दुग्धत निर्धन नष्ट श्रेष्ठि-कुलमें उत्पन्न हुई, और सधन कुलमें गई ॥१॥

‘निर्धन (समझकर) सभी मेरा तिरस्कार करते थे ।

जब मेने (पुत्र) प्रसन्न किया, तो सबको प्रिय हुई ॥२॥

वह बच्चा सुन्दर, कोमलान सुगम पला था ।

वह प्राण समान मुझे प्रिय था, तब वह यमलोकको मिथारा ॥३॥

सो मैं कृशा गौतमी-वन्न अधु-नेत्र रोती हुई ।

मेरे मुँहको छेकर विलाप करती घूम रही थी ॥४॥

तब एकके कहनेसे उत्तम मित्रु (= बुद्ध) के पास आ ।

कहा—‘पुत्र-न-जीवन औपय मुझे दो ’ ॥५॥

“जिम घाम मर नहीं है, वहामे मिद्वार्थक (= पीली सरमो) ला ।”

रास्तापर लगानेम खुतर जिन (बुद्ध) ने यह कहा ॥६॥

तब मेने श्रावस्तीम जाकर धन्या घर न पाया ।

कहासे फिर मिद्वार्थक (लाती) ? तब मुझे होश आया ॥७॥

मुँहको छोड़कर मैं लोक-नायकक पास गई ।

दूरसे ही मुझे देखकर, मधुर स्वरवाले (भगवान्) ने कहा ॥८॥

“हानि-लाम (= उदय व्यय) को न देख जा सो वर्ष जीरे ।

(उमरे) हानि-लामको देखकर एक दिवस जीना हो उत्तम है ॥९॥

(यह) न धामका धर्म न निगमका धम नहीं पर कुष्का धर्म है ।

देवों सहित सारे लोकका यही धर्म है, जो कि यह अनित्यता ” ॥१०॥

इन गाथा-ओको सुनने ही मेरी धर्मकी आप सुख गई ।

तब मैं धमको जानकर घेघर हो प्रयत्नित हुई ॥११॥

इस प्रकार प्रयत्नित हुई निन (= बुद्ध) के शासनसे पालन करता ।

न पिरकाल ही मैं अष्टम्पदसो प्राप्त हुई ॥१२॥

+

+

+

+

ब्राह्मण धर्मिय-सुत्त ।

‘ऐसा मेने सुता—एक समय भगवान् आवस्तीमें विहार करते थे ।

तब यदुत्तसे ‘कोसलवासी जीर्ण = मृद = महल्लु = अध्वगा = वय प्राप्त ब्राह्मण महाशाल (= महावैभव-सम्पन्न) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्‌के साथ संमोदन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे उन ब्राह्मण महाशालोंने भगवान्‌को कहा—

‘हे गौतम ! इन समय ब्राह्मण पुराने ब्राह्मणोंके ब्राह्मण-धर्म पर (आरु) निगा पड़ते हैं न ?’

‘ब्राह्मणो ! इस समय ब्राह्मण० ब्राह्मण-धर्मपर (आरु) नहीं दिखाई पड़ते ।’

‘अच्छा हो, आप गौतम हमें पुराने ब्राह्मणोंके ब्राह्मण धर्मको आपण करें, यदि आप गौतमको कष्ट न हो ।’

‘तो ब्राह्मणो ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।’

‘अच्छा भो !’

भगवान्‌ने यह कहा—‘पुराने ऋषि संयमा (= संयतात्मा) और तपस्वी होते थे ।

‘पाँच काम गुणो (= भोगो)को छोड़कर (वह) अपना अर्थ (= ज्ञानध्यान) करते थे ।’

(उस समय) ब्राह्मणोंको पशु न थे, न हिरण्य (= अशर्की) न अनाज ।

यह स्वाध्याय (रूपी) धन धान्य वाले थे, वह ब्रह्म निधिको पालन करते थे ॥२॥

उनके लिये जो तत्पार करके द्वारपर श्रद्धादेय भोजन रखा रहता था ।

(दायक लोग) उसको खोजनेपर देनेके योग्य समझते थे ॥३॥

नागा रंगक वस्त्रों, शयन और आवसथो (= अतिथि-शालाओ) से ।

समृद्ध जनपद, राष्ट्र उन ब्राह्मणोंको नमस्कार करते थे ॥४॥

ब्राह्मण अ-वध्य, अ-जेय, धर्मसे रक्षित थे ।

कुल-द्वारापर उन्हें कोई कभी नष्टा रोक्ता था ॥५॥

यह अदृतालोस वर्ष तक कौमार ब्रह्मचर्य पालन करते थे ।

पूर्वकालमें ब्राह्मण विद्या और आचरणकी खोज करते थे ॥६॥

न ब्राह्मण दूसरी (स्त्री) के पास जाते थे, न आर्या खरोदते थे ।

परम्पर प्रेम वालीक साथ ही संगममहवास करनेको कहते थे ॥७॥

ऋतुकालको छोड़कर, बीचके निषिद्ध (समय)में

ब्राह्मण कभी मैथुन-धर्म नहीं सेवन करते थे ॥८॥

(वह) ब्रह्मचर्य, शील, अ-कुटिलता, मृदुता, तप,

सुरति, अहिंसा और क्षाति (= क्षमा) की प्रशंसा करते थे ॥९॥

जो उनमें सर्वोत्तम दृढ़ पराक्रमी ब्रह्मा था ।

उसने स्वप्नमें भी मैथुन धर्मको सेवन नहीं किया ॥१०॥

१ सुचनिपात २:७ । २ फैजाबाद, गोंडा, महराष्ट्र, बाराबंकीके जिले, तथा आस पासके जिलोंके कुछ भाग ।

उमके व्रतक पीठे चलते हुए पंडितजन ।

ब्रह्मचर्य, शील और शान्ति की प्रशंसा करते थे ॥११॥

वह तंडुल, शयन, वस्त्र, धी और तेल को मागकर ।

धर्मक साथ निकालकर, तब यज्ञ करते थे ॥

यन उपस्थित होनेपर वह गायत्री नहीं मारते थे ॥१२॥

जेसे माता पिता भ्राता और दूसरे बंधु हैं ।

(वैभेही) गाय हमारी परम मित्र हैं, जिनमें कि औपच उत्पन्न होते हैं ॥१३॥

यह अन्न दा, वस्त्र-दा, वर्ण दा तथा सुख-दा (हैं) ।

इस बात को जानकर, वह गायत्री नहीं मारते थे ॥१४॥

सुकुमार, महाकाय, 'वर्ण धान् यशस्वी ।

ब्राह्मणन इन धर्मों के साथ, कर्त्तव्य अकर्त्तव्यमें सत्पर हो ।

जब तक लोकमें वर्तमान थे, (तब तक) यह प्रजा सुखमें रही ॥१५॥

दो २ राजा की सम्पत्ति—समस्तैव स्त्रियो

उत्तम घोड़े जुते सुन्दर रचना-वाले विचित्र सिगाईयुक्त रथों,

खगडोम घटे मकानों और कोठों—को देकर उनमें उलटापन आया ॥१६॥१७॥

गोमंडलसे आकीर्ण सुन्दर स्त्री गण-सहित ।

पड़े मनुष्य भोगोका ब्राह्मणोने श्लोम किया ॥ १८ ॥

तब वह संशोक रचकर इक्ष्वाकु (= ओकाक) के पास गये ।

'तू बहुत धन धान्यवाला है, तेरे पास वित्त बहुत है, यज्ञ कर' ॥ १९ ॥

ब्राह्मणोंसे चिताये जानेपर तब रथपथ राजाने

'अश्व मेध', 'पुरुष मेध', 'वाजपथ', 'निरगल' (= सर्वमेध)

पुरु एक यज्ञ को करके ब्राह्मणोंको धन दिया ॥ २० ॥

गार्ग्य, शयन, वस्त्र, अलंकृत स्त्रिया ।

उत्तम घोड़े-जुते, सुन्दर रचना वाले विचित्र मिलाईयुक्त रथ, खडोंमें बंधे मकान और कोठे,

—नाना धान्योसे भरकर ब्राह्मणोंको दान दिया ॥ २१, २२ ॥

उन्होंने धन संप्रद करना पसन्द किया

'गेभमें पड़े उन (ब्राह्मणों) की 'मृज्णा और भी बड़ी ।

वह मंत्र रचकर फिर इक्ष्वाकु के पास गये ॥ २३ ॥

जेमे पानी, पृथिवी, हिरण्य, धन, धान्य हैं ।

ऐसेही गाय मनुष्योंके लिये हैं, वह प्राणियोंकी परिष्कार (= उपभोग-वस्तु) हैं,

तेरे पास बहुत धन है, यज्ञ कर, बहुत वित्त है, यज्ञ कर ॥ २४ ॥

१ अथ "मृज्णं वर्ण" ।

२ अ-क- "दूध आदि पाच गोरम गायों के स्वादिष्ट हैं, इनका मांस निश्चय और भी स्वादिष्ट होगा । इसप्रकार मांसके लिये 'मृज्णा और भी बड़ी । (तब उन्होंने) सोचा,—यदि हम मारकर व्यायोग, तो निन्द्याके पात्र होंगे, क्यों न मंत्र रचें । तब फिर वेदोंको सोढ़ मोढ़ कर उसके अनुरूप मंत्र धनाकर, वह इक्ष्वाकु राजाके पास फिर गये" ।

तत्र ब्राह्मणोंसे प्रेरित होकर स्वरूपम राजाने ।

अनेक सौ हजार गाथें यजमें हनन कीं ॥२५॥

(जो) न पंरसे न साँगसे न किसी (अंग)से ही मारती हैं ।

(जो) गाथें भेदके समान प्रिय और घड़े भर दूध देनेवाली हैं ।

उन्हें साँगसे पकड़कर राजाने शत्रुसे मारा ॥२६॥

तब देवता, पितर, इन्द्र, असुर, राक्षस,

चिह्ना उठे 'अधर्म (हुआ) जो गायके ऊपर शस्त्र गिरा' ॥ २७॥

पहिले तो ही रोग थे—इच्छा, क्षुधा, और जरा ।

पशुकी हिंसा (=समारभ) से (वह) अट्टानने होगये ॥२८॥

यह अधर्म पुराने (धर्म-) ढंढोमे रहित था ।

याजरु (=पुरोहित) निर्णेपको मारते हैं, धर्मका ध्वंस करते हैं ॥२९॥

इस प्रकार यह पुराने विनोंसे निन्दित नीच-कर्म है ।

लोग जहाँ ऐसे याजरुको पाते हैं, निन्दा करते हैं ॥३०॥

इस प्रकार धर्मके निगडनेपर शूद्र और वेदय फूट गये ।

क्षत्रिय भी त्रिभू भिन्न होगये, भार्या पतिका अपमान करने लगी ॥३१॥

क्षत्रिय, ब्रह्म-वधु (=ब्राह्मण-जातिके) और दूसरे जो गोत्रसे रक्षित थे ।

जातिवादका नाशकर, (सभी) स्वेच्छचारी हो गये ॥३२॥'

ऐसा कहनेपर ब्राह्मण महाशालोंने भगवान्को यह कहा—

"आश्चर्य ! हे गौतम ॥ असुत । हे गौतम ॥ ०यह हम आप गौतमकी शरण जाते हैं, धर्म और भिक्षु सबकी भी । आजसे आप गौतम हमें अजलि बद्ध शरणागत उपासक समझें ॥

अंगुलिमाल-सुत्त (वि. पू. ४४७) ।

“ देसा मेने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें वनाथ-पिंडरके आराम जेत वनमें विहार करते थे ।

उस समय राजा प्रसेनजितके राज्यमें एक लोहित पाणि मार-काट सलग्न, प्राणि भूतोंमें दया रहित अंगुलिमाल नामक डाकू (=चोर) था । उसने ग्रामोंभी अ ग्रामर द्रिया था, निगमोकोभी अ निगम ०, जन पदोंभी अ जनपद ० । तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र चीवरले श्रावस्तीमें पिंडरकेलिये प्रविष्ट हुए । श्रावस्तीमें पिंड चार करक भोजन बाद शयनासन सभाल, पात्र चीवरले जहा, डाकू अंगुलि माल रहता था, उसी रास्ते चले । गोपालका, पशुपालको, कृषको, राहगारोंने भगवान्को, जिघर डाकू अंगुलि-माल था, उन्ही रास्तेपर (जाते) हुये देखा । देखकर भगवान्को यह कहा—

“मत श्रमण ! हम रास्ते जाओ । हम मार्गमें श्रमण ! ०अंगुली मात्र नामर दाद रहता है । उसने ग्रामोंको भी अ-ग्राम ० । वह मनुष्योंको मार मारकर अंगुलियोंकी माला पहनता है । हम मार्गपर श्रमण । धीम पुरप, तीम पुरप चालीस०, पत्रस पुरप तर इक्कट्टा होकर जाते हैं, वह भी अंगुलिमालके हाथमें पट जाते हैं ।”

ऐसा कहतेपर भगवान् मोन धारणकर चले रहे ।

दूसरी वारभी गोपालको ० । तीसरी वार भी गोपालको ० ।

डाकू अंगुलि-मालने दूरसे ही भगवान्को आते देखा । देखकर उसको यह हुआ—
‘आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी (=भो) ॥ हम रास्ते वस पुरप भी, ० पत्रस पुरप भी इक्कट्टा होकर चलते हैं, वह भी मेरे हाथमें पट जाते हैं । और वह श्रमण अनेला=अद्वितीय मानो मेरा तिरस्कार करता आ रहा है । क्यों न मैं इस श्रमणको जामते मार दूं ।’ तब डाकू अंगुलि मात्र डाल-तलवार (=बासि चम) लेकर धीर धनुष चढ़ा, भगवान्के पीछे चला । तब भगवान्ने इस प्रकारका योग यत्न प्रकट किया, कि डाकू अंगुलिमाल सामूली चालसे चलते भगवान्को सारे वेगसे दौड़कर भी १ पा सकता था । तब डाकू अंगुलिमालको यह हुआ—‘आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी ॥ मैं पहिले लौढ़ते हुये हाथोंको भी पाऊं करक पकड़ लेता था, ०घोड़ेको भी ०, ०रथको भी ०, ०सूगको भी पीछा कर पकड़ लेता था । किन्तु, सामूली चालसे चलते इस श्रमणको, साग वेगसे दौड़कर भी नहीं पा सकता हूं । राश हासर भगवान्को घेला—

“खड़ा रह, श्रमण ।”

“मैं स्थित (=गंगा) हूं अंगुलिमाल ! तू भी स्थित हो ।”

तब डाकू अंगुलि मालको यह हुआ—‘यह द्राव्य पुत्रोय श्रमण सयवाग मन्थ प्रतिन (होते हैं), किन्तु यह श्रमण जाते हुए भी णसा कइता है—‘यं स्थित हूं ० ।’ क्यों न मैं इस श्रमणको पकड़ूं । तब ०अंगुलिमालने गाथापास भगवान्को कहा—

१ चौबीसवा धर्मावास पूर्वोत्तरामें, पचीसवा जेतवम । ० म ति २ ४ ६ ।

"श्रमण ! जाते हुये 'स्थित हूँ' ।' कहता है, मुझ खड़े हुयेको अस्थित कहता है।

श्रमण ! तुझे यह बात प्युछता हूँ 'कैसे तू स्थित और मैं अस्थित हूँ ?' ॥१॥

"अंगुलिमाल ! मारे प्राणियोंके प्रतिने दंड छोड़नेसे मैं सर्वदा स्थित हूँ ।

तू प्राणियोंमें अ संयमी है, इसलिये मैं स्थित हूँ, और तू अ-स्थित है ॥२॥"

"मुझे महर्षिका पूजन किये देर हुई, यह श्रमण महावनम मिल गया ।

मो मे धर्मयुक्त गाथाको सुनकर चिरकालके पापको छोड़ूंगा ॥३॥

इस प्रकार डाढ़ने तलवार और हथियार रोह, प्रपात और नालेमें फँक दिये ।

डाढ़ते सुगतके परोकी वन्दनाही, और चर्हीं-उनसे प्रयज्या मागी ॥४॥

उद्ध कण्णामय महर्षि, जो देवोंसहित लोकने शान्ता (=गुरु) हैं ।

उमको 'आ भिक्षु' बोले, वही उत्तरा सन्धास हुआ ॥५॥

तब भगवान् आयुमान् अंगुलिमालको अनुगामी-श्रमण बना जहा आवस्ती थी वहा, चारिकाके लिये चले । क्रमशः चारिका करते जहा आवस्ती थी, वहा पहुँच । आवस्तीमें भगवान् अनाथ पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे । उस समय रात्रा प्रसेनजित् कोमलके 'अन्त पुर'के द्वार पर बड़ा जन समूह एकत्रित था । कोलाहल (=उच्च शब्द, महा शब्द) हो रहा था — 'देव ! तेरे राज्यमें अंगुलि-माल नामक डाढ़ है । उसने प्रामोंको मो अ प्राम० । वह मनुष्योंको मारकर अंगुलियोंकी माला पहनता है । देव ! उसको रोक ।"

तब राजा प्रसेनजित् कोसल पाच सो घोड़-सवारोंके साथ मध्याह्नको आवस्तीसे निकल (और) जिधर आराम था, उधर गया । जितनी धानकी भूमि थी, उतनी धानसे जा, धानम उतर पैदल जहा भगवान् थे, वहा गया । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बंठा । एक ओर बैठ राजा प्रसेनजित् कोमलको भगवान्ने कहा—

"क्या महाराज तुझपर राजा मागध श्रेणिक विरसार बिगदा है, या वैशालिक लिच्छवि, या दूसरे विरोधी राजा ?"

"भन्ते ! न मुझपर राजा मागध० बिगदा है० । भन्ते ! मेरे राज्यमें० अंगुलि-माल नामक डाढ़० । भन्ते ! मैं उसीको निवारण करने जा रहा हूँ ।"

"यदि महाराज । तू अंगुलि मालको केश दमक्षु मुँड़ा कापाय वस्त्र पहिन, घाते घेघर प्रयजित हुआ, प्राण-हिंसा विरत, अदत्तादान-विरत, मृपावाद-विरत, एकाहारी, ब्रह्मचारी, शीलवान्, धर्मात्मा देखे, तो उसको क्या करे ?"

"हम भन्ते ! प्रत्युत्थान करेंगे, आसनक लिये निमज्जित करेंगे, चीवर, पिंड पात शयनासन ग्लान् प्रत्यय भेषज्य परिष्कारोसे निमज्जित करेंगे, और उनकी धर्म धार्मिक रक्षा = आवरण = गुप्ति करेंगे । किंतु भन्ते ! उस दुःशील पापीको ऐसा शील समय कहाँसे होगा ।"

उस समय आयुष्मान् अंगुलि-माल भगवान्के अ-विद्वर बंठ थे । तब भगवान्ने दाहिना बाँहमें पकड़ कर राजा प्रसेनजित् कोसलको कहा—

१ नगरके भीतरी भागमें राजाके महल आदि होते थे, इसीको अन्त पुर, या राजकुल कहा जाता था ।

“महाराज । यह है अंगुलि माल ।”

तब राजा प्रसेनजित् कोसलको, भय हुआ, स्तब्धता हुई, रोमाच हुआ । तब भगवान् ने राजा प्रसेनजित् कोसलको यह कहा—

“मत डरो, महाराज ! मत डरो महाराज ! (अब) इससे तुझे भय नहीं है ।”

तब राजा प्रसेनजित् कोसलको जो भय० था, वह विलीन होगया ।

तब राजा प्रसेन जित् कोसल जहाँ आयुष्मान् अंगुलि माल धे, वहाँ गया । जाकर

आयुष्मान् अंगुलि मालको बोला—

“आर्य अंगुलि माल है ?”

“हाँ, महाराज ।”

“आर्यके पिता किम गोत्रके, और माता किम गोत्रीकी ?”

“महाराज । पिता गार्ग्य, माता मंत्रायणी ।”

“आर्य गार्ग्य मंत्रायणीपुत्र अभिरमण करै । मे आय गार्ग्य मंत्रायणी पुत्रकी चीवर, पिंड-पात, शयनासन, स्थान-प्रत्यय भेषज्य परिहारोमे सेवा कर्हेगा ।”

उस समय आयुष्मान् अंगुलिमाल आरण्यक, पिंडपातिक, पातु-वृत्तिक, त्रैचौरगिक थे ।

तब आयुष्मान् अंगुलि-मालने राजा प्रसेनजित् कोसलको कहा—

“महाराज ! मेर तीनों चीवर पूरे हैं ।”

तब राजा प्रसेनजित् कोसल जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर बैठा । एक ओर बैठ भगवान् को यह बोला—

“आश्रय भन्ते । अद्भुत भन्ते ॥ कैसे भन्ते ! भगवान् अज्ञातोंको दमन करते, अज्ञानोंको दामन करते, अ परिनिर्वृत्तोंको परिनिर्वाण कराते हैं । भन्ते ! जिनसे हम दंडसे भी, शस्त्रसे भी दमन न कर सके, उसको भन्ते ! भगवान् ने बिना दंडके, बिना शस्त्रके दमन कर दिया । अच्छा, भन्ते ! हम जाते हैं, हम बहु-वृत्त्य = बहु-वरणीय (= बहुत कामवाले) हैं ।”

“जिसका महाराज ! तू काल समझता है (बैसा कर) ।”

तब राजा प्रसेनजित् कोसल आसनमे उठकर भगवान् को अभिशान्तिकर प्रदक्षिणाकर बैठा गया ।

तब आयुष्मान् अंगुलिमाल पचाह समय पहिनकर पात्र चीवर के आवस्तीम पिंडने लिये प्रविष्ट हुये । आवस्तीमें बिना छदरे पिंड चार करते आयुष्मान् अंगुलिमालने एक स्त्रीको मूढ गमा = विघात गर्मा (=मेरे गर्मचाली) देखा । देखकर उनसे यह हुआ—“हा ! मूढ गमा = विघात गर्मा (=मेरे गर्मचाली) देखा । देखकर उनसे यह हुआ—“हा ! प्राणी दु ख पा रहे हैं ॥ हा ! प्राणी दु ख पा रहे हैं ।” तब आयुष्मान् अंगुलिमाल आवस्तीम पिंड चार करके भोजनोपराज्ज जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान् को अभिशान्तिकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ आयुष्मान् अंगुलिमालने भगवान् को कहा—

“मैं भन्ते । पचाह समय पहिनकर पात्रचीवर के आवस्तीमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुआ । आवस्तीमें मैंने एक स्त्रीको मूढ गर्मा देखा । “हा ! प्राणी दु ख पा रहे हैं ।”

“तो अंगुलिमाल । जहा यह स्त्री है, वहा जा । जाकर उस स्त्रीको कह—भगिनी ! यदि मैं यदि मैं जन्मसे, जानकर प्राणि पथ करना नहीं जानता, (तो) उस सत्यमे तेरा मंगल हो ; गर्भका मंगल हो । ”

“भन्ते । यह तो मिश्रय मेरा जानकर झूठ बोलना होगा । भन्ते मैंने जानकर बहुत प्राणि पथ किये हैं । ”

“अंगुलिमाल । तू जहा वह स्त्री है वहा जाकर यह कह—‘भगिनी ! यदि मैं साथ-जन्ममें पैदा हो (कर) जानकर प्राणि-पथ करना नहीं जाना, (तो) इस सत्य से० ।”

“अच्छा भन्ते ! ” आयुष्मान् अंगुलिमालने जाकर उस स्त्रीको कहा—

“भगिनि ! यदि मैंने आर्य जन्ममें पैदा हो, जानकर प्राणि-पथ० । ”

तब स्त्रीका मंगल होगया, गर्भका भी मंगल होगया ।

आयुष्मान् अंगुलिमाल पुकाफी अप्रमत्त=उद्योगी सयमी हो विहार करते न-जिमें हा, जिमके लिये कुल पुत्र प्रवर्धित होते ह, उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य फलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर=साक्षात्कारकर=प्राप्तकर विहार करने लगे । जन्म क्षय होगया ब्रह्मचर्य-प्राप्त हो चुका, करना था सोकर लिया, अब और करनेको यहा नहीं है’ (इसे) जान लिया । आयुष्मान् अंगुलिमाल अर्धतोमे एक हुये ।

आयुष्मान् अंगुलि माल पूषाह समय पहिनकर पात्र चीवर ले, धावस्तीमें निहाल लिये प्रविष्ट हुये । किता दूमेका पैका डला आयुष्मान्के दारीपर लगा, दूमेका पैका डंढा, दूमेका फना ककड० । तब आयुष्मान् अंगुलि माल बहते खून, फटे शिर, टूटे पात्र, फटी संघाटीके साथ जहा भगवान्के, वहा गये । भगवान्ने दूमे ही आयुष्मान् अंगुलिमालको आने दया । देखकर आयुष्मान् अंगुलिमालको कहा—

“ग्राहण । तूने क्यूँ कर लिया । ग्राहण । तूने क्यूँ कर लिया । जिस कर्म फल लिये अनेक सौ वर्ष, अनेक हजार वर्ष, नर्कमें पचना पड़ता, उस कर्म विपाकको ग्राहण । इसी जन्ममें भोग रहा है । ”

तब आयुष्मान् अंगुलि मालो पकान्तमे यानास्थित हो विमुक्ति-सुखको अनुभव करते उसी समय यह उगान कहा—

“जो पहिले अर्जितकर पात्र, उसे मार्जित करता है ।

यह मेघमे सुन चन्द्रमासी भाति इस लोकको प्रभासित करता है ॥१॥

जिम्हा किया पाप कर्म पुण्य (=कुशल)मे रका जाता है ।

यह मेघमे सुन० ॥२॥

जो मयारमें तरण भिषु बुद्ध-शासनमें जुगता है । वह० ॥३॥

दिशाय मेरी धर्म-कथाको सुने, दिशाय मेरे बुद्ध शासनमें लुई ।

यह मंत पुरुष दिशाओंको सेवन करें, जो धर्मके लियेहो प्रेरित करते हैं ॥४॥

दिशाय मेरे क्षाति-यादियों, मेरी प्रशंसकों धर्मको,

ममपर सुन, और उसके अनुसार चलें ॥५॥

वह मुझे या दूसर किसीको भी नहीं मारेंगा ।

(वह) परम शांतिको पाकर स्थावर जंगमकी रक्षा करेगा ॥६॥

(धृते) 'गाली वाले पानी' जाते हैं, इस बार शरको सीधा करते हैं ।

बर्दे लकड़ाको सीधा करते हैं, (धीमेहो) पंडित अपनेको दमन करते हैं ॥७॥

चोई दंडते मन करते हैं, (कोई) शत्रु और कोड़ासे भी ।

तथागत-द्वारा बिना 'ड' बिना शत्रु ही मैं दमन किया गया हूँ ॥८॥

पहिलेके हिंसक मेरा नाम आज अहिंसक है ।

आज मैं यथार्थ-नाम वाला हूँ, किसीकी हिंसा नहीं करता ॥९॥

पहिले मैं 'अगुलि मारु' नामसे प्रसिद्ध चोर था ।

यही बाद (= महा बोध) में इन्होंने उद्ध की शरण आया ॥१०॥

१ अ क 'कोसल राजाके पुत्रोहितको मंत्रायणो नामक भाषाकी कालमें जन्म ग्रहण किया नाम रखने पर अहिंसक नाम रखा । उसको विद्या (= शिक्षा) सीखनेके समय तक्षशिला भेजा । वह धर्मान्तेजामी (= निगुल्य शिष्य) हो विद्या पढ़ने लगा । वह व्रत मपत्र, आज्ञाकारी, प्रिय आचारी, प्रियवादी था । दूसरे माणवक — 'अहिंसक माणवकके आगमनके दिनसे हम नहीं ममज्ञ पात, फंसे इसे कोई'—घटकर सहाइ करने — 'सबसे अधिक प्रभावान् होनेसे यह दुष्प्रय नहा कहा जा सस्ता, व्रत-युक्त होनेसे दुष्टत नहीं कहा जा सकता, (मु) जाति वाला होनेसे दुःखत नहीं कहा जा सस्ता, क्या कर' १ तब पत्रन सलाहकी—'आचार्योपणीको धीचम लेकर इसे नष्ट कर' ।

(फिर वह) तीन टुकड़ी होकर (प्रथम) पहिली एक टुकड़ी बा' आचार्यक पास जाकर चन्दनाकर रखे हुए ।—

" क्या है सातो ! "

" इस घम एक क्या सुनाई देती है । "

" सातो ! क्या "

" हम समझते हैं अहिंसक माणवक आपके भातको नपित करता है । "

" जाओ वृषको (= शूद्रो) ! मेर पुत्र और सुधर्म निगाह मत डालो । "

— (कह) फटकारा । तब दूसरे, उसके बाद तीसरे, (इस प्रकार) तीसरी टुकड़ियोन आकर बर्दा कहा—'यदि इमारा विश्वास नहीं है, तो परीक्षा करके देखिये' । आचार्य स्नेह-सहित बात करते देख—'आलम होता है संसर्ग है' फूटकर (मनमें) सोचने लगा—'क्या इसे माहें' । तब सोचा—'यदि माहेंगा' तो दिशा प्रमुख आचार्य अपने पास विद्या पढ़नेके लिये भाये माणवकोको दोष लगाकर जानमे मारता है—(जान) मेरे पास कोई विद्या पढ़नेके लिये नहीं आवेगा । इस प्रकार (मेरा) लाभ नष्ट हो जायगा । तब इसे विद्या-न्यमासिकी दक्षिणा दो—कहकर 'सहस्रको मारो' कहेंगा । अवश्य ही उनमें कोई एक उल्कर इस मारगा ।' तब उसे कहा—'आओ तात । सहस्रको मारो, इस प्रकार तुम्हारी विद्या समाप्तिनी दक्षिणा पूरी होगी । "

" आचार्य । हम अहिंसक कृम उत्पन्न हुये हैं (यह) नहीं कर सस्ते ॥ "

पहिले मैं अंगुलि-माल नामसे प्रसिद्ध खून रंगे हाथवाला (= लोहित पाणि) था ।

देखो शरणागति को ? भव जाल सिमट गया ॥११॥

बहुत दुर्गतिमें ले जानेवाले कर्मोंको करके ।

कर्म विपाकसे स्पृष्ट (= लगा) (था) (जिन)से उन्नत हो भोजन करता हूँ ॥१२॥

माल = दुर्वृद्धि जन, प्रमाद (= अलस्य)में एगे रहते हैं ।

मेधावी (पुरुष) अ प्रमादकी, श्रेष्ठ धनकी भाँति रक्षा करते हैं ॥१३॥

मत प्रमादमें जुड़ो, मत काम रतिका सग करो ।

अप्रमाद-मुक्त हो ध्यान करते (मनुष्य) विपुल सुखको पाता है ॥१४॥

(यहां मेरा आना) स्वागत है, अप-गत (= दुरागत) नहीं,

यह मेरा (संव्रणा) दुर्मंत्रण नहीं ।

प्रतिभान (= ज्ञान) होनेवाले धर्मोंमें जो श्रेष्ठ है, उस (निर्वाण)को भन पा लिया ॥१५॥

स्वागत है, अपगत नहीं, यह मेरा दुर्मंत्रण नहीं ।

तीनों विष्णुओंको पालिया, उद्धवे शासनको कर लिया ॥१६॥

“तान ! दक्षिणा दिवे विना विद्या फल नहीं देती”

(तब) वह पाँच हथियारों आचार्यको वन्दनाकर, जंगलमें घुम गया । वह अंगार (= जंगल)में घुसनेके स्थानपर, अटवीके मध्यमें, अटवीसे निकलनेके स्थानपर खड़ा होकर, मनुष्योंको मारता था, (किंतु) वस्त्र या वेष्टनको नहीं लेता था । एक दो गिनती मात्र करता जाता था । क्रमशः गिनती भी नहीं याद रख सकता था । तब एक एक अंगुली फाट कर रख छोड़ता था । रते स्थानपर अंगुलियाँ खोजाती थीं । तब छेदकर अंगुलियोंकी माला बनाकर धारण करने लगा । इसीसे उसका नाम अंगुलिमाल प्रसिद्ध हुआ । बसने सारे जंगलको निष्प्रेषण कर दिया । लकड़ी आदि लानेके लिये जंगलमें जानेमें कोई समर्थ न था । रातमें गायमें भी आकर, पैरसे मारकर दवाजा खोल, सोतोही को मार एक एक गिनकर चला जाता । गाँव भागकर निगममें जा पड़ा हुआ, निगम नगरमें । तीन योजन तकके मनुष्य घर छोड़ सी बच्चे हाथसे पकड़े, आकर श्रावस्तीके चारों ओर डेरा लगा, राजाके आंगनमें इन्द्र देव के दोले देव । तरे राज्यमें चोर अंगुलिमाल उत्पन्न हुआ है ।”

अटुठक (=पारायण) वग (वि. पू. ४४६) ।

‘मंत्र पारगत’ महाजन कोसलोक रमणीय पुण्ड्र,
आर्चिचम्य (स्वर्ग) की कामनासे दक्षिणापथ गया ॥ १ ॥

उसने ‘अस्मक’ राज्यमें अल्लक की सीमापर ।

गोदावरी नदीके तीरपर २४ और जलने सहारे वास किया ॥ २ ॥

उसीके समीप एक विपुल गाँव था ।

जिससे पैदा हुआ आपसे उसने महाजन रचा ॥ ३ ॥

१ सुप्त निपात १ १ १६ ।

२ प्रसेनजितके पिताके पुरोहितके घर (उक्त) आचार्य पैदा हुआ । तामने बावरी, महा पुरषके तीन लक्ष्णोंसे युक्त, तीनों पैदोंमें पारंगत पिपाष मरने पर पुरोहित-यक्ष पर प्रतिष्ठित हुआ । सोलह ज्येष्ठ अन्तेवासियों (—प्रधान शिष्यों)ने बावरीके पास विद्या पढ़ी । कोसल राजाभी मर गया । तब प्रसेनजितको (लोगने) अभिषिक्त किया । बावरी उसकाभी पुरोहित हुआ । राजाने पिताके दिये तथा और भी भोग बावरीको दिये । बाल्यपनमें उसने उसके ही पाम विद्या पढ़ी थी । तब बावरीने राजाको कहा—

“मैं महाराज । प्रमजित होऊँगा ।”

“आचार्य ! तुम्हारी उपस्थितिमें मेरा पिता मामों उपस्थित है । प्रमजित मत हो ।”

“महाराज ! नहीं, प्रमजित होऊँगा ।”

राजाने रोकनेमें असमर्थ हो प्रार्थनाकी—

“सायं प्रातः मे दर्शन छायाक स्थान राज उद्यानमें प्रमजित हो ।”

आचार्य सोलह हजार परिवार (= अनुयायी) वाले सोलह शिष्याक साथ तापम प्रमज्याम प्रमजित हो राज उद्यानम वास करने लगा ।

राजा चारों अवश्यकताओंको अपण करता, और सायं प्रातः सेवामें जाता था । तब एक दिन अन्तेवासियोंने आचार्यको कहा—‘ आचार्य ! नगरके समीप वसनेम बड़ा विद्या है, निर्जन स्थानमें चले, प्रमजितोंके लिये एकान्त-आश्रम बान बड़ा उपकारी होता है । ’

उसने ‘ अच्छा ’ (कह) स्वीकारकर राजाको कहा । राजाने तीनवार मना करनेपरभी असमर्थ हो, दोलाव दे, दो अमात्यको हुकुम दिया—“ जहा ऋषिगण वास करना चाह, वहा आश्रम बनवाओ । ” तब आचार्य सोलह हजार जत्रिलोक साथ, अमात्योंसे अनुगामी हो, उत्तर-दरासे दक्षिण-देशकी ओर गया । ’

‘ अ क ’ अस्मक (= अजमक) और अल्लक (= आयक)’ दोनो अल्हक (= आश्र) राजाओंके सम्प्राप-वर्ती राज्यमें । दोनो राजाओंके बीचमें , गोदावरी नदीके तीरपर, जहां गोदावरी दोधारमें फटकर सीतर तीन योजनका द्वीप बनाती है । । जहा पहिले शरभंग आदिने वास किया था । । ’ अस्मक अल्लक आजकल हैदराबाद राज्यके औरंगाबाद और भीरके दो जिले तथा आम पासके भाग हो सकते हैं ।

महायज्ञ करक फिर वह आश्रमके भीतर चलागया ।

उमके भीतर चके जानेपर दूसरा ब्राह्मण आया ॥ ४ ॥

धिये पैर प्यासा, दाँतमें-पक-लगा धूसर शिर ।

वह उसके पासजा पचमौ मागने लगा ॥ ५ ॥

उमको दग्नर बावरीने आसनसे निर्मत्रित किया ।

कुशल आनन्द, पूछा, (और) यह बात कही ॥ ६ ॥—

“ जो कुछ मुझ देना था, वह सब मैंने देदाला ।

हे ब्राह्मण ! जानो, कि मेरे पास पाच सौ नहीं हैं ॥ ७ ॥

“ यदि मागते हुये मुझ तुम न दोगे । ”

तो सातवें दिन तुम्हारा शिर (= मूर्धा) सात टुकड़ होजाये ॥ ८ ॥

अभिमन्स्कार (= मन्त्रविधि) करके उम पारङ्गीने (यह) भीषण शब्द कहा ।

उसके उस वचनको सुनकर बावरो दु खित हुआ ॥ ९ ॥

शोक-शल्यसे युक्त हो निराहार सूपने लगा ।

तत्रापि चित्तके ध्यानसे मन रमित होता था ॥ १० ॥

भयभीत और दु खित देरा हिताकाक्षी एक देवताने ।

बावरीके पास जाकर यह वचन कहा ॥ ११ ॥—

“ वह पारङ्गी धन लोभी मूर्धा नहीं जानता ।

मूर्धा या मूधा पातके विषयमें उसको ज्ञान नहीं है ॥ १२ ॥ ”

“ तो तुम जानती होगी, सो मुझे इस मूधा, मूधापातको ।

बतलाओ, (मैं) तुम्हारे इस वचनको सुनना चाहता हूँ । ॥ १३ ॥ ”

“ ममो उसे नहीं जानती, मुझे भी उम विषयका ज्ञान नहीं है ।

मूर्धा और मूधा पात यह बुद्धोका ही दर्शन (= ज्ञान) है ” ॥ १४ ॥

“ तो फिर इस वक्त इस पृथिवी मंडलमें (जो) मूधापातको,

जानता है, हे देवता ! उसे मुझे बतलाओ ? ” ॥ १५ ॥

“ पूर्व समय जो कपिल-प्रेस्तुमे लोकनाथक,

इक्ष्वाकु-राजाकी भतान, प्रमांकर, शाक्य पुत्र (प्रव्रजित हुये) ॥ १६ ॥

ब्राह्मण ! वही मंजुद्ध, सर्व धर्म पारंगत,

सब अभिजाओके बलको प्राप्त, (राग आदि) उपधिके क्षय होनेसे विमुक्त हैं ॥ १७ ॥

वह चक्षु मान् भगवान् बुद्ध, धर्म-उपदेश करते हैं ।

उनके पास जाकर पूछो, वह इसे तुम्हें बतलावेंगे ॥ १८ ॥ ”

“ उद्ध ” यह वचन सुन बावरी बहुत हर्षित हुआ ।

उसका शोक कम होगया, और (उमे) विपुल प्रीति (= खुशी) उत्पन्न हुई ॥ १९ ॥

वह बावरी सन्तुष्ट, हर्षित, प्रफुल्लित हो उम देवताको पूछने लगा ।—

“ किस गाव, किस निगम या क्रिम जनपदमें लोकनाथ (वास करते) हैं,

जहा जाकर, पुरपोचम बुद्धको नमस्कार करूँ ? ॥ २० ॥ ”

“ वह जिन बन्धु-प्रज, वर धरि मेघानान् शाक्यपुत्र,
अ-मग, अनु-आस्रव, नरपंथ, मूर्धा पातन कोमल मंदिर धावन्तीम (वास करते) हैं ॥२१॥”
तब मग्न (=वेद) पारगत्ने शिष्य ब्राह्मणोंको संबोधित किया—

“ आओ माणिक्यो !, कहता हूँ, मेरा वचन सुनो ॥२२॥

जिसका सदा प्रादुर्भाव लोकमें दुर्लभ है ।

वह प्रसिद्ध ‘बुद्ध’ आज लोकमें पैदा हुये हैं ॥

शीघ्र आवस्ती जाकर पुरपोत्तमका दर्शन करो ॥२३॥”

“ हे ब्राह्मण ! तो कैसे हम देखकर जानेंगे—यह ‘बुद्ध’ है ? ।

न जानने हम जैसे उन्हें जान, वह हमें यत्नाओ ॥२४॥”

“ हमारे मंत्रोंमें महारूप लक्षण आये हैं ।

(वह) बलीम कहे गये हैं, चारो ओर प्रमत्त ॥२५॥

जिसके शरीरमें यह महापुरुष लक्षण हो ।

दो ही उसकी गतिथा हैं, तीसरी नहीं ॥२६॥

यदि घरमें वास करता है, (ता) इस पृथिवीको

बिना दंड, बिना शस्त्रके जीतकर, धर्मसे साथ शासन करता है ॥२७॥

यदि वह घरसे बेघर हो, प्रजित होता है ।

तो पट-खुला, बुद्ध, सर्वोत्तम अर्हत् होता है ॥२८॥

(वहाँ जाकर) जाति, गोत्र, लक्षण, मग्न, शिष्य तथा ।

मूषा, और मूर्धापातको मनसे ही पूजना ॥२९॥

यदि छिपको खोलकर देखनेवाले बुद्ध होंगे ।

तो मनसे पूछे प्रश्नोंको वचनसे उत्तर देंगे ॥३०॥”

बाधरीका वचन सुनकर सोलह ब्राह्मण शिष्य—

अजित, शिष्य मैत्रेय, पूर्ण और मेत्रगु ॥३१॥

धवन्न, उपशिव, नन्द और हेमक ।

तोदेय-कप्प (=तोदय कप्प), द्रुमय, और पंडित जातुग्गो ॥ ३२ ॥

भद्रायुध, उदय, और ब्राह्मण पोमाल ।

और मेघावी भोगराज और महाप्रति पेह्ल्य ॥ ३३ ॥

सभी शस्त्र अलग गणों (=जमात वाले), सर्वलोकप्रसिद्ध ।

ध्यायी=ध्यान रत, धार पूर्वकालसे (आश्रम) वासन वासी ॥ ३४ ॥

यात्रीको अभिरादनकर, और उसकी प्रदक्षिणाकर ।

सभी जटा मृग चर्म धारी, उत्तरकी ओर गए ॥ ३५ ॥

अश्वत्थे प्रतिष्ठान, तत्र प्रथम महाहिमाली ।

१ गोदावरीके उत्तर किनार पर औरङ्गाबादसे अष्टादश मील दक्षिण, वर्तमान पंडन
जिला औरङ्गाबाद (हैदराबाद राज्य) । २ इन्दौरसे चालीस मील दक्षिण नवेंदाके उत्तर
तटपर, वर्तमान मोहनगर या मोहस ।

‘उज्जयिनी और फिर गोनद’, ‘विदिशा’ ‘वनसाहय ॥ ३६ ॥

‘कौशाभ्यी और ‘सावेत, और पुरोमें उत्तम ‘श्रावस्ती ।

‘सेतव्या, ‘कपिलवस्तु, ‘कुसीनारा और मन्दिर ॥ ३७ ॥

‘पावा और भोगनगर, वैशाली, और मगध-पुर (= ‘राजगृह) ।

और रमणीय मनोरम पापाणक ‘चैत्य (में पहुँचे) ॥ ३८ ॥

जैसे प्यासा ठण्डे पानीको, जैसे बनिया लाभको ।

धूपमें तपा जैसे छायाको, (वैसेही वह) जल्दीसे पर्वतपर चढ़गये ॥ ३९ ॥

भगवान् उस समय भिक्षु सघको सामने किये,

भिक्षुओंको धर्म उपदेश कर रहे थे, वनमें सिंह जैसे गर्ज रहे थे ॥ ४० ॥

अजितने बुद्धको शत रश्मि सूर्य जैसा,

पूर्णता-प्राप्त पूर्णिमाके चन्द्रमा जैसा देखा ॥ ४१ ॥

तब उनके शरीरमें पूरे व्यञ्जनो (= लक्षणों) को देखकर,

हर्षित हो एक ओर खड़े हुये मनसे प्रभू पूजा ॥ ४२ ॥

“(हमारे आचार्यके) जन्म आदिको बतलाओ, और लक्षणके साथ गोत्र बतलाओ ।

संग्रहमें पारंगत-पन बतलाओ, और कितने ब्राह्मणोंको पढ़ाता है (इसे भी),” ॥ ४३ ॥

“जक सौ बीस वर्ष आयु है, और वह गोत्रसे बावरी है ।

उसके शरीरमें तीन लक्षण, और तीनो वेदोंमें पारंगत है ॥ ४४ ॥

निघण्टु-सहित कैटुभ (= कल्प-सहित लक्षणको, इतिहासको,

पाच सौको पढ़ाता है, अपने धर्ममें पारंगत है ॥ ४५ ॥”

“हे नरोत्तम ! हे तृणा-छेदक ! बावरीके लक्षणोंका विस्तार,

करो, (जिधमें) हम लोगोंको शंका न रह जाये ? ॥ ४६ ॥”

१ वर्तमान उज्जैन, ग्वालियर राज्य ।

२ वर्तमान भोपालके पास कोई स्थान । “गोधपुर भी” (अ क)

३ वर्तमान भिलसा (ग्वालियर राज्य) ।

४ अ क ‘सुम्बवन्नगर (= पन्ननगर) वन श्रावस्ती भी
बामा (जिला सागर ?) ।

५ इलाहाबादसे प्रायः ३० मील पश्चिम, जमुनाके बायें किनारे । वर्तमान कोसम
(जिला इलाहाबाद, यु प्रा) ।

६ वर्तमान अयोध्या (जिला फैजाबाद, यु प्रान्त) ।

७ बलरामपुरसे १० मील वर्तमान सहेट-महट (जिला गोडा, यु प्रान्त) ।

८, जैन दवेताभ्यी ।

९ तौलिहवा बाजारसे प्रायः दो मील उत्तर वर्तमान तिलौरा (नेपाल तराई) ।

१० गोरखपुरसे सैंतीस मील पूर्व वर्तमान कमवा (जिला गोरखपुर यु प्रा) ।

११ पडरौना (= कमवासे १२ मील उत्तर पूर्व) या पासकरा पपडर गांव ।

१२ राजगिर (जिला पटना, बिहार) ।

१३ संभवत गिर्यक् पर्वत (राजगिरिसे ३ मील) ।

“ उणां (उसकी) मौके बीचमें (है) मुँहको जिह्वा ठाँक लेती है ।

कोपसे ढँका वक्ष गुह्य (= लिंग) है, यह जानो हे माणवक ! ॥४७॥”

प्रश्न कुछ भी न सुनते, और प्रश्नोंका उत्तर देते ,

(देर), आश्चर्यान्वित हो, हाथ जोड़ खोग सोचते थे ॥४८॥

कौन देवता है, प्रसा, या इन्द्र सुनाम्पति है ।

मनसे पूछे प्रश्नोंका (उत्तर) किसे मासित हो रहा है ? ॥४९॥

“ यावरि मूर्धां (= शिर) और मूर्धा पातको पूछता है ।

हे भगवन् ! उसे व्याख्यान करें, हे ऋषि ! हमारे संतत्यका मित्रिये ॥५०॥”

“ अविद्याको मूर्धां जानो, और मूर्धा पातिनी,

श्रद्धा, स्मृति, समाधि, छन्द, (आर) वीर्यके साथ विद्याको (जानो) ॥५१॥”

तब अत्यन्त प्रसन्नतासे स्तम्भित हो माणवक,

मृगधर्मको एक कपेपर कर शिरसे पैरोर्म पड़ गया ॥५२॥

“ हे मार्घ, हे चक्षु-मान् ! शिष्योत्सहित यावरि ब्राह्मण,

दृढ-विच, सुमा हो, आपके पैरोर्म यन्दना करता है ॥५३॥ ”

“ ब्राह्मण ! शिष्यो-सहित यावरि सुखी होये ।

हे माणवक ! तू भी सुखी हो, चिरजीवी हो ॥५४॥ ”

सबुद्धके अवकाश देनेपर बैठकर हाथ जोड़ ।

यहा अजितने तथागतको प्रथम प्रश्न पूछा ॥५५॥

अजित माणव-पुच्छा ॥१॥

(अजित) — “ लोक किमसे ढँका है ? किमसे प्रकाशित नहीं होता ?

किसे इसका अभिलेपन कहते हो ? क्या इसका महाभय है ? ” ॥५६॥

(भगवान्) — “ अविद्यासे लोक ढँका है, प्रमाद (= आलस्य) से नहीं प्रकाशित होता ।

वृष्णाको अभिलेपन कहता हूँ, (जन्म आदि) दुःख इसका महाभय है ॥५७॥”

(अजित) — “ चारो ओर सोते यह रहे हैं, सोतोका क्या निवारण है ?

मोतोंका संवर (= कन्या) बतलाओ, किमसे सोते ढाक जा सकते हैं ? ” ॥५८॥”

(भगवान्) — “ जितने लोकमें सोते हैं, स्मृति उनकी निवारक है ।

मोताका संवर प्रज्ञा है, प्रज्ञासे यह ढाके जाते हैं ॥५९॥”

(अजित) — “ हे मार्घ ! प्रज्ञा और स्मृति नाम-रूप हो हैं ।

यह पूछता हूँ । बतलाओ, कहा यह (= नाम रूप) निरुद्ध होता है ? ” ॥६०॥”

(भगवान्) — “ अजित ! जो तूने यह प्रश्न पूछा, उसे तुझे बतलाता हूँ,

नहापर कि सारा नाम रूप निरुद्ध होता है ।

विज्ञानके निरोधमे यह निरुद्ध होजाता है ॥६१॥

- (अजित) — “हे मार्ष ! जो यहा संख्यात (= विज्ञात) - धर्म है, और जो मित्र दैत्य (धर्म) हैं।
परित ! तुम उाकी प्रतिपद्को पृछनेपर बताओ ? ॥६२॥”
- (भगवान्) — “कामोकी लोभ न करे, मनसे मलिन न होवे ।
सब धर्माई कुशल हो भिक्षु प्रयजित होने ॥६३॥”

तिस्स मेत्तेय्य-माणव पुच्छा ॥३॥

- (तिरय) — “यहां लोकमें कौन सतुष्ट है, किसको तृष्णायें नहीं है ?
कौन दोनो अन्तोको जानकर मध्यमें, (स्थित) हो, प्रतासे लिप्त नहीं होता ?
किसको ‘महापुरष’ कहते हा, कौन यहा बीचमें सीनेवाला है ? ॥६४॥”
- (भगवान्) — “(जो) कामो या ब्रह्मचर्यमें सदा तृष्णा रहित हो,
जो भिक्षु समस्त कर निवृत्त (मुक्त) हुआ है, उसको तृष्णायें नहीं होती ॥६५॥
पर दोनो अन्तोको प्रतासे जानकर मध्य (स्थ हो), लिप्त नहीं होता ।
उसको महापुरष कहता हूं, वह यहा बीचमें सीनेवाला है ॥६६॥”

पुराणक माणव पुच्छा ॥३॥

- (पुण्णक) — “तृष्णा रहित मूल दर्शा । (आपके पास) में प्रश्नके साथ आया हूं ।
किस कारण ऋषियो, मनुष्यो, क्षत्रियो ब्राह्मणोंने यहा लोकमें देवताओंको पृथक् १
यज्ञ कल्पित किया, यह पूछता हूं, भगवान् बतलाव ॥६७॥”
- (भगवान्) — “जिा किन्हीं ऋषियो, मनुष्यो, क्षत्रियो, ब्राह्मणोंने यहा लोकमें देवताओंके
लिप्रे पृथक् २ यज्ञ कल्पित किये, उन्होने इस जन्मकी चाह रखते हुयेही, जरा (आदि)
से अ मुक्तहो ही कल्पित किया ॥ ६८ ॥
- (पुण्णक) — “जिन किन्हींने यज्ञ कल्पित किया ।
भगवान् ! क्या वह यज्ञ पयमें अ-प्रमादी थे ?
हे मार्ष ! (क्या) वह जन्म जराको पार हुये ?
हे भगवान् ! तुम्ह यह पूछता हूं यताओ ? ॥६९॥”
- (भगवान्) — “(वर जो) आर्द्रासा करते = स्तोम करते = अभिजल्प करते, हवन करते हैं,
(सो) लभने लिये कामोको हों जपते हैं ।
वह यज्ञके योगसे भवके रागसे रक्त हो, जन्म जराको नहीं पार हुये, (ऐसा)
म कहता हूं ॥७०॥”
- (पुण्णक) — “हे मार्ष ! यदि यज्ञके योग (= संयन्त्र) से यज्ञोद्वारा जन्म जराको नहीं पार
हुये । तो हे मार्ष ! फिर लोकम कौन देव, मनुष्य जन्म जराको पार हुये ? — तुम्हें
पूछता हूं, हे भगवान् ! इसे बतलाओ ॥७१॥”
- (भगवान्) — “लोकमें बार बारको जानकर, जिसको लोकमें कहीं भी तृष्णा नहीं, (जो)
शान्त (दुःशरित-) धृग-रहित, रागादि-विरत, आशा रहित (है), ‘यह जन्म जराको
पार होगया’ — कहता हूं ॥७२॥”

मेत्तगु माणत्र पुच्छा ॥ ४ ॥

(मेत्तगु) — “हे भगवान् ! मैं तुम्हें पूजना हूँ, मुझ पर बनगओ, तुम्हें मैं जानी (=पेटगु) और भावितात्मा समझता हूँ, जो भी लोकमें अनेक प्रकारके दुःख हैं, वह कहाते आये हैं ? ॥७३॥”

(भगवान्) — “तु तकी इस उत्पत्तिसी पूजने हो ? प्रज्ञानुसार में उसे तुम्ह कहना हूँ (कृणा आदि) उपधिसे कारण, जो लोकमें अनेक प्रकारके दुःख हैं, (वह) उत्पन्न होते हैं ॥ ७४ ॥ जो कि अविद्या उपधिसी उत्पन्न करता है, वह मन्द (पुरष) पुन पुन दुःखको प्राप्त होता है । इसलिये जानने हुये, दुःखके-उत्पत्तिका कारण जान, उपधि १ उत्पन्न करै” ॥ ७५ ॥

(मेत्तगु) — “जो तुम्ह पूजा, वह हमें बतला दिया, और तुम्ह पूजना हूँ, उसे बतलाओ । धीरे लोग कैसे ओष (=भयमागर) को, जन्म, जरा, शोक, रोने पोनेको पारकरते है ? इसे हे मुनि । मुझे अच्छी तरह बतलाओ, क्योंकि तुम्ह यह धर्म विदित है ॥७६॥

(भगवान्) — “इसी शरीरमें प्रत्यक्ष धर्मको बतलाता हूँ, जिसको जानकर स्मरणकर आचरण कर, (पुरष) लोकमें अज्ञातिसी तर जाता है ॥७७॥”

(मेत्तगु) — “हे महर्षि ! उस उत्तम धर्मका मैं अभिनन्दन करता हूँ, जिसको जानने, स्मरण करने (और) आचरण करनेसे (मनुष्य) लोकमें तर जाता है ॥७८॥”

(भगवान्) — “जो कुछ ऊपर मोक्ष, आड़े, योग्य जानता (दिव्यदेता) है, उनमें गुणा, अभिनिराश (=आपह), आर (=संस्कार-) विज्ञानरी हटाकर, भय (=संसार) में न रहै ॥७९॥ इस प्रकार स्मरणकर अग्रमादी हो विहार करत, समता छोड़, विचरण करते, विद्वान् (भिक्षु) यहाँ जन्म, जरा, शोक परिदेवन (=क्रन्दन) दुःखों छोड़ देता है ॥८०॥”

(मेत्तगु) — “हे गौतम ! महर्षिके सुभाषित, उपधि रहित इन बचनोंका मैं अभिनन्दन करता हूँ । अग्रदत्त भगवान् ! दुःख नाश करनेहीसे यह धर्म आपको विदित है ॥८१॥ और अग्रदत्त यह भी दुःखोंसे छूटेंगे, निनको हे मुनि ! तुम इच्छित धर्मका उपदेश करते हो । हे नाग ! ऐसे तुम्ह में आकर नमस्कार करता हूँ, मुझे भी भगवान् ! इच्छित हीको उपदेश कर ॥८२॥”

(भगवान्) — “जिसे धास्यको तू जानी, अकिंचन (=परिग्रह रहित), काम भयमें असक्त जानै । अवश्य हो वह इस भय-पागरको पार हो गया है, पार हो वह सत्ये निरपक्ष है ॥८३॥ जो जर कहा विद्वान्=पदगु सर अभयमें संस्रको छोड़कर विचरता है, वह कृणा रहित, राग आदि रहित, आशा रहित है । ‘वह जन्म जरा पार हो गया’—कहता हूँ ॥८४॥”

घोतक माणत्र पुच्छा ॥ ५ ॥

(घोतक) — “हे भगवान् ! तुम्हें यह पूजना हूँ, महर्षि । तुम्हारा वज्र (सुनता) चाहता हूँ । तुम्हारे निर्घोष (=वधन) को सुनकर अपने निर्माण (=सुक्ति)को सीखूंगा ॥८५॥”

(भगवान्)—“तो तत्पर हो, पंडित (हो), स्मृति-मान् हो, यहांसे घबरा तुम अपने निराणको सीखो ॥ ८६ ॥”

(घोतक)—“ मैं (तुम्ह) दब-भुग्न लोकमें अ-किंचन (= निर्लभ) विहरनेवाला प्राण देरता हूँ । हे समन्त-चक्षु (= चारों ओर आसवाले) ! ऐसे तुम्हें नमस्कार करता हूँ । हे शक ! मुझे कथकथा (वाद-विवाद) से छुड़ाओ ॥ ८७ ॥

(भगवान्)—“ हे घोतक ! लोकमें मैं किसी कथकथीको छुड़ाने नहीं जाऊंगा । इस प्रकार छेष्ट धर्मको जानकर, तुम इस ओघ (= भवसागर) को तर जाओगे ॥ ८८ ॥

(घोतक)—“ हे प्रह ! करणा कर, विवेक धर्मको मुझे उपदेश करो । जिसे मैं जानूँ । त्रिपदे अनुसार ‘न लिप्त हो, यहाँ शांत, अ-यद्ध हो विचरण कर’ ॥ ८९ ॥”

(भगवान्)—“ घोतक ! इसी शरीरमें प्रत्यक्ष धर्मको बतलाता हूँ, जिसको जानकर, स्मरण कर, आचरणकर, तू लोकमें अशांतिसे तर जायेगा ॥ ९० ॥”

(घोतक)—“ हे महर्षि ! मैं उस उत्तम धर्मका अभिनन्दन करता हूँ, जिसको जानकर, स्मरण कर, आचरणकर लोकमें अशांति को तर जाये ॥ ९१ ॥”

“जो कुछ ऊपर, नीचे, आड़े, या बीचमें, जाता है, लोकमें इसे ‘संग है’ समझकर, भय भवमें तृणा मत करो ॥ ९२ ॥”

उपसीव माणव पुच्छा ॥ १ ॥

(उपसीव)—“ हे शक ! मैं अकेले महान् ओघ (= संसारप्रवाह) को निराश्रित हो तानेको हिम्मत नहीं रखता । हे समन्त चक्षु ! आलम्ब बतलाओ, जिसका आश्रयले मैं इस ओघको तर्क ॥ ९३ ॥”

(भगवान्)—“ आकिंचन्य (= कुछ नहीं) को देख, स्मृतिमान् हो, ‘(कुछ नहीं है) का आलम्बनकर ओघको पार करो । कामोंको छोड़, कथाओं से विरत हो, रात दिन तृणा क्षयको देखो ॥ ९४ ॥”

(उपसीव)—“ जो सब कामों (= भोगों) में विरागी, और (सब) छोड़, ‘कुछ नहीं’ (= आकिंचन्य) को अवलम्बन किये, (सात) परम संज्ञा विमोक्षोंमें विमुक्त (रहे), वह वहाँ (= आकिंचन्य) अचल हो ठहरेगा न ?” ॥ ९५ ॥

(भगवान्)—“ जो सब कामोंमें विरागी, वह वहाँ अचल हो ठहरता है ॥ ९६ ॥”

(उपसीव)—“ हे समन्त चक्षु ! यदि वह वहाँ अचल (= अन अनुयायी) हो बहुत व्योतक ठहरता है, (तो) क्या वह वहाँ मुक्त = शीतल हो ठहरता है, या वहाँसे उमका विज्ञान (= जीव) च्युत होता है ? ॥ ९७ ॥

(भगवान्)—“ वायुके वेगसे क्षिप्त आँचि (= लौ) जैसे अस्त होजाती है (और इस दिशामें गई आदि) व्यवहारको प्राप्त नहीं होती । इसी प्रकार मुनि तम-कायसे मुक्त हो अस्त हो जाता है, व्यवहारको प्राप्त नहीं होता ॥ ९८ ॥”

- (उपसीव) — “यह अस्तंगत है, या नहीं है, या यह हमेशाके लिये अरोग है ? हे मुनि ! हमें सुते अच्छी प्रकार यत्नाओ, क्योंकि आपको यह धर्म विदित है ॥१९॥”
- (भगवान्) — “अस्तंगत (=निर्वाण प्राप्तके रूप आदि)का प्रमाण नहीं है, जिससे इसे कहा जाये, । सभी धर्माके नष्ट हो जानेपर, कथन मार्गसे भी सत्र (धर्म) नष्ट होगये ॥१००॥

नन्द-माण्ड पुच्छा ॥७॥

- (नन्द) — “लोग ‘लोकमें मुनि है’ कहते हैं, सो यह कैसे ? उत्पन्न ज्ञाको मुनि कहते हैं, या (=कठिन तपयुक्त) जीवनमें युक्तों ? ॥१०१॥”
- (भगवान्) — “न दृष्टि (=मत्त)से, न श्रुतिसे, न ज्ञानसे, नन्द ! कुशल (=पंडित) जन (किमीको) ‘मुनि’ कहते हैं, जो विषया मानकर लोभ रहित, आशा रहित हो विचरते हैं, उन्हें मैं मुनि कहता हूँ ॥१०२॥”
- (नन्द) — “कोई श्रमण ब्राह्मण इष्ट (=मत्त) या श्रुत (=गिण)में शुद्धि कहते हैं, शील और व्रतसे भी शुद्धि कहते हैं, अनेक रूपसे शुद्धि कहते हैं । हे मार्प ! भगवान् ! वसा आचरण करते, क्या यह जन्म जरासे तर गये होते हैं ? भगवान् ! तुम्हें पूछता हूँ, इसे सुते बतलाओ ॥१०३॥”
- (भगवान्) — “जो कोई श्रमण ब्राह्मण । ‘यह जन्म जरासे नहीं तरे’, कहता हूँ ॥१०४॥”
- (नन्द) — “जो कोई श्रमण ब्राह्मण अनेक रूपसे शुद्धि कहते हैं । यदि मुनि ! (उन्हें) ओषसे अ तीर्ण (=न पार हुआ) कहते हैं, तो द्व-मनुष्य लोकमें कौन जन्म जराको पार हुआ ? — हे मार्प ! भगवान्, तुम्हें पूछता हूँ, इसे सुते बतलाओ ॥१०४, १०५॥”
- (भगवान्) — “मैं सभी श्रमण ब्राह्मणोंको जन्म जरासे निवृत्त नहीं कहता । जो कि इष्ट, श्रुत, स्मृत, शील, व्रत सत्र छोड़, सभी अनेक रूप छोड़, तृष्णाको त्याग अनासन्न (=राग आदि रहित) हैं, मैं उन नरोको ‘ओष पार’ कहता हूँ ॥१०६॥”
- (नन्द) — “हे गौतम ! महर्षिके उपधि रहित, सुभाषित इन वचनोंका मैं अभिनन्दन करता हूँ ; जो कि इष्ट, श्रुत, स्मृत, शील, व्रत सत्र छोड़, सभी अनेक रूप छोड़, तृष्णाको त्याग अनासन्न है, मैं भी उन्हें ओष तीर्ण (=भवसागर पार) कहता हूँ ॥१०७॥”

हेमक माण्ड-पुच्छा ॥८॥

- (हेमक) — “पहिलेने जो सुते गौतम उपदेशमें प्रयत्न बतलाया — ‘एसा या,’ ‘पेसा होगा,’ यह सब ‘पेसा एसा (=इतिह इतिह)’ है, यह सत्र तर्क बचानेवाला है ॥१०८॥ हे मुनि ! मेरा मन उनमें नहीं रमा, हे मुनि ! तुम तृष्णा विनाशक धर्म सुते बतलाओ, निम्नको जानकर, स्मरणकर, आचरण कर, लोकमें तृष्णाको पार होऊँ ॥१०९॥”
- (भगवान्) — “हे हेमक ! यहा इष्ट, श्रुत, स्मृत और विज्ञातम छन्द = रागाका हवना (हो) अच्युत निवाण पद है ॥११०॥ इसे जान, स्मरणकर इसी जन्मम निराग प्राप्त, उपसात होते हैं, और लोकमें तृष्णाको पार होगये होते हैं ॥१११॥”

तोदेय्य माणव पुच्छा ॥६॥

(तोदेय) — “जिममें काम नहीं चमते, जिमको तृणा नहीं है, वाद-विवादसे जो पार होगा, उमना विमोक्ष, कैसा होता है ? ॥११०॥

(भगवान्) — “जिममें काम नहीं, उसका विमोक्ष नहीं ॥११३॥”

(तोदेय) — “यह आद्यासन सहित है या आद्यासन-रहित ? प्रनावान् है, या प्रजा (वान्) या है ? हे मुनि ! शक्र ! समन्त चक्षु ! जमे में इसे जान सकूँ वेसे बतलावें ॥११४॥”

(भगवान्) — “वह आद्याम रहित है, आद्याम सहित नहीं, वह प्रनावान् है, प्रजा (वान्) मा नहीं । हे तोदेय ! जो काम भव (= कामना और ससार) में अ-सक्त, ऐसे मुक्ति अ-किंचित जानो ॥११५॥”

कप्प माणव-पुच्छा ॥१०॥

(कप्प) — “बड़ी भयानक बारमें सरोवरके बीचमें पड़े, मुझे तुम द्वीप (= शरण-स्थान) बतलाओ, जिसमें यह (ससार दुःख) फिर न हो ॥११६॥”

(भगवान्) — “हे कप्प ! बड़ी भयानक । तुझे द्वीप बतलाता हूँ ॥११७॥

अ-किंचन = अन्-आदान (= न ग्रहण करना), यह सर्वोत्तम द्वीप है ।

इसे मैं जरा मृत्यु विनाश (रूप) निराण कहता हूँ ॥११८॥

यह जानकर, स्मरणरर इसी जन्मम जो निवाण प्राप्त हो गये,

यह मारके वशमें नहीं होते, न वह मारके अनुचर (होते हैं) ॥११९॥”

जतुकण्णि-माणव-पुच्छा ॥११॥

(जतुकण्णि) — “भवसागर पारगत, कामना रहित (तुम्हें) सुनकर मैं अकाम (= निर्वाण) पृथ्वीको आया हूँ, हे सहज नेत्र ! मुझे शान्तिपद् बतलाओ । हे भगवान् ! ठंके इतने मुझे कहो ॥१२०॥ भगवान् कामोको तिस्कार कर, सूर्य की तरह तेनसे तेनको (तिस्कार कर) तुम प्रथिगीपर विहरतेहो । हे महा प्रज्ञ ! मुझ अल्प प्रज्ञको बतलाओ, जिमको मैं जानू, और यहाँ जन्म, जरा का विनाश (कहें) ॥१२१॥”

(भगवान्) — “कामोमें लोभको हटा, ने काम्य (= निःकामना) को क्षेत्र समझ, यह कुछ भी मुझे ग्राह्य या त्याग्य न रहजाये ॥१२२॥ जो पहिले का है, उसे सुनारे, पाठे इतना मत (पैदा) हो ; मध्यमें भी यदि ग्रहण न करे, तो वह उपशान्त हो विचरेगा ॥१२३॥ हे ग्राह्य ! (जो) नाम रूपमें सर्वथा लोभ रहित है, (उसे) आसव (= वित्त मन) नहीं होते, जिनके कारण कि वह मृत्युके वशमें जाये ॥१२४॥”

भद्रावुध (= भद्रायुध) माणव पुच्छा ॥ १२ ॥

(भद्रायुध) — “ओघ-त्यागी, तृणा-छेदी, इच्छा रहित = नन्दी-रहित, ओघ पारगत, विमुक्त कल्प-त्यागी ! (आप) सुमेघ (को) याचना करता हूँ, नागसे (उसे) सुनकर (हम) यहाँसे जायेंगे ॥१२३॥ हे वीर ! तुम्हारे वचन (के सुनने) की इच्छासे हम नाना ज (नाना) देशोंसे इकट्ठे हुये हैं । उन्हें तुम अच्छी प्रकार व्याख्यान करो, क्योंकि तुम यह धर्म विदित है ॥ १२४ ॥

(भगवान्)—“ऊपर, नीचे, तिर्यक्, और म-यम सारी संग्रह करनेकी कृष्णाको छोड़ दो । लोकमें जो संग्रह करना है, उसीमें मार जतुआका पीछा करता है ॥ १२५ ॥ संग्रह करने वालोंको ‘मृत्युके हाथमें वैसी प्रजा’ समझ, सारे लोकमें कुछ भी संग्रह न करे ॥ १२६ ॥”

उदय माणव पुच्छा ॥ १३ ॥

(उदय)—“ध्यानी, धिरज (= विमल), कृत कृत्य, अनाद्य, सर्व धर्म पारगत, (आप)के पास प्रदनेकर आया हूँ, प्रज्ञासे अधिष्ठाको विनाश करनेवाले । प्रजा विमोक्षको धत-लाओ ॥ १२७ ॥”

(भगवान्)—“कामोंमें छन्द (= राग) और त्रैमस्यका, प्रहाण (= विनाश) इत्यान (= चित्त आलस्य)का हटावा, कौटुकका निगारण, उपेक्षा-स्मृति परिशुद्ध, तर्जपूर्वक धर्मको व्याज्ञा विमोक्ष कहता हूँ ॥ १२८, १२९ ॥”

(उदय)—“लोकमें सयोजन (= बंधन) क्या है, उसी विचारणा क्या है ? कौनसे (धर्म)के प्रहाणसे निर्वाण है ? ॥ १३० ॥”

(भगवान्)—“लोकमें कृष्णा सयोजन है, वितर्क उसी विचारणा है । कृष्णाका विनाश ‘निर्वाण’ कहा जाता है ॥ १३१ ॥”

(उदय)—“वैसे (क्या) स्मरणकर विचरते विज्ञान निरुद्ध होता है, यह भगवान्को पूछने आये हूँ, सो (हम) आपके ध्यानको सुन ॥ १३१ ॥”

(भगवान्)—“भीतर और बाहरकी जेदना-योजन न अभिनन्दनकर, ऐसा स्मरणकर विचरते इस सुसुखका विज्ञान निरुद्ध होता है ॥ १३२ ॥”

पोसास माणव-पुच्छा ॥ १४ ॥

(पोसास)—“जो अतीतको कहता है, (जो) अद्य, संशय रहित सर्व धर्म पारगत है, (उमके पास) प्रदनेकर मैं आया हूँ । रूप मन्वा विगतहुये, सबे कामोंको छोड़नेवाले, ‘भीतर और बाहर कुछ नहीं’ ऐसा देखनेवाले ज्ञानको, हे शक्र ! पूछता हूँ । उस प्रकाशका (पुरुष) कैसे लेजाने लायक (= नेय) है ॥ १३२, १३३ ॥”

(भगवान्)—“सारी विज्ञान स्थितियोंको जानने हुये, छड़े हुये, विमुक्त, तथागत, इमे तम परायण जानते हैं । ‘अ किञ्चन्य-जनकका उत्पादक (अरूपराग) यदि सयोजन है’—ऐसा इसे जानकर तन पड़ा देखता है । उस धिर अभ्यास शील भ्रातृजका यह ज्ञान सध्य (= सत्य) है ॥ १३३, १३४ ॥”

मोघराज माणव पुच्छा ॥ १५ ॥

(मोघराज)—“मैंने दो बार शक्रको प्रदने पूछे, पा-तु चपु-आनूने मुझे व्याख्यान नहीं किया ।

मैंने सुना है, देव अपि (= बुद्ध) तीव्रही धारणक ध्याकरण (= उत्तर) करते हैं ॥ १३५ ॥ यह लोक, पालोक, देवो सहित ब्रह्मलोक, हम यशस्वी गौतमकी दृष्टि (= मत) नहीं जान सकता ॥ १३६ ॥ ऐसे अप्रदक्षकि पास प्रदने साथ आया हूँ, वैसे एवको देवने बाधको मृत्यु राज नहीं देखता ॥ १३७ ॥

(भगवान्)—“मोघराज ! सदा स्मृति रखते, लोकको शून्य समझकर देखो । इस प्रकार आत्माकी दृष्टिको छोड़(ने वाला) मृत्युसे तर जाता है । लोकको ऐसे देखने हुयेकी ओर मृत्यु राज नहीं ताकता ॥ १३८ ॥”

पिंगिय-माणव-पुच्छ ॥ १६ ॥

(पिंगिय)—“मै जीर्ण, अ-बल, विरूप हूँ । (मेरे) नेत्र शुद्ध नहीं, श्रोत्र ठीक नहीं । मैं मोहमें पड़ा घोरचर्म ही न नाश होजाऊँ (इस लिये) धर्मको बतलाओ, जिससे मैं यहां जन्म-जराके विनाशको जानूँ ॥ १३९ ॥”

(भगवान्)—“रूपोमें (प्राणियोंको) मारे जाते देख, प्रसन्नजन पीड़ित होते हैं । इसलिये पिंगिय ! तू संसारमें न जन्मनेके लिये रूपको छोड़ ॥ १४० ॥”

(पिंगिय)—“चार दिशायेँ, तुम्ह अदृष्ट, अश्रुत, या अस्मृत नहीं, और हाकमें कुल भा तुम्ह अविज्ञात नहीं है । धर्मको बतलाओ, जिससे मैं जन्म जराके विनाशको जानूँ ॥ १४१ ॥”

(भगवान्)—“तृष्णा-लिस मनुजोंको संतप्त, जरा-पीड़ित, देखते हुये, हे पिंगिय ! तू प्रसन्न हो अ-पुनर्मरणके लिये तृष्णाको छोड़ ॥ १४२ ॥”

मगधमें पापाणक चैत्यमें विहार करते भगवान्ने यह कहा । यह पार लज्जानेवाले (= पारंगमनीय) धर्म है, इस लिये इस धर्म पर्यायका नाम ‘पारायण’ है ।

+

+

+

+

सुनक-सुत्त । दोण-सुत्त । सहस्रांभक्खुनी-सुत्त । सुन्दरिका-भारद्वाज-सुत्त ।
अत्तदीप-सुत्त । उदान-सुत्त । मल्लिका-सुत्त । (वि. पू. ४४५-४३) ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ पिंडकके आराम जेतवनमें
बेहरा करते थे ।

“ भिक्षुओ ! यह पाच पुराण ब्राह्मण धर्म इस समय कुत्तोंमें दिखाई देते हैं । कौनसे
पहिले भिक्षुओ ! ब्राह्मण ब्राह्मणोंके पास जाते थे, अ ब्राह्मणोंके पास नहीं । भिक्षुओ !
स समय ब्राह्मण ब्राह्मणोंके पास भी जाते हैं, अ ब्राह्मणोंके पास भी । (स्त्रि)
भिक्षुओ ! कुत्ते कुत्तियोंके ही पाम जाते हैं, अ-कुत्तियोंके पाम नहीं । यह भिक्षुओ ! प्रथम पुराण
ब्राह्मण धर्म हैं, जो इस समय कुत्तोंमें दिखाई देता है ।

“ पहिले भिक्षुओ ! ब्राह्मण ऋतुमती ब्राह्मणोंके पासही जाते थे, अ ऋतु मतीके पाम
हैं । आजकल अ ऋतुमतीके पाम भी । ० ।

“ पहिले भिक्षुओ ! ब्राह्मण ब्राह्मणोंकी न खराबते थे, न बचते थे, परस्पर प्रेमके साथ
सहवास करते थे । आजकल ब्राह्मण, ब्राह्मणोंको गरीबते भी हैं, बचने भी हैं, परस्पर
मके साथ भी अ-प्रेमके साथ भी । ० ।

“ पहिले ब्राह्मण, सन्निधि—धनका, धान्यका, चांदी—सोने(=रत्न जातरूप)का
पट नहीं करते थे । इस समय संग्रह करते हैं । ० ।

“ पहिले भिक्षुओ ! ब्राह्मण सायकालके भोजनके लिये साय, प्रातःकालके भोजनके
लिये प्रातः, सोज करते थे । इस समय भिक्षुओ ! ब्राह्मण हृष्टामर, परभर व्या, बाकी
घर) ले जाते हैं । इस समय भिक्षुओ ! कुत्ते संध्याकी संध्याके भोजनके लिये । यह
भिक्षुओ ! पाचरा पुराण ब्राह्मण धर्म इस समय कुत्तोंमें दिखाई देता है, ब्राह्मणोंमें नहीं ।
भिक्षुओ ! यह पाच पुराण ब्राह्मण धर्म इस समय कुत्तोंमें दिखाई देते हैं ।

दोण सुत्त ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें जेतवनमें बिहार करने थे ।
तत्र दोण ब्राह्मण जहा भगवान् थे, वहा गया । जाकर भगवान्के साथ (कुदाल
पर) एक ओर घंटकर, भगवान्को बोला—

“ हे गौतम ! मैंने सुना है—अमण गौतम जीर्ण=पृष्ठ=महल्लक=अध्वगत=वय -
स ब्राह्मणोंको १ अमिवादन करता, न प्रत्युत्थान करता, न आसनसे निर्मग्नित करता है ।
२ गौतम ! क्या (यह) ठीक है ? आप गौतम ० ब्राह्मणोंको अमिवादन नहीं करते ? ।
३ गौतम ! यह ठीक नहीं है । ”

१ सत्ताईसवां वर्षावाम श्रावस्ती (जेतवन) में । २ अ नि ०-४४१ । ३ अ नि
१४ ५ २ ।

“तू भी द्रोण ! ब्राह्मण होनेका दावा करता है ?”

हे गौतम । ब्राह्मण (यह है जो) दोनों ओरसे सुजात—मातासे भी विशुद्ध^१, विनामह मातामहकी सात पीढ़ियों तक जातिसे अ-पतित, अनिन्दित हो । अध्यायी, न्न (=यन्) घर^२ तीनों वेदाका पारंगत^३ । सो यह ठीक बोलो हुये, मुझे हो (ब्राह्मण) प्रोगेगा । हे गौतम ! मैं ब्राह्मण हूँ, दोनों ओरसे सुजात^४ । ”

“द्रोण । जो तेरे पूर्वज ऋषि, मंत्रोक्त कर्ता, मणोंके प्रपन्ना (धे), भिन्न पुत्रों मंत्रपदको इस समय ब्राह्मण गीतके अनुसार गा गये हैं, प्रोक्तक अनुसार प्रवचन करते हैं भाषितक अनुसार भाषण करते हैं; राजाध्यायिनके अनुसार स्वाध्याय करते हैं, वास्तिके अनुसार वाचा करते हैं; जैसे कि—अष्टक, चामर, चामरोंय, त्रिधामिग्र, यमन्गि, यगिर, भरद्वाज, वशिष्ठ, कश्यप, शृगु, उन्होंने पात्र तरहके ब्राह्मण बतलाये हैं—(१) ब्रह्म सम, (२) अथ सम (३) मयाद, (४) संमित्र-मया, (५) पात्रया ब्राह्मण चाण्डाल । उनमें द्रोण ! तू चौथा ब्राह्मण है ?”

‘ हे गौतम ! हम इन पांच ब्राह्मणोंको नष्ट जानते, तब ‘हम ब्राह्मण हैं’ यह बोलते । अच्छा हो ! आप गौतम मुझे ऐसा धर्म उपदेश करें, जिसमें मैं इन पांच ब्राह्मणोंको जानूँ ।’

“तौ ब्राह्मण ! सुनो, और अच्छी तरह धारण करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा भो ।”

“जैसे द्रोण ! ब्राह्मण ब्रह्म सम होता है । यहा द्रोण ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है^१ जातिवादमें० अनिन्दित । यह अड़तालीस (वर्ष) तक मंत्रोंको पढ़ते कौमार ब्रह्मचर्य धारण करता है । अड़तालीस वर्ष तक कौमार ब्रह्मचर्य धारणकर मंत्रोंको पढ़कर आचार्य^२ लिये आचार्य धन खोजता है, धर्मसे ही, अधर्मसे नहीं । द्रोण । धर्म क्या है ? कृपिते नहीं, वाणिज्यसे नहीं, गोरक्षासे नहीं, ह्यु अर्पमे नहीं, राज पुरुषता (=सर्कोत मोररी) से नहीं, किसी एक शिल्पसे नहीं, कपालको न अधिक मानते हुये केवल भिक्षाग्रहीते । यह आचार्यको आचार्य-धन (=गुरुदक्षिणा) देकर, पेश दमधु मुँड़ा, कापाय वक् धारणकर, घरमें घेघर हो प्रव्रजित होता है । यह इस प्रकार प्रव्रजित हो (१) मेरी-युक्त चित्तसे एक दिशाको आश्लावितकर विचरता है, तथा दूसरी^३, तीसरी^४, चौथी^५ । इसी प्रकार ऊपर, नीचे, तिर्यग् सत्र बुद्धिसे सार्थ, सभी लोकको मैत्री-युक्त विपुल =महदत्त =अ प्रमाण, अग्रे, अ लोभी चित्तसे श्रावितकर, विहरता है । (२) करुणा युक्त चित्तसे एक दिशा^६ । (३) मुदिता युक्त चित्तसे^७ (४) उपेक्षा-युक्त चित्तसे^८ अलोभी चित्तसे^९ विहरता है । यह इन चार ब्रह्म त्रिहारीसी भावनाकर, काया छोड़, मलनेके बाद सुगति ब्रह्मनेकमे उत्पन्न होता है । इस प्रकार द्रोण । ब्राह्मण ब्रह्म-सम होता है ।

“और द्रोण ! कैसे ब्राह्मण देव सम होता है । द्रोण । ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है^१ । यह अड़तालीस वर्ष कौमार ब्रह्मचर्य पालन करता है । अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य पालनकर मंत्रोंको पढ़^२, आचार्य धन खोजता है^३ । आचार्यको आचार्य धन देकर,

१ देखो पृष्ठ २२३ । २ पृष्ठ २०८ ।

स्त्री भार्या (=दारा) योजता है, धर्मसे अधर्मसे नहीं । द्रोण ! क्या धर्म है ? न त्यजे न विप्रत्यजे, (केवल) जलस्थित दत्त ब्राह्मणी ही को योजता है । वह ब्राह्मणीहीके पास जाता है, न क्षत्रियाणीके पास, न यक्ष्याणीके पास, न शूद्राणीके पास, न चाजलिगेर पास, न निषादिणीके पास, न वेगश्रीक पास, न स्थ करिणीके पास, न पुत्रमीने पास जाता है । न गर्भिणीके पास०, न (दूध) पिलानेवाली०, न अन्न-ऋतुमती० । द्रोण ! ब्राह्मण गर्भिणीके पास क्यों नहीं जाता ? पित्रानेवालीके पास क्यों नहीं जाता ? यदि द्रोण ! ब्राह्मण गर्भिणीके पास जाये तो (पेड़ा होनेवाला) माणवरु, या माणविका, अति-मेहज (=अति शुक्रमे उत्पन्न, होता है । इसलिये द्रोण ! ब्राह्मण गर्भिणीके पास नहीं जाता । द्रोण ! ब्राह्मण पिलानेवालीके पास क्यों नहीं जाता ? यदि द्रोण ! ब्राह्मण० जाये, तो माणवरु या माणविका अशुचि प्रति पीत नामक होता है० । अन्न-ऋतुमतीके पास क्यों नहीं जाता ? ब्राह्मण ऋतुमतीके पास जाता, तो वह ब्राह्मणी उसके लिये न कामाय, न दत्त-अर्थ (=मद अध), न रति अर्थ, बल्कि प्रजापति ही होती है । वह मिथुना (=पुत्र या पुत्री) उत्पन्न कर, कदा कमल मुद्रा० प्रवर्तित होता है । वह इस प्रकार प्रवर्तित हो० प्रथम-या०, अन्तिम ध्यान०, मृतीय ध्यान०, चतुर्थ ध्यानको प्राप्तहो विहरता है । वह इन चारों ध्यानकी भावना करके, शरीर छोड़, मरनेके बाद, सुगति स्वर्गलोकध उत्पन्न होता है । इस प्रकार द्रोण । ब्राह्मण देव मम होता है ।

“कैसे द्रोण । ब्राह्मण मयाद होता है ? द्रोण ! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है० । अष्टतालीस वर्ष कोमार ब्रह्मचर्य पालन कर, मंत्रोंको पढ़०, आचार्यको आचार्य धन देकर, भार्या योजता है, धर्मसे ही अधर्मसे नहीं । ब्राह्मणीके पासही जाता है० । वह मिथुन उत्पन्नकर, उसी पुत्र-आनन्दकी इच्छासे बुद्धिमत्तमें बस रहता है, प्रवर्जित नहीं होता । नितनी पुराने ब्राह्मणोंकी मयाग है, वहाही ठहरा रहता है, (उसको) अतिक्रमण नहीं करता, इसी लिये (वह) ब्राह्मण मयाद कहा जाता है ।

“कैसे द्रोण । ब्राह्मण संभिन्न-मयाद होता है ? ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है० । अष्टतालीस वर्ष कोमार ब्रह्मचर्य पालन करता है० । आचार्य धन देकर माया खोजता है० । धर्मसे भी अधर्मसे भी, ऋषिसे भी विप्रत्यजे भी । वह ब्राह्मणीके पास भी जाता है०, क्षत्रियाणीके पास भी जाता है । अन्न-ऋतुमतीके पास भी जाता है । उनकी ब्राह्मणी कामार्थ भी होती है, क्रीडार्थ (=द्वयार्थ) भी० । पुराने ब्राह्मणोंकी नितनी मयाग है, वह उनमें नहीं ठहरता, उसको अतिक्रमण करता है, इसलिये (वह) ब्राह्मण संभिन्न मयाद कहा जाता है० ।

“कैसे द्रोण । ब्राह्मण ब्राह्मण चाडा होता है ? यहाँ द्रोण । ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है० । अष्टतालीस वर्ष कोमार ब्रह्मचर्य पालन करता है० । आचार्य धन खोजता है, धर्मसे भी अधर्मसे भी, ऋषिसे भी, विप्रत्यजे भी०, किसी एक शिल्पसे भी, केवल भिक्षासे भी । आचार्य धन देकर, माया खोजता है, धर्मसे भी अधर्मसे भी० । वह ब्राह्मणोंके पास

भी जाता है० । अनु-ऋतुमती के पास भी० । उनकी ब्राह्मणी कामार्थ भी होती है० वह सा कामोसे जीविका करता है । उसको जब ब्राह्मण ऐसा पूछते हैं—‘आप ब्राह्मण होने का दावा करते, सब कामोसे जीविका क्यों करते हैं ?’ वह ऐसा उत्तर देता है—‘जैसे याग पुत्रि को भी जगती है, अशुचिको भी जलाती है, और आग उससे लिस नहीं होती । ऐसेही सा । ब्राह्मण सब कामोसे जीविका करता है, और उससे लिस नहीं होता’ । द्रोण । वृक्ष सब कामोसे जीविका करता है, इसलिये (वह) ब्राह्मण ब्राह्मण चांडाल कहा जाता है । इसप्रकार द्रोण ! ब्राह्मण ब्राह्मण चांडाल होता है । द्रोण ! ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि० ऋतुः शुभ्र, पट पाच ब्राह्मण वर्णन करते हैं—महा-मम० पाचवा ब्राह्मण चांडाल । उनमें द्रोण ! तू कौन है ? ”

“ ऐसा होनेपर हे गौतम ! हम ब्राह्मण चांडाल भी न उतरेंगे । आश्चर्य ! हे गौतम ! आजमे आप गौतम मुझे अंजलिपूज्य शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

सहस्स-मिक्खुनी सुत्त ।

१ प्रमा भने सुता—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें २ राजकाराममें विहार करत थे ।

१ स नि ५४ २ २ ।

२ अ क “ राजकाराम = राजाका बनवाया आराम । किम राजाका ? प्रसेविवि कोसलका । प्रथम मोघि (बुद्धत्व से २० वर्ष तक) में शास्ताको उत्तम लाभ यश प्राप्त हो तैरिक्कोने सोचा—‘ श्रमण गौतम उत्तम लाभ यश प्राप्त है, वह किसी दूसरे शीछ, समर्थि कारण उमे ऐसा लाभ अग्र प्राप्त नहीं है । उसने भूमिका सोस पकड़ा है । यदि हमभी जेत-वन पास आराम बनवा सकें, तो लाभ यश-अग्र प्राप्त होंगे ।

वह अपने अपने सेवकोंको प्रेरणाक, सौहृदार मात्र कार्यापण प्राप्तकर, उन्हें राजाके पास गये । राजाने पूछा—“ यह क्या है ? ” “ हम जेत वनके पासम तैरिक्काराम बनाते हैं, यदि श्रमण गौतम या श्रमण गौतमके शिष्य आकर निवारण करें, तो मत निवारण करने दें ”—(कह) धूस (= लंबा) दिया । राजाने रिधतले—“ जाओ बनारामो ” कहा । उड़ोने जाकर अपने सेवकोंसे सामान ले खम्मा खड़ा करना आदि करते समय, ऊँच हस्त से एक कोलाहल किया ।

शास्ता (= बुद्ध) ने गन्धकुटीसे निकलकर, प्रमुख (= देहली) पर खड़े हो, पूजा—“ आनन्द यह कौन ऊँचाशब्द = महाशब्द (= कर रहे) है, जैसेकि केवट मउली मा रहे हैं । ”

“ भन्ते ! तैरिक्क जेतवनके समीपमें तैरिक्काराम बना रहे है । ”

“ आनन्द ! यह शासनके विरोधी, मिश्रमधके प्रतिमूल विहारसे विहरने । राजाके कहकर रक्कासो । ”

स्यविर मिश्र-संघके साथ जाकर राज-द्वारपर खड़े हुये । (लोगोंने) राजाको जानकर कहा—“ देव ! स्यविर आये है । ” राजा रिधत लेनेके कारण बाहर न निकला । स्यविर

तब एक हजार भिक्षुणियोंका मध, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आकर, भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर गया हुआ । एक ओर खड़ी भिक्षुणियोंको भगवान्‌ने यह कहा—

“ भिक्षुणियो ! चार धर्मोंसे युक्त हो आर्य धारक स्रोत आपन्न = न मिलने लायक स्थिर सेवोधिकी ओर जाने वाला—होता है । किन चारसे ? आर्य धारक उद्धम अत्यन्त प्रसन्न हो—पमे वह भगवान् अहम् सम्यक् संतुष्ट० । धर्मो० । संप्रमो० । अलंङ्को कमनीय आयशीलोमे युक्त हो । भिक्षुणियो ! इन चार धर्मोंसे युक्त हो आर्य धारक स्रोत आपन्न० होता है ।

सुन्दरिका भारद्वाज-सुत्त ।

प्रेमा मने सुना—एक समय भगवान् कोसल्य सुन्दरिका नदीके तीर विहार करते थे ।

उस समय सुन्दरिका भारद्वाज ब्राह्मण सुन्दरिका नदीके तीर अभिहवा करता था = अभि परिचरण करता था । तब सुन्दरिका भारद्वाज ब्राह्मणने अभिमे एतन्तर अभिहोत्र परिचरण कर आसनने उठकर ‘चारो दिशाओंकी ओर देखा—“कोन इस हव्य नेपको भोजन करै ।’ सुन्दरिका भारद्वाज ब्राह्मणने एक वृक्षके नीचे शिर ढँककर २१ हुये भगवान्‌को देखा । देखकर बायें हाथसे हव्य नेप, और दाहिने हाथसे कमंडल ले जहाँ भगवान् थे, बना गया । तब भगवान्‌ने सुन्दरिका भारद्वाज०के पद शस्त्रसे शिर उवाड़ दिया । तब सुन्दरिका भारद्वाजने—‘यह मुझके है । यह मुझके है ॥’—(कह) फिर वहाँ से लौटना चाहा । तब सुन्दरिका भारद्वाज० को हुआ—‘मुझके भी कोई कोई ब्राह्मण होते हैं, क्या न मेरे इसके पास जा जाति पहुँचें ।’ तब सुन्दरिका भारद्वाज पास जाकर भगवान्‌को यह बोला—

(भारद्वाज)—“आप कौन जाति हैं ?”

जाकर शास्ताको कह सुनाया । शास्ताने सारिपुत्र, मौत्तियायनको भेजा । राजाने उन्हें भी दर्शन न दिया ।

दूसरे दिन (भगवान्) स्वयं भिक्षु-संघके साथ जा राजनद्वारपर खड़े हुये । राजाने ‘शास्ता आये हैं’ सुन, निकलकर धर्म ले जा आसनपर बैठा, बवागू गया (= जाउर, तम्मई) दिया । शास्ताने भोजनकर, आका धेंगे राजाको, ‘तुने महाराज ! प्रेमा किया’ न कहकर ‘‘अतीत (घटना) फही

“ मने सुना है, कपिवीर फूट डालकर, वह धैर्यशाली कुरु राजा राज्यके भाष उच्छिन्न हो गया ।”

इस प्रकार इस अतीत (कथा)को दर्शानेपर, राजाने अपने वामको समझ (आज्ञा दी)—‘ जाओ भजे ! तैयिकोको निकाक दो ।’ निकलकर सोचा—‘मेरा बनवाया (कोई) विहार नहीं है, उसी स्थानपर विहार बनवाऊँ ।’ (आर) उनके सामानको भी न लौटा, विहार बनवाया । ”

१ देखो पृष्ठ २५३ । २ सं नि ७ १ ९ । (कुत्र अन्तरमे सु विरात ३ ४)

(भगवान्)—“जाति मत पूउ, चरण (=आचरण) पूउ । काष्ठसे आग पैदा होती है । नीचे कुन्दा भी (पुरष) छति मान् जाकार, पाप रहित मुनि होता है ॥१॥ (जो) सत्य दान्त (=जितेन्द्रिय) =दमन-युक्त, वेद (=ज्ञा) के गन्तको पहुँचा (वेदन्तु), ब्रह्मचर्यममास किया है । उसे यज्ञमें प्राप्त (=यज्ञ उपनीत) कहो, वह कालसे दक्षिण (=दक्षिणामि, दान पात्र)में होम करता है ॥२॥”

(भारद्वाज)—“निश्चय, यह मेरा (यज्ञ) सुष्ट = ॥ हुत है, जो ऐसे वेद पारग (=वदगू) को मने देया । तुम्हारे ऐमेको न देखनेसे, दूसरा जा हव्य नेप खाने हैं । हे गोतम ! आप भोजन कर, आप ब्राह्मण है ॥३॥”

(भगवान्)—“मने इस (भोजन) के विषयमे गाया कहो दे, अत (यह) मेरे लिये अमान्य है, (पत्नी) नानने हुये ब्राह्मण । इसे (राजा) धर्म नहीं है, गाथासे गायेको बुद्ध लोग स्वागत है ।”

(भारद्वाज)—“क्षोणाक्षर (=मुक्त), विगत-स्येह मरुपि की अक्षसे पानसे सेवा करो । जेग्रमे रखनेसे पुण्याकाक्षोको (पुण्य), होता है ॥५॥ तो हे गोतम ! इस हव्य नेपको मैं किने दूँ ?”

(भगवान्)—“ब्राह्मण ! मे (किनेको) नहीं देखना, जो इस हव्य नेपको खा करके पचा कर, मित्राय तथागत या तथगत-श्रावकके । तो ब्राह्मण ! इस हव्य नेपको तृण रहित रथानपर छोट दे, या प्राणी रहित पानीमें डाल दे ।”

तब सुन्दरिक भारद्वाज ने उस हव्य नेपको प्राणी रहित पानीमें डाल दिया । तब पानीमें पेका यह हव्य नेप, चिद्-चिदात्ता था , जेसे कि दिनमें तरा छोटा, पानीमें डालनेमें चिद् चिदात्ता है , उभा देता है । तब सुन्दरिक भारद्वाज , संवेगको प्राप्त हो, रोमांचित हो, जहा भगवान् ये, कहा गया । जाकर एक ओर सड़ा हुआ । एक ओर लड़े सुन्दरिक भारद्वाज को भगवान्ने गायाम कहा—

‘ब्राह्मण ! लम्बी जन्मकर शुद्धि मत मानो, यह बाहरी (चीज) है । कुश (=पंडित) लोग उससे शुद्धि नहीं बतलाते, जो कि बाह्यसे (भीतरकी) शुद्धि है ॥६॥ ब्राह्मण मे दास दाह छोड़, भीतर ही जोति जगता हूँ । नित्य आगवाला, नित्य पकात वित्त वाला हों, मे ब्रह्मचर्य पालन करता हूँ ॥७॥ ब्राह्मण ! (यह) तेरा अभिमान क्षत्रियाका भार (=सारि-भार) है, क्रोध हुआ है, मिथ्या-भाषण भस्म है, जिह्वा खुवा है, और हव्य जोतिका स्थान है । आत्माके दमन करनेपर पुरषको जोति (प्राप्त) होती है ॥८॥ ब्राह्मण ! शील-तोर्थ (=घाट) वाला, संतजनोंसे प्रशंसित निर्मल धर्म-हृद (=सरोवर) है । निपमें कि वेदगू नहाकर बिना भोगे गात्रके पार उतरते हैं ॥९॥ ब्रह्म (=श्रेष्ठ) प्राप्ति सत्य, धर्म, सयम, ब्रह्मचर्यपर आश्रित है । सो तू (ऐसे) हवन समाप्त कियो (मुक्तो)को नमस्कार, उनको मे दम्प सारयो (=चातुक-सवार) कहता हूँ ॥१०॥

ऐसा कहनेपर सुन्दरिभारद्वाज ने भगवान्‌को यह कहा—“आश्चर्य ! हे गौतम ॥ प्रहृत ! हे गौतम ॥ ० ‘आयुष्मान् भारद्वाज अर्हसौम परं हुये ।

असदीप सुत्त ।

‘ऐसा भेने सुना—एक समय भगवान् आर्यस्त्रीमें जेतवनर्म विहार करते थे ।

“ भिक्षुओ ! आत्म द्वीप = आत्म शरण (=स्वात्तर्लंजी) धर्म द्वीप = धर्म शरण, अन्य शरणही विहार करो । आत्म द्वीप० अन्य शरण ही विहरावालोंको कारणके साथ रक्षा करना चाहिये—‘शोक = परिदय, दुःख = उपायास किम जातिके है, क्रियते उत्पन्न होते हैं ? । भिक्षुओ ! आर्योका अ दर्शी, आर्य धर्मम अ पंडित, आर्य धर्मम अ प्रविष्ट = मस्तुपर्योका अ दर्शी, सत्पुरुष धर्ममें अ-कोविद, सत्पुरुष धर्ममें अ प्रविष्ट (=अविनीत) =अशिक्षित, धृतजन रूपको आत्माके तोरपर या रूपान्को आत्मा, या आत्माम रूप, या रूपम आत्माको देखना है । उयका वह रूप निहित होता है, निगडता है । इसका वह रूप विपरिणत =अन्य ग होता है । । (तय) उते शोक, परिदय० उत्पन्न होते हैं । वेदनाको आत्माके तोरपर० । संताको० । सत्कारको० । विनाको० । भिक्षुओ ! रूपकी ही तो अनित्यता = विपरिणाम, विनाश, निरोधको जानकर, ‘पूर्वके और इस समयके सभी रूप अनित्य, दुःख, विपरिणाम धर्म (=निगडनेवाले) हैं । इसप्रकार इसे सीकरीर अन्धी तरह जानकर देखते हुये जो शोक परिदय० हैं, वह ग्रहीत होजाते हैं । उनसे प्रहाण (=विनाश) मे रासको नहीं प्राप्त होता । अ परित्रस्त हो वह सुप्तने विहरता है । सुख विहारी भिक्षु इस कारणसे मित्रत (=मुक्त) कहा जाता है । भिक्षुओ ! वेदनाकोही तो अनित्यता० । संताकी० संस्काराकी० । विनाकी० । ”

उदान सुत्त ।

‘ऐसा भेने सुना—एक समय भगवान् आर्यस्त्रीमें जेतवनर्म विहार करते थे ।

वहा भगवान् ने ‘उदान कहा—

“ न होता, तो सुप्ते न होता, न होगा तो सुप्ते न होगा—इससे मुक्त हो भिक्षु अवरमागीय संयोननाहा छेदन करता है । ” ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्‌को यह कहा—

“ कैसे भन्ते ! ‘ न होता तो सुप्ते न होता, न होगा तो सुप्ते न होगा ० ? ”

“ यहां भिक्षुओ ! ० ‘अशिक्षित धृतजन रूपको आत्माके तोरपर ० ।

१ देखो पृष्ठ २५४ ।

२ अट्टाईसवा वपायास भगवान्‌ने आवस्ती (=पूर्वार्द्धम)म विताया, तीसवा (जेतवनमें) ३ मं नि २१ ५ १ ।

४ मं नि २१ १ ३ ।

५ आनन्दोल्लासमें निकली वाक्यावली ।

६ देखो ऊपर ।

वेदनाको ० । संज्ञाको ० । संस्कारको ० । विज्ञानको ० । आत्माके तौरपर, या विनात्मको आत्मा, या आत्मामें विज्ञान, या विज्ञानमें आत्माको देखता है। यह 'रूप अनित्य है' इसे यथार्थसे नहीं जानता । 'वेदना अनित्य है,' इसे यथार्थसे नहीं जानता । सज्ञा अनित्य ० । 'संस्कार अनित्य ०' । 'विज्ञान अनित्य ०' । 'रूप द्रुत है, रूप द्रु ग्य है' इसे यथार्थसे नहीं जानता । वेदना ० । संज्ञा ० । संस्कार ० । विज्ञान ० । 'रूप अनात्म (=आत्मा नहीं) है, रूप अनात्म है' इसे यथार्थसे नहीं जानता । वेदना ० । संज्ञा ० । संस्कार ० । 'विज्ञान अनात्म है, विज्ञान अनात्म है' इसे यथार्थसे नहीं जानता । 'रूप संस्कृत (=कृत, पनावटी) है, रूप संस्कृत है' इसे यथार्थसे नहीं जानता । वेदना ० । संज्ञा ० । संस्कार ० । विज्ञान ० । 'रूप नाशहो जायेगा, रूप नाशहो जायेगा' इसे यथार्थसे नहीं जानता । वेदना ० । संज्ञा ० । संस्कार ० । विज्ञान ० । भिक्षु ! धृतगान् आर्य धावक रूपको आत्माके तौरपर ० नहीं देखता । न वेदनाको ० । न संज्ञाको ० । न संस्कारको ० । न विज्ञानको ० । यह 'रूप अनित्य है, रूप अनित्य है,' इसे यथार्थसे जानता है ० । 'रूप द्रुत है ०' ॥ जानता है । ० । 'रूप अनात्म है ०' ० जानता है । ० । 'रूप संस्कृत है ०' । ० । 'रूप नाशहो जायेगा ०' । ० । यह रूपके नाशसे, वेदनाके नाशसे, संज्ञाके नाशसे संस्कारके नाशसे 'न होता तो मुझे न होता, न होगा तो मुझे न होगा' इससे मुक्तो, भिक्षु अवर-भागीय (=ओर भागिय) संयोजनोंको छेदन करता है ।'

"अन्ते । इय प्रकार मुक्त भिक्षु अवर भागीय संयोजनोंको छेदन करता है । लक्षि मन्ते । कसे जानने = कैसे देखनेपर आसथो (=चित्त मलों) का क्षय होता है ?"

"यदा भिक्षु । अशिक्षित पृथग्जन अ-त्रासके स्थानमें त्राम (=भय) खाता है । अशिक्षित पृथग्जनको यह त्रास होता है—'न होता तो मुझे न होता, न होगा, तो मुझे न होगा ।' शिक्षित आर्य धावक अत्रासके स्थानमें त्रास नहीं खाता । शिक्षित आर्य-धावक को यह त्रास नहीं होता—'न होता तो मुझे न होता, न होगा, तो मुझे न होगा ।' भिक्षु ! रूपसे मुक्त (=उपगत), रूपके आलम्बसे, रूपपर प्रतिष्ठित=ठहरते हुए, विज्ञान ठहरता है । तृष्णाको उपमेवन (=तकारों) पा, वृद्धि=विरुद्धि=विपुलताको प्राप्त होता है । भिक्षु ! वेदनासे उपगत ० वेदनापर प्रतिष्ठित हो, विज्ञान (=चेतना, जीव) ० ठहरता है, तृष्णा (=नन्दी) को उपसेवन पा ० । संज्ञा ० । संस्कार । भिक्षु ! यह ऐसा कई—'मैं, रूपसे अलग, वेदनासे अलग, संज्ञासे अलग, संस्कारसे अलग, विज्ञानके गमन भागमन, व्युत्ति (=माण)-उत्पाद (=जन्म), वृद्धि=विरुद्धि=विपुलताको बतलाता हूँ—इसकी जगह=गुनाइश नहीं । भिक्षु ! यदि रूप धातुसे भिक्षुका राग नष्ट हो गया रहता है (तो) रागक प्रहाण (=नाश) से आलम्बन (=इन्द्रिय विषय) छिन्न हो जाता है, विज्ञानकी प्रतिष्ठा (=आधार) नहीं रहती । ० यदि वेदना धातुसे भिक्षुका राग नष्ट हो गया रहता है ० । संज्ञा-धातुसे ० । संस्कार-धातुसे ० । यदि विज्ञान-धातुसे भिक्षुका राग नष्ट हो गया रहता है । रागके प्रहाणसे आलम्बन (=आश्रय) छिन्न हो जाता है, विज्ञानका आधार (=प्रतिष्ठा) नहीं रहता । यह अप्रतिष्ठित (=आधार रहित) विज्ञान न बढकर संस्कार-रहित (हो) विमुक्त (हो जाता है) । विमुक्त होनेसे थिर होता है । थिर होनेसे संतुष्ट (=संतुष्टि) होता है । संतुष्ट

तेनेसे घास नहीं खाता । घास न खानेपर प्रत्यात्म (=इसी शरीर)में परित्रिंशङ्को प्राप्त होता है । 'जातिक्षीण हो गई०' इसे जानता है । भिक्षु इस प्रकार जानने देखनेपर आत्मरोंका प्य होता है ।"

मल्लिका-सुत्त ।

'देसा मने सुता—एक समय भगवान् श्रावस्ती जेतवनम, विहार करते थे ।

तब राजा प्रसेनजित् कोसल जहा भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान् को अभिवादा त एक ओर बैठ गया । तब एक पुरुष (न) जहाँ राजा प्रसेनजित् कोसल था, वहाँ जा राजा प्रसेनजित् कोसल कानमें कहा—'दय ! मदिरुद्वैवीने कन्या प्रसव किया ।' (उसके) क्या कहने पर राजा प्रसेनजित् कोसल रिक्त हुआ । तब भगवान् ने राजा प्रसेनजित् कोसल को खेत जान, उसी वेलाम यह गाथाये कही—

'हे जनाधिप ! कोई स्त्री भी पुरुषसे श्रेष्ठ होती है, (जोकि) मेघाविनी, शीतलती, त्वरु-दया (= समुद्रको दयान् माननेवाली), पतिप्रता होती है ॥१॥ उससे जो पुरुष उत्पन्न होता है, वह दूर दिशाओषा पति होता है । वंसी सोभाग्यवतीका पुत्र राज्य पर शासन करता है ॥२॥'

सोण-सुत्त । सोणकुट्टि-ऊरण भगवान्‌के पास । जटिल-सुत्त ।

पियजातिक-सुत्त । पुराण-सुत्त । (वि. पू. ४४२-४१) ।

१९९मा येन सुता—एक समय भगवान्‌ आवास्तीमें, अनाथ-पिंडरूके आराम जतरमें बिहार करने थे ।

उस समय आयुमान्‌ महाकात्यायन १९९वन्ती (देश) में कुरर घरके प्रपात (नामक) पर्वतपर घास रस्ते थे । उस समय सोण कुट्टिऊण (= स्वर्ण कोटिऊण) उपासक आयुष्मान्‌ महाकात्यायनका उपरधारक (= हजरी) था । एकान्तमें स्थित, विचारमें डूबे सोण कुट्टिऊण उपासकने मामें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—

‘ जैसे जैसे आर्य महाकात्यायन धर्म उपदेश करते थे, (उससे) यह सर्वथा परिपूर्ण माथा परिशुद्ध शसस्त्रा धुला ब्रह्मचर्य, गृहमें बसते पालन करना, सुकर नहीं है । क्यों न मैं प्रव्रजित होजाऊँ । ’

तब सोण-कुट्टिऊण उपासक, जहा आयुमान्‌ महाकात्यायन थे, वहां गया, आज
‘‘अभिवादनकर एक ओर बैठ यह बोला—

भन्ते । एकान्तमें स्थित हो विचारमें डूबे मेरे मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—
भन्ते । आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित कर । ’

ऐसा कहनेपर आयुष्मान्‌ महाकात्यायनने सोण०को यह कहा—

“ सोण ! जीवनभर एकाहार, एक शय्यावाला ब्रह्मचर्य दुष्कर है । अच्छा है, सोण ! तू गृहस्थ रहते ही बुद्धोपे शासन (= उपदेश) का अनुगमनकर, ओर काल युक्त (११ दिनोंमें) एक-आहार, एक शय्या (= अकेला रहना) रख । ”

तब सोण कुट्टिऊण उपासकका जो प्रव्रज्याका डछाह था सो टंडा पड़ गया ।

दूसरीवार भी० मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—० । ० । तीसरीवार भी० । ‘भन्ते आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित करे ।

तब आयुष्मान्‌ महाकात्यायनने सोण कुट्टिऊण उपासकको प्रव्रजित किया (= आग्रह यनाया) । उस समय अवन्ति दक्षिणापथमें बहुत थोड़े भिक्षु थे । तब आयुष्मान्‌ महाकात्यायन ने तीन वर्ष बीतनेपर बहुत कठिनाईसे जहां तहासे दशवर्ग (= दशभिक्षुओंका) भिक्षु-संघ एकत्रितकर, आयुष्मान्‌ सोणको उपसंपन्न किया (= भिक्षु बनाया) । बर्पावास बस, एकान्तमें स्थित, विचारमें डूबे आयुष्मान्‌ सोणके चित्तमें ऐसा परिचितर्क उत्पन्न हुआ—‘ मने उन भगवान्‌को सामने नहीं देखा, बल्कि मैंने सुनाही है,—वह भगवान्‌ ऐसे हैं ऐसे हैं । यदि उपाज्याय मुझे आज्ञा द, तो मैं भगवान्‌ अर्हत्‌ सम्यक्‌ सम्बुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ । ’

१ उदान ५ ६ । २ वर्तमान माल्या ।

तत्र आयुमान् सोण सार्यकाल ध्यासे उठ, जहा आयुमान् महाकात्यायन थे, वहां जाकर अभिरादन कर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे आयुमान् महाकात्यायनको कहा—

“ भन्ते ! पुरात स्थित विचारमें दूर मेरे चित्तम एक एवा परिवर्तक उत्पन्न हुआ है— यदि उपाध्याय मुझे आज्ञा दें, तो मैं भगवान्‌के दर्शनके लिये जाऊँ ।”

“ साधु ! साधु ! सोण । जाओ सोण ! उन भगवान्, अर्हत्, सम्पूर्ण संसृष्टके दर्शनको । सोण ! उन भगवान्‌को तुम प्रसादादिक (= सुन्दर) प्रसादनीय (= प्रसन्न कर), शातेन्द्रिय = शान्त मानस उत्तम सम-दम प्राप्त, दान्त, शुल, जितेन्द्रिय, नाम द्रष्टा । दृष्टकर मेरे वचनमें भगवान्‌के चरणोंको मिरसे वन्दना करना । निरोध सुप्त विहार (= कुशल क्षेम) पूजना—भन्ते मेरे उपाध्याय आयुमान् महाकात्यायन भगवान्‌के चरणोंको मिरसे वन्दना करते हैं । ”

“ अच्छा भन्ते ! ” (कह) आयुमान् सोण आयुमान् महाकात्यायनके भाषणको अभिनन्दन कर, आमासे उठकर अभिरादन कर, प्रदक्षिणा कर, शयनासन संभाल, पात्र पीपर ले, जहा ध्यासी थी, वहां चारिका करते थे । प्रमत्त चारिका करते जहा धावस्ती जेतम अनाथ पिंडक्या आराम था, जहां भगवान्‌के, वहां गये ।

भगवान्‌को अभिरादन कर एक ओर बैठ । एक ओर बैठे आयुमान् सोणन भगवान्‌को वहा—

“ भन्ते ! मेरे उपाध्याय आयुमान् महाकात्यायन भगवान्‌के चरणोंको मिरसे वन्दना करते हैं । ”

“ भिक्षु ! अच्छा (= खमनीय) तो रहा ? यापनीय (= शरीर की अनुकूलता) तो रहा ? अल्प नष्टमे यात्रा तो हुई ? पिन्ना कष्ट तो नहीं हुआ ? ”

“ धमनाय (रहा) भगवान् ! यापनाय (रग) भगवान् ! यात्रा भन्ते ! अल्प कष्टसे हुई, पिन्ना (भोजन) का कष्ट नहीं हुआ । ”

तत्र भगवान्‌ले आयुमान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

“ आनन्द ! इम आगतुक (= वरागत) भिक्षुको शयनासन दो । ”

तत्र आयुमान् आनन्दको हुआ—“ भगवान् जिससे लिये कहते हैं—“ आनन्द ! इम आगतुक भिक्षुको शयनासन दो । ” भगवान् उसे धरहा विहारम सायम रखा चाहते हैं, (और) जिव विहार (= कोठी) में भगवान् विहार करते थे, उसी विहारम आयुमान् सोणको शयनासन (= वाम विधौ) दिया । भगवान्‌के बहुत रात धुली जगहम बिताकर, पर धो विहारमें प्रमत्त किया । तत्र रातको भिम्मार (= प्रत्यूष) में उठकर भगवान्‌ले आयुमान् सोणको कहा—

“ भिक्षु ! धम भाषण करो । ”

“ अच्छा भन्ते ! ” कह आयुमान् सोणन सभी मोलह अद्वय वरिणकोको

स्वर-सहित भग्न किया । तब भगवान् ने आयुष्मान् सोण के स्वर-सहित भग्न (=स्वर-भग्न) समाप्त होने पर अनुमोदन किया—

“साधु ! साधु !! भिक्षु ! अच्छी तरह सीखा है । भिक्षु ! तुने सोल्ह ‘अट्टक-यगिक’, अच्छी तरह मार्ग किया है, अच्छी तरह धारण किया है । कटयाणी, विस्पष्ट, अर्थ विशाल-योग्य वाणीसे तू युक्त है । भिक्षु ! तू कितने वर्ष (=उपसंपदाका वर्ष) का है ?”

“भगवान् ! एक वर्ष ।”

“भिक्षु ! तुने इतनी देर क्यों लगाई ।”

“भन्ते !” देखते कामों के दुष्परिणाम से देर पाया । और गृहवास बहु-कार्य = शुष्कणीय संवाध (=बाधायुक्त) होता है ।”

भगवान् ने इस अर्थको जानकर उसी समय इस उद्दानको कहा—

“लोके के दुष्परिणामको देर और उपधि-रहित धर्मको जानकर, आर्य पापमें नहीं रमता, शुचि (=पवित्रात्मा) पापमें नहीं रमता ।”

सोणकुटिकरण भगवान् के पास ।

“उस समय आयुष्मान् महाकात्यायन अवन्ती (देश) में कुरर घरके प्रपात पवन पर वास करते थे । उस समय सोण कुटिकरण उपस्थित था०।—

“साधु ! साधु ! सोण ! जाओ सोण० भगवान् के चरणों में वन्दना करना०—‘भन्त ! मेरे उपाध्याय भगवान् के चरणों में सिरसे वन्दना करते हैं । और यह भी कहना—‘भन्त ! अवन्ती दक्षिणा-पथ में बहुत कम भिक्षु हैं । तीन वर्ष व्यतीत कर बड़ी मुश्किलसे जहाँ तहाँ से दशवर्ग भिक्षुसमूह एकत्रितकर मुझे उपसंपदा मिली । अच्छा हो भगवान् अवन्ती दक्षिणा पथमें (१) अल्पतर गण (=कमकी जमायत) से उपसंपदा की अनुज्ञा दें । अवन्ती दक्षिणापथमें भन्त ! भूमि काली (=कण्डुक्षरा) कड़ी, गोकटकोंसे भरी है । अच्छा हो भगवान् अवन्ती-दक्षिणापथमें (२) (भिक्षु) गणकी गण वाले उपानह (=पनही) की अनुज्ञा दें । अवन्ती दक्षिणापथमें भन्ते ! मनुष्य स्नानके प्रेमा, उदकसे शुद्धि मानने वाले हैं, अच्छा हो भन्ते ! अवन्ती दक्षिणा पथमें (३) नित्य स्नानकी अनुज्ञा दें । अवन्ती दक्षिणापथमें भन्ते ! चर्ममय आस्तरण (=विठौने) होते हैं, जैसे मेघ-चर्म, अज चर्म, मृग चर्म। (४) चर्ममय आस्तरणकी अनुज्ञा दें । भन्ते ! इस समय सीमासे बाहर गये भिक्षुओंको (मनुष्य) चीवर देते हैं—‘यह चीवर बहुत नामकको दो ।’ पहनाकर कहते हैं—‘आवुस ! इस नामवाले मनुष्यने तुझे चीवर दिया है । वह सन्देशमें पट उपभोग नहीं करते, कहीं हमें निस्सर्गाय (=छोड़नेका प्रायश्चित्त) न होनाय । अच्छा हो भगवान् (५) चीवर-पर्याय कर दें ।”

“अच्छा भन्ते !” कह कर सोणकुटिकरण आयुष्मान् महाकात्यायनको अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर जहाँ धावस्ती थी वहाँको चले० । तब भगवान् ने इस अर्थको जानकर उसी समय इस उद्दानको कहा—

“ लोकक दुष्परिणाम ०१ । ”

तत्र आयुष्मान् सोणने—‘ भगवान् मेरा अनुमोदन करते हैं, यही इसका समय है’ (सोच) आसनमें उठ, उत्तरासग एक कन्नेपर कर भगवान् के चरणोंपर सिरसे पड़कर, भगवान् को कड़ा—

“ भन्ते ! मेरे उपाधाय आयुष्मान् महाकात्पायन भगवान् चरणोंमें सिरसे बन्दा करते हैं, और यह कहते हैं —

‘ भन्ते ! अवन्ती दक्षिणा पथम बहुत कम भिक्षु हैं ०, अच्छाहो भगवान् चीर-पयाय (= विकल्प) कर दें ? ”

तत्र भगवान् ने इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओंको प्रार्थित किया—

“ भिक्षुओ ! अद्यन्ति दक्षिणापथमें बहुत कम भिक्षु हैं । भिक्षुओ ! सभी प्रत्यन्त जनपदोंमें विनयधरोंको लेकर पाच, (कोरमवाले) भिक्षुओं का गणने उपपन्न (करने) की अनुना दता हूँ । यहा यह प्रत्यन्त (= सीमान्त) जनपद (= देश) है—पूर्व दिशाम ‘कज्जल नामक निगम (= कथन) है, उसका वाद उड़े साखू (क ज्जल) है, उसने पर ‘इधरसे बीचमें’ प्रत्यन्त जनपद है । पूर्व दिशाम ‘मल्लयती नामक नदी है, उससे पर, इधरसे बीचमें (= ओर तो मज्जे) प्रत्यन्त जनपद है । दक्षिण दिशाम ‘सेतकण्ठिक नामक निगम है ० । पश्चिम दिशामें ‘यूण नामक ब्राह्मण ग्राम ० । उत्तरदिशामें ‘उसीरञ्जन नामक पर्वत, उससे परे ० प्रत्यन्त जनपद है । भिक्षुओ ! इस प्रकार ५ प्रत्यन्त जनपदोंमें अनुना दता हूँ—विनयधर सहित पाच भिक्षुओंके गणन उपपन्न करा की । । सब सीमान्त देशोंमें गणवाले—उपानह ० । ० नित्य-म्यान ० । ० सब चर्म—मेघ चर्म, अज-चर्म, सुग चर्म ० । अनुना दता हूँ (चीर) उपभोग करनेकी, यह तत्र तत्र (तीन बीचोंमें) न गिनाजाय, जत्र तत्र कि हाथमें न आजाय । ”

जटिल सुत्त ।

‘प्रेमा भंने सुता—एक समय भगवान् धारस्तोमें भृगार माताके ‘प्रामाद पूर्वोरामम बिहार करते थे ।

उस समय भगवान् मार्गकाको ज्वाले उठकर, पाटक (= द्वारसोटक) का बाहर बैठे थे । तत्र राजा प्रसेनजित् कोसल जहा भगवान् थे, वहा गया । जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । उस समय मात जटिल, सात निगम, सात धक्कर, मात पञ्चमाक, और सात परिवाजक, कच्छ (= काय)-नव लोम वगैरे, स्त्रिया (= स्त्रियों) बहुत सा लिये,

१ देवोष्ठ ३०५ २ देवोष्ठ ३०६ ३ वर्तमान ककजोल (जिला मथाला पर्गना, विहार) । ४ यनैमाग सिन्धु नदी (जिला हजारीबाग और बीरभूम) । ५ हजारीबाग जिलेमें कोई स्थान था । ६ तीसवा वर्षोराम आवन्ती (पूर्वोराम) म । ७ संनि ३२१ । उदाहर ६२ । ८ अक “यह प्रासाद लोहप्रासाद (= अनुराधपुर, मगध) की भांति चारों ओर चार पात्रमें युक्त प्रकारसे घिरा था । इनमेंसे पूर्वके पाटके बाहर प्रासादकी छायाम पूर की ओर देखने, बिछे बुद्धासनपर बैठे थे ।

भगवान्‌के 'अविदूर' से जा रहे थे । तब राजा प्रसेनजित् कोसलने आसनसे उठकर, उत्तरामग (= चद्र) को एक (बाय) कंधेपर कर, दाहिने जानु मंडल (= घुटने) को भूमिपा^१ एक, जिधर वह सात जटिल^० सात परिधाजक थे, उधर अंजलि जोड़, तीन बार नाम सुनाया— 'भन्ते ! मे राजा प्रसेनजित् कोसल हूँ । भन्ते^० । भन्ते^० ।'^१

तब उन सात जटिलों^० के चले जानेके थोड़ी देर बाद, राजा प्रसेनजित् कोसल अग्रा भगवान्‌ ने वक्ष गया । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ भगवान्‌को बोला—

“ भन्ते ! लोकमें जो अर्हत् या अर्हत्-मार्गपर आरुह हैं, यह उनमेंसे हूँ ।”

“ महाराज ! गृही, काम भोगी, पुत्रोंसे घिरे वसते, काशीके चन्दनका रस छने, मान-मोघ त्रिलेपन धारण करते, सोना चाँदीको भोगते, तुम्हारे लिये यह दुर्जय है—^१ यह अर्हत् है, या अर्हत्-मार्गपर आरुह हूँ । महाराज ! शील (= आवरण) सहवाससे जाना जाता है ; और पद चिरकालमें, उसी दम नहीं, मनमें करनेसे (जाना जाता है), बिना मनमें कि नहीं । प्रजावालेको (ज्ञेय है) दुःप्रज्ञको नहीं । महाराज ! व्यवहारसे (आचार) शुद्ध जानी जा सकती है, और वह चिरकालमें, उसी दम नहीं, मनमें करनेसे^० । महाराज ! माक्षात्कारसे प्रजा जानी जा सकती है, और वह दीर्घकालमें, तुरन्त नहीं, मनमें करनेसे^० । प्रजावान्‌को^० ।”

“ आश्चर्य ! भन्ते ॥ अद्भुत ! भन्ते ॥ भगवान्‌का सुभाषित कैसा है ॥—^१ महाराज^० दुर्जय है^० । यह भन्ते ! मेरे घर, अवचरक (= गुप्तचर) पुरुष, जनपद (= दीहात) में (पता लगानेके लिये) भूमकर आते हैं । उनकी प्रथम योजना की मैं फिरसे सफाई करता हूँ । तब भन्ते ! वह धूल जाला धोकर सुम्नात हो, सु विलिप्त हो, केश मूट (नाईसे) ठीक करा, द्रवत धन्यधारी, पाच काम गुणोंसे युक्त हो, विचरते है ।”

तब भगवान्‌ने इसी अर्थको जानकर, उसी समय यह गथायें कहीं—

“ वर्ण (= रंग)-रूपसे नर सुश्रेय नहीं होता । तुरन्त (= इत्थर) दर्शनसे ही विश्वास न कर लेना चाहिये । रूप-रंगसे सु-संयमी भा (मालूम होते), (वस्तुतः) असंयमी हो इस लोकमें विचरते हैं ॥१॥ नरली मिट्टीके बुँडकी तरह, या सुवर्णसे ढँके ताने (= लोह) के आभूषणोंसे (= अर्ध मापक तिका) की तरह, लोकमें (वह) परिवार (= जमात) से ढँके, भीतरसे अशुद्ध (क्रिन्) बाहरसे शोभायमान हो विचरते है ॥२॥

पियजातिक-सुत्त ।

^१ मेमा भूमेन सुजा—एक समय भगवान्‌ श्रावस्तीमें जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय एक गृहपति (= वेदव्य) का प्रिय=मनाप एकलौता पुत्र मर गया था । उसन मरनेसे (उसे) १ काम (= कमान्त) अच्छा लगता था, न भोजन अच्छा लगता

१ अ क “अविदूर (= समीप) के मार्गसे नगरमें प्रवेश कर रहे थे ।” ३ इत्तीसर्वा वपा-यास श्रावस्ती (जेतवन) में । ४ म नि २ ४ ७ ।

या—‘कहा हो (मेरे) एकलौते पुत्रक ? कहा हो (मेरे) एकलौते-पुत्रक ?’ तब यह गृहपति जहा भगवान् थे, वहाँ गया । अभिवादनकर एक ओर बैठ उस गृहपतिको भगवान्ने कहा—

“गृहपति ! तेरी इन्द्रिया (= चेष्टायें) चित्तम स्थित नहीं जा पड़तीं, क्या तेरी इन्द्रियोंमें कोई खराबी (= अन्यथात्त्व) तो नहीं है ?”

“भन्ते ! क्यों न मेरी इन्द्रिया अन्यथात्त्वको प्राप्त होगी ? मते । मेरा प्रिय = मनाप एकलौता-पुत्र मर गया । उसके मरनेसे न काम अच्छा लगता है, न मोजन अच्छा लगता है । तो मैं आशाह्न (= चिन्ता) के पास जाकर श्रद्धा करता हूँ—‘कहा हो एकलौते पुत्रक (= पुत्रवा) !’”

“ऐसा ही है गृहपति ! प्रिय-जातिक = प्रियसे उत्पन्न होनेवाले ही है, गृहपति ! (यह) शोक, परिश्रव (= कंदन), दुःख = दौर्मनस्य, उपायाम (= परेशानी) ?”

“मते । यह ऐसा क्यों होगा—‘प्रिय जातिक० हूँ शोक० उपायाम ?’”

यह गृहपति भगवान्के भाषणको न अभिवादनकर, निराश्र आससे उठकर चला गया ।

उस समय बहुतसे जुआरी (= अक्ष धूर्त) भगवान्के अद्वरमे जुआ खेल रहे थे । तब यह गृहपति जहा वह जुआरी थे, वहाँ गया, जाकर उन जुआरीयोसे योग—

“म जी ! जहाँ श्रमण गौतम है, वहाँ जाकर अभिवादन कर एक ओर बैठे मुझे श्रमण गौतम ने कहा—‘गृहपति ! तेरी इन्द्रिया (= चेष्टायें) अपने चित्तम स्थितयी नहीं हैं० प्रिय जातिक० शोक० हूँ । प्रियजातिक = प्रियसे उत्पन्न तो, आनन्द = सौमनस्य है । तब मैं श्रमण गौतमके भाषणको न अभिवादन कर० चला आया ।”

“यह ऐसाही है गृहपति ! प्रिय जातिक = प्रिय उत्पन्न तो हूँ गृहपति ! आनन्द = सौमनस्य ।”

तब यह गृहपति ‘जुआरी भी मुझसे सहमत है’ (सोच) चला गया । यह क्या वस्तु (= चर्चा) श्रमण राज स्वन्त पुरमें चली गई । तब राजा प्रसेन निम्न कोसलने मल्लिका देवीको आमंत्रित किया—

“मल्लिका ! तेरे श्रमण गौतमने यह भाषण किया है—‘प्रिय-जातिक = प्रिय उत्पन्न हूँ शोक० उपायाम’ ।”

“यदि महाराज ! भगवान्ने ऐसा भाषण किया है, तो यह ऐसा ही है ।”

“ऐसाही है मल्लिका ! जो जो श्रमण गौतम भाषण करता है, उस उसको ही तू अनुमोदन करती है—‘यदि महाराज ! भगवान्ने०’ । जैसेकि आचार्य जो जो भन्तेवासीको कहता है, उस उसको ही उसका भन्तेवासी अनुमोदन करता है—‘यह ऐसाही है आचार्य । आचार्य !’ ऐसी तू मल्लिका ! जो जो श्रमण० । चल पड़े मल्लिका ।”

तब मलिका देवीने नाली जंघ ब्राह्मणको आमंत्रित किया—

“आजो तुम ब्राह्मण ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ । जाकर मेरे घबनसे भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करना, (कुशलक्षेम) पूछना—‘मन्ते । मलिकादेवी भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करती है,—(=कुशलक्षेम) पूछती है ।’ और यह भी कहना—‘क्या मन्ते । भगवान्‌ने यह वचन कहा है—‘प्रिय जातिक० है, शोक० उपायास’ । भगवान्‌ जैसा तुम्ह वज्र हैं, उसे शान्ती तरह मोख कर, मुझे आकर कहना, तथागत व्यर्थ नहीं बोलते ।”

“अच्छा भवती !” नाली जंघ ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर, भगवान्‌के साथ रामासन कर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे नाली जंघ ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

“हे गौतम । मलिका देवी ! आप गौतमके चरणोंमें शिरसे वन्दना करती हैं० । और यह पूछती हैं—‘क्या मन्ते । भगवान्‌ने यह वचन कहा है—‘प्रिय जातिक० है, शोक० उपायास’ ?”

“यह ऐसाही है ब्राह्मण । ऐसाही है ब्राह्मण । प्रिय जातिक = प्रिय-उत्पन्न है ब्राह्मण । शोक = उपायास । इसे इस प्रकारसे भी जानना चाहिये कि कैसे—प्रिय जातिक = शोक ? पहिले समयमें (=भूत पूर्व) ब्राह्मण ! इसी धावस्तीका एक छात्रा माता मर गई थी, वह उसकी मृत्युसे उत्तम = विक्षिप्त-चित्त हो एक सड़कसे दूसरी सड़कपर, एक घोरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर जाकर, ऐसा कहती थी—‘क्या मेरी माको देसा, क्या मेरी माको देसा ।’ इस प्रकारसेभी ब्राह्मण ! जानना चाहिये कि कैसे० । पहिले समयमें ब्राह्मण ! इस धावस्तीमें एक छोटा पिता मरगया था० ।० भाई मर गया था० ।० भगिनी मर गई थी० । पुत्र मर गया था० ।० दुहिता मर गई थी० ।० स्वामी (=पति) मर गया था० ।

“पूर्व कालमें० एक पुरुषकी माता०—० भाया० ।”

“पूर्वकालमें ब्राह्मण ! इसी धावस्तीकी एक स्त्री पीहर गई । उसके भाई बन्धु उस उसके पतिसे छीनकर, उसके देना चाहते थे, और वह नहीं चाहती थी । तब उस स्त्री पतिको यह कहा—‘आर्यपुत्र । यह मेरे भाई-बन्धु मुझे तुमसे छीनकर दूसरेको देना चाहते हैं, और मैं नहीं चाहती ।’ तब उस पुरुषने-‘दोनों मरकर इकट्ठा उत्पन्न होंगे’ (सोच) उस स्त्रीको दो डरुङ्गेरु, अपनेको भी मार डाला । इस प्रकारसेभी ब्राह्मण ! जानना चाहिये ।”

तब नाली-जंघ ब्राह्मण भगवान्‌के ‘आपणको अभिनन्दनकर, अनुमोदनकर आसनपर उठकर, जहाँ मलिकादेवी थी, वहाँ गया । जाकर भगवान्‌के साथ जो कथा-मंलाप हुआ था, वह सब मलिकादेवीको कह सुनाया । तब मलिकादेवी जहाँ राजा प्रसेनजित था, वहाँ गई, जाकर राजा प्रसेनजित कोसलको बोली—

“तो क्या मानने हो महाराज तुम्हें वजिरी (=वज्रिणी) कुमारी प्रिय है न ?”

“हा, मलिका । वजिरी कुमारी मुझे प्रिय है ।”

१ अ क “वजिरी नामक राजाकी पत्नी थी ।”

पियजातिक-मुत्त ।

"तो क्या मानते हो महाराज ! यदि किसी भी कुमारी को कोई विपश्चिन्त (= संकट) या अन्यथात्न होने, तो क्या तुम्हें लोक-उपवास उत्पन्न होगा ?"

"महिका ! घजिरी कुमारोंके विपरिणाम अन्यायात्त्वसे मेरे जीवनका भी अन्यायात्त्व हो सकता है, 'शोक' उत्पन्न होगा' की तो बात ही क्या ।"

“महाराज ! उन भगवाय् जाननहार, देखनहार अहंत् सम्पद्-सुखदने यही सोचकर कहा है—‘प्रिय जातिकुं ।’ सो न्या मानते हो महाराज ! यासम क्षत्रिया तुम्हे प्रिय है न ?”

“ हाँ, महिका ! पाम्भ क्षत्रिया मुझे प्रिय है । ”

“ तो क्या मानते हो महाराज । यासम क्षत्रियाको कोई विपरिणाम = अभ्युत्थान हो,
तो क्या तुम्हें शोक ० उत्पन्न होगा ? ”

"महिका । ० जीवन का भी अन्यथात्व हो सकता है ० ।"

“महाराज ! ० यही सोच कर ० कहा है ० । तो क्या मानते हो महाराज ! विदुषभ
सेनापति तुम्हें प्रिय है न ?” ० । ० ।

“० । तो क्या मानते हो महाराज ! मैं तुम्हें प्रिय हूँ न ?”

“ हा मल्लिके ! तू मुझे प्रिय है ? ”

“ तो क्या मानते हो, महाराज ! मुझे कोई विपत्तिमान, अभ्यधास्व हो, तो क्या तुम्हें शोक उत्पन्न होगा ? ”

“महिका !० जीवनका भी अभ्युत्थान हो सकता है० ।”

“महाराज ! यही सोचकर कहा है । तो क्या मानते हो महाराज ! कहीं ओ। कोमल (के निवासी) तुम्हें प्रिय है न ?”

“हा महिष ! काशी कोसल मेरे प्रिय है । काशी कोसलोंके अनुभाव (= वाक्य) से ही तो हम काशिरचन्द्राको भोगते हैं, माहा, गंध, विलेपन (= डरन) धारण करते हैं ।”

⁴ "तौ महाराज। काशी कोमलकं विपरिणाम = अभ्यन्तरे (= सक्त) मे, स्या तुम्ह शोक उत्पन्न होवे।"

“ जावनका भी अन्यथाच हो सकता है० ।”

“महाराज ! उन भगवान् ने यही सोचकर कहा है—‘प्रिय जातिरूप=प्रियमे उत्पन्न है, शीशः ॥’

“आश्चर्य ! महिले ॥ आश्चर्य ! महिले ॥ कैसे वह भगवान् है ॥” मातो प्रनासे
येकर देखते हैं। आ तो, महिले। हम दोनों ।”

तब राजा प्रसेनजित् कोमलने आसनसे उठकर, उच्चासंग (=चदर) को एक (धाय) कंधे पर रख, जिधर भगवान् थे, उधर अजली जोड़ तीन बार उदान कहा—

“ १३१ भगवान्, अर्हत्, सम्यक् संबुद्धको नमस्कार है; उन भगवान् अर्हत्, सम्यक् संबुद्धको नमस्कार है, उन भगवान् अर्हत्, सम्यक् संबुद्धको नमस्कार है । ”

पुण्य सुत्त ।

१०५० मने सुता—एक समय भगवान् धावस्ती० जेतवनमें विहार करते थे ।

तत्र आयुष्मान् १ पूर्ण जहा भगवान् थे, वहा गये । जाकर भगवान्को अभिवादन कर शोर मचाये । एक ओर बैठ आयुष्मान् पूर्णने भगवान्से कहा—

“ अच्छा हो भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षिप्तसे धर्म-उपदेश करें, निम्न धर्मको भगवान्से सुनकर मैं पक्का, एकान्ती, अप्रमादी, उद्योगी, स्वामी हो बिहार करूँ । ”

“ पूर्ण ! चक्षुसे विज्ञेय रूप इष्ट = कान्त = मनाप, प्रियरूप = कामोपसंहित, रत्नरूप होते हैं । यदि भिक्षु उन्ह अभिन्दन करता = स्वागत करता, अध्यवसाय करता है । अभिन्दन करते, ० अध्यवसाय करते हुये उसको, नन्दी (= तृष्णा) उत्पन्न होती है । पूर्ण ! नन्दीकी उत्पत्ति (= समुदय) से दुःखका समुदय कहता हूँ । पूर्ण ! निम्नसे विज्ञेय रम इष्ट० । पूर्ण ! चक्षुसे विज्ञेय रूप इष्ट० हैं । यदि भिक्षु उन्ह अभिन्दन० नहीं करता । ० । उसकी नन्दी (तृष्णा) निरुद्ध (= विलीन) हो जाती है । पूर्ण ! नन्दी निरोधसे दुःखका निरोध कहता हूँ । ० । पूर्ण ! मनसे विज्ञेय (= ज्ञातव्य) धर्म इष्ट० हैं । ० । पूर्ण मेरे इस संक्षिप्तमें कथित अवगाह (= उपदेश) से उपदिष्ट हो, कौनसे जनपदमें तु विहा करेगा ? ”

“ भन्ते ! सुतापरान्त नामक जनपद है, मैं वहाँ विहार करूँगा । ” “ पूर्ण ! सुतापरान्तके मनुष्य चण्ड हैं, ० परप (= कठोर) हैं । जो पूर्ण ! तुझे सुतापरान्तक मनुष्य आक्रोशन = परिभाषण (= बुझाव्य) करेंगे, तो तुझे क्या होगा ? ”

“ यदि भन्ते ! सुतापरान्तके मनुष्य मुझे आक्रोशन = परिभाषण करेंगे, तो मुझे

१ “ नमो तस्मै भगवतो अरहतो सम्मा संबुद्धस्स । २ सं नि ३४ ४ ६ ।

३ अ क “ सुतापरान्त (= वर्तमान थाना और सूरतके जिले तथा कुछ भाग-भाग) राष्ट्रमें एक यणिक ग्राममें यह दो भाई (बसते थे) । उनमें कभी बड़ा पाच सौ गाड़ियाँ ले, जापद जाकर माल लाता था, कभी छोटा । इस समय कनिष्ठ (भाई) को घरपर छोड़, बड़ा आता पाच-सौ गाड़ियाँ ले, धूमते हुये, क्रमशः धावस्तीमें प्राप्त हो, जेतवनके नातिदूर शम्भु-साथ (= गाड़ीके कारवा) को ठहराकर, कलेजकर नौकरोंके साथ अनुकूल स्थानपर धंदा । उसी समय धावस्ती-वासी कलेजकर शुद्ध उत्तरासंग ओढे, हाथमें गंध पुष्प लिये, (धावस्तीके) दक्षिण द्वार (= महेन्द्रा बाजार-दरवाजा) से निकलकर, जेतवनको जाते थे । । (पूर्ण) ने भी अपनी मंडलीके साथ, उसी परिपक्वसे रंग विहारमें जा धर्म सुा प्रव्रज्याका सकलप किया । । (फिर) भंडारीको उलाकर “ यह धन मेरे कनिष्ठ (आता) को देना । सब समझा, शास्ताके पास प्रव्रजित । योग अभ्यास परायण हुये । तब योगाभ्यास करते वक्त (मन) ठीकसे नहीं ठहरता था । तब सोचा—“ यह जनपद मेरे अनुकूल नहीं है, क्यों न मैं शास्ताके पाससे कर्म स्थान (= योग विधि) ग्रहणकर, अपने देशमें ही जाऊँ । ”

ऐसा होगा—‘सूनापरान्तके मनुष्य भद्र हैं, सुभद्र हैं, जोकि यह सुझपर हाथमे प्रहार नहीं करते’—सुझे भगवान् । (ऐसा) होगा सुगत । ऐसा होगा ।”

“यदि पूर्ण ! सूनापरान्तके मनुष्य तुझपर हाथमे प्रहार करें, तो पूर्ण ! तुम क्या होगा ?”

“०भन्ते ! सुने ऐसा होगा—“यह सूनापरान्तके मनुष्य भद्र हैं, ०सुभद्र हैं, जोकि यह सुजे ढंढेसे नहीं मारते ० ।”

०।०ढंढेमे नहीं मारते । ० ०।० शस्त्रसे नहीं मारते । ००।० शस्त्रसे मेश प्राण नहीं ले के । ०

“यदि पूर्ण ! सूनापरान्तके मनुष्य तुम तीव्र शस्त्रमे मार डालें । तो पूर्ण ! तुम क्या होगा ?”

“०वहाँ सुजे भन्ते ! ऐसा होगा—“उन भगवान्के कोने कोने थावर (शिष्य) हैं, जो त्रिन्दीपमे तंग आकर, ऊबकर, घृणाकर, (आत्म हत्यार्थ) शस्त्र तारक (= शस्त्र लंगाने) खोजते हैं । सो सुजे यह सब हारक बिना खोजेही मिल गया । भगवान् । सुजे ऐसा होगा । सुगत ! सुजे ऐसा होगा ।”

“साधु ! साधु ! ! पूर्ण । ! ! पूर्ण । तू इस प्रकारके शम, दमने युक्त हो, सूनापरान्त जनपदमें बास कर सकता है । जिसका तू काल समझ (बोझ कर) ।”

तब आयुष्मान् पूर्ण भगवान्के बचन को अभिनन्दनकर अनुसोदन कर, आत्मनते उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर शयनासन रुझाल, पात्र चीवर के, जिधर सूनापरान्त जनपद था, उधर चारिकाको बल पड़े । प्रमत्त चारिका करते जहाँ सूनापरान्त जनपद था, वहाँ पहुँच । आयुष्मान् पूर्ण सूनापरान्त जनपदम विहार करत थे । तब वहाँ आयुष्मान् पूर्णने उम्मी बपाके भीतर पाँचसौ उपासकोंको ज्ञान कराया । उम्मी बपाक भीतर उहोने (स्वर्ग) भी विचार्य साक्षात् (= प्रत्यक्ष) की । और उसी वर्षोंके भीतर ‘परिनिवाणको प्राप्त हुये’ ।

१ आवागमनरहित हो मरना ।

२ अ क. “(पूर्णने) कहा कहा विहार किया ? चार स्थानोम अन्ध हत्य पत्र, वहासे सुदगिरि विहार, वहासे मातुगिरि, वहासे मकुलकाराम नामक विहारको गये । (नापरान्तम स्थान) सचन्द्र पर्वत नमदा नदीक तीर पदचैत्य ।”

मखादेव-सुत्त । सारिपुत्त-सुत्त । थपति-सुत्त । विसाखा-सुत्त । पथानीय-सुत्त ।
जरा-सुत्त । (वि.पू. ४४०-३६) ।

१९९० यैन सुना—एक समय भगवान् मिथिलामे मखादेव आग्रनाम विहार करते थे ।

एक जगह पर भगवान् मुस्करा उठे । तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—
‘भगवान्‌के मुस्करानेका क्या कारण है ? क्या वजह है ? तयागत विना कारणके नहीं मुस्कराते ;
११ आयुष्मान् आनन्द चीवरको एक कंधेपर कर, जिधर भगवान् थे, उधर हाथजोड़
भगवान्‌को बोले—

“भन्ते ! भगवान्‌के मुस्करानेका क्या कारण है० ?”

“आनन्द ! पूर्वकालमे इसी मिथिलामे मखादेव नामक धार्मिक धर्म राजा राजा हुआ
था । (वह) धर्ममे स्थित महाराजा, माह्यणोमे, गृहपतियोमे निगमोमे, (=कस्त्रों, नगों)मे
जनपत्रा (=दीहातों)मे धर्मसे वर्तता था । चतुर्दशी (=अमावास्या) पंचदशी पूर्णिमा, और
पक्षकी अष्टमियोंको उपोसथ (=उपवासव्रत) रखता था ।

“उपने अपने शिरमें पके बाल देखे ज्येष्ठ पुत्र कुमारको उल्लाकर कहा—

“तात कुमार ! मेरे देवदूत प्रकट होगये, शिरमें पके केश दिखाई पड़ रहे हैं । मैंने
मानुष काम (—भोग) भोगलिये, अब दिव्य-भोगोंके गोजनेका समय है । आओ तात !
कुमार ! इन राज्यको तुम एा । मे केश-इमथु मुंडा, कापाय-वस्त्र पहिन, घासे घेवर हा
प्रनजित होऊँगा । सो तात ! जब तुमभी शिरमें पके बाल देखना, तो हजामको एक माँद
इनाम (=घर) दे, ज्येष्ठ पुत्र कुमारको अच्छी प्रकार राज्यपर अनुशासन कर, केश इमथु मुंडा,
वस्त्र पहिन ० प्रनजित होना । जिसमें यह मेरा स्थापित कल्याणवर्त्म (कल्याण घट) अब
प्रवर्तित रहे, तुम मेरे अन्तिम पुरुष मत होना । तात कुमार ! जिय पुरपयुगलसे वर्तमान रहते इस
प्रकारके कल्याण-वर्त्म (=मार्ग) का उच्छेद होता है, वह उनका अन्तिम पुरुष होता है ।

“तब आनन्द ! राजा मखादेव नाईको एक गांव इनाम द, ज्येष्ठ पुत्रकुमारको अच्छा
तरह राज्यानुशासनकर, इसी मखादेव-अम्बवनमें केश-दावी मुंडा ० प्रनजित हुआ । वह था
‘ब्रह्म विहारोंकी भावनाकर शरीर छोड़ मरनेके बाद ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ ।

“आनन्द ! राजा मखादेवके पुत्रनेभी , राजा मखादेवकी परम्परामें पुत्र
पोत्र आदि इसी मखादेव अम्बवनमें केश इमथु मुंडा प्रनजित हुये । निमि
उन राजाओंका अन्तिम धार्मिक, धर्म-राजा, धर्ममें स्थित महाराजा हुआ ।

“आनन्द ! पूर्व कालमें सुधर्मा नामक ममामें एकत्रित हुये चार्याहिरा देवोंके बीचमें यह
बात उत्पन्न हुई—‘लाम है अही ! विदेहोको, सुन्दर लाम हुआ है विदेहोंको, जिनका

निमि जेमा धार्मिक, धर्मराजा, धर्ममें स्थित महाराजा है, निमिमी आनन्द ! इसी मत्तादेव-अम्भ-वनमें । प्रमजित हुआ ।

“ आनन्द । राजा ‘निमिका कलार जनक नामक पुत्र हुआ । वह घा छोड़ वेधर प्रमजित नहीं हुआ । उसने उस कल्याण वत्सको उच्छिन्न कर दिया । वह उनका अन्तिम-पुरुष हुआ ।

“ आनन्द ! इस समय मेने भी यह कल्याण वत्स स्थापित किया है, (जो कि) एकातनिदकेलिये, विरागकेलिये, निरोधकेलिये = उपशमकेलिये, अभिनाक्खिये, मयाधि (= बुद्धजान)केलिये, निर्माणकेलिये है—(वह) यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है—जैसे कि—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सङ्कल्प, सम्यक्-यार्क ० कर्मात्त, ० आशीय, ० ज्ञायाम, ० स्मृति, सम्यक् समाधि । यह आनन्द ! मेने कल्याण वत्स स्थापित किया है ० । सो आनन्द ! मैं यह कहता हूँ ‘जिसमें तुम इस मेरे स्थापित कल्याण-मार्गको अनुप्रवर्तित करना (= चलाते रहना), तुम मेरे अन्तिम पुरुष मत होना ।

भगवान् ने यह कहा, संशुष्ट हो आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के सापणका अभिनन्दन किया ।

सारिपुत्त-सुत्त ।

‘एमा’ मेने सुना—एक समय भगवान् धावन्ती ० जेतवाम विहार करत थ ।

तत्र आयुष्मान् सारिपुत्त जहा भगवान् थ, वहा जाकर अभिवान्नकर एक आर वें गये । एक और थ आयुष्मान् सारिपुत्तको भगवान् ने यह कहा—

“ सारिपुत्त ! ‘स्रोत आपत्ति अंग स्रोत आपत्ति-अंग कहा जाता है । सारिपुत्त ! स्रोत आपत्ति अंग क्या है ?”

“ सत्पुरुष तेवा भन्ते । स्रोत आपत्तिका अंग है । सर्वसंश्रवण स्रोत-आपत्ति अंग है । १ योनिश मनसिकार स्रोत-आपत्तिका अंग है । धर्मानुधर्म प्रतिपत्ति (= धर्मानुसार चलना) ० ।”

“ सारिपुत्त ! ‘स्रोत, स्रोत’ कहा जाता है । सारिपुत्त ! स्रोत क्या है ?”

“ भन्ते ! यही आर्य-अष्टांगिक मार्ग स्रोत है, जैसे—सम्यक् दृष्टि ० ।”

“ साधु । साधु ।” सारिपुत्त । सारिपुत्त ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग स्रोत है ; जैसे कि ० ।”

“ सारिपुत्त ! ‘स्रोत आपत्ति, स्रोत आपत्ति’ कहा जाता है । सारिपुत्त ! स्रोत आपत्ति क्या है ?”

१ गङ्गा, गण्डक, कोसी, हिमालयके बीचका प्रदेश (तिहुँत) ।

२ यत्तोलवा यथायस आवस्ती (पूर्वोराम)में किया, तीसरीवा जतवनम ।

३ सं नि ५४१५ ।

४ टीकने मनम करना ।

“ भन्ते । जो इस आर्य-अष्टांगिक-मार्गसे युक्त है, वही स्रोत आपन्न कहा जाता है ।
वही आयुष्मान् इस नामका इस गोत्रका है ।”

“ साधु ! साधु !! सारिपुत्र ॥ जो इस आर्य-अष्टांगिक-मार्गसे युक्त है० ।”

‘थपति-सुत्त ।

‘ऐसा मने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय बहुतसे भिक्षु भगवान्का चीवर-कर्म (= चीवर-भोना) करते थे—‘बास (सीना) समास हो जायेपर, तीनमास बाद भगवान् चारिकाको जायगे ।’ उस समय इमि दत्त (= ऋषिदत्त) और पुराण (दोनों) स्थपति (= राज) किसी कामसे साधुक (नामक गाव)में काम करते थे । इसिदत्त और पुराण स्थपतियोने सुना—बहुतसे भिक्षु भगवान्का चीवर नर्म कर रहे हैं० । तब ऋषिदत्त और पुराण स्थपतियोने मार्गमें आत्मी बैठा दिया—

‘हे पुरुष ! जब तुम भगवान्, अर्हत्, सम्यक्-संबुद्धको आते देखना, तो हमें कहना ।’
दो-तीन दिन बढनेके बाद उस पुरषने दूरसे ही भगवान्को आते देखा । देखकर जाकर ऋषिदत्त, पुराण स्थपतियोको कहा—

“ भन्ते ! यह वह भगवान्० आ रहे हैं, (अब) जिसका (आप) काल समर्थ (बेसा कर) ।”

तब ऋषि-दत्त, और पुराण, स्थपति जहा भगवान् थे, वहा गये, जाकर भगवान्का अभिवादनकर भगवान्के पीछे पीछे चले । तब भगवान् मार्गसे हटकर जहा एक वृक्ष था, पड़ा गये । जाकर बिठे आसनपर बहे । ऋषिदत्त पुराण स्थपति भी भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बहे गये । एक ओर बहे ऋषिदत्त और पुराणने भगवान्को यह कहा—

“ भन्ते ! जब हम सुनते हैं—‘भगवान् श्रावस्तीसे कोसलमें चारिकाको जायगे’ । उस समय हमारे मनमें असंतोष होता है, दुर्मनसता (= अप्रसन्नता) होती है—‘भगवान् हमसे दूर होजायेंगे’ । भन्ते ! जब हम सुनते हैं—‘भगवान् श्रावस्तीसे कोसलमें चारिकाके लिये बने गये ।’ उस समय हमारे मनमें असंतोष होता है, अप्रसन्नता होती है, ‘भगवान् हमसे दूर हैं ।’ भन्ते ! जब हम सुनते हैं—‘भगवान् कोसलसे मल्ल (देश)में चारिकाके लिये जायेंगे’, उस समय हमारे मनमें अप्रसन्नता होती है—‘भगवान् हमसे दूर होंग ।’ मल्लमें चारिकाके लिए बने गये, उस समय अप्रसन्नता होती है—‘भगवान् हमसे दूर हैं ।’ भन्ते ! जब हम भगवान्

१ सं नि ६४ १ ६ ।

२ अ क “भगवान् गाडीक मार्गके बीचसे जाते थे, दूसरे अगल बगलसे पीछ पीछे चल रहे थे ।”

३ अ क “भगवान्का चारिका करना और (मध्यदेशमें) सूर्यादय नियत हैं । मध्यमदेश ही में चारिका करते थे । मध्यमदेशमें ही सूर्यादय करता थे ।”

४ कोसलदेश=प्राय अवध और वस्ती, गोरखपुर, आजमगढ़, जौनपुर जिल्लोंके किन्ने हो भाग ।

५ मल्ल देश=वर्तमान गोरखपुर और छपरा (सारन) जिल्लोंका करीब २ संपूर्ण प्रदेश ।

को सुनते हैं—‘भगवान् मलसे ‘बन्नीमें० आयगे’ ० । ० । ० मलसे बन्नीमें० चले गये ० । ० बन्नीसे ‘काशी (देश) में ० । ० । ० काशीसे० ‘मगध (देश) में चले गये । ० उम समय बहुतही अमन्तोप होता है, बहुतही अप्रसन्नता० । भन्ते । जब हम सुनते हैं—‘भगवान् मगधसे काशी (देश) में ‘चारिकाको आयगे’—उम समय हमें सन्तोष होता है, प्रसन्नता होती है ‘भगवान् हमारे समीप’ होंगे, । ० काशीमें० चले आयेंगे ० । ० काशीसे बन्नीमें० आयेंगे ० । ० बन्नीसे मलमें० आयेंगे ० । ० मलसे कोसलमें० आयेंगे ० । जब हम भन्ते । भगवान् को सुनते हैं, कोसलसे थावस्तीको ‘चारिकाको आयेंगे ; उस समय हमें सन्तोष होता है, प्रसन्नता होती है—‘भगवान् हमारे समीप होंगे’ । जब० कोसलसे थावस्तीको चले दिये, उस समय हमें सन्तोष होता है, प्रसन्नता होती है । भन्ते । जब हम सुनते हैं—भगवान् थावस्ती में अनाथ पिंडनके आराम जेतनमें विद्वार करते हैं । उम समय हम बहुतही सन्तोष होता है, बहुतही प्रसन्नता होती है—‘भगवान् हमारे पास है ।’

“इसलिये स्थपतियों ! गृह-याम (= गृहस्थम रहना) संवाध (= संवाध पूर्ण) (रागादि) मल-का (आगमन) मार्ग है, प्रव्रज्या सुखी जगह है । किन्तु स्थपतियों ! तुम्हारे लिये अप्रमाद (से रहना) हो युक्त है ।”

“भन्ते ! हमें इस संवाध (= कठिनाई) में भी भारी संवाध है ।”

“स्थपतियों ! तुम्हें कौन संवाध है, जो इससे भी भारी संवाध है ?”

“भन्ते ! जब राणा प्रतेनजिन् कोसल उद्यान भूमिको जाना चाहता है (तो) राणा प्रतेनजिन् कोमलके मय हाथी अच्छा तरह तत्पर कर, राणा ० की सुन्दर स्त्रियोंको एक आगे एक पीछेकर बंधाते हैं । भन्ते ! उन भगिनियोंका हम प्रकारका गंध होना है, जेनकि गंधकी पिगरी तुरंत त्योंही गई हो, वैसे यह गंध विभूषित राजकन्यायें (होती हैं) । भन्ते ! उन भगिनियोंका शरीर स्पर्श क्या है, जेते हल पितुका = रुईके फाँटका, वैसेही सुखम पला उन राज-कन्यायोंका । उस समय भन्ते ! हमें हाथीका रक्षा करनी होती है, उन भगिनियोंकी भी रक्षा करनी होती है, आत्माकी (= अशनी) भी रक्षा करनी होती है । भन्ते ! हम उन भगिनियोंमें डरा भाव उत्पन्न नहीं करते । यह भन्ते । हम इस संवाधमें भी भारी संवाध है ।”

“इसलिये स्थपतियों ! गृहस्थ संवाध है, रजो-मार्ग है, प्रव्रज्या सुखी जगह है । किन्तु, स्थपतियों ! तुम्हारे लिये अप्रमाद ही युक्त है । स्थपतियों ! चार धर्मों (= चातों) से

१ बन्नी देश = चम्पारन, मुजफ्फरपुरके सपूर्ण जिले, दुर्गङ्गा जिले का अधिकांश, और छपरा जिलामें दिव्यवाराकी महीनदी (= जोकि गण्डकरी प्रवृत्त पुरानी धार है, गण्डक पागे में मही के नामसे प्रसिद्ध है) के संगम मिलने का पुराना स्थान मान, मही (= उपरी भाग में घोघाड़ी) के पूर्व ओर का मारा भाग ।

२ काशीदेश = बनारस, गाजीपुर, मिर्जापुर जिलोंके मगधसे उत्तरक भाग, तथा आजमगढ़ जौनपुर और प्रतापगढ़ जिलोंके अधिकांश भाग एवं बलिया जिला ।

३ मगध देश = पटना, और गयाक जिले, हजारीबाग जिलेका कुछ उत्तरी भाग ।

युक्त आर्य ध्रावक श्रोत आपन्न अविनिपात-धर्म (= न चतित होनेलायक), नियत सबेधि परायण होता है। किन चारोंसे ? (१) बुद्धमें अत्यन्त प्रसन्न० । धर्ममें० । संस्थमें । मर मात्पर्य-रहित चित्तसे गृह वाम करता है, मुक्त त्याग = प्रयत्न-पाणि = दान-रत, याने योग होता है, दानदेम रत होता है। स्थपतियो ! इन चार धर्मोंसे युक्त आर्य ध्रावक श्रोत आपन्न० होता है। तुम स्थपतियो ! बुद्धमें अत्यन्त प्रसन्न हो० । जो बुद्धमी (तुम्हारे) बुद्ध (= घर)म दातव्य उत्तु है, सभी शील-यान्, कल्याण-धर्मा (= धर्मात्मा) (जनों)केलिये है। तो क्या मानने हो, स्थपतियो ! कोसल (देश)में कितने एक मनुष्य हैं, जो नान देनेमें तुम्हारे समान हैं ।”

“भन्ते ! हमें लाभ है, हमने सुलभ पा लिया, जिन हमलोंगोंको भगवान् जमा ससङ्गते हैं ।”

(चिसाखा)-सुत्त ।

“एवम ३मेने सुना—एक समय भगवान् ध्रावस्तीमें मृगार-माताके प्रासाद ३पूर्वाममें विहार करते थे ।

उस समय चिसाखा मृगार-माताका प्रिय = मनाप नाती मर गया था । तब चिसाखा मृगार माता भीगे वख, भीगे केश मध्याह्नमें जहा भगवान् थे, बहा गई । जाकर भगवान्को अभिगदन कर एक ओर बेठी । चिसाखा मृगार-माताको भगवान्ने कहा—

“हन्त (= है) ! चिसाखे ! तू भीगे वख, भीगे केश, मध्याह्नमें कहासे आ रही है ।”

“भन्ते ! मेरा प्रिय = मनाप नाती मर गया, इसलिये मैं भीगे वख, भीगे केश मध्याह्न आ रही हूँ ?”

“चिसाखा ! ध्रावस्तीमें जितने मनुष्य हैं, तू उतने पुत्र, नाती (= पौत्र) बाहेगी ।”

“भन्ते ! ध्रावस्तीमें जितने मनुष्य हैं, मैं उतने बेटे-पोते चाहूंगी ।”

“चिसाखे ! ध्रावस्तीमें प्रतिदिन कितने मनुष्य मरा करते हैं ?”

“भन्ते ! ध्रावस्तीमें प्रतिदिन दस मनुष्य भी काल करते हैं । नव भी० । आठ भी० । सात भी० । छ० । पाच० । चार० । तीन० । दो० । एक० । भन्ते ! ध्रावस्ती मनुष्यां मेरे बिना (एक दिन भी) नहीं रहती ।”

“तो क्या मानती है, चिसाखा ! क्या तू बिना भीगे वख, बिना भीगे-केश रह सकेगी ?”

“नहीं, भन्ते ! मेरे जितने बेटे पोते हैं, उतने ही बन्म ।”

“(इसीलिये)चिसाखे ! जिनके सौ प्रिय होते हैं, उनके सौ हूँ ख होते हैं । जिनक नन्म

१ चौतीसवा वषागास भगवान्ने ध्रावस्ती (पूर्वाम)में बिताया ।

२ उदान ८ ८ ।

३ वर्तमान हनुमन्व (सट्ट-मट्टके समीप) ।

यस्य०, उनके नग्ने दुःख० । ०अस्मी० । ०सत्तर० । ०साठ० । ०पचास० । ०चालीस० ।
तीस० । ०वीस० । ०दस० । ०त्रय० । ०आठ० । ०सात० । ०छ० । ०पाच० । ०चार० ।
तीन० । ०दो० । जिनको एक प्रिय होता है, उनको एक दुःख होता है । जिनको प्रिय
होता, उनको दुःख नहीं होता । यह शोक रहित रत्न (=राम अदि) रहित, उपायास
(=परेशानी) रहित हैं—कहता हूँ ।”

तब भगवान् ने इस अर्थको जान उम्मी येल्गार्म यह उद्गम कहा—

“लोकमें जो शोक, परिदेव नाना प्रकारके दुःख हैं, वह प्रियके कारण होते हैं, प्रिय
(वस्तु) न होनेपर वह नहीं होते ॥१॥

“इसलिये यही छद्मी शोक-रहित हैं, जिनको लोकमें कहीं भी प्रिय नहीं । इसलिये
जो न शोक, विरत होना चाहे, वह लोकमें कहा प्रिय न बनाने ॥२॥”

पधानीय सुत्त ।

१ ऐसा^१ मेने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें जेतवनमें विशार करते थे ।

तब भगवान् सार्यकालको प्रतिमलया (=ध्यान)से उठकर, जहाँ उपस्थान शाला
थी, वहा गये, जाकर बिठे आमनपर धरे । आयुष्मान् सारिपुत्र भी सार्यकाल ध्यानसे उठ,
जहा उपस्थान शाला थी वहाँ गये, जाकर भगवान् को अभिवादनकर, एक ओर धैठ गये ।
आयुष्मान् सौत्रलयाधन भी० । ०महाकाश्यप भी० । ०महाकात्याया भी० । ०महाकौटिल्य
भी० । ०महाचुन्द्र० । ०महाकपिल० । ०अनुरद्ध० । ०रेवत० । आयुष्मान् आनन्द भी० ।
तब भगवान् बहुत रात तक धैर्यकीर्म यिता, आमनसे उठ विहारमें चले गये । यत (दूसरे)
आयुष्मान् भी भगवान् के जानेके थोड़ीही देर बाद, आसनमें उठकर अपने अपने विहार
(=पषाविहार)को चले गये । जो कि वहा नये मिथु, थोड़ेही दिनके प्रप्रजित, इस धर्म-
पिनय (=धर्ममें) अभी जाये थे, वह सूर्योदय तक बराटे ले मोते रहे । भगवान् ने दिव्य,
त्रिशुद्ध, अमानुष चक्षुसे उन मिथुओंकी रसोंटे मार सोते देखा । देखकर जहा उपस्थान शाला
थी, वहा गये, जाकर रत्नसे आसनपर धठ । बठकर भगवान् ने उन मिथुओंको आमंत्रित
किया—

“मिथुओ ! सारिपुत्र वहा है १० आनन्द कहा है १ मिथुओ । वह स्थविर श्रावक
कहा गये १”

“मन्ते । वह भी भगवान् के जानेके थोड़ी ही देर बाद आसनमें उठकर, अपने अपने
विहारमें चले गये १”

“तो मिथुओ ! रत्नरि (=वद्ध)से लेकर नये तक, सूर्योदय तक खरोंटे मारकर सोते
हो १ तो क्या मानने हो, मिथुओ । क्या तुमने देखा या सुना है, मूर्धाभिपिक (=गभियेक

प्राप्त) क्षत्रिय राजाको इच्छानुसार शयन-सुख, स्पर्श-सुख, मृदु (= आलस)-सुखके साथ विहार करते, जीवन पर्यन्त राज्य करते, या देशका प्रिय = मनाप होते ?”

“ नहीं भन्ते । ”

“ साधु भिक्षुओ ! भिक्षुओ ! मैंनेभी नहीं देखा, नहीं सुना—राजा = मूर्खानिष्ठः क्षत्रियको० । तो क्या मानतेहो, भिक्षुओ ! क्या तुमनेदेखा या सुना है ? राष्ट्रिक (= राष्ट्र) ० । ० पितृणः ० । ० सेनापतिक ० । ० ग्राम-ग्रामिक ० । (= गाम गामिक) ० । ० पूग-ग्रामणिकको इच्छानुसार शयन सुख०के साथ विहार करते, जीवन-पर्यन्त पूग-ग्रामणिकत्व काते, या पूगका प्रिय = मनाप होते ? ” “ नहीं भन्ते ! ”

“ साधु, भिक्षुओ ! भिक्षुओ ! मैंने भी नहीं देखा ० । तो क्या मानने हो, भिक्षुओ ! क्या तुमने देखा या सुना है, शयन-सुख स्पर्श-सुख, मृदु-सुखसे युक्त, इन्द्रियोंके द्वारों-को न रोकनेवाले, भोजनकी मात्राको न जाननेवाले, जागरणमें न तत्पर, धर्मग्राहणको इच्छानुसार वृत्तल (= अड्डे) धर्मोंकी विपश्यना न करनेवाला हो, पूर्वरात्र (= रातके पहिले भाग) और अपर-रात्र (= रातके पिछे)में बोधि-पक्षीय-धर्मोंकी भावना न करते, आसन्नोक्ते क्षणसे आसन्न-रहित चित्तकी विमुक्ति (= मुक्ति), प्रण-विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं अभिज्ञानरूप, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर, विहरते ? ” “ नहीं भन्ते । ”

“ साधु भिक्षुओ ! मैंनेभी भिक्षुओ ! नहीं देखा ० । इसलिये भिक्षुओ ! पक्ष सीखना चाहिये—इन्द्रिय द्वारको सुरक्षित रखवूँगा । भोजनकी मात्रा (= परिमाण) न जाननेवाला होऊँगा । जाननेवाला ० । कुशल धर्मोंका विपश्यक ० । पूर्व रात्र अपर-रात्रमें बोधि पक्षीय धर्मोंकी भावनामें लग्न रहकर विहरूँगा । भिक्षुओ ! तुम्ह ऐसा सीखना चाहिये । ”

जरा सुत

“ ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें मृगार माताके प्रासाद पूर्वांशमें विहार करते थे ।

उस समय भगवान् अषाढकालमें (= साधारण समय) ध्यानसे उठकर पिउवाड़े धूप बेटे थे । तब आयुमान् आनन्द जहां भगवान् थे, वहां गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर, भगवान् के शरीर को हाथसे मीजने हुये, भगवान्को बोले—

“ आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते !! भन्ते ! भगवान्के चमड़ेका रंग उतना परि शुद्ध, उतना पर्यवदात (= उज्ज्वल) नहीं है । गात्र (= अंग) शिथिल हैं । सब शूरियां पड़ी

१ गवर्नर = प्रदेशाधिकारी । २ नगराधिकारी मेयर (?) । ३ ग्रामका अफसर । ४ एक समुदायका अफसर । ५ भगवान्ने छत्तीसवा (वि पू ४३६) वर्षावास आश्रम (पूर्वाराम)में किया । ६ स नि ४७ ५ १ । ७ अ क “ प्रासादकी छायासे पूर्व दिशान्, वैसे होनेसे प्रासादके पच्छिमपाले भागमें धूप थी ” ।

हैं । शरीर आगेकी ओर झुका (= प्राग्भार = सामनेकी ओर लटका) है । इन्द्रियोंमें भी विकार (= अन्यथात्व) दिवाई पड़ता है—चक्षु इन्द्रियमें, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय-इन्द्रियमें । "

"आनन्त ! यह ऐसाही होताहै । यौवनम जरा धर्म (= बुढ़ापा) है, आरोग्यमं व्याधि धर्म है, जीवनमें मरण धर्म है । ।

भगवान् ने यह कहा । सुगतने यह कहकर फिर शास्ता (= उद्द) ने यह भी कहा—

'हे दुवण करनेवाला जरे । तुझ जराको धिक्कार है । चाहे सौवर्ष भी जीयें सभी मृत्यु-परायण हैं । (यह जरा) किसी को नहीं छोड़ती, सभीको मर्दन करती है । '

बोधि-राजकुमार-सुत्त (वि. पू. ४३५) ।

“ऐसा मेने सुना—एक समय भगवान् भर्ग (देश)में सुसुमारगिरिके भैर कला-न, मृगशवमें विहार करते थे । उस समय बोधि-राजकुमारने श्रमण या ब्राह्मण या किसी भा मनुष्यसे न भोगे कोक नाद नामक प्रासादको हालहीमें बनवाया था । तब बोधि राजकुमारने संजिकापुत्र भाणवकको सम्बोधित किया—

“आओ तुम सौम्य ! संजिकापुत्र ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ । जाकर मेरे वक्त् से, भगवान् के चरणोंमें शिरसे वन्दनाकर, आरोग्य, अन् आतक, लघु-उत्थान (= शरीरको कार्य क्षमता) बल, अनुकूल विहार, पूछो—‘भन्ते ! बोधि राजकुमार भगवान् के चरणोंमें शिरसे वन्दनाकर आरोग्य० पूछता है’ । और यह भी कहो—‘भन्ते ! मिश्रु संघसहित भगवान् बोधि राजकुमारका कलका भोजन स्वीकार करें ।”

“अच्छा हो (=भो)” कह संजिका पुत्र माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान् ने (कुदाल प्रश्न) पूछ, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठकर संजिका-पुत्र माणवकने भगवान् ने कहा—“हे गोतम ! बोधि राजकुमार आपके चरणोम० । बोधिराज कुमारका कलका भोजन स्वीकार करें ।”

भगवान् ने मौनद्वारा स्वीकार किया । तब संजिका-पुत्र माणवक भगवान् की स्वाङ्गिति जान, आत्मनसे उठ जहा बोधि राजकुमार था, वहा गया । जाकर बोधि राजकुमारसे बोला—

“आपके ध्वनसे मैंने उन गोतमको कहा—‘हे गोतम ! बोधि राजकुमार० । श्रमण गोतमने स्वीकार किया ।”

तब बोधि-राजकुमारने उस रातके दोतनेपर अपने घरमें उत्तम खादनीय भोजनीय (पदार्थ) तैयार करवा, कोकनाद-प्रासादको सफेद (=अवदात) धुस्पाँसे सीढ़ीके नीचे तक निटवा, संजिकापुत्र माणवकको संबोधित किया—

“आओ सौम्य ! संजिकापुत्र ! जहा भगवान् हैं, वहा जाकर भगवान् को काल कहो— ‘भन्ते ! काल है, भात (=भोजन) तय्यार होगया ।”

“अच्छा भो !” काल कहा ।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिन्कर पात्रचीवर ले, जहा बोधि राजकुमारका घर (=निवास) था, वहाँ गये । उस समय बोधि राजकुमार भगवान् की प्रतीक्षा करता हुआ, द्वा कोष्ठ (=नीयतस्नाना) के बाहर खड़ा था । बोधि-राजकुमारने दूरसे भगवान् को आते देखा । देखते ही भगवानीकर भगवान् की वन्दनाकर, आगे आगे करके जहा कोकनाद प्रासाद था, वहा लगया । तब भगवान् निचली सीढ़ीके पास खड़े होगये । बोधि राजकुमारने भगवान्

से कहा—“भन्ते । भगवान् धुस्मोपर चले । सुगत । धुस्मोपर चले, ताकि (यह) चिरकाल तक मेरे हित और सुखके लिये हो ।”

ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे ।

दूसरीवारभी योधि राजकुमारने० । तीसरी वारभी ० ।

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दकी ओर देखा । आयुष्मान् आनन्दने योधि-राज-कुमारको कहा—

“राजकुमार ! धुस्मोको समेट लो । भगवान् पावड़े (=चेह पक्ति) पर १ चढ़गे । तयागत आनेवाली जनताका ख्यालकर रहे हैं ।”

योधि राजकुमारने धुस्मोको समेटाकर, कोकनद प्रासादके ऊपर आसा बिछाये । भगवान् कोकनदप्रासादपर चढ़, संघके साथ बिठे आसनपर बैठे । तब योधि राजकुमारने उद्ध प्रमुख भिक्षुसभको अपने हाथसे उत्तम स्वादनीय भोजनीय (पदार्थ) से स्तुति किया, संतुष्ट किया । भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, योधिराजकुमार एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया । एक ओर धठ हुये योधिराजकुमारने भगवान्ने कहा—

“भन्ते ! मुझे ऐसा होता है, कि एक सुखमें प्राप्य नहा, सुख दुःखमें प्राप्य है ।”

“राजकुमार । योधिले पहिले = बुद्ध न हो योधि मत्त्व होते समय, मुझ भी यही होता था—‘सुख सुखमें प्राप्य नहीं है, सुख दुःखमें प्राप्य है ।’ इसलिये राजकुमार ! मैं उस समय बहर (=नर-यम्पक) ही, बहुत फाले काले केशवाला, छन्दर (=भद्र) योगनके साथ ही, प्रथम धर्ममें, माता-पिताके अधुसुय होते, घरसे बेघर हो प्रयत्नित हुआ । इस प्रकार प्रयत्नित हो, जहाँ आलार-कालाम था, वहाँ गया । जाकर आलार-कालामसे कहा—‘आहुय कालाम । इस धर्मयिनयमे मैं प्रद्वार्य पाप करना चाहता हूँ ।’ ऐसा कहनेपर राजकुमार ! आलार-कालामने मुझे कहा—‘विहरो आयुष्मान् ! यह ऐसा धर्म है, जिसमें बिल (=जान-कार) पुण्ड्र जलद ही अपने आचार्यत्वको स्वयं जानकर = साक्षात्कर, = प्राप्तकर विहर करेगा ।’ सो मैंने जलद ही = क्षिप्र ही उस धर्म (=राठ)में प्रयास कर लिया । तब मैं उसने ही शोध हुये मात्र = कहने कहाने मात्रसे, ज्ञानवाद और स्थविरवाद (=बुद्धोका मिद्वान्त) कहने लगा—‘मैं जानता हूँ, देवता हूँ ।’ तब मेरा मनमें ऐसा हुआ—आलार-कालामने ‘इस धर्मको केवल श्रद्धासे स्वयं जानकर = साक्षात्कर = प्राप्तकर मैं विहरता हूँ’ यह मुझे नहीं बतलाया । जहर आलार-कालाम इस धर्मको जानता दयता विहरता होगा । तब मैं जहाँ आलार कालाम था, वहाँ गया । जाकर आलार-कालामसे पूछा—‘आहुय कालाम ! तुम इस धर्मको स्वयं जानकर = साक्षात्कर = प्राप्तकर (=उपसपद) कहा पर्यन्त बतलाते हो ?’ ऐसा कहनेपर राजकुमार ! आलार-कालामने ‘आर्किचन्यायतन’ बतलाया ।

तब मुझे ऐसा हुआ—‘आलार-कालाम हीके पास श्रद्धा नहीं है, मेरे पास भी श्रद्धा है । आलार-कालाम हीके पास धीर्य नहीं है० । ०स्मृति० । ०समाधि० । ०प्रज्ञा० । ०धर्म०, जिस धर्मको आलार कालाम—‘स्वयं जानकर = साक्षात्कर = प्राप्तकर विहरता हूँ’

कहता है, उस धर्मको साक्षात्कार करनेके लिये मैं भी उद्योग करूँ। सो मैं बिना देर किए क्षिप्र ही उस धर्मको स्वयं जानकर=साक्षात्कर=प्राप्तकर विहरने लगा। तब मैं राजकुमार। आलारकालामको कहा—‘आबुस कालाम! तुम इतना ही इस धर्मको स्वयं जानकर० हमलोगाको बतलाते हो?’—‘आबुस! मैं इतना ही इस धर्मको स्वयं जानकर बतलाता हूँ।’ आबुस। इतना तो ‘मैं भी इस धर्मको स्वयं जानकर० विहरता हूँ।’ आबुस! हमे लाभ है, आबुस! हमें सुख मिले, जो हम आयुष्मान् जैसे स प्रबन्धवादी (=गुरु भाई)को देखने हैं। मैं जिस धर्मको स्वयं जानकर० बतलाता (=उपदेश करता) हूँ, तुम भी उसी धर्मको स्वयं जान० विहरते हो, तुम जिस धर्मको स्वयं०, मैं भी उसी धर्मको०। इस प्रकार मैं जिस धर्मको जानता हूँ, उस धर्मको तुम जानते हो। जिस धर्मको तुम जानते हो, उस धर्मको मैं जानता हूँ। इस प्रकार जैसे तुम, वैसे मैं, जसा मैं, वैसे तुम हो। आबुस! आओ अब हम दोनों ही इस गण (=जमात)को धारण करें।’ इस तरह मेरा आचार्य होते हुये भी, आलार-कालामने मुझ अन्तेवासा (=शिष्य)को अपने बराबरके स्थानपर स्थापित किया, बड़े सत्कार (=पूजा)से सत्कृत किया। तब मुझे यों हुआ—‘यह धर्म॥ निर्देह (=उदासीनता)के लिये है, न वेराग्यके लिये, न निरोधके लिये, न उपशम (=शान्ति)के लिये न अभिजा (=दिव्य शक्ति)के लिये, न सम्बोधि (=परमज्ञान)के लिये, न निर्वाणके लिये है, ‘अक्चन्यायतन’ तरु उत्पन्न होने हीके लिये (यह) है। सो मैं राजकुमार! उस धर्मसे अपर्याप्त मान, उस धर्मसे उदास हो चल दिया।

‘मो राजकुमार! मैं ‘क्या कुशल (=अच्छा) है’ की गयेपण करता, सर्वोत्तम श्रेष्ठ शांतिपदको खोजता, जहाँ उदक राम-पुत्र था, वहाँ गया। जाकर उदक (=उदक) राम पुत्रसे बोला—‘आबुस! इस धर्म-विनयमें मैं ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता हूँ।’ यमा कहनेपर राजकुमार! उदक राम पुत्र मुझसे बोला—

“विहरो आयुष्मान्! यह वेसा धर्म है, जिसमें विश्व पुरुष जलवही अपने आचार्यस्वको स्वयं जानकर=साक्षात्कर=प्राप्तकर विहार करैगा।’ सो मैंने तुरन्त क्षिप्रही उस धर्मको प्राप्त कर लिया। सो मैं उतनेही ओठ छुये मात्र=कहने कहाने मात्रसे ज्ञानवाद, और स्थविर-वाक्य कहने लगा—‘मैं जानता हूँ, देखता हूँ’। तब मुझे ऐसा हुआ—रामने मुझे यह बतलाया “मैं इस धर्मको केवल श्रद्धासे, स्वयं जानकर=साक्षात्कर=प्राप्तकर विहरता हूँ।’ जल्द राम इस धर्मको जानते देखते विहरता होगा। तब उदक रामपुत्रसे मैंने पूछा—‘आबुस रामपुत्र! इस धर्मको स्वयं जान० बतलाते हो?’ ऐसा कहने पर! उदक राम पुत्रने “अक्चन्यायतन-नासजायतन’ बतलाया। तब मेरे (मन)में हुआ—‘उदक रामपुत्रके पासही बड़ा नहीं है, मेरे पास भी श्रद्धा है०। क्यों न०।’ इस तरह मेरा आचार्य होते हुये उदक रामपुत्रने मुझ अन्तेवासीको अपने बराबरके स्थानपर स्थापित किया०। सो मैं! उस धर्मसे उदास हो चल दिया।

“राजकुमार। ‘क्या अच्छा है’

करता (=किंकुमल-भाषेमी), सर्वोत्तम,

श्रेष्ठ शातिपदको कोजते हुए, मगधमें प्रमत्त चारिका करते, जहाँ उखेला सेनानी निगम (=कम्पा) था, वहाँ पहुँचा । वहाँ मैंने रमणीय भूमि भाग, सुन्दर वन रुझ, बहती नदी, श्वेत सुप्रतिष्ठित, चारों ओर रमणीय गोचर प्राप्त किया । तब मुझे राजकुमार । ऐसा हुआ—'रमणीय है, हो ! यह भूमि भाग । प्रधा इच्छुक कुत्र पुत्रके प्रधानके लिये यह बहुत ठीक (स्थान) है' । सो मे 'प्रधानके लिये यह अल (=ठीक) है, (सोच), वहाँ बैठ गया । मुझे (उम समय) अद्भुत, अ श्रुत पूर्व, तीन उपमायें मान हुई ।—

'जैसे । गोला काष्ठ भीमे (=स्नेह) पानीमें डाला जाये । (कोई) पुरुष 'आग बनाईगा,' 'तेज प्रादुर्भूत करेगा' (सोच), 'उत्तरारणी लेकर आये । तो क्या वह पुरुष गोले पानीमें पड़ी गोलेकाष्ठकी उत्तरारणीको लेकर, मयकर अग्नि बना सरेगा, तेज प्रादुर्भूत कर सकैगा ?'

"नहीं भन्ते !"

"सो किम लिये ?" "(एक तो यह) स्नेह-युक्त गोला काष्ठ है, फिर वह पानीमें डाला है । ऐसा करनेवाला वह पुरुष सिर्फ यकावद, पीड़ाका ही भागी होगा ।"

"ऐसेही राजकुमार । जो ब्राह्मण काया द्वारा काम वासनाओंमें लग्न हो विचरते हैं । जो कुठभी इनका काम (=वासनाओं)में काम रचि=काम स्नेह=काम मूत्र=काम विपासा=काम-परिदाह है, वह यदि भीतरमें नहीं छुगा है, नहीं समित हुआ हैं । तो प्रयत्नशील होने पर भी वह श्रमण ब्राह्मण दुःख(-द) तोष कटु, वेदना (मात्र) मह रहे हैं । वह नान-दर्शन अनुत्तर-मंशोध (=परम ज्ञान)के अयोग्य है ।

"राजकुमार ! यह मुझे पहिलो अद्भुत, अश्रुत पूर्व उपमा मान हुई ।

"और भी राज कुमार ! मुझे दूसरी अद्भुत अश्रुत पूर्व उपमा मान हुई । राजकुमार ! जैसे स्नेह-युक्त गोला काष्ठ जलके पान स्थलपर फँका हो । और कोई पुरुष उत्तरारणी लेकर आय—'अग्नि बनाईगा' 'तेज प्रादुर्भूत करेगा' । तो क्या समझते हो राजकुमार ! क्या वह पुरुष अग्नि बनासकैगा, तेज प्रादुर्भूत कर सकैगा ?"

"नहीं भन्ते "

"सो किम लिये ?"

"(एक तो) वह काष्ठ स्नेह-युक्त है, और पानीके पान स्थलपर फँका हुआ भी है । वह पुरुष सिर्फ यकावद, पीड़ा (मात्र) का ही भागी होगा ।"

"ऐसे ही राजकुमार ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण कायाके द्वारा वासनाओंसे लग्रहो विहरते हैं । ० अयोग्य हैं । राजकुमार । मुझे यह दूसरी ० ।

"और भी राजकुमार ! तीसरी अद्भुत अश्रुत पूर्व उपमा मान हुई ।—जैसे नीरस शुष्क काष्ठ जलमें दूर स्थलपर फँका है । और कोई पुरुष उत्तरारणी लेकर आये—'आग

१ मिश्रारत-योग्य पाश्चैत्यी नाम । २ निर्वाण प्राप्ति करानेवाली योग युक्ति ।

३ रगदकर आग निमानेकी लकड़ी ।

बनाऊंगा', 'तेज प्रादुर्भूत करूँगा।' तो क्या वह पुरष नीरस शुष्क, जल्से दूर पेंके काष्ठको, उत्तराणीसे मथन करके अग्नि बना सकेगा, तेज प्रादुर्भूत कर सकेगा ?

“हां, भन्ते !”

“सो किमलिये ?”

“भन्ते । वह नीरस, सूखा काष्ठ है, और पानीसे दूर स्थलपर पेंका है ।”

“ऐसेही राजकुमार ! जो कोई श्रमण ब्राह्मण, कायाद्वारा काम वासनाओंमें अलग हो विहरेते हैं । और जो उनका काम वासनाओंमें काम-परिदाह है, वह भीतरसे भी सुषहीन (=अच्छी तरह छूट गया) है, सुशमित है । तो वह प्रयत्नशील श्रमण ब्राह्मण दुःख (-१), तीव्र, कटु वेदना नहीं भोगते । वह ज्ञान-दर्शन = अनुत्तर संयोगके पात्र हैं । यदि वह प्रयत्नशील श्रमण ब्राह्मण दुःख, तीव्र, कटु वेदनाको भांगें भी, (तो भी) वह ज्ञान दर्शन = अनुत्तर संयोगके पात्र है । यह राजकुमार तीसरी० ।

“तत्र राजकुमार । मेरे (मनमें) हुआ—“क्यों न मैं दांतोंके ऊपर दांत रख, जिह्वा द्वारा तालने दया, मासे मनको निग्रह करूँ, दयाऊँ, संतापित करूँ । तब मेरे दांतपर दांत रखने, जिह्वासे ताल दाने, मनसे मनको पकड़ने, दवाने, तपानेमें, काखसे पसीना निकलता था, जैसे कि राजकुमार । बलवान् पुरुष सीससे पकड़कर, धधेसे पकड़कर, दुर्बल तर पुरुष को पकड़े, दवाये, तपाये, ऐसेही राजकुमार ! मेरे दातपर दात० काँपसे पसीना निकलता था । उस समय मैंने न दाने वाला धीर्य (=उद्योग) आरम्भ किया हुआ था, स्मृति बना थी, काया भी तत्पर थी ।

“तत्र मुझे यह हुआ—क्यों न मैं आसाररहित ध्यान धरूँ ? सो मैंने राजकुमार । मुख और नासिकासे आसका आना जाना रोक दिया । तत्र राजकुमार । मेरे मुख और नासिकासे आश्वास प्रश्वासके रुक जानेपर, कानके छिद्रोंसे निकलते वातो (=हवाओं) का बहुत अधिक शब्द होने लगा । जेमे कि—लोहारकी धौंकनीसे धौंकनेसे बहुत अधिक शब्द होता है ; ऐसेही० । ०न दानेवाला धीर्य आरम्भ किया हुआ था० ।”

“तत्र मुझे यह हुआ—क्यों न मैं आस रहित ध्यान धरूँ ? सो मैंने राजकुमार । मुखसे० । तत्र मेरे मुख, नासा और कर्णसे आश्वास प्रश्वासके रुक जानेसे, मूर्धामें बहुत अधिक वात उत्पन्नते । जैसे बलवान् पुरुष तीक्ष्ण शिखरसे मूर्धा (=तिर) को मथे, ऐसेही राजकुमार । मेरे० ।

“तत्र मुझे यह हुआ—क्यों न आस-रहित ध्यान धरूँ ?—सो मैंने मुख, नासा, कर्णसे आश्वास प्रश्वास को रोक दिया । तत्र मुझे मुख, नासा, कर्णसे आश्वास प्रश्वासके रुक जानेसे सीसमें बहुत अधिक सीस-वेदना (=तिर दर्द) होती थी । ०न दवाने वाला० ।

“तत्र राजकुमार । मुझे यह हुआ—क्यों न आस-रहितही ध्यान धरूँ ?—सो मैंने० । ०रुक जानेपर बहुत अधिक वात पेट (=कुक्षि)को छेदते थे । जैसे कि दक्ष (=चतुर) गो घातक या गो-घातक अन्तेवामी तेज गो-विकर्त्तन (=छुरा)से पेटको काटे, ऐसेही० । न दाने वाला० ।

“ तव मुने यह हुआ, ‘क्यो न शास-रहितही ध्यान (फिर) घर’ ० । राजकुमार ० । ० कायामें अत्यधिक दाह होता था । जैसे कि दो यलवान् पुरुष दुर्बल तर पुरुको अनेक घाटोंमें पकड़कर अंगारोंपर तपावें, चारों ओर तपावें, ऐसेही ० । न दग्ने ० ।

“ देवता भी मुझे कहते थे—‘ श्रमण गौतम मर गया ।’ कोई २ देवता यों कहते थे—‘श्रमण गौतम नहीं मरा, न मरेगा, श्रमण गौतम अर्हत् है ।’ अर्हत्वाका तो इस प्रकारका विहार होताही है ।

“ मुने यह हुआ—“ क्यो १ आहारको बिल्कुलही छोड़ देना स्वीकार कर’ । तब देवताओंने मेरे पास आकर कहा—मार्प ! तुम आहारका बिल्कुल छोड़ना स्वोसार करो । इस तुम्हारे रोम-रूपोंद्वारा दिव्य भोज ढाल देंगे, उभीसे तुम निर्वाह करोगे । । तब मुने यह हुआ—मैं (अपनेको) सब तरहसे निराहार जानूँगा और यह देवता रोम-रूपोंद्वारा दिव्य भोज मेरे रोम-रूपोंके भीतर ढालेंगे, मैं उसीसे निर्वाह करूँगा । यह मेरा मूषा होगा । सो मैंने उन देवताओंका प्रत्याग्याम किया—‘रहने दो’ ।

“ तब मुने यह हुआ—क्यो १ मैं थोड़ा थोड़ा आहार ग्रहण करूँ—पत्थर भर मूग का जूस, या कुल्लुकी का जूस या मटरका जूस, या अदरक का जूस—। सो मैं थोड़ा थोड़ा पत्थर पत्थर मूगका जूस ० ग्रहण करने लगा । थोड़ा थोड़ा पत्थर पत्थर भर मूगका जूस ० ग्रहण करते हुये, मेरा शरीर (दुर्बलताकी) चरम सीमाको पहुँच गया । जैसे आसीतिरु (= धनस्पति विशेष) की गाँव, वैसेही उस अल्प आहारसे मेरे ढग प्रत्यङ्ग हो गये । उस अल्प आहारसे जैसे ऊँटका पैर, वैसेही मेरा कूहा (= आनिमद) होगया, ० जेमे सुझोरी पाती (= वझनावली) वैसेही ऊँचे नीचे मेरे पीठ्य काटे होगये । ० जेसे पुरानी शालाकी कड़िया (= दोड़े = गोपानमी) अर्हण वर्ण (= ओलुग-बिलुग) होती है, ऐसेही मेरी पंशुलिया हो गई थी । जैसे गहरे पृथे (= उदपान) में पानीका तारा (= उदक तारा) गहराईम, बहुत दूर रिवाइ देता है, उभी ० । जैसे कच्चा तोड़ा कटवा लौका हवा धूपसे बिचुर (= सपुवित) जाता है मुझा जाता है, ऐसेही मेरे शिरकी साल बिचुर गई थी, मुझा गई थी । राजकुमार ! यदि मैं पेटकी खालको ममलता, तो पीठके काँटाको पकड़ लेता था, पीठके काँटाको ममलता तो पेटकी खालको पकड़ लेता था । उस अल्पपाहारेमे मेरे पीठके काँटे और पेटकी खाल बिल्कुल मट गई थी । यदि मैं पासाना या सूज करता, वहाँ अहरार (= उपकुज) गिर पड़ता था । जब मैं कायाको सहराते (= अस्तमेन्तो) हुये, हाथसे गात्रको ममलता था, तो हाथमे गात्र ममलते वक्त, कायासे सड़ी जड़ बाँटे (= पूति-मूल) रोम झड़ पड़ते थे । ‘मनुष्य भी मुझे देखकर कहते थे—‘श्रमण गौतम काला है’ । कोई कोई मनुष्य कहने थे—“ श्रमण गौतम काला नहीं है, दयाम है ।” कोई कोई मनुष्य यों कहने थे “ श्रमण गौतम काला नहीं है, न दयाम ही है, मंगुर-वर्ण (= मंगुरच्छवि) है’ । राजकुमार ! मेरा चेसा परि शुद्ध परि अजदात (= सफेद, गोरा) छवि वर्ण (= चमड़ेका रंग) नष्ट हो गया था ।

“ तब मुने यों हुआ—अतीत कालमें जिन किन्हीं श्रमणों ब्राह्मणोंने घोर दुःख तोन और

कटु वेदनायें सहीं, इतनेही पर्यन्त, (सही होंगी) इससे अधिक नहीं, भविष्य कालमें जो कोई भ्रमण ब्राह्मण घोर दुःख तीव्र और कटु वेदनायें सहेंगे, इतनेही पर्यन्त, इससे अधिक नहीं। आजकलभी जो कोई भ्रमण ब्राह्मण घोर दुःख, तीव्र, और कटु वेदना सह रहे हैं ०। लेकिन राजकुमार ! मेरे उम्र दुप्कर कारिकासे उत्तर मनुष्य-धर्म 'मालमार्य' ज्ञान दर्शन विशेष न पाया। (विचार हुआ) बोधके लिये क्या कोई दूसरा मार्ग है ?

“तब राजकुमार ! मुझे यो हुआ—“मालूम है मैंने पिता (शुद्धोदन) शाक्यके सेना जासुनकी टंडी जायाके नीचे, बेद, काम और अकुशल-धर्मों को हटाकर प्रथम ध्यानको प्राप्त हो, विहार किया था। शायद वह मार्ग बोधिका हो। तब राजकुमार ! ऐसे यह हुआ—क्या मैं उस सुखसे दरता हूँ, जो सुख काम और अकुशल-धर्मोंसे भिन्नमें है। फिर मुझे राजकुमार यह हुआ—मैं उस सपत्ते नहीं डरता हूँ, जो सुख ०। तब मुझे राजकुमार यह हुआ—इस प्रकार अत्यन्त दृढ़, पनले कायासे वह छल मिलना सुकर नहीं, क्यों न मैं स्थूल आहार—भात-दाल (= कुल्माप) ग्रहण करूँ। सो मैं राजकुमार ! स्थूल आहार ओदन कुल्माप ग्रहण करने लगा। उस समय राजकुमार ! मेरे पास पांच मिथु (इस आशासे) रहा करते थे, कि भ्रमण गौतम जिस धर्मको प्राप्त करेगा, उसे हम लोगोंको (भी) बतलायेगा। लेकिन जब मैं स्थूल आहार ओदन कुल्माप ग्रहण करने लगा, तब वह पावों, मिथु, ‘भ्रमण गौतम बाहुलिक (= बहुत संग्रह करनेवाला) प्रधानसे विमुख, बाहुल्य परायण हो गया’ (समझ) उदासीन हो, चलेगा।

“तब राजकुमार ! मैं स्थूल आहार ग्रहणकर, स्वल्प हो काम और अकुशल-धर्मोंसे वर्जित, वितर्क तथा विचाररहित, अकान्ततासे उत्पन्न (= विवेकज्ञ), प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो निहरने लगा। वितर्क और विचारके उपशमित होनेपर, भीतरने सप्रजन्य (= प्रसन्नता) = चित्तको एकाग्रता-युक्त, वितर्क-विचार रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति सुख वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो निहरने लगा। प्रीति और विरागकी उपेक्षाकर स्मृति धर्म सप्रजन्य का, कायासे सुखको अनुभव (= प्रतिसवेदन) करता हुआ, विहरने लगा। निष्कर्ष कि आर्यजन उपेक्षक स्मृतिमान् और सुप्रतिहारो कहते हैं, ऐसे तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहार करने लगा।।

“सुख और दुःखके विनाश (= प्रहाण)से, पहिलेही, सौमनस्य और दौर्मनस्यके परिहारी अस्त होजातेसे, दुःख रहित, सुख-रहित उपेक्षक हो, स्मृतिकी परिशुद्धतासे शुद्ध ध्यानको प्राप्त हो विहार करने लगा।

“तब इसप्रकार चित्तके परिशुद्ध = परि अवदात, = अंगणरहित = उपेक्षारहित, बुद्ध, काम लायक, स्थिर = अचलता प्राप्त = समाधिप्राप्त होजाने पर, पूर्वजन्मों का स्मृति ज्ञान (= पुनर्निवासानुस्मृति ज्ञान) के लिये चित्तको मेने झुकाया। फिर मैं पूर्वकृत जन्म पूर्व निवासों (= जन्मों) को स्मरण करने लगा—जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी,।

‘आकार-सहित उद्देश्य सहित पूर्वकृत अनेक पूर्व निवासोंको स्मरण करने लगा।।

प्रकाश प्रमाद-रहित, उत्पन्न, हो अष्टम संवत्सुक विहरते हुये, सुप्ते रात के पहिले याममें प्रथम विद्या प्राप्त हुई, अविद्या गई, विद्या आई; तब नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ ।

“सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध० समाहित होनेपर, प्राणियोंके जन्म मरणके ज्ञान (=च्युति-वत्पाद ज्ञान)के लिये मने चित्तको झुकाया । सो मनुष्य (के नेत्रों)से परेकी दिव्य विशुद्ध चक्षुसे, मैं अच्छे घुरे, सुगन्ध, दुर्बन्ध, सु गन्ध, दुर्गन्ध, मरते, उत्पन्न होते, प्राणियोंको दर्शो लगा । सो० कर्मानुसार जन्मको प्राप्त प्राणियोंको जानने लगा । रातके विषय पहर (=याम)में यह द्वितीय विद्या उत्पन्न हुई । अविद्या गई० ।

“सो इस प्रकार चित्तके० । आसक्तों (=मल-दोष)के क्षयके ज्ञानके लिये मने चित्तको झुकाया—सो ‘यह दुःख है’ इसे यथार्थसे जान लिया, ‘यह दुःख समुदय है’ इसे यथार्थसे जान लिया, ‘यह दुःख निरोध है’ इसे यथार्थसे जान लिया, ‘यह दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद् है’ इसे यथार्थसे जान लिया । ‘यह आश्रय है’ इन्हें यथार्थ से जानलिया, ‘यह आश्रय समुदय है’ इसे०, ‘यह आश्रय निरोध०’ ‘यह आश्रय निराश्रय=गामिनी प्रतिपद् है’ इसे० । सो इस प्रकार जानने, इस प्रकार दर्शन, मेरा चित्त कामस्वभावसे मुक्त होगया, भया स्वभावे मुक्त होगया, अविद्याक्षयसे भी विमुक्त होगया । छूट (=विमुक्त) जानपर ‘तू मया (विमुक्त)’ ऐसा ज्ञान हुआ । ‘जन्म उत्तम होगया, प्रत्यक्ष पूर्ण होगया, करण था सो करलिया, अब यहाँके लिये कुछ (कर्णीय) नहीं’ हमें जाना । राजकुमार ! रातके पिछे याममें यह तृतीय विद्या प्राप्त हुई । अविद्या चली गई० । १० ।

“तब राजकुमार ! पंचगव्य भिक्षु मेरे द्वारा इस प्रकार उपदेशित हो, =अनुशासित हो, अथि ही मैं जिमने लिये कुछ पुत्र घरसे घेरा हो प्रव्रजित होते हैं, उस उत्तम ब्रह्मचर्य करने, इसा जन्ममें स्वयं जानकर =साक्षात् कर =उपलब्धकर, विहरने लगे ।”

ऐसा कहनेपर बोधि राजकुमार ने भगवान्से कहा—

“भन्ते ! कितनी देरमें तयागत (को) विनायक (=नेता) पा, भिक्षु जिसके लिये कुछ-कुछ घरसे घेरा हो प्रव्रजित होते हैं, उस उत्तम ब्रह्मचर्य करने इसी जन्ममें स्वयं जानकर =साक्षात् कर =उपलब्धकर, विहरने लगेगा ?”

“राजकुमार ! तुमसे ही यह पूछता हूँ, जेपा तुमने ठीक लगे, वसा बतला । हाथीपानी =अनुशासनके शिल्प (=कला)में तू चतुर है न ?”

“भन्ते । हाँ मे हाथीपानी० मैं चतुर हूँ,”

“सो राजकुमार ! यदि कोई पुरुष—‘बोधि राजकुमार हाथीपानी =अनुशासन शिल्प जानता है, उसके पाससे हाथीपानी =अनुशासन शिल्पको सीखेगा’ (सोचकर) आव । और वह हो अक्षरहित, (तो क्या) जितना अक्षर सहित (अनुष्य) द्वारा पाया जा सकता है, (उतना) वह पायेगा ? वह हो बहुत रोगी, (तो क्या) जितना अक्षर-रोगी द्वारा पाया जा सकता है, (उतना) वह पायेगा । ०शठ मायावी०, अशठ अमायावी० ०आलसी०, ०निरालस० ।

कटु वेदनायें सहीं, इतनेही पर्यन्त, (सही होगी) इससे अधिक नहीं, भविष्य कालमें जो कौं श्रमण ब्राह्मण घोर दुःख तोव और कटु वेदनायें सहेंगे, इतनेही पर्यन्त, इससे अधिक नहीं। आजकलकी जो कोई श्रमण ब्राह्मण घोर दुःख, तोव, और कटु वेदना सह रहे हैं ०। लेकिन राजकुमार। मैंने उस दुष्कर कारिकासे उत्तर-मनुष्य-धर्म 'अलमार्य-ज्ञान-दर्शन विशेष न पाया। (विचार हुआ) योषके लिये क्या कोई दूसरा मार्ग है ?

“तब राजकुमार। मुझे यो हुआ—“मालूम है मैंने पिता (शुद्धोदन) शास्त्रके स्मरण जासुक्की ठंडी छायाके नीचे, बैठ, काम और अकुशल-धर्मों को हटारकर प्रथम ध्यानको प्राप्त हो, विहार किया था। शायद वह मार्ग बोधिका हो। तब राजकुमार। मुझे यह हुआ—क्या मैं उस सुखसे उरता हूँ, जो सुख फाम और अकुशल-धर्मोंसे भिन्न है। फिर मुझे राजकुमार यह हुआ—मैं उस सुखसे नहीं डरता हूँ, जो सुख ०। तब मुझे राजकुमार यह हुआ—इस प्रकार अत्यन्त दृढ़, पतले कायासे वह सुख मिलना मुझ नहीं, क्यों न मैं स्थूल आहार—भात-राल (= कुत्तमाप) ग्रहण करूँ। सो मैं राजकुमार। स्थूल आहार ओदन कुत्तमाप ग्रहण करने लगा। उस समय राजकुमार। मेरे पास पांच मिश्रु (इस आशसे) रहा करते थे, कि श्रमण गौतम मिश्रु धर्मोंको प्राप्त करैगा, उसे हम लोगोंको (भी) बतलायेगा। लेकिन जब मैं स्थूल आहार ओदन कुत्तमाप ग्रहण करने लगा, तब वह पाचों, मिश्रु, ‘श्रमण गौतम बाहुलिक (= बुद्ध संग्रह करनेवाला) प्रधानसे विमुक्त, बाहुल्य परायण हो गया’ (समझ) उदासीन हो, चलेगा।

“तब राजकुमार। मैं स्थूल आहार ग्रहणकर, सफल हो काम और अकुशल-धर्मोंसे वर्जित, वितर्क तथा विचारमहित, एकान्ततासे उत्पन्न (= विप्रेरुज), प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। वितर्क और विहारके उपशमित होनेपर, भीतरके सप्रजन्म (= प्रसन्नता) = चित्तकी एकाग्रता-युक्त, वितर्क-विचार-रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति सुख बाह्य द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। प्रीति और विरागकी अपेक्षाकर स्मृति और सप्रजन्मके साथ, कायासे सुप्तको अनुभव (= प्रतिमवेदन) करता हुआ, विहरने लगा। जिसको कि आर्यजन उपेक्षक स्मृतिमान् और सुप्तविहारी कहते हैं, ऐसे तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहार करने लगा। ।

‘सुप्त और दुःखने विनाश (= ग्रहण)से, पहिलेही, सौमनस्य और दौर्मनस्यके परिण हो अन्त होजानेसे, दुःख रहित, सुप्त-रहित उपेक्षक हो, स्मृतिकी परिशुद्धतासे शुद्ध स्थूल ध्यानको प्राप्त हो विहार करने लगा।

“तब इसप्रकार चित्तके परिशुद्ध = परि-अवदात, = अंगणरहित = उपवेश रहित, शुद्ध हुये, काम लायक, स्थिर = अचलता प्राप्त = समाधिप्राप्त होजाने पर, पूर्वजन्मों का स्मृतिके ज्ञान (= पूर्वनिवामानुस्मृति ज्ञान) के लिये चित्तको येने झुकाया। फिर मैं पूर्वजन्म अनेक पूर्व-निवासों (= जन्मों) को स्मरण करने लगा—जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी, ।

“आकार सहित उद्देश्य-सहित पूर्वजन्म अनेक पूर्व निवासोंको स्मरण करने लगा। इस

प्रकार प्रमाद-रहित, तत्पर, हो आत्म संयमयुक्त विहरते हुये, सुखे रात के पहिले याममें प्रथम विद्या प्राप्त हुई, अविद्या गई, विद्या आई; तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ ।

“सो इस प्रकार चित्तक परिशुद्ध समाहित होनेपर, प्राणियोंके जन्म-मरणके ज्ञान (=च्युति-उत्पाद ज्ञान)के लिये मेने चित्तको चुकाया । सो मनुष्य (के नेत्र)से परकी दिव्य विद्युद् वस्तुसे, मे अच्छे धुरे, सुगर्ण, दुर्बर्ण, सु गत, दुर्गत, मरते, उत्पन्न होते, प्राणियोंको देखने लगा । सो • कमानुसार जन्मको प्राप्त प्राणियोंको जानने लगा । रातके बिचने पहर (=याम)में यह द्वितीय विद्या उत्पन्न हुई । अविद्या गई० ।

“सो इस प्रकार चित्तके० । आसन्न (= भल-दोष)के क्षयके ज्ञानके लिये मेने चित्तको चुकाया—‘यह १ दु ख है’ इसे यथार्थसे जान लिया, ‘यह दु ख-समुदय है’ इसे यथार्थसे जान लिया, ‘यह १ दु ख निरोध है’ इसे यथार्थसे जान लिया, ‘यह दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद् है’ इसे यथार्थसे जान लिया । ‘यह आसन्न है’ इन्हें यथार्थ से जान लिया; ‘यह आसन्न समुदय है’ इसे०, ‘यह आसन्न निरोध०’ ‘यह आसन्न निरोध = गामिनी प्रतिपद् है’ इसे० । सो इस प्रकार जानने, इस प्रकार देखते, मेरा चित्त कामत्तवोसे मुक्त होगया, भया कबोसे मुक्त होगया, अविद्यास्त्रसे भी विमुक्त होगया । छूट (= विमुक्त) जानेपर ‘दृढ गया (विमुक्त)’ ऐसा ज्ञान हुआ । ‘जन्म व्यतन होगया, ब्रह्मचर्य पूरा होगया, धरना धा सो कलिया, भय महाके लिये कुछ (करणीय) नहीं’ इसे जाना । राजकुमार । रातक पिउने यामम वह तृतीय विद्या प्राप्त हुई । अनिया चली गई० ।”० ।

“तब राजकुमार । पंचवगाय भिक्षु मेरे द्वारा इस प्रकार उपश्रित हो, = अनुशासित हो, अचिर ही मैं जिनके लिये कुल पुत्र धारते बेघर हो प्रमजित होते हैं, उस उत्तम ब्रह्मचर्य करने, इसी जन्ममें स्वयं जानकर = साक्षात् कर = उपलभक, बिहरने लगे ।”

ऐसा कहनेपर बोधि राजकुमार ने भगवान्से कहा—

“भन्ते ! कितनी देरम तथागत (को) विनायक (= नेता) पा, भिक्षु चित्तके लिये कुल-पुत्र धारते बेघर हो प्रमजित होते हैं, उस उत्तम ब्रह्मचर्य करने इसी जन्ममें स्वयं जानकर = साक्षात् कर = उपलभक, बिहरने लगेगा ?”

“राजकुमार ! तुमसे ही यहाँ पूछता हूँ, जेवा तुम डीक लगे, बेसा बतला । हाथीवानी = अंकुशग्रहणके शिल्प (= कला)में तू चतुर है न ?”

“भन्ते ! हाँ मैं हाथीवानी० म चतुर हूँ,”

“तो राजकुमार ! यदि कोई पुरुष—‘बोधि राजकुमार हाथीवानी = अंकुश ग्रहण शिल्प जानता है, उसके पाससे हाथीवानी = अंकुश ग्रहण शिल्पको सीखेगा’ (सोचकर) आवे । बोध कह हो ब्रह्मारहित, (तो क्या) जितना अद्धा-सद्वित (मनुष्य) द्वारा पाया जा सकता है, (उतना) वह पावेगा ? वह हो बहुत रोगी, (तो क्या) जितना अल्प-योगी द्वारा पाया जा सकता है, (उतना) वह पावेगा । ० शठ मायावी०, अशठ अमायावी० ० आलसी०, ० निराश्रय० ।

दुष्प्रज्ञ०, प्रजावान्० । तो राजकुमार ! क्या वह पुरुष तेरे पास हाथीवानी=अकुश ग्रहण शिल्पको सीखेगा ?”

“एक दोपसे भी युक्त पुरुष मेरे पास हाथीवानी=अकुश ग्रहण शिल्प नहीं सीख सकता, पाचो दोपसे युक्तके लिये तो कहना ही क्या ?”

“तो राजकुमार ! यदि कोई मनुष्य ‘बोधि-राजकुमार हाथीवानी० जानता है० शिल्पको सीखूँगा’ (सोचकर) आवे । वह हो श्रद्धावान्०, अमर-रोगी०, असद=अमायावी०, निरात्म० । तो राजकुमार ! क्या वह पुरुष तेरे पास हाथीवानी=अकुश ग्रहण शिल्प सीख सकेगा ?”

“भन्ते ! एक घातसे युक्त भी पुरुष मेरे पास० ।”

“इसी प्रकार राजकुमार ! निगण साधना (=प्रधान) के भी पाच अंग हैं । कौत्से पाच ?—(१) भिक्षु श्रद्धालु हो, तथागतकी बोधि (=परमज्ञान) पर श्रद्धा करता हो—‘कि वह भगवान्, अर्हत्, सम्यक्-सुबुद्ध, विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोक-विद, अन् उत्तमपुरुष दम्य सारथी, देव मनुष्यके शास्ता, बुद्ध, भगवान् हैं । (२) अल्प रोगी=अल्प-आतङ्का, न बहुत शीत, न बहुत उष्ण, सा उनायोग्य, सम-विपाकवाली मध्यम प्रकृति (=ग्रहणी)से युक्त हो । (३) अ-शठ=अ-मायावी हो, शास्ता (=गुरु) और विज स-अन्नचारियोंमें, कुशल धर्मके उत्पादनमें निरालस हो, कुशल धर्मात्मक कैसेसे जुआ न हटानेवाला, दृढ पराक्रमी=लिप्त हो । (४) उदय प्रजावान् हो, उदय अस्त गामिनी, आर्यनिर्वधिक सम्यक् दुःख-क्षय गामिनी प्रज्ञासे युक्त हो । राजकुमार ! प्रधानके यह पाच अंग हैं ।

“राजकुमार ! इन पांच प्रधानीय अंगोंसे युक्त भिक्षु, तथागतको विनायक (=नेता) पा, अनुत्तर ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें सात वर्षोंमें, स्वयं जानकर=साक्षात्कर=प्राप्त कर विहरेगा ।”

“राजकुमार ! छोड़ो सातवर्ष, इन पाच प्रधानीय अंगोंसे युक्त भिक्षु०, छ वर्षोंमें ० पाच वर्षोंमें । ० चार वर्षोंमें । ० तीन वर्षोंमें । ० दो वर्षोंमें । ० एक वर्षोंमें । ० सात मासमें । ० छ मासमें । ० पाच मासमें । ० चार मासमें । ० तीन मासमें । ० दो मासमें । ० एक मासमें । ० सात रात-दिनमें । ० छ रात-दिनमें । ० पाच रात दिनमें । ० चार रात दिनमें । ० तीन रात-दिनमें । ० दो रात-दिनमें । ० एक रात दिनमें ।

“छोड़ो राजकुमार ! एक रात-दिन, इन पाच प्रधानीय अंगोंसे युक्त भिक्षु, तथागतको विनायक पा, सायकालको अनुशासन किया, प्रातःकाल विशेष (=निर्माणपद) को प्राप्त कर सकृत्ता है, प्रातः अनुशासित साथ विशेष प्राप्त कर सकृत्ता है ।”

ऐसा कहनेपर बोधि राजकुमार बोला—अहो ! बुद्ध !!, अहो ! धर्म !! अहो ! धर्मक स्वात्प्राप्त-पन्न !! जहां कि साथ अनुशासित प्रातः विशेषको पा जाये, प्रातः अनुशासित साथ विशेषको पा जाये ।”

ऐसा बोलनेपर संजिका पुत्रने बोधि राजकुमारको कहा—“ऐसा ही है, हे भवान् बोधि !—‘अहो ! बुद्ध ! अहो ! धर्म !, अहो ! धर्मका स्वाट्पात पन ।’ (यह) तुम रहते हो, तो भी उस धर्म और मिश्र-सघकी शरण नहीं जाते ?”

“सौम्य ! संजिका-पुत्र । ऐसा मत कहो । सौम्य ! संजिका पुत्र । ऐसा मत कहो । सौम्य संजिका पुत्र ! मैंने अय्या (= आर्या) के मुहसे सुना, (उन्हींके) मुहसे ग्रहण किया है । सौम्य ! संजिका पुत्र एकबार भगवान् कोशाम्बीमें घोषितारामर्म विहार करते थे । तब मेरी गर्भवती अय्या जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई, जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई । एक ओर बैठे मेरी अय्याने भगवान् को यो कहा—‘मन्ते ! जो मे कोखम यह कुमार या कुमारी है, वह भगवान् की धर्मकी ओर मिश्र-सघकी शरण जाता है । आजमे भगवान् हुसे साजलि शरणागत उपासक धारण कर ।

“सौम्य ! संजिका पुत्र ! एकबार भगवान् यहाँ मगमें सुमुमार गिरिके भेमरुलावन मृगणावामें विहसते थे, तब मेरी धाई (= धाती) मुने गोदम एकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई । जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर खड़ी होगई । एक ओर खड़ी हुई मेरी धाईने भगवान् को कहा—मन्ते ! यह बोधि-राजकुमार भगवान् की, धर्मकी, ओर मिश्र सघकी

“सौम्य ! संजिकापुत्र ! यह मे तीसरीबार भी भगवान् की, धर्मकी ओर मिश्र-संघकी शरण जाता है । आजसे भगवान् मुझे साजलि शरणागत उपासक धारण कर ।”

१ आप ।

२ म नि अ फ २ ४ ६ कोशाम्बीनगरमें परन्तप नामक राजा राज्य करता था । (एकसमय) गर्भिणी राज महिषी आकाशके नीचे राजाके साथ धूप लेती, लाल कमल ओढ़े बैठी थी । एक हाथीकी सूत (= हस्ति लिङ्ग) का पक्षी (उसे) मासका टुकड़ा जान लेकर अकाशमें उड़ गया । ‘वहाँ मुझे छोड़ न दे’—इस डरसे वह चुप रही । उसने उसे पर्वतकी जड़में उगे एक वृक्षके उपर रख दिया । तब उसने हाथसे ताली बजाकर बड़ा हल्ला किया । पक्षी भाग गया । उसको वहाँ प्रसन्न नेदना शुरू हुई । दैवत बरसने तीन यामकी सारी रात, कमल ओढ़े बैठी रही । वहाँसे पास हीमें धूर तापस रहता था । वह उसका शब्द सुन, लाली छाते (= लक्ष्मोद्गते) ही वृक्षके नीचे आया । जाति पूछ, सीढ़ी बांध उतारकर अपने स्थानपर ने जा, उसे खिचड़ी (= यागू) पिलायी । बारूक मध फ्रुत तथा पर्यंत मनुको एकर पैंग हुआ था, इसलिये उसका नाम उदयन रखता । तापसने फट-बल लानर दोनों जनोंसे पोसा । उसने एक दिन तापसके आनके समय अमरानीकर तापसके मतको भंगकर दिया ।

उनके बहुत कालतक एक साथ रहते रहते परतप राना मर गया । तापसने रातको मशर देख राजाकी मृत्युको जान पूछा “तेरा राजा मर गया (अथ) तेरा पुत्र क्या यहाँ यमगा पहुँचा है, या पैरुक राज्यमें छत्रधारण करना (चाहता है) ?” । उसने पुत्रको आदिसे (अन्त तक) सब क्या कह, उसकी छत्र धारण करनेकी इच्छा सुन, तापसके कहा । तापस हसित प्रथ शिल्प जानता था । (उसने यह शिल्प) शम्भु के पाससे, (पाया था) । पहिले राजने इससे पास आकर—‘क्या बीजकी तकलीफ है ?’ पूछा । उसने ‘हाथियोंका

घेरा है' कहा। उसको शकने हस्ति-ग्रन्थ और वीणा दे—“भगानेके लिये वीणा बजाइ श्लोक को बोलना, बुलानेके लिये वीणा बजाकर इस श्लोक को बोलना” कहा। तापसे शिल्प कुमारको दिया। कुमारने बर्गदके वृक्षपर चढ़ हाथियोंके आनेपर वीणा बजा श्लोक कहा, हाथी डरकर भाग गये। उसने शिल्पके माहात्म्यको देख, दृष्टे दिन बुलानेका शिल्प प्रयोग किया। हाथियोंके सर्दारने आकर कंधेको नवा दिया। वह उसके कंधेपर चढ़, कुर्वर लायक तरंग हाथियों को चुन, कमल और अंगूठी ले माता पिताको वन्दना कर, निम्न क्रमशः गावर्म प्रवेश कर—‘मैं राजाका पुत्र हूँ, सपत्न चाहनेवाले आवें’—हसप्रकार आदमिकोंके जमाकर, नगरको घेरकर,—‘मैं राजाका पुत्र हूँ, सुखे छत्रदो’ (कहा)। न विश्वास करनेवालोंके कमल और अंगूठी दिखा, छत्र धारण किया। वह हाथीका शौकीन, होनेसे—“बहुत स्थानपर सुन्दर हाथी है” कहनेपर जाकर पकड़ता था।

चण्डप्रघोत राजाने ‘उसके पाससे शिल्प सीखूंगा’ (विचार) काठका हाथी भेज, उसके भीतर योधाओंको बेटा, उस हाथीको पकड़नेके लिये आये हुये (उद्यम)को पकड़, उसके कल शिल्प सीखनेके लिये अपनी लटकीको भेजा। वह उसके साथ—(अनुरक्त)हो, उसे ले अपने नगरमें चला गया। उसीकी कोखसे उत्पन्न इस बोधि राजकुमारने अपने पिताके पास (ब) शिल्प सीखा था।

+

+

+

(वि. पू. ४३५-३१) कण्णत्थलक-सुत्त । सघभेदक-संघक ! (देवदत्त)
-सुत्त । सक्कलिक-सुत्त । देवदत्त-विद्रोह । विसाग्वा-सुत्त । जटिल-सुत्त ।

‘ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् उज्जुका (= उज्जुम्मा = उरुक्ष्मा) में कण्णत्थलक
(= कर्ण-स्थलक) मृग दाघमें बिहार करते थे ।

उस समय राजा प्रसेनजित् कोसल किसी कामसे उज्जुका (= कज्जुका) में आया हुआ
था, राजा प्रसेनजित् कोसलने एक आदमीको आमंत्रित किया—

“ आजो हे पुरुष । जहा भगवान् हैं, वहां जाओ । जाकर मेरे वचनसे भगवान् के
चरणोंमें शिरसे वन्दना करना । अटपाबाधा (= आरोग्य) = अत्यार्तक लघु उत्थान
(= कुर्ती) बल, प्राहु विहार (= सुख पूर्वक विहरना) पूछना—‘भन्ते । राजा प्रसेनजित्
कोसल भगवान् के चरणोंमें शिरसे वन्दना करता है ० । और यहभी कहना—भन्ते ! आज
मोजनोप्रान्त, कलेऊ धरनेपर, राजा प्रसेनजित् कोसल भगवान् के दर्शनार्थ आयेगा । ”

“ अच्छा देव । ”

सोमा और सकुला (दोनों) बहिनोने सुना—‘आज राजा भगवान् के दर्शनार्थ
जायेगा । तब सोमा, सकुला बहिनोने राजा प्रसेनजित् ० के पास, परोसनेके समय
जाकर कहा—

“ तो महाराज ! हमारेभी वचनसे भगवान् के चरणोंमें शिरसे वन्दना करना ।
अटपाबाधा ० पूछना—० ।

तब राजा प्रसेनजित् कोसल कलेऊ बरके मोजनोप्रान्त जहा भगवान् थे, धड़ा गया,
जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर बैठ भगवान् को बोला—

“ भन्ते ! सोमा और सकुला (दोनों) बहिनें भगवान् के चरणोंको शिरसे वन्दना
कस्ती हैं ० । ”

“ क्या महाराज ! सोमा और सकुला बहिनोको दूसरा दूत नहीं मिला ? ”

“ भन्ते ! सोमा और सकुला बहिनोने सुना, कि आज राजा भगवान् के दर्शनार्थ
जायेगा । जाकर मुझ यह कहा । ”

“ सुखिनी होवें महाराज ! सोमा और सकुला (दोनों) बहिनें । ”

तब राजा प्रसेनजित् कोसलने भगवान् को यह कहा—

१ सैंतोमवां वपावास (४३५ वि पू) भगवान् ने धावस्ती (जेतवन) में दिताया;
और अइतीमवा (४३४ वि पू) पूर्वाश्रममें । २ म नि २ ४ १० । ३ अ क. “ उम
शट्का और कगत्कामी यही नाम (था) । । उस नगरके अगिदूर (= समीप) कण्णत्थलक
नामक एक रमणीय भूभाग था । ४ अ क “ यह दोनों बहिनें राजाजी कियां थीं । ”

“ भन्ते ! मैंने यह सुना है, कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—‘ऐसा (कोई) श्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो सर्वज्ञ सर्वदर्शा (हो), नि शेष ज्ञान दर्शनको जानै, यह संभव नहीं है ।’ भन्ते ! जो ऐसा कहते हैं कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—‘ऐसा (कोई) ० ।’ क्या भन्ते ! वह भगवान्‌को धारेंमें सच कहते हैं ? भगवान्‌को असत्य=अभूतसे छाउन तो नहीं लगाते ? धर्मसे अनुसार कहते हैं, कोई धर्मानुसारी क्या (=वादानुवाद) गर्हणीय(=निंजीय) तो नहीं होता ?”

“ महाराज ! जो ऐसा कहते हैं कि श्रमण गौतमने ऐसा कहा है—‘ऐसा (कोई) श्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो सर्वज्ञ=सर्वदर्शा (होगा), नि शेष ज्ञान दर्शनको जानैगा, वह संभव नहीं है ।’ यह मेरे धारेंमें सच नहीं कहते, यह असत्य=अभूतसे सुने लाज लगाते हैं ।”

तब राजा प्रसेनजित्० ने बिह्वडभ सेनापतिको आमंत्रित किया—

“ सेनापति ! आज राजान्त पुरमें कितने घात (=कथायन्त्र) करी थी ?”

“ महाराज ! आकाश गोग संजय ब्राह्मणने ।”

तब राजा प्रसेनजित्ने० एक पुरुषको आमंत्रित किया—

“ आओ, रे पुरुष ! मेरे वचनसे ०संजय ब्राह्मणको कहो—‘भन्ते ! तुम्हें राजा प्रसेनजित् पुलाते हैं ।’”

“ अच्छा द्य !”

तब राजा प्रसेनजित्ने० ने भगवान्‌को कहा—

“ भन्ते ! शायद आपने कुछ और सोच (यह) वचन कहा हो, बादमी शन्यथा न कहैगा ।”

“ तो भन्ते ! जो वचन कहा उसे इन प्रकार जानता हूँ—‘महाराज ! मैं जानता हूँ—जो वचन (मेने) कहा ।’”

‘महाराज ! मैंने जो वचन कहा उसे इन प्रकार जानता हूँ—‘ऐसा श्रमण ब्राह्मण नहीं, जो एकही बार (=सहृद पुर) सब जानेगा=सब देखेगा, यह संभव नहीं ।’”

“ भन्ते ! भगवान्‌ने हेतु रूप कहा, सहेतु रूप भन्ते । भगवान्‌ने कहा—‘ऐसा श्रमण ब्राह्मण नहीं जो एकही बार सब जानैगा=सब देखेगा, यह संभव नहीं ।’ भन्ते ! यह चार वर्ण हैं—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र । भन्ते ! इन चारों वर्णोंमें है कोई विभेद, है कोई नाना कारण ?”

“ महाराज ! ०इन चार वर्णोंमें अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोड़ने (=अंजलि-कर्म) =सामीची कर्ममें दो वर्ण अप (=श्रेष्ठ) कहे जाते हैं—क्षत्रिय और ब्राह्मण ।”

“ भन्ते ! मैं भगवान्‌को इस जन्मने सब धर्मको नहीं पूछता, मैं परलोकके संबन्ध (=सापराधिक)में पूछता हूँ ।”

“महाराज । यह पाच प्रधानीय अंग हैं । वीनसे पाच ? महाराज ! भिक्षु (१) श्रद्धालु होता है । तथागतको बोधि (=बुद्ध-पान) पर श्रद्धा करता है—‘पैसे यह भगवान् अर्हत्० ।’ (२) अल्पावाध (=अरोग) होता है । (३) शठ=मायावी नहीं होता० । (४) आरब्ध-तीर्थ (=उद्योगशील) होता है । (५) प्रज्ञावान् होता है० । महाराज ! यह पाच प्रधानीय अंग हैं । महाराज ! चार वण—प्राक्कण० शुद्ध हैं । वह यदि पाच प्रधानीय-अंगोंसे युक्त हो, तो वह उनके दीर्घ-रात्र (=चिरकाल) तक स्थित-सुखके लिये होगा ।”

“भन्ते ! चार वण० हैं । और यदि वह प्रधानीय अंगोंसे युक्त हो । तो भन्ते ! त्या उनमें भेद=नानाकरण नहीं होगा ?”

“महाराज ! उनका प्रधान, नानात्व (=भेद) नहीं करता । जैसेकि महाराज ! दो दमनीय हाथी, दमनीय घोड़े, ०धैल, सुदान्त=सुविनीत (=अच्छी प्रकार सिखाये) हो । दो दमनीय हाथी, ०घोड़े, ०धैल अदान्त=अविनीत (=बिना सिखाये), हो । तो महाराज ! जो वह० सुदान्त, सुविनीत हैं, क्या वह दान्त होनेसे नान्त पदको पाते हैं=दान्त होनेसे दान्त-भूमिको प्राप्त होते हैं ?” “हां भन्ते ।”

“और जो महाराज ! अदान्त अविनीत हैं, क्या वह अदान्त (बिना सिखाये)० ही, दान्त पदको पाते हैं, अदान्त हो दातभूमिको प्राप्त हो सकने हैं ? जैसेकि वह दो० सुदान्त=सुविनीत ?”

“नहीं, भन्ते ।”

“पैसेही महाराज ! जोकि श्रद्धालु, निरोग, अशठ=अमायावी, आरब्ध-वीर्थ, प्रज्ञावान् द्वारा प्राप्य (वस्तु) है, उसे अ श्रद्धा, बहुरोगी, शठ=मायावी, आत्मी, दुष्प्रण पायेगा, यह संभव नहीं है ।”

“भन्ते ! भगवान्ने हेतु-रूप (=ठीक) कहा० । भन्ते ! चारों वण क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र हैं, और वह यदि इन प्रधानीय अंगोंसे युक्त हो=सम्पक् प्रधानगले हो । तो भन्ते ! क्या उनमें (कुत्र) भेद नहीं होगा=कुत्र गता करण नहीं होगा ?”

“महाराज ! मैं उनमें कुत्र भी ‘यह जोकि विमुक्तिरा विमुक्तिसे भेद (=नाश कारण) है’ नहीं कहता । जैसे महाराज ! (एक) पुरुष सूते शाककी लकड़ीको लेकर अग्नि तैयारकर, तेज प्रादुर्गन्त करे, और दूसरा पुरुष सूते शाक (=सार) काटसे आग तैयार करे०, और दूसरा पुरुष सूते आमके काटसे०, और दूसरा पुरुष सूते गूलर-काटसे०, तो क्या मानते हो महाराज ! क्या उन नाना काटोंसे बनाई आगों का, लौसे लौका, रंगसे रंगका, आभासे आभाका कोई भेद होगा ?” “नहीं, भन्ते ।”

“पैसेही महाराज ! जिस तेज (=मुक्ति)को वीर्थ (=उद्योग) तैयार करता है । उपमें, इस विमुक्तिसे दूसरी विमुक्तिमें कुलमी भेद मैं नहीं कहता ।”

“भन्ते ! भगवान् ने हेतुरूप (=ठीक) कहा० । क्या भन्ते ! देव (=देवता) हैं ?”

“महाराज ! तू क्या ऐसा कह रहा है—‘भन्ते ! क्या देव है !’”

“कि भन्ते ! क्या देवता मनुष्यलोकमें आनेवाले होते हैं, या मनुष्यलोकमें आनेवाले नहीं होते ?”

“महाराज ! जो वह देवता लोभ सहित हैं, वह मनुष्यलोक (=इत्यत) में आनेवाले होते हैं, जो लोभ-रहित हैं, वह० नहीं आनेवाले होते हैं ।”

तैसा कहने पर विडुडभ सेनापतिने भगवान् को कहा—

“भन्ते ! जो वह देवता लोभ रहित मनुष्य लोकमें न आनेवाले हैं, क्या वह स्वता अपने स्थानसे च्युत होंगे = प्रयजित होंगे ?”

तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—“यह विडुडभ सेनापति राजा प्रसेनजित् कोसल्या पुत्र है, मैं भगवान् का पुत्र हूँ, यह समय है, जब पुत्र, पुत्रको निमंत्रित करे ।” और आयुष्मान् आनन्दने विडुडभ सेनापतिको आमंत्रित किया—

“तो सेनापति ! तुम्हें ही पूछता हूँ, जमा तुम्हें ठीक उचे धिसा करो । मैं सेनापति ! जितना राजा प्रसेनजित् कोसल्या राज्य (=विजित) है, जहापा कि राजा प्रसेनजित्० ऐश्वर्य = अधिपत्य करता है, राजा प्रसेनजित्० धर्मण या ब्राह्मणको, पुण्यवान् या अपुण्यवान् को, ब्रह्मचर्यवान् या अश्रमचर्यवान् को, क्या उस स्थानसे हटा या निकाल सकता है ?” “सम्भता है ।”

“तो क्या मानते हो सेनापति ! जितना राजा प्रसेनजित्० का अ-विजित (=राज्यमें बाहर) है, जहा० अधिपत्य नहीं करता है, क्या उस स्थानसे हटा या निकाल सकता है ?”

“नहीं सकता ।”

“तो क्या मानते हो सेनापति ! क्या तुमने त्र्यक्षिप्त देवोंको सुना है ?”

“हा, भो ! मैंने त्र्यक्षिप्त देव सुने हैं, आप राजा-प्रसेनजित् कोसलने भी त्र्यक्षिप्त देव सुने हैं ।”

“तो क्या मानते हो सेनापति ! क्या राजा-प्रसेनजित् कोसल त्र्यक्षिप्त देवोंको उस स्थानसे हटा या निकाल सकता है ?”

“त्र्यक्षिप्त देवोंको राजा प्रसेनजित्० देखनेको भी नहीं पा सकता, कहाँसे उनको स्थानसे हटाये या निकालेगा ?”

“ऐसे ही सेनापति ! जो देवता लोभ सहित हैं, वह मनुष्य-लोकमें आते हैं, जो लोभ-रहित हैं, वह० नहीं आते । वह देखनेको भी नहीं पाये जा सकते, कहाँसे उस स्थानसे हटाये या निकाले जायेंगे ?”

तब राजा प्रसेनजित् कोसलने भगवान् को कहा—

“भन्ते ! यह कौन नामवाला मिथु है ?”

“आनन्द नायक महाराज ।”

“ओहो ! आनन्द है ॥ ओहो ! आनन्द-रूप है ॥ भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द ठीक करते हैं । भन्ते ! क्या ब्रह्मा है ?”

“तू क्या महाराज ! उसे कहता, हे—भन्ते ! क्या ब्रह्मा है ?”

“भन्ते ! क्या वह ब्रह्मा मनुष्यलोकमें आता है, या मनुष्य लोकमें नहीं आता ?”

“महाराज ! जो ब्रह्मा लोभ सहित है० आता है, लोभ रहित० नहीं आता ।”

तब एक पुरपने राजा प्रसेनजित्०को कहा—

“महाराज ! आकाश गौत्र सजय ब्राह्मण आ गया ।”

तब राजा प्रसेनजित्०ने सजय ब्राह्मणको कहा—

“ब्राह्मण ! कियेने इस बात (=क्या वस्तु) को राजभन्ते पुरमें कहा था ?”

“महाराज ! विड्डम सेनापतिने ।”

“विड्डम सेनापतिने कहा—“महाराज ! आकाश गौत्र सजय ब्राह्मणने ।”

तब एक पुरपने राजा प्रसेनजित्०को कहा—

“जानेका समय है, महाराज ।”

तब राजा प्रसेनजित्० भगवान्को यह बोला—

“हमने भन्ते ! भगवान्को सर्वज्ञता पूछा, भगवान्ने सर्वज्ञता बतलाई, वह हमको देवता है, परमेश्वर है, उससे हम सन्तुष्ट हैं । चारों वर्णोंकी शुद्धि (=चातुर्वर्णी शुद्धि)० पूछी० । इसके विषयमें० पूछा० । ब्रह्माके विषयमें० पूछा० । जो जो ही भन्ते ! हमने भगवान्को पूछा, वही वही भगवान्ने बतलाया, और वह हमको बतला है, परमेश्वर है, उससे हम सन्तुष्ट हैं । अच्छा तो भन्ते ! अब हम जायेंगे, हम बहुत कृत्य हैं, बहुत-करणीय हैं ।”

“नितका महाराज । तू (इस समय) काल समय ।”

तब राजा प्रसेनजित्० भगवान्के आपणको अभिनन्दितकर अनुमोदितरूप आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया ।

सधभेदक-खण्डक ।

“तब भगवान् कौशाम्बीमें घोषिताराममें विहार करत थे । उस समय दशरथको एकान्तमें बैठ विचारमें बैठे, चित्तमें ऐसा प्रियार उत्पन्न हुआ—“नित्यकाम प्रमादित कर्त्त, निम्न प्रमत्त होनेपर सुखें बढ़ा लाभ, सत्कार, पेदा हो । तब दशरथको हुआ—यह भगवान् शत्रु कुमार नहीं है, और अभियोगमें उत्तम (=भद्र) है, क्योंकि भगवान् शत्रु कुमारको प्रसादित कर्त्त, उमक प्रमत्त होनेपर सुखें बढ़ा लाभ, सत्कार पेदा होगा ।” तब दशरथ दायनायन संभालकर पात्र बीजले चित्र राजगृह था, उधर चला । क्रमशः तब राजगृह था वहाँ पहुँचा ।

१ उन्तालीसवा वषावास (वि पू ४३५) भगवान्ने आवन्ती जेत यमम विनाया । २ सुल्लवग्ग (सध भेदक टाणक) ७ ।

तब देवदत्त अपने रूप (=वर्ण) को अन्तर्ध्याकर कुमार, (=बालक) का रूप बना, साम्ना मेखला (=तगाही) पहिन, अजात-शत्रु कुमारीकी गोदम प्रादुर्भूत हुआ । अजातशत्रु कुमार भीत=वहिन, उत्क्षिप्त=उत्त्रस्त होगया । तब देवदत्तो अजातशत्रु कुमारको कहा—

“ कुमार ! तू मुझसे भय खाता है ? ”

“ हाँ, भय खाता हूँ, तुम कौन हो ? ”

“ मे देवदत्त हूँ । ”

“ भन्ते ! यदि तुम आर्य देवदत्त हो, तो अपने रूप (=वर्ण) से प्रकट होओ । ”

तब देवदत्त कुमारका रूप छोड़, मंघाटी, पात्र चाँवर धारण किये अजात शत्रु कुमारके सामने पड़ा हुआ । तब अजात शत्रु कुमार, देवदत्तके इस दिव्य चमत्कार (=ऋद्धि प्रातिहार्य) से प्रसन्न हो पाँचमों रथोंके साथ साथ प्रात उपस्थान (=हाजिरी) को जाने लगा । पाँच सौ स्थालीपाक भोजन मेलिये लेजाये जाने लगे ।

१ तब भगवान् कौत्सात्म्योमें इच्छानुसार विहार कर चारिका करते जहाँ राजगृह है वहाँ पहुँचे । वहा भगवान् राजगृहमें कलन्दक निजापके वेशुवनमें विहार करते थे ।

(देवदत्त)-सुत्त ।

एमा मेने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें कलन्दक निजापके वेशुवनमें विहार करते थे ।

उस समय अजातशत्रु कुमार साथ-प्रात पाँचमों रथोंके साथ देवदत्तके उपस्थानको जाता था । पाँचसौ स्थालीपाक भोजनके लिये लेजाये जाते थे । तब बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहा गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे । पुल ओर बैठे उन भिक्षुओंने भगवान्को कहा—

“ भन्ते ! अजातशत्रु कुमार साथ-प्रात पाँचसौ रथोंके साथ ० । ”

“ भिक्षुओ ! देवदत्तके लाभ, सत्कार श्लोक (=तारीफ) की मत स्पृहा करो । जब तक भिक्षुओ ! अजातशत्रु कुमार साथ प्रात ० उपस्थानको जायेगा, पाँचसौ स्थालीपाक भोजनकेलिये [जायेंगे, देवदत्तकी (उपमे) कुशल धर्मों (=धर्मों) में हानिही समझना चाहिये, टुटि नहीं । भिक्षुओ ! जैसे चङ कुटुरके नाकपर पित्त चढ़े, इस प्रकार वह कुत्तुर और भी पागल हो, अधिक चंड हो । ”

तब लाभ, सत्कार, श्लोकने अभिभूत=आदत्त चित्त देवदत्तको इसप्रकारकी इच्छा उत्पन्न हुई—मैं भिक्षु संघकी (महन्तार्ह) ग्रहण करूँ । यह (विचार) चित्तमें आतेही देवदत्तका (वह) योग-बल (=ऋद्धि) नष्ट हो गया ।

+

+

+

उस समय राजागदित बड़ी परिपक्वते धिरे भगवान धर्म उपदेश कर रहे थे । तब देवदत्त आसनसे उठ एक कंधेपर उत्तसासग कम्क, त्रिधर भगवान् थे उधर अजलि जोड़ भगवान्को यह बोला—

“मन्ते ! भगवान् अब जीर्ण=वृद्ध=महारुद्र=अवगत=वय अनुप्राप्त हैं । मन्ते ! अब भगवान् निश्चिन्त हो हम जनमके सुप्त विहारके साथ विहर । भिक्षु-सवको मुझे दें, मैं भिक्षु संघको ग्रहण करूंगा ।”

“अच्छ (=बस, ठीक नहीं) दयदत्त ! मन तुझे भिक्षुसंघका ग्रहण रहे ।”

बूझीवार भी देवदत्त ने० । ० । सासरीगर भी देवदत्तने० । ०

“देवदत्त ! सारिपुत्र मांडूल्यायनको भी मैं भिक्षु-संघको नहा दूँगा, तुम सुनें, बूझो तो क्या ?”

तब देवदत्तने—‘राजागदित परिपक्व सुने भगवान्ने पेंना बूक कहकर अपमानित किया और सारिपुत्र, मांडूल्यायनको मरवाया’ (सोच) कुपित, असंतुष्ट हो भगवान्को अभिमादन कर प्रदक्षिणाकर चला गया । तब भगवान्ने भिक्षुसंघको आमंत्रित किया—

“भिक्षुओ ! संत राजगृहम देवदत्तका प्रकाशनाय-क्रम करे—‘पूर्वमें देवदत्त अन्य प्रहृतिका था, अब अन्य प्रहृतिका (अब) देवदत्त जो (कुठ) काय वचासे करे उसका उद्ध, धर्म, सध क्षिप्तेवार नहीं ।’

तब देवदत्त जहाँ अज्ञात शत्रु कुमार था, वहाँ गया । जाकर अज्ञातशत्रु कुमारको बोला—

“कुमार ! पहिने मनुष्य दीर्घायु (होते थे), अब अल्पायु । होमका है, कि तुम कुमार रहते हो मर जाओ । इसलिये कुमार ! तुम पिताको मारकर राजा होओ, मैं भगवान्को मारकर बुद्ध होऊँगा ।”

तब अज्ञात शत्रु कुमार आघम घुरा बाधका भीत, उत्थित, शक्ति, अन्त (की तरह) मध्याह्नमें सहसा अन्त पुरमें प्रतिष्ठ हुआ । अन्त पुरके उपचारक (=रक्षक) महामात्वो ० अज्ञातशत्रु कुमारको ० अन्त पुरमें प्रविष्ट होते देखा । देवदत्त पकड़ लिया । कुमारको कहा—

“कुमार तुम क्या करना चाहते थे ?”

“पिताको मारना चाहता था ।”

“किमने उत्साहित किया ?”

“आर्य देवदत्तने ।”

तब वह महामात्व अज्ञातशत्रुको ० जहाँ राजा मागध श्रेणिक बियसार था, वहाँ गये । जाकर राजा०को यह बात कह सुनाई । तब राजा०ने अज्ञात शत्रु कुमारको कहा—

“कुमार ! किमलिये तू मुझे मारना चाहता था ?”

“देव । राज्य चाहता हूँ ।”

“कुमार ! यदि राज्य चाहता है तो यह तेरा राज्य है ।” कह अज्ञात शत्रु कुमारको राज्य दे दिया ।

तत्र देवदत्त जहाँ अजात शत्रु कुमार था, वहाँ गया । जाँके कहा—

“महाराज ! आठमियोंको हुकुम दो, कि श्रमण गौतम को जानसे मार डाल ।”

तत्र अजातशत्रु कुमारने मनुष्योंको कहा—

“ भगे ! जमा आर्य देवदत्त कह, वैसा करो ।”

तत्र देवदत्तने एक पुरुषको हुकुम दिया —

“ जाओ आवुस ! श्रमण गौतम अमुक स्थानपर विहार करता है । उसको जानस मारकर, हम रास्तेसे आओ ।”

उस रास्तेमें दो आठमियोंको बठाया—“ जो अकेला पुरुष इस रास्तेसे आये, उसे जानसे मारकर हम मार्गसे आओ ।”

उस रास्तेमें चार आठमियोंको बठाया—“जो दो पुरुष इस रास्तेसे आवें, उन्हें जानसे मारकर, इस मार्गसे आओ ।”

उस मार्गमें आठ आठमी बठाये—‘जो चार पुरुष० ।’

उस मार्गमें सोलह आठमी बठाये—० ।

तत्र वह अकेला पुरुष ढाल तलवार ले तीर कमान चढ़ा, जहा भगवान् ये वहाँ गया । जाकर भगवान्के अविद्वान भीत, उद्दिग्ध० शून्य शरीरसे खड़ा हुआ । भगवान्ने उस पुरुषको भीत० शून्य शरीर खड़े हुये दिखा । दगकर उस पुरुषको कहा—

“ आओ, आवुस ! मत डरो ।”

तब वह पुरुष ढाल तलवार एक ओर (रख) तीर कमान छोड़कर, जहा भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के चरणोंमें शिरसे पड़कर भगवान्को बोला—

“ भन्ते ! धारु (=मूर्ख) सा मूढसा, अकुशल (=अचतुर) सा मैंने जो अपराध किया है, जो कि मैं दुष्ट चित्त हो धन वित्त हो, यहाँ आया उसे क्षमा कर । भन्ते ! भगवान् भविष्यम संहर (=रोक करने)के लिये, मेरे उस अपराध (=अत्यय)को अत्यय (=बीते) के तौरपर स्वीकार करें ।”

“ आहुम ! जो तूने अपराध किया,० अब चित्त हो यहाँ आया । चूँकि आवुस ! अत्यय (=अपराध)को अत्यय० तौरपर देखकर धर्मानुसार प्रतीकार करता है, (हमलिये) उसे हम स्वीकार करते हैं । ।”

तत्र भगवान्ने उस पुरुषका आनुपूर्वी कथा कही० । (और) उस पुरुषको उमा आगमनपर० धर्म-चतु उत्पन्न हुआ ।०।

तत्र वह पुरुष भगवान्को बोला—

“ आश्चर्य ! भन्ते !! = भन्ते ! आजसे भगवान् मुझ अज्ञलिषद्ध शरणागत उपायक धारण करें ।”

तव भगवान्ने उम पुरपणी—

“आयुम । तुम इस मार्गसे मत जाओ; इस मार्गसे जाओ” (कह) दूसरे मार्गसे भेज दिया ।

तब उन दो पुरुषोंने—‘क्यों वह पुरुष देकर रहा है’ (सोच) उपरकी ओर जाते, भगवान्को एक वृक्षके नीचे घेरे देगा । दूसर जहाँ भगवान् थ, वहाँ जाकर भगवान्को समिदादनकर, एक और घेठ मये । उन्हे भगवान्ने आनुपूर्वी-कथा कही ० । ० । “आयुमो । मत तुम लोग इस मार्गसे जाओ; इस मार्गसे जाओ” । ० ।

तब उन चार पुरुषोंने ० । ० । तब उन आठ पुरुषोंने ० । ० । तब उन सोलह पुरुषोंने ० । ० । “आजसे मन्ते । भगवान् हमें अञ्जलि बद्ध क्षाणागत उपामर धारण करे ।”

तब वह अनेक पुरुष जहाँ देवन्त या, वहा गया । गाकर देवन्तको कहा—

“भगते ! मैं उन भगवान्को जानने नहीं मार मरता । वह भगवान् महा-अद्विक् = महानुभाव हैं ।”

“जानेदे आयुम । तू धमण गौतमको जानने मत मार, मैं ही जानसे मारेंगा ।”

उस समय भगवान् गृध्रकृत पर्वतकी लयामें टहलते थे । तब दव-दत्तने गृध्रकृत पर्वतपर चढ़कर—‘इसने धमण गौतमको जानने मारें’—(सोच) एक गड़ी शिला फेंकी । दो पर्वत कृत्रिने आकर उम शिलाको तोक दिया । उसने (निर्णय) पपड़ीने उच्छर (लगनेसे) भगवान्के पैरसे रधिर बह निकला ।

+ + + +

सकलिक सुत्त ।

‘ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहम महकुच्छि (=महकुच्छि) मृगजयम विहार करते थे ।

उस समय भगवान्का पैर पत्था (=सम्बलिका = शर्करिका) से क्षत होगया था । भगवान्को बहुत सीप, दु खद, रस = कटुक = अ-सात = अ मत्तप शारिरिक वन्ना होती थी । उनको भगवान् बिना शोक करते, स्मृति संप्रजन्यसे सहन करते थे । तब भगवान्ने चोपती संधादीको बिठवा, दादिनी बगलसे लेटकर पैरके ऊपर पर रख, स्मृति, संप्रजन्यसे साथ सिंह-वात्सा की ।

१ स नि १ ४ ८ ।

२ अ क—‘देवदत्तने बड़ी शिला फेंकी दो शिलाओंने टकरानेसे पापाण शकलिका (=पत्थरका टुकड़ा) ने उच्छर भगवान्के पैरकी सारी पीठको घायनकर दिया । पर वदे परसेसे आहतकी भाति होर बहाता, लाक्षा रमसे रंजितमा होगया । तबसे भगवान्को पीड़ा उत्पन्न हुई । भिक्षुओंने सोचा—‘यह विहार जंगल (उज्जंगल) त्रिपम, बहुतेमे क्षत्रिय आदि-के और प्रमजितोंके पहुचने लायक नहीं है । (और वह) तथागतको मच सिखिया (=ढोले) मैं चैग, महकुच्छि लेगये ।

देवदत्त-विद्रोह।

उस समय राजगृहमें नाला-गिरि नामक मनुष्य घातक, चढ़ हाथी था। देवदत्तने राजगृहमें प्रवेशकर हथसारमें जा फीलवान्को कहा—

“जन्म भ्रमण गौतम इस सड़कपर आये, तब तुम नाला-गिरि हाथीको खोल, इस सड़कपर कर दना।”

“अच्छा भन्ते !”

भगवान् पूर्वाह्न समय पहिन्कर पात्रचीवर ले, बहुतसे मिश्रुओंके साथ राजगृहमें पिं चारके लिये प्रविष्ट हुये। तब भगवान् उमी सड़कपर आये। उन फीलवाने भगवान्को उस सड़कपर आते देखा। देखकर नालागिरि हाथीको छोड़कर, सड़कपर कर दिया। नाला गिरि हाथीने दूरसे भगवान्को आते देखा। देखकर सूँडको खड़ा कर, प्रहृष्ट हो, कान बलात जहा भगवान् थे, उधर दौड़ा। उन मिश्रुओंने दूरसे नालागिरि हाथीको आते देखा। देखकर भगवान्को कहा—

“भन्ते ! यह चंड, मनुष्य-घातक नालागिरि हाथी इस सड़कपर आ रहा है, हट जायें भन्ते ! भगवान् हट जायें छगत !”

दूसरीवार भी०। तीसरीवार भी०।

उस समय मनुष्य ग्रामादोपर, हर्म्योपर छतोपर, चढ़ गये थे। उनमें जो अश्वदालु = अप्रसन्न, दुर्बुद्धि (=मूर्ख) मनुष्य थे, वह ऐसा कहते थे—“अहो ! महाभ्रमण भगवान् (था, सो) नागसे मारा जायेगा।” और जो मनुष्य श्रद्धालु = प्रसन्न, पंडित थे, उन्होंने ऐसा कहा—“देर तक जी। नाग नाग (=बुद्ध) से, सग्राम करेगा।”

तब भगवान्ने नालागिरि हाथीको मैत्री (भावना) युक्त चित्तसे आह्वाहित किया। तब नालागिरि हाथी भगवान्के मैत्री (पूर्ण) चित्तसे स्पृष्ट हो, सूँडको नीचे करके, जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर खड़ा हुआ। तब भगवान्ने दाहिने हाथसे नालागिरिके कुम्भका स्पर्श (किया)। तब नालागिरि हाथीने सूँटसे भगवान्की चरण धूलिको ले, शिरपर डाला।

। नालागिरि हाथी हथसारमें जाकर अपने धानपर खड़ा हुआ।

तब देवदत्त जहाँ कोकालिक कटमोर तिस्सक, और खंडदेवी पुत्र समुद्रदत्त थे, वहाँ गया। जाकर बोला—

“आयो आहुसो ! हम भ्रमण गौतमका संघ भेद (=फूट) = चक्रभेद करें। आओ ! हम भ्रमण गौतमके पास चलकर पांच वस्तुयें मांगे। —‘अच्छा हो भन्ते ! मिश्रु (१) जिन्दगी भर आरण्यक रहें, जो गाँवमें बसे, उसे दोष हो। (२) जिन्दगीभर विद्रोहक (=मिक्षा मागकर खानेवाले) रहें, जो निमग्नण खाये, उसे दोष हो। (३) जिन्दगीभर पाण्डलिक (=पेंके चीयड़े सीकर पहननेवाले) रहें, जो गृहस्थके (दिये) चीवरको उपभोग करे, उसे दोष हो, (४) जिन्दगीभर वृष मूलिक (=वृषके नीचे रहनेवाले) रहें, जो छायाके

३ सुत्तपग (संघ भेदक पाठ) ७।

नीचे जाये, वह दोपी हो (५) जिन्दगीभर मरुनी भास न लाये, जो मरुनी भास लाये, उसे दोष हो ।, भ्रमण गौतम इसे नहीं स्वीकार करेगा । तब हम इन पांच बातोंसे लोगोंको समझायेंगे । ”

तब देवदत्त परिषद् सहित जहा भगवान् थे, चला गया । जाकर भगवान्को अभिशदन कर, एक ओर बसा । एक ओर बैठ देवदत्तने भगवान्को कहा—

“ अच्छा हो भन्ते ! भिक्षु (१) जिन्दगीभर आरण्यक हो । ”

“ अलम् देवदत्त ! जो चाहे आरण्यक हो, जो चाहे ग्राममें रहे । जो चाहे पिंड-
तिक हो, जो चाहे निमग्रण लाये । जो चाहे पांशुहस्तिक हो, जो चाहे ग्रहस्थके (रिपे)
वेरको पहिने । देवदत्त ! आठ भास में ग्रहके नीचे पास (= वृक्ष-मूल-शयनासन) की
जुता दी है । १ अदृष्ट, २ अ-श्रुत, ३ अ परित्यक्त, इस तीन कोटिसे परिशुद्ध मांसकी भी
नि अनुज्ञा दी है ।

तब देवदत्तने उम दिन उपोसथको आसामे उठकर शलाका (= बोटकी एकड़ी)
कड़ाई—“ हमने आबुसो ! भ्रमण-गौतमको जाकर पांच वस्तुयें मागा—० । उक्त भ्रमण
गौतमने नहीं स्वीकार किया । सो हम (इन) पांच वस्तुओंको लेकर चलेंगे । जिस आयुष्मान्
ने यह पांच बातें पपन्द हों, वह शलाका ग्रहण करें । ”

उम समय वंशालीके पांच सौ वज्रिपुत्रक नये भिक्षु असली बातको न समझने वाले थे ।
ज्यों—‘ यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन (= गुरु उपदेश) है’—(सोच)
झाका ले ली । तब देवदत्तने संघको फोड़ (= भेद) कर, पांच सौ भिक्षुओंको ले, जहा
गयासीस था वहाको चल दिया ।

आयुष्मान् सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहा भगवान् थे बहा गये । । आयुष्मान्
सारिपुत्रने भगवान्को कहा—

“ भन्ते ! देवदत्त संघको फोड़कर, पांच सौ भिक्षुओंको लेकर जहा गयासीस है, वहा
गया गया । ”

“ सारिपुत्र ! तुम लोगोंको उन नये भिक्षुओंपर दया भी नहीं आई ? सारिपुत्र !
मैं लोग उन भिक्षुओंके आपसमें पड़नेसे पूर्वही जाओ । ”

“ अच्छा भन्ते ! ”

उस समय बड़ी परिषद्के बीच बड़ा देवदत्त धर्म उपदेश कर रहा था । देवदत्तने दूरने
सारिपुत्र मौद्गल्यायनको आते देखा । देखकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया ।—

१ ‘ मेरे लिये मारा गया ’—यह देखा न हो । २ ‘ मेरे लिये मारा गया —यह सुना
न हो । ३ ‘ मेरे लिये मारा गया ’—यह सन्देह न हो । ४ (कृष्ण चतुर्दशी या पूर्णिमा) ।
५ बोग (= मत, पाली छन्द) लेनेकी आत्मानिक लिये जैसे आज्ञा पुर्ण (जेल्ट) चरती
सैनी पृथकालमें छन्द शलाका चरती थी । ६ ब्रह्मयोनि पवत (गया) ।

“ देखो भिक्षुओं कितना तु आख्यात (= सु उपदिष्ट) मेरा धर्म है । जो धर्म गौतमके अपभ्रातृ सारिपुत्र मौद्गल्यायन हैं, वह भी मेरे पास आरहे हैं, मेरे धर्मको मानते हैं ।”

ऐसा करनेपर कोकालिन्ने देवदत्त को कहा—

“ आयुम देवदत्त । सारिपुत्र मौद्गल्यायनका विश्वास मत करो । सारिपुत्र, मौद्गल्यायन यत्नीयत (= पापेच्छ) है, पापक (= बुरी) इच्छाओंके वश में हैं ।”

“ आयुम, नहीं, उनका स्वागत है, क्योंकि वह मेरे धर्म को पसन्द करते हैं ।”

तब देवदत्तने आयुमान् सारिपुत्रको आधा आमन (= देनेको) निमंत्रित किया—

“ आओ आयुस ! सारिपुत्र ! यहाँ बैठो । ”

“ आयुस ! नहीं ” (कह) आयुमान् सारिपुत्र दूमरा आसन लेकर एक ओर बैठ गया । आयुमान् महामौद्गल्यायन भी एक आसन लेकर बैठ गये । तब देवदत्त बहुत रात तक भिक्षुओंको धार्मिक कथा (कहता) आयुमान् सारिपुत्रको बोला—

“ आयुस । सारिपुत्र । (इस समय) भिक्षु आलस्य-प्रमाद-रहित हैं, तुम आयुस सारिपुत्र ! भिक्षुओंको धर्म-देशना करो, मेरी पीठ अगिया रही है, सो मैं लम्बा पहुँगा ।”

“ अच्छा आयुस ।”

तब देवदत्त बोलेती मघादीको बिठवाकर दाहिनी बगलसे लेट गया । स्मृति-रहित संप्रजन्म-रहित उसे सुषुप्तभरमेंही निद्रा आगई । तब आयुमान् सारिपुत्रने आदेश । प्रातिहार्य (= व्याख्यानके चमत्कार) और अनुशासनोप-प्रातिहार्यके साथ, तथा आयुमान् महामौद्गल्यायनने ऋद्धि प्रातिहार्य (= योग-बलके चमत्कार)के साथ भिक्षुओंको धर्म उपदेश किया, अनुशासन क्रिया । तब उन भिक्षुओंको चिरज = विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ, उन कुछ समुदय धर्म (= उत्पन्न होनेवाला) है, वह निरोध-धर्म (= विनाश होनेवाला) है ।

आयुमान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको निमंत्रित किया—

“ आयुसो ! चलो भगवान्के पास चलें, जो उस भगवान्के धर्मको पसन्द करता है वह आवे । ”

तब सारिपुत्र मौद्गल्यायन उन पाँच सौ भिक्षुओंको लेकर जहाँ वेष्टुवन था, वहाँ गये । तब कोकालिन्ने देवदत्तको उठाया—

“ आयुस देवदत्त । उठो मेने कहा न—आयुम देवदत्त । सारिपुत्र मौद्गल्यायनका विश्वास मत करो । ० । ”

तब देवदत्तको वहाँ सुप्तमे गर्म खून निस्क पड़ा ।

विसाखा-सुत्त ।

ऐसा मेने सुना—एक समय भगवान् आवस्तीमें मृगारमाताके प्रासाद पूर्वोत्तममें विहार करते थे ।

१ चालिसग (४३२ वि पृ) वर्षावास भगवान्ने आवस्ती (पूर्वोत्तम) में किया—
२ उदान २ ९ ।

उस समय विद्याया ० का कोई काम राजा प्रसेनजित् ० था था हुआ था ।
उस राजा प्रसेनजित् ० इच्छानुसार निर्णय नही करना था । तब विद्याया सृगारमाता मय्याह
म जहां भगवान् थे वहां गई । एक ओर धनी विद्याया ० को भगवान् ने यह कहा—

“हैं ! विद्याया ! तू मध्याह्ने कहासे आ रही है ?”

“भते ! मेरा कोई काम राजा प्रसेनजित् ० ।”

तब भगवान् ने इस अर्थको जानकर उगी वेलाम यह उदान कहा—

“(जो कुछ) पर क्या है, (वह) सब दुःख है, एष्य्यो (= प्रभुता, स्ववश) सुख
। साधारण (दास) में भी (प्राणी) पीडित होते हैं, क्योंकि काम भाग आदिके योगोका
प्रतिक्रमण करना मुश्किल है ।”

जटिल सुत्त ।

१००वाँ मैन सुता—एक समय भगवान् गयास गयासीस पर बिहार करते थे ।

उस समय बहुतसे जटिल, अन्तराष्ट्रक हिम पात समयवाली हेमन्तकी ठंडी रातोंमें
गयास हुक्ते उतराते थे, पानीमें भीगने थे, अग्निम हवनभी करते थे—‘हम प्रकार (पाप)
शुद्धि होगी’ । भगवान् ने उन बहुतसे जटिलोंको ० दया । तब भगवान् ने इस अर्थसे जानकर उगी
समय यह उदान कहा—

“बहुतसे जन यही नही रहे हैं, (किन्तु) पानीसे शुद्धि नहीं होती । जिनमें सत्य और
धर्म हैं, यही शुद्धि है, यही प्राप्ति है ।”

१ अ क “विद्यायाके पोहरसे भणिमुक्तादि रजित वस्तु उसकी भेंटने लिये आई
थी । उसका नगर द्वारपर पहुँचनेपर, बुद्धीमालीने अधिक महसूस ले लिया ।”

२ उदान १ ९ ।

३ माघमासके अंतिम चार दिन, और फागुनके आदिम चार दिन ।

पंचम-खंड ।

(१)

सगाम-सुत्त । कोसल-सुत्त । गहीतिक-सुत्त । गरुड-सुत्त ।

(वि. पू. ४३१-३०) ।

१ ऐसा मैंने सुना — एक समय भगवान् श्रावस्ती ० जेतवनमें विहार करते थे ।

तब राजा मागध अजातशत्रु वेदेही-पुत्र १ चतुरगिनी सेनाको तयारकर, राजा प्रसेनजित् कोयलमें युद्धके लिये काशी (दश) को गया । राजा प्रसेनजित् कोसलमें सुता । तब राजा प्रसेनजित् ० चतुरगिनी सेनाको तयारकर काशीकी ओर गया । तब राजा मागध अजातशत्रु ०, और राजा प्रसेनजित् ० लड़े । उस संग्राममें राजा ० अजातशत्रु ० ने राजा प्रसेनजित् ० को हरा दिया । पराजित होकर राजा प्रसेनजित् ० सधामसे राजधानी श्रावस्तीमें छोट आया ।

तब बहुतसे भिक्षुओंने पूर्वाह्न समय (चीयर) पहिनकर पात्र चीवर लेकर श्रावस्तीमें पिंड चार किया । श्रावस्तीमें पिंडचार करने भोजनोपरांत (वह) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । ० उन भिक्षुओंने भगवान् को कहा —

“ भन्ते ! राजा मागध अजातशत्रु ० काशीको गया । ० राजा प्रसेनजित् को हरा दिया । ० राजा प्रसेनजित् ० श्रावस्तीकी छोट आया । ”

“ भिक्षुओ ! राजा ० अजातशत्रु ० पाप मित्र (= धुरे दोस्तोंवाला) ० है ; राजा प्रसेनजित् ० कल्याण मित्र (= अच्छे मित्रोंवाला) कल्याण सहाय ० है । आज ही रातसे राजा प्रसेनजित् ० पराजित हो — उसे सोता है —

“ जब धैर्यको उत्पन्न करी है, पराजित दुःखसे सोता है । शांतिको प्राप्त (पुदप) जब पराज्य छोड़, स्वयसे मोता है ॥ १ ॥ ”

तब राजा ० अजातशत्रु ० चतुरङ्गिणी सेना तयारकर ० काशीकी ओर आया । ० उस संग्राममें राजा प्रसेनजित् ० ने राजा ० अजातशत्रु ० को हरा दिया, और उसे जीता पकड़

१ एकतालीसत्रा वर्षावाम (४३१ वि पू) भगवान्ने श्रावस्ती (जेतवन) में निताया ।

२ स नि ३ २ ४ ।

३ अ क “ वेदेही = पंडिता महाकोयल राजा (= प्रसेनजित् के पिता) ने पिंडसारको कन्या देते वक्त दोनों राज्योंके बीचका एक लाख आयका काशी ग्राम कन्याको दिया । अजातशत्रु के पिताके मार देनेपर, उसकी माता भी राजाके नियोगमें जलदी ही मर गई । तब राजा प्रसेनजित् — ‘ अजातशत्रुने माता पिताको मार दिया, यह भगे पिताका गाव है ’ (कह) उसने लिपि सगहर करने लगा । अजातशत्रुने भी — ‘ मेरी माताका है ’ । उस गावके लिये दोनों मामा मामनियुद्ध किया । ”

लिया । तब राजा प्रसेनजित् कोमलको ऐसा हुआ—‘यद्यपि यह राजा ०अजातशत्रु० शत्रु करनेवाले मुझसे द्रोह करता है, तब भी तो यह मेरा भान्जा है । क्यों न मैं राजा ०अजातशत्रु०के सब हस्तिधाय (=हाथी-छुण्ड)को लेकर, सब अश्व०, ०सब रथ०, ०पदाति (=पैदल सेनिक) कायको लेकर जीताही छोड़ दूँ । तब राजा प्रसेनजित्ने॥ लेकर उसे जीताही छोड़ दिया ।

तब बहुतसे भिक्षु० भगवान्‌में बोले—० ।

भगवान्‌ने इस बातको जानकर, उन्ही समय इन गाथाओंको कहा—

“जो उसको धुराई करता है, (जो पुरुष) उसे विलुप्त करता है, जब दूसरे विलुप्त करते हैं, तो वह विलुप्त हो विलोप (को प्राप्त) होता है ॥२॥ बाल (=मूर्ख जन) तब तक नहीं समझता, जन्तक पापमें नहीं पचता, जब पापमें पचने लगता है, तब बाल (मनुष्य) मस्मस है ॥३॥ इत्यारा इत्या पाता है, जेता जय पाता है, निन्दक (=आक्रोशक) निन्दा पाता है, और रोप करनेवाला रोप । तब कर्मके फेर (=विवर्त)से वह विलुप्त हुआ विलोप हो जाता है ॥ ४ ॥

कोसल-सुत्त ।

‘ऐसा मेने सुना—एक समय भगवान्‌ आवस्ती० जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय राजा प्रसेनजित् ० संभ्रम जीतकर, मनोरथ प्राप्तकर चढाईसे लौटा था । तब राजा प्रसेनजित् ० जहा आराम था, वहाँ गया । जितना यानका रास्ता था, उतना यानने जाकर, यानमें उत्तर पैरलही गारागमें प्रविष्ट हुआ । उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगमें देहलते थे । तब राजा ० ने • उन भिक्षुओंको यह पूछा—

“भन्ते ! इस समय वह भगवान्‌ अर्हत् सम्यक्-संशुद्ध कहां विहार करते हैं ? भन्ते ! हम उन भगवान्‌का दर्शन करना चाहते हैं ।”

“महाराज ! यह द्वार वन्द विहार (=कोठरी) है, चुपकेसे धीरे धीरे वहा जाकर बाराडा (=आलंद)में प्रवेशकर, सासर जजीर (=अर्गल) खट खाओ । भगवान्‌ तुम्हारे लिये द्वार खोलेंगे ।”

“भगवान्‌ने द्वार खोल दिया । तब राजा प्रसेनजित् ० विहारमें प्रविष्ट हो, सिरसे भगवान्‌के पैरोंमें गिरकर, भगवान्‌के पैरोंको मुखासे चूमता था, हाथसे (पैरोंको) संवाह (=दबाना) करता था, और नाम मुनाता था—‘भन्ते ! मैं राजा प्रसेनजित् कोमल हूँ ३ ।”

“महाराज ! तुम किम बातको देखते इस शरीरमें इतनी परम सज्जपा करते हो । मैत्रीका उपहार दिखते हो ।”

“ भन्ते । कृतवृत्ता, कृत-वेत्तिकाको देखते हुये, मे भगवान्में इस प्रकारकी परम सुश्रुषा करता हूँ, मैत्री उपहार दिखाता हूँ । भन्ते । भगवान् बहुतजनार्थ हित, बहुत जनोके सुख केलिये हैं । भगवान्ने बहुत जनोको आर्थ न्याय—जो कि यह कल्याण धर्मता कदापि धर्मता है—(उत्तम) प्रतिष्ठित किया ।

वाहीतिक सुत्त ।

१०१ता में सुना—एक समय भगवान् धावन्ती० जेतवनमें विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्न समय (चीवर) पहिनकर पाण्डीवर ले, धावन्तीम पिडधार करके दिनके विहारके लिये जहाँ मृगार मानाका प्रामाण्य पूर्वाराम था, वहा चले । उस समय राजा प्रसेनजित्० एक पुडरोक नाग (=हाथी) पर चढकर, मध्याह्नमें धावन्तीस बाहर जा रहा था । राजा प्रसेनजित्०ने दूरसे आयुष्मान् आनन्दको भाते देखा । तब राजा निरिण्डु (श्रीवर्द्ध) महामात्यको आमन्त्रित किया—

“ सौम्य सिरिवड्ड । यह आयुष्मान् आनन्द है न ?”

“ हा महाराज । ”

तब राजा०ने एक आशमोको आमन्त्रित किया—

“ आओ, हे पुरुष ! जहा आयुष्मान् आनन्द है, वहा जाओ, जाकर मेरे वचनमें आयुष्मान् आनन्दके पैरामें वंदना करना, और यह भी कहना—‘भन्ते ! यदि आयुष्मान् आनन्दको कोई बहुत जरूरी काम न हो, तो भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द कृपावर एक मिनट (=मुहूर्त) दूर जायें ।’

“ अच्छा देव ! ”

आयुष्मान् आनन्दने मौनसे स्वीकार किया ।

तब राजा प्रसेनजित् जितना नागका रास्ता था, उतना नागसे जाकर, नागसे उतर पैदलही जाकर अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो, आयुष्मान् आनन्दको बोला—

“ भन्ते ! यदि आयुष्मान् आनन्दको कोई अत्यावश्यक काम न हो, तो अच्छा हो भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द जहाँ अविषयती नदीका तीर है, कृपाका वहाँ चले । ”

आयुष्मान् आनन्दने मौनसे स्वीकार किया ।

तब आयुष्मान् आनन्द, जहाँ अविषयती नदी का तट था, वहाँ गये । जाकर एक वृक्ष नीचे बिठे आसनपर बैठे । तब राजा प्रसेनजित्० जाकर, नागसे उतर पैदलही जाकर अभिवादन कर एक ओर खड़ा हुआ । एक ओर खड़े हुये राजा०ने यह कहा—

“ भन्ते । आयुष्मान् आनन्द यहा कालीनपर बैठे । ”

“ नहीं महाराज ! तुम बैठो, मे अपने आसनपर बैठे हूँ । ”

राजा प्रसेनजित्० बिठे आसनपर बैठे । वत्कर बोला—

१ म नि २४८

“ भन्ते ! क्या वह भगवान् ऐसा कायिक आचरण कर सकते हैं, जो कायिक आचरण, श्रमणों, ब्राह्मणों और विशोसे निन्दित (= उपारम्भ) है ? ”

“ नहीं महाराज ! वह भगवान् ! ”

“ क्या भन्ते ! वाचिक आचरण कर सकते हैं ? ” “ नहीं महाराज ! ”

“ आश्चर्य ! भन्ते ! अद्भुत ! भन्ते ! जो हम (दूसरे) श्रमणोंसे नहीं पूरा कर (सकते) सके, वह भन्ते ! आयुष्मान् आनन्दने प्रश्नका उत्तर दे पूरा कर दिया । भन्ते ! जो बाल = अव्यक्त (= मूर्ख) बिना मोचे, बिना धाह लगाये, दूसरोंका वर्ण (= प्रशंसा) या चर्चा भापण करते हैं, उसे हम सार मानकर नहीं स्वीकार करते । और भन्ते ! जो वह पति = पति = मेधावी (= पुरुष) सोचकर, धाह लगाकर दूसरोंका वर्ण या अवर्ण भापण करते हैं, उसे हम सार मानकर स्वीकार करते हैं । भन्ते ! आनन्द ! कौन कायिक आचरण श्रमणों ब्राह्मणों विशोसे निन्दित है ? ”

“ महाराज ! जो कायिक-आचरण अ-कुशल (= बुरा) है । ”

“ भन्ते ! अकुशल कायिक आचरण क्या है ? ” “ महाराज ! जो कायिक आचरण स-अवध (= सन्तोष) है । ” “ स-अवध क्या है ? ” “ जो स व्यापाद्य (= हिंसायुक्त) है । ” “ स-व्यापाद्य क्या है ? ” “ जो दुःख विपाक (= अन्तर्में दुःख देने वाला) है । ”

“ दुःख विपाक क्या है ? ”

“ महाराज ! जो कायिक आचरण अपनी पीड़ाके लिये होता है, पर-पीड़ाके लिये होता है, दोनोंकी पीड़ाके लिये होता है । उससे अ-कुशल धर्म (= पाप) बढ़ते हैं, कुशल धर्म नाश होते हैं । इस प्रकारका कायिक आचरण महाराज ! अनिन्दित है । ”

“ भन्ते आनन्द ! कौन वाचिक आचरण श्रमणों ब्राह्मणों विशोसे निन्दित है ? ”

“ महाराज ! जो वाचिक-आचरण अपनी पीड़ाके लिये है । ”

“ कौन मानसिक आचरण ? ”

“ भन्ते ! आनन्द ! क्या वह भगवान् सभी अकुशल धर्मों (= बुराइयों) का बिना वर्णन करते हैं ? ”

“ महाराज ! तथागत सभी अकुशल धर्मोंसे रहित हैं, सभी कुशल धर्मोंसे युक्त हैं । ”

“ भन्ते आनन्द ! कौन वाचिक आचरण (= काय-समाचार) श्रमणों ब्राह्मणों विशोसे निन्दित है ? ”

“ महाराज ! जो कायिक आचरण कुशल है । ० अनवध ० । ० अव्यापाद्य ० । ० सुख विपाक ० । जो न अपनी पीड़ाके लिये होता है, न पर पीड़ाके लिये, न दोनों पीड़ाके लिये होता है । उससे अकुशल-धर्म नाश होते हैं, कुशल-धर्म बढ़ते हैं । ० ।

“ वाचिक आचरण कुशल है ? मानसिक आचरण कुशल है ? ”

“ भन्ते आनन्द ! क्या वह भगवान् सभी कुशल धर्मोंकी प्राप्ति को वर्णन करते हैं ? ”

“महाराज ! तथागत सभी अकुशल-धर्मोंसे रहित हैं, सभी कुशल धर्मोंसे युक्त हैं ।”

“आश्रय ! भन्ते ॥ अहृत । भन्ते ॥ क्तिता सुन्दर कथन (=सुभाषित) है, भन्ते ! आयुष्मान् आनन्दका ॥ भन्ते ! आयुष्मान् आनन्दके इस सुभाषितसे हम पाम प्रसन्न हैं । भन्ते ! आयुष्मान् आनन्दके सुभाषितसे इस प्रकार प्रसन्न हुये, हम हाथी-रत्न भी आयुष्मान्को देते, यदि वह आयुष्मान् आनन्दको मिहित (=प्राप्त=कल्प्य) होता, अथ-रत्न (=श्रेष्ठ घोड़ा) भी, अथवा गाव भी । किन्तु भन्ते ! आनन्द ! हम इसे जानते हैं, वह आयुष्मान्को प्राप्त नहीं है । मेरे पाम राजा भागध अजातशत्रु बन्धी पुत्रकी मेरी यह सोलह हाथ लम्बी आठ हाथ चौड़ी वाहीतिक है, उसे आयुष्मान् आनन्द ह्वा-करके स्वीकार करें ।”

“नहीं महाराज ! मेरे तीनों चीवर पूरे हैं ।”

“भन्ते ! यह अचिरवती नदी आयुष्मान् आनन्दने देखी है, और हमो भी । जल ऊपर पर्वत पर महामेघ बरकता है, तब यह अचिरवती, दोनों तटोंको भर कर बहती है । ऐसेही भन्ते ! इस वाहीतियसे आयुष्मान् आनन्द अपना मित्रावर बनाओ, जो आयुष्मान् आनन्दके चीवर हैं, उन्हे सनहकारी बाट लेंगे । इस प्रकार हमारी दक्षिणा (=दान) मारों भाकर बहती हुई (=सर्विस्यन्वन्ती) होगी । भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द मेरी वाहातिकको स्वीकार करें ।”

आयुष्मान् आनन्दने वाहीतिकको स्वीकार किया । तब राजा ० ने कहा—

“अच्छा भन्ते ! अब हम जात हैं, (हम) बहु-कृम्य बहु-कणीय हैं ।”

“जिमका महाराज ! तुम काल समझते हो ।”

तब राजा प्रसेनजित् ० आयुष्मान् आनन्दके भाषणको अभिनन्दनकर, अनुमोदनकर, आसनसे उठ, ० अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया ।

राजा ०के जानेके थोड़ीही देर बाद, आयुष्मान् आनन्द जहां भगवान् थे, वहां गये । एक ओर बैठ आयुष्मान् आनन्दने जो कुछ राजा प्रसेनजित् ०के साथ कथा सलाप हुआ था, वह सब भगवान्को सुना दिया, और वह वाहीतिकभी भगवान्को अर्पण करदी । तब भगवान् मिश्रुजको आमंत्रित किया—

“मिश्रुजो ! राजा प्रसेनजित् ०को लाभ है, ० सुखम मिला है, जो राजा ० आनन्दका ज्ञान सेवनपाता है ।”

यह भगवान्ने कहा, संतुष्ट हो उन मिश्रुजने भगवान्ने भाषणका अभिनन्दन किया ।

१ अ क “वाहीत राष्ट्रम पेदा होनेगले बखरका यह नाम है ।” मतदान और मतक चौका प्रदेश वाहीत देश है । पाणिनीय (४ २ १७ । १ । ३ ११४) ने इसेही वाहीत कहा है ।

चंकम सुत्त ।

“एसा” मेने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमे गृहकूट परितपर विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र बहुतसे भिक्षुओंके साथ भगवान्के अविवर्तमें रहते थे। ०महामोहल्यायन भी०। महाकाश्यपभी०। ०अनुरुद्धभी०। ०पूर्ण मैत्रायणीपुत्रभी०। आयुष्मान् उपालिभी०। आयुष्मान् आनन्दभी०। देवदत्त भी बहुतसे भिक्षुओंके साथ। तब भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“देख रहेहा तुम भिक्षुओ। सारिपुत्रको, बहुतसे भिक्षुओंके साथ रहलते ?” “हां भन्ते।”
 “भिक्षुओ ! यह सभी भिक्षु महाप्रज्ञ हैं।” “देख रहे हो० मोहल्यायनको० ?” “हां भन्ते।”
 “भिक्षुओ ! यह सभी भिक्षु महा श्रद्धिक (= दिव्य-शक्तिधारी) हैं।”

“०काश्यपको० ?” ०। “०सभी० धृतवादी (= धृतगणोंसे युक्त) हैं।”

“०अनुरुद्धको० ?” ०। “०सभी० दिव्यचक्षुको०।”

“०पूर्ण मैत्रायणी पुत्रको० ?” ०। “०सभी० धर्म-कथिक०।”

“०उपालिको० ?” ०। “०सभी० विनय (= भिक्षुनियम) धर०।”

“०आनन्दको० ?” ०। “०सभी० बहुश्रुत०।”

“देख रहेहा तुम भिक्षुओ। देवदत्तको बहुतसे भिक्षुओंके साथ रहलते ?” “हां भन्ते।”

“भिक्षुओं ! यह सभी भिक्षु पापेच्छुक्त (= बद्ध नीयत) हैं। भिक्षुओ ! प्राणी, प्राण (= चित्त-वृत्ति = प्रकृति) के अनुसार (परस्पर) मिलाप करते हैं, साथ पकड़ते हैं। हीन अधिमुक्तिक (= नीच प्रकृतिवाले) हीनाधिमुक्तिकोंके साथ मिलाप करते हैं, साथ पकड़ते हैं। कल्याण (= अच्छे, उत्तम)-अधिमुक्तिक कल्याणाधिमुक्तिकोंके साथ०। पूर्वकालमें भी भिक्षुओ ! प्राणी धातुके अनुसार मिलाप करते थे, साथ पकड़ते थे। हीनाधिमुक्तिक०। कल्याणाधिमुक्तिक०। अनागत (= भविष्य) कालमें भी०। ०। इस समय भी०। ०।”

उपालि-सुत्त (वि. पू. ४३०) ।

“एसा मने मुना—एक समय भगवान् नालन्दा में प्रावारिकक आगमनक विहार करते थे ।

उम समय निर्गठ नात पुत्त निर्गठ (= जेन साधुओ) की बड़ी परिपट्ट (= जमात) के साथ नालन्दा में विहार करते थे । तब दीर्घ तपस्वी निर्घथ (= जेन साधु) नालन्दा में भिक्षाचार कर, पिंडपात खतम कर, भोजन के पश्चात्, जहाँ प्रावारिक आगमन (में) भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान् के साथ संमोदन (कुशलप्रश्नपूछ) कर, एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये दीर्घ तपस्वी निर्घथ को भगवान् ने कहा—

“ तपस्वी ! आसन मौजूद है, यदि इच्छा हो तो बैठ नाभो । ”

ऐसा कहने पर दीर्घ-तपस्वी निर्घथ एक नीचा आसन पर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे दीर्घ तपस्वी निर्घथ से भगवान् बोले—

“ तपस्वी ! पापकर्म के करने के लिये, पाप कर्म की प्रवृत्ति के लिये निर्घन्थ क्षात्पुत्र कितने कर्माका विधान करते हैं ? ”

“ आहुस ! गोतम । ‘ कर्म ’, ‘ कर्म ’ विधान करना निर्घन्थ क्षात्पुत्र का कयदा (= साविण) नहीं है । आहुस ! गोतम । ‘ दंड ’, ‘ दंड ’ विधान करना निर्गठ नाथ पुत्त का कयदा है । ”

“ तपस्वी ! तो फिर पाप कर्म के करने के लिये = पाप-कर्म की प्रवृत्ति के लिये निर्गठ नाथ-पुत्त कितने ‘ दंड ’ विधान करते हैं ? ”

“ आहुस ! गोतम । पापकर्म के करने के लिये ० निर्गठ नाथ पुत्त तीन दंडों का विधान करते हैं । जैसे—‘ काय-दंड ’, ‘ वचन-दंड ’, ‘ मन-दंड ’ । ”

“ तपस्वी ! तो क्या काय-दंड दूसरा है, वचन-दंड दूसरा है, मन-दंड दूसरा है ? ”

“ आहुस ! गोतम ! (हा) । काय-दंड दूसरा ही है, वचन-दंड दूसरा ही है, मन-दंड दूसरा ही है ।

“ तपस्वी ! इस प्रकार भेद किये, इस प्रकार विभक्त, इन तीनों दंडों में निर्गठ नाथ-पुत्त, पाप कर्म के करने के लिये, पापकर्म की प्रवृत्ति के लिये, किंप दंड को महादोष-युक्त विधान करते हैं, काय-दंड को, या वचन-दंड को, या मन-दंड को ? ”

“ आहुस गोतम ! इस प्रकार भेद किये, इस प्रकार विभक्त, इन तीनों दंडों में निर्गठ नाथ पुत्त, पाप कर्म के करने के लिये ० काय-दंड को महादोष-युक्त विधान करते हैं, वैया वचन-दंड को नहीं, वैया मन-दंड को नहीं । ”

“तपस्वी ! काय-दंड कहते हो ?”

“आहुस ! गौतम ! काय दंड कहता हूँ ।”

“तपस्वी ! काय दंड कहते हो ?”

“आहुस ! गौतम ! काय दंड कहता हूँ ।”

“तपस्वी ! काय दंड कहते हो ?”

“आहुस ! गौतम ! काय दंड कहता हूँ ।”

इस प्रकार भगवान् ने दीर्घ-तपस्वी निर्गठको इस कथा वस्तु (=बात) में तीनवार प्रतिष्ठापित किया।

ऐसा कहनेपर दीर्घ-तपस्वी निर्गठने भगवान् को कहा—

“तुम आहुस ! गौतम ! पाप-कर्मों करनेके लिये० कितने दंड विधान करते हो ?”

“तपस्वी ! ‘दंड’, ‘दंड’ कहना तथागतका कायदा नहीं है, ‘कर्म’, ‘कर्म’ कहना तथागतका कायदा है ।”

“आहुस ! गौतम ! तुम ०कितने कर्म विधान करते हो ?”

“तपस्वी ! मे ०तीन कर्म बतलाता हूँ—जैसे काय-कर्म, वचन-कर्म, मन-कर्म ।”

“आहुस ! गौतम ! काय कर्म दूसरा ही है, वचन कर्म दूसरा ही है, मन-कर्म दूसरा ही है ।”

“तपस्वी ! काय-कर्म दूसरा ही है, वचन कर्म दूसरा ही है, मन कर्म दूसरा ही है ।”

“आहुस ! गौतम ! ०इस प्रकार विभक्त० इन तीन कर्मोंमें, पाप कर्म करनेके लिये० किमको महादोषी ठहराते हो—काय कर्मको, या वचन कर्मको, या मन-कर्मको ?”

“तपस्वी ! ०इस प्रकार विभक्त० इन तीनों कर्मोंमें मन कर्मको मैं ०महादोषी बतलाता हूँ ।”

“आहुस ! गौतम ! मन-कर्म बतलाते हो ?”

“तपस्वी ! मन कर्म बतलाता हूँ ।”

“आहुस ! गौतम ! मन कर्म बतलाते हो ?”

“तपस्वी ! मन कर्म बतलाता हूँ ।”

“आहुस ! गौतम ! मन-कर्म बतलाते हो ?”

“तपस्वी ! मन-कर्म बतलाता हूँ ।”

इस प्रकार दीर्घ-तपस्वी निर्गठ भगवान् को इस कथा वस्तु (=विवाद विषय) में तीन बार प्रतिष्ठापित करा, आसनसे उठ जहा निर्गठ नात पुत्त थे, वहा चला गया।

उस समय निर्गठ नात-पुत्त, बालक (छोणकार),-निवासी उपाली आदिकी बड़ी गृहस्थ परिपत्रके साथ बस थे। तब निर्गठ नात पुत्तने दूरसे ही दीर्घ तपस्वी निर्गठको आते देख, पूछा—

“हैं ! तपस्वी ! मध्याह्ने तू कहाते (आ रहा है) ?

“ भन्ते ! श्रमण गौतमने पाससे आ रहा हूँ ।”

“ तपस्वी ! क्या तेरा श्रमण गौतमके साथ कुछ क्या-संलाप हुआ ?”

“ भन्ते ! हा । मेरा श्रमण गौतमने साथ क्या-संलाप हुआ ।”

‘ तपस्वी ! श्रमण गौतमके साथ तेरा क्या क्या-संलाप हुआ ।”

तब दीर्घ तपस्वी निर्गन्धने भगवान्क साथ जो कुछ क्या-संलाप हुआ था, वह सब निर्गन्ध नात पुत्तको कह दिया ।

“ साधु ! साधु !! तपस्वी ! जैसा कि शास्ता (= रु)के शासन (= उपदेश) को अच्छी प्रकार जाननेवाले, बहुश्रुत श्रावक दीर्घ तपस्वी निर्गन्धने श्रमण गौतमको बतलाया । वह सुवा मन-दृढ़, इस महान् काय दृढ़के सामने क्या शोभता है ? पाप र्मक करने = पापकर्मकी प्रवृत्तिके लिये काय-दृढ़ ही महादोषी है, वचन दृढ़, मन दृढ़ वैसे नहीं । ”

ऐसा कहनेपर उपाली गृहपतिने निर्गन्ध को यह कहा—

“ साधु ! साधु !! भन्ते तपस्वी ! जैसा कि शास्ताक शासनके र्ममन, बहुश्रुत श्रावक भदन्त दीर्घ तपस्वी निर्गन्धने श्रमण गौतमको बतलाया । यह सुना० । तो भन्ते ! मैं जानूँ, इसी क्या वस्तुमें श्रमण गौतमने साथ विवाद रोपूँ ? यदि मेरे (सामने) श्रमण गौतम वैसे (ही) ठहरा रहा, जैसा कि भन्त दीर्घ तपस्वीने (उमे) ठहराया । तो जैसे बलवान् पुत्र छम्मे बालवाली भेड़को गालेंसे पकड़कर निकाले, घुमार, डुलारे, उनी प्रकार मैं श्रमण गौतमके वादको निकालूँगा, घुमाऊँगा, टुगाऊँगा । (अथवा) जैसे कि गहर बलवान् शौद्धिक-कर्मकर (= शराय बनानेवाला) भट्ठीक चड़े दोकरे (= मोड़िया किला)को पानी (वाले) तालाबमें पकड़कर, कानोको पकड़ निकाले, घुमार, डुलारे, ऐसे ही मैं । (अथवा) जैसे बलवान् शरायी, बालकको कानमें पकड़कर रिलाये, डुलारा, ऐसे ही मैं । (अथवा) जैसे कि साठ वर्षका पट्टा हाथी गहरी पुष्कारिणीम घुमकर सप्तधावन नामक खेलको खेलै, ऐसे ही मैं श्रमण गौतमको सन घोवन० । हा ! तो भन्ते ! मैं जाता हूँ । इस क्या वस्तुमें श्रमण गौतमने साथ वाद रोपूँगा । ”

“ जा गृहपति ! जा, श्रमण गौतमने साथ इस क्या वस्तुमें वाद रोप । गृहपति ! श्रमण गौतमके साथ मैं वाद रोपूँ, या दीर्घ तपस्वा निर्गन्ध रोपै, या तू । ”

ऐसा कहनेपर दीर्घ-तपस्वी निर्गन्धने निर्गन्ध नात पुत्तको कहा—

“ भन्ते ! (आपको) यह मत रुच, कि उपालि गृहपति श्रमण गौतमके पास जाकर वाद रोपे । भन्ते ! श्रमण गौतम मायाकी है, (मति) परमेजानी माया जानता है, जिससे दूसरे तैयिको (= धंधाहूँ)के धारको (की अपनी ओर) पकड़ता है । ”

“ तपस्वी ! यह र्ममन नहीं, कि उपाली गृहपति श्रमण गौतमका श्रावक होजाय । र्ममन है कि श्रमण गौतम (ही) उपाली गृहपतिका धारक होजाय । ‘ जा गृहपति ! श्रमण गौतमके साथ इस क्या वस्तुमें वाद रोप । गृहपति ! श्रमण गौतमका साथ मैं वाद रोपूँ, या दीर्घ-तपस्वी निर्गन्ध रोपै, या तू । ”

दूसरीवार भी दीर्घ-तपस्वी निर्गठने० । तीसरीवार भी० ।

‘अच्छा भन्ते ।’ कह, उपालि गृहपति निर्गठ नात-पुत्रको अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, जहा प्राचारिक आश्रयन था, जहा भगवान् थे, वहा गया । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर घट गया । एक ओर बैठे हुये उपालि गृहपतिने भगवान्से कहा—

“भन्ते ! क्या दीर्घ-तपस्वी निर्गठ यहां आये थे ?”

“गृहपति ! दीर्घ-तपस्वी निर्गठ यहां आया था ।”

“भन्ते ! दीर्घ-तपस्वी निर्गठके साथ आपका कुछ क्या संलाप हुआ ?”

“गृहपति ! दीर्घ तपस्वी निर्गठके साथ मेरा कुछ क्या संलाप हुआ ।”

“तो भन्ते ! दीर्घ तपस्वी निर्गठके साथ क्या कुछ क्या संलाप हुआ ?”

तब भगवान्ने दीर्घ तपस्वी निर्गठके साथ जो कुछ क्या संलाप हुआ था, उस सबको उपाली गृहपतिसे कह दिया । ऐसा कहनेपर उपाली गृहपतिने भगवान्से कहा—

“साधु ! साधु ! भन्ते तपस्वी ! जेसाकि शम्भुके शासनके समर्थ, बहु श्रुत, श्रावक दीर्घ-तपस्वी निर्गठने भगवान्को बतलाया ॥ यह मुर्खा मन-दंड इस महान् काय-दंडके सामने क्या शोभता है ? पाप कर्मकी प्रवृत्तिके लिये काय-दंडही महा-दोषी है, वैसा वचन दंड नहीं है, वैसा मन-दंड नहीं है ।”

“गृहपति ! यदि तू सत्यमे स्थिर हो मंत्रणा (= विचार) करै, तो हम दोनोंका संलाप हो ।”

“भन्ते ! मैं सत्यमे स्थिर हो मंत्रणा करूंगा । हम दोनोंका संलाप हो ।”

“क्या मानने हो गृहपति ! (यत्नि) यहां एक योमार=दु खित भयंकर रोग-ग्रस्त शीत-जल त्यागी उष्ण जल-सेत्री निर्गठ शीत-जल न पानेके कारण मर जाये, तो निर्गठ नात पुत्र उसकी (पुत्र) उत्पत्ति कहा बतलायेंगे ?”

“भन्ते ! (जहा) मन सत्त्व नामक देवता हैं । वह वहा उत्पन्न होगा ।”

“सो किस कारण ?”

“भन्ते ! वह मनसे बंधा हुआ मरा है ।”

“गृहपति ! गृहपति ! मनमें (सोच) फरक्के कहो । तुम्हारा पूर्व(पक्ष)से पश्चिम (पक्ष) नहीं मिलता, तथा पश्चिममें पूर्व नहीं ओर गयाता । और गृहपति ! तुमने यह बात (भी) कही है—भन्ते ! मैं सत्यमें स्थिर हो मंत्रणा करूंगा, हम दोनोंका संलाप हो ।”

“और भन्ते ! भगवान्नेभी ऐसा कहा है । पापनर्म करनेकेलिये ० काय दंडही महादोषी है, वैसा वचन दंड (और) मन-दंड नहीं ?”

“तो क्या मानने हो गृहपति ! यहां एक चातुयाम संवरसे संवृत (= गोपित, रक्षित), सब चारिसे निवारित, मन चारि (= चारितो)को निवारण करनेमें तत्पर, सब (पाप-)

(१) प्राण हिसा न ररग, न कराना, न अनुमोदन करना, (२) चोरी न० । (३) झूठ न० । (४) आवित (= काम भोग) न चाहना ० । यह चातुयाम है ।

(२) निषिद्ध शीतल जल या पापरूपी जल ।

धारिसे धुला हुआ, सब (पाप) धारिसे छूटा हुआ, निर्मल (= जैन-साधु) है । वह आते जाते बहुतसे छोटे छोटे प्राणि समुदायको मारता है । गृहपति । निर्गठ नात पुत्र इसका क्या विषाक (= पल) बतलाते हैं ? ”

“ भन्ते ! अनृजानीको निर्गठ नात पुत्र महादोष नहीं कहते । ”

“ गृहपति ! यदि जाता हो । ” “ (तब) भन्ते ! महादोष होगा । ”

“ गृहपति ! जाननेको निर्गठ नात पुत्र कित्थमें कहते हैं ? ” “ भन्ते ! मन-दंडमें ”

“ गृहपति ! गृहपति ! मनम (सोच) करके कहो । ”

“ और भन्ते ! भगवान्ने भी० । ”

“ तो गृहपति ! क्या यह नालन्दा सुप्त संपत्ति-पुरुष, बहुत जनोंवाली, (बहुत) मनुष्योंसे भरी है ? ” “ हां भन्ते । ”

“ तो गृहपति ! (यदि) यहा एक पुरुष (नगी) सत्त्वार उठाये आये, और कहे—इस नालन्दामें जितने प्राणी हैं, मैं एक क्षणमें एक मुहुर्तमें, उन (सन) का एक मांस का पल्पान, एक मांसका दर बर दूंगा । तो क्या गृहपति ! यह पुरुष एक मांसका दर कर सकता है ? ”

“ भन्ते ! दशमी पुरुष, बीसमी पुरुष, तीस० चागीस०, पचासमी पुरुष, एक मांसका दर नहीं कर सकते, यह एक मुवा क्या है । ”

“ तो गृहपति ! यहाँ एक नदिमान्, चित्तको वशर्म किया हुआ, धमग वा धाराण आये, वह पेसा थोले—मैं इस नालन्दाको ण्बही मनके मोघसे भस्म कर दूंगा । ” क्या गृहपति ! यह० धमण वा धाहण० इस नालन्दाको (अपने) एक मनके मोघसे भस्म कर सकता है ? ”

“ भन्ते ! दश नालन्दाओंकी भी० पचाम नालन्दाओंकी भी० वह धमण वा धाहण० (अपने) एक मनके मोघसे भस्मकर सकता है । एक मुहं नालन्दा क्या है । ”

“ गृहपति ! गृहपति ! मनमें (सोच) कर कहो । ”

“ और भगवान्ने भी० । ”

“ तो गृहपति ! क्या तुमने दंदकारण्य, कर्त्तिकारण्य, मेघ्यारण्य (= मेज्झारग्ग), मातङ्गारण्यका अरण्य होना सुना है ? ” “ हां, भन्ते । ”

“ तो गृहपति ! तुमने सुना है, कैसे दण्डकारण्य० हुआ ? ”

“ भन्ते ? मैं न सुना है—क्षुपियोंक मनके-कोषसे दंदकारण्य० हुआ । ”

“ गृहपति ! गृहपति ! मनमें (सोच) कर कहो । तुम्हारा धर्मसे पश्चिम नहीं मिलता, पश्चिमसे पूर्व नहीं मिलता । और तुमने गृहपति ! यह बात कही है—‘सत्यमें स्थिर हो मैं भन्ते ! मंत्रणा (= वाद) करेगा, हमारा स्थाप हो । ’

“भन्ते ! भगवान्की पहिली उपमासेही मैं संतुष्ट और अमिरत होगया था । विविध प्रश्नोंके व्याख्यान (= पटिमान) को और भी सुननेकी इच्छासेही मैंने भगवान्को प्रतिवादी बनाना पसन्द किया । आश्चर्य ! भन्ते ॥ आश्चर्य ! भन्ते ॥ जैसे धर्मिको सीधा कदे० आजसे भगवान् मुझे साजलि शरणागत उपासक धारण करें ।”

“गृहपति ! सोच-समझकर (काम) करो । तुम्हारे जैसे मनुष्योंका सोच-समझकर ही करना अच्छा होता है ।”

“भन्ते ! भगवान्के इस कथनसे मैं और भी प्रसन्न-मन, सन्तुष्ट और अमिरत हुआ, जोकि भगवान्ने मुझे कहा—‘गृहपति ! सोच-समझकर करो० ।’ भन्ते ! दूसरे तैर्यिक (= ५ थाई) मुझे श्रावक पाकर, सारे नालन्दामें पताका उड़ते—‘उपाली गृहपति हमारा श्रावक होगया’ । और भगवान् मुझे कहते हैं—‘गृहपति ! सोच समझकर करो० । भन्ते ! यह बुझती वार में भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और मिश्रु सबकी भी० ।”

“गृहपति ! दीर्घ-कालसे तुम्हारा कुल (= कुल) निर्गठके लिये प्याठकी तरह रहा है, उसके जानेपर ‘पिंड नहीं देना चाहिये’-यह मत समझना ।”

“भन्ते ! हमसे और भी प्रसन्न-मन, सन्तुष्ट और अमिरत हुआ, जो मुझे भगवान्ने कहा—दीर्घकालसे तेरा घर० । भन्ते ! मैंने सुना था कि धमण गौतम प्रेमा कहता है—मुझेही दान देना चाहिये, दूसरोंको दान न देना चाहिये । मेरेही श्रावकोंको दान देना चाहिये, दूसरोंको दान न देना चाहिये । मुझेही देनेका महा फल होता है, दूसरोंको देनेका महा फल नहीं होता । मेरेही श्रावकोंको देनेका महाफल होता है, दूसरोंके श्रावकोंको देनेका महाफल नहीं होता । और भगवान्ने मुझे निर्गठको भी दान देनेको कहते हैं । भन्ते ! हम भी इसे युक्त समझेंगे । भन्ते ! यह मैं तीसरी वार भगवान्की शरण जाता हूँ० ।”

तब भगवान्ने उपाली गृहपतिको आनुपूर्वी-कथा कही०^१ । जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी प्रकार रंगको पकड़ता है, इसी प्रकार उपालि गृहपतिको उसी आसनपर विरज=बिमल धर्म चक्षु उत्पन्न हुआ—‘जो कुछ समुद्ध-धर्म है, वह सब निरोध धर्म है’ । तब उपाली गृहपतिने दृष्ट धर्म०^१ हो भगवान्से कहा—

“ भन्ते ! अब हम जाते हैं, हम बहुवृत्त्य = बहुकरणीय हैं ”

“ गृह पति ! जैसा तुम काल (= उचित) समझो (वैसा करो) ।”

तब उपाली गृह पति भगवान्के भाषणको अमिन-दनकर, अनु-भोदनकर, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, जहा उसका घर था, वहा गया । जाकर द्वार-पालको बोला—

“ सौम्य ! दौवारिक ! आजसे मैं निर्गठ और निर्गठियों केलिये द्वार बन्द करता हूँ, भगवान्के मित्र मिश्रुनो, उपासक और उपालिगठोंकेलिये द्वार खोलता हूँ । यदि निर्गठ आये, तो कहना ‘ ठहर भन्ते ! आजसे उपाली गृह-पति धमण गौतमका श्रावक हुआ ।

निगंठो, निगंठियाँ केलिये द्वार बन्द है; भगवान् के मित्र, मित्रनी, उपासक, उपासिकाओं केलिये द्वार खुला है । यदि मन्ते । तुम्हें पिंड (=मिक्षा) चाहिये, यहाँ ठहर, (हम) यहाँ ला देंगे । ”

“ भन्ते । अच्छा ” (कह) दौवारिकने उपालि गृह-पतिको उत्तर दिया ।

दीर्घ तपस्वी निगठने सुना—‘ उपालि गृह पति श्रमण गौतमका श्रावक होगया ’ । तब दीर्घ तपस्वी निगठ, जहा निगठ नात पुत्त थे, बहा गया । जाकर निगठ नात पुत्तको बोला —

“ भन्ते । मैंने सुना है, कि उपाली गृह पति श्रमण गौतमका श्रावक हो गया । ”

“ यह स्थान नहीं, यह अवकाश नहीं (= यह असम्भव) है, कि उपाली गृह पति श्रमण गौतमका श्रावक हो जाये, और यह स्थान (= संभव) है, कि श्रमण गौतम (ही) उपाली गृहपतिका श्रावक (= शिष्य) हो । ”

दूसरी बारभी दीर्घ तपस्वी निगठने कहा—० ।

तीसरी बारभी दीर्घ तपस्वी निगठ ने ० ।

“ तो भन्ते । मैं जाता हूँ, और देखता हूँ, कि उपाली गृह पति श्रमण गौतमका श्रावक हो गया, या नहीं । ”

“ जा तपस्वी ! देख कि उपाली गृहपति श्रमण गौतमका श्रावक होगया, या नहीं । ”

तब दीर्घ तपस्वी निगठ जहा उपाली गृहपतिका घर था, बहा गया । द्वार वालन वृषे ही दीर्घ तपस्वी निगठको आते देखा । देखकर दीर्घ तपस्वी निगठने कहा—

“ भन्ते । ठहरो, मत प्रवेश करो । आजसे उपाली गृहपति श्रमण गौतमका श्रावक होगया० । यहाँ ठहरो, यहाँ तुम्हें पिंड ले ला देंगे । ”

“ आवुत्त ! मुझे पिंडका काम नहीं है । ”

—यह कह दीर्घ तपस्वी निगठ जहा निगठ नात पुत्त थे, बहा गया । जाकर निगठ नात-पुत्तसे बोला—

“ भन्ते ! सच हा है । उपाली गृहपति श्रमण गौतमका श्रावक होगया । मन्ते । मैंने तुमसे पहिले ही न कहा था, कि मुझे यह पसन्द नहीं कि उपाली गृहपति श्रमण गौतमका साथ वाद करे । (क्योंकि) श्रमण गौतम भन्ते । भाषावी है, आवर्तनी भाषा जानता है, जिससे दूसरे सैधिकोंके श्रावकोंको पेर छेता है । मन्ते ! उपाली गृहपतिको श्रमण गौतमने आवर्तनी-भाषासे पेर लिया । ”

“ तपस्वी ! यह (संभव नहीं) कि उपाली गृहपति श्रमण गौतमका श्रावक होजाय० । ”

दूसरीबार भी दीर्घ तपस्वी निगठ ने निगठ नात पुत्तको यह कहा—० । तीसरीबार भी दीर्घ तपस्वी० ।

“तपस्वी । यह (समग्र नहीं) ० । अच्छा तो तपस्वी ! मे जाता हूँ । स्वयं जानता हूँ, कि उपाली गृह-पति श्रमण गौतमका आचर हुमा या नहीं ।”

तब निर्गठ नात पुत्त बड़ी भारी निर्गठोकी परिपट्टके साथ, जहा उपाली गृहपतिका घर था, वहा गया । द्वार पालने दूरसे आते हुये निर्गठ नात-पुत्तको देखा । (और) कहा—

“ठहरें भन्ते ! मत प्रवेश करें । आजसे उपाली गृहपति श्रमण गौतमका उपासक हुआ ० । यहीं ठहरें, यहीं तुम्हे (पिंड) ले आ देंगे ।”

“तो सौम्य दौवारिक ! जहा उपाली गृहपति है, वहा जाओ । जाकर उपाली गृहपतिको कहो—भन्ते ! बड़ी भारी निर्गठ-परिपट्टके साथ निर्गठ नात-पुत्त फाटकके बाहर खड़े हैं, (और) तुम्हें देखना चाहते हैं ।”

“अच्छा भन्ते ।”

निर्गठ नात-पुत्तको कह (द्वारपाल) जहा उपाली गृहपति था, वहाँ गया । जाकर उपाली गृहपतिको कहा—

“भन्ते । ० निर्गठ नात पुत्त । ० ”

“तो सौम्य ! दौवारिक ! बिचली द्वार शाला (= दालान) में आसन बिछाओ ।”

“भन्ते ! अच्छा ” उपालि गृहपतिको कट, बिचली द्वार शालामें आसन बिठा—

“भन्ते ! बिचली द्वार-शालामें आसन बिठा दिये । अब (आप) जिसका काल समझें ।”

तब उपाली गृह-पति जहा बिचली द्वार-शाला थी, वहा गया । जाकर जो बहा अग्र = श्रेष्ठ, उत्तम = प्रणीत आसन था, उसपर बैठकर दौवारिकको बोला—

“तो सौम्य दौवारिक ! जहा निर्गठ नात-पुत्त है, वहा जाओ, जाकर निर्गठ नात पुत्तको यह कहो—‘भन्ते ! उपालि गृहपति कहता है—यदि चाहें तो भन्ते ! प्रवेश करें ।’”

“अच्छा भन्ते !”

—(कह) ० दौवारिकने “ निर्गठ नात-पुत्तसे कहा—

“भन्ते ! उपालि गृहपति कहते हैं—यदि चाहे तो, प्रवेश करें ।”

निर्गठ नात-पुत्त बड़ी भारी निर्गठ-परिपट्टके साथ जहाँ बिचली द्वारशाला थी, वहाँ गये । पहिले जहाँ उपालि गृहपति, दूरसेही निर्गठ नात-पुत्तको आते देखता, देखकर अगवाणी कर वहाँ जो अग्र = श्रेष्ठ उत्तम = प्रणीत आसन होता, उसे चादरसे पोछकर, उसपर बैठाता था । सो आज जो वहाँ ० उत्तम ० आसन था, उसपर स्वयं बैठकर निर्गठ नात पुत्तको कहा—

“भन्ते ! आसन मौजूद है, यदि चाहें तो बैठें ।”

ऐसा कहनेपर निर्गठ नात पुत्तने उपाली गृहपतिको कहा—

“उन्मत्त होगया है गृहपति ! जड़ होगया है गृहपति ! तू—‘भन्ते ! जाता हूँ श्रमण गौतमके साथ वाद रोष गा’—(कहकर) जानेके बाद बड़े भारी वादके संघाट (= जाल) में

पधकर लौटा है । जैसे कि अड (=अडकोश) हारक निकाले अ डोके साथ आये, जैसे कि अक्षि (=आल) हारर पुरुष निकाली आलोके साथ आये, धीमेही गृहपति । तू—‘मन्ते ! जाना हूँ, श्रमग गौतमन साथ वाद रोपूगा’ (कहकर) ना, बड़े भारी वाद-संवादे बंधकर लौटा है । गृहपति । श्रमग गौतमने आवतनी मायासे तेरी (मत) पेरली है ।’

“सुन्दर है, मन्ते ! आवर्तनीमाया । कल्याणी है मन्ते ! आवर्तनी माया । (यदि) मेरे प्रिय जातिभाई भी इस आवर्तनी माया द्वारा फेर लिये जाये, (तो) मेरे प्रिय जाति-भाइयोका दीघ कालतक हित सुख होगा । यदि भूते । सभी क्षत्रिय इस आवर्तना मायासे फेर लिये जावें, तो सभी क्षत्रियोका दीर्घ कालतक हित सुख होगा । यदि सभी ब्राह्मणः । यदि सभी वैश्यः । यदि सभी शूद्रः । यदि देव-मान प्रह्ला-सहित सारालोक, श्रमग ब्राह्मण-द्व-मनुष्य सहित सारी प्रजा (=जनता) इस आवर्तना मायासे फेर लीजाय, तो (उसका) दीर्घकालतक हित-सुख होगा । मन्ते ! आपको उपमा कहता हूँ, उपमासे भी कोई कोई विश पुन्प मापणका अर्थ समझ जाते हैं—

“पूर्वकालमें भूते । किनो जीर्ण = रूढ़ = महत्तक ब्राह्मणकी एक नर वयस्का (=दूहर) माणविका (=तृण ब्राह्मणी) माया गर्भिणी आसन्न प्रयत्ना हुई । तब मन्ते ! उस माणविकाने ब्राह्मणको कहा—‘ब्राह्मण ! जा बाजारसे एक वानरका बच्चा (खिलौना) खरीद ला, यह मेरे कुमारका खेल होगा ।’

‘ऐसा बोलनेपर, मन्ते ! उस ब्राह्मण उस माणविका को कहा—‘भक्षी (=भाप) ! उद्दरिय, यदि आप कुमार जनेगी, तो उसका लिये मैं बाजारसे मर्कट शावक (खिलौना) खरीद का लाऊंगा, जो आपके कुमारका खेल होगा’ । दूसरी बारभी मन्ते ! उस माणविकाने । तीसरी बारभी । तब मन्ते ! उस माणविकाम अति-अनुरक्त = प्रतिबद्ध वित्त उस ब्राह्मणने बाजारसे मर्कट शावक खरीदकर, लाकर, उस माणविका को कहा—‘भक्षी ! बाजारसे यह तुम्हारा मर्कट शावक खरीदकर लाया हूँ, यह तुम्हारे कुमारका खिलौना होगा ।’ ऐसा कहनेपर मन्ते ! उस माणविकाने उस ब्राह्मणको कहा—‘ब्राह्मण ! इस मर्कट शावकको लेकर, वहाँ जाओ जहाँ रक्त पाणि रजक पुत्र (=रंगरजका बेटा) है । जाकर रक्त पाणि रजक पुत्रको कहो—‘सौम्य ! रक्तपाणि ! मैं इस मर्कट शावकको पाताबडेपन रंगसे रंगा मर्या, दोनो ओर पालिस किया हुआ चाहता हूँ ।’ तब मन्ते ! उस माणविकामें अति अनुरक्त = प्रतिबद्ध वित्त यह ब्राह्मण उस मर्कट शावकको लेकर जहाँ रक्त पाणि रजक पुत्र था, वहाँ गया, जाकर रक्त पाणि रजक पुत्रसे कहा—‘सौम्य ! रक्तपाणि ! इसका’ । ऐसा कहनेपर, रक्त पाणि रजक पुत्रने उस ब्राह्मणको कहा—‘मन्ते ! यह तुम्हारा मर्कट शावक न रंगने योग्य है, न मलने योग्य है, न मात्रन योग्य है ।’ इसी प्रकार मन्ते ! बाल (अज =) निर्मलोक्त वाद (सिद्धान्त) बाली (=मना)को रजन काने लायक है, पंडितका नहीं । (यह) न पराक्षा (=अनुयोग)क योग्य है, न मीमांसक योग्य है । तब मन्ते ! वह ब्राह्मण दूसरे समय गया धुल्लेका जोड़ा ले, जहाँ रक्त पाणि रजकपुत्र था, वहाँ गया । जाकर रक्त पाणि रजकपुत्रको कहा—‘सौम्य ! रक्तपाणि ! धुल्लेका जोड़ा पीताबडेपन (=पीले) रंगसे रंगा, मडा, दोनो ओरने मांजा (=पालिस किया) हुआ चाहता हूँ ।’ ऐसा कहनेपर मन्ते ! रक्त-पाणि रजक पुत्रने उस ब्राह्मणको कहा—‘भूते ! यह तुम्हारा

धुस्मा-जोड़ा रंगों योग्य है, मलने योग्य भी है, मांजने योग्य भी है ।' इसी तरह मन्ते । उस भगवान् अर्हत् सम्पत्क सबुद्धका बाद, पंडितोको रंजन करने योग्य है, बालो (=अशों)की नहीं । (यह) परीक्षा और मीमांसाके योग्य है । ”

“ गृहपति ! राजा-सहित सारी परिषद् जानती है, कि उपाली गृह-पति निर्गठ नात-पुसंकां श्रावक है । (अब) गृहपति ! तुझे किम्का श्रावक समझ । ऐसा कहने परं उपाली गृह-पति आंसनसे ठठकर, उत्तरासग (=चहर)को (दाहिने कन्वेको मंगाकर), एक कंधेपर कर, जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोड़ निर्गठ नात-पुसंके धोला—“ मन्ते ! सुनो मैं किसको श्रावक हूँ ? ”

धीर विगत-मोह खंडित-कील विजित-विजय,
निर्दुं स सु-समं चित्तं बृद्ध-शील सुन्दर-प्रज्ञ,
विश्वके तारक, वि-मल, उस भगवान्का मैं श्रावक हूँ ॥ १ ॥
अकथ-कथी, संतुष्ट, लोक भोगको वमन करनेवाले, मुदित,
श्रमण हुये-मनुज अतिम-शरीर नर,
अनुपम, वि रज, उस भगवान्का मैं श्रावक हूँ ॥ २ ॥
संशय-रहित, कुशल, विनय-युक्त-घनानेवाले, श्रेष्ठ-सारंगी,
अनुत्तर (=सर्वोत्तम), रुचिर धर्म जान्, गिराकांक्षी, प्रेमाकर,
मान छेदक, धीर, उस भगवान्का मैं श्रावक हूँ ॥ ३ ॥
उत्तम (=निसम) अ प्रमेय, गम्भीर, मुनित्व-प्राप्त,
धैर्यक, ज्ञानी, धर्मार्य जान्, संयत आत्मा,
संग रहित, मुक्त, उन भगवान्का मैं श्रावक हूँ ॥ ४ ॥
नाग, एकांत-आसा जान्, सयोजन (=बन्धन) रहित, मुक्त,
प्रति-मैत्रक (=वाद दक्ष), धीर, प्राप्त ध्वज, धीर-नाग,
दान्त, निष्प्रपञ्च, उस भगवान्का मैं श्रावक हूँ ॥ ५ ॥
क्षुधि-सतत, अ-पालेडी, त्रि-विद्या-युक्त, ब्रह्म (=निर्वाण) प्राप्त,
आतक, पदक (=कवि), प्रश्रब्ध विदित वेद,
पुरन्दर, शक्र, उस भगवान्का मैं श्रावक हूँ ॥ ६ ॥
आर्य, भावितात्मा, प्राप्तव्य प्राप्त, देयाकरण,
स्मृतिमान्, विपश्यी, अन्-अभिमानी, अन्-अवनत,
अ चंचल, वशी, उस भगवान्का मैं श्रावक हूँ ॥ ७ ॥
सम्पद् गत, ध्यानी, अ-लप्य चित्त (=अन्-अनुगत अन्तर), शुद्ध ।
अ मित (=शुद्ध), अ प्रहीण, प्रविवेक प्राप्त, अग्र प्राप्त,
तीर्ण, तारक, उस भगवान्का मैं श्रावक हूँ ॥ ८ ॥
शात, भूरि (=बहु)-प्रज्ञ, महा प्रज्ञ विगत लोभ,
सयागत, सुगत, अ प्रति पुद्गल (=अ-शुलभीय) =अ-सम,
विशारद, निपुण, उस भगवान्का मैं श्रावक हूँ ॥ ९ ॥

तृष्णा-रहित, पुत्र, धूम-रहित, अन्न उपद्रिप्त,
पूजनीय, यक्ष, उत्तम पुत्र, अ-गुल,
महान् उत्तम-यश-प्राप्त, उस भगवान्‌का मैं थावर हूँ ॥१०॥”
“ गृहपति ! क्षम्य गौतमके गुण तुझे कब सुने ? ”

“ भन्ते ! जैसे नाना पुष्पोंकी एक महान् पुष्प-राशि (ले) एक चतुर माली, या
मालीका अन्नेवासी (= शिष्य), विचित्र माला गूँथे , उसी प्रकार भन्ते ! वह भगवान् अनेक
वर्ण (= गुण)वाले, अनेक-शत-वर्ण वाले हैं । भन्ते ! प्रशंसनीयकी प्रशंसा कौन न करेगा ? ”

निम्न बात-श्रुतने भगवान्‌के सत्कारको न सहनकर, वहाँ से वहाँ गमन छोड़ पैंक दिया ।

अभयराजकुमार-सुत्त (वि. पू. ४३०) ।

‘ऐसा मेने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें धेणुवन कलन्दक-निवापमें बिहार करते थे ।

तब अभय राजकुमार जहाँ निगठ नात पुत्त थे, वहा गया । जाकर निर्गठ नात पुत्तको अभिवादनकर एक ओर घेठा । एक ओर बैठे अभय-राजकुमारको निर्गठ नात पुत्तने कहा—

“आ, राजकुमार । धमण गौतमके साथ वाद (=शास्त्रार्थ) कर । इससे तेरा सुपदा (=फलपाणकीर्ति शब्द) पैरेगा—‘अभय राजकुमारने इतने महद्दिक = इतने महानुभाव धमण गौतमके साथ वाद रोपा ।’”

“किस प्रकारसे भन्ते । मे इतने महानुभाव धमण गौतमके साथ वाद रोपूंगा ।”

“आ तू राजकुमार । जहा धमण गौतम हैं, वहा जा । जाकर धमण गौतमको ऐसा कह—‘क्या भन्ते । तथागत ऐसा वचन बोल सकते हैं, जो दुसरोको अ प्रिय = अ-मनाप हो’। यदि ऐसा पूछनेपर धमण गौतम तुझे कहे—‘राजकुमार । बोल सकते हैं० ।’ तब उसे तुम यह बोलना—‘तो फिर भन्ते । पृथग्जन (=अज्ञ संसारीजीव) से (तथागतका) क्या भेन हुआ, पृथग्जनभी वैसा वचन बोल सकता है०’ । यदि ऐसा पूछनेपर तुझे धमण गौतम कहे—‘राजकुमार ।० नहीं बोल सकते हैं ।’ तब तुम उसे बोलना, ‘तो भन्ते । आपने देवदत्तके लिये भविष्यदाणी क्यों की है—‘देवदत्त अपायिक (=दुर्गतिमें जानेवाला) है, देवदत्त नैरयिक (=नरकगामी) है, देवदत्त वरुपस्थ (=वरुपभर नरकमें रहनेवाला) है, देवदत्त अविहित्त्य (=छाहलाज) है’ । आपके इस वचनसे देवदत्त क्रुपित = असंतुष्ट हुआ ।’ राजकुमार । (इसप्रकार) दोनों ओरके प्रश्न पूछनेपर धमण गौतम न उमिल सकेगा, न निगल सकेगा । जैसे कि पुरपके कठमे छोड़ेकी वसी (=श्रगाटक) लगा हो, वह न निगल सके न उगल सके, ऐसेही० ।”

“अच्छा भन्ते ।” कह अभय राजकुमार आसनसे उठ, निर्गठ नात-पुत्तको अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, जहा भगवान् थे, वहा गया । जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये अभय राजकुमारको सूर्य (=समय) देखकर हुआ— ‘आज भगवान्से वाद रोपनेका समय नहीं है । कल अपने घरपर भगवान्के साथ वाद करूँगा ।’ (और) भगवान्से कहा—

“भन्ते । भगवान् अपने सहित चार आदमियोंका कलको मेरा भोजन स्वीकार करें ।”

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया । तब अभय राजकुमार भगवान्को स्वीकृति जान, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया ।

उस रातके बीतनेपर भगवान् पूजा समय पहिनकर पात्रचावर ले, जहा अभय राज कुमारका घर था, वहा गये । जाकर बिठे आसामर धैठे । तब अभय राजकुमारने भगवान्को उत्तम दास भोज्यसे अपनो हाथसे तृप्त किया, पूर्ण किया । तब अभय राजकुमार, भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक नीचा आसा ले, एक ओर धैठ गया । एक ओर धैठ हुये, अभय राजकुमारने भगवान्को कहा—

“क्या भन्ते ! तयागत ऐसा वचन बोल सकन हैं, जो दूसरेको अ-प्रिय == अ मनाप हो ।”

“राजकुमार ! यह एकाग्रने (= सर्वथा = विना अपवादक) नहीं (कहा जा सकना) ।”

“भन्ते ! नादा होगये निर्गठ ।”

“राजकुमार ! क्या तू ऐसे बोल रहा है—‘भन्ते ! नादा हो गये निर्गठ’ ?”

“भन्ते ! मैं जहाँ निर्गठ नात पुत्त हूँ, वहाँ गया था । जाकर निर्गठ नात पुत्तको अभि-
षादन कर एक ओर धैठ गया । एक ओर यन् मुखे निर्गठ नात पुत्तने कहा—‘आ राजकुमार ।’
०। इसी प्रकार राजकुमार । दुधारा प्रश्न पूज्नेपर अमण गीतम न उगल सकेगा, न
निगल सकेगा ।”

उस समय अभय राजकुमारकी गोदमें, एक छोटा मन्द, उतान सोने छायक
(= बहुतही छोटा) बच्चा, धैठा था । तब भगवान्ने अभय राजकुमारको कहा—

“तो क्या मानने हो, राजकुमार ! क्या तरे या दारैके प्रमाद (= गफलत) से यदि यह
कुमार मुखमें काठ या डग डाल ले, तो तू इसको क्या करेगा ?”

“निकाल छागा, भन्ते ! यदि भन्ते में पहिलेही न निकाल सका, तो माथ हाथने
सोस पनडकर, दाहिने हाथसे अंगुली टेढीकर, खून सहित भी निकाल छूँगा ।”

“तो किस लिये ?”

“भन्ते ! मुखे कुमार (= बच्चे) पर दया है ।”

“एतेही, राजकुमार ! तयागत जिस वचनको अभूत = अ-तथ्य, अन् अर्थ युक्त
(= अर्थ) जानते हैं, और वह दूसराको अ प्रिय अ मनाप है, उस वचनसे तयागत नहीं
बोलते । तयागत जिस वचनको भूत = तथ्य सत्यक जानते हैं, और वह दूसरेको
अ-प्रिय = अ मनाप है, उस वचनको तयागत नहीं बोलते । तयागत जिस वचनको भूत = तथ्य
सार्यक जानते हैं । कालक्ष तयागत उस वचनसे बोलते हैं । तयागत जिस वचनको
अभूत = अतथ्य तथा अनर्थक जानते हैं, और वह दूसरेको प्रिय और मनाप है, उस वचनको भी
तयागत नहीं बोलते । जिस वचनको तयागत भूत = तथ्य (= सच) = सार्यक जानते हैं, और
वह यदि दूसरेको प्रिय = मनाप होती है, कालक्ष तयागत उस वचनको बोलने है ।
तो किसलिये ? राजकुमार ! तयागतको प्राणियोपर दया है ।”

“ भन्ते ! जो यह क्षत्रिय पंडित, ब्राह्मण पंडित, गृहपति पंडित, अमण-पंडित, प्रश्न
तयारकर तयागतके पास आकर पूछते हैं । भन्ते ! क्या भगवान् पहिलेहीसे चित्तम सोचे
रहते है—‘ जो मुखे ऐसा आकर पूछेगी, उनक मेमा पूज्नेपर, मैं ऐसा उत्तर दूँगा ? ”

“ तो राजकुमार ! तुमही यहाँ पूछता हूँ, जैसे तुम जेंचे, वैसे हराका उत्तर देना । तो राजकुमार ! क्या तू रथके अङ्ग प्रत्यङ्ग में चतुर है ? ”

“ हा, भन्ते ! मे रथके अङ्ग प्रत्यङ्ग में चतुर हूँ । ”

“ तो राजकुमार ! जो तेरे पास आकर यह पूछें—‘यह रथका कौनसा अङ्ग-प्रत्यङ्ग है ?’ जो क्या तू पहिलेहीसे यह सोचे रहता है—जो मुझे आकर ऐसा पूछे, उनके ऐसा पूछनेपर, मे ऐसा उत्तर दूँगा । ’ अथवा मुकाम ही पर यह तुमने भासित होता है ? ”

“ भन्ते ! मे रथिक हूँ, रथके अङ्ग प्रत्यङ्गका मैं प्रसिद्ध (जानकार), चतुर हूँ । रथके सभी अङ्ग प्रत्यङ्ग मुझे सुविदित हैं । (अतः) उसी क्षण (=स्थानतः) मुझे यह भासित होगा । ”

“ ऐसे ही राजकुमार ! जो वह क्षत्रिय पंडित,^० श्रमण पंडित प्रश्न तप्यारकर, तयागतके पास आकर पूछते हैं । उसी क्षण वह तयागतको भासित होता है । सो किस हेतु ? राजकुमार ! तयागतकी धर्मधातु (=मनका विषय) अच्छी तरह सध गई है ; जिस धर्म-धातुके अच्छी तरह सधी होनेसे, उसी क्षण (वह) तयागतको भासित होता है । ”

ऐसा कहनेपर अभय राजकुमारने भगवान्‌को कहा—

“ आश्रय ! भन्ते ॥ अद्भुत ! भन्ते ॥ आजसे भगवान् मुझे अंजलि-श्रद्धा शरणागत उपासक धारण करें । ”

सामञ्जफल-सुत (वि. पू. ४३०) ।

‘ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् ‘राजगृहम्’ ‘जीवरू कोमार-भृत्यन् आश्रयन्म, सादे बारहसौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ विहार करते थे ।

उस समय पचदशीके उपोसथी दिन चातुमासकी कोमुदी (=चंद्रप्रकाश)में पूर्ण पूर्णिमाकी रातको, राजा मागध ‘अजातशत्रु वेदहोपुत्र, राजामात्योसे घिरा, उत्तम प्रामादके ऊपर बैठा हुआ था । तब राजा ‘अजातशत्रु’ने उस दिन उपोसथ (= पूर्णिमा)को उद्दान कहा—

‘अहो ! कैसी रमणीय चांदनी रात है । कैसी अभिरप (= सुन्दर) चांदनी रात है !! कैसी पौर्णमीय चांदनी रात है !! कैसी प्रासादिक चांदनी रात है !!! कैसी लक्षणीय चांदनी रात है !!! किम श्रमण या ब्राह्मणकी उपासना कर, जो हमने परि-उपासिन हो हमारे चित्तको

१ दी नि १ १ २ । २ अ क “यह सुद्धके समय और चक्रवर्तीके समय मगर होता है, बाकी समय शुभ्य यक्ष परिगृहीत होता है, ।” ३ अ क “ जीवरूने एक समय भगवान्को विरेचन श्वर सिविक दुवालेको देकर, वस्त्र-दानके अनुमोदनके अन्तमें ज्ञोतभाषितिकर पर प्रतिष्ठितहो सोचा—‘सुत दिनमें ये तीन बार बुद्ध-सेवाम जाना है, और यह येशुवन अतिदूर है, और मेरा आश्रयन समीपतर है, क्या न मैं यहा भगवान्के लिये विहार बनाना’ । (तत्र) वह उस आश्रयनमें रति स्थान, दिन स्थान, स्थान, कुटि, मंडप आदि तैयार करा, भगवान्क अनुरूप गंध-जुनी बनवा, आश्रयनको अठारह हाथ ऊँची ताँघिये पट्टेके रंगके प्राकारसे घिसाकर, सीवर भोजन दाक साथ सुद्धप्रमुख भिक्षु-संघके उद्देशसे दान जल छोड़, विहार अर्पित किया ।”

४ अ क “हमके पटमें होते देवीको दोहद उत्पन्न हुआ । राजाने वंशको गुलाकर सुनहली छुीसे (अपनी) बाँह बिश्वा सुवर्णक प्यात्रेमें लोहूँते पानीम मिला, पिलादिया । ज्योतिषियोंने सुनकर कहा—‘यह गर्भ राजाका शत्रु होगा, इससे राजा मारा जायेगा ।’ देवीने सुनकर गर्भ गिरानेके लिये मागर्म जाकर पट मंडवाया, गर्भ गिरा । । जन्मके समयभी रक्षक मनुष्य बाटकको हटा रंगये । तब दूसरे समय होशियार होनेपर देवीको दिखलाया । उसको पुत्र स्नेह उत्पन्न हुआ, इससे वह मार न सकी । राजाने भा क्रमशः उसे युवराज-युव दिया । राज्य दे दिया । उसने दयदत्तको कहा । तब उसने उसे कहा— “ थोड़ेही दिनोंमें राजा तुम्हारे किये अपराधको सोच स्वयं राजा बनैगा । । तुम्हारे मरवा डालो ।” “ किन्तु भरो! मेरा पिता है न? शास्त्र कब्य नहीं है ।” “ भूखा रखकर मार दो ।” उसने पिताको तापन गेहमें डलवा दिया । तापनगेह कहते हैं, (लोह) कर्म करनेके लिये (जने) धूम घरको । और कह लिया—मेरी माताको छोड़कर दूसरेको मत देखने देना । देवी सुनहले कणोरे (= सरक)में भोजन रख, उत्सगमे (जिप्पा) प्रवेश करती थी । राजा उसे प्यारकर निराद करता था । उसने वह हाल सुन—‘मेरी माताको उत्सग (= ओइछा) बाध मत जाने दो ।’ तब जूहेमें डालकर तब सुवर्ण पादुकांमें । तब देवी गंधोदकसे स्नान किये शरीरपर चार

“ तो राजकुमार ! तुझेही यहा पूछता हूँ, जेसे तुझे जँचे, वैसे हराका उत्तर देना । तो ‘राजकुमार ! क्या तू रथके अङ्ग-प्रत्यंग में चतुर है ? ”

“ हा, भन्ते ! मे रथके अङ्ग प्रत्यंग में चतुर हूँ । ”

“ तो राजकुमार ! जो तेरे पास आकर यह पूछे—‘यह रथका कौनसा अंग-प्रत्यङ्ग है ?’ नो क्या तू पहिलेहीसे यह सोचे रहता है—जो मुझे आकर ऐसा पूछे, उनके ऐसा पूछनेपर, मैं ऐसा उत्तर दूँगा । ’ अथवा मुकाम ही पर यह तुझे भासित होता है ? ”

“ भन्ते ! मे रथिक हूँ, रथके अंग-प्रत्यंगका मैं प्रसिद्ध (जानकार), चतुर हूँ । रथके सभी अंग प्रत्यंग मुझे सुविदित है । (अतः) उसी क्षण (=स्थानान्न) मुझे यह भासित होगा । ”

“ ऐसे ही राजकुमार ! जो वह क्षत्रिय पंडित, ० श्रमण पंडित प्रद्वन तट्यारकर, तथागतके पास आकर पूछते हैं । उसी क्षण वह तथागतको भासित होता है । सो किम हेतु ? राजकुमार ! तथागतकी धर्मधातु (=मनका विषय) अच्छी तरह सघ गई है, जिस धर्म धातुके अच्छी तरह सधी होनेसे, उसी क्षण (वह) तथागतको भासित होता है । ”

ऐसा कहनेपर अभय राजकुमारने भगवान्‌को कहा—

“ आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते !! ० आजसे भगवान्‌ मुझे अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें । ”

“तो जीवरु ! हस्ति पाय (=हाथी समुदाय) तयार कराओ ।”

“अच्छा देव !”

तब राजा० अजातशत्रु० पाच-सौ हथिनिवापर एक एक छो चगान्ना, अरोहणीय नागपर (स्वयं) चढकर, जयते मशालोंकी (रोशनीमें) बड़े सान्नी अटसे ‘राजगृहसे निकला, जहा जीवरु कौमारमृत्युका आश्रयन था, वहाको चगा । राजा०को भय हुआ, स्तब्धता हुई, लोम-हर्ष हुआ । तब राजा०ने भीत उद्दिग्ध रोमांचित हो, जीवरु०को कहा—

“सौम्य जीवरु ! कहीं मुगसे बचना तो नहीं करते हो ? सौम्य जीवरु ! कहीं मुसे घोका (=प्रलभन) तो नहीं दे रहे हो ? सौम्य जीवरु ! कहीं मुने शत्रुओंको तो नहीं दे रहे हो ? कैसे सादे बारह सौ भिक्षुओंका न प्यासनका शब्द होगा, न धूँकेका शब्द होगा, न निर्गोप ही होगा ?”

“महाराज ! डरो मत, महाराज ! डरा मत । देव ! तुम्ह बचना नहीं करता हूँ । महाराज ! चलो, महाराज ! चलो, यह मंडल-माल (=मण्डप) में दीपक जल रहे हैं ।”

तब राजा० जितना नागका रागता था, नागसे जाकर, नागसे उत्तर, पेंदल ही जहा मंडल मालका द्वार था, घड़ा गया । जाकर जीवरु०को पूछा—

“सौम्य जीवरु ! भगवान् कहा है ?”

“महाराज ! भगवान् यह है, महाराज ! भगवान् यह है, भिक्षुसंघको सामने करके बिचने स्तम्भके सहारे प्रभिमुग्ध बैठे हैं”

तब राजा० जहाँ भगवान् थे, घड़ा गया । जाकर एक ओर खड़ा हुआ । एक ओर पड़े राजा०ने स्पष्ट सरोवर समान मौनद्वये भिक्षुसंघको देखकर उदात्त कहा—

“मेरा (पुत्र) उदायिमद्र, इस उपशम (=शांति) में युक्त हो । मेरा उदायिमद्र इस उपशमसे युक्त हो, जिस (उपशम) में युक्त इस समय भिक्षु संघ है ।”

“महाराज ! तुने प्रेमके अनुसार पाया ?”

“मन्ते ! मुने उदायिमद्र कुमार प्रिय है, मन्ते । मेरा उदायिमद्र कुमार इस शांतिसे युक्त हो, जिस उपशमसे युक्त कि इस समय भिक्षु संघ है ।”

तब राजा० भगवान्को अभिवादनकर, भिक्षुसंघको हाथ जोड़, एक ओर बेंग गया । भगवान्को यह बोला—

१ अ क “राजगृहमें बत्तीस बड़े द्वार, और चौपट छोटे द्वार (थे) । जीवरुका आश्रयन प्राकार और गृहप्रत्येक बीचम था । यह पूर्व द्वारसे निकलकर, पर्यंत-छायामें प्रविष्ट हुआ । यहाँ पर्यंत-दृष्टमे चंद्र छिप गया था ।”

अ क “पुत्रसे आर्त्तास करने, उमकेलिय उपशम चाहता भी ऐसा बोला । (अंतमें) उसको पुत्रने माराही । इस वशमें पित्रुवध पाव पीबी तरह गया । अजातशत्रुने धियवारको मारा । उदयने अजातशत्रुको । उमर पुत्र महासुंदने उदयको । अनुरदने महासुंदको । उमर पुत्र नागदामने अनुदको । नागदामने ‘यह भीरा उदरु राजा हैं, इनसे क्या’ (सोच) कुपितहो, राष्ट्रवासियोंने मार डाला ।”

प्रसन्न करें ।” किमीने कहा—पूर्णकाश्यप भवरत्नी-गोसाल, अजित केस कम्बली”, पकुध कच्छायन, निगठनात् पुत्त”“संजय पेलट्ट पुत्त ” ।

जीवक कोमार श्रुत्यने (कहा)—

“देव ! भगवान् अर्हुत् सम्यक् समुद्ध हमारे आश्रयार्थे ० विहार करते हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याणकीर्ति शब्द फैला हुआ है ० । देव उस भगवान् ० की परि-उपासना करें ० ।”

मधुर (रस) मलकर, कपड़ा पहिन कर जाने लगी । राजा उसने शरीरको चाटकर निर्वाह करता था । । “अधसे मेरे माताका जाना शोक दो” । देवी दयाजने पास गड़ी हो थोली—
“स्वामि निश्चर ! यक्षपनमे मुझे इसे मारने नहीं दिया, अरने शत्रुको अपनेही पाला । यह अय अन्तिम दर्शन है । इसके बाद अय न तुम्ह देखने पाऊँगी । यदि मेरा (कोई) दोषहो, तो क्षमा करो” (कह) रोती काँदती लौट गई ।

उसने बादसे राजाको आहार नहीं मिला । राजा (स्रोतभापत्ति)-मार्गफल (की भावना) के सुगन्धे टहलते हुये निवाह करता था । । ‘मेरे पिताके पैरोंको छूसे फाड़कर नून तेरेसे छेपकर खेरके अगारमें चिट चिटाने हुये पकामो—(कह) नापितको भेजा । परा दिया ‘ राजा मर गया’ । उसीदिन राजा (अजातशत्रु)को पुत्र उत्पन्न हुआ । पुत्रके जन्म ओर पिताके मरणके दो ऐस एक साथही निवेदन करनेके लिये आये । अमात्योंने पहिले पुत्र जन्मके छेपको ही राजाके हाथमें रक्खा । उसी क्षण पुत्र स्नेह राजाको उत्पन्न हो, सरल शरीरको व्यासकर, अस्थि प्रज्ञा तक व्याप गया । उस समय पिताके गुणको जाना—‘मेरे पैदा होनेपर भी मेरे पिताको ऐसाही स्नेह उत्पन्न हुआ होगा ।’ ‘जाओ भगे ! मेरे पिताको मुक्त करो, मुक्त करो’ बोला । ‘किसको मुक्त कराते हो देव !’ (कहकर) दूसरा ऐस हाथमें रक्ष दिया । वह उस समाचारको उनकर रोते हुये माताके पास जाकर बोला—‘अम्मा ! मेरे पिताका मेरे ऊपर स्नेह था ? उसने कहा—‘बाल (=अज्ञ) पुत्र ! क्या कहता है ? यक्षपनमें तेरी अंगुलीमें फोड़ा हुआ । तब रोते २ तुझे न समझा सरुनेके कारण, कवहरो (=विनिश्चय शास्त्र=अशालत)में धँस, तेरे पिताके पास ले गये । पिताने तेरी अंगुली मुझमें रखी । फोड़ा मुझमें ही पड़ गया । तब तरे स्नेहसे उस रत्न मिली पीवकी १ गूँककर, घोट गये । इस प्रकारका तेरे पिताका स्नेह था ।’ उसने रो कादकर पिताकी शरीर-प्रियाकी ।

देवदत्तने सारिपुत्र मोदलयायनके परिपट्ट ऐकर चले जानेपर मुहते गर्म रत्न पैँक, नव-मास बीमार पड़ा रहन्द, खिन्न हो (पूत्र)—“आप्तकल शास्ता कहा है ?” “जैतवनमे” कहनेपर “मुझे खाटपर ले चलकर शास्त्राका दर्शन कराओ” कहकर, छे जाये, जाते हुये, दर्शनके अवोर्ग्य काम करनेसे, जैतवन पुष्कारिणोंके समीप हीमे फटी पृथ्वीमें धँसकर नरुमें जा स्थित हुआ । । यह (अजातशत्रु) कोसल राजाकी पुत्रीका पुत्र था, विदेह-राजकी (का) नहीं । वेदेही पिताको कहते हैं, जेसे ‘वैदेहिका गृहपती’, ‘आर्य आनन्द वैदेह मुनि’ ।

‘वेद=ज्ञान’, उससे ईहन् (=प्रयत्न) करता है=वैदेही ।

“तो जीवरु । हस्ति काय (= शयी समुद्र) तयार कराओ । ”

“ अच्छा देव । ”

तत्र राजा० अजातशत्रु० पाच-सो हयिनियापर एक एक स्त्री चढाकर, अरोहणीय नागपर (स्वयं) चढकर, जलते माल्लोनी (रोशनीम) बड़े राजमी ढाटसे शत्रुगृहसे निकला, जहा जीवरु कौमारभृत्यका आग्रवन था, वहाको चगा । राजा०को भय हुआ, स्तब्धता हुई, लोम-हर्ष हुआ । तत्र राजा०ने भीत उद्विग्न रोमांचित हो, जीवरु०को कहा—

“ सौम्य जीवरु । कहीं मुझसे बचना तो नहीं करते हो ? सौम्य जीवरु ! कहीं मुझे धोका (= प्रलभन) तो नहीं दे रहे हो ? सौम्य जीवरु ! कहीं मुझे शत्रुओंको तो नहीं दे रहे हो ? कैसे सादे बारह सौ भिक्षुओंका न खासोका शब्द होगा, न धूँकेका शब्द होगा, न निमेष ही होगा ? ”

“ महाराज ! डरो मत, महाराज ! डरो मत । भय । मुझ बचना नहीं करता हूँ । महाराज ! चलो, महाराज ! चलो, यह मडल-माल (= मडप) में दीपक जल रहे हैं । ”

तत्र राजा० जितना नागका शक्ता था, नागसे जाकर, नागसे उतर, पेदल ही जहा मडल मालका द्वार था, वहा गया । जाकर जीवरु०को पूछा—

“ सौम्य जीवरु । भगवान् कहां हैं ? ”

“ महाराज ! भगवान् यह हैं, महाराज ! भगवान् यह हैं, भिक्षुसंघसे सामन करके बिघटे स्वप्नके सहारे पूजामिमुख बैठे हैं । ”

तत्र राजा० जहाँ भगवान् थे, वहा गया । जाकर एक ओर खड़ा हुआ । एक ओर खड़े राजा०ने स्वच्छ सरोवर समान मौनद्वये भिक्षुसंघको देखकर उद्दान कहा—

“ मेरा (पुत्र) उदायिभद्र, हम उपशम (= शांति) में युक्त हो । मेरा उदायिभद्र इस उपशमसे युक्त हो, जिस (उपशम) से युक्त इस समय भिक्षु संघ है । ”

“ महाराज ! तुने प्रेमके अनुराग पाया ? ”

“ भन्ते ! मुने उदायिभद्र कुमार प्रिय है, भन्ते । मेरा उदायिभद्र कुमार इस शांतिसे युक्त हो, जिस उपशमसे युक्त है हम समय भिक्षु-संघ है । ”

तत्र राजा० भगवान्को अभिवादनकर, भिक्षुसंघको हाथ जोड़, एक ओर दंग गया । भगवान्को यह बोला—

१ अ क “ राजगृहम वक्षीम यद्दे द्वार, चोर चोसड छोट्टे द्वार (ये) । जीवरुका आग्रवन प्राकार और गृध्रकृत्य बीचम था । यह पूर्व द्वारसे निरुद्ध पर्यंत-दायाम प्रविष्ट हुआ । वहाँ परत-कृत्मे चट्ट छिन्न गया था ।

२ अ क “ पुत्रसे आनंद काय, उमकेलिय उपशम चाहता भी पसा थोडा । । (अतम) उमको पुत्रने माराही । हम वक्षमें पितृवध पाच पीछी तक गया । अन्ततः पुनः पितृमारको मारा । उदयने अजातशत्रुः । उसका पुत्र महामुग्धने उदयसे । अनुरागने महामुग्धसे । उमका पुत्र नागदासने अनुरागको । नागदासने “ यह वंश उद्भूत राजा हैं, इसमें क्या (सोय) कुपितहो, राष्ट्रवामिपोंने मार डाला । ”

“ भन्ते ! यदि भगवान् प्रश्नोत्तर करनेकी (= प्रश्न पूछनेकी) आज्ञा दें, तो भगवान्को कुछ पूछूँ ? ”

“ पूछो महाराज ! जो चाहते हो । ”

“ जैसे भन्ते ! यह भिन्न भिन्न शिल्प-स्थान (= विद्या, कला) है, जैसे कि हस्ति आरोहण (= हाथीकी सवारी), अश्वारोहण, रथिक, धनुर्ग्राह, चेलक (= युद्ध-ध्वज धारण) चलक (= च्यूह-रचन), पिंडदायिक (= पिंड काटनेवाले), उग्र राजपुत्र (= घोर राजपुत्र), महानाग (= हाथीसे युद्ध करनेवाले), शूर, चर्म (= डाल)-योधी, दासपुत्र, आहारिक (= यात्राची) कल्पक (= हजाम), नहापक (= नहलानेवाले), सूक्ष्म (= पाचक), मालाकार, रजक, पैदाकार (= रंगरेज), गलकार, कुम्भकार, गणक, मुद्रिक (= हाथसे गिननेवाले), और जो दूसरे भी इस प्रकारके भिन्न भिन्न शिल्प हैं, (लोग) इसी शरीरमें प्रत्यक्ष (इनके) शिल्पफलसे जीविका करते हैं, उससे अपनेको सुखी करते हैं, तृप्त करते हैं । पुत्र स्त्रीको सुखी करते हैं, तृप्त करते हैं । मित्र अमात्यो को० । ऊपर ऐजानेवाला, स्वर्गको ऐजानेवाला, सुग विपाकवाला, स्वर्ग मागांय, श्रमण ब्राह्मणोंकेलिये दान, म्यापित करते हैं । क्या भन्ते ! इसीप्रकार आमण्य (= भिक्षुपत्तका) कर्मभी इसी जन्ममें प्रत्यक्ष यत्नलाया जा सकता है ? ”

“ महाराज ! इस प्रश्नको दूसरे श्रमण ब्राह्मणको भी पूछ (उत्तर) जाना है ? ”

“ भन्ते ! जाना है ० । ”

“ यदि तुम्हें भारी न हो, तो कहो महाराज ! कैसे उ होने उत्तर दिया था ? ”

“ भन्ते ! मुझे भारी नहीं है, जहाँ भगवान् या भगवान्के समान कोई बैठा हो । ”

“ तो महाराज ! कहो । ”

“ एक बार मैं भन्ते ! जहाँ पूर्ण काश्यप थे, वहाँ गया । जाकर पूर्ण काश्यपके साथ मैंने सन्वदन किया एक ओर बैठकर यह पूछा — ‘ हे काश्यप ! यह भिन्न भिन्न शिल्प-स्थान है ० । ऐसा पूछनेपर भन्ते ! पूर्ण काश्यपने मुझे कहा — ‘ महाराज ! करने कराने, छेदन करने, छेदन कराने, पताने, पकाने, शोक करते, परेशान होते, परेशानकरते, चलते, चलाते, प्राण मारते, अदत्त ग्रहण करते, संध काटने, गांव छूटते, चोरी करते, यश्मारी करते, परस्त्रीगमन करते, श्वत्त बोलते कहते भी, पाप नहीं किया जाता ० । दान दम संयमसे, सत्य बोलनेसे न पुण्य है, न पुण्यका आगम है । ’ इस प्रकार भन्ते ! पूर्ण ने मेरे सादृष्टिक (= प्रत्यक्ष) आमण्य-फल पूछनेपर अक्रिया वर्णन किया । जैसे कि भन्ते ! पूछे आम, जग्राव दे कटहल ; पूछे कटहल, जग्राव दे आम, ऐसेही भन्ते ! पूर्ण काश्यपने मेरे सादृष्टिक आमण्य फल पूछनेपर अक्रिया (= अक्रिय-वाद) उत्तर दिया । ”

“ एक बार भन्ते ! मैं जहाँ मरुखशलि गोपाल थे, वहाँ गया — ० । मेरे ऐसा कहने पर मुझे कहा — ‘ महाराज ! प्राणियोक्त केश (= रोग आदि मज्ज) केलिये (कोई) हेतु नहीं, प्रत्यय नहीं । बिना हेतु बिना प्रत्यय ही प्राणी केश पाते हैं । प्राणियोक्ती (पापसे) शुद्धिका कोई हेतु = प्रत्यय नहीं है, बिना ० प्रत्ययही प्राणी विशुद्ध होते हैं । न आत्मकार

(=अपना किया पाप पुण्य कर्म) है, न पर-कार है, ॥ पुरयकार (=पौरुष) है, न बल है, न वीर्य (=प्रयत्न) है, न पुरय-स्थाय (=पराक्रम) है, न पुरय पराक्रम है । सभी मत्त्व=सभी प्राण=सभी भूत=सभी चीर, अ (स्व)-वश है, बल-वीर्य-रहित है । नियति (=तरुदीर) से निर्मित अवस्थामें परिणत हो, ॥ ही अभिजातियोर्मं मुख दुःख अनुभव करते हैं । यह चौदह सौ हजार प्रमुख योनियां हैं, (दूसरी) साठ सौ, (दूसरी) छ मौं । पाच सौ कर्म हैं, (दूसरे) पाच कर्म, ॥ तीन कर्म, एक कर्म और आधा कर्म । वायस प्रतिपद्, वासस अन्तर्कल्प, छ अभिजातियां, आठ पुरय भूमिया, उन्चास सौ आजीवर उन्चास सौ परिजाक, उन्चास सौ नागावास, बीससौ इन्द्रिय, तीससौ नित्य (=नर्क), छतीस रजो-धातु, सात संनो गर्भ, सात असशी गर्भ, सात निगठी गर्भ, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात शर, सात पसुर (=गर्क), सात मो पसुर, सात प्रपात, सात सौ प्रपात, सात स्वप्न, सात सौ स्वप्न । बाल भी, पंडित भी, चौरासी हजार महाकल्प (इनमें) भरमकर =आवागमनम पड़कर, दुःखरा अन्त करैगे ० । ० इस प्रकार ० संसार शुद्धि जबाय दिया ० । ० ।

“ ० अजित केशरञ्जलीने मुखे यह बड़ा—‘महाराज । इष्ट (=यत्न किया) कुछ नहीं है, हुत कुछ नहीं है ० । ० उज्जेदवाद जबाय दिया ० । ० ।

“ ० पकप कवायन ० । ० अन्यसे अन्य जबाय दिया ० । ० ।

“ ० निर्गठ नायपुत्त ० । ० चायुयाम-सवर जबाय दिया ० । ० ।

“ ० संजय वेळट्टिपुत्त ० । ० (अमर) विज्ञेय जबाय दिया ० । ० ।

“ सो मन्ते । मैं भगवान्को भी पूछता हूँ, जेमे कि भते । यह भिन्न भिन्न शिल्प हैं ० ? ”

“ तो क्या मानते हो महाराज ! यहा (एक) पुरय तुम्हारा दास, कमकर (=नौकर), पूर्व उठनेवाला, पीछे लेटनेवाला, ‘क्या काम’ सुनानेवाला, प्रिय चारी प्रिय-यादी, मुख अथ कोक है । उसको ऐसा हो—

“ आश्रय है जी ! अद्भुत है जी । पुण्योकी गति=पुण्योका विपाक । यह राजा ० अजात शत्रु मनुष्य है, भी भी मनुष्य है । यह राजा ० पाच कामगुणोसे संयुक्त मानों देवताकी तरह विचरता है ; लेकिन ये हमका दास ० हैं । सो ये पुण्य कर्म । क्यों न मैं केश दमधु मुँगाकर ० प्रमजित होजाऊँ । ० । यह उस प्रकार प्रमजित हो कायासे सजुत (=सुरक्षित) हो, बिहारे, घषनसे ०, मनसे ० । बाने डाकने मायसे संयुक्त हो, प्रवियेक (=पक्का) म रत हो ० । यदि तुम्हारे पुरय तुम्हें ऐसा कहें—‘देव ! जानते हो, जो पुरय तुम्हारा दास ० या, यह ० प्रमजित हो प्रवियेक रत है । क्या तुम कहोगे—‘आने यह पुरय, फिर मेरा दास ० हो ० ? ”

“ नहीं मन्ते ! यत्कि उसे हम अभिवादा करैगे, प्रत्युत्थान करैगे ० । ”

“तो क्या मानते हो महाराज ! यदि ऐसा हो तो यह सांख्यिक श्रामण्य फल होता है, या नहीं ?”

“अवश्य भन्ते ! ऐसा हो तो सांख्यिक० ।”

“महाराज ! यह इसी जन्ममें प्रथम प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल है ।”

“क्या भन्ते ! अन्य भी इसी जन्ममें प्रत्यक्ष श्रामण्य फल कहे जा सकते हैं ?”

“ (कहे जा) सकते हैं महाराज ! तो महाराज ! तुम्हें ही यहा पूछता हूँ, जैसा तुम्हें पसन्द हो, इसका जवाब दो । तो महाराज ! यहा तुम्हारा एक पुरुष कृपक = गृहपतिक, कार-कारक राशिजन्म हो । उसको ऐसा हो—‘पुण्योकी गति, पुण्योका विपाक आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी ।० । क्या तुम कहोगे—‘आने यह पुरुष फिर मेरा कृपक० हो ?’

“नहीं भन्ते ।० ।” ०।०।

“महाराज ! यह दूसरा० प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल है ।”

“० अन्य भी० ?”

“महाराज ! लोकमें तथागत अर्हत्त्व० उत्पन्न होते हैं ।० धर्म उपदेश करते हैं ।० सुनकर ० प्रव्रजित होता है ।० शिक्षापद्धति सीखता है ।० परिशुद्ध आजीविकावाला (परिशुद्धाजीव) शील-स्पन्न, इन्द्रियोमें गुप्तद्वार भोजनमें मात्रा जाननेवाला, सप्रजन्यसे युक्त, संतुष्ट (हो)० । महाराज ! भिक्षु कैसे शील स्पन्न होता है ? यहाँ महाराज ! प्राणातिपात (प्राण हिंसा) छोड़ प्राणातिपातसे विरत होता है, निहित (= त्यक्त) दंष्ट्र, निहित शास्त्र, लज्जी, दयालु, सर्व प्रण भूत-अनुत्पन्न हो, विहरता है, यहभी उसके शीलमें है । अदत्तादान छोड़ अदत्तादान (= चोरी) से विरत होता है, दत्त-आदायी, दत्त प्रतिक्राशी होता है । तब इस शुद्ध-भूत आत्मासे विहार करता है, यहभी उसके शीलमें है । अग्रहचर्यको छोड़कर ग्रहचारी होता है, पुरात-चारी, मैथुन = प्राक्वधमसे विरत, यह भी० । मृपावदको छोड़ मृपावाद-विरत होता है, सत्यवादी = सत्यसत्, येता (= स्थाता, धातपर उड़ने वाला), लोकका प्रत्ययिक (= विश्वासपात्र) = अवितर्कवादक (होता है) । यह भी० । पिशुनचन (= खुगली) को छोड़ पिशुन-घचनसे विरत० । यहभी० । परुष घचनसे छोड़० । सप्रलाप छोड़०, संप्रलापसे विरत होता है, काल-वादी भूत-वादी, अर्थ-वादी, धर्म-वादी, विनय वादी, (होता है) । कालसे सप्रयोजन = यथ्यन्तवती अर्थ सहित = निधानवाली वाणीका बोलनेवाला होता है । यह भी० । धीन-ग्राम, भूत ग्रामके नाश (हत्या) से विरत होता है । ण्काहारी (= पुरुभक्तिक) रातको (भोजनसे) विरत, विकाल भोजनसे विरत होता है, मृत्यु, गीत, बाध, विसृष्टस्मनसे विरत होता है । माला गंध, विलेपन, के धारण, मङ्गल विभूषण से विरत होता है । उच्छादन, महाशयनसे विरत होता है । सोना चांदीके स्वीकारसे विरत होता है । कच्चा अन्न (धान्य) ग्रहण करनेसे विरत होता है । खाँ कुमारिकावे० । दासी दासके ग्रहणसे० । भेड़ बकरीके ग्रहणसे० । सुर्गा-सूअरके० । हाथी गाय, घोड़ा-घोड़ीके० । गेठ, मसान (= वस्तु) के० । दूतके कामसे० । ग्रय विक्रयसे० । तुलाकृत (= खोटी तौल), कम-कृत (= खोटीपात),

प्रमाण कृत (=योगी नाय) से० । उर्कोट (=रिखत), बंधा, निरति (=कृतप्रता), साचि-योगसे० । उदर, दध, बंधन, लट्, आलोप (=अपा), महामार (मूनआदि)से०, यहभी० ।

“ जैसे कि कोई कोई धर्मग प्राक्षण श्रद्धासे गिने भोगको ग्यार, वह इसप्रकारके बीच प्राम, भूत प्रामके बिनाशम लगे विहरा है जमे कि—मूय बीच, स्वंध बीच (=डागी जियरी बीचका काम देती है), फय बीच, अम बीच, मार पांचका बीच बीच । यह या इस प्रकारके बीच-प्राम=भूतप्रामके बिनाशमे विरत होता है । यहभी० ।

“ जैसे कि कोई कोई धर्मग प्राक्षण श्रद्धासे दिय भोजनको ग्यार, वह इस प्रकारके संनिधि-कारक भोगको भोग करने विहरते हैं, जैसे कि अन्न सन्निधि (=अन्नजमा करना) पान-संनिधि, वस्त्र संनिधि, यान सन्निधि, रायन सन्निधि, गध सन्निधि, सामिप (=भोग)-सन्निधि, यह या इस प्रकारके० ।

“ यह इस प्रकारके विमूय न्मन (=पुरे तमने) म लगे विहरते हैं, जैसे कि—कृत्य, गीत, वादित (=बाजा बजाना), प्रेक्ष्य (=नाटक आदि), आस्थान (=कथा), पाणि स्वर (=ताली बजाना), बंताए ।०।

‘ ० । यह इस प्रकारकी तिरश्चान विचारोंमें मिया जीविका करोसे विरत होता है, यहभी उमरे शीलमें होता है ।

“ सो महाराज ! यह भिक्षु इसप्रकार शील संपन्न शीलमवर-युक्तको कहीं भी मय नहीं देखता, जैसे कि महाराज । शयु परास्त किम मूधाभिषिक्त (=मभिषिक्त) क्षयित, कहींने भी शत्रुने मय नहीं देखता । यह इस कार्य शील-स्वंध (=उत्तम शील समूह) मे संयुक्त हो, अपने भीतर अनवध (=विमल)-सुप्तको अनुभव करता है । इस प्रकार महाराज ! भिक्षु शाल-संपन्न होता है ।

‘ कैसे महाराज ! भिक्षु इन्द्रियोप गुप्त द्वार होता है ? यह महाराज । भिक्षु, बहुत (=आल) मे रूप देमकर, निमित्त प्राप्ति=अनुव्यजन प्राप्ति नहीं हाता ०१ । मन्ते धर्म जानकर ० । इस कार्य इन्द्रिय मवरसे युक्त हो अपने भीतर धामि सुप्तको अनुभव करता है । इस प्रकार महाराज ! भिक्षु इन्द्रियार्थमें गुप्तद्वार होता है । ”

“ महाराज ! भिक्षु कैसे स्मृति-संप्रजन्यमे युक्त होता है ? महाराज । भिक्षु जानते हुये (=चित्तवृत्तिको उधर लगाये हुए) गमन आगमन करता है । आलोकन, विलोकनम संप्राप्त (=जानकर) करी होता है । ममेग्ने, पैग्ने० । मघाटी, पात्र, जीवरने धारणमे० । अशन-पान, स्वादन, आस्वादनम ० । पाण्याना पनावके कामम ० । गमन, मन्ने होते, पैग्ने, सोते, जागते, भाषण करते, छुप रहते म० । इस प्रकार महाराज ! भिक्षु स्मृति संप्रजन्यसे युक्त होता है ।

“ महाराज ! भिक्षु कैसे सतुण होता है ? ”

“ यह इस आर्य शील स्कन्धसे युक्त, इस आर्य इन्द्रिय सवरसे युक्त, इस आर्य स्मृति-सप्रज्ञन्यसे युक्त, और इस आर्य सन्तुष्टिसे युक्त हो, एकान्त शयनासन (= निवास) सेवन करता है—आरण्यको, वृक्ष-मूल (= वृक्षके नीचे) को, पर्वत कदराको, गिरि-गुहाको, श्मशानको, वन प्रान्तको, अच्यवनाश (= खुली जगह) को, पयालके पुंजको । वह भोजनो-परान्त पिंड-पातसे अलगहो, आसन मारकर शरीरको सीधाकर स्मृतिको सामने रखकर, बैठता है । वह लोकमें अभिष्या (= लोम) को छोड़, अभिष्यारहित चित्तसे विहरता है, अभिष्यासे चित्तको प्रोधता है । व्यापाद = प्रद्वेष (= द्वेष) को छोड़ व्यापापन्न चित्त हो सर्व प्राणी = भूतो में अनुकम्पनहो विहरता है । व्यापाद = प्रद्वेषसे चित्तको परिशुद्ध करता है । स्त्यान मृद (= मनके आलस्य) को छोड़ स्त्यान-मृद-रहित हो विहरता है । आलोक-संशी स्मृतिप्रज्ञन्य-युक्त हो, स्त्यान-मृदसे चित्तको परिशुद्ध करता है । औद्धत्य कौटुष्य छोड़, अन-उद्धत हो विहरता है, अध्यात्ममें (= अपने भीतर) शांत-चित्त हो औद्धत्य-कौटुष्यसे चित्तको परिशुद्ध करता है । विचिकित्सा (= सशय) को छोड़ विचिकित्सा-रहित हो विहरता है । कुशल (= उत्तम) धर्मोंमें अकथकथो (= निर्विवादी) हो, विचिकित्सासे चित्तको परिशुद्ध करता है । जैसे महाराज ! पुरुष ऋण लेकर लेती (= कर्मान्त) में लगाये, उसकी वह लेती अच्छी (= समृद्ध) उतर । वह जो पुराने ऋण है, उन्हें भी दे डालै, और उसको ऊपरसे बच्चोंके पोसनेकेलिये भी बाकी बच रहे । उसको ऐसा हो—‘मैंने पहिले ऋण लेकर लेतीमें लगाया, मेरी वह लेती अच्छी उतरी । मेने जो पुराने ऋण थे, उन्हें भी दे डाला, और मेरे पास उसके ऊपर बच्चोंको पोसनेकेलिये बाकी बचा है’ । वह इसके कारण प्रसन्नता (= प्रामोद्य) पाये, पुशी (= सौभाग्य) पाये । महाराज ! जैसे पुरुष आवाधिक = दुःखित = बहुत बीमार हो, उसके भोजन अच्छा न लगे, और उसके शरीरमें बल मात्रा न हो । वह कम समय उस बीमारीसे मुक्त होये, उसको भोजन (= भक्त) अच्छा लगै, उसके शरीरमें बल-मात्रा भी होये । उसको ऐसा हो—‘मे पहिले आवाधिक था, शरीरमें बल-मात्रा भी न थी । सो मैं उस बीमारीसे मुक्त हूँ, मुझे भोजन भी अच्छा लगता है, मेरे शरीरमें बल-मात्रा भी है । यह इसके कारण प्रामोद्य पाये = सौमनस्य पाये । महाराज ! जैसे पुरुष बन्धनागार (= जेल) में धँसा हो, वह दूसरे समय स्वस्ति (= मज्जल) -पूर्वक, बिना हानिके—उस बन्धनसे मुक्त हो, और उसके अङ्गोकी कुछ भी हानि न हो । उसको ऐसा हो—‘मैं पहिले जेलमं । सौमनस्य पाये । जैसे महाराज ! पुरुष दास हो, पराधीन, न इच्छा गामी । वह दूसरे समय उस दाम्पत्यसे मुक्त, स्वाधीन, अ पराधीन = भुजिम्स हो, जहाँ तहाँ इच्छा-नामी (= कामङ्गम) हो ० । ० । महाराज ! जैसे घन सहित, भोगी पुरुष, दुर्मिश्र (= अन्न-दुर्लभ) भययुक्त कातार (= ब्यावान्) के रास्तेमें पड़ा हो । वह दूसरे समय उस कातारको पार कर जाये, स्वस्तिके साथ, भय-युक्त, भय-रहित किसी ग्राममें पहुँच जाये । उसको ऐसा हो ० । ० ।

“ इसी प्रकार महाराज ! भिक्षु इन पाच नीवणोंके न प्रहीण होनेपर अपनेमें ऋणकी तरह, रोगकी तरह, बधनागारकी तरह, दाम्पताकी तरह, कातार-मार्गकी तरह, देखता है । और महाराज ! इन पाच नीवणोंके प्रहीण (= नष्ट) होनेपर, भिक्षु अपना उन्मत्त पतन आरोग्य ०

धंधन मोक्ष०, अदायता०, धेसयुक्त भूमिमा दायता है । अपने भीतरसे ही पात्र नीवरणोंको प्रहीण भेजकर, उस प्रमोद्य (= खुशी) उत्पन्न होता है । प्रमुत्ति (पुरुष)को प्रीति उत्पन्न होती है । प्रीतियुक्त मनवालेकी काया प्रश्नव (= स्थिर) होती है । प्रश्नव काय (= पुरुष) सुख अनुभव करता है । सुखीका चित्त समाहित (= एकाग्र) होता है । वह ०^१ प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ॥ जेमे महाराज । दक्ष (= चतुर) स्नापक (= नालानेवाला) वा स्नापकवा भन्तेवासी, कांसेके थालम छोटका रत्नागीय चूर्णको पानीसे तर कने तर करते धोते । सो वह रत्नागीय पिंडी स्नेह (= नमी)-अनुगत, स्नेह-परिगत = अंदर बाहर स्नेहसे व्याप्त हो रहता मर्दों, इमोप्रकार महाराज । भिनु इसी कायाको विनकसे उत्पन्न प्रीति सुखसे आप्लावित परिष्ठावित करता है, परिपूर्ण करता है । इसका शरीरका कोई अशमी विवेक प्रीति सुखसे अ व्याप्त नहीं होता । यह भी महाराज । सादृष्टिक श्रामण्य क पूर्वके श्रामण्यफलसे उत्पन्नतर = प्रणीततर है ।

“ और महाराज । फिर ०^२ द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह इसी कायाको समापित (= समाधिसे उत्पन्न) प्रीति सुखमे ० । जेमे महाराज । उदक ह (= पानीका १६) ०^१ यह भी ० प्रणीततर है ।

“ और फिर महाराज । ०^३ तृतीय ध्यान ० । वह इसी कायाको निःप्रीतिक सुखमे ० जेमे कि महाराज । उत्पल्लिनी (= उत्पल्लोंका समूह) ० । यह भी प्रणीततर है ।

“ और फिर महाराज । ०^४ चतुर्थ ध्यान ० । वह इसी कायाका परिशुद्ध = परि भयदात चित्तमे ०^१ । महाराज । जेमे पुरुष मितक मरु (= अशक्त) बलसे बाँधकर बैग हा ० यह भी ० प्रणीततर है ।

“ इस प्रकार चित्तक समाहित (= एकाग्र), परिशुद्ध परि भयदात = अन् अगग = उपदेश-रहित, नृदुभूत = कर्मगीय, स्थित (अचंचल) = आनन्द्यप्राप्त होनेपर, वह चित्तको जा ० = दक्षमक लिये झुकाता है ०^२ । जेमे ०^३ वेन्द (= दीर) मणि ० । यह भी ० प्रणीततर ० ।

“ इस प्रकार चित्तके समाहित ० होनेपर यह चित्तको मनोमय कायक निमाणक स्थि झुकाता है ० । जेमे ०^४ मूर्ज से कड़ा निकाले ० । यह भी ० ।

“ इस प्रकार चित्तके समाहित ० होनेपर, यह नाना रुद्धिवा (= योग २०१) क लिये चित्तको झुकाता है ० । जेमे कि महाराज । चतुर कुम्हार या कुम्हारका भन्तेवासी (= दिग्ग) ० । यह भी ० ।

“ इस प्रकार चित्तक समाहित ० होनेपर, वह चित्तको दिव्य धात्र धातु (= कानान दूरी वाचक सुने) क लिये झुकाता है ० । जेमे कि महाराज । पुरुष शस्त्रमे जा रहा हो ० । यह भी ० ।

“ इस प्रकार चित्तक समाहित ० होनेपर यह चित्तका पर चित्त नानक चित्त सुखाना है ० । जेमे कि महाराज । शौकीन आ या पुरुष, शस्त्र या सुख ० यह भी ० ।

“इम प्रकार चित्तके समाहित होनेपर, वह चित्तको पूर्व-जिगस (= पूर्वजन्म) चान अनुमृत्तिके लिये झुकाता है ० । जैसे कि महाराज । पुरष अपने गाँवसे दूसरे गाँवको जाये, उस गाँवसे भी दूसरे गाँवको जाये । यह भी ० ।

“इस प्रकार चित्तके समाहित होनेपर वह चित्तको प्राणियोंकी मृत्ति (= मरण)-उत्पाद (= जन्म) के लिये झुकाता है ० । जैसे कि महाराज । चोरस्त्रेके बीचमें प्रामाद हो । उसपर खडा पुरष ० । यह भी ० ।”

“इस प्रकार चित्तके समाहित होनेपर वह चित्तको आभ्यक्षय ज्ञान (= राग आदि चित्तमलोके विनाशके चान) के लिये चित्तको झुकाता है ० । जैसे कि महाराज । पर्वतके गैरम मरुच्छ = त्रिप्रमल्ल = अनाविल उच्छ-हृद (= पानीका दर) हो, वहा तीरपर खडा मनुमान् (= आलसाला) पुरष ० । यह भी ० ।”

ऐसा कहनेपर राजा मागध अजातशत्रु देही-पुत्रने भगवान्को कहा

“आश्चर्य ! भन्ते ! । अद्भुत ! भन्ते ! । ० भन्ते ! म भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु पक्षकी भी । आजसे भगवान् मुझे अञ्जलि बद्ध शरणागत उपासक समझे ।

“भन्ते ! मेने बाल (= मूर्ख) की तरह, मूढकी तरह, व कुशल (= अवतुर) की तरह, अपराध क्रिया, जो मने पञ्चर्थक कारण धार्मिक धर्म राजा पिताको जानने मारा, भन्ते ! भगवान् मेरे अपराधको अपराधके तौर पर ग्रहण करें, अविश्रम (= अपराधके) संवर (= न करनेके) लिये ।

“तो महाराज ! जो तुमने ० अपराध क्रिया, जो ० धर्म-राजा पिताको जानने मारा । धूँकि, तुम महाराज ! अपराधको अपराधके तौर पर देखकर धर्मानुसार प्रतिकार करने हो, वह तुम्हारा हम ग्राहण करते हैं । महाराज ! आर्य-विनय (= सत्पुरुषोंकी रीति) में यह वृद्धि (= लाभ) ही है, जो कि अपराधको अपराधके तौर पर देखकर धर्मानुसार प्रतिकार करना भविष्यमें सार (= संयम) रखना ।”

ऐसा कहनेपर राजा ० अजातशत्रु ० ने भगवान्को कहा—

“हस्त ! भन्ते ! अब हम जायेंगे, हम यहु-हृन्व यहु-काणीय हैं ।”

“महाराज ! जिसका तुम बाल समझे (यह कहो) ।”

तब राजा ० भगवान्के आपणको अभिनन्दनकर, अनुमोदन का, आसनन उस भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया ।

राजा ० के जानेके थोड़ाही दर बाद भगवान्ने भिक्षुओंको समोहित (= आमंत्रित) किया—

“भिक्षुओ ! यह राजा (भाग्य) हत है, उपहत है । भिक्षुओ ! इस राजाने यदि धार्मिक धर्मराजा पिताको जानने न मारा होता, तो इसी आसनपर इसे विरज = विमल धर्म चक्षु उत्पन्न हुआ होता ।”

भगवान्ने यह कहा । सन्तुष्ट हो उस भिक्षुओने भगवान्के आपणका अभिनन्दन किया ।

एतद्भागवत (वि. पृ. ४२६) ।

ऐसा करने सुना—एक समय भगवान् ध्यायन्ती ० जेतनमें विहार करने थे ।

(१) भिक्षुओ ! मेरे शिष्य (= अनुसूतिन) भिक्षु आश्रममें यह आना कौण्डिन्य^१ अथ (= घेष्ट) है ।

(२) महाप्रज्ञामें यह १ सावित्र अथ है ।

(३) “ ऋद्धि-मानामें यह १ महामोक्ष-दायन अथ है ।

(४) “ धृतवादिषामें यह १ महाकादम्ब अथ है ।

(५) “ दिव्य चक्षुषामें यह १ चतुर्द अथ है ।

(६) “ उच्च कुलीनोऽयं महिष १ कालिगोषा-पुत्र अथ है ।

(७) मनु (= कोमल) रूप (से धर्म उन्नेय काने) राजा मनुज भविष्य- ।

(८) सिंहनादिषामें पित्रोऽप्यारदान- ।

(९) धर्म-कथिकामें पूर्ण मंत्रायणीपुत्र ।

(१०) संक्षिप्तसे कहेका विचारमें अर्थ करनेवालोंमें महामहामाया- ।

(११) मनोमय काय निमाग करनेवालोंमें सुहृत्पथक- ।

चित्तविवर्त्त चतुरामें सुहृत्पथक- ।

(१२) मन्त्रा-विश्व चतुरामें महापथक- ।

(१३) अरुण-विहारियोंमें सुभूति- ।

दक्षिणेषामें (= दानशाला) म सुभूति- ।

१ तैत्तिरीयशाखापाठ (४२९ वि पृ) भगवान् ध्यायन्ती (जेतन) म विताया । २ अ नि १ २ १-७ ।

(१) शाक्य दशमें कपिलवस्तु नगरमें पाप द्रोण उस्तु प्रामम ब्राह्मण कुलम जन्म ।

(२) मगध देशमें राजगृह नगरमें अत्रिपुत्र उपतिष्ठ प्रामम = बालप्राम (= वतमान सारीधर, महामात्र = बालप्राम समाप, जि० पृ०) में ब्राह्मण कुलम जन्म ।

(३) मगध देशमें राजगृहमें अत्रिपुत्र कोलित प्रामम ब्राह्मण कुलम जन्म ।

(४) मगध देशमें महातोष प्रामम प्रामम ब्राह्मण कुलम जन्म ।

(५) शाक्य दशमें कपिलवस्तु नगरमें भगवान् चत्वारिंशत्तम शाक्यक पुत्र, क्षत्रिय कुलमें जन्म ।

(६) शाक्य-दशमें कपिलवस्तु नगरमें क्षत्रिय कुलमें ।

(७) कोमलदेह, ध्यायन्ती प्रामम धर्मो (= महामात्र) कुलमें । (८) मगध, राजगृहमें ब्राह्मणकुलमें । (९) शाक्य, कपिलवस्तुमें समीप द्रोणवस्तु ब्राह्मण प्रामम ब्राह्मण कुल । (१०) अवन्तीदेश, उम्रविनाम ब्राह्मणकुलम । (११) मगध, राजगृह, श्रेष्ठि वन्यापुत्र । (१२) मगध, राजगृह, श्रेष्ठि कथापुत्र । (१३) कोसल, ध्यायन्ता, वैश्यकुलम ।

- (१४) आरण्यकोमे रेवत गदिर वनिय ० ।
 (१५) ध्यानियाम कंगारैवत ० ।
 (१६) आस्थायीय (= परिधर्मियों) म सोण कोडियास (= कोटिविश) ० ।
 (१७) सुवकाशो (= कल्याणमाकुरणो) म सोण कुटिम्ण ० ।
 (१८) लाभियो (= पानेवालो) में सोवरी ० ।
 (१९) श्रद्धायानो (= श्रद्धाधिमुरो) म उम्कली ० ।
 (२०) शिक्षा-कामो (= मिश्र निष्पन्ने पाषण्डो) म राहुल ० ।
 (२१) श्रद्धासे प्रनजितामें राष्ट्रपाल ० ।
 (२२) प्रथम शालका ग्रहण करनेवालोंमें कुंडवान ० ।
 (२३) प्रतिभावानो (= कवियों) में वगीस ० ।
 (२४) समन्तप्रासादिको (= सब ओरसे सुन्दरो) में उपसेन वंगन्तपुत्र ॥ ।
 (२५) शयनासन-प्रतापका (= गृह-प्रबन्धको) में द्रव्य- (- द्रव्य) मल्लपुर ॥ ।
 (२६) देवताओंके प्रियो = मनापोमें पिलिन्दि वात्स्य ० ।
 (२७) क्षिप्राभिचो (= प्रगर बुद्धियो) में गहिय दारचोरिय ० ।
 (२८) चित्रस्थिका (= विचित्र वक्ताओं) में कुमार-काश्यप ० ।
 (२९) प्रतिविविक्त-प्राप्तोम महाकोटित (= महाकोटित) ० ।
 (३०) बहुश्रुतोम आनन्द ० । गतिमानोमें आनन्द ० । स्थितिमानोमें आनन्द ० ।
 उपस्थाकोम आनन्द ० ।
 (३१) महापरिपद् (= बड़ी जमात) वालोम उररेल-काश्यप ० ।
 (३२) कुल-प्रसादको (= कुणोंको प्रपन्न करनेवालो) में काल-उदायी ० ।
 (३३) अल्पावाधा (= गितोगा) में वस्कुल ० ।
 (३४) पूर्वजन्म स्मरण करनेवालोंमें शोभित ० ।

(१४) मगध, नालक ब्राह्मण ग्राम (सारिपुत्रके अनुच) । (१४) कोसल, श्रावस्ती, महाभोगकुम्भ । (१६) अङ्गदेश, चम्पानगरमें श्रेष्ठिकुम्भ । (१७) अवन्तीदेश, कारधर्म वैश्यकुम्भ । (१८) शाक्य, कुडिया (कोलिय दुहिता सुप्रशामाका पुत्र), क्षत्रियकुलम् । (१९) कासल, श्रावस्ती, ब्राह्मणकुम्भ । (२०) शाक्य, कपिलवस्तु, (मित्रार्थकुमारके पुत्र) क्षत्रियकुम्भ । (२१) कुलेश, शुभकोटित, वैश्यकुम्भ । (२२) कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मणकुम्भ । (२३) कोसल श्रावस्ती, ब्राह्मणकुम्भ । (२४) मगध, नालक ब्राह्मणग्राम (सारिपुत्रके अनुच) ब्राह्मणकुम्भ । (२५) मल्लदेश, अनूपिया नगर, क्षत्रियकुम्भ । (२६) कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मणकुम्भ । (२७) बाहिय राष्ट्र (= सतलज व्यासका द्वारा जलन्धरा, होशियारपुरके जिन् ओर कपूरथला राज्य) म कुल पुत्र । (२८) मगध, राजगृह, (२९) कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मणकुम्भ । (३०) शाक्य, कपिलवस्तु, अमृतौदन पुत्र, क्षत्रिय कुल । (३१) काशीदेश, वाराणसी नगर, ब्राह्मण कुल । (३२) शाक्य, कपिलवस्तु, अमात्यगेहमें । (३३) वत्सदेश, कोशाम्बो, वैश्यकुम्भ । (३४) कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मणकुलमें ।

- (३५) विपक्षरोम उपागी० ।
 (३६) मिथुनिषोष उपदेशोम नन्द० ।
 (३७) निनेन्द्रियोम नन्द० ।
 (३८) मिथुनोः उपदेशोमे महाकप्पि० ।
 (३९) तेज पातु कुतलाम रुपागत० ।
 (४०) प्रतिभाशालिना (= पटिमानप्यर) मे राध- ।
 (४१) रक्ष चीर घारियोम मोघाज ।

- (४२) मिथुनो ! मेरी रत्न मिथुनी आरिक्काभाम महाप्रतापना मोनसो अप है ।
 (४३) महाप्रज्ञाभोम रोमा० ।
 (४४) अदि सतियोम उत्पत्त्या० ।
 (४५) विपक्षराम पटाचारा० ।
 (४६) धर्मरुधिराभोमे धम्मदिना० ।
 (४७) ध्यानिभोमे नन्दा० ।
 (४८) वारन्ध-वीर्योमे सोणा० ।
 (४९) क्षिप्रामिनाभोम भद्रा कुडलेशा० ।
 (५०) पूर्व जन्म अनुमृति-वाल्लिभाम भद्रा कापिलावनी० ।
 (५१) महा अभिना-प्राप्तोम भद्रा काम्यावनी० ।
 (५२) रक्ष चीर घारियोम वृत्ता मोनगी० ।
 (५३) भद्रा-मुक्तीमे मृगा-माता० ।

(५५, ५६) मिथुनो ! मेरे उपायक आरकांम प्रथम शरण आगेजाल्य तपन्नु, और
 भल्लुक यणिक्, अप है ।

(५७) शायकोम अनाथ पिंडक मरुत गृहपति० ।

(३५) शाक्य, कपिलवस्तु, नाई कुलमें । (३६) कोसल शायस्ती, कुल गह ।
 (३७) शाक्य, कपिलवस्तु, (महाप्रजापतीपुत्र) क्षत्रिय कुल (२८) मीमांस (= प्रत्यक्ष)
 देश, कुल्लुपती नगर, राजनरा । (३९) कोसल, शायस्ती, माहागुरु । (४०) मगध,
 राजगृह, माहागुरु । (४१) कोसल, शायस्ती (शायसी शिष्य) माहागुरु । (४२) शाक्य,
 कपिलवस्तु, बुद्धोदनभार्या, क्षत्रियकुल । (४३) मगधेश सागर (= सुवाल्लोह) नगर, राजपुत्री,
 मगधराज शिवभारती माया, (४४) कोसल, शायस्ती, श्रेष्ठिकुल । (४५) कोसल, शायस्ती,
 श्रेष्ठिकुल । (४६) मगध, राजगृह, विद्याय श्रेष्ठोमी भार्या । (४७) शाक्य, कपिलवस्तु,
 महाप्रजापती मोतमीकी पुत्री । (४८) कोसल, शायस्ती, कुलगेह । (४९) कोसल,
 शायस्ती, कुलगेह । (५०) मगध, राजगृह, श्रेष्ठिकुल । (५१) मगधेश सागर नगर, माहागुरु,
 (महाकादर्य-भार्या) । (५२) शाक्य, कपिलवस्तु, राहुलमाता, (देवहवासी सुप्रबुद्ध शायसी
 पुत्री), क्षत्रिय । (५३) कोसल, शायस्ती, (नेरय) । (५४) मगध, राजगृह, श्रेष्ठिकुल ।
 (५५, ५६) अमितेना नगर, कुटुम्भिक गेहर्ग । (५७) कोसल, शायस्ती, सुमन श्रेष्ठ पुत्र ।

- (५८) धर्मकधिकोमें मच्छिरापण्डवासी चित्र गृहपति० ।
 (५९) चार सग्राह-वस्तुओंसे परिपत् (= जमात) को मिलाकर रमनेवालोंमें हस्तक आलयक० ।
 (६०) उत्तम (= प्रणीत) दायकोमें महानाम श्राव्य० ।
 (६१) मागप (= प्रिय) श्रावकोमें प्रशालिका उप गृहपति० ।
 (६२) संध सेवकाम उगगत (= उद्गत) गृहपति० ।
 (६३) अत्यन्त प्रसन्नोम शर अम्बष्ट० ।
 (६४) पुत्रल (= व्यक्तिगत) प्रसन्नोम जीवक कोमारश्रुत्य० ।
 (६५) विश्वासकोमें नकुल-पिता गृहपति० ।

(६६) भिक्षुभो ! मेरी उपायिका श्राविकाओंमें प्रथम कारण आनेवालीयोंमें सेनानी दुहिता सुजाता अग्र है ।

- (६७) दायिकाओंमें प्रशाला भृगारमाता० ।
 (६८) बहुश्रुतोम गुज (= कुज)-उत्तरा० ।
 (६९) मेरी विहार प्राप्तोम मामागती० ।
 (७०) दयानियो में उत्तरा नन्दमाता० ।
 (७१) प्रणीत-दायिकाओंमें सुप्रशामा कोलिय दुहिता० ।
 (७२) रोगी सुश्रुपिकाओंमें सुप्रिया उपायिका० ।
 (७३) अतीव प्रसन्नोमें कात्यायनी (= कात्यायनी)० ।
 (७४) विश्वासिकाओंमें नकुल माता गृहपत्नी (= गृहपतानी)० ।
 (७५) अनुश्रव प्रसन्नोम कुरसवाली काली उपायिका० ।

(७८) मगध, मच्छिरामड, श्रेष्ठिकुल । (७९) पञ्चाल देश, आलघी (= अर्धल, जि० कटपात्राद), राजकुमार । (८०) शास्य, करिहन्नु, (अनुरदका ज्येष्ठ भ्राता) क्षत्रिय । (८१) वज्जीदेश, वेशाली, श्रेष्ठिकुल । (८२) वज्जीदेश, हस्तिनाम, श्रेष्ठिकुल । (८३) कोसल, आगती, धष्टिकुल । (८४) मगध, राजगृह, शमय कुमारमें सालवतिका गणिकामें उत्पन्न । (८५) भाग (= भार्गव देश) सुसुमारगिरि, श्रेष्ठिकुल । (८६) मगध, उद्वेलके सेनानी ग्राम, सेनानी कुटुम्बिककी पुत्री । (८७) कोसल, रावस्ती, (वैश्य) । (८८) वत्स, कौशाम्बी, घोषक श्रेष्ठिकी धार्दकी पुत्री ।

(८९) भद्रवतीराष्ट्र, महिया (= महिषा) नगर, भद्रवतिक श्रेष्ठि पुत्री, (पश्चात् वत्स, कौशाम्बी, घोषित श्रेष्ठिकी धमपुत्री), वत्स राज उदयनकी महिषी ।

- (९०) मगध, राजगृह, सुमनश्रेष्ठोके आधीन पूर्णमिहकी पुत्री ।
 (९१) शास्य, कुटिया, सावलीमाता, क्षत्रियकुल ।
 (९२) काशीदेश, वाराणसी, कुल्गेह (वंश्यकुल) ।
 (९३) अवन्ती, कुरसघर, (वैश्यकुल), सोणकुन्निष्णकी माता ।
 (९४) मगध, सुसुमारगिरि, नकुलपिता गृहपतिकी भाया ।
 (९५) मगध, राजगृह, कुल्गेहमें पैदाहुई । अवन्ती कुरसघरमें व्याही ।

धम्मचेतिय-सुत्त (वि. पृ. २४८) ।

पेसा येने सुना—एक समय भगवान् गोक्य (देव)य, मेत्तय्य (= मत्तमुत्तम) नामक शास्त्रियोंके निगमम विहार करते थे ।

उम समय राजा प्रसेनजित् कोसल कृषी काममे नगररुम आया हुआ था । तब राजा प्रसेनजित् कोमलने श्रेयो कारायणको आमंत्रित किया—

१ म नि २ २ ९।

२ धम्मप अ क (४ ३)—श्रावस्तीके महाकोस राजाका पुत्र प्रसेनजित् कुमार, वेशालीका लिच्छवी-कुमार महाली, कुचीनारास मल राजपुत्र यधुल, यह तीनोंहो दिता प्रामोख्य आचार्यके पास शिल्प (= विद्या) ग्रहण करनेके लिये, सशिल्पा (गये) । (वहाँ) नगरके बाहर (धर्म-) शालामें भट हुए । एक वस्त्र आनेका कारण, कुछ और पाम पूरकर, मित्र मन, एक साथही आचार्यक पास जा, शीघ्रही विद्या समाप्त कर, आचार्यत आज्ञाछे एक साथही निकल कर अपने अपने रुथानको गये । उनम प्रसेनजित् कुमारने पिताको विद्या दिवा, प्रसन्न पितामे राज्य अभिषेक पाया, महालीकुमारकी लिच्छवियोंको अपनी विद्या दिवाते समय बहुत उत्साह (= उल) के साथ दिवानके कारण, आँख फटकर निकल गई । लिच्छवी राजाओं (= प्रजातन्त्र सभासदों) ने—‘अहो ! हमारा आचार्यकी आँखें फूट गई, इन्हे नहीं छोटवा चाहिये, इनकी सेवा करनी चाहिये (सोच), (बुझीसे) एक लाल आय वाला एक (नगर) ढाढ़ दे दिया । वह वहा घेठ पाँचसौ लिच्छवी राजकुमारोंको विद्या ग्रहण कराते रहने लगा ।

इधुल राजकुमारको मल राज-कुलने प्रत्येक वर्षमें लोहेकी शालाक डाल, खड़ाकर, साठ साठ धातोंके साठ कणोंको (तलवारसे) काटनेको कहा । वह आकाशम अन्त्यो हाथ उठाकर तलवारसे काटने लगा, अन्तिम कलापमे, उसने लोहेका शालाकके धनत्ववानेका शब्द सुन, पृष्ठ, समी कलापामें लोह शालाका रखी होनेकी बात सुन, तलवारको धक, रोते हुये (कहा)—‘ मेरे इतने जाति-मुक्तदोर्मसे पकने भी स्नेहयुक्त हो, इस बातको न बतलाया । यदि मैं जानता तो लोह शालाकाके शत्रु हुये बिना (पूर्वत) ही काटता । गम ‘इन मयको मात्तर राज्य बर्हंगा’—मातापिताको कहा । उहोने—‘तूत ! वह प्रणी (= वशानुगत) राज्य है, वहाँ पेसा करनेको नहीं मिर्गा’—कह निवारित किया । तब—‘तो मैं अपन मित्रके पाम जाऊँगा’ (कह), श्रावस्ती गया । प्रसेनजित् कोसल राजाने उसके आगमनको बात सुन, आगवानो कर, यड़े सत्कारमे नगरम प्रवेशकरा, मेनापतिर पत्तर स्थापित किया । वह माता पिताको चुल्लाकर वहाँ बस गया ।

तथागतके मारिपुत्र, महाभ्रातृ-यायन स्थानि ने अथश्रावक (= प्रधान शिष्य), धेमा (= सेमा), उत्पल्यणा ने अथश्राविकार्ये, उपासकामें विप्रवृद्धनि और हम्तक

“सौम्य काराण ! सुन्दर यानोको जुड़वाओ, सुभूमि देनेकेलिये उद्यानभूमि जायगे ।”

आएवक दो अग्र श्रावक उपामक, उपासिकाओमें धेलु कच्छी (नगर-वासिनी) नन्दमाता, और पुत्र उत्तरा दो अग्र श्राविका उपासिकायें, यह आठ जन ये ।

राजा (-प्रमेनजित्) ने—भिन्नु रुधके साथ मुझे विधास पैदा कराना चाहिये, (सोच) ‘एक कन्या मुझे दो’ (प्रेमा संदम) शाक्योके पास भेजा । उन्होंने पुरुषित हो—‘राजा प्रयत्न है, यदि न दोगे, हमारा नाशकर देगा, किन्तु कुलमें हमारे समान नहीं है, तो क्या काना चाहिये ?’—सोचा । तब महानामो—‘मेरी दासीके कोखसे उत्पन्न रासभल तिया (=वार्पभक्षत्रिया) नामक अत्यन्त सुन्दरी कन्या है, उसे दोगे’ । दूतोंको कहा—‘अच्छा राजाको कन्या दोगे’ । ‘यह किसकी कन्या है ?’ ‘मम्यकू सनुद्धके छोटे चचाके पुत्र महानाम शाक्यकी वासभलतिया नामक पुत्री है । उन्होंने जाकर राजाको कहा । राजाने—‘यदि ऐसा है तो अच्छा, जल्दी ले जाओ । क्षत्रिय बड़े छली (=मायावी) होते हैं, दासी-कन्या भी भेज सकते हैं, पिताके साथ एक भोजनमें खाती देखकर छाना’ (कह) भेजा । महानामने उसे अर्पित करा, अपने भोजनके समय बुलवाकर उसके साथ एक जगह भोजन करते सा दिखला, दूतोंको प्रदान किया । उन्होंने उसे लेकर आवस्ती जाकर उस बातको राजासे कहा । राजाने संतुष्ट हो उसे पांचसौ खियोंकी प्रधाना बना, अप्रमहिषीके पदपर अभिषिक्त किया । उसने योड़ेही दिनमें सुवर्ण वर्ण पुत्र प्रमव किया । राजाने विह्वडम नाम रक्खा, और राजाने (उसे) छोटी उमरमें ही सेनापतिका पद दिया ।

मोलह वर्षकी अवस्थामें (विह्वडम) पितासे कहकर बड़े लोग-यागकेसाथ निरुणा ।

। शाक्य विह्वडमके आगमनको जान कर, (विह्वडमसे) छोटी उमरके बालकोको देहात्तमें भेज, उसके कपिलपुर पहुँचनेपर, संस्थागारमें पुरुषित हुये । कुमार वहाँ जाकर खड़ा हुआ । तब उसे—‘तात । यह तेरा मातामह है, यह मातुल है, बोले । उसने उन सत्रकी वन्दना करते, धूमते हुये, एकको भी अपनी वन्दना करते न देख, पूछा—‘क्या है, एक भी मुझे वन्दना नहीं करता’ । ‘तुमसे छोटे कुमार देहात गये हुये हैं’—(कह) शाक्योंने बहुत सत्कार किया । यह कुछ दिन वासकर बड़े परिवारके साथ निकला । तब एक दासी, संस्थागारमें उसके बैठनेके फलक (=तख्त)को दूध-पानीसे धोती—‘यह वासभ-खतिया दासीके पुत्रके मन्त्रेण फलक है’—कह, निन्दा करती थी । (विह्वडमका) एक आदमी अपना हथियार भूलकर, उसे लेनेके लिये लाटा । उसे लेते समय, विह्वडम कुमारको निन्दाके उस शब्दको सुन, उससे तब बात पूछकर, (उसने) सेनामें कह दिया—‘वासभ खतिया महानाम शाक्य की दासीसे उत्पन्न हुई है’ । बड़ा कोलाहल मचा । उसे सुनकर (विह्वडमने) चित्तमें धान लिया,—‘यह मेरे कठनेके तख्तको क्षीरोदकसे धोते हैं, मैं राज गद्दीपर बैठ, उनके गलेका रक्त ले, अपने तख्तको धुलवाऊँगा’ । उसके श्रावस्ती जानेपर अमात्योंने उस बातको राजासे कहा । राजाने शाक्योंमें क्रुद्ध हो वासभ-खतिया विह्वडम, दोनों माता-पुत्रको दिये सम्मानको छीनकर, (उन्हें) दाम दामोंके योग्य स्थान दिलवाया । कुछ दिन बाद शास्ता राज-महलमें जाकर बैठे । राजाने ग्रास धन्ना कर (बढ़ सब) कह लिया । शास्ताने कहा—

“अच्छा दत्त ।”

‘महाराज । शाक्योंने अयुक्त किया । महाराज । मैं तुमको कहता हूँ—यामभ पत्तिया राज दुहिता है, क्षत्रिय राजाके नेहरुम उसने अभियुक्त पाया है । चिह्नउम भी क्षत्रिय राजासे ही उत्पन्न हुआ है । माताका गोत्र क्या करेंगा, (पिताका गोत्र) काफी (=प्रमाण) है ।

। सुनकर (राजाने) ‘मैतुष्ट हो फिर माता पिताको (उनका) प्रकृत परिहार (=समान) दे दिया ।

बंधु सेनापतिकी भार्या मल्लिकाकी देरतक सतान न हुई । (फिर) गर्भ होनेपर मुझे दोहद (=गर्भगोकी किपी चीजकी इच्छा) उत्पन्न हुआ है—कहा । ‘क्या दाहद है ?’ ‘यशाली नगरमें गण (=प्रजातंत्र)—राज कुलसी अभियुक्त पुष्करिणीमें उतरकर नदावर पानी पीना चाहती हूँ, स्वामी ।’ बंधुल ‘अच्छा कह’ सहम (=मनुष्य)-बल (=सैन्य) माला धनुषले, उमै रथपर बसा धावस्तीसे निकरकर, रथ हार्ति महाली लिच्छवीको गिये द्वारसे वंशालीमें प्रविष्ट हुआ । पुष्करिणीके भीतर और जाह्नव बड़ा जगईस्त पहरा था, ऊपर लोहका जाल बिछा हुआ था, पछीक भी जानेका स्थान न था । बंधुल सेनापतिने रथमें उतर कर बैठते पहरेवालोंको पीटकर भगा, लोहजालको काटकर, पुष्करिणीके भीतर भापाको नहला, स्वयंभी ‘हा, फिर उभी रथपर चढ़, नगरसे निकरकर, आनेके गारतेसेही चर गया । पानेवालोंने लिच्छवियोंको कहा । लिच्छवी राजा क्रुद्ध होकर पात्रमी स्थोपर आग—‘बंधुल मल्लको पकड़ेंगे—(कह) निकरे । (लोगोंने) उम समाचारको महालीसे बड़ा । महालीने कहा—‘मर जाओ’ यह तुम सबको मार डालेगा । उहानेभी कहा—‘हम जायहीगे’ यह सभी मारे गये । बंधुल मल्लिकाको एक धावस्ती गया । उसने मल्लिकार जसुये पुत्र जने । यह सभी घर बलवान् हुये । सभी विद्या (=शिल्प)में निष्णात । एक दिन मनुष्योंने बंधुलको आते दपकर बड़ी दोहाद, न्यायीदोके रिश्वतने फैलाने करनेकी बात (=कूटकारण) कही । उसने अशालतम जा उम ब्रगदेश पेंसलार, रत्नामोटी को न्यामी बनाया । लोगोंने बडे जोरसे साधवाद दिया । राजाने पुत्रर, उसरातको सुन मैतुष्टही, उन सभी अमात्योको हटा, बंधुलकोही विनिश्चय (=न्यायविभाग) दे दिया । वह तबमे कीर ठीक न्याय करने लगा । पुराने न्यायाधीशो (=विनिश्चयिको)ने रिश्वत (=लूट) पानेसे “बंधुल राज्य ले लेना चाहता है” (रुहर), राजकुलमें घूट डालने । राजा उनकी बात मानकर, अपने माओ न शोक सका । ‘हमको यहीं मारनेसे बड़ी फिदा होगी—पोव, सोमान्तमें यलवा हो गया, अपने पुत्रोके साथ जाकर उरगद्वयो (=घोरे)को पकड़ो’ कह भेज दिया । लौटते वक्त नगरसे अविदूरगाममें (राजाके भेजे) योषाओने पुत्रके साथ (बंधुल मल्ल)का शिर काट लिया ।

(पीछे) राजाके चरपुश्वोंने राजाको उनके (=बंधु और उसके पुत्रने) निदाप होनेकी बात कही । राजाने खिन्न हो, उसने घर जा, मल्लिका और उसकी बहुआसे क्षमा मांगी । (मल्लिका) कुपीनारामे अपने कुलवरको चली गई । राजाने बंधुल मल्लने भाजे दीर्घ कात्तपणको सेनापतिका पद दिया । वह इसने मे- मामाको मारा है’ (मोच)

“ दव । सुन्दर सुन्दर यान जुत गये, अत्र जियका देव काल समझते हो । ”

मौका हँस रहा था । राजाभी निःपराध वंधुलके मारे जानेके समयसेही, खिन्नही चैन न पाता था, राज्य-सुख नहीं अनुभव करता था । उस समय शारता शाक्योंके उलुम्प नामक निगम (=कम्पे, में विहार करते थे । राजा कहा जा, आरामक अविवरम छात्रनी (=स्कंधावार) डाल, थोड़ेसे परिवारके साथ विहारम जा, पाच राज ऋष-भाड (= उत्र, व्यजा, उष्णीप, रद्ग, और पादुका) दीर्घशायणको दे, अकेलाही गंधकुटीमें गया । उसन गंधकुटीमें जातेही, कारायण उन राज कटुय-भाण्डोको ले विड्डमको राजा बना, राजाके लिये एक घोड़ा और एक सेविका छोड़, आवस्ती चला गया । राजा, शारताके साथ प्रिय कथा कह, निकल्कर, सेनाको न देव, स्त्रीको पूछ, उस बातको सुन, भाजे (=अजातशत्रु)को लेकर विड्डमको पनटनेकी रात सोच, राजगृह नगरको जाते, संघ्याकालमें नगरद्वारके बन्द होजानेपर, एक(धर्म-)-शालामें टहरा । धूप हवाम थका (होनेमें) रातको वहाँ मर गया । ‘ भोरको ‘कोसलनेन्द्र अनाथ होगये’ कह बिहारी उम स्त्रीके शब्दको सुनकर, (लोगोंने) राजाको कहा । उनमें मामा की शरार क्रिया बड़े सत्कारसे की ।

विड्डम भी राज्यप्राप्तकर उम वरको स्मरणकर सभी शाक्योंके मारने केलिये बड़ी सेना के साथ निकला । उम दिन भगवान् कपिलस्तुके पास जाकर एक कनरीछायावाले वृक्षके नीचे बंठे थे । वहाँ (पास हीमें) विड्डमकी राज्यसीमामें बड़ी घनी छायावाला उर्गदका वृक्ष था । विड्डमने शास्ताका देग, जाकर बन्दनाकर कहा—

‘ भन्ते ! ऐसे गर्माके समय इस कनरी छायावाले वृक्षके नीचे बंठे हैं ? इस घनी छायावाले वर्गदके नीचे बंठे । ’

‘ ठीक है महाराज । जातको (=भार्य व-दो)की छाया ठंडी होती है ।’ कहनेपर— शास्ता जातकोके बचानेके लिये आये हैं—पौर, शास्ताको बन्दनाकर, आवस्तीको ही लौट गया । राजा दूसरी बारभी उनी प्रकार शास्ताको देखकर लौट गया । तीसरी बार भी । चौथी बार शास्ता न गये । विड्डम शाक्योंके मारनेके लिये बड़ी सेनाके साथ निकला । (लोका) कहा—‘जो कहै हम शाक्य हैं, उनको मारो, किन्तु मेरे नाना महानामके पास खड़े हुआंको जीवन दान दो ।’ शाक्यों (में) कोई कोई रातमें तिनका दवाकर गड़े हो गये, कोई कोई नल (=नरक) पकड़कर खड़े हो गये । ‘ तुम शाक्य हो ’ पूछने पर तिनका दगाये हुये बोले—‘शाक नहीं (=नो=हम, नहीं), तिनका हो’ नलको पकड़कर खड़े हुये बोले—‘ शाक नहीं (=नो) नल हैं । उनमेंसे महानामके पास खड़े हुये जान बचा पाये । उनमें तिनका दगाकर गड़े पांछे मृग शाक्य कहलाये, नल पकड़कर खड़े नल शाक्य कहलाय । बाकी दूध पीनेवाले बच्चों तरुको विना छोड़े मरवाकर, सूती नदी बहवा (विड्डमने) उनके गलेके सूनेसे तरत घुसगाया । इस प्रकार शाक्यवंशको विड्डमने उच्छिन्न किया । रातक समय उसने अचिरवती नदीके तटपर पहुँच, छावनी डालनी । कोई कोई नदीके भीतर घालकापुलिन पर छे, कोई कोई बाहर स्थलपर । उनी समय मेघने उदर घना ओला बरसाया, और नदीमें आई बाढने सेना सहित उसे समुद्रम पहुँचा दिया । • •

तत्र राजा प्रसेनजित्० भद्र (= सुन्दर) यानपर आरुह्य हो, भद्र भद्र यानोंके साथ, गङ्गे राजसी ठाढ़से नगरकमे निकल कर, जहाँ आराम था, उहा गया । जितनी यानकी भूमि थी, उतना यानसे जा, यानसे उतर पैदलही आराममें प्रविष्ट हुआ । राजा प्रसेनजित्ने टहलते हुये आराममें शब्द रहित, घोष रहित, निर्जन, ध्यान-योग्य मनोहर वृक्ष-मूलोंको देखा । दम्बर भगवान्‌कीही स्मृति उत्पन्न हुई—यह जेसेही ०मनोहर वृक्षमूल है, जहा पर हम भगवान् ०सम्यक् सबुद्धकी उपासा (= सत्पग) करने थे । तत्र राजा ०ने गार्ध कारायणको पूछा—

“ सौम्य कारायण । यह ०मनोहर वृक्षमूल है, जहापर० । सौम्य कारायण । इस समय वह भगवान् ०कहाँ बिहरते हैं ? ”

“ महाराज । शाक्योका मेल्लप नामक निगम (= वस्त्र) है, वह भगवान् ० वहा पर बिहर रहे हैं । ”

“ सौम्य कारायण ! नगरकमे कितनी दूर पर शाक्योका वह मेल्लप निगम है ? ”

“ महाराज ! दूर नहीं है, तीन योजन है । याकी बचे न्तिमें पहुचा जा सकता है । ”

“ तो सौम्य कारायण ! जुडवा भद्रयानों को, हम भगवान् ०के दर्शनके लिये वहा चलेगे । ” “ अच्छा देव । ”

तत्र राजा प्रसेनजित् सुन्दर यानपर आरुह्य हो० नगरकमे निकलकर, उसी रात्रिमें शाक्योके निगम मेल्लपम पहुच गया । जहाँ आराम था, वहा चला । जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जा, यानसे उतर कर पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ ।

उस समय बहुतमे भिक्षु सुनी जाग्रहमे टहल रहे थे० । राजा प्रसेनजित् वहाँ खड्ग और ठाणीप दीर्घ करायणको दे दिया । दीर्घकारायणने सोचा—“ भुगे राजा यहाँ, रहता रहा है, इसलिये मुझे यहाँ रुका रहना होगा ” । तत्र राजा० जहाँ वह द्वारद्व विहार था० गया । भगवान्‌ने दर्शजा खोल दिया । राजा० निहार (= गंधकुटी)म प्रविष्टहो, भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे पटक १० ।

“ क्या है महाराज । क्या बात दम्बर महाराज ! इस शरीरमें इतना गौरव दिवलात हो, बिबिध उपहार (= समान) प्रदत्तन कर रहे हो ? ”

“ भन्ते ! भगवान्‌में मेरा धर्म अन्वय (= धर्म संज्ञा) है—भगवान् ०सम्यक् सबुद्ध है, भगवान्‌का धर्म रत्नत्वात् है, संघ सुमार्ग पर आरुह्य है । भन्ते ! किन्हीं किन्हीं अमग प्राद्वणोका मे स्वल्प कालिक (= पवित्र) महावर्ष पालन करते देवना हूँ—दशवर्ष, शाय वष तीस वर्ष, चालीस वर्षभी । यह दूसरा समय सुस्नात, सुत्रिलिप्त, कश रमभु यनवा (= रुषित कर) पाँच कामगुणोमे सम्पत्ति = सम् अंगोभूत हो, विरग करने है । भन्ते ! भिक्षुओको मे दानवा हूँ, जीवनमर परिपूर्ण परिशुद्ध महावष पालन करते हैं । भन्ते ! यद्वाय बाहर दूसरा इतना परिपूर्ण परिशुद्ध महावष नहीं दानवा । भन्ते ! यह भी (कारण है) कि भगवान्‌म

मुझे धर्म दर्शन (= धर्मअन्वय) होता है,—‘भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं, भगवान्का धर्म स्वाख्यात है, सब मु प्रतिपन्न (= सुमार्गाख्य) है ।

“और फिर भन्ते ! राजाभी राजाओंसे विवाद करने हैं, क्षत्रिय क्षत्रिके साथ विवाद करते हैं, ब्राह्मणभी०, गृहपति (= वेद्व) भी०, माताभी पुत्रके साथ०, पुत्रभी माताके साथ०, पिता भी पुत्रके साथ०, पुत्र भी पितासे साथ०, भाई भी भाईके साथ०, भाई भी बहिनसे साथ०, बहिन भी भाईके साथ०, मित्र भी मित्रसे साथ० । किन्तु यहा भन्ते ! मे भिक्षुओंको ममप्र (= एकगत्य), समोदमान (= एक दूसरेसे मुदित), विवाद-रहित, दूध-जल-पाने, एक दूसरेको प्रिय चक्षुसे देखता विहार करत देखता हूँ । भन्ते ! यहासे बाहर में (कहीं) ऐसी प्रकार्य परिपद् नहीं देखता । यह भी भन्ते ।० ।

“और फिर भन्ते ! मे (एक) आरामसे (दूसरे) आराममें, (एक) उद्यानसे (दूसरे) उद्यानमें, टहलता हूँ, विचरता हूँ, यहा मे किन्हीं किन्हीं धमण ब्राह्मणोंको कृश, रक्ष, दुर्बल, पीले पीले, नाडी यथे गात्रगाले (देखता हूँ), मानो लोगोंके दर्शन करनेसे आपकी बढ कर रहे हैं । तत्र भन्ते ! मुझे ऐसा होता है—‘निश्चय यह आयुष्मान् या तो वेमन (= अन् अभिरत) हां ब्रह्मचर्य कर रहे हैं, या इन्होंने कोई छिपा हुआ पापकर्म किया है, जिससे कि यह आयुष्मान् कृश० । उनके पास जाकर मे ऐसे पूछता हूँ—‘आयुमानो ! तुम कृश० ?’ यह मुझे कहते हैं—‘महाराज ! हमे यक्ष-रोग (= कुश रोग) है ।’ किन्तु भन्ते ! मे यहा भिक्षुओंको दृष्ट, प्रहृष्ट = उद्विग्न, अभित = प्रमद-इन्द्रिय उत्सुकता-रहित, रोमाच रहित, मृदु चित्तसे विहार करते देखता हूँ । यह भी भन्ते ।० ।

“और फिर भन्ते ! म मूधाभिषिक्त क्षत्रिय राजा हूँ, मारने योग्यको मरना सकता हूँ, निवासन-योग्यको निवासन कर सकता हूँ । ऐसा होते भी भन्ते ! मेरे (राज-) कार्यम बैठे वक्त, (लोग) बीच बीचमें बात डाल देते हैं । उनको मैं (कहता हूँ)—‘मे (काम करने) नहीं पाता, आपलोग कार्य करनेके लिये बैठ वक्त बीच बीचमें बात मत डालें, आप बात समाप्त हो जाने तक प्रतीक्षा करें ।’ तो (भी) बीच बीचमें बात डाल ही देते हैं । किन्तु यहा भन्ते ! म भिक्षुओंको देखता हूँ, जिस समय भगवान् अनेक शतकी परिपद्को धर्म-उपदेश करते हैं, उस समय भगवान्के श्रावकोंके धूकने ग्रासनेका भी शब्द नहीं होता । भन्ते ! पहिले एक समय भगवान् अनेक शत परिपद्को धर्म उपदेशकर रहे थे, उस समय भगवान्के एक श्रावक (= शिष्य) ने रामा । तत्र उसे एक सत्रलचारीने धुत्नेको दवाकर इशारा किया—आयुष्मान् नि शब्द हो, आयुष्मान् शब्द मत करें, शास्ता भगवान् हमें धर्म-उपदेशकर रहे हैं । तत्र मुने ऐसा हुआ—‘आश्चर्य है जो ! अद्भुत है जो ॥ जो बिना दूकने ही, बिना शब्दके ही, इस प्रकारकी विनय युक्त (= विनीत) परिपद् ॥’ यहासे बाहर भन्ते ! म दूसरी इस प्रकारकी विनीत परिपद् नहीं दग्ता । यह भी० ।

“और फिर भन्ते ! म किन्हीं किन्हीं निपुण, कृतपरप्रवाद (= प्राठ शास्त्राया) बाल-पेयी क्षत्रिय पंडितोंको देखता हूँ, (जो) मानों (अपनी) प्रज्ञा गत (युक्तियोंसे) (दूसरेके) दृष्टि गत (= मतत्रिपयक वाता) को डुकड़े डुकड़े करे डालते हैं । यह सुनन है—

‘धम्म गौतम अमुक घास या निगममे आयेगा’ यह प्रश्न तत्प्राप्त करते हैं—इस प्रश्नको हम धम्म गौतमने पास जाकर पूछे, ऐसा पूछनेपर यदि ऐसा उत्तर देगा, तो हम इस प्रकार उत्तर देना रोपेंगे । यह सुने हैं—‘धम्म गौतम अमुक घास या निगमम आयेगा’ । वह जहां भगवान् (होते हैं) वहां जाते हैं । वह भगवाण्की धार्मिक कथा द्वारा संदर्शित हो, प्रेरित हो, समुत्प्रेषित हो, संप्रार्थित हो, भगवान्को प्रश्न भी नही पूछने, वां कहाने रोपेंगे ? धार्मिक भगवान्के धायक ही या जाते हैं । यह भी ० ।

“ और फिर भन्ते । मैं जिन्हीं किन्हीं ० प्राण्य पंडितों ० । ”

“ ० गृहपति पंडितों ० । ”

“ ० धम्म पंडितों ० । भगवान्को प्रश्न भी नहीं पूछने, वाद कदासे रोपेंगे, धार्मिक भगवान्को ही धरने बेधर हो प्रश्नवा मागने हैं । उन्हें भगवान् प्रशंसित करते हैं । वह इस प्रकार प्रशंसित हो एककी ० आत्म संयमी हो विहस्ते, उल्टीही जिसके लिये कुलपुत्र ० प्रशंसित होते हैं, उम अनुत्तर (=मज्झिम) महाउत्तर पण्णो हसी जन्ममें स्वयं अमि ज्ञानकर, माक्षास्कारकर, प्राप्तकर विहस्ते हैं । वह ऐसा कहते हैं—हम नष्ट थे, हम प्र नष्ट थे, हम पहिले अ धम्म होते ही ‘ धम्म हैं, ’ का लवा करते थे, अ धम्म होते ‘ धम्म हैं ’ का लवा करते थे । अर्हत् न होते ‘ अर्हत् हैं ’ का लवा करते थे । अथ है हम धम्म, ० धम्म, ० अर्हत् । यह भी ० ।

“ और फिर भन्ते ! यह अपिदत्त और पुराण स्वपति (=वीरवान्) मेरे ही (भोजनसे) भोजनवाले, मेरे ही (पानसे) पानवाले हैं, मैं ही उनके जीवनका प्रदाता, उनके पशुका प्रदाता हूँ ; तो भी (यह) मेरे उतना सम्मान नहीं करते, जितना कि भगवान्को । पहिले जब बार भन्ते । मैं चर्चाके लिये जाता था । अपिदत्त और पुराण स्वपतिने राजाकर, एक भीड़वाले वासस्थ (=सराय)में वास किया । तब भन्ते ! वह अपिदत्त और पुराण बहुत रात धर्म-कथामें विता, जिस दिशाम भगवान्को होनेको सुना था, उधर शिरकर, सुने पैरकी ओर करके छेड़ गये । तब सुने ऐसा हुआ —‘ आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी ! ! यह अपिदत्त, और पुराण स्वपति मेरे ही भोजनसे भोजनवाले ० । यह आयुष्मान् उम भगवान्को शासनमें (=अदालत) ली, पहिलेसे अवश्य कोई विरोध देने लगे । यह भी ० ।

“ और फिर भन्ते । भगवान्भी क्षत्रिय हैं, मैं भी क्षत्रिय हूँ, भगवान्भी कोमलक (=कोमलामी, कोमल-गोत्र) हैं, मैं भी कोमलक हूँ । भगवान्भी अस्सी वर्षक, मैं भी अस्सी वर्षका । भन्ते । जो भगवान्भी क्षत्रिय ०, इसमेंभी भन्ते ! सुख योग्यही है, भगवाण्का परम सम्मान करना, विविध गौरव प्रदर्शित करना । इन्त ! भन्ते । अथ हम जायेंगे, हम बहुदुःख बहु-वरणों हैं । ”

“ महाराज ! जिसका तुम काल सम्मान हो (वेमा करो) ”

तब राजा प्रयोगजि० आगमने उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर चला गया ।

राजा०क जानेके थोड़ीही देर बाद भगवान्‌ने भिक्षुओंको कहा—

“ भिक्षुगो ! यह राजा प्रयोगजि० धर्म चेत्योंको आपगहर, आगमने उठकर चला गया । भिक्षुगो ! धर्मदेवोंको गोतो, धर्मदेवोंका पूजा करो, धर्मदेवोंको धारण करो । भिक्षुगो ! धर्म चेत्य स्मार्थर और आदि (= जुद्ध) प्रत्यक्षर्ये दे ।”

भगवान्‌को यह कहा । मनुष्ट हो उन भिक्षुगोंने भगवान्‌के आपगता अभिनन्दन किया ।

१ अ क ‘राजगृह जानेहुये रात्रिमें खु अन्न भोजन किया, और बहुत पानी पिया । सुकुमार स्वभाव होनेसे भोजन अच्छी तरह नहीं पचा । यह राजगृहके द्वारोंमें बन्द होजानेपर सन्ध्या (= निकाल)को पड़ा पहुँचा । । नगरक बाहर (धर्म)शालामें लेटा । उसको रातके समय दम्ब (= उड़ान)लगने शुरू हुये । कुछ धार वह बाहर गया । फिर घेरमे चलनेमें अत्यमर्षहो, उस स्त्रीने अंशमें पड़कर चड़े और ही मर गया । । राजा (अनातसपु)ने विद्वग्मने निषदके लिये भेरी बजाकर सेवा जमा की । अमात्योंने पेरोंपर पड़कर रोया ।”

सामगाम-सुत्त (वि. पृ. ४२८) ।

एसा^१ मैने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देश)में, सामगाम र्म विहार करते थे ।

उस समय निर्गठ नाथ पुत्त (=जैन तार्थङ्कर महावीर) अभी अभी पावार्म मरे^२ थे । उनके मरने पर निर्गठ (=जेन साधु) लोग दो भाग हो, भइन=कलह=विवाद करते, एक दूसरेको मुख्यस्त्री शक्तिसे छेड़ते फिर रहे थे—‘तू इस धर्म-विनय (=धर्म)को नहीं जानता, मैं इस धर्म-विनयको जानता हूँ’ । ‘तू क्या इस धर्म-विनयको जानेगा, तू मिथ्यारुढ़ है, मैं सत्यारुढ़ हूँ’ । ‘मेरा (कथा अर्थ-) सहित है, तेरा अ सहित है’ । ‘तू पूर्व बोलने (की बात)को पाँछे बोल, पाँछे बोलने (की बात)को पहिल बोल । ‘तेरा (वाद) बिना विचारका उल्ला है’ । ‘तूने वाद रोपा, तू निषह स्थानमें आ गया’ । ‘जा वादने छुटने के लिये फिरता फिर’ । ‘यदि सक्ता है तो समेट’ । नाथ पुत्ताय निर्गठोंमें मागो बुद्ध (=पद्य) ही हो रहा था ।

निर्गठके श्रावक (=शिष्य) जो शृणी इत बघ्नगरी, (ये) वह भी नाथ पुत्तीय निर्गठोंमें (येसेही) निर्विगम=विरक्त=प्रतिवाण-रूप थे, जैसे कि (नाथ पुत्तक) दुर्-आसपात (=दीक्ते न कहे गये), दुष्-प्रवेदित (=ठीकमे न साक्षात्कार किये गये), अनेपाणिक (=पार न छगाने वाले), अन्न उपशम मंवरनिव (=न शांति गामी), अ मन्पक संबुद्ध-प्रवेदित (=किमी बुद्धमे न जाने गये), प्रतिष्ठा (=चौर) रहित =भित स्तूप, आश्रयरहित धर्म विनयमें (ये) ।

तब शुद्ध समणुहेस पावार्म घर्पायाम कर, जहा सामगाम था, जहा आयुप्मान् आनन्द थे, कहा गया । जाकर आयुप्मान् आनन्दको अभिवादनर एक ओर बठ गया । एक ओर बठे शुद्ध भ्रमणोदेशने आयुप्मान् आनन्दको कहा—

“भन्ते ! निर्गठ नाथपुत्त अभी अभी पावार्म मरे हैं । उनके मरनेपर ० नाथ पुत्तीय निर्गठोंमें मागो बुद्ध ही हो रहा है । ० आश्रय रहित धर्म विनयमें (ये) ।”

ऐसा कहनेपर आयुप्मान् आनन्दने शुद्ध भ्रमणोदेशको कहा—

“आहुस शुद्ध ! भगवान् के दर्शनके लिये यह बात भद्र रूप है । आशो आहुस शुद्ध ! जहा भगवान् हैं, वहा चले । चलकर यह बात भगवान् को कहे ।” “अच्छा भन्ते !”

१ म नि ३ १ ४ ।

२ अ क ‘यह नाथ पुत्त तो नालन्दा-वासी था, वह कैसे क्यों पावार्म मरा ? सत्य लाम्बी उपाधि गृहपतिके दश गाथाओंसे भाषित बुद्ध गुणोंको सुनकर, उसने गम खून फेंक दिया । तब वास्वस्थ्याही उसे पावा ले गये । वह वहा मरा ।”

३ अ क “यह रथविर घमसेनापति (=सारिपुत्र) क छोटे भाई थे । उनको उप मन्पन्न न होनेके समय जिउ शुद्ध समणुहेस कहा करते थे, रथविर ने जानपर भी यही कहते रहे ।”

तब आयुष्मान् आनन्द और सुन्दरमणोरेश जहा भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को कहा—

“ भन्ते ! यह सुन्दरमणोरेश ऐसा कह रहे हैं—‘ भन्ते ! गिठ नाथपुत्त अभी अभी पावामें मरे हैं० ।’ तब भन्ते ! मुझे ऐसा होता है, भगवान्के याद भी (कहीं) संघमें ऐसा ही विवाद मत उत्पन्न हो । वह विवाद बहुतजनोके अहितके लिये, बहुत जनोके अंशुलके लिये, बहुत जनोके अनर्थके लिये, देव मनुष्योके अहित और दुःखके लिये (होगा) ।”

“ तो क्या मानते हो आनन्द ! मेने साक्षात्कार कर जिन धर्माका उपदेश किया, जैसे कि—(१) चार स्मृति प्रधान, (२) चार सम्यक् प्रधान, (३) चार नद्विपाद, (४) पाच इन्द्रिया, (५) पाच उरु, (६) सात बोध्यग, (७) आर्य आष्टागिक मार्ग । आनन्द ! क्या इन धर्मोंमें दो भिक्षुओका भी अनेक मत (दोलता) है ?”

“ भन्ते ! भगवान्ने जो यह धर्म साक्षात्कारका उपदेश किये हैं, जैसे कि—(१) चार स्मृति प्रधान० । इन धर्मां भन्ते ! मे दो भिक्षुओका भी अनेक मत नहीं देखना । लेकिन भन्ते ! जो पुत्रल भगवान्के आश्रयसे निहस्ते हैं, वह भगवान्के, न रहनेके याद, संघमें आजीव (=जीविका) के विषयमें, प्रातिमोक्ष (=भिक्षु नियम) के विषयमें विवाद पैदा कर सक्ते हैं, वह विवाद बहुत जनोके अहितके लिये, बहुत जनोके अशुलके लिये, बहुत जनोके अनर्थ = अहितके लिये, देव मनुष्योके दुःखके लिये होगा ।”

“ आनन्द ! जो यह आजीवके विषयमें या प्रातिमोक्षके विषयमें विवाद है, वह अल्प-मात्रक (=छोटा) है । मार्ग या प्रतिपदके विषयमें यदि संघमें विवाद उत्पन्न हो, वह विवाद अहितके लिये० । आनन्द ! यह छ विवादके मूल हैं । कौनसे छ ? आनन्द ! यहा भिक्षु (१) कोटी, पाण्डो (=उपनाही) होता है । जो भिक्षु आनन्द ! कोटी उपनाही होता है, वह शास्ता (=गुरु) में गौरव रहित, आश्रय रहित हो विहरता है, धर्ममें भी०, संघमें भी०, शिक्षा (=भिक्षु नियम) में त्रुटि करनेवाला होता है । जो भिक्षु आनन्द ! शास्तामें गौरव-रहित०, शिक्षामें त्रुटि करनेवाला होता है, वही संघमें विवाद पैदा करता है । वह विवाद बहुतजनोके अहितके लिये होता है । इसलिये आनन्द ! इस प्रकारके विवाद मूलको यदि तुम अपनेमें या दूसरेमें देखना, तो आनन्द ! तुम उस पापी विवाद मूलके विनाशके लिये प्रयत्न करना । यदि देखना, तो आनन्द ! तुम उस पापी विवाद मूलको, भविष्यमें न होने देनेके लिये उपाय करना, इस प्रकार इस पापी विवाद-मूलकी भविष्यमें अनुत्पत्ति होगी । (२) और कि आनन्द ! भिक्षु, सर्पों, पलासी होता है, जो भिक्षु आनन्द ! सर्पों । (३) ईर्ष्यालु, मत्सरी० । (४) छद्म, मायावी० । (५) अपापेच्छु (=बद-नीयत), मिथ्या-दृष्टि० । (६) दृष्टि-परामर्षी, आधान ग्राही० । आनन्द ! यदि अपनेमें या दूसरेमें इस प्रकारके विवाद-मूलको देखना, यहा आनन्द ! तुम इस पापी विवाद मूलके विनाशके लिये प्रयत्न करना, इस पापी विवाद-मूलकी भविष्यमें अनुत्पत्तिके लिये उपाय करना, इस प्रकार इस पापी (=दुष्ट) विवाद-मूलका प्रहाण (=विनाश) होता है, इस प्रकार इस पापी विवाद मूलकी भविष्यमें अनुत्पत्ति होती है । आनन्द ! यह छ विवाद मूल हैं ।

“आनन्द । यह चार अधिकरण हैं । कौनसे चार ? १ (१) विवाद अधिकरण, (२) अनुवाद-अधिकरण, (३) आपत्ति अधिकरण, (४) वृत्त्य अधिकरण ।

‘आनन्द । यह सात अधिकरण समय है, जिन्हें तत्र तत्र (=समय २ पर) उत्पन्न हुये अधिकरण ० (झगड़ा) के समय = उपश्रम (=घाति) के लिये देना चाहिये, (१) समुल विनय देना चाहिये, (२) स्मृति विनय ०, (३) अमूढ विनय ० । (४) प्रति ज्ञात करण, (५) यद्भूयसिक, (६) तत्पापीयसिक, (७) तिणवत्पारक । ”

“आनन्द । संमुख विनय कैसे होता है ? आनन्द । मित्र विवाद करते हैं, धर्म है या अधर्म, विनय है या अविनय । आनन्द । उन सभी मित्रोंको एक जगह एकत्रित होना चाहिये । एकत्रित हो धर्म (रूपी) रस्सीका (ज्ञानसे) परीक्षण करना चाहिये, जैसे यह गात हो, वैसे उस अधिकरण (=झगड़े)को शांत करना चाहिये । इस प्रकार आनन्द । समुल विनय होता है, इस प्रकार संमुख-विनयसे भी किन्हीं किन्हीं अधिकरणोंका शमन होता है ।

“आनन्द । यद्भूयसिक कैसे होता है ? आनन्द । यदि वह मित्र उस अधिकरणको उस आवास (=मठ)में शांत न कर सके । तो आनन्द । उन सभी मित्रोंको, चित आवास में अधिक मित्र हैं, उसमें जाना चाहिये । वहां सबको एक जगह एकत्रित होना चाहिये । एकत्रित हो धर्म नेत्री (=धर्म रूपी रस्सी) का समनुमार्जन (=परीक्षण) करना चाहिये । धर्म नेत्रीका समनुमार्जन ० ।

१ सुलभग ४ (समय उपकरण) “ क्या है विवाद अधिकरण ? मित्र विवाद करते हैं—धर्म है या अधर्म, विनय है या अविनय, तथागतका आपत्ति है या नभापित, तथागतने ऐसा आचरण किया, या नहीं तथागतने प्रतप किया, या नहीं, आपत्ति है या अनापत्ति (अ दोष), अणु आपत्ति है या गुरु आपत्ति, स अजीव (=घाती रक्षक) आपत्ति है या अन् अजीव आपत्ति, दुष्ट आपत्ति है या अदुष्ट आपत्ति । जो महा भंडन=कण्ड=विषद=विवाद नानावाद, अन्यथावाद है वही विवादाधिकरण कहा जाता है । क्या है अनुवाद-अधिकरण ? मित्र मित्रों की विपत्ति (=बीरसंगी दोष) से, या आचार विपत्ति, या दृष्टि (=मिद्वत्) विपत्ति से या अजीव विपत्ति, अनुवाद (=दोषारोप) करते हैं । अनुवाद=अनु-वदना=अनुलपना । क्या है आपत्ति अधिकरण ? पाच आपत्ति स्वयं (=दोष ममुदाय) या सात आपत्ति-अध आपत्ति अधिकरण कहलाते हैं । क्या है वृत्त्य-अधिकरण ? जो संवरा वृत्त्यकरणोप (है, जैसे) (संवरा) अवलोकन धर्म ज्ञप्ति (=संको सूचना)-कर्म, नप्ति द्वितीयकर्म, ज्ञप्ति चतुर्थकर्म, यह वृत्त्याधिकरण कहा जाता है । २ सुलभग ४—

“अनुवा करता हूँ मित्रों । इस प्रकारके अधिकरणका यद्भूयसिक उपश्रम करना पाच अङ्गो (=गुणों)से पुन मित्रों कागम (=घोटका झगका जो हिंसकी जगद व्यवहार होती थी) प्रहापक (=शलाका बाटनेवाला) मानना चाहिये—(१) जो अपनो, रक्षिक रास्ते न जाये, (२) न द्वेष रास्ते जाये, (३) न मोहके रास्ते जाये, (४) न भय रास्ते जाये (५) न (पहिलेसे) पकड़े रास्ते जाये । । यद्भूयसिक क्या है ? (यह) जो बहुमत अनुसार (=यद्भूयसिक) कर्मका करना, (कर्मका) स्वीकार करना इस प्रकार झगड़ा शांत होजाय, फिर (यादी) उभय उच्छेदन (=अमाय, विरोध) करे

"कैसे आनन्द ! स्मृति-विनय होता है ? यही आनन्द ! मिश्रु मिश्रुपर पाराजिका या पाराजिका समान (= 'सामन्तरु) आपत्ति (= दोष) का आरोप करते हैं—'स्मरण करो आवुस ! तुम पाराजिका या पाराजिका समान, ऐसी यद्दी (= गुरुक) आपत्तिसे आपन्न हुये, वह ऐसा उत्तर देता है—आवुस ! मुझे याद (= स्मृति) नहीं कि मैं ऐसी गुरुक-आपत्तिसे आपन्न हूँ । उम मिश्रुको आनन्द ! स्मृति विनय देना चाहिये । इस प्रकार आनन्द ! स्मृति विनय होता है । इस स्मृति विनयसे भी सिन्हीं किन्हीं झगड़ोका निपटारा होता है ।

"आनन्द ! अमूढ-विनय कैसे होता है ? यहाँ आनन्द ! मिश्रु मिश्रुपर० गुरुक-आपत्तिका आरोप करता है ! वह ऐसा उत्तर देता है—'आवुस ! मुझे स्मरण नहीं, कि मैं आपत्तिसे आपन्न हूँ । तब वह छोटते हुयेको स्पष्टता दे—'तो आयुप्मान् ! अच्छी तरह धूमो, क्या तुम स्मरण करते हो, कि तुम० ऐसी ऐसी गुरुक आपत्तिसे आपन्न हुये ?' वह ऐसा उत्तर दिये—'मैं आवुस ! पागल होगया था, मति ध्रम (होगया था), उन्मत्तहो मैंने बहुतसा धमण विरुद्ध आचरण किया, भाषण किया, मुझे वह स्मरण नहीं होता । मूढ (= नेहोरा) हो, मैंने वह किया । उस मिश्रुको आनन्द ! अमूढ विनय देना चाहिये । इस अमूढ-विनयसे भी किन्हीं किन्हीं झगड़ाका निपटारा होता है ।

"आनन्द ! प्रतिज्ञात-वरण कैसे होता है ? आनन्द ! मिश्रु आरोप करनेपर या आरोप न करने पर भी आपत्ति (= दोष) को स्मरण करता है, खालता है, स्पष्ट करता है ।

तो उसे उत्कोटा प्रायश्चित्त (करना होगा); छन्त्र-शायक (= घोटार, मतदाता) यदि असतोप प्रकृत कर (= स्वीयति), तो स्वीयनरु-प्रायश्चित्त । । अनुशा करता हूँ, मिश्रुओ ! तीन प्रकार के शलाका-ग्रहण (= Voting) से, (१) गूढक, (२) स-जर्ण जल्पक, और (३) विवृतक । मिश्रुओ ! गूढ शलाका प्राह कैसे होता है ? उस शलाका प्राहापक मिश्रुको शलाकायें रङ्गीन, घेरङ्गीन, बनाकर एक एक मिश्रुके पास जाकर यह कहना चाहिये—' यह ऐसे पक्षवाले की शलाका है, यह ऐसे पक्षकी ०, जिसे चाहो ले लो । ' (शलाकायं) ग्रहण कर लेनेपर, बोलना चाहिये—' किसीको मत दियलामो । ' यदि जाने कि अधर्म-वादी (= उल्टा लेनेवाले) अधिक हैं, तो दुर्ग्रह (= ठीकसे न ग्रहण) है ' (सोच) लौटा लेना चाहिये, यदि जाने कि धर्म-वादी अधिक हैं, तो सुग्रह (= ठीकसे ग्रहण) है, बोलना चाहिये । इस प्रकार मिश्रुओ ! गूढक शलाका प्राह होता है । कैसे मिश्रुओ ! स-जर्ण-जल्पक, शलाका प्राह होता है ? शलाका प्राहापक मिश्रुको एक एक मिश्रुके कानके पास कहना चाहिये—' यह ऐसे पक्षकी शलाका है, यह ऐसे पक्षकी शलाका है, जिसे चाहो ले लो । ' ग्रहण करनेपर बोलना चाहिये—' किसीको मत बतलामो । ' यदि जाने कि अधर्मवादी (= उल्टा लेनेवाले) अधिक हैं तो ' दुर्ग्रह है ' (सोच, शलाका) लौटा लेनी चाहिये ० । मिश्रुओ ! विवृतक शलाका प्राह कैसे होता है ? यदि जाने धर्म वादी बहुत हैं, तो बिश्वास-पूर्वक विवृत (= खुली) (शलाका) ग्रहण करानी चाहिये ।

१ अ क "यहा पाराजिका आपत्ति-स्कन्ध, संवादोप०, स्थूल अत्यय ०, प्रतिदेशनीय ०, दुष्कृत ०, दुर्मापित आपत्ति-स्कन्ध, इनमें पूर्व-पूर्ववालेके मोठे वाले सामन्त होते हैं । "

उस मिथुको (अपनेसे) दृढ़तर मिथुके पास जाकर, चीवरको एक (बाय) कंधेपर करके, पाद
चंदनाकर, उफड़ू बड़े हाथ जोड़, प्रेसा कहना चाहिये—मन्ते । म इस नामकी आपत्तिसे आपन्न
हुआ हूँ, उसकी म प्रतिदेशना (= विवेदा) करता हूँ । वह (दूसरा मिथु) ऐसा कहे—
'देखते हो (उस दोषको) ?, 'देखता हूँ' । 'आगेसे (इन्द्रिय) रक्षा करना' । 'रक्षा करूँगा' ।
इस प्रकार आनन्द । प्रतिज्ञात करण (= स्वीकार = Confession) होता है । ० ।

“ आनन्द ! त्रिपापीयसिका (= तत्त्व पापीयसिका) कैसे होती है ? यहा आनन्द ।
मिथु मिथुको ऐसी गुरु आपत्ति आरोप करते हैं—‘आयुष्मान् स्मरण करो० तुम ऐसी
गुरु-आपत्ति आपन्न हुए ?’ वह ऐसा उत्तर देता है—‘आयुस । सुने स्मरण नहीं, कि मे०
ऐसी गुरु आपत्ति आपन्न हुआ ।’ उसको छोड़ते, हुयेसे वह एगता है—‘आयुष्मान् गच्छती
तरह नृपो-क्या तुम्ह स्मरण है, कि तुम ०पमी गुरु आपत्तिसे आपन्नहुये ?’ वह ऐसा उत्तर
देये—‘आयुस । मे स्मरण नहीं करता कि मे, ०पमी गुरु आपत्ति आपन्न हुआ । स्मरण करता हूँ
आयुस । कि मे इसप्रकारको छोटे (= अल्पमात्र) आपत्तिसे आपन्न हुआ ।’ खोलने हुये उसको
वह फिर एगता है—‘आयुष्मान् अन्तीतरह नृपो० ?’ वह ऐसा उत्तर दे—‘आयुस । मे इसप्रकार
की (= अगुरु) छोटी आपत्ति आपन्न हुआ, बिना पूछेही स्वीकार करता हूँ, तो क्या मे
ऐसी गुरु आपत्ति आपन्नहो पूछनेपर न स्वीकार करूँगा ?’ वह ऐसा कहता है—‘आयुस ।
तुम इस छोटी आपत्तिको भी बिनापूछ नहीं स्वीकार करते, तो क्या तुम ०पमी गुरु आपत्ति
आपन्नहो पूछनेपर स्वीकार करोगे ? तो आयुष्मान् । अन्तीतरह नृपो० । वह यदि धो—‘आयुस ।
स्मरण करता हूँ, मे ०पमी गुरु-आपत्ति आपन्न हुआ हूँ । द० (= म०) मे, र० (= प्रमाद)
से मेने यह कहा—‘मे स्मरण नहीं जाता, कि मे ०पमी । इस प्रकार आनन्द !
'तत्त्वपापीयसिका' (= उमकी औरभी कड़ी आपत्ति) होती है । एमभी यहा किन्हीं किन्हीं
अधिकरणोंका निजारा होता है ।

“आनन्द ! तिण वत्थारस्स कैसे होता है । आनन्द ! यहा भंडन = कण्ड = विवादसे
युक्तहो विहरते (ममय), मिथु बहुतसे धमग विरुद्ध आचारण, आपण, किये होते हैं । उन सभी
मिथुओंको एकत्र हो एकत्रित होना चाहिये । एकप्रहो एक पक्षगलोमसे चतुर मिथुको आमन
से उठकर चीवरको एक कंधेपर कर हाथ जोड़ संघको शापित करन चाहिये—

‘मन्ते । मं० सुने, भंडन = कण्ड = विवादसे युक्तहो विहरते (ममय) हमने
बहुतसे धमग विरुद्ध आचारण किये हैं, यदि संघ उचित समझे, तो जो इस आयुष्मानोंका
दोष है, और जो मेरा दोष है, इस आयुष्मानोंके लिये भी और अपने लियेभी, मे तिणवत्थारस्स
(= धामसे दावा जैसा) मे यथा कर, (किन्) स्थूल वय (= बड़ा दोष), गृही प्रतिसंयुक्त
(= गृहस्थ सर्वधी) मोड़कर । तब (दूसरे) पक्षगलोमसे चतुर मिथुको आसनेसे उठकर ० ० ।
इस प्रकार आनन्द ! तिणवत्थारस्स (= तुणसे डाकने जैसा) होता है ।

“आनन्द ! यह छ धर्म माराणोय प्रिय करण, गुरु-करण है ; संघ, ज विवाद,
सामो (= एकता) = एकीभाजके लिये हैं । धौनसे उ ? (१) आनन्द ! मिथुस मयस-
चारिधर्म, गुस भी प्ररु भी, मैत्रीभाव-युक्त कायिक कर्म हो; यह भी धर्म माराणोय ० ।

(२) और फिर आनन्द । ०मेत्रीभाव-युक्त चाचिक कर्म० । (३)० मैत्रीभावयुक्त मानसकर्म० ।
 (४) और फिर आनन्द ! जो कुछ भिक्षुको धार्मिक लाभ, धर्मसे लब्ध होते हैं, अन्तमें पात्र चुपड़ने मात्र भी, वेसे लाभोको बिना वाट उपभोग न करने वाला हो, शीलवान् स ब्रह्मचारियोके साथ सह-भोगी हो, यह भी धर्म० । (५) और फिर आनन्द ! जो वह शील (=आचार) कि असद्वृत्ति=अ-उद्विग्न, अ-शत्रुत्व=अ-कलमप, सेवनीय, पण्डितोसे प्रशंसित, अ-निन्दित, समाधि-सहायक हैं, वेसे शीलमें शील श्रमण-भावयुक्त हो, गुप्त भी और प्रकट भी समस्तब्रह्मचारियोके साथ विहार करता हो, यह भी धर्म० । (६) और फिर आनन्द ! जो वह दृष्टि (=सिद्धान्त), आर्य है, नैर्गोणिक=उसके (अनुसार) करनेवालेको दुःख-क्षयको लेजाती है, वेसी दृष्टिसे दृष्टि-श्रमण भाव (=विचारोंके श्रमण पन)से युक्त हो, गुप्तभी, और प्रकटभी समस्तब्रह्मचारियोके साथ विहार करता हो, यह भी धर्म० । आनन्द ! यह छ धर्म साराणीय० हैं ।

भगवान् ने यह कहा, सतुष्ट हो आयुमान् आनन्दने भगवान् के भाषणका अभिनन्दन किया ।

संगीति-परियाय-सुत्त (वि. पू. ४२८) ।

“ऐसा मैंने सुना—एक समय पाच मो मिश्रुओके महाभिन्नु सघके साथ भगवान् मल्ल (देश) में चारिका करते, जहा पावा नामक मल्लोका अगर है, वहा पहुँचे । वहा पावाम् भगवान् सुन्द कम्मार् पुषके आश्रयनमें विहार करते थे ।

उस समय पावा-वासी मल्लोका उँचा, नया, संस्थागार (=प्रजातत्र परिपद् भरा) अभी ही बना था, (जहाँ अभी) किसी भ्रमण या ब्राह्मण या किसी मनुष्य ने काम नहीं किया था । पावा वासी मल्लोने सुना—‘भगवान्० मल्लमें चारिका करते पावाम पहुँचे हैं, और पावामें बुद्ध कम्मार् (=सोना) पुत्रक आश्रयनमें विहार करते हैं ।’ तब पावावासी मल्ल जहा भगवान् थे, वहा पहुँचे । पहुँचकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे पावावासी मल्लोने भगवान्को कहा—

“भन्ते ! यहाँ पावा वासी मल्लोंका उँचा (=उत्तमतक) नया सम्पागार, किसी भी भ्रमण, या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न बना, अभी ही बना है । भन्ते ! भगवान् उसको प्रथम परिभोग करें । भगवान्के पहिले परिभोग कर लेनेपर, पीछे पावा वासी मल्ल परिभोग करेंगे, वह पावा वासी मल्लोके लिये नीचरात्र (=त्रिकान) तक रित सुषवे लिये होगा ।”

भगवान्ने मौन रह स्वीकार किया ।

तब पावाके मल्ल भगवान्की स्वाकृति जानकर, आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणाकर, जहा संस्थागार था, वहा गये । जाकर संस्थागारमें सब ओर फर्से बिछा, आसनाको स्थापितकर, पानीके मटके रख, तेलके दीपक आरोपित कर, जहा भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर० एक ओर खड़े हो बोले—

“भन्ते ! संस्थागार सब ओर बिछा हुआ है, आपन स्थापित किये हुये हैं, पानीके मटके रखे हुये हैं, तेल प्रदीप रखे हुये हैं । भन्ते ! अब भगवान् त्रिनका फाल समझें (बना करें) ।”

तब भगवान् पहिनकर पात्र चावर ले मिश्रु-संघके साथ वहाँ संस्थागार था, वहाँ गये । जाकर पैर पगार, संस्थागारमें प्रवेश कर पूर्वकी ओर मुँहकर, बाँचके सम्भेक आश्रयसे बने । मिश्रु संघ भी पैर पगार, संस्थागारमें प्रवेश कर पूर्वकी ओर मुँहकर, पच्छिमकी भीतके सहारे भगवान्को आगे कर बैठा । पावा वासी मल्लभी पैर पगार, संस्थागारमें प्रवेश कर पच्छिम की ओर मुँहकर, पूर्वकी भीतके सहारे भगवान्को सामने कर बैठ । तब भगवान्ने पावा वासी मल्लोको बहुत राततक धार्मिक-कथासे संवसित = समादित, समुचेजित, संवसित कर विमर्जित किया—

“ वादिष्ठो ! रात सुम्हारी बीत गई, अब तुम जिसका काल समझो (वैसा करो) । ”

“ अच्छा मन्ते ! ” पावा-वासी मल्ल आसासे उठ भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर चले गये । ”

तब मल्लोके जानेके थोड़ीही देर बाद, भगवान्‌ने ज्ञात (=तूष्णीभूत) भिक्षु संघको देख, आयुष्मान् सारिपुत्रको आमंत्रित किया—

“ सारिपुत्र ! भिक्षु-संघ स्थान गृह-रहित है, सारिपुत्र ! भिक्षुओंको धर्म रक्षा कहो, मेरी पीठ श्रमिणा रही है । सो मैं सम्भा पहुँगा । ”

आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌को “ अच्छा मन्ते ! ” कह उत्तर दिया । तब भगवान्‌ने चौपत्ती संघाटी बिछा, दाहिनी करपटके थल, पेरपर पैर रख, स्मृति-संप्रजन्यके साथ, उत्थान् संज्ञा मनन कर, सिंह शय्या लगाई । उस समय निगठ नाट-पुत्त अभी अभी पावामें काल किये थे । उनके काल करनेसे निगठ फूटकर दो भाग हो, भंडन = कलह = विवादमें पड़, एक दूसरेको मुख (रुमी) बाँकिते चीरते हुये विहर रहे थे० । मानो* नाट-पुत्तिय निर्गठोंमें एक युद्ध (=यध) हो चल रहा था । जो भी निगठ नाटपुत्तके श्रेत वस्त्रधारी गृहस्थ श्रावकथे० ।

आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“ आवुसो ! निगठ नाट-पुत्तने पावामें अभी अभी काल किया है । उनके काल करनेसे ० निगठ फूटकर दो भागमें हो, भंडन = कलह = विवाद करते, एक दूसरेको मुख शक्तिने छेदते विहर रहे हैं—“तू हम धर्म विनयको नहीं जानता०” । निगठ नाटपुत्तके जो श्रेतवस्त्रधारी गृही श्रावक हैं, वह भी नाटपुत्तिय निगठों में (येमेही) निर्विण्ण = विरक्त = प्रति घाण रूप है, जैसेकि घट (नाटपुत्तने) दुराख्यात, सु-प्रवेदित, अ-नेर्याजिक, अन्-उपशम सन्तर्तिक, अ सम्यक्-संबुद्ध-प्रवेदित, प्रतिष्ठा रहित, आश्रय-रहित धर्म-विनयमें । किन्तु आवुसो ! हमारे भगवान्‌का यह धर्म सु भाख्यात (=ठीरमे कहा गया), सु-प्रवेदित (=ठीरमे साक्षात्कार किया गया), नैयाजिक (=दु ससे पार करने वाला), उपशम-संवर्तनिक (=शांति-प्रापक), सम्यक् संबुद्ध-प्रवेदित (=बुद्धद्वारा जाना गया), है । तहाँ सबको ही अ-विरद्ध वचन बाला होना चाहिये । विवाद नहीं करना चाहिये, जिससे कि यह ब्रह्मचर्य अ-निरुद्ध = (चिर स्थायी) हो, और वह बहुजन सुखार्थ, लोकके अनुकम्पाके लिये, देव मनुष्योंके अर्थ = हित = सुखके लिये हो । आवुसो ! कने हमारे भगवान्‌का धर्म० देव मनुष्योंके अर्थ = हित = सुखके लिये होना ? आवुसो ! उन भगवान्‌ जाननहार, देखनहार, अर्हत्, सम्यक् संबुद्धने ‘एक’ धर्म ठीरसे बतलाया है । उसमें सबको ही अविरोध वचनवाला होना चाहिये, विवाद न करना चाहिये, जिसमें कि यह ब्रह्मचर्य अव्यनिरुद्ध = चिरस्थायी हो० । कौनसा एक धर्म ? सन प्राणो आहार पर स्थित (= निर्भर) है । आवुसो ! उन भगवान्‌ने० यह एक धर्म यथार्थ बतलाया । इसमें सबको ही० ।

। १ अ क “क्यों श्रमिणाती थी ? भगवान्‌के छ वर्षतक महा तपस्या करते वक्त शरीरको बड़ा दुःख हुआ । तब पीछे बुढ़ापेमें उन्हें पीठमें घात (रोग) उत्पन्न हुआ ।” २ पृष्ठ ४८१ ।

" आहुसो । उन भगवान् ० ने 'दो' धम यथार्थ कहे हैं । ० । कौनसे दो ? नाम और रूप । अविद्या और भय (= आकाशमनसी) - कृष्णा । भय (= नित्यता) - दृष्टि और विमल (= उच्छेद) - दृष्टि । अहीकता (= एकारहितता), गौर अन् अवद्राप्य (= भयरहितता) । ही (= रक्षा) और अवद्रपा (= भय) । दुर्वचता और पाप (= दुष्टकी) मित्रता । सुवचनता और कल्याण (= सु) मित्रता । आपत्ति (= दोष) - कुशलता (= चतुराई), और आपत्ति व्युत्थान (= उठना) - कुशलता । समापत्ति (= ध्यान) कुशलता, और समापत्ति व्युत्थान कुशलता । धातु कुशलता, और मनमिन्नर कुशलता । आयता कुशलता, और प्रतीत्य समुत्पाद कुशलता । म्यान (= वारण) कुशलता, और अस्थान-कुशलता । आर्जन (= मोधापन) और मार्दव (= कोमलता) । क्षाति (= क्षमा) और सौख्य (= आचार युक्तता) । मागिल्य (= मयुर वचनता) और प्रति सस्तार (= वानु या धर्मज्ञा जिज्ञा पिधान) । अविहिंसा (= अहिंसा) और शौच (= मयोभावना) । मुपित मृत्तिका (= मृत्ति लोप) और असंप्रजन्य (= अविद्या) । रमृति और संप्रजन्य (= ज्ञान, विद्या) । इन्द्रिय भगुत द्वारता (= अ जितें द्विपता), और भोजनमे-अ मात्रता (भोजनम अपने ग्निे मात्रा न जानता) । इन्द्रिय गुप्त द्वारता और भोजन-मात्रता । प्रतिसंख्यान (= अर्कषा ज्ञान) बल और भावना बल । स्मृति-बल और समाधि-बल । शमय (= समाधि) और विपश्यता (= प्रज्ञा) । शमय निमित्त और विपश्यता निमित्त । प्रग्रह (= चित्त निग्रह) और अ विनेप । शील विपत्ति (= आचार-दोष), और दृष्टि विपत्ति (= सिद्धांत-दोष) । शील सम्पत्ति (= आचारसी सपूर्णता) और दृष्टि सपदा । शील-विमुक्ति (= कायिक वाचिक अनुसाराचार), और दृष्टि-विमुक्ति (स्वयंके अनुसार ज्ञान) । दृष्टि-विमुक्ति कहने हैं सम्यग्दृष्टिक निरंतर अभ्यास (= प्रधान) को । मयेग कहते हैं संवेजनीय (= उद्देगकरनेवाले) स्थानाम संविदा (= चित्तता) का कारण-पूर्वक निरंतर अभ्यास । कुशल (= उत्तम) रमार्म का सहायिता, और प्रधान (= निरंतर अभ्यास) मे अ प्रतिवानिता (= निगलमता) । विद्या (= तीरा विद्याभ्यास) से विमुक्ति (= आत्मतोसे चित्तकी विमुक्ति), और निर्वाण, आहुसो । उन भगवान् ० ने इन दो (= जोड़) धर्मोंको ठीकसे कहा है ० ।

" आहुसो । उन भगवान् ० ने यह तीन धर्म यथार्थ ही कहे हैं ० । ' कौन से तीन ? तीन अकुशल-मूल (= बुराईयोकी जड़) हैं । कौन से तीन ० ? लोभ अकुशल-मूल द्वेष अकुशल मूल, मोह अकुशल मूल । तीन कुशल-मूल हैं—अलोभ ०, अ द्वेष ० और अ मोह-अकुशलमूल । तीन दुश्चरित हैं—काय दुश्चरित, वचन-दुश्चरित और मन दुश्चरित । तीन सुचरित हैं—काय-सुचरित, वचन-सुचरित, और मन-सुचरित । तीन अकुशल (= बुरे) वितर्क—काम वितर्क, व्यापाद (= दोह) ० विहिंसा ० ।

१ अ व ' धातु अकारह हैं ' चतु, श्रोत्र, घ्राण, निह्वा, काय, मन, मय, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, धम, चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र विज्ञान घ्राण विज्ञान, निद्राविज्ञान कायविज्ञान, मनो विज्ञान । २ ' उन धातुओंकी प्रज्ञासे जाननेकी निपुणता । ३ आयतन बारह हैं चक्षु, श्रोत्र घ्राण जिह्वा, काय, मा रूप शब्द, गंध रस स्पर्श, धम । ४ दूग्रे प्रष्ट १२८ ।

तीन कुशल (= अच्छे) -वितर्क—नेकस्वम् (= निष्कामता) ०, अ-व्यापाद ०, अ-विहिंसा ० ।

तीन अकुशल संकल्प (= वितर्क) —काम ०, व्यापाद ०, विहिंसा ० ।

तीन कुशल संस्पर्श—नेकस्वम् ०, अव्यापाद ० अविहिंसा ० ।

तीन अकुशल सन्नाय—काम ०, व्यापाद ०, विहिंसा ० ।

तीन कुशल सन्नायें—नेकस्वम् ०, अव्यापाद ० अ-विहिंसा ० ।

तीन अकुशल धातु (= तर्क-वितर्क) —काम ०, व्यापाद ०, विहिंसा ० ।

तीन कुशल धातु—निष्कामता ०, अव्यापाद ०, अ-विहिंसा ० ।

दूसरे भी तीन धातु (= लोक) —कामधातु, रूप धातु अ रूप धातु ।

दूसरे भी तीन धातु (= चित्त) —हीन धातु, मध्यम धातु, प्रणीत-धातु ।

तीन तृष्णायें—काम ०, मव (= आवागमन) ०, विभव ० ।

दूसरी भी तीन तृष्णायें—काम ०, रूप ०, अ रूप ० ।

दूसरी भी तीन तृष्णायें—रूप ०, अरूप ०, निरोध ० ।

तीन सयोजन (= बधन) —सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा (= संदेह), शीलजन परामर्श ।

तीन आस्रव (= वित्तमल) —काम ०, मव ०, अविद्या ० ।

तीन भव (= आवागमन) —काम (= वातुमे) ०, रूप ०, अरूप ० ।

तीन ण्णाय (= राग) —काम ०, मव ०, ब्रह्मचर्य ० ।

तीन विध (= प्रकार) —मे सर्वोत्तम हूँ, मैं समान हूँ, मे हीन हूँ ।

तीन अध्व (= काल) —अतीत (= भूत) ०, अनागत (= भविष्य) ०, प्रत्युत्पन्न (= वर्तमान) ० ।

तीन भन्त—सत्काय ०, सत्काय समुदय (= उत्पत्ति) ०, सत्काय निरोध ० ।

तीन वेदनायें (= अनुभूति) —सुखा ०, दुःखा ०, अदुःख-असुखा ० ।

तीन दुःखता—दुःख-दुःखता, संस्कार ०, विपरिणाम ० ।

तीन राशिषा—मिथ्यात्व-नियत ०, सम्यक्त्व-नियत, अ नियत ० ।

तीन काक्षाय—अतीतकालको लेकर काक्षा=विचिकित्सा करता है, 'हाँ' ब्रूता, 'हाँ' प्रसन्न होता है । अनागत कालकोलेकर ० । अथ प्रत्युत्पन्न कालको ० ।

तीन तथागतके अरक्षणाय—आवुसो । तथागतका कायिक आचरण परिशुद्ध है, तथागतको काय-दुश्चरित नहीं है । जिसकी कि तथागत आरक्षा (= गोपा) कर—'मैं उसका कोई इसे जानने' । आवुसो ! तथागतका वाचिक आचार परिशुद्ध है ० । तथागतका मानसिक आचार परिशुद्ध है ० ।

तीन किंचन (= प्रतिबध) —राग ०, द्वेष ०, मोह ० ।

तीन अभिषा—राग ०, द्वेष ०, मोह ० ।

और भी तीन अभिषा—आहवनीय ०, गार्हपत्य ०, दक्षिण ० ।

तीन प्रकारसे रूपोंका स्पष्ट—सनिदर्शन (= रज-विज्ञान सहित दर्शन) अ प्रतिघ (= अ-पोषाकर) रूप अ निदर्शन सप्रतिघ ०, अ निदर्शन अप्रतिघ ० ।

तीन संस्कार—पुण्य-अभिर्मस्कार, अ पुण्य-अभिर्मस्कार, आनिर्जय (= आनेत्र) अभिमस्कार ।

तीन पुत्रल (=पुत्र) — नैश्य (=अमुक्त)०, अ शोध्य (=सुक्त)०, न शैश्य-न-अ शोध्य० ।
तीन स्थविर (=वृद्ध) — ज्ञाति (=जन्मसे)०, धर्म०, मम्मति म्यगिर ।

तीन पुण्य त्रियावस्तु — दानमय पुण्यत्रियावस्तु, शालमय०, भावनामय० ।

तीन दोषारोप (=घोदना) वस्तु — दोषे (=दोष) मे, सुते (दोष) से, शवा किने (दोष) से ।

तीन काम (=भोगोको) — उपपत्ति (=उत्पत्ति, प्राप्ति) — आनुसो । कुत्र प्राणी मौजूदा कामउपपत्तिगले है, यह मौजूद कामके वशवर्त्ता होते हैं, जैसेकि मनुष्य, कुत्र देवता, और कुत्र विनिपातिर (=अधमयोनिवाल), यह प्रथम काम उपपत्ति है । आनुसो । कुत्र प्राणी निर्मितकाम है, वह (स्वयं अपनेलिये) निर्माणकर कामोके वशवर्त्ता होते हैं, जमे कि निर्माण-रति-द्वय लोग, यह दूसरी काम उपपत्ति है । आनुसो ! कुत्र प्राणी पर निर्मित काम है, वह दूसरोन निर्मितकामोव वश वर्त्ता होते हैं, जमेकि पर निर्मित वशवर्त्ता देखलोग । यह तीसरी काम उपपत्ति है ।

तीन सुख उपपत्तिव — आनुसो । कुत्र प्राणी सुख उत्पन्न कर सुख पूर्ण रहते हैं, जैसेकि ब्रह्म कार्यिक द्वय लोग । यह प्रथम सुख-उपपत्ति है । आनुसो ! कुत्र प्राणी सुखमे अभिपण्ण = परिपण्ण = परिपूर्ण = परिस्पृष्ट । यह कभी कभी उन्नत (=चित्तोत्थासने निकल घास्य) कहते हैं — 'गहो सुख !' अहो सुख ॥' जमेकि आभास्वर देव० । आनुसो । कुत्र प्राणी सुखमे० परिपूर्ण० है, यह उत्तम (सुखम) स्तुष्ट हो चित्त सुखमे अनुभूत करत है, जमे शुभ दृष्ट्य द्वय लोग । यह तीसरी सुख उपपत्ति है ।

तीन प्रचार्ये — शैश्य (=अमुक्त पुत्रवर्त्ता) प्रचा, अ शैश्य०, न शैश्य न-अशैश्य प्रचा ।

और भी तीन प्रचार्य — विन्ता-मयी प्रचा, धृतमयी०, भावनामयी० ।

तीन आयुध — धृत (=पट)०, प्रविरक (=विरेक)०, प्रचाविरेक० ।

तीन इन्द्रिया — अन् आजात-आज्ञान्यायि (=अज्ञानसे जानूंगा) इन्द्रिय, आज्ञा०, आना तारी (=अर्हन् ज्ञा)० ।

तीन वतु (=नेत्र) — मासवतु, दिव्यवतु, प्रज्ञावतु ।

तीन शिक्षाये — अधिशील (=शीलविषयक) शिक्षा, अधि चित्त (=चित्तविषयक)०, अधि प्रच (=प्रज्ञाविषयक)० ।

तीन भावनाये — काय-भावना, चित्त भावना, प्रचा भावना ।

तीन अनुत्तरीय (=उत्तम, श्रेष्ठ) — दर्शन (=विषयवत् साक्षात्कार) अनुत्तरीय, प्रतिपद् (=मार्ग)०, विमुक्ति (=अर्हन्, निर्वाण) अनुत्तरीय ।

तीन समाधि — स वितर्क भविचार समाधि, अवितर्क-विचार माध समाधि, अवितर भविचार समाधि ।

और भी तीन समाधि — शून्यता समाधि, अ निमित्त०, अ प्रणिहित समाधि ।

तीन शोचेय (=पवित्रता) — काय०, वाक्०, मन शोचेय ।

तीन मोनेय (=मोन) — काय०, वाक्०, मन-मोनेय ।

तीन कौशल्य — आप०, उपाय (=विनास)०, उपाय कौशल्य ।

तीन मद् — आरोग्य मद्, यौवन मद्, जाति-मद् ।

तीन आधिपत्य (स्वामित्व) — आत्माधिपत्य, लोक०, धर्म० ।

तीन कथावस्तु (= वया विषय) — अतीत कालकोले कथा कहे, 'अतीतकाल ऐसा था' ।

अनागत कालको ले कथा कहे — 'अनागतकाल ऐसा होगा' । अबके प्रत्युत्पन्नकाल

कोले कथा कहे — 'इम समय प्रत्युत्पन्न काल ऐसा है' ।

तीन विद्या — पूर्व-निवास-अनुस्मृतिज्ञान-विद्या (= पूर्वजन्म-स्मरण), प्राणियोंके

च्युति (= मृत्यु) -उत्पाद (= जन्म)का ज्ञान०, आस्रवोंके क्षयका ज्ञान० ।

तीन विहार — दिव्य-विहार, ब्रह्म-विहार, आर्य-विहार ।

तीन प्रातिहार्य (= समत्कार) - ऋद्धि०, आदेशना०, अनुशासनी-प्रातिहार्य । यह आबुसो !

उन भगवान् ।

"आबुसो ! उन भगवान् ने (यह) चार धर्म यथार्थ कहे हैं० । कौनसे चार ?

चार० स्मृति प्रस्थान — आबुसो । भिक्षु कायामें० कायानुपश्यी विहरता है । वेदनाओंमें० ।

लोकमें० । धर्ममें० धर्मानुपश्यी० ।

चार सम्यक् प्रधान — भिक्षु अनुत्पन्न पापक (= दुःख) = अकुशल धर्मोंकी अनुत्पत्तिके लिये

रथि उत्पन्न करता है, परिश्रम करता है, प्रयत्न करता है, चित्तको निग्रह = प्रधान

करता है । (२) उत्पन्न पापक = अकुशल धर्मोंके विनाशके लिये० । अनुत्पन्न

कुशल धर्मोंकी उत्पत्तिके लिये० । उत्पन्न कुशल धर्मोंकी स्थिति, अ विनाश, वृद्धि

विपुलता, भावनासे पूर्ति करनेके लिये० ।

चार ऋद्धिपाद — आबुसो । भिक्षु (१) छन्द (= रथिमें उत्पन्न) - समाधि (के) - प्रधान संस्कार

से युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है । (२) चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कारसे० ।

(३) धीर्य (= प्रयत्न) समाधि-प्रधान-संस्कार० । (४) विमर्श-समाधि प्रधान

संस्कार० ।

चार ध्यान — आबुसो ! भिक्षु (१) प्रथमध्यानको प्राप्त हो विहरता है । (२) द्वितीय-

ध्यान० । (३) तृतीय ध्यान० । (४) चतुर्थ-ध्यान० ।

चार समाधि भावना — (१) आबुसो । (ऐसी) समाधि भावना है, जो भावित होनेपर

वृद्धि-प्राप्त होनेपर, इसी जन्ममें सुख-विहारके लिये होती है । (२) आबुसो !

(ऐसी) समाधि भावना है, जो भावित होनेपर, वृद्धि-प्राप्त होनेपर, ज्ञान-दर्शन

(= साक्षात्कार) के लाभके लिये होती है । (३) आबुसो ! स्मृति, सम्प्रजननके

लिये होती है । (४) आस्रवोंके क्षयके लिये होती है । आबुसो ! कौनसी समाधि

भावना है, जो भावित होनेपर, बहुली कृत (= वृद्धि-प्राप्त) होनेपर इसी जन्ममें सुख-

विहारके लिये होती है ? आबुसो ! भिक्षु प्रथम ध्यान०, द्वितीय ध्यान०,

तृतीय ध्यान०, चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । आबुसो ! यह समाधि-

भावना भावित होनेपर० । आबुसो ! कौनसी जो भावित होनेपर० ज्ञान दर्शनके

लाभके लिये होती है ? आबुसो ! भिक्षु आलोक (= प्रकाश) - मज्ञा (= ज्ञान)

भामें करता है, दिन-सजाका अधिष्ठान (= दृढ विचार) करता है — 'जैसे दिन वैसी

रात, जैसी रात वैसा दिन । इस प्रकार खुले, सन्धन-रहित, मनसे प्रभा सहित चित्तकी भावना करता है । आबुसो ! यह समाधि भावना आवित होनेपर । आबुम ! कौनमी ०जो ०स्मृति, संप्रजन्यके लिये होती है ? आबुसो ! भिषुको विदित (= ज्ञानमें आई) वेदना (= अनुभव) उत्पन्न होती है, विदित (ही) ठहरती है, विदित (ही) अस्तको प्राप्त होती है । विदित सत्ता उत्पन्न होती है, ठहरती ०, अस्त होती है । विदित चित्त उत्पन्न ०, ठहरते ०, अस्त होते हैं । आबुसो ! यह समाधि भावना ० स्मृति संप्रजन्यके लिये होती है । आबुसो ! कौनमी है ०जो आकाश-क्षयके लिये होती है ? आबुसो ! भिषु पांच उपादान स्वर्णोंम उदय (= उत्पत्ति) व्यय (= विनाश)-अनुपश्यी (= देखनेवाला) हो विहगता है— ' ऐसा रूप है, ऐसा रूपका ममुदय (= उत्पत्ति), ऐसा रूपका अस्तगमन (= अस्त होना), ऐसी येदना है ०, ऐसी सत्ता ०, असस्कार ०, विगान ० । यह आबुसो ० ।

चार अप्रामाण्य (= अमीम)—यहा आबुसो ! भिषु (१) मैत्री युक्त चित्तसे ० विहरता है ० । (२) कहगा-युक्त ० । (३) सुदिता-युक्त ० । (४) उपेक्षा-युक्त ० ।

चार आरूप्य (= रूप रहित ता)—आबुसो ! (१) रूप सत्ताओंके मवया अतिक्रमणसे, प्रतिघ (= प्रतिहिता) सत्ताके अस्त होनेसे, नानात्व (= तानापा) सत्ताके मनमें न करनेसे, ' आकाश अनन्त है ' इस आकाश-भाव त्व (= आकाशकी अनन्तता)-आयतन (= स्थान)को प्राप्त हो विहार करता है । आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे ' विज्ञान अनन्त है ' इस, विज्ञान आनन्त्य आयतनको प्राप्त हो, विहार करता है । विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे, ' कुछ नहीं (= नदि किंचि) ' इस आकिंचन्य आयतनको प्राप्त हो, विहार करता है । आकिंचन्यायतनके सर्वथा अतिक्रमण करनेसे, नेवसत्ता (= न होश ही है)-न असत्ता-आयतनको प्राप्त हो विहार करता है ।

चार अपाध्वन (= अलवन)—आबुसो ! भिषु (१) सत्त्वान (= जान)कर किमीको सेवा करता है । (२) सत्त्वानकर किमी (= एक)को स्वीकार करता है । (३) सत्त्वानकर किमीको परिवर्जन (= अस्वीकार) करता है । (४) सत्त्वानकर किमीको हगता है (= विनोदति) ।

चार आर्य वश—आबुसो ! भिषु (१) जैसे जैसे चीवरसे सन्तुष्ट होता है । जैसे जैसे चीवरसे सन्तुष्ट होनेका प्रशमक होता है । चीवरके लिये अनुचित अन्वेषण नहीं करता । चीवरको न पाकर दुःखित नहीं होता, चीवरको पाकर अग्रामी, अलिप्त (= अमूर्ति) अनासक्त, दुष्परिणाम-दर्शी = निमग्न प्रज्ञावाला हो, परिभोग (= उपभोग) करता है । (अपो) उस जिस तिम चीवरके सन्तोषसे, अपनेको बड़ा नहीं मानता, दूसरेको नीच नहीं समझता । जो कि वह दुःख, निराश्रय, संप्रदान (= ज्ञान नेवाला) प्रतिस्मृत (= याद रखनेवाला), होता है । यह कहा जाता है, आबुसो ।

भिक्षु पुराने अग्रण्य (= सर्वोत्तम) आर्य वंशर्म स्थित है । (२) और फिर आवुसो ! भिक्षु जैसे तेसे पिंडपात (= भिक्षा) से मन्तुष्ट होता है० । (३) ० जेसे तेसे शयना-मन (= निवास) से० । (४) और फिर आवुसो ! प्रहाण (= त्याग) में रमण कानेवाला, प्रहाण रत होता है । भावनाराम = भावना रत होता है । उस प्रहाणा-रामतासे प्रहाण रतिमे, भावना रामतासे भावना रतिसे न अपनेको बड़ा मानता है, न दूसरेको नीच मानता है० ।

चार प्रधान (अभ्यास, योग)—संवर (= समय)-प्रधान, प्रहाण०, भावना०, अनुरक्षण प्रधान । आवुसो ! संवर-प्रधान कौन है ? आवुसो ! भिक्षु चक्षु (= आख) से रूप देख निमित्त (= रंग आकार आदि)-ग्राही नहीं होता, अनुव्यंजन ग्राही नहीं होता । जिसमें कि चक्षु-इन्द्रिय अधिकरणको असृत (अ-रक्षित) रख विहरते समय अभिध्या (= लोभ), दौमनस्य पापक, अ कुशल धर्म उसे मलिन न करें, इसके लिये संवर (संयम, रक्षा) के लिये यत्न करता है । चक्षु इन्द्रियकी रक्षा करता है । चक्षु इन्द्रियमें लयम शील होता है । श्रोत्रसे शब्द सुनकर० । घ्राणसे गंध सूँघकर० । जिह्वासे रस चपकर० । काय (= त्वक्-)से स्पर्श छुकर० । मनसे धर्मको जानकर० । यह कहा जाता है, आवुसो ! संवर-प्रधान । क्या है, आवुसो ! प्रहाण-प्रधान ? आवुसो ! भिक्षु उत्पन्न काम वितर्कको नहीं पमन्द करता, अरुजीकार (= प्रहाण) कता है, हटाता है, अन्त करता है, नाशको पहुँचाता है । उत्पन्न व्यापा (= द्रोह)-वितर्कको० । उत्पन्न विहिंसा-वितर्कको० । तत्र तत्र उत्पन्न हुये, पापक अकुशल धर्माको० । आवुसो ! यह प्रहाण-प्रधान कहा जाता है । क्या है आवुसो ! भावना-प्रधान ? आवुसो ! भिक्षु विषेक-निश्चित (= आश्रित), विराग निश्चित निरोध-निश्चित व्ययवर्ग (= त्याग)-परिणामराले स्मृति-संशोध्यगकी भावना कता है । धर्मत्रिचय-संशोध्यगकी भावना कता है । ० धीर्य-संशोध्यग० । ० प्रीति म० । ० प्रशब्धि-संशोध्यग० । ० समाधि संशोध्यग० । ० उपेक्षा संशोध्यग० । यह कहा जाता है, आवुसो ! भावना-प्रधान । क्या है, आवुसो ! अनुरक्षण प्रधान ? आवुसो ! भिक्षु उत्पन्न हुये अस्मिक संज्ञा, पुलक संज्ञा, विनीलक-संज्ञा, विच्छिद्रक-संज्ञा, उद्धूमातर संज्ञा (रूपी) उत्तम (= भद्रक) समाधि निमित्तकी रक्षा करता है । यह आवुसो ! अनुरक्षणा-प्रधान है ।

चार ज्ञान—धर्म-विषयक-ज्ञान, अन्वय ज्ञान, परिच्छेद ज्ञान, समति ज्ञान ।

और भी चार ज्ञान—दुःख ज्ञान, दुःख समुदय ज्ञान, दुःख निरोध ज्ञान, दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद् का ज्ञान ।

चार स्रोत आपत्तिके अंग—सत्पुरुष सेवन, मद्धर्म श्रवण, योनिज्ञ मनसिकार (= कारण-पूर्वक विचार) । धमानु र्म-प्रतिपत्ति ।

चार स्रोत आपन्नके अंग—आवुसो ! आर्य भावक (१) बुद्धम अत्यंत प्रसाद

(= धृष्टा) से प्रसन्न होता है—बह भगवान् अर्हन् १० । (२) धर्ममें अत्यन्त प्रसादसे प्रसन्न होता है० । (३) संघमे० । (४) अ-पद-अडिद्र, अ-शरल = अ-फलमय, योग्य = विन प्रतीक्षित अपराश्रय (= अनिदित), समाधि-गामी आर्य कर्मयोग (= कांत) शीघ्रमे युक्त होता है ।

चार श्रामण्य (= भिक्षुपाने) फल—छोतभाषिचि फल, महदागामि फल, अगामामि-फल, अर्हत्त्व-फल ।

चार धातु (= महाभूत)—पृथिवी धातु, आप धातु, तेज धातु, वायु धातु ।

चार आहार—(१) औदारिक (= स्थूल) या मृत्सम करनेकार आहार । (२) म्यश । (३) मन सचेतना । (४) विनान ।

चार विनाय (= गता, जोर)-न्यसिवां—(१) भाषुमो ! रूप प्राप्त कर रहते, रूपम रमण करते, रूपम प्रतिष्ठित हो, विगन स्थित होता है, न-नी (= तृष्णा) के सेवनसे वृद्धि = विरुद्धताको प्राप्त होता है । (२) वेदना प्राप्तकर० । (३) सत्ता प्राप्तकर० । (४) संस्कार प्राप्तकर० ।

चार अगति-गमन—उद्ग (= रुधिर) गति जाता है, द्वेष गति०, मोह-गति०, भय गति० ।

चार उष्णा वत्पाद (= उत्पत्ति)—(१) आनुषो । भिक्षुको बीवरके लिये तृष्णा उत्पन्न होती है । (२) ० पिउपातके लिये० । (३) ० शयनासन (= निवास)० । (४) अमुरु जन्म-अजन्म (= भवासव)के लिये० ।

चार प्रतिपद् (= मार्ग)—(१) दु खशाली प्रतिपद् और देरसे ज्ञान । (२) दु गशाली प्रतिपद् और क्षिप्र (= जल्दी) ज्ञान । (३) सुखशाली (= सहल) प्रतिपद् और देरसे ज्ञान । (४) सुखशाली प्रतिपद् और जल्दी ज्ञान ।

और भा चार प्रतिपद्—अ इमा प्रतिपद् । क्षमाप्रतिपद् । दमकी प्रतिपद् । शमकी प्रतिपद् ।

चार धमप—अन् अभिव्या-धमप । अ व्यापाठ० । सम्पद् स्मृति० । मरुपद् समाधि० ।

चार धर्म समादान—(१) आनुषो । वंसा धर्म समादान (= स्वीकार), जो वर्तमानमें भी दु ख मय, भविष्यमें भी दु ख विपाकमय (२)० वर्तमानम दु खमय, भविष्यमें सुख विपाकी । (३)० वर्तमानमें सुख मय, भविष्यमें दु ख विपाकी । (४)० वर्तमानमें सुख मय, और भविष्यमें सुख विपाकी ।

चार धम-स्वध—शील स्वध (= आचार समूह) समाधि स्वध । प्रज्ञा स्वध । विमुक्ति-स्वध ।

चार बल—धीर्य-बल । स्मृतिबल । समाधि-बल । प्रज्ञाबल ।

चार अधिष्ठान (= मरुलप)—प्रज्ञा० । सम्प० । त्याग० । उपशम० ।

चार प्रश्न व्याकरण (= सवालका जवाब)—प्रकाश (= है यानहीं एकम) व्याकरण करने

चार आचार्य व्यवहार—मृषावाद (= झूठ), मिथुन वचन (= झुगली), संप्रलाप (= पक्षवाद), परप-वचन ।

चार आचार्य व्यवहार—मृषा-वाद विरतता, मिथुन वचन विरतता, संप्रलाप विरतता, परप-वचन विरतता ।

चार आचार्य व्यवहार—अदृष्टमें दृष्ट वानी बनना, अश्रुनमें श्रुत वादिता, अस्मृतमें स्मृतवादिता, अविज्ञातमें विज्ञात-वादिता ।

और भी चार आचार्य व्यवहार—दृष्टमें अदृष्ट-वादिता, श्रुतमें अश्रुत वादिता । स्मृतमें अस्मृत-वादिता, विज्ञातमें अविज्ञात वादिता ।

और भी चार आचार्य व्यवहार—दृष्टमें दृष्टवादिता, श्रुतमें श्रुत-वादिता, स्मृतमें स्मृत वादिता, विज्ञातमें विज्ञात-वादिता ।

चार पुत्रल (= पुरष)—(१) आहुसो ! कोई कोई पुत्रल आत्म तप, अपनेको संताप देनेमें लगा होता है । (२) कोई कोई पुत्रल परस्तप, पर (= दूसरे)को संताप देनेमें लगा होता है । (३) आत्म तप भी होता है, परस्तप, भी । (४) न आत्म-तप, न पर-तप, वह अपारस्तप अपरस्तप हो इसी जन्ममें शोकादित, सुविता, शीतल-भूत, सुपानुभवी महाभूत आत्मावे साथ विहार करता है ।

और भी चार पुत्रल—(१) आहुसो ! कोई कोई पुत्रल आत्म-हितमें लगा होता है, पाहितमें नहीं । (२) परहितमें लगा होता है, आत्महितमें नहीं । (३) न आत्म हितमें लगा होता है, न परहितमें । (४) आत्महितमें भी लगा होता है, पर हितमें भी ।

और भी चार पुत्रल—(१) तम तम-परायण । (२) तम ज्योति परायण । (३) ज्योति तम परायण । (४) ज्योति ज्योति-परायण ।

और भी चार पुत्रल—(१) अमण अचल । (२) अमण पण (= १० कमल) । (३) अमण पुढरीक (= श्वेतकमल) । (४) अमणोमें अमण मुकुमार ।

यह आहुसो ! उन भगवान् ।

“ आहुसो ! उन भगवान् ने पांच धर्म यथार्थ कहे हैं । कौनसे पांच ?—

पाच स्कन्ध—रूप, वेदना, सत्ता, संस्कार, विज्ञान-स्कन्ध ।

पाच उपादान स्कन्ध—रूप उपादान स्कन्ध, वेदना, सत्ता, संस्कार, विज्ञान-उपादान स्कन्ध ।

पाच काम गुण—(१) चक्षुसे विज्ञेय दृष्ट=कान्त=मनाप, प्रिय-रूप, काम सहित=रंजनीय (= चित्तको रंजन करनेवाले) रूप । (२) श्रोत विज्ञेय शब्द । (३) घ्राण-विज्ञेय गन्ध । (४) जिह्वा विज्ञेय रस । (५) काम विज्ञेय स्पर्श ।

पाच गति—निरय (= नई), तिर्यक् (= षण् पक्षों आदि) योनि, प्रेत्य विषय (= भूत प्रेत आदि) । मनुष्य । देव ।

पाच मात्सर्य (= हसद) = आवासमात्सर्य, कुल ०, राम ०, वर्ण ०, धर्म ० ।

पाच नीवरण—कामच्छन्द (= काम राग) ०, व्यापाद ०, स्त्यान मृद ० । औदत्य-कौ-
हृत्य ०, विचिकित्सा ० ।

पाच अवर 'भागीय संयोजन—सत्काय दृष्टि, विचिकित्सा, शील व्रत परामर्श, कामच्छन्द,
व्यापाद ।

पाच ऊर्ध्व-भागीय संयोजन—रूप राग, अरूप राग, मान, औदत्य, अधिष्ठा ।

पाच 'शिक्षापद—प्राणातिपात (= प्राण-बध) विरति, अदत्तादान विरति, काम मिथ्याचार-
विरति, मृषावाद विरति, मुरा-मेरय मद्य प्रमादस्थान-विरति ।

पाच अभव्य (= अयोग्य) स्थान—(१) आवुसो ! क्षीणाक्षत्र (= अर्हत्) भिक्षु जानकर
प्राण हिंसा करनेके अयोग्य है । (२) अदत्तादान (= चोरी) = स्तेय करनेके
अयोग्य है । (३) ० मैथुन धर्म सेवन करनेके अयोग्य है । (४) ० जानकर मृषा
वाद (= झूठ बोलने) के ० । (५) ० सन्निधि-कारक हो (= जमाकर) कामोंको
भोगकरनेके ० । जैसे कि पहिले गृहस्थ होते वक्त था ।

पाच व्यसन—ज्ञातिव्यसन, भोग ०, रोग ०, शील ०, दृष्टि ० । आवुसो ! प्राणी ज्ञातिव्यसनके
कारण या भोगव्यसनके कारण, या रोगव्यसनके कारण, काया छोड़ मरनेके बाद
अपाय दुर्गति विनिपात, निरय (= नर्क) को प्राप्त होते हैं । आवुसो ! शील-
व्यसनके कारण या दृष्टिव्यसनके कारण प्राणी ० ।

पाच सम्पद (= योग)—ज्ञाति-सम्पद, भोग ०, आरोग्य ०, शील ०, दृष्टि ० । आवुसो ! प्राणी
ज्ञाति सम्पदके कारण ०, भोग सम्पद ०, आरोग्य सम्पदके कारण काया छोड़ मरनेके बाद
सुगति ' स्वर्गलोकमें नहीं उत्पन्न होते । आवुसो ! शीलसम्पदके कारण या दृष्टिसम्पदके
कारण प्राणी ० ।

पाच आपत्तिव (= दुष्परिणाम) है, दु शील (शुद्ध) को शील-विपत्ति (= आचार-दोष) के
कारण —(१) आवुसो ! शील-विपन्न = दु शील (= दुराचारी) प्रमादसे बड़ी भोग
हानि को प्राप्त होता है, शील विपन्न दु शीलके लिये यह प्रथम दुष्परिणाम है । (२)
और फिर आवुसो ! शील-विपन्न, = दु शीलके लिये भुरे निन्दा वाक्य उत्पन्न होते हैं,
यह दूसरा दुष्परिणाम है । (३) और फिर आवुसो ! शील विपन्न = दु शील, चाहे
क्षत्रिय-परिपद्, चाहे ब्राह्मण परिपद्, चाहे गृहपति परिपद्, चाहे श्रमण-परिपद्, चाहे
जिस परिपद् (= ममा) में जाता है, अ विशारद होकर, मूक होकर, जाता है ।
यह तीसरा ० । (४) और फिर आवुसो ! शील-विपन्न = दु शील, संमूढ (= मोहप्राप्त)
होकर काल फरता है, यह चौथा ० । (५) और फिर आवुसो ! शील विपन्न काया
छोड़ मरनेके बाद, अपाय = दुर्गति = विनिपात, निरय (= नर्क) में उत्पन्न होता है,
यह पाचवां ० ।

पांच गुण (= आनुशैल्य) है, शीलवान्के शील-सम्पदासे—[१] आवुसो ! शील-सम्पन्न शीलवान्

अप्रमादके कारण, बड़ी भोग रातिकी प्राप्त होता है; शीलमानकी शील-संपत्तिसे यह प्रथम गुण है । [२] ०मुद्र कीर्ति शब्द उत्पन्न होते हैं० । [३] ०जिम जिम परिपक्वमें जाता है, विशारद होकर, अ-मूक होकर जाता है० । [४] ०य संमूढ हो काल करता है० । [५] ०काया छोड़ मरनेके बाद सुगति=स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है० ।

पांच घमोंको अपनेमें स्थापितकर आवुसो । आरोपी [= दूसरपर दोषारोप करने वाला] मिथुको दूसरे पर आरोप करना चाहिये—[१] कालसे कहूंगा, अकालसे नहीं । [२] भूल [= यथार्थ]से कहूंगा, अभूलसे नहीं । [३] मधुरसे कहूंगा, कटुमें नहीं । [४] अर्थ सहित [= स प्रयोजन]से कहूंगा, अनर्थ सहितसे नहीं । [५] मेरा भावसे कहूंगा, द्रोह चित्तसे नहीं । ।

पांच प्रधानोंका [= प्रधानके] अंग—[१] यहा आवुसो । मिथु अक्षालु होता है, तथागतकी बोधि (=पामज्ञान) पर अक्षा रखता है—पेसे यह भगवान् अर्हत्, सम्यक् सज्ज० । आवाधा (=रोग) रहित (रोग-) आतर रहित होता है । न बहुत शीतल, न बहुत उष्ण, सम-विषाकवाली, प्रधान (=योगाभ्यास)के योग्य ग्रहणी (=पाचनशक्ति)से युक्त होता है । [२] शास्ताके पास, या शिक्षाके पास, या स ब्रह्मचारियोंके पास अपनेकी यथाभूत (=जैसा है वैसा) प्रकट कर, अंगठ=अ मायावी होता है । [३] अकुशल धमाके विनाशके लिये, कुशल धमाकी प्राप्तिके लिये, आरम्भ बौर्य (यत्न शील) हो विहरता है, कुशल धमामें न्याम बान्=हृद पराक्रम=पुरा (कथेमें) न फँकनेवाला (होता है) । [४] निर्वधिक (=अन्तस्त्वन तक पहुँचने वाली), सम्यक् बुद्ध क्षयकी ओर ले जानेवाली, उदय अन्त गामिनी, आर्य प्रज्ञासे युक्त, प्रज्ञावान् होता है ।

छ सचेतना काय—रूप-सचेतना, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्पर्श०, धर्म० ।

छ तृज्जा-काय—रूप तृज्जा, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्पर्श०, धर्म तृणी ।

छ अ गौरव—(१) यहा आवुसो । मिथु शास्ताम अ गौरव (=सत्कार रहित), अ प्रतिश्रव (=आश्रय-रहित) हो विहरता है । (२) घमम अगौरव० । (३) संघमें अगौरव० । (४) शिक्षामें अगौरव० । (५) अप्रमादम अ गौरव० । (६) स्वागत (=प्रति संस्कार)में अ गौरव० ।

पांच शुद्धावास (=देवलोके विशेष) —अविम अतर्प्य (=अतर्प), सुहस्म (=सुदृढ़), सुदस्या (=सुदर्शी), अकनिष्ट ।

पांच अनागामी—अन्तरापरिनिर्वायी, उपहत्य-परिनिर्वायी, असंस्कार०, स संस्कार०, ऊर्ध्व-स्रोत-अकनिष्ठ-गामी ।

पांच चेतोविल (=चित्तके कोने) —(१) आवुसो ! मिथु शास्ता (=धर्माचार्य)म काक्षा =विचिकित्सा (संदेह) करता है, (=संदेह)-मुक्त नहीं होता, प्रसन्न नहीं होता ।

उसका चित्त उद्योगके लिये, अनुयोगके किये, सातत्य(=निरन्तर लगन)के लिये प्रधानके लिये नहीं झुकता, जो यह इसका चित्त० नहीं झुकता, यह प्रथम चेतो-खिल (चित्त-कील) है । (२) और फिर आवुसो ! भिक्षु धर्ममें काक्षा=विचित्रता करता है० । (३) ०सर्वमें काक्षा=विचिकित्सा करता है० । (५) सप्रव्यचारियोंमें दुष्ट-चित्त, असन्तुष्ट मन, फील समान, कुपित होता है, जो वह आवुसो ! भिक्षु सप्रव्यचारियोंमें ०कुपित होता है, (इसलिये) उसका चित्त ०प्रधानके लिये नहीं झुकता, यह पाँचवाँ चेतो खिल है ।

पाच चित्त विनिग्रन्ध—(१) आवुसो ! भिक्षु कामो (=कामवासनाओ)में अवीत-राग अ-वीत छन्द अविगत-प्रेम अविगत-पिपासा, अविगत परिदाह अविगत-तृष्णा (=तृष्णा-रहित नहीं) होता, उसका चित्त ०प्रधानके लिये नहीं झुकता । जो इसका चित्त० नहीं झुकता, यह प्रथम चित्त विनिग्रन्ध है । (२) और आवुसो ! कायामें ०अविगत-तृष्णा होता ० । (३) रूपमें अ-वीत-राग० होता है० । (४) और फिर आवुसो ! भिक्षु यथेच्छ पेटभर खाकर, शयना-सुग, स्पर्श-सुग, सृद्ध (=आलस्य) सुग छेते विहरता है० । (५) और फिर आवुसो ! भिक्षु किसी एक देव-निकाय (=देव लोक)को इच्छासे ब्रह्मचर्य पालन करता है—‘इस शील, व्रत, तप, ब्रह्मचर्यसे मैं (भगुरु) देव होऊँगा’ । जो आवुसो ! यह भिक्षु किसी एक देव निकायको इच्छासे ब्रह्मचर्य-पालन करता है०, उसका चित्त ०प्रधानके लिये नहीं झुकता, ०, यह पाचवाँ चित्त-विनिग्रन्ध है ।

पाच इन्द्रिय—चक्षु-इन्द्रिय, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काया (=त्वक्)० ।

और भी पाच इन्द्रिय—मुख इन्द्रिय, दुःख०, सोमनस्य०, दौर्भनस्य०, उपेक्षा० ।

और भी पाच इन्द्रिय—अद्वा इन्द्रिय, वीर्य०, स्मृति०, समाधि, प्रज्ञा० ।

पाच नि सरणीय धातु—(१) आवुसो ! भिक्षुको काममें मन करते, काममें चित्त नहीं दौड़ता, प्रसन्न नहीं होता, स्थित नहीं होता, विमुक्त नहीं होता । किन्तु, नैष्काम्यको मनमें करते चित्त दौड़ता, प्रसन्न होता, स्थित होता, विमुक्त होता है । उसका यह चित्त सुगत, सुभाषित, सु उत्थित, सु विमुक्त, कामोसे विमुक्त होता है, और कामोके कारण जो आसव, विघात, परिदाह (=जलन) उत्पन्न होते हैं, उनसे वह मुक्त है, उस वेदनाको वह नहीं छेल्ता, यह कामोको नि सरण कहा गया है । (२) और फिर आवुसो ! भिक्षुको व्यापाद (=द्रोह) मनमें करते व्यापादमें चित्त नहीं दौड़ता० ; किन्तु अव्यापाद (=अद्रोह)को मनमें करते०, यह व्यापादका निस्सरण कहा गया है । (३) ०भिक्षुको विहिंसा (=हिंसा) मनमें करते०, किन्तु, अ-विहिंसाको मनमें करते०, यह विहिंसा निस्सरण कहा गया है । (४) ०रूपोंको मनमें करते०, किन्तु, अ रूपको मनमें करते०, यह रूपोका निस्सरण कहा गया है । (५) और फिर आवुसो ! भिक्षुको सत्काय भागमें करते०, किन्तु, सत्काय-निरोधको मनमें करते० ; यह सत्कायका निस्सरण कहा गया है ।

पांच विमुक्ति आयतन—(१) आहुतो । मिथुको शास्ता (=गुरु) वा दूसरा कोई पूज्य (=गुरु स्थानीय) स ग्रहचारी धर्म उपदेश करता है, जेमे जेसे आहुतो ! मिथुको शास्ता वा दूसरा कोई गुरु-स्थानीय स-ग्रहचारी धर्म उपदेश करता है, वैसे वैसे वह उन धर्ममें, यथ समग्रता है, धर्म समग्रता है, अर्थ सवदी (=मत्त्व समग्रता), धर्म-प्रतिसवेदी हो, उसको प्रमोद (=प्रमोद) होता है, प्रमुदित (पुरुष) को प्रीति पेश होती है, प्रीति मानूको काया प्रवन्ध (=ग्विध) होती है, प्रवन्ध काय (पुरुष) सुनको अनुभव करना है, सुनको चित्त गकाय होता है, यह प्रथम विमुक्तयायतन है । (२) और फिर आहुतो ! मिथुको न शास्ता धर्म उपदेश करता है, न दूसरा कोई गुरु-स्थानीय सग्रहचारी, बल्कि यथा-श्रुत (=सुनेके अनुसार), यथा पथास (=धम शास्त्रके अनुसार) (जैसे जैसे) दूसरोंको धर्म उपदेश करता है० । (३)० बल्कि यथाश्रुत, यथा पथास धमको विस्तारसे स्वाध्याय करता है० । (४)० बल्कि यथाश्रुत यथा-पथास धमको चषते अनु-वितर्क करता है, अनुविचार करता है, माने मोचता है० । (५)० बल्कि उसको कोई एक समाधि निमित्त, सुपृहीत=सुमनसीटन=स प्रचारित (=अच्छी तरह समझा), (और) प्रपासे सु प्रतिनिदि (=तहतक जाना) होता है, जेसे जेमे आहुतो ! मिथुको कोई एक समाधि-निमित्त० ।

पांच विमुक्ति-परिपाचनीयसंज्ञा—अनित्य संज्ञा, अनित्यधर्म दुःख संज्ञा, दुःख अनित्य संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, विराग-संज्ञा ।

यह आहुतो ! उन भगवान्०ने० ।

“आहुतो ! उन भगवान्०ने० छ घट यार्थ कहे हैं० । कोनसे छ ?

छ अ-यास (=तत्तीर में) आयतन—चक्षु आयतन, श्रोत्र०, प्राण०, जिह्वा०, काय०, भा आयतन ।

छ वाय आयतन—रूप आयतन, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्पर्श० (=स्पर्श)०, धर्म-आयतन ।

छ विज्ञा काय (=समुद्राय)—चक्षु विज्ञा, श्रोत्र०, प्राण०, जिह्वा०, काय०, मनो विज्ञा ।

छ स्पर्श-काय—चक्षु सस्पर्श, श्रोत्र०, प्राण०, जिह्वा०, काय०, मन सस्पर्श ।

छ वेदना काय—चक्षु सस्पर्श वदना, श्रोत्र सस्पर्शज०, प्राणसस्पर्शज०, जिह्वासस्पर्शज०, काय सस्पर्शज, मन सस्पर्शज-वेदना ।

छ संज्ञा काय—रूप संज्ञा, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्पर्श० धर्म०, ।

छ गौरव—(१)० शास्त्रामें सगौरव, स प्रतिश्रुति, हो बिहस्ता है, (२) धममें ०, (३) संघ में ०, (४) शिक्षामें ०, (५) अप्रमादमें ०, (६) प्रतिमस्तारम ० ।

छ सौमनस्य उप विचार—(१) चक्षुमें रूप देयका सोमनस्य (=प्रमदता) स्थानीय रूपाका उपविचार (=विचार) करता है । (२) श्रोत्रमें शब्द सुनकर ० । (३) प्राणसे गन्ध

सूचक ० । (४) जिह्वासे रस चक्षुः ० । (५) कायासे स्पर्शव्य छुः कर ० । (६) मन से धर्म जानकर ० ।

■ दोर्मनस्य उप विचार—(१) चक्षुसे रूप देखकर दोर्मनस्य (=अप्रसन्नता) स्थानीय रूपो का उपविचार करता है । (२) श्रोत्रसे शब्द ० । (३) घ्राणसे गन्ध ० । (४) जिह्वा से रस ० । (५) कायासे स्पर्शव्य छुः कर ० । (६) मनसे धर्म ० ।

■ उपक्षा उपविचार—(१) चक्षुसे रूपको देखकर उपेक्षा स्थानीय रूपोका उपविचार करता है । (२) श्रोत्रसे शब्द ० । (३) घ्राणसे गन्ध ० । (४) जिह्वासे रस ० । (५) काया से स्पर्शव्या ० । (६) मनसे धर्म ० ।

■ साराणीय धर्म—(१) यहा आबुसो ! भिक्षुको सप्रहचारियोंमें गुप्त या प्रकट मेघ्रीभाव युक्त कायिक कर्म उपस्थित होता है, यह भी धर्म साराणीय=प्रियकरण=गुरुकरण है, संग्रह, अ-विवाद, एकताकेलिये है । (२) और फिर आबुसो ! भिक्षुको ० मैत्री-भाव युक्त वाचिक कर्म उपस्थित होता है ० । (३) ० मैत्रीभाव-युक्त मानस कर्म ० । (४) भिक्षुके जो धार्मिक धर्म लब्ध लाभ हैं—अन्तत पात्रमे सुपढने मात्रभी, उस प्रकारके लाभोको घाटकर भोगनेवाला होता है, शीलवान् स ब्रह्मचारियो सहित भोगनेवाला होता है, यह भी ० । (५) ० जो अरुड=अ-उद्भिद्, अ-शबल=अ-कर्मप, उधित (=भुजिस्स), विज्ञ प्रशसित, अ-पराभृष्ट (=अनिदित), समाधि गामी शील है, वेसे शीलोमें स ब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त और प्रकट शील श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है, यह भी ० । (६) ० जो यह आर्यै सैयोंगिक दृष्टि है, (जो कि) वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुष्ट क्षयकी ओर ले जाती है, वेसी दृष्टिसे स ब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त और प्रकट दृष्टि श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है, यह भी ० ।

■ विवाद-मूल—(१) यहा आबुसो ! भिक्षु क्रोधी, उपनाही (=पातही) होता है, जो वह आबुसो ! भिक्षु क्रोधी उपनाही होता है, वह शास्तामें भी अगौरव=अप्रतिश्रय हो विहरता है, धर्ममें भी ०, संघमें भी ०, शिक्षा (=भिक्षु-नियम) को भी पूरा करनेवाला नहीं होता है । आबुसो ! जो वह भिक्षु शास्तामें भी अगौरव=होता है, वह संघमें विवाद उत्पन्न करता है, जो विवाद कि बहुत लोगोंके अहितके लिये=बहुजन असुखके लिये, देव मनुष्योंके अनर्थ, अहित, दुःखके लिये होता है । आबुसो ! यदि तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपनेमें या बाहर देपना, (तो) वहा आबुसो ! तुम उस दुष्ट विवाद-मूलके नाशके लिये प्रयत्न करना । यदि आबुसो ! तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपनेमें या बाहर न देपना, तो तुम उस दुष्ट विवाद-मूलके भविष्यमें न उत्पन्न होने देनेके लिये उपाय करना । इसप्रकार इस दुष्ट (=पापक) विवाद-मूलका प्रहान होता है, इसप्रकार इस दुष्ट विवाद-मूलकी भविष्यमें उत्पत्ति नहीं होती । (२) और फिर आबुसो ! भिक्षु मर्पा पलायी (=पयामी), होता है (३) ईप्याल,

मत्सरो होता है० । [४] शठ, मायावी होता है० । [५] पापेच्छु, मिथ्यादृष्टि होता है० । [६] संदष्टि परामर्शी, आधान प्रादो, दृष्टि निस्सर्गी होता है० ।

८ धातु—रथिवी धातु, आप०, तेज०, वायु०, आकाश०, विज्ञान० ।

९ निस्मरणीय धातु—(१) आधुमो ! मिथु ऐसा बोले—‘मेने मेरी चित्त विमुक्तिको, भावित, यदुल्लिखित (= यदुर्द्ध), यानोदित, यन्तु जन, अनुदित, परिचित, सु-समारब्ध किया, निन्तु व्यापाद (= मोह) मेरे चित्तको पकड़कर दूरा हुआ है’ उमको ऐसा कहना [पादिये—मायुमान् जेसा मत कई, भगवान् की निन्ता (= अभ्यासवान) मत कई, भगवान् का अभ्यास न करना अच्छा नहीं है । भगवान् जेसा नहीं कहते । आधुमो ! यह सुमनित नहा, हमका चयनाश नहा, कि मैत्री चित्त विमुक्ति० सुन-मारब्ध की गई हो, और तो भी व्यापाद उसके चित्तको पकड़कर दूरा रहे । यह संभव नहीं । आधुमो ! मैत्री चित्त-विमुक्ति व्यापादका निस्सरण है । (२) यदि आधुमो ! मिथु ऐसा बोले—‘मेने करणा चित्त विमुक्तिको भावित० किया, तोभी किहिंसा मेरे चित्तका पकड़ कर दूरी हुई है’ । (३) आधुमो ! यदि मिथु ऐसा बोले—‘मेने मुनिता चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तोभी थ रति (= चित्त न लगना) मेरे चित्तको पकड़कर दूरी हुई है’ । (४) उपेक्षा चित्त विमुक्तिको भावित० किया, तोभी राग मेरे चित्तको पकड़े दूरे है० । (५) अनिमित्तता चित्त विमुक्तिको भावित० किश, तोभी यह निमित्तानुसारी चिन्तन सुने होता है० । (६) ‘अस्मि (= मैं हूँ), मत्ता बलागया, ‘यह य हूँ’ नहीं देखता, तोभी विचिकित्सा (= संशय) बाद-विवाद रूपी शान्त्य चित्तको पकड़े दूरे है० ।’

९ अनुस्मृति—दर्शन०, श्रवण०, स्पर्श०, शिष्टा०, परिवर्ण०, अनुस्मृति० ।

९ अनुस्मृति-स्थान—बुद्ध-अनुस्मृति, धर्म०, सध०, शील०, त्याग०, दयता-अनुस्मृति ।

९ तादृश विहार—[१] आधुमो ! मिथु चतुस्ते रूपको देखकर न सुमन होता है, न दुःख होता है । स्मरण करने, जानने उपेक्षरुही विहार करता है । [२] श्रोत्रसे शब्द सुनकर० । (३) घ्राणसे गंध सूँघकर० (४) जिह्वासे रस चखकर० । (५) कायासे स्पर्शरूप छूकर० । (६) मनसे धर्मको जानकर० ।

१० अभिजाति (= जाति, जन्म)—(१) यहा आधुमो ! कोई कोई कृष्ण अभिजातिक (= नीचकुलमें पैदा) हो, कृष्ण (= काले = बुरे) धर्म करता है । (२) कृष्णामि जातिक हो शुद्ध धर्म करता है । (३) कृष्णामिजातिक हो अ-कृष्ण शुक्ल निवाशको पैदा करता है । (४) शुक्लामिजातिक (= ऊँचे कुलमें उत्पन्न) हो शुद्ध-धर्म (= पुण्य) करता है । (५) शुक्ल-अभिजातिक हो, कृष्ण धर्म (= पाप) करता है । (६) शुक्लामिजातिक हो अकृष्ण-शुक्ल निवाशको पैदा करता ।

१० निबंध-भागीय संज्ञा—(१) अनित्य संज्ञा । (२) अनित्यमें दुःख संज्ञा । (३) दुःखमें अनात्म संज्ञा । (४) प्रहाण संज्ञा । (५) विराग संज्ञा । (६) निरोध संज्ञा । आधुमो ! उन भगवान् ने यह० ।

“आवुसो ! उन भगवान् ने (यह) सात धर्म बयार्थ कहे हैं० ।

सात आर्य धन—धन—धन, शील०, हो (= लज्जा)०, अपत्रपा (= भय)०, धृत०, त्याग०, प्रज्ञा० ।

सात बोध्यग—स्मृति-संगोध्यग, धर्म-विचय०, वीर्य०, प्रीति ०, प्रश्रब्धि०, समाधि०, उपेक्षा ०, ।

सात समाधि परिणाम—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संस्कार, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मांत, सम्यक् आजीव, सम्यक् ध्यायान, सम्यक् स्मृति ।

सात अमदर्म—मिथु अ-धर्म होता है, अ द्वीक (= निर्लज्ज) ०, अन् अपत्रपी (= अपत्रपा-रहित)०, अलपधृत ०, कुर्वीत (= आलसी)०, मूढ़-स्मृति०, दुष्प्रज्ञ० ।

सात मदर्म—धनवाला होता है, हीमान् ०, अपत्रपी ०, बहुधृत ० । आरब्ध-वीर्य (= गिरालसी), उपस्थित स्मृति ०, प्रज्ञावान् ० ।

सात सत्पुरुष-धर्म— धर्मज्ञ०, अर्थज्ञ०, आत्मज्ञ०, मातृज्ञ०, कालज्ञ०, परितृज्ञ०, पुत्रज्ञ० ।

सात निर्देश-वस्तु—(१) आवुसो ! मिथु शिक्षा (= मिथु नियम) ग्रहण करनेमें तीव्र उत्सुकता (= बहुत अनुरागवाला) होता है, भविष्यमें भी शिक्षा ग्रहण करनेमें प्रेम रहित नहीं होता । (२) धर्म-निश्चाति (= विषयता)में तीव्र-उत्सुकता होता है, भविष्यमें भी धर्म निश्चातिमें प्रेम-रहित नहीं होता । (३) इच्छा-विनय (= वृत्त्या-त्याग) में ० । (४) प्रतिफललयन (= एकाग्रता)में ० । (५) वीर्यारम्भ (= उद्योग) में ० । (६) स्मृतिके निपाक (= परिपाक)में ० । (७) दृष्टि-प्रतिवेध (= सन्मार्ग-दर्शन)में ० ।

सात सज्ञा—अनित्य-संज्ञा, अनात्म०, अशुभ०, आदिनश०, प्रहाण०, विराग०, निरोध० ।

सात उल—धनवाला, वीर्य०, स्मृति०, समाधि, प्रज्ञा०, ही०, अपत्राप्य० ।

सात विज्ञान स्थिति—(१) आवुसो ! (कोई कोई) सत्त्व (= प्राणी) नानाकाय नानासंज्ञा (= नाम)वाले हैं, जैसेकि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिपातिक (= पाप योनि), यह प्रथम विज्ञान स्थिति है । (२) नाना-काय किन्तु एक संज्ञावाले, जैसेकि

१ अ क ' तैर्यिक लोग दश वर्षके समयमें, मेरे निगठ (= जैन साधु) को निर्देश कहते हैं । वह (मेरा निगठ) फिर दश वर्ष तक नहीं होता । । इसी प्रकार तीस वर्ष आदि कालमें मेरेको निर्देश, निश्चित, निश्चत्वारिंश, निष्पचाश कहते हैं । आयुष्मान् धामन्दने, ग्राम में विचरण करते इस बातको सुनकर विहारमें जा भगवान् को कहा । भगवान् ने कहा—‘आनन्द ! यह तैर्यिकोंका ही वचन नहीं है, मेरे शासनमें भी यह क्षीणास्रजको कहा जाता है । क्षीणास्रज (= अर्हत मुक्त) दश वर्षके समय परिनिर्वाण प्राप्त हो फिर दश वर्ष नहीं होता, सिर्फ दश वर्ष ही नहीं नव वर्ष एक वर्ष एक मासका भी, एक दिनका भी, एक मुहूर्तका भी नहीं होता । किसलिये ? (पुन) जन्मके न होने से ।

प्रथम उत्पन्न ब्रह्मजायिक देव० । (३) एक-जाया नाना-संज्ञावाले, जेतेकि आभास्वर देवता० । (४)० एक-काया एक-संज्ञावाले, जेते कि शुभमृत्तन देवता० । (५) आबुमो ! कोई कोई सत्त्व रूपनैज्ञाको सर्वथा अतिक्रमणकर, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) सत्ताने अस्तहोने से, गाना सत्ताके समम न करनेसे 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्द-आयतनको प्राप्त है, यह पांचवीं विज्ञानस्थिति है । (६)० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान आनन्द-आयतनका प्राप्त है, यह छठीं विज्ञान स्थिति है, (७)० विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं,' इस आर्कित्वमय आयतनको प्राप्त है । यह सातवीं विज्ञान स्थिति है ।

सात दक्षिणाय (= दान-पात्र) पुत्र है—उभयतोभाग त्रिमुक्त, प्रज्ञा त्रिमुक्त, रूप माक्षी, दृष्टिप्राप्त, ब्रह्माविमुक्त, धमापुसारी, ब्रह्मापुसारी ।

सात अनुगय—राम राम अनुगय, प्रतिघ०, दृष्टि०, त्रिविक्रिया०, मान०, मयराग०, अविद्या० ।

सात समोचन—अनुनय समोचन, प्रतिघ०, दृष्टि०, त्रिविक्रिया०, मान०, मयराग०, अविद्या० ।

सात,—१ अधिकरग समथ, तः सत् उत्पन्न हुये अधिकरणो (=प्रगटो)के समनके लिये—(१) संसृज त्रिनय देना चाहिये (२) स्मृतिविनय (३) यमूट विनय, (४) प्रतिपात वरण । (५) यक्षयमिक, (६) तत्पापीयमिक, (७) तिणवित्थारक ।

यह आबुमो ! उन भगवान्० ने० ।

“आबुमो ! उन भगवान्० ने आठ धर्म यथार्थ बड़े हैं ।

आठ मिथ्यात्व (=झूठ) —मिथ्यादृष्टि, मिथ्यावस्तुत्व, मिथ्यावाक्, मि० ता समाप्त, मिथ्याव्यापार, मिथ्यास्मृति, मिथ्याममार्ग ।

आठ सम्यक्त्व (=सत्य) —सम्यक् दृष्टि, सम्यक्-वाक्, सम्यक्-कमान्त, सम्यक्-आज्ञा, सम्यक्-प्रायाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-ममार्ग ।

आठ दक्षिणाय पुत्र—घोत आपन्न, मोतमापत्ति कर माक्षात्कार करनेम तत्पर, मृदागामी, मृदागामी कर साक्षात्कार-तत्पर, अनागामी, अनागामी कर माक्षात्कार तत्पर अर्हत्, शक्यत्व साक्षात्कार तत्पर ।

आठ कुपीन (=आत्म्य) बन्धु—यह आबुमो ! मित्रों (जब) कर्म करना होना है, उपर (मनमें) प्रसा होता है—धर्म सुने करना है, सिन्धु कर्म करने हुये मेरा शरीर तल्लीन पायेगा, ज्यों न मैं गृह (=घर) रहूँ । यह श्रुति है, अप्राप्तरी प्राप्तिने लिये=अनधिगत अधिममके लिये, अ-साक्षात्कृत माक्षात्कारक द्विने उपयोग नहीं

कता । यह प्रथम कुसीत वस्तु है । (२) और फिर आवुसो । मिश्रु, कर्म किये होता है, उसको ऐसा होता है, मेने काम कर लिया, काम करते मेरा शरीर थक गया, 'म्यो न मं पड़ रहूँ ! वह पड़ रहता है, उद्योग नहीं करता० । (३) मिश्रुको मार्ग जाना होता है । उसको यह होता है—'सुखे मार्ग जाना होगा, मार्ग जानेमें मेरा शरीर तकलीफ पायेगा, क्यों न मैं पड़ रहा हूँ ।' वह पड़ रहता है, उद्योग नहीं करता० । (४) मिश्रु मार्ग चल चुका होता है । उसको यह होता है—'मैं मार्ग चत्र चुका, मार्ग चलनेमें मेरे शरीरको बहुत तकलीफ हुई० । (५) मिश्रुको ग्राम या निगममें पिंडधार करते सूखा भला भोजन भी पूरा नहीं मिलता । उसको ऐसा होता है—'मैं ग्राम या निगममें पिंडधार करते सूखा भला भोजन भी पूरा नहीं पाता, सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ (होगया), क्यों न मैं पेट रहूँ । (६) पिंडधार करते रुखा-सूखा भोजन यथेच्छ पा लेता है । उसको ऐसा होता है—'मैं पिंडधार करते रुखा-सूखा भोजन पाता हूँ, सो मेरा शरीर भारी है, अत्यथ है, मानो मास ढेर है, क्यों न पड़ जाऊँ० । (७) मिश्रुको थोड़ी सी (=अल्पमात्र) बीमारी उत्पन्न होती है, उसको यह होता है—'यह सुखे अल्पमात्र बीमारी उत्पन्न हुई है, पड़ रहना उचित है, क्यों न मैं पड़ जाऊँ० । (८) मिश्रु बीमारीसे उठा होता है, उसको ऐसा होता है, सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ है० ।

आठ भारव्य वस्तु—यह आवुसो । मिश्रुको कर्म काना होता है । उसको यह होता है—काम सुखे करना है, काम न करते हुये, बुद्धाके शासन (=धर्म)को मनन एताना सुखे सुकर नहीं, क्यों न मैं अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=भनविगतके अधिगमके लिये, अ-माक्षावृत्तके साक्षात्कारके लिये उद्योग करूँ । सो उद्योग करता है, यह प्रथम आरब्ध-वस्तु है । (१) मिश्रु काम घर चुका होता है, उसको ऐसा होता है—'मैं काम कर चुका हूँ, कर्म करते हुये मैं बुद्धाके शासनको मनमें न कर सका', क्यों न मैं उद्योग करूँ० । (२) मिश्रुको मार्ग जाना होता है । उसको ऐसा होता है० । (३) मिश्रु मार्ग चल चुका होता है० । (४) मिश्रुग्राम या निगममें पिंडधार करते सूखा भला भोजन भी पूरा नहीं पाता, सो मेरा शरीर हल्का कर्मण्य (=काम लायक) है० । (५) सूखा रुखा भोजन पूरा पाता है, सो मेरा शरीर षडगान्, कर्मण्य है० । (६) मिश्रुको अल्पमात्र रोग उत्पन्न होता है, सो मरुता है मेरो बीमारी बढ़ जाय, क्यों न मैं० । (७) मिश्रु बीमारीसे उठा होता है, सो हो सकता है, मेरो बीमारी फिर लौट आवे, क्यों न मैं० ।

आठ दान वस्तु—(१) आमक हो दान देता है । (२) भयसे० । (३) 'मुझको उसने दिया है'—(सोच) दान देता है । (४) 'देगा' (सोच)० । (५) 'दान करना अच्छा है' (सोच)० । (६) 'मैं पकाता हूँ, यह नहीं पकाते, पकाते हुयेका न पकावालोंको न देना अच्छा नहीं' (सोच) देता है । (७) 'यह दान दे, मेरा मंगलीति शब्द फेलैगा' (सोच) देता है । (८) चित्तक अन्कार, चित्तके परिष्कारके लिये दान देता है ।

आठ दान-उत्पत्ति (= उत्पत्ति)—(१) आहुमो ! लोई कोई पुरुष, श्रमण या ब्राह्मणको अन्न, पात्र, वस्त्र, यान, माला, गंध, विलेपन, शय्या, आवसथ (= निवास), प्रदीप दान देता है । वह, जो देता है, उसकी भी तारीफ करता है । वह क्षत्रिय महाशाल (= महाधी) ब्राह्मण महाशाल, गृहपति महाशालको पांच काम-गुणोत्ते समर्पित = संयुक्त हो विचरते देवता है । उसको ऐसा होना है—अहोय ! मैं भी काया छोड़ मरनेके बाद क्षत्रिय-महाशालोंका स्थिति (= महत्त्वता) में उत्पन्न होऊँ । वह इसको चित्तमें धारण करता है, इसको जिसमें अधिष्ठान (= दृढ संरक्षण) करता है, इसे चित्तमें भावना करता है । उसका वह चित्त हीन (उत्पत्ति) छोड़, उत्तमकी न भावनाकर, यही उत्पन्न होता है । यह मैं गोचरात् (= सगंचारी) का कहता हूँ दुःशीलका नहीं । आहुमो ! विष्णु हानेमें शीलगान्की मानसिक प्रणिधि (= अभिरक्षा) पूरी होती है । (२) और फिर यावुतो ! ० दान देता है । वह जो देता है, उसकी प्रशंसा करता है । यह सुने होता है—चातुमहाराजिक दान लोग दीर्घायु सुख, सुदुत सुखी, (होते हैं) । उसको ऐसा होता है—अहोय ! मैं शरीर छोड़ मरनेके बाद चातुमहाराजिक दानमें उत्पन्न होऊँ । (३) यह सुन होता—त्रयस्त्रिंश दान लोग ० । (४) व्यास दान ० । (५) उत्पत्ति ० । (६) अनिमग्न रति ० । (७) परनिर्मित-वशास्त्री देव ० । (८) ब्रह्मकायिक दान ० ।

आठ परिपद—क्षत्रिय ० । ब्राह्मण ० । गृहपति ० । श्रमण । चातुमहाराजिक ० । त्रयस्त्रिंश ० । दान ० । ब्रह्म ० ।

आठ अभिजायतन—एक (पुरुष) अपन भीतर (= अन्धात्म) रूप सती (= रूपका लोहमानेवाला) बाहर स्वल्प सुवर्ण रूपोको देखता है, ' उनको अभिजायतन (= सुत) कर जानता हूँ, देखता हूँ ' इस संज्ञाजाला होता है । यह प्रथम अभिजायतन है । (१) पुरु (पुरुष) अध्यात्मम अरूप-सती, बाहर अप्रमाण (= अतिमहान्) सुवर्ण दुर्बर्ण रूपोको देखता है ० । (२) अध्यात्ममें अरूप-सती बाहर स्वल्प सुवर्ण दुर्बर्ण रूपोको देखता है ० । (३) अध्यात्मम अरूप-सती, बाहर अप्रमाण सुवर्ण दुर्बर्ण रूपोको देखता है ० । (४) अध्यात्मम अरूप-सती, बाहर अप्रमाण सुवर्ण दुर्बर्ण रूपोको देखता है, जैसे कि बाल, नीलवर्ण, नील निद्रान नील निभास रूपोको देखता है, जैसे कि बाल, नीलवर्ण, नील निद्रान अलसीका पूत्र, या जैसे दोनो ओरसे रगटा (= पालित किया) नीला बनारसी वस्त्र । ऐसे ही अध्यात्मम अरूप सती बाहर नील रूपोका देखता है । उन्हीं अभिजायतन ० । (५) अध्यात्मम अरूप सती बाहर पीत (= पीला), पातवर्ण, पीत निद्रान, पीत निभास रूपोको देखता है, जैसे कि कर्णिकार पुत्र, या जैसे पीला बनारसी वस्त्र ० । (६) बाहर लोहित (= लाल) रूपोका देखता है, जैसे कि शंखु जीवक पुत्र, या जैसे लोहित वनारसी वस्त्र ० । (७) बाहर अवदात (= सफेद) रूपोको देखता है, जैसे कि अत्रात ओषधी तारका (= पुत्र), या जैसे अत्रात बनारसी वस्त्र ० ।

आठ विमोक्ष—(१) स्वयं रूपा (= रूपगात्र) रूपोको देखता है, यह प्रथम विमोक्ष है । (२) पुरु (पुरुष) अध्यात्ममें अरूप-सती बाहर रूपोका देखता है ० । (३) सुत (= पुत्र)

ही स मुक्त (= अधिमुक्त) हुआ होता है० । (१) सर्वथा रूप मन्त्रको अतिक्रमण कर, प्रतिघ (= प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त होनेसे, नातापनकी संज्ञा (= ख्याल)के मनम करामे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश आनन्त्य आयतनको प्राप्त हो विहरता है० । (२) सर्वथा आकाशानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है० । (३) सर्वथा विज्ञानानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर, 'निश्चित (= कुटुम्भी) नहीं' इस आर्क्चिन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है० । (४) सर्वथा आर्क्चिन्त्यायतनको अतिक्रमण कर 'नहीं संज्ञा है, न असन्ज्ञा' इस संज्ञा न-असन्ज्ञा-आयतन को० । (५) सर्वथा नैश्वर्ग्या नैश्वर्ग्यायतनको अतिक्रमणकर, संज्ञा-यदयितनिराध (= जहाँ दोशका ख्याल ही कुछ होताता है) को प्राप्त हो विहरता है ।

आहुसो ! उन भगवान्० ने० यह ।

"आहुसो ! उन भगवान्० ने यह ११ धर्म यथार्थ कहे हैं० ।

गण आघात वस्तु—(१) 'मेरा अर्थ (= जिगाड़) किया, इनलिये आघात (= बदला) रखता हूँ । (२) 'मेरा अनर्थ कर रहा हूँ० (३) मेरा अनर्थ करेगा० । (४) मेरे प्रिय = मनाप का अनर्थ किया० । (५)०० अनर्थ करता है० । (६)०० अर्थ करगा० । (७) मेरे अ प्रिय अमनापके अर्थ (= प्रयोजन) को किया० । (८)० करता है० । (९)० करगा० ।

गण अघात प्रतिविनय (= हटाना)—(१) 'मेरा अर्थ किया तो (चदमे अनर्थ करनेसे मुझे) क्या मिलने वाला है' इससे आघातको हटाता है । (२) 'मेरा अर्थ करता है, तो क्या मिलनेवाला है' इससे० । (३) ० करेगा० । (४) मेरे प्रिय मनापका अनर्थ किया, तो क्या मिलनेवाला है० । (५) ० अनर्थ करता है० । (६)० अनर्थ करेगा० । (७) मेरे अप्रिय = अमनापके अर्थको किया है० । (८) ० करता है० । (९)० करेगा० ।

नव सत्त्वावास ^१ (= जीउलोक)—(१) आहुसो ! कोई सत्त्व तामाकाय (= शरीर) और नाना सजा (= नाम) हैं जेसेकि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिवातिक (= पाप-योगी), यह प्रथम सत्त्वावास है । (२) ० नाना काय एक संज्ञावाले, जेसे प्रथम उत्पन्न ब्रह्मकायिक देव । (३)० एककाया नाना संज्ञावाले, जेसे आनालवर देवलोक । (४)० एक काया एक-संज्ञा वाले, जेसे शुभ कृत्स्न देवलोक । (५)० संज्ञा-रहित, प्रतिसन्देश (= होश) रहित, जेसे कि असन्धी० सत्त्व देवलोक । (६)० रूप संज्ञाको सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघ संज्ञा (= प्रतिहिंसाके ख्याल)के अस्त होने, नानापन की संज्ञाको मगमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य आयतनको प्राप्त है० । (७)० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान आनन्त्य-आयतनको प्राप्त है० । (८)० विज्ञानानन्त्यायतनको

सर्वा अतिरमण कर 'किंचित् नहीं' इस आर्किवन्त्यायतनको प्राप्त है० । (१) आधुमो । धर्म मत्त्व है, (ओकि) आर्किवन्त्यायतनको सर्वा अतिरमण कर, नम सत्ता नायत्ता (= न होश १ वेदोश) नायत्ताको प्राप्त है, यह नम सत्तावास है ।

नव अक्षर = असमय (है) प्रत्यय वाचकलिये—(१) आधुमो ! लोकम तथागत अर्हत्त सम्यक् समुद्ध उत्पन्न हात है, और उपशम = परिनिर्वाणलिये, संगेविनामी, सुगत (= सुन्दर गतिसे प्राप्त = पुत्र) द्वारा प्रगति (= साक्षात्कार किय) धर्म को उपदेश करते हैं, (उस समय) यह पुद्गल (= पुण्य) निरय (= नर्क) में उत्पन्न रहता है, यह प्रथम अक्षर० है । (२) ओम किं वट् तिर्थक योगि (= पशु पक्षी आदि) में उत्पन्न रहता है० । (३) प्रेत्य विपय (= प्रेत-योनि) में उत्पन्न हुआ होता है० । (४)० असुर काय (= असुर समुदाय)० । (५) दीर्घायु इय-निकाय (= देव-समुदाय) म० । (६)० प्रत्यन्त (= मध्य देवसे गहराके) देशोंमें अ वदित मन्त्रोक्त उत्पन्न हुआ होता है, जहा पर किं भि उभाका गति (= जाना) नडा, न भि उणिवाकी, १ उपामकाकी, न उपामिकाकाकी० । (७)० म पदेश (= मज्झिमजापद) म उत्पन्न होता है, किन्तु यह मित्यावृष्टि (= उत्तीर्णत) (= त्रि-रीत-दर्शन का) है—रा दिया (- कुट) नर्क है, यज्ञ किया०, हवन किया०, मुहूर्त दुःकृत कर्मों का फल = विपाक नहीं, यह लोक नहीं, परलोक नडा माता नहीं, पिता नहीं, औपपातिक (= अयोनिज) सत्त्व नहीं, लोक म सम्यक् गत (= टीक शस्त्र पर) = सम्यक्-प्रतिपन्न ज्ञान प्राप्ति नहीं, जो कि इय लोक और परलोकको स्वयं साक्षात्कार, अनुभवकर, जाने० । (८)० मध्य देशम होता है, किन्तु घट है, दुष्प्रग, जड = ण्ड मूक (= मेट्टसा मूक), सुभाषित दुभाषित अर्थको जाननेम असमर्थ, यह आठवा अक्षर है । (९)० मध्य-देशम उत्पन्न होता है, और यह प्रज्ञायान्, अनट = अनन्द-मूक हाता है, सुभाषित दुभाषित अर्थको जाननेम समर्थ होता है० ।

नव अनुपुर्व (= क्रमशः) विहार—(१) आधुमो ! भिउ काम और गुरुदल धर्मों से अलग हो, वितर्क विचार सहित त्रिकुज प्रीति सुखराले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । (२)० द्वितीय ध्यान० । (३)० तृतीय ध्यान० । (४)० चतुर्थ ध्यान० । (५)० आकाशानन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरता है । (६)० विज्ञानानन्त्यायतन० । (७)० आर्किवन्त्यायतन० । (८)० नैरयन्तासत्तायतन० । (९)० संज्ञा पेदयित निरोध० ।

नव अनुपुर्व निरोध—(१) प्रथम ध्यान प्राप्तको काम सत्ता (= कामोपभोगका स्थल) निरुद्ध (= लुप्त) होता है । (२) द्वितीय ध्यानरालेको वितर्क विचार निरुद्ध होता है । (३) तृतीय ध्यानरालेको प्रीति निरोध होती है । (४) चतुर्थ ध्यान प्राप्त का आश्वास प्रसास (= मान रेता) निरुद्ध होता है । (५) आकाशानन्त्यायतन प्राप्तको रूप-संज्ञा निरुद्ध होती है । (६) विज्ञानानन्त्यायतन प्राप्तकी आकाशानन्त्यायतन सत्ता० । (७) आर्किवन्त्यायतन प्राप्तकी विज्ञानानन्त्यायतन

संज्ञा ० । (४) नैव सत्ता-नासंज्ञा यत्ता प्राप्तकी आर्किकन्यायतन सत्ता ० । (१) संज्ञा-येन्यित सिोध प्राप्तकी सत्ता (=होश) और वेदना (=अनुभव) निरुद्ध होती है ।

आयुसो ! उन भगवान्‌ने यह ० ।

“ आयुसो ! उन भगवान्‌ने दश धर्म यथार्थ कह ० । कौनसे दश ?—

दश नाथ ररग धम—(१) आयुसो ! भिक्षु शीलवान्, प्रातिमोक्ष (=भिषुनियम)-मवर (=राय) मे मृत (=आच्छादित) होता है । थोड़ी सी उराइयो (=वस्त्र) में भी भय-इशों, आचार-गोचर-युक्त हो बिहरता है, (शिक्षापदोको) ग्रहणकर शिक्षापदो को सीपता है । जो यह आयुसो ! भिक्षु शीलवान्‌, यह भी धर्म नाथ ररग (=न अनाथ करनेवाला) है । (२) ० भिक्षु बहु श्रुत, श्रुत धर, श्रुत मचय-वान् होता है । जो वह धर्म आदिउल्लापण, मचयउल्लापण, पर्यवमान-कृत्याण, सार्थक = सम्पजन हैं, (जिसे) केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध मल्लार्थ कहते हैं । ऐसे धर्म, (भिक्षु) को बहुत सुने, ग्रहण किने वाणीसे परिचित, मनसे अनुपक्षित, दृष्टिसे सुगतिविद्ध (=अन्तस्तल तरु दरो) होते हैं, यह भी धर्म नाथ-करण होता है । (३) ० भिक्षु कल्याण मित्र = कल्याण सहाय = कल्याण सप्रवक होता है । जो यह भिक्षु कल्याण मित्र होता है, यह भी ० । (४) ० भिक्षु सुवगा, सौवचस्य (=मुर भाषिता) वाटे धर्मासे युक्त होता है । अनुशामनी (= धर्म उपदेश) म प्रदक्षिगघाहो = समर्थ (=क्षम) (होता है) यह भी ० । (५) ० भिक्षु मल्लवारियाके जो नाना प्रकारके कर्तव्य होते हैं, उनमें दक्ष = आलम्परहित होता है, उनमें उपाय = विमर्शसे युक्त, करनेमें समर्थ = विधानमें समर्थ, होता है । ० यह भी ० । (६) ० भिक्षु अभिधर्म (=सूत्रमें), अभि जिनप (= भिक्षु निगमोंमें) धर्म-राम (=धर्मचतु), प्रिय समुदाहार (=दूसरे के उपदेशको सत्कारपूर्वक सुननेवाला, स्वयं उपदेश करनेमें उत्साही), वठा प्रमुदित होता है, ० यह भी ० । (७) भिक्षु जेसे तेने चीवर, पिंडपात, क्षपनाला, ग्लान प्रत्यय-भेषज्य परिष्कारसे सन्तुष्ट होता है ० । (८) ० भिक्षु अकुशल धर्माके विनाशके लिये, कुशल-धर्माका प्राप्तिके लिये उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) स्थामवान् = हठपराक्रम होता है । कुशल धर्मां अनिश्चित-धुर (=भगोड़ा नहीं) होता ० । (९) ० भिक्षु स्मृतिमान्, अत्युत्तम स्मृति-परिपाक्से युक्त होता है, बहुत पुराने किये, बहुत पुराने भाषण करेको भी स्मरण करने वाला, अनुरमण करने वाला होता है ० । (१०) ० भिक्षु प्रज्ञावान् उदय-उत्तम गामिनी, आर्य, निवेधिक (=अन्तस्तल तरु पहुचनेवाली), सम्यक्-दु ख क्षय गामिनी प्रज्ञासे युक्त होता है ० ।

दस कृत्स्नायतन—(१) एक (पुरुष) ऊपर नीचे ठेठे अद्वितीय (=एक मात्र) अप्रमाण (=अतिमहान्) पृथिवी कृत्स्न (=सम पृथिवी) जानता है । (२) ० आप कृत्स्न ० । (३) ० तेज-कृत्स्न ० । (४) ० वायु कृत्स्न ० । (५) ० नील-कृत्स्न ० । (६) ० पीत कृत्स्न ० । (७) ० लोहित कृत्स्न ० । (८) ० अवदात-कृत्स्न ० । ० आकाश कृत्स्न ० । (१०) ० विज्ञान-कृत्स्न ० ।

दश आहुत कर्म पथ (=दुष्कर्म)—(१) प्राणातिपात (=हिंसा) । (२) अदत्तादान
✓ (=चोरी) । (३) काम मिथ्याचार (=ज्यभिचार) । (४) मृषावाद (=झूठ) ।
(५) पिशुन-वचन (=बुगली) । (६) परप वचन (=कटुवचन) । (७) संप्रलाप
(=बकवास) । (८) अभिघ्ना (=लोभ) । (९) अपापाट (=द्रोह) । (१०)
मिथ्या दृष्टि (=उल्लेखित) ।

दश शुभ कर्म पथ (=सुकर्म)—(१) प्राणातिपात विरति । (२) अदत्तादान विरति । (३)
काम मिथ्याचार विरति । (४) मृषावाद विरति । (५) पिशुनवचन विरति । (६)
परप वचन विरति । (७) संप्रलाप विरति । (८) अपाभिघ्ना । (९) अपापाट ।
(१०) सम्यग् दृष्टि ।

दश आर्य पाम —(१) आहुतो ! मिथु पाच अंग (= पात) म हो । (= पञ्चाङ्ग-
विप्रहीण) होता है । (२) छ अंगोसे युक्त (= पङ्कग युक्त) होता है । (३) एक
आरक्ष बाला होता है । (४) अवधयण (= आश्रय) वाग होता है । (५) पनुक्त
पचेक-पथ होता है । (६) समग्र-मद्वेयन । (७) आ आश्रित (= अश्रित) सकल्पः ।
(८) प्रधन्य काम संस्कारः । (९) छत्रिमुक्त चित्तः । (१०) सुविमुक्त प्रपः ।
(१) आहुतो ! मिथु पाच अंगोसे होन बंस्त होता है ? यहा आहुतो ! मिथुका
कामच्छन्द (= काम-भाग) प्रलीण (= छ) होता है, व्यापाद प्रहीणः, रत्यान मृद्वः,
ओद्धत्य कौटुम्ब्यः, त्रिविक्रित्माः । इस प्रकार आहुतो ! मिथु पञ्चाङ्ग विप्रहीण होता
है । (२) कैसे आहुतो मिथु पङ्कग युक्त होता है ? आहुतो ! मिथु चतुसे रूपको
देन न सु मन होता है, न दुर्मन, स्मृति मप्रन्य-युक्त उपसक्त हो विहरता है ।
श्रीरते क्षत्र मुत्तरः । घाणमे मध सूधरः । सिद्धामे सम चरकरः, कायसे
रुप्रव्य उरः, मनमे धर्म नानरः ० । (३) आहुतो ! प्रकारक्ष कमे होता है ?
आहुतो ! मिथु रमृतिकी श्वासे युक्त होता है । (४) आहुतो ! मिथु कैसे
चतुरावधयण होता है ? आहुतो ! मिथु सरयातर (= समपतर) एकको सेवन
करता है, सत्परातर एकको गरीतर करता है, मग्यानकर एकको हगना है,
सत्परातर एकको वर्जित करता है, ० । (५) आहुतो ! मिथु कैसे चतुर पचेक मध
होता है ? आहुतो ! जो बद्ध पुत्र (= उल्लेखित) भ्रमण ग्राहणोत्ते पृथक् (= उल्लेखित)
प्रत्येक (= एक एक) मत्प (= सिद्धात) होते हैं, वह सभी (उल्लेखित) पणुक्त = त्यक्त
= वान्त = मुक्त = प्रलीण, प्रतिप्रगन्ध (= शमिन) होते हैं ० । (६) आहुतो ! कैसे
'ममग्रसद्वेयन, (= सम्यक् विखट्टेयण) होता है ? आहुतो ! मिथुनी काम पणुता
प्रहीण (= त्यक्त) होती है, अत्र पणुता, प्रसव्य पणुता प्रशमित होती है, ० ।
(७) आहुतो ! मिथु कैसे अनाश्रित भस्व होता है ? आहुतो ! मिथुका काम
सकल्प प्रहीण होता है, व्यापाद सकल्पः, हिंसा संकल्पः । इस प्रकार आहुतो !
मिथु अनाश्रित (= निर्मल) भस्व होता है । (८) आहुतो ! मिथु कैसे प्रधन्य-
काय होता है ? ० मिथु ० । चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, ० । (९) आहुतो !

मिथु उसे विमुक्त चित्त होता है ? आबुमो । मिथुका चित्त रागसे विमुक्त होता है, ंनेपसे त्रिमुक्त होता है, ंमोहमे विमुक्त होता है, इस प्रकार० । (१०) कैसे० सुविमुक्ति-प्रा होता है ? आबुमो । मिथु जानता है—‘ मेरा राग प्रहीण हो गया, उच्छिन्न मूट=मस्तकच्छिन्न तालवां तरह, अमाव-प्राप्त, भविष्यमे उत्पन्न होनेका शयोग्य हो गया है ।’ ंमेरा द्वेप० । ंमेरा मोह० । ० ।

दश अशेभ्य (= अर्हत्)-धर्म—(१) अशैव सम्यक् दृष्टि । (२) ंसम्यक् संकल्प । (३) ंसम्यक् चारु । (४) ंसम्यक् फमान्त । (५) ंसम्यक् आलोच । (६) सम्यक् व्यायाम । (७) ंसम्यक्-स्मृति । (८) ंसम्यक् समाधि । (९) ंसम्यक् चान । (१०) अशैव्य सम्यक् विमुक्ति ।

“ आबुमो । उा भगवान् ० ने० ।”

तत्र भगवान्ने उट्ठर आयुप्मान् सारिपुत्रो आमत्रित किया—

‘ साधु, साधु, सारिपु ! सारिपुत्र तूने मिथुओंको अच्छा सङ्गीति-पर्याय (= पङ्का का रग) उपदेश दिया ।”

आयुप्मान् सारिपुत्रने (जो) यह फहा । शास्ता (= पुत्र) इसमे सहमत हुे। सन्तुष्ट हो उा मिथुओंने (भी) आयुप्मान् सारिपुत्रके आपगत अभिनन्दन किया ।

सुन्द-सुत्त । सारिपुत्रभोगलान-परिनिर्वाण । एवाचेत्त सुत्त । (वि. पृ. ४२८-२७) ।

‘ऐसा’ मैंने हुआ—एक समय भगवान् धावस्तीमें अनाथ पिंडवके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र मगधमें नालक ग्राममें रोग ग्रस्त—दुःखित रहत भीमारहो विहार करते थे ।

१. चौआलीसवा वर्षावास (४२८ वि पृ) को भगवान् धावस्ती (पूवाराम) में बिताया, पैंतालीसवा (४२७ वि पृ) धावस्ती (जेतवन) में । २ सं नि ४९२३ ।

१ अ क ‘भगवान् जेतवनमें धमझ धावस्ती जा, जेतवनमें प्रवेश किया । साताको सिध्दा-दर्शन (= ऋते मत)से छडाकर, जन्म के कोरे (= ओवरक)में ही परिनिर्वाण प्राप्त करुगा’ यह निश्चयकर (सारिपुत्रने) सुन्द स्थविरको कहा—,= आयुस सुन्द । हमारे पादसों भिक्षुओंको सूचित करो—‘आवुसो ! पाप्रचीवर ग्रहण करो, धर्म सेनापति नालकग्राम जाना चाहते हैं’ । स्थविने ऐसाही किया । भिक्षु दायनासरा संभाल, पाप्रगीवरले स्थविरक सामने गये ।

स्थविर (सारिपुत्र) दायनासन मभाल दिवास्थान (= दिनने विश्रामके स्थान) को साफ कर दिवास्थानके द्वारपर रखेहो दिवास्थानकी चौर अलोकनकर—‘यह अन्तिम (= पच्छिम) दर्शन है, फिर आना नहीं है’ । (फिर) पादसों भिक्षुओंके साथ भगवान् के पास जा घन्टुनाकर भगवान् को बोले—

“ भन्ते ! भगवान् अनुपा हैं, सुगम अनुपा हैं मेरा परिनिर्वाण हाँ है, आयु सम्सार (= जीवन) पतम हो चुका । ”

“ कहा परिनिर्वाण करोगे ? ”

“ मन्ते ! मगध (देश) में नालकग्राममें ज मगूह है, वहा परिनिर्वाण करूंगा । ”

“ सारिपुत्र ! जैसा तू काल मुमञ्जता है । ”

स्थविरों रक्षवर्ण हाथोंसे पैलाकर, शास्ताके सुगम कन्ठपर सहस्र चरणाके मुलकों को पकड़कर—

“ भन्ते ! इन चरणोंकी घन्टाके लिये सौद्वार कल्पासे अधिक काल तक मन अमन्य पावसितायें पूजकी । वह मेरा मनोरथ निरतन पहुच गया । अब (आपके साथ) फिर जन्मने एकस्थानमें प्रकथित = समागम, होना नहीं है । अब यह विश्राम छिन्न होचुका । अनेक रात सहस्र बुद्धोंके प्रवेश स्थान अत्र अमर, गोम, सुख, शीतल, शमथ, निर्माण पुर जाऊंगा । यदि मेरा कोई कायिक या वाचिक (कर्म) भगवान् को न रचा हो, भगवान् क्षमा करें, मेरा जानेका समय है । ”

“ सारिपुत्र ! तुने क्षमा करना हूँ, मेरा कुन्मी कायिक या वाचिक (कर्म) पचा नहीं, तो मुने आपसंददो । तब तू सारिपुत्र । निदका का ममने (उमरो कर) । ”

भगवान्की अनुत्ता पानेक वाद, आयुष्मान् सारिपुत्रके पाद्वर्तनाकर, उक्ते समय **, शास्ताभी धर्ममेवापनिके सम्मानके लिये धर्मासासे उटार भिक्षुटीके सामने मणि-फलक पर जा पड़ हुय ।

रथविर तीनवार प्रदक्षिणाकर चार स्थानो (=अंगों)से वन्दना कर—

“ भगवन् ! आजसे असख्य सौ हजार कल्पमे अधिक समय पूर्व अनोमदशीं सम्यक् संजुद्धके पादमूलमें पड़कर, मैंने तुम्हारा दर्शनकी प्रार्थना की । वह मेरी प्रार्थना पूरी हुई, तुम्ह देल लिया । वह तुम्हारा प्रथम दर्शन था, यह अन्तिम दर्शन, (अथ) फिर तुम्हारा दर्शन नष्ट होगा । ”

—एक दश-नख-संयुक्त समुज्जल संजलिको जोड़कर, जयतय (भगवान्) नशरके सामने धे, (त्रिना पीठ दिखाये) सामने मुल रखतेही चक्कर बन्दना कर, चल दिये । भगवान्ने घेरकर गयेहुगे भिक्षुओंसे कहा—

“ भिक्षुओ ! अपने उपेष्ट आताका अनुगमन करो । ”

उस समय एक सम्यक् संजुद्धकी छोड़कर सभी भिक्षु, भिक्षुणी उपासक उपासिका, चागों परिपद् जेतवनसे निकली । श्याम्पती नगरवासियोने भी, ‘सारिपुत्र स्थविर सम्यक्संजुद्धको पूछ परिनिशानको ह्मन्तावे निकटे है, उनका दर्शन करै’—सोच, नगरद्वारोको अवकाशरहित बनाते निकटका, गंध माला हाथमे ले, वेशाको गिरेरे—अब हम ‘कहा महा प्रश्न बढ है ? कहाँ धर्मसेनापति बढ है ?’—पूछते, किमके पास जायेंगे । ‘स्थविर किमके हाथमें शास्ताको सौपरर जारहे हो’ इसप्रकारमे रोते जाने स्थविरका अनुगमन किया ।

रथविर महा प्रजामें रिथत होनेसे-‘सबको ही यह गंतव्य (=अन्-अतिक्रमणाय) मार्ग है’ लोगोको उपदेशकर, ‘तुम भी आयुषो ! ठहरो, दशवल (=मुद्ध)के विषयमें धेपवादी मत करना ’ (कह), भिक्षु सबको भी लौटाकर, अपनी परिपद्के साथ चलदिये । तब आयुष्मान् सारिपुत्र मंत्रत एक एक रात्रिवासकर, मार्गमें एक सप्ताह मनुष्योको उपदेश करते, सार्धकालको गालकप्राप्त पहुँच, धामद्वारपर वर्गदके वृक्षके नीचे खड़े हुये । तब स्थविरका भागिनेय उपरवत गाँवमे बाहर जाते दत्त, स्थविरको देखकर पास जा बन्दनाकर, खड़ा हुआ । स्थविरने उसे कहा—“ घरमें तेरी अप्यका (=नानी) है ? ”

“ अन्ते । है ”

“ जाओ, हमारे यहाँ आनेकी बात रहो । किसलिये आये पूछनेपर—आज एक रात गाँवके भीतर जलेंगे । जन्म गृह (=जातीयरक)को लाफर्रो, और पाँच सौ भिक्षुओके रहने का स्थान ठीक करो । ”

उसने जाकर—“ नानी ! मेरे मामा आये हैं । ”

“ इस समय कहाँ है ? ” “ ग्राम द्वारपर । ”

“अनेलेहो, या और भी कोई है ? ” “पाचसौ भिक्षु हैं । ”

“किम कारणसे आये ? ”

उसने यह (मय) हाल कह सुनाया । ब्राह्मणी—इतनोके लिये क्या वासस्थान साफ करा रहे हैं ? जवानोमें प्रयत्नित हो, अब पुराणमें क्या गृहस्थ होना चाहते हैं ?—सोचती, जन्म धरको साफ करवा, पाँचमौख बन्देका स्थान बनवा, महात्मा (= बड़ दीविका) जन्म-क्षय, स्थविरके लिये आदमी भेजा । स्थविर, मिथुनोके माघ प्रासाद (= कोठ) पर नव जन्मधरमें प्रविष्ट हो बैठ । बैठकर, मिथुनोको उठा आयापर भेजा गया । उनका जाने मात्रसेही स्थविरको खून गिरनेकी सख्त बीमारी उत्पन्न हुई, मरणान्तरक पीड़ा होन लगी । ब्राह्मणी—‘पुत्रकी क्या मुझे चर्छा नहीं लगती’—(सोच), अपने घाम-गृहक द्वारपर पड़ा रही ।

चारों महाराजा (देवता) ‘धम सेनापति कहा बिहारी है’ खोजते खोजते—‘तालक-घाममें जन्मधरमें परिनिर्वाण-मंचपर पड़े है, अन्तिम दर्शनके लिये चले’ (सोच) आकर दर्शनकर चले हुये । (स्थविरने पूछा) ‘तुम कौन हो ?’ ‘महाराजा, मन्ते ।’ ‘किसलिये आये ?’ ‘सोगी-सेवा होगी (तो) करेगे ।’ ‘होगया, सोगी सुधूपक है, तुमलोग जाओ’—कह कर भेज दिया । उनके जानेके बाद उन्हीं प्रकारसे देवताओंका हन्त्र (= राजा) शक्र (आया) । उसके जानेपर महाप्रह्ला आये । उनकोभी स्थविरने भेज दिया । ब्राह्मणी देवताओंके भजन-आगमनको देखकर—‘यह कौनमेरे पुत्रको बन्दना करकर, जा रहे है’ (सोचती), स्थविरके कमरेक द्वारपर जाकर—‘तात चुन्द । क्या बात है ?’ पूछा । उन्होंने यह बात कह दी । (स्थविरको) कहा—‘मन्ते ! महा-उपासिका आई है’ । ‘अ-समय किसलिये आई है ?’ ‘तात ! तुम्हें देखनेके लिये’ कहकर—‘तात ! पहिले कौन आये थे ?’ पूछा । ‘उपासिके ! चारों महाराजा’ ‘तात ! तुम चारों महाराजासे भी बड़े हो ?’ ‘उपासिक ! यह हमारे माछी जल है ?’ ‘तात ! उनका जानेका बाद कौन आया ?’ ‘देवोंका हन्त्र शक्र’ ‘उसके जानेपर तात ! प्रकाश करते से कौन आये ?’ ‘उपासिके ! यह तुम्हारा भगवान्, शास्ता महाप्रह्ला थे’ । ‘तात ! तुम मेरे भगवान् महाप्रह्लासे भी बड़ा हो ?’ ‘हा उपासिक !’

तब ब्राह्मणीको—‘मेरे पुत्रकी ऐसी सामर्थ्य है, तो मेरे पुत्रका भगवान् शास्ताका कैसी सामर्थ्य होगी ?’—सोचते समय, एक दस पाच प्रकार (= वर्ण) की प्रीति उत्पन्न हो सकल शरीरमें व्याप्त होगई । स्थविरने ‘मेरी माताकी प्राप्ति=सौमनस्य उत्पन्न होगया, यह अब धर्म-उपदेशका काल है’—सोचकर—‘क्या सोच रहा है, महाउपासिके !’—पूछा । उसने कहा—‘तात ! यह सोच रहा हूँ—‘मेरे पुत्रमें यह गुण है, तो उसके शास्त्रात्म कैसा गुण होगा ?’ ‘महाउपासिके ! मेरे शारताके समान, शी, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति-ज्ञान-दर्शनमें कोई नहीं है ।’ (और) विस्तारकर धर्म-देशना कही । ब्राह्मणीने प्रिय पुत्रकी धर्म-देशनाके अन्तर्गत् सोल आपत्तिपत्रम् स्थित हो, पुत्रको कहा—‘तात उपनिषत् । क्यों ऐसा किया ? एसा अमृत मुझे इतने समय तक नहीं दिया ?’ स्थविरने—‘मैंने माता रूपवारा ब्राह्मणीको पोसनाका दाम चुका दिया, इतनेसे (यह) निर्वाह कर लगी’—सोचकर, ‘जा महाउपासिके ।’ (कह), ब्राह्मणीका भेजकर ‘चुन्द ! क्या समय है ?’ ‘भते । बड़े मोरकी घंटा है’—‘मिथु सचको जमा करो ।’ ‘मन्ते ! मिथु-सच जमा है ।’ ‘चुन्द ! मुझे उठाकर धँडओ !’ उठाकर बैठा दिया ।

भगवान्की अनुचा पानेके बाद, आयुष्मान् सारिपुत्रके पादर्वदनाकर, उठते समय***, शास्ताभी धर्मसेनापतिके सम्मानके लिये धर्मासनसे उठकर शकुटीके सामने मणि-फलक पर जा खड़े हुए ।

स्थविर तीनचार प्रदक्षिणाकर चार स्थानो (=अंगों)से वन्दना कर—

“ भगवन् । आजमे असख्य सौ हजार कल्पमे अधिक समय पूर्व अनोमदर्शी सम्पक् संतुद्रके पादमूलमें पड़कर, मने तुम्हारे दर्शनकी प्रार्थना की । वह मेरी प्रार्थना पूरी हुई, तुम्हें प्यार लिया । वह तुम्हारा प्रथम दर्शन था, यह अन्तिम दर्शन, (अब) फिर तुम्हारा दर्शन नहीं होगा ।”

—कह दश-नव-संयुक्त समुज्ज्वल अंजलि को जोड़कर, जगतम् (भगवान्) नश्रके सामने थे, (बिना पीठ दिशाये) सामने मुझ खड़ेही चलकर वन्दना कर, चल दिये । भगवानने घेरकर खड़ेहुये भिक्षुओंको कहा—

“ भिक्षुओ । अपने ज्येष्ठ आताका अनुगमन करो ।”

उस समय एक सम्पक् संतुद्रको छोड़कर सभी भिक्षु, भिक्षुणी उपासक उपासिका, चारों परिपक्व जेतवनसे निहली । श्रावस्ती नगरवासियोने भी, ‘सारिपुत्र स्थविर सम्पक्संतुद्रको पूछ परिनिर्वाणकी इच्छाने निकटे हैं, उनका दर्शन करैं’—सोच, नगरद्वारोको अवकाशरहित बनाते निकलकर, गंध माला हाथमें ले, केलाको गिलेरे—अब हम ‘कहा महा प्रज्ञे’ हैं ? कहाँ धर्मसेनापति बैठे हैं ?—पूछते, किसने पास जायेंगे । ‘स्थविर किसके हाथमें शास्ताको सौंपकर जा रहे हो’ इसप्रकारसे रोते फाटते स्थविरका अनुगमन किया ।

स्थविर महा प्रज्ञामें स्थित होनेसे—‘सबको ही यह गंतव्य (=अन्-अतिक्रमणाय) मार्ग है’ लोगोको उपदेशकर, ‘तुम भी आबुसो ! ठहरो, दशबल (=बुद्ध)के विषयमें येपवाही मत करना’ (कह), भिक्षु सबको भी लोटाकर, अपनी परिपक्वके साथ चलदिये । तब आयुष्मान् सारिपुत्र सब एक एक रात्रिधामकर, मार्गमें एक सप्ताह मनुष्योको उपदेश करते, सार्यकालको नालकप्राम पहुच, भ्रामद्वारपर वर्गदके वृक्षके नीचे खड़े हुये । तब स्थविरका भागिनेय उपरेवत गांवसे बाहर जाते पत्त, स्थविरको देखकर पास जा वन्दनाकर, खड़ा हुआ । स्थविरने उसे कहा—“ घरमें तेरी अय्यका (=नानी) है ? ”

“ मन्ते । है ”

“ जाओ, हमारे यहाँ आनेकी बात रहो । किसलिये आये पूछनेपर—आज एक रात गांवक भीतर जंगे । जन्म गृह (=पातोवरक)को ताफरुओ, और पांच सौ भिक्षुओंक रहने का स्थान ठीक करो । ”

उसने जाकर—“ नानी ! मेरे मामा आये हैं । ”

“ इस समय कहाँ है ? ” “ ग्राम द्वारपर । ”

“अबेलेहो, या गोर भी कोई है ? ” “पाचसौ भिक्षु हैं ।”

“किस कारणसे आये ?”

उसने यह (सब) हाल कह सुनाया । ब्राह्मणी—इतनोंके लिये क्या चासम्मान साफ करा रहे हैं ? जयानीमें प्रमजित हो, अब बुझायेमें क्या गृहस्थ होना चाहते हैं ?—सोचती, जन्म घरको साफ करवा, पाँचसौके धम्मेका स्थान बनवा, मशाल (= दैत-दीपिका) जलाकर, स्थविरके लिये सादमी भेजा । स्थविर, मिश्रुओंक साथ ग्रामाद् (=काठे)पर यह जन्मघरमें प्रविष्ट हो बैठे । बैठकर, मिश्रुओंको उनके आमनपर भेज दिया । उनक जाने मात्रसेही स्थविरको खून गिरनेकी सत्त बामारी उत्पन्न हुई, मरणान्तर पाड़ा हाने लगी । ब्राह्मणी—‘पुत्रकी कथा सुने अच्छी नहीं लगती’—(सोच), अपने पास गृहक द्वारपर बसा रही ।

चारों महाराजा (देवता) धम्म-सेनापति कहाँ बिहसत हैं खोजने सोचन—‘नालक ग्राममें जन्मघरमें परिनिर्वाण मंचपर पड़े हैं, अन्तिम दर्शनके लिये चले’ (सोच) आकर यदनाकर बैठे हुये । (स्थविरने पूछा—) ‘तुम कौन हो ?’ ‘महाराजा, भन्ते ।’ ‘किसलिये आये ?’ ‘रोती-सेवा होगी (तो) करेंगे ।’ ‘होगया, रोती सुधूपक है, तुमयोग जाओ’—कह कर भेज दिया । उनके जानेके बाद उभा प्रकारसे देवताओंका इन्द्र (=राजा) शक (आया) । उनके जानेपर महाप्रह्ला आये । उनकोभी स्थविरने भेज दिया । ब्राह्मणी देवताओंके गमन आगमनको देखकर—‘यह कौनमर पुत्रको वन्दना करकर, जा रहे हैं’ (सोचती), स्थविरके कमरके द्वारपर जाका—‘तात सुन्द ! क्या बात है ?’ पूछा । उन्होंने यह बात कह दी । (स्थविरको) कहा—‘भन्ते ! महा उपासिका आई है’ । ‘अ समय किसलिये आई है ?’ ‘तात ! तुम्हें देखनके लिये’ कहकर—‘तात ! पहिले कौन आये थे ?’ पूछा । ‘उपासिके ! चारो महाराजा’ ‘तात ! तुम चारो महाराजोंसे भी बड़े हो ?’ ‘उपासिके ! यह हमारे माळी जेसे हैं ?’ ‘तात ! उनके जानेक बाद कौन आया ?’ ‘देवोंका इन्द्र शक्त’ ‘उमने जानेपर तात ! प्रकाश करते से कौन आये ?’ ‘उपासिके ! यह तुम्हारा भगवान्, शास्ता महाप्रह्ला थे’ । ‘तात ! तुम मरे भगवान् महाप्रह्लासे भी बड़कर हो ?’ ‘हां उपासिके !’

तब ब्राह्मणीको—‘मेरे पुत्रका ऐसी सामर्थ्य है, तो मेरे पुत्रक भगवान् शास्ताकी कैसी सामर्थ्य होगी ?’—सोचत समय, एक दम पाच प्रकार (=वर्ण)की प्रीति उत्पन्न हो सकुन शरीरमें व्याप्त होगई । स्थविरने ‘मेरा माताको प्राप्ति=सोमनस्य उत्पन्न होगया, यह अब धम्म-उपदेशका काल है’—सोचकर—‘क्या सोच रही है, महाउपासिक !’—पूछा । उमने कहा—‘तात ! यह सोच रही हूँ—‘मेरे पुत्रम यह गुण है, तो उसके शास्तामें कैसा गुण होगा ?’ ‘महाउपासिके ! मेरे शास्ताके समान, शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति-ज्ञान-दर्शनमें कोई नहीं है ।’ (आर) विस्तारकर धर्म-देशना कही । ब्राह्मणीन प्रिय-पुत्रकी धर्म-दर्शनाके अन्तर्म खोल आपत्तिफलमें स्थित हो, पुत्रको कहा—‘तात उपतिथ्य ! क्यों ऐसा किया ? क्या अमृत सुने इतने समय तक नहीं दिया ?’ स्थविरने—‘मेन माता रूपमारा ब्राह्मणीको पोसनेका दाम चुका दिया, इतनेसे (यह) निर्वाह कर लगी’—सोचकर, ‘जा महाउपासिके !’ (कह), ब्राह्मणीको भेजकर ‘सुन्द ! क्या समय है ?’ ‘भन्ते ! बड़े मोरकी बेल है’—‘मिश्रु सबको जमा करो ।’ ‘भन्त ! मिश्रु सब जमा है ।’ ‘सुन्द ! सुने उठाकर बैठाओ !’ उठाकर बैठा दिया ।

स्थविरने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“आहुसो । तुम्हें मेरे साथ विचरते चोवालोंस वर्ष होगये, जो कोई मेरा कायिक या वाचिक (कर्म) तुम्हें अरुचिकर हुआ हो , आहुसो ! उसे क्षमा करो । ”

“ भन्ते ! इतने समय तक आपको छायाकी भांति विना छोड़े विचरते, हम अरुचिकर कुछ भी नहीं हुआ । बित्तु आप, हमारे (दोषोंको) क्षमा करें । ”

तत्र स्थविर महावीरको रोजचक्र मुखको टांक, दाहिनी करवट लेंटे । शास्ताकी भांति प्रमत्ते नय समापत्तिथो (= ध्याना) में अनुलोम-प्रतिलोमसे पहुँचकर, फिर प्रथम ध्यानसे लेकर चतुर्थ ध्यान पर्यन्त ध्यान लगाया । उम (चतुर्थ-ध्यान) से उठनेके बाद ही (यह) निर्गणको प्राप्त हुये । उपासिका ‘ मेरा पुत्र क्यों कुछ नहीं बोलता है ’—मोच, पीठ-पाद मलकर ‘ परिनिर्वाण प्राप्त होगये ’ जान चिल्ला कर, पैरोर्म गिरकर—‘ तात ! पहिले हमने तुम्हारे गुणोंको नहीं जाना ’ रोने लगी ।

तत्र शालका महामण्डप बनना, मंडपके बीचमें महाकृतागारको स्थापितकर, (उसमें शरीर रख), उड़ा उत्सव किया । (उस समय) देवोंके भीतर मनुष्य, मनुष्योंके भीतर देवता (भीड़ लगा रहे) थे । उनमें वह उपासिका भी घूम रही थी । मोदी होनेके कारण एक ओर न हट सकनेसे मनुष्योंके बीचमें गिर पड़ी । मनुष्य उसे न देख कुचलते चले गये । वह वहीं मरकर त्रयास्त्रिंश (देव) भवनके कनक विमानमें जाकर पैदा हुई ।

लोगोंने सप्ताहभर उत्सव मना, सब गंधोसे चित्नी चिता सजाई । स्थविरके शरीरको चितामें रख, खसके पुजोसे लिपना दिया । दाह-स्थानम सब रात धर्म उपदेश होता रहा । अनुत्तम स्थविरने सब गंधोदकसे स्थविरको चिता बुसाई । सुन्द स्थविर धातुओं (= अस्थियों) को परिस्त्रावण (जलछाका) में रख,—‘ अब मैं यहाँ नहीं ठहर सकता, अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्म सेनापति सारिपुत्र स्थविरके परिनिर्वाण होनेकी बात सम्यक्-संजुद्धको कहूँ ’—(सोच), धातु-परिस्त्रावण और स्थविरके पात्र चीरको लेकर धावस्ती चले । एक स्थानमें दो रात भा न बसकर, धावस्ती पहुँच गये । (जाकर) जहाँ उनको उपाध्याय धर्म भंडारी आयुमान् आनन्द थे, वहा गये । जेतवन महाविहारकी पुकारिणीमें नहाकर ‘ मेरे उपाध्याय धर्म भाण्डागारिक जेठ भाई स्थविरके बड़े मित्र हैं, उनके पास जाकर (फिर) शास्ताके पास जाऊँगा (सोचकर बहा गये) । (वहासे) भगवान् के दर्शनके लिये । एक एकको दिखलाकर—“ यह उन (= सारिपुत्र) का पात्रचीवर है, और यह धातु परिस्त्रावण है ’ कहा ।

शास्ताने हाथ फैला धातु परिस्त्रावणको ले, हथेलीपर रख, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“ भिक्षुओं ! जिस भिक्षुने पहिले (एक) दिन अनेकपौ, प्रातिहार्य करके निराग होनेके लिये अनुग मांगी, उसकी ही यह आज शैल उम सपान धातुये (= दृष्टिया) दिखाई पड रही है । भिक्षुओं ! सौ हजार कल्पमें अत्रि समय तक पारमिता (= दान आदि) पूर्णकिया हुआ यह भिक्षु था । मेरे प्रवर्तित (= घुमाये) धर्म-चक्र (= धर्मके चक्के) को अनु प्रवर्तन कानेवाला, यह भिक्षु था । । महाप्रज्ञवान् यह भिक्षु था । । अलपेच्छ (= त्यागी) ।

चुन्द श्रमणोद्देश आयुमान् सारिपुत्रके पाग चावरको ए जहा श्रावन्तो, अनाथ पिडक का आराम जेतउन था, जहा आयुमान् आनन्द थे, वहा गये । जावर आयुप्मान् आनन्दको अभिवादनका बोले—

“ भन्ते ! आयुप्मान् सारिपुत्र परिनिर्मुक्त (=निर्वाण प्राप्त) हो गये, यह उनका पाग-धीवर है, यह उनका धातु परिस्त्रावण है ।”

“ आवुस चुन्द ! यह क्या (=बात) रूपी भेंट है, चलो चलें, आवुस चुन्द ! जहा भगवान् हैं, चरुत्तर भगवान्को यह बात कहें ।”

“ अज्ज भन्ते । ”

तब आयुप्मान् आनन्द और चुन्द श्रमणोद्देश जहा भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुमान् आनन्दने भगवान्को कहा—

“ भन्ते ! यह चुन्द श्रमणोद्देश पेमा कह रहा है —“ भन्ते । आयुप्मान् सारिपुत्र परिनिर्मुक्त हो गये, यह उनका पाग धीवर है । भन्ते ! ‘ आयुप्मान् सारिपुत्र परिनिर्मुक्त हो गये ’ सुनकर मेरा शरीर हीला पड़ गया (=मथुरक जानो), मुझे दिशायें नहीं सूझती, बात भी नहीं सूझ पटती ।

“ आनन्द ! क्या सारिपुत्र शीतल-रक्तको लेकर परिनिर्मुक्त हुए, या समाधि-स्कन्धका लेकर ०, या प्रज्ञा-स्कन्धको ०, या विमुक्ति स्कन्धको लेकर या विमुक्ति-ज्ञान दर्शन-स्कन्धको ले परिनिर्मुक्त हुये ? ”

यह भिन्नु था । संतुष्ट प्रविविक्त (=एकांतप्रेमी) था, =असंसृष्ट था, उद्योगी, पाप निदक यह भिन्नु था । प्राप्त महान् संपत्तिशोको पाँच सौ जन्मो (सरु) छोड़कर, यह भिन्नु प्रयत्नित होता रहा । देवो भिन्नुओ ! महाप्रज्ञकी धातुओं को ।—

जो पाँच सौ जन्मो तक मनोरम भोगोंको छोड़ प्रयत्नित होता रहा । उस वीत राग जितेन्द्रिय, निर्वाण प्राप्त सारिपुत्रकी वन्दना करो ॥ १ ॥

शान्ति (=क्षमा) वर्णमं पृथक्की समान हो (वह) नहीं कुपित होता था, न हङ्गाओं के घमण्णती होता था, (वह) अनुत्कर्षक, कारणिक निर्वाणको गया, निर्वाणप्राप्त सारिपुत्रकी वन्दना करो ॥ २ ॥

जेमे धाण्डाऊ-पुत्र नगरमे प्रविष्ट हो, मन नीचा किये, कपाल हाथमें लिये, विचरता है, एसेही यह सारिपुत्र विचरता था, निर्वाणप्राप्त ॥ ३ ॥

जसे दूटे सौगा गाला साँड, नगरके भीतर बिना कियीको मारने विचरता है । वैसेही यह सारिपुत्र विचरता था, निर्वाण प्राप्त ॥ ४ ॥

इस प्रकार भगवान् न स्वविरक्त गुणको वर्णन किया । जेमे जेमे भगवान् स्वविरक्त गुणको वर्णन करतेथे, वैसे वैसे आनन्द अपनेको समाल न मकते थे ।

“मन्ते । आयुष्मान् सारिपुत्र । शीलरत्नम् लेकर परिनिर्वात हुये ० न विमुक्ति ज्ञान दर्शन-स्वप्नको लेकर परिनिर्वात हुये । बलि मन्ते । आयुष्मान् सारिपुत्र मेरे अनादक (=उपदेशक), ज्ञात-अज्ञात रसुभोज विनापक (=वतलनेवाले), संगर्भक = प्रेरक, समुत्तोजक, संप्रदंशक थे । धर्मदेशनाने अभिलाषी, सप्रह्वचारिणिक अनुशासक थे । यह आयुष्मान् सारिपुत्रका धर्म (=म्यभाव) था । इस धर्म-भोगको = धमानुपहको हम रमण करते हैं ।”

“क्या आनन्द । मेने इसे पहिले नहीं कह दिया है--‘समी प्रियों = मनापोसे नाना-भाव (=जुदाई) = विनाभाव = अन्यथाभाव (होनाहै), यह आनन्द । कहां मिलेगा । जो कुछ उत्पन्न है = हुआ है = संसृत है, वह सब नाश होनेवाला है । ‘हाय वह न नाश हो’ यह समझ नहीं है । इस प्रकार आनन्द ! महाभिक्षु संघके रहनेपर भी मारवाला सारिपुत्र परिनिर्वात हो गया । आनन्द । वह अब कहां मिलनेवाला है । जो कुछ उत्पन्न (=जात) है = हुआ है (=भूत) संसृत है, वह सब नाश होनेवाला है । ‘हाय वह न नाश हो’ यह समझ नहीं है । इसलिये आनन्द । आत्म दीप (=अपने अपना मार्ग-प्रदर्शक, दीपक) = आत्म-शरण (=स्वावलम्बी) अन् अन्य शरण (=अपरावलम्बी) होकर विहरो, धर्म दीप = धर्म शरण = अन् अन्यशरण होकर (विहरो) । आनन्द । वैसे भिक्षु आत्म शरण० होता है ? आनन्द ! यहाँ भिक्षु कायामे कथानुपवसी हो० विहरना है । वेदनाओंमें । वित्तमें०, धर्मोंमें० । इस प्रकार आनन्द । भिक्षु० आत्म शरण० होता है । आनन्द । जो कोई, इस वक्त या मेरे न रहने (=अत्यय) क बाद० आत्मशरण० हो विहार करगे, (सब इसी तरह) ० ।

मोगलानका परिनिर्वाण (वि. पू. ४२७) ।

‘एक समय तेरिंछ लोग एकत्रितहो मलाह करने लगे—‘जाननेही आयुषो ! किसकारण से, किमलिये, भ्रमग मोतमका बहुत लाभ सत्कार होगया है ?’ ‘एक महासौद्रत्यायनके कारण हुआ है । वह दयशेकमी जाकर देवताओंके कामको पूछकर, आकर मनुष्योंको कहता है नरुमें उत्पन्न हुआए भी कर्मको पूछकर, आकर, मनुष्यों को कहता है । मनुष्य उसको बात को सुनकर बड़ा लाभ-सत्कार प्रदान करते हैं । यदि उसे मार सकें, तो वह लाभ सत्कार हमें होने लगेगा ।’ तब (उन्होंने) अपने सेवकोंको कहकर एकद्वार कार्पायण पाकर, मनुष्य-मारनेवाले गुडोको बुलवाकर—‘महासौद्रत्यायन स्थविर काल-शिलामें घास करता है, यहा, जाकर उसे मारो’ (कह) उन्ह कार्पायण दे दिय । गुडों (=चोरों)ने घनके लोभसे उने स्वीकार कर, स्थविरको मारने लिये जाकर, उनके घास स्थानको घेर लिया । स्थविर उनके घेरनेका बात जानकर कुर्त्तीक छिद्रसे (बाहर) निकल गये । उन्होंने स्थविरको न देख, फिर दूसरे दिन जाकर घेरा । स्थविर जानकर छत फोड़कर आकाशमें चले गये । इसप्रकार वह न प्रथम मासमें ॥ दूसरे मासमेंही स्थविरका पकड़ सके । अन्तिम मास प्राप्त होनेपर, स्थविर अपन किये कर्मका परिणाम जानकर स्थानसे नहीं हटे । घातकोंने जाकर स्थविरको पकड़कर, उनकी हड्डीको

तडुल-कण जैसा करके मार डाला । तब उन्हें मरा जानकर एक हाड़ीके पोछे डालकर चले गये । स्थविरने 'शास्ता को देखकाही मरुंगा' (मोन), शरीरको ध्यानरूपी वेष्टनसे वेष्टितकर, स्थिरकर, आकाश-मार्गमें शास्ताके पास जा, शास्ताको धन्दना कर " भन्ते ! परिनिर्मुक्त होऊ गा'—कहा ।

" परिनिर्मुक्त होओगे, मौट्ठल्यायन ! " " भन्ते हा । "

" कहा जाकर ? " " भन्ते ! काल-शिला प्रदेशमें । "

शास्ताको धन्दनाकर काल शिला जा परिनिर्मुक्त हुये ।

उष्काचेल सुत्त ।

'ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान्, सारिपुत्र मौट्ठल्यायनने परिनिर्वाणके थोड़ी ही देर बाद, बड़े भारी भिक्षु-संघके साथ, बज्जी (दश)में गंगा नन्के तीरपर उष्काचेल (=उष्काचेल)में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् भिक्षु संघके साथ गुली जगहमें बट हुये थे । एव भगवान्ने भिक्षु-संघको मौन देखकर भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—

" भिक्षुओ ! सुने यह परिपद् शून्य सी जान पड़ती है । सारिपुत्र, मौट्ठल्यायनके परिनिर्वाण न हुये समय, भिक्षुओ ! मुझे यह परिपद् अ शून्य मालूम होती थी । जिम दिशामें सारिपुत्र मौट्ठल्यायन विहरते थे, वह दिशा अपेक्षा रहित (=किर्ण और की न चाहवाली) होती थी । भिक्षुओ ! अतीतकालमें भी जो कोई अर्हत् सम्यक् संजुद्ध हुये, उन भगवानोंकी भी इतनी ही उत्तम (=परम) धावकोंकी जोड़ी थी, जेने कि मेरे सारिपुत्र मौट्ठल्यायन । जो भी भिक्षुओ ! भविष्य कालमें अर्हत् सम्यक् संजुद्ध होगे, उन भगवानों की भी इतनी ही उत्तम (=परम) धावकोंकी जोड़ी होगी, जैसे कि मेरे सारिपुत्र मौट्ठल्यायन । आश्चर्य है भिक्षुओ ! धावकोंको । अद्भुत है भिक्षुओ ! धावकोंको, जो शास्ता (=गुरु) के शासन-कर (=धर्म-प्रचारक) हों, उपदेशक हों ; और चारों (प्रकारकी) परिपद्के प्रिय = मनाप और गौरवारूपक हों । आश्चर्य है भिक्षुओ ! तथागतको, अद्भुत है भिक्षुओ ! तथागतको, इस प्रकार के धावकोंकी जोड़ीके परिनिर्मुक्त हो जानेपर भी, तथागतको शोक=परिदेन नहीं है । सो भिक्षुओ ! वह कहाँसे मिले । जो कुछ जान=भूत=संस्कृत है, वह सब नाश होनेवाला है । 'हाय ! यह न नाश हो' इसका मौन नहीं । भिक्षुओ ! जैसे महान् वृक्षके खड़े रहते भी (उसके) मारवाले महास्कन्ध (=शाखायें) टूट जायें, इसी प्रकार भिक्षुओ ! तथागतको, भिक्षु-संघके रहते भी, मारवाले सारिपुत्र, मौट्ठल्यायनका परिनिर्वाण है । सो वह भिक्षुओ ! कहाँ से मिले ? जो कुछ जान=भूत=संस्कृत है, वह सब नाश होनेवाला है । इसलिये भिक्षुओ ! आत्म-दीप=आत्म शरण=अनन्य गण्य हो कर विहरोगे । "

१ सं नि ४५ २ ४ । २ अ क. " धमसेनापति (=सारिपुत्र) कार्तिकमासकी पूर्णिमाको परिनिर्मुक्त हुये, महामौट्ठल्यायन उसने १५ दिन बाद वृष्णपक्षके उपोषथ (अमानस्या) को । शास्ता दोनों अपधारकोंने परिनिर्वाण हो जाने पर महामिक्षु-संघके साथ महामंडल्यमें चारिवा करते क्रमशः उष्काचेल नगर (=हानीपुर जिला मुन्नाफपुर ?) को प्राप्त हो, वहां विंदाकर गंगाकी रेतीमें विहार कर रहे थे । "

महापरिनिव्राण-सुत्त (वि. पू. ४२७-२६) ।

‘ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें गृध्रकूट-पर्वतपर विहार करते थे ।

उस समय राजा मागध अजातशत्रु वंदेहीपुत्र वज्जीपर चढ़ाई (= अभियान) करना चाहता था । वह ऐसा कहता था—‘ मैं इन ऐसे महर्द्धिक (= धेभय शाली), = ऐसे महानुभाव, वज्जियोंको उच्छिन्न करूंगा, वज्जियोंका विनाश करूँगा, उनपर आफत ढाऊँगा ।’

तब ० अजात शत्रु ० ने मगधके माहात्म्य (= महामंत्री) वर्षकार ब्राह्मणको कहा—

“ आओ ब्राह्मण ! जहा भगवान् हैं, वहा जाओ । जाकर मेरे वचनसे भगवान् के पैरोमें शिरसे घन्दना करो । आरोग्य = अरुण आतंक, लघु उत्थान (= फुरती), सुखविहार पूछो—‘ मन्ते ! राजा ० घन्दमा करता है, आरोग्य ० पूछता है ।’ और यह कहो—‘ मन्ते ! राजा ० वज्जियों पर चढ़ाई करना चाहता है, वह ऐसा कहता है—‘ मैं इन ० वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा ० ।’ भगवान् जेमा तुम्हें उत्तर दें, उसे ममन्नकर (आकर) सुने कहो, तथागत अ-यथार्थ (= वितथ) नहीं योछा करते ।’

“ अच्छा भो ! ” कह वर्षकार ब्राह्मण अच्छे अच्छे यानोंको जुड़वाकर, बहुत अच्छे यानपर आरुढ़ हो, अच्छे यानोंके साथ, राजगृहसे निरग्न, (और) जहा गृध्रकूट पर्वत था, वहा चला । जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जानर, यानसे उतर पैदल ही, जहा भगवान् थे, वहा गया । जाकर भगवान् के साथ संमोदनकर एक ओर बठा, एक ओर घेठर भगवान् को बोला—

“ गौतम ! ० ‘ राजा ० आप गौतमके पैरोमें शिरसे वदना करता है ० । ० वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा ० । ’ ”

उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान् के पीछे (खड़े) भगवान् को पखा क्षल रहे थे । तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

“ आनन्द ! क्या तूने सुना है, (१) वज्जी वरावर (बेटकमें) इकट्ठा (= सन्निपात) होनेवाले है = सन्निपात बहुल है ? ”

“ सुना है, मन्ते ! वज्जी वरावर ० । ”

१ दी नि २३ (१६) । २ अ क “ गंगाके घाटेके पास आधा योजन अजात शत्रुका राज्य था, और आधा योजन लिच्छवियोंका । । वहा पर्वतके पाद (= जह) से बहुमुख्य-सुगंध वाला माल उतरता था । उसको सुनकर अजात शत्रुके- ‘ आज जाऊँ कल जाऊँ ’ करतेही, लिच्छवी एकराय, एकमत हो पहिलेही जाकर सब ले लेते थे । अजातशत्रु पीछे जाकर उस समाचारको पा क्रुद्ध हो चला जाताथा । वह दूसरे वर्ष भी वैसाही करते थे । तब उसने अत्यन्त क्रुपित हो ऐसा सोचा—‘ गण (= प्रजानर) के साथ युद्ध मुश्किल है, (उनका) एक भी प्रहार नकार नहीं जाता । किसी एक पंडितके साथ मंणा करके करना अच्छा होगा । (सोच) उसने वर्षकार ब्राह्मणको भेजा ।

“आनन्द ! जब तक बज्जी (बैठकमें) इकट्ठा होनेवाले रहेंगे = सन्निपात-बहुल रहेंगे, (तब तक) आनन्द ! बज्जियोंकी वृद्धि ही समझना, हानि नहीं । (२) क्या आनन्द ! तुने सुना है, बज्जी एक हो बैठक करते हैं, एक हो उत्थान करते हैं, बज्जी एक हो करणीय (= कर्त्तव्य) को करते हैं ? ”

“ सुना है, भन्ते ! ० । ”

“ आनन्द ! जब तक ० । (३) क्या ० सुना है, बज्जी अ प्रजस (= गैरकानूनी) को प्रजस (= विहित) नहीं करते, प्रजस (= विहित) का उच्छेद नहीं करते । जैसे प्रजस है, वैसे ही पुराने बज्जि धर्म (= बज्जि नियम) को ग्रहणकर, यथावत करते हैं ? ”

‘ भन्ते ! मैंने यह सुना है । ’

“ आनन्द ० ! जब तक कि ० । (४) क्या आनन्द ! तुने सुना है—बज्जियोंके जो महल्लक (घृष्ट) हैं, उनका (यह) सत्कार करते हैं, = गुह्यार करते हैं, मानते हैं, पूजते हैं, उनकी (बात) सुनने योग्य मानते हैं । ” “ भन्ते ! सुना है ० । ”

आनन्द ! जब तक कि ० । (५) क्या सुना है—जो वह कुल-स्त्रियां हैं, कुल-कुमारियां हैं, उन्हें (वह) छीनकर, जबरदस्ती नहीं बनाते ? ” “ भन्ते सुना है ० ? ”

“ आनन्द ! ० जब तक ० । (६) क्या ० सुना है—बज्जियोंक (भगवत्के) भीतर या बाहरके जो चैत्य (= चौक = देव स्थान) हैं, उनका सत्कार करते हैं, ० पूजते हैं । उनकेलिये पहिले किये गये दानको, पहिलेकी गई धर्माभुसार बलि (= वृत्ति) को, लोप नहीं करते ? ”

“ भन्ते ! सुना है ० ? ”

१ अ फ “ आवश्यक बैठकके विगुल (= सन्निपात-भेरी) के शब्दके सुनते ही, खाते हुये भी, आभूषण पहिनते भी, बख पहिनते भी, अथ खाये ही, अथ भूषित ही, बख पहिनते हुये ही एक (= समग्र) हो जमा होते हैं, जमा हो सोचकर, मंत्रणाकर, कर्त्तव्य करते हैं । ”

२ अ फ “ पहिले न किये गये, शुल्क, या बलि (= कर) या दंडको लेनेवाले अ प्रजस करते हैं । पुराना बज्जि-धर्म यहा पहिले बज्जि राजा लोग ‘ यह चोर है = अप रार्था है ’ (कह) लाकर दिखानेसे, ‘ इस चारको बांधो ’ न कह, विनिश्चय-महामात्य (= न्यायाधीश) को देते हैं, वह विचारकर अचोर होनेपर छोट दते थे, यदि चोर होता, तो अपने कुंठ ॥ यहकर, ‘ व्यवहारिक ’ को दे देते हैं । वह भी विचारकर अचोर होनेपर छोट देते, यदि चोर होता, तो ‘ सुत्रधार ’ को दे देते हैं । वह भी विचारकर अचोर होनेपर छोट देते, यदि चोर होता, तो ‘ अष्टकुलिक ’ का दे देते । वह भी वैयाह कर सेनापतिका, सेनापति उपराज को, उपराज राजा (= राष्ट्रपति) को, राजा विचारकर यदि अचोर होता तो छोट देता । यदि चोर (= अपराधी) होता तो प्रेणी पुस्तक (= कानूनकी किताब) बचता । उसमें—‘ जियने यह किश उसको पेमा दंड हो ’ लिखा रहता है । राजा उसकी क्रियाको उसने मित्राकर उसके अनुसार दंड करता ।

“जब तक ०। (७) क्या सुना है,—वज्जीलोग अर्हंतो (= पूज्यो) की अच्छी तरह धार्मिक (= धर्मानुसार) रक्षा=आवरण,=गुंति करते हैं । किसलिये ? भविष्यमें अर्हंत राज्यमें आवें, आवे अर्हंत राज्यमें सुखसे विहार करें ।” “सुना है भन्ते ! ०।”

“जब तक ० ।”

राज भगवान्ने ०धर्पकार ब्राह्मणको आमंत्रित किया—

“ब्राह्मण ! एक समय में वैशालीमें सारन्दद चैत्यमें विहार करता था । वहाँ मैंने वज्जियोको यह सात अपरिहाणीय धर्म (=अ-पतनके नियम) कहे । जबतक ब्राह्मण ! यह सात अपरिहाणीय-धर्म वज्जियोमें रहेंगे, इन सात अपरिहाणीय धर्मांमें वज्जी (लोग) दितलाई पड़ेगे, (तबतक) ब्राह्मण ! वज्जियोका वृद्धि ही समझना, परिहानि नहीं ।”

ऐसा कहते पर ०धर्पकार ब्राह्मण भगवान्को बोला—

“हे गौतम ! एकभी अपरिहाणीय-धर्मसे वज्जियोकी वृद्धि ही समझनी होगी, सात अ-परिहाणीय धर्मांकी तो बातही क्या ? हे गौतम ! राजा० को उपलाप (= रिश्वत देना), या आपसमें फूटनो छोड़, युद्ध करना ठीक नहीं । हन्त ! हे गौतम ! शय हम जाते हैं, हम बहुत कृत्य=बहु करणीय (= बहुतकाम वाले) हैं ०”

“ब्राह्मण ! जिसका तू काल समझता है ०”

तब भगवद् महामात्य धर्पकार ब्राह्मण भगवान्के भाषणको अभिनन्दनकर, अनुमोदनकर आसनसे उठकर, चला गया । तब भगवान्ने ०धर्पकार ब्राह्मणके जानेके थोड़ीही देर बाद आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

“जाओ आनन्द ! तुम जितने भिक्षु राजगृहके आसपास बिह्रते हैं, उन सबको उपस्थानशालामें एकत्रित करो ।”

“अच्छा भन्ते !” “भन्ते ! भिक्षुसंघको एकत्रित कर दिया, अब भगवान् जिसका समय समझें ।

तब भगवान् आसनसे उठकर जहां उपस्थानशाला थी,—वहा जा, बिटे आसनपर बैठ । बैठकर भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—“भिक्षुओ ! तुम्हें सात अपरिहाणीय धर्म उपदेश कहता हूँ, उन्हें सुनो कहता हूँ ।”

१ अ क “राजाके पास गया । राजाने उसको पूछा—‘आचार्य ! भगवान्ने क्या कहा ?’ । उसने कहा—‘भो ! श्रमण०के कथनसे तो वज्जियोंकी किसी प्रकार भी रक्षित नहीं जा सकता है, उपलापन और आपसमें फूट होनेसे रक्षित जा सकता है’ । तब राजाने कहा—‘उपलापन से हमारे हाथी घोड़े नष्ट होंगे, भेद (=फूट)से ही पकड़ना चाहिये । (फिर) क्या करेंगे ?’

“तो महाराज ! वज्जियोंको लेकर तुम परिपदमें बात उठाओ । तब मैं—‘महाराज ! तुम्हें उनसे क्या है ? अपनी छुपि, वाणिज्य करके यह राजा (=प्रजातन्त्रके सभासद्) जीयें—बहक चला जाऊँगा । तब तुम बोलना—‘क्योजी ! यह ब्राह्मण वज्जियोंके सम्बन्धमें होती बातको रोकता है’ । उसी दिन मे उन (=वज्जियो) के लिये भेंट (=पर्णाकार)

“ अच्छा भन्ते । ”

(१) भिक्षुओ ! जय तसु भिक्षु चार चार (=अभाक्षण) हकदा होनेवाले =सन्निपात-
बहुल रहेंगे; (तब तसु) भिक्षुओ ! भिक्षुओंकी धृष्टि समाना, दानि नदी । (२) जय तसु
भिक्षुओ ! भिक्षु एक ही चक्र करैंगे, एक ही उत्थाप करैंगे, एक ही संघके करणीय (कामो)

भेजंगा, उसे भी पन्द्रहवें मेरे ऊपर दोषारोपणकर, घघन, ताड़न आदि १ कर, छुरसे मुड़न करा
मुझे नगरसे निकाल देना । तब मैं कहूंगा—मने तर नगरम (=प्रकार) और परिषा
(=साह) घनवाई है, मैं दुर्बल तथा गंभीर स्थानोंको जाननाहूँ, अब जलदी (मुझे)
सोचा कहंगा । ऐसा सुनकर बोलेना—‘तुम जाओ’ ।

“ राजा ने सब किया । लिच्छवियों उमके निशालने (=निर्गमन)को सुनकर
कहा—‘महाग मायाओ (=राज्ञे), उसे गंगा न उराने दो ।’ तब किन्हीं किन्हींके हमारे
लिये कहनेसे तो घर (राजा) ऐसा करता है, कहनेपर,—‘तो भगे ! मानेदो’ । उसने जाकर
लिच्छवियों द्वारा—‘किपलिये जाये ?’ पूछनेपर, वह (मय)हाल कह दिया । लिच्छवियोंने—
‘थोड़ीसी बातके लिये इतना भारी दंड करना युक्त नहीं था’ कहकर—‘वहा तुम्हारा क्या
पद (=स्थानांतर) था’—पूछा । ‘मैं विनिश्रय महामात्य था’—(कहनेपर)—‘वहा भी
(तुम्हारा)वही पद रहे’—रहा । यह सुनकर तौरसे विनिश्रय (=इन्साफ) करता था । राजकुमार
उसके पास बिधा (=शिलप) प्रहम करने थे । अपने गुणसे प्रतिष्ठित होशनेपर उमने एक
दिन एक लिच्छविको एक ओर लजाकर—‘तेत (=केशर=कपारी) जातने हैं ?’ हा जोतते
हैं । ‘दो घेल जोतका ?’ हा, दो घेल जोतकर—कहकर छोट आया । तब उसको
दूसरेके—‘आचार्य ! (उपने)क्या कहा ?’—पूछनेपर, उमने कहा दिया । (तब) मेरा विद्वत्स
न कर, यह ठीक ठीक नहीं बनजाता है’ (मोच) उमने बिगाड़ कर लिया । महाग दूसरेदिनभी
एक लिच्छविको एकओर लेजाकर ‘किम व्यजन (=तेमन=तरकारी)से भोजन किया’ पूछकर
लौटनेपर, उमनेभी दूसरने पूछकर, न विश्रामकर वेनेही बिगाड़ कर लिया । महाग किसी
दूसरे दिन एक लिच्छविको एकान्तमें लेजाकर—‘बड़े गरौब हो न ?’—पूछा । ‘किमने ऐसा
कहा ?’ अमुक लिच्छवीने । दूसरकामो एक आर लेजाकर—‘तुम कायर हो क्या ?’
‘किपने ऐसा कहा ?’ अमुक लिच्छवीने । इस प्रकार दूसरेके न कहे हुयेको कहते
तीन वर्ष (४२५—४२३ वि पू.) में उन राजानोम परस्पर ऐसा पूट डाल दो, कि दो एक
रास्तेसे भी न जाते थे । वेसा करके जमा होनेका नगर (=सन्निपात भेरी) बनजाया ।

लिच्छवी—‘मालिक (=ईश्वर) लोग जमा हो’—कहकर नहीं जमा हुये । तब
उस महागने राजाको जलदी आनेके लिये खबर (=शासन) भेजा । राजा सुनकर
सैनिकनगरा (=चलभेरी) बज्राकर निकला । चंडालीशालों सुनकर भेरा बजवाई—‘(आओ
चलें) राजाको गङ्गा न उतराने दें । उसकोभी सुबका—‘द्व राज (=सुर राज) लोग जायें’
आदि कहकर लोग नहीं जमा हुये । (तब) भेरी बजवाई—‘नगर में सुसने न दें (नगर) द्वार
बन्द काय रहे’ । एक भी नही जमा हुआ । (राजा अज्ञात शत्रु) खुद द्वारोंमें ही घुमकर, सबको
समाह कर (=अपय व्यसने पापत्वा) चला गया ।

को करेंगे, (तब तक) भिक्षुओ ! भिक्षुओकी वृद्धिही समझना, हानि नहीं । (३) जब तक ० अप्रज्ञा (= अविहिता) को प्रज्ञा नहीं करेंगे, प्रज्ञाका उच्छेद नहीं करेंगे, प्रज्ञा शिक्षा-पणे (= विहित भिक्षु नियमोंके अनुसार वर्तेंगे ० । (४) जब तक ० जो वह रक्तज्ञ (= धमा-सुरागो) धिरप्रव्रजित, संघके पिता, संघके नायक, स्थविर भिक्षु है, उनका सत्कार करेगा गुरुकार करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे, उन (की बात) को सुनने योग्य मानेंगे ० । (५) जब तक पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाली तृष्णाके घटामें नहीं पड़ेंगे ० । (६) जब तक ० भिक्षु, आरण्यक शयनासन (= घनको कुटियो) का इच्छावाले रहेंगे ० । (७) जब तक भिक्षुओ ! वह एक भिक्षु यह याद रखेगा कि अनागत (= भविष्य)में सुन्दर समग्रहचारी आवें, आये हुए (= आगत) सुन्दर समग्रहचारी सुखसे विहरें, (तब तक) ० । भिक्षुओ ! जब तक यह सात अ-परिहानाय धर्म (भिक्षुओंमें) रहेंगे, (जब तक) भिक्षु इन सात अ-परिहानीय धर्मोंमें विलाई देंगे, (तब तक) ० ।

“भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहानीय धर्मोंको कहता हूँ । उसे सुनो ० । । (१) भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु (सारे दिन धीवर आदिके) काममें लगे रहने वाले (= कर्मा-राम) = कर्मरत = कर्मरामता-युक्त नहीं होंगे । (तब तक) ० । (२) जबतक भिक्षु ब-बादमें लगे रहनेवाले (= भस्सरराम), = भस्सररत = भस्सररामता-युक्त नहीं होंगे । (३) ० निद्राराम = निद्रा-रत = निद्रारामता-युक्त नहीं होंगे ० । (४) ० सगणिकाराम (= मीड़को पसन्द करनेवाले) = सगणिक-रत = सगणिकारामता-युक्त नहीं होंगे ० । (५) ० पापेच्छ (= बद्नीयत) = पाप इच्छाशोक वशमें नहीं होंगे ० । (६) ० पाप मित्र (= बुरे मित्रोंवाले), = पाप सहाय, बुराईकी ओर रज्जानवाले न होंगे ० । (७) ० थोड़ेसे क्रियेव (= योग-साफल्य) को पाकर धीबमें न छोड़ देंगे ० । ० ।

“भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहानीय धर्मोंको कहता हूँ । ० । (१) भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु श्रद्धालु होंगे ० । (२) ० (पापसे) लज्जाशील (= हीमान्) होंगे ० । (३) ० (पापसे) भय खानेवाले (= अपत्रपी) होंगे ० । (४) ० बहुधृत ० (५) ० उद्योगी (= आरब्ध धीय) ० । (६) ० याद रखनेवाले (= उपस्थित-स्मृति) ० । (७) ० प्रज्ञावान् होंगे ० । ० ।

“भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहानीय धर्मोंको ० । (१) भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु स्मृति-सजो-धर्मकी भावना करेंगे ० । (२) ० धम-विषय संयोज्यगको ० । (३) ० धीर्य-सं ० । (४) ० प्रीतिसं ० (५) ० प्रश्रव्य सं ० । (६) ० समाधि सं ० । (७) ० उपेक्षा संयोज्यगको ० । ० ।

“भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहानीय धर्मोंको कहता हूँ । । (१) भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु अनित्य संज्ञाकी भावना करेंगे ० (२) ० अनात्मसंज्ञा ० । (३) ० अशुभसंज्ञा ० । (४) ० आदिनव (= दुष्परिणाम)-संज्ञा ० । (५) ० प्रहाण (= त्याग) ० । (६) ० विरागसंज्ञा ० (७) ० निरोधसंज्ञा ० । ० ।

“भिक्षुओ ! और भी ३ अ-परिहानीय धर्मोंको कहता हूँ ० । । (१) जबतक भिक्षु-समग्रहचारियो (= गुरुभाइयो) में गुप्त और प्रकट, मैत्रीपूर्ण कायिक कर्म उपस्थित रखेंगे ० ।

(२) ०मेधोपूर्णं याचिक-कर्म उपरिपत रम्भे० । (४) ०जगतक भिषु धार्मिक, धर्मसे प्राप्त जो लाभ है—अन्तमें पात्रमें सुपढ़ने मात्र भी—वैसे लाभोको (भो) शीलवान् स ग्रहचारी भिषुओंमें याँटकर भोग करने वाले होंगे० (५) ०जगतक भिषु, जो वह अखंड = अ-उद्ग, अ-फलमय = भुजिष्म, विद्वानोंसे प्रशंसित, अ विदित, समाधिकी ओर (के) जाने वाले, शील है, वैसे शीलोसे शील धामण्य युक्त हो मयचारियोंके साथ गुप्तभा प्रकट भी विहरेंगे० (६) जो वह कार्य (= उत्तम), नैर्वाणिक (= पार करानेवाली), पैमा करनेवाँको अचछी प्रकार दुःपक्षकी ओर लेजानेवाली दृष्टि है, वैसे दृष्टिसे दृष्टि धामण्य युक्त हो, मयलचारियोंके साथ गुप्त भा प्रकट भी विहरेंगे० । भिषुओं ! जगतक यह छ अ-परिहाणोय धर्म० ।

यहाँ राजपूदमें गृध्रकृ पर्वतपर विहार करत हुये भगवान् बहुत कालके भिषुओंको यही धर्मकथा कहते थे—ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है । शीलसे परिभावित समाधि महा कल्याणो = महा-आशंसवाली होता है । समाधिमें परिभावित प्रज्ञा महाकल्याणो = महावशसवाली होता है । प्रज्ञासे परिभावित चित्त अचछा तरह १ नासना, —नामान्न, मवालय, दृष्टि अक्षय —से मुक्त होता है ।

(अम्य-लट्टिकामें) ।

तत्र भगवान्ने राजपूदमें दृच्छानुसार विहारकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

“ चलो आनन्द ! जहाँ १अम्यलट्टिका है, वहाँ चलें ।”

“ अचछा, भन्ते । ”

भगवान् महान् भिषु संघके साथ जहाँ अम्यलट्टिका था, वहाँ पहुँच । वहाँ भगवान् अम्यलट्टिकामें राजगारकमें विहार करते थे । वहाँ २राजागारकमें भी भगवान् भिषुओंको बहुत कालके यही धर्म कथा कहते थे—० ।

भगवान्ने अम्यलट्टिकामें यथेच्छ विहार करक आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

“ चलो आनन्द ! जहाँ नालन्दा है, वहाँ चलें ।”

“ अचछा भन्ते । ”

वहाँसे भिषु संघके साथ तब भगवान् जहाँ नालन्दा थी, वहाँ पहुँच । वहाँ भगवान् १नालन्दामें प्रावारिक आश्रममें विहार करते थे । तत्र आयुष्मान् २सारिपुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ । एक ओर बैठ आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्को कहा—

“ भन्ते । मैं ऐसा प्रसन्न (= भद्रवाच) हूँ—‘ मंगधि (= पाम जान) में भगवान्से बड़कर, या भूयस्वर कोई दूसरा श्रमग ग्राह्य न हुआ, न होगा, न इस समय है । ”

१ देसो आसन्न । २ वर्तमान मित्यव (?) जि पन्ना । ३ मिलाओ स नि ४६२२ । ४ सारिपुत्रका निर्वाण पक्षिपेही हो चुकनेसे, यह भाणसोंके प्रमादसे यहाँ आया मालूम होता है ।

“ सारिपुत्र ! तूने यह बहुत उदार (= बड़ी) = आर्षभी वाणी कही । एकाद सिंहनाद किया—‘ मे ऐसा प्रसन्न हूँ० ।’ सारिपुत्र ! जो वह अतीतकालमें अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हुए, क्या (तूने) उन सब भगवानोंको (अपने) चित्तसे जान लिया, कि वह भगवान् एमे शील वाले, ऐसी प्रज्ञा वाले, ऐसे विहार वाले, ऐसी विमुक्ति वाले थे ?”

“नहीं भन्ते !

“सारिपुत्र ! जो वह भविष्यकालमें अर्हत् सम्यक् संबुद्ध होंगे, क्या उन सब भगवानोंको चित्तसे जान लिया० ?” “नहीं भन्ते !”

‘ सारिपुत्र ! इस समय मैं अर्हत् सम्यक् संबुद्ध हूँ, क्या चित्तसे जान लिया, (कि मैं) ऐसी प्रज्ञावाला० हूँ ?” “ नहीं भन्ते !”

“(जत्र) सारिपुत्र ! तेषां अतीत, अनागत (= भविष्य), प्रत्युत्पन्न (= वर्तमान) अर्हत् सम्यक् संबुद्धों के विषयमें चेत परिज्ञान (= पर चित्तज्ञान) नहीं है, तो सारिपुत्र ! तूने क्यों यह बहुत उदार आर्षभी वाणी कही० ?”

“ भन्ते ! अतीत अनागत प्रत्युत्पन्न अर्हत् सम्यक् संबुद्धोंमें मुझे चेत परिज्ञान नहीं है, किंतु (सबकी) धर्म अन्वय (= धर्म समानता) विदित है । जैसे कि भन्ते ! राजा का सीमान्त-नगर दूध नींबूवाला, दूध प्रकारवाला, एक द्वारवाला हो । वहा भक्षार्थों (= अपरिधितों) को निगारण फालेवाला, ज्ञातो (= परिधितो) को प्रवेश करनेवाला पवित्र-व्यक्त, मेधावी द्वारपाल हो । वहा नगरके चारो ओर, अनुपश्रय (= चारो यारीसे) मार्गपर घूमते हुये (मनुष्य), प्रकाशम अन्ततो बिलोंके निकडो भर की भी सीमा = विवर न पाये, । उसको ऐसा हो—‘जो कोई बड़े बड़े प्राणी इस नगर में प्रवेश करते हैं, सभी इसी द्वारसे० । ऐसेही भन्ते ! मैंने धर्म-अन्वय जान लिया—“जो वह अतीतकालमें अर्हत् सम्यक् संबुद्ध हुये, वह सब भी भगवान् चित्तके उपल्लेश (= मङ्ग), प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले, पाचो नीवरणोंको छाड़, चारों स्मृति प्रत्याप्तोमें चित्तको सु प्रतिष्ठित का, सात बोध्योंको यथार्थसे भावना कर, सर्वश्रेष्ठ (= अनुत्तर) सम्यक् संबोधि (= परमज्ञान) को अभिसंबोधन किये थे (= जाना था) । और भन्ते ! अनागतमें भी जो अर्हत् सम्यक् संबुद्ध होंगे, वह सब भी भगवान्० । भन्ते ! इस समय भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धने भी चित्तक उपल्लेश० ।”

वहा नालन्दा में प्रावारिक-आश्रयनमें विहार करते, भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके पही कहते थे० ।

(पाटलि ग्राम में) ।

तत्र भगवान्ने नालन्दा में इच्छानुसार विहार कर, आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

“आनन्द ! चलो, जहा पाटलीग्राम है, वहा चले ।”

“ भन्ते ! अच्छा ”

तब मिथुन धके साथ भगवान्, जहाँ पाटलिग्राम था, वहाँ गये । उपासकोंने सुना कि भगवान् पाटलिग्राम आये हैं । तब उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये उपासकोंने भगवान् को यह कहा—

“ भन्ते ! भगवान् हमार आवमयागार^१ (= अतिथिशाला) को स्वीकार करें ।

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब उपासक भगवान्की स्वीकृतिको जान आत्मसे उठ भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर जहाँ आवसथागार था, वहाँ गये^२ । तब भगवान् सार्यकालको पहिनकर पात्र धीवर ले भिक्षुसवके साथ २० आवसथागारमें प्रविष्ट हो धीचके गन्धके पास प्रवामिसुल दिये^३ । तब भगवान्ने ‘ उपासकोंको आमंत्रित किया—

“ गृहपतियो ! दुराचारसे दु शील (= दुराचारी) के यह पाव दुष्परिणाम है । कोनसे पाप ?^४ ।”

तब भगवान्ने बहुत रात तक उपासकोंको धार्मिक-कथासे संदर्शित समुत्तेजितकर उद्योजित किया—

“ गृहपतियो रात क्षीण होगई, जिसका तुम समय समझते हो (वैसा करो) ।^५

“ बच्छा भन्ते ! ” पाटलिग्राम वासी उपासक आससे उठकर भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चले गये । तब पाटलिग्रामिक उपासकोंके चले जानेके थोड़ीही दूर बाद भगवान् शून्य-आगारमें चले गये ।

उस समय सुनीय (= सुनीय) और वर्षकार मगधके महामात्य पाटलिग्राममें वज्रियों को रोकनेके लिये नगर बसाते थे । भगवान्नी रातसे प्रत्युप समय (= भिनमार) को उठकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

“ आनन्द ! पाटलिग्राममें कौन नगर बना रहा है ? ”

“ भन्ते ! सुनीय और वर्षकार मगध महामात्य, वज्रियोंके रोकनेके लिये नगर बसा रहे हैं । ”

“ आनन्द ! जैसे अस्यस्त्रिंशके देवताओंके साथ मंत्रणा करके मगधके महामात्य सुनीय, वर्षकार, वज्रियोंके रोकनेके लिये नगर बना रहे हैं । वहा आनन्द ! मैंने दिव्य अमालुप

१ उदान अ क ८ ६ “ भगवान् कर पाटलिग्राममें गये ? आवन्तीम धर्मे सेनापति (= सरिपुत्र) का चैत्य बनवा, वहासे निराल्कर राजगृहमें वास करते, वहा आयुष्मान् महामौगल्यायन का चैत्य बनवाकर, वहा से निराल्कर अल्लट्टिका म वासकर, अ त्वरित-चारिका से जनपद चारिका करते, वहा वहा एक रात वास करते, लोकानुग्रह करते, क्रमशः पाटलिग्राम पहुँच । पाटलिग्राममें अजातशत्रु और लिच्छवी राजाओंके आदमी समय समय पर आकर घरके मालिकोंको घरसे निकाल कर, मास भी आधामासभी बस रहते थे । इससे पाटलिग्राम वासियोंने नित्य पीड़ित हो— उनके आनेपर वह (हमारा) घाम स्थान होगा— (सोचकर) नगर क बीचम महाशाला उन्नाह । उसीका नामथा ‘ आवमयागार । वह उमी दिन ममास हुआ था ।

२ देखो पृष्ठ ४८७ । ३ देखो पृष्ठ ४८८ ।

नेत्रसे देखा—यहु-सहस्र देवता यहा पाटलि-ग्राममे वास्तु (= घर, निवास) ग्रहण कर रहे हैं । जिस प्रदेशमें महाशक्ति-शाली (= महेसम्बल) देवता वास ग्रहण कर रहे हैं, वहा महा-शक्ति-शाली राजाओं और राज-महामात्योका चित्त, घर बनानेको लगोगा । जिस प्रदेशमें मध्यम देवता वास ग्रहण कर रहे हैं, वहा मध्यम राजाओं और राज महामात्योका चित्त घर बनानेको लगोगा । जिस प्रदेशमें नीच देवता०, वहा नीच राजाओं० । आनन्द ! जितने (भी) आर्य-आयतन (= आर्योंके निवास) हैं, जितने (भी) वणिग्-पथ (= व्यापार मार्ग) हैं, (उनमें) यह पाटलि पुत्र पुट-भेन्न (= मालकी गाँठ जहा तोड़ी जाय) अग्र (= प्रधान)-नगर होगा । पाटलि-पुत्रके तीन अन्तराय (= विघ्न) होंगे, आग, पानी, और आपसकी फूट ।”

तब मगध-महामात्र सुनीय और वर्णकार जहा भगवान् थे, वहा गये, जाकर भगवान्के साथ संमोदनकर एक ओर खड़े हुये भगवान्को बोले—

“ मिश्रु संघके साथ आप गौतम हमारा आजका भात स्वीकार करें ।”

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब० सुनीय वर्णकारने भगवान्की रवीकृति जानकर, जहा उनका आवास था (= डेरा) था, वहा गये । जाकर अपने आवासमें उत्तम ग्राह्य-भोज्य तैयार करा (उन्होंने) भगवान्को समयकी सूचना दी ।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर, पात्रचीवर ले मिश्रुसंघके साथ जहा मगध माहात्म्य सुनीय, और वर्णकारका आवास था, वहा गये, जाकर बिछे आसनपर बैठे । तब सुनीय, वर्णकारने शुद्ध-प्रसुप्त मिश्रुसंघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य भोज्यसे संतर्पित सप्रवारित किया । तब० सुनीय वर्णकार, भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, दूसरा नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ हुये मगध माहात्म्य सुनीय, वर्णकारको भगवान्ने इन गायार्थोंसे (दान) अनुमोदन किया—

“ जिस प्रदेश (में) पंडित पुरष, शीलवान्, संयमी, ब्रह्मचारियोंको भोजन कराकर वास करता है ॥ १ ॥

वहां जो देवता हैं, उन्हें दक्षिणा (= दान-भाग) देनी चाहिये । वह देवता पूजितहो पूजा करती हैं, मानितहो मानती हैं ॥ २ ॥

तब(वह) औरम पुत्रकी भाति इसपर अनुकम्पा करती हैं । देवताओंसे अनुकम्पितहो पुरष सदा मंगल देखता है ॥ ३ ॥

तब भगवान्० सुनीय और वर्णकारको इन गायार्थोंसे अनुमोदन कर, आसनसे उठ कर चले गये ।

उस समय० सुनीय, वर्णकार भगवान्के पीछे पीछे चल रहे थे—‘श्रमण गौतम आज जिस द्वारसे निकलेगा, वह गौतम द्वार होगा । जिस तीर्थ (= घाट)से गंगानदी पार होगा, वह गौतम-तीर्थ होगा । तब भगवान् जिस द्वारसे निकले, वह गौतमद्वार हुआ ।

भगवान् जहां गंगा-नदी है, वहां गये । उस समय गंगा करारो बराबर भरी, करारपर बड़े कौरके पीने योग्य थी । कोई आत्मी नाव खोजते थे, कोई० वेड़ा (=उलुम्प) खोजते थे, कोई० वृळा (=कुल्ल) बाधते थे । तब भगवान्, जैसे कि बलवान् पुण्य समेटी बाहको (सहजही) पैला दे, पैलाई बाहको समेट ले, ऐसेही भिक्षुसंघने साथ गंगानदीके इस पारसे अन्तर्धान हो, परने तीरपर जा एडे हुपे । भगवान्ने उन मनुष्योंको देखा, कोई कोई नाव खोज रहे थे० । तब भगवान्ने इस अर्थको जानकर, उम्मी समय यह उग्या कहा—

“ (पंडित) छोटे जलाशयों (=पर्वलो) को छोड़ समुद्र और नदियोंको सेतुसे तरते हैं । (जवतक) लोग कृला बाधते रहते हैं, (तवतक) मेधावी जन तर गये रहते हैं ।”

(कोटिग्राममें) ।

तब भगवान्ने आयुमान् आनन्दको आमंत्रित किया—

“आओ आनन्द ! जहां कोटिग्राम है, वहां चरें ।” “अच्छा भन्ते ।”

तब भगवान् महाभिक्षु संघके साथ जहां कोटिग्राम था, वहां गये । वहां भगवान् कोटि ग्राममें विहार करते थे । भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“भिक्षुओ ! चारों आर्य-सत्त्वोंके अनुबोध (=बोध) =प्रतिबोध न होनेसे इस प्रकार दीर्घकालसे (यह) दौड़ना =संसरण (=आवागमन) (‘मैरा और तुम्हारा’) हो रहा है । कौनसे चारोंके ? भिक्षुओ ! दुःख आर्य-सत्त्वके बोध =प्रतिबोध न होनेसे० । दुःख निरोध० । दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद्० । भिक्षुओ ! सो इस दुःख आर्य-सत्त्वको अनुबोध =प्रतिबोध किया०, (तो) भवकृष्णा उच्छिन्न होगई, भवनेयी (=कृष्णा) क्षीण होगई”

—भगवान्ने यह कहा ।

वहां कोटिग्राममें विहार करते भी भगवान्, भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्मकथा कहते थे० ।०

(नादिकामें) ।

तब भगवान्ने कोटिग्राममें हृज्जानुसार विहरकर, आयुष्मान् शानन्को आमंत्रित किया—

“आओ आनन्द ! जहां नादिका (=नाटिका) है, वहां चरें ।”

“अच्छा भन्ते ।”

तब भगवान् महान् भिक्षुसंघके साथ जहां नादिका है, वहां गये । वहां नादिकामें भगवान् गिजकावसथमें विहार करते थे । वहां नादिकामें विहार करते भी भगवान्ने भिक्षुओंको यही धर्मकथा० ।

१ देखो पृष्ठ १२३ २७ ।

२ ‘एक शास्त्रो (=आति = ज्ञान = ज्ञातर = जावर = जतरिया = जथरिया = जैथरिया) क गांधमे ।’ नाटिका = शान्दका = नत्तिका = नत्तिका = रत्तिका = रत्ती, जिसके नामसे घतमान रत्ती पर्गना (जि मुजफ्फरपुर) है ।

(वैशालीमें) ।

तब भगवान् महाभिषु-संघके साथ जहा वैशाली थी वहाँ गये । वहाँ वैशालीमें अम्बपाली-वनमें विहार करते थे । वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“भिक्षुओ ! स्मृति और संप्रजन्यके साथ विहार करो, यही हमारा अनुशासन है । ”

अम्बपाली गणिकाने सुना—भगवान् वैशालीमें आ गये , और वैशालीमें मेरे आम्र-वनमें विहार करते हैं । अम्बपाली गणिका सुन्दर सुन्दर (=भद्र) यानोंको जुड़वाकर, सुन्दर यानपर चढ़, सुन्दर यानोंके साथ वैशालीसे निकली, और जहा उसका आराम था, वहा चली । जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहा भगवान् थे, वहा गई । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई । एक ओर बठी अम्बपाली गणिकाको भगवान्ने धार्मिक कथासे संदर्शित समुत्तेजित किया । तब अम्बपाली गणिका भगवान्को यह बोली—

“ भन्ते ! भिक्षु संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें । ”

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब अम्बपाली गणिका भगवान्की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ भगवान्को अग्नि वादगरु प्रदक्षिणाकर चली गई ।

वैशालीके लिच्छवियोंने सुना—‘ भगवान् वैशालीमें आये हैं ०’ । तब वह लिच्छवी ■ सुन्दर यानोंपर सारथ्य हो ० वैशालीसे निकले । उनमें कोई कोई लिच्छवि नीले=नील-वर्ण नाल-वस्त्र नील-भरकर घाटे थे । कोई कोई लिच्छवि पीले=पीतवर्ण ० थे । ० लोहित (=लाल) ० । ० अवदात (=सफेद) ० । अम्बपाली गणिकाने तरण तरण लिच्छवियोंके धुरोंसे धुरा, चक्कोंसे चक्का, ज़येसे ज़ूआ टकराया । उन लिच्छवियोंने अम्बपाली गणिकाको कहा—

“ जे ! अम्बपाली ! क्यों तरण तरण (=दहर) लिच्छवियोंके धुरोंसे धुरा टकराती है । ० ”

“ आर्यपुत्रो ! क्योंकि मैंने भिक्षुसंघके साथ भगवान्को कलके भोजनके लिये निमंत्रित किया है । ”

“ जे अम्बपाली ! सौ हजारसे भी इस भात (=भोजन)को (हमें करनेके लिये) दे द । ”

“ आर्यपुत्रो ! यदि वैशाली जनपद भी दो, तो भी इस महान् भातको न दूँगी । ”

तब उन लिच्छवियोंने अँगुलिया फोड़ी—

“ अरे ! हमें अम्बिकाने जीत लिया, अरे ! हमें अम्बिकाने वंचित कर लिया । ”

तब वह लिच्छवी जहा अम्बपाली-वाया, वहा गये । भगवान्ने दूरसे ही लिच्छवियोंको आते देखा । देखकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“ अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियोंकी परिपक्वों । अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियोंकी परिपक्वों । भिक्षुओ ! लिच्छवि परिपक्वों आयुश्चित्त (देव)-परिपक्व समस्तो (= उपसंहरथ) ।”

तब वह लिच्छवी० रथसे उतरकर पेठलही जहा भगवान् थे, वहा जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे । एक ओर बैठ लिच्छवियोंकी भगवान्ने धार्मिक कथासे० समुत्तेजित० किया । तब वह लिच्छवी० भगवान्को बोले—

“ भन्ते ! भिक्षु संघके साथ भगवान् हमारा वज्रका भोजन स्वीकार करें ।”

“ लिच्छवियों ! कल तो स्वीकार कर लिया है, मेने अम्भपाली गणिकाका भोजन ।”

तब उन लिच्छवियोंने अंगुलिया फोड़ीं—

“ अरे ! हमें अम्भिकाने जीत लिया । अरे ! हम अम्भिकाने वंचित कर लिया ।”

तब वह लिच्छवी भगवान्के भाषणको अभिनन्दितकर अनुमोदितकर, आत्मामे उठकर भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये ।

अम्भपाली गणिकाने उस रात० घीतनेपर, अपने आराममें उत्तम स्वाद्य भोज्य तय्यार कर, भगवान्को समय सुचित किया । भगवान् पूवाह्न समय पहिनकर पात्र चीयरने भिक्षु संघके साथ जहा अम्भपालिका परीमनेका स्थान था, वहा गये । जाकर प्रसन्न (= थिठे) आसनपर बैठे । तब अम्भपाली गणिकाने बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघको अपने हाथमे उत्तम स्वाद्य-भोज्य द्वारा सतर्पित = संप्रवारित किया । तब अम्भपाली गणिका भगवान् भोजनकर० लेने पर, एक मोचा आसन लेकर एक ओर बैठी । एक ओर बैठी अम्भपाली गणिका भगवान्को बोली —

“ भन्ते ! मेे हम आरामको बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघको देती हूँ ।”

भगवान्ने आरामको स्वीकार किया । तब भगवान् अम्भपाली०को धार्मिक कथासे० समुत्तेजित० कर, आसनसे उठकर चले गये ।

वहा वैशालीमें विहार करते श्री भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म कथा कहते थे ० ।

(वेलुव गाम में) ।

० तब भगवान् महाभिक्षुसंघके साथ जहा वेलुव गामक (= वणु ग्राम) था, वहा गये । वहा भगवान् वेलुव-गामकमें विहरने थे । भगवान्ने वहा भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“ आओ भिक्षुओ ! तुम वैशालीक चारो ओर मित्र परिचित दग्गकर वपावाम करो । मेे यहाँ वेलुवगामम वर्षावास करूँगा ।”

“ अच्छा भन्ते ।”

वर्षावासमें भगवान्‌को बड़ी बीमारी उत्पन्न हुई । भारी मरणातक पीड़ा होने लगी । उसे भगवान्‌ने स्मृति-अंग्रजन्मके साथ विना दुष्ट करने, स्वीकार (= सहन) किया । उस समय भगवान्‌को ऐसा हुआ—‘मेरे लिये यह उचित नहीं, कि मैं उपस्थाको (= सेवको) को बिना पूछे, मिश्रसंघको बिना अवलोकन किये, परिनिर्वाण करूँ । क्यों न मैं इस आघाघा (= व्याधि) को हटाकर, जीवन-संस्कारका अधिष्ठाता बन, विहार करूँ । भगवान्‌ उस व्याधिको बोर्य (= मनोऽल)से हटाकर जीवन संस्कार (प्राण-शक्ति)के अधिष्ठाता बन, विहार करने लगे । तब भगवान्‌की वह बीमारी शांत होगई ।

भगवान्‌ बीमारीसे उठ, रोगसे अभी अभी मुक्तहो, विहारसे (बाहर) निकल कर विहारकी छायामें बिठे आसनपर बैठे । तब आयुष्मान्‌ आनन्द जहाँ भगवान्‌ थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्‌को अभिषादनकर एक ओर बैठ । एक ओर बैठे आयुष्मान्‌ आनन्दने भगवान्‌को यह कहा—

“ भन्ते ! भगवान्‌को सुखी देखा ! भन्ते ! मैंने भगवान्‌को अच्छा हुआ देखा ! । भन्ते ! मेरा शरीर शुन्य होगया था । सुखे दिशायेंभी सूख न पड़ती थीं । भगवान्‌ की बीमारीसे (सुखे) धर्म (= धात) भी नहीं भान होते थे । भन्ते ! कुछ आश्वासन मात्र रह गया था—भगवान्‌ तत्तक परिनिर्वाण नहीं करेंगे, जतक मिश्रसंघको कुछ कह न लेंगे । ”

“ आनन्द ! मिश्र संघ क्या चाहता है ? आनन्द ! मैंने मैं अन्दर न बाहर काक धर्म-उपदेश कर दिये । आनन्द ! धर्मों में तयागतको (कोई) आचार्य-मुष्टि (= रहस्य) नहीं है । आनन्द ! जिसको ऐसा हो कि मैं मिश्रसंघको धारण करता हूँ, मिश्र-संघ मेरे उद्देश्यसे है, यह जरूर आनन्द ! मिश्रसंघके लिये कुछ कहें । आनन्द ! तयागतको ऐसा नहीं है । आनन्द ! तयागत मिश्रसंघके लिये क्या कहेंगे ? आनन्द ! मैं जीर्ण = बुद्ध = महत्त्वक = अद्य गत = वयःप्राप्त हूँ । अस्सी वर्षकी मेरी उम्र है । आनन्द ! जैसे जीर्ण शकट बांध बंधकर चलता है, ऐसेही आनन्द ! मानो तयागतका शरीर बांधबूँध कर चल रहा है । आनन्द ! जिस समय तयागत सारे निमित्तोंके मनमें न कलसे, किन्हीं किन्हीं वेदनाओंके निरुद्ध होनेसे, निमित्त रहित चित्तकी समाधि (= एकाग्रता)को प्राप्तहो विहरते हैं, उस समय तयागतका शरीर अच्छा (= फाड़कर) होता है । इसलिये आनन्द ! आत्मदीप = आत्मशरण = अनन्य शरण, धर्मदीप = धर्म शरण = अनन्य-शरणहो त्रिहरो ० । ”

तब भगवान्‌ पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र चीवर छे वेशालीमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुए । वेशालीमें पिंडचार कर, भोजनोपरांत आयुष्मान्‌ आनन्दको बोले—

“ आनन्द ! आसनी उठाओ, जहाँ चापाल-चैत्य है, वहाँ दिनके विहारके लिये चर्हिने । ”

“ अच्छा भन्ते ! ” कह “ आयुष्मान्‌ आनन्द आसनी छे भगवान्‌के पीछे पीछे चर्हिने । तब भगवान्‌ जहाँ चापाल-चैत्य था, वहाँ गये । जाकर बिठे आसनपर बैठे । आयुष्मान्‌ आनन्द भी अभिषादन कर, । एक ओर बैठे आयुष्मान्‌ आनन्दको भगवान्‌ने यह कहा—

“आनन्द, रमणीय है वेशाली । रमणीय है उदयन चेत्य । ०गोतमरु-चेत्य, ०सत्तम्यक (=सप्त-आग्ररु)चेत्य, ०बहु-पुत्ररु-चेत्य, ०सारन्टरु-चेत्य, रमणीय है चापाल-चेत्य । । रमणीय है आनन्द ! (राजगृह मे) गृध्रगृह । ०(कपिलनस्तुमें) न्यग्रोधाराम । ०चोरप्रपात । ०वैभार (-गिरि)के बगलमें कालशिला । ० सीतवनमें सर्प शौडिक (=सम्प सोण्डिक)पहाड़ (=पट्टहार) । ०सपोदाराम ०। ०वेणुवन कन्दरु निराप । ०जीवकम्ब-वन । ०मदकुक्षि (=मद कुक्षि)-भृग-दाव ।

“आनन्द ! भने पहिलेही कह दिया है—मभी प्रिये =मनापोसे जुदाई-होती है ।

तथागतने यह बात यही,—जलदोही तथागतका परिनिर्वाण होगा, आजसे तीनमास बाद तथागत परिनिर्वाण प्राप्त होगे । । आजो आनन्द ! जहाँ महावन कृत्तगार शाला है, वहाँ चले ।”

“अच्छा मन्ते ।”

भगवान् आयुष्मान् आनन्दके साथ जहाँ महावन कृत्तगार शाला थी, वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोले—“आनन्द ! तुम जाओ वेशालीके पास जितने भिक्षु बिहार करते हैं, उन मरको उपस्थानशालामें एकत्रित करो ।”

तब भगवान् जहा उपस्थान-शाला थी वहाँ गये । जाकर पिटे आसन पर बैठ । बैठकर भगवान् ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“हमलिये भिक्षुओ ! मैंने जो धर्म-उपदेश किया है, उसे तुम अच्छी तौरसे सीखकर सेवन करना, भावना करना, बहाना, जियमे यह द्रष्टव्य अध्वनीय = चिररूपायी हो, यह (ग्रह्यचर्य) बहुजन हितार्थ बहुजन-सुवार्थ, लोकानुकपार्थ, देव मनुष्योंके अर्थ, हित, सुखके लिये हो । भिक्षुओ ! मैंने यह कौनसे धर्म, अभिमान कर, उपदेश किया है, जिन्हें अच्छी तरह सीखकर ० ? जेमेकि (१) चार स्मृति प्रस्थान, (२) चार सम्पक् प्रधान, (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पाच इन्द्रिय, (५) पाँचरल, (६) सात बोध्यंग, (७) आर्य अष्टांगिक मार्ग । । हन्त ! भिक्षुओ ! तुम्हें कठरा है—संस्कार (=कृतवस्तु) नाश होनेराखे (=वयधम्मरा) है, प्रमादहरित हो सम्पादन करो । अचिरकालमे ही तथागतका परिनिर्वाण होगा । आजसे तीनमास बाद तथागत परिनिर्वाण पायेंगे ।”

(कुसीनाराकी ओर) ।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र चीवरले वेशालीमें पिंडधार कर, भोजनोपशान्त नागावलोकन (=हाथीकी तरह सारे शरीरको घुमाकर देखना) से वेशालीको देख कर, आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“आनन्द ! तथागतका यह अन्तिम वेशाली दर्शन होगा । आजो आनन्द ! जहाँ भण्डगाम है वहाँ चले ।

“अच्छा मन्ते ।”

तत्र महा भिक्षुसंघके साथ भगवान् जहाँ भट्टग्राम था, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् सण्डग्राममें विहार करते थे । । वहाँ भंडग्राममें विहार करते भी भगवान्० ।

०जहाँ अम्यग्राम (=आम्रग्राम)० । ०जहाँ जम्बुग्राम (=जम्बुग्राम)० । ०जहाँ भोगनगर०।

(भोगनगरमें) ।

वहाँ भोगनगरमें भगवान् आनन्द चत्थमें विहार करते थे । वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया —

“भिक्षुओ ! चार महाप्रदेश तुम्हें उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, आपण करता हूँ ।” “ भन्ते ! अच्छा ।”

(१) भिक्षुओ ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहै—आहुसो ! मैंने इसे भगवान्के मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया है, यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन है । भिक्षुओ ! उस भिक्षुके आपणको न अभिनन्दन करना, न निन्दा करना । अभिनन्दन न कर निन्दा न कर, उन पदव्यजनों को अच्छी तरह सोचकर, सुनसे तुलना करना, विनयमें देखना । यदि वह सूत्रसे तुलना करने पर, विनयमें देखने पर, न सूत्रमें उतरते हैं, न विनय में दिखाई पड़ते हैं, तो विश्वास करना, कि अवश्य यह भगवान्का वचन नहीं है, इस भिक्षुका ही दुर्गृहीत है । ऐसा (होनेपर) भिक्षुओ ! उसको छोड़ देना । यदि वह सूत्रसे तुलना करनेपर, विनयके देखनेपर, सूत्रमें भी उतरता है, विनयमें भी दिखाई देता है, तो विश्वास करना कि अवश्य यह भगवान्का वचन है, इस भिक्षुका यह सुगृहीत है । भिक्षुओ ! इसे प्रथम महाप्रदेश धारण करना ।

“ (२) भिक्षुओ ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहै—आहुसो ! अमुक आवासमें स्थविर युक्त=प्रमुख-युक्त संघ विहार करता है । यह उस संघके मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया । यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का शासन है । ० । तो विश्वास करना, कि अवश्य उन भगवान्का वचन है, इसे संघने सुगृहीत किया । भिक्षुओ ! यह दूसरा महा-प्रदेश धारण करना ।

“ (३) ० भिक्षु ऐसा कहै—‘ आहुसो ! अमुक आवासमें बहुतसे बहुश्रुत, आगत आगम (=आगमज्ञ) धर्म-धर, विनय-धर, माश्रिकाधर, स्थविर भिक्षु विहार करते हैं । यह उन स्थविरोंके मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया । यह धर्म है । ० । ० ।

“ (४) भिक्षुओ ! (यदि) भिक्षु ऐसा कहै—अमुक आवासमें एक बहुश्रुत० स्थविर भिक्षु विहार करता है । यह मैंने उस स्थविरके मुखसे सुना है, मुखसे ग्रहण किया है । यह धर्म है, यह विनय० । भिक्षुओ ! इसे चतुर्थ महाप्रदेश धारण करना । भिक्षुओ ! इन चार महाप्रदेशोंको धारण करना ।”

वहा भोग-नगरमें विहार करते भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे० ।

(पावामें) ।

० तब भगवान् महाभिष्टुम्भके साथ जहाँ पावा थी, वहाँ गये । वहाँ पावामें भगवान् सुन्द कर्मार (= सोनार) पुत्रक आश्रयमें विहार करते थे ।

सुन्द कर्मारपुत्रने सुना—भगवान् पावामें आये हैं, पावामें मेरे आश्रयमें विहार करते हैं । तब सुन्द कर्मार पुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर घेरा । एक ओर बैठे सुन्द कर्मार पुत्रको भगवान्ने धार्मिक कथासे ० समुत्तेजित० किया । तब सुन्द०ने भगवान्को धार्मिक-कथासे ० समुत्तेजित० हो, भगवान्को यह कहा—

“ मते ! भिक्षु-संघके साथ भगवान् मेरा फलका भोजन स्वीकार करें । ”

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब सुन्द कर्मार-पुत्रने उस रातके बीतनेपर उत्तम पाद्य भोज्य (और) बहुत सा शूकर-मार्दव (= शूकर मद्य) तय्यार करवा, भगवान्को काष्टकी सूचना दी । तब भगवान् पूषाह्न समय पहिन्कर पात्र-बीच ले भिक्षु-संघके साथ, जहाँ सुन्द कर्मार-पुत्रका घर था, वहाँ गये । जाकर बिटे आसनपर बैठे । (भोजनकर) एक ओर बैठे सुन्द कर्मार पुत्रको भगवान् धार्मिक कथासे ० समुत्तेजित० कर आसनसे उठकर चल दिये ।

तब सुन्द कर्मार-पुत्रका भात (= भोजन) खाकर भगवान्को पून गिरनेकी, बड़ी बीमारी उत्पन्न हुई, मरणान्तक सग्त पीडा होने लगी । उसे भगवान्ने स्मृति स्मरणजन्तुक्त हो, विना दुःखित हुए, स्वीकार (= मद्य) किया । तब भगवान्ने आयुमान् आनन्दको आमंत्रित किया—

“ आओ आनन्द ! जहाँ कुमीनारा है, वहाँ चले । ” “ अच्छा मन्ते । ”

तब भगवान् मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे गये । जाकर आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“ आनन्द ! मेरे लिये चौपटी सपाटी बिछादे, मैं थक गया हूँ, बर्दूआ । ”

“ अच्छा मन्ते । ” आयुष्मान् आनन्दने चौपटी सपाटी बिछादी, भगवान् बिटे आसनपर बैठे । “ इस समय आलार कालामकर शिष्य पुकुम मल्ल-पुत्र कुसीनारा और पावाके बीच, रास्तेमें जा रहा था । पुकुम मल्ल पुत्रने भगवान्को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा । देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । पुकुम०ने भगवान्को कहा—

१ मिलाओ उदा० ८५ । २ अ क “ न बहुत सख्य न बहुत ब्रुवे (= जीर्ण) एक (वप) यह सूअरका बना माम, यह सुदु मी, म्निगध मी होता है । कोई कोई कहते हैं—नर्म चावल (= ओदन) को पाच गोससे जूम पकानेके विधानका नाम है, जैसे गोपान (= गवपान) पाक्का नाम है । कोई कहते हैं—शूकर मार्दव नामक रसायन विधि है, यह रसायन शास्त्रमें आती है । उसे सुन्दने भगवान्का परिनिर्वाण न हो, इसके लिये तैयार कराया था । ”

३ उदान अ क (८५) पावासे कुमीनारा ६ गज्युति (= ३ योजन) है । हम बीचमें पचीस म्पानोंमें बट कर, बड़ी हिम्मत करके जाते हुये (मध्याह्नसे चल कर) स्यास्त समय भगवान् कुमीनारा पहुँचे । ”

तत्र महा भिक्षुसंघके साथ भगवान् जहाँ भट्टगाम था, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् मण्डगाममें विहार करते थे । । वहाँ भट्टगाममें विहार करते भी भगवान्० ।

०जहाँ अम्बगाम (=आन्नगाम)० । ०जहाँ जम्बुगाम (=जम्बुगाम)० । ०जहाँ भोगनगर० ।

(भोगनगरमें) ।

वहाँ भोगनगरमें भगवान् आनन्द चैत्यमें विहार करते थे । वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया —

“भिक्षुओ ! चार महाप्रदेश तुम्हें उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, आपण करता हूँ ।” “ भन्ते ! अच्छा ।”

(१) भिक्षुओ ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहै—आवुसो ! मैंने इसे भगवान्के सुनने सुना, सुनते ग्रहण किया है, यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन है । भिक्षुओ ! उस भिक्षुके आपणको न अभिनन्दन करना, न निन्दा करना । अभिनन्दन न कर निन्दा न कर, उन पदव्यञ्जनों को अच्छी तरह सोखकर, सूत्रसे तुलना करना, विनयमें देखना । यदि यह सूत्रसे तुलना करने पर, विनयमें देखने पर, न सूत्रमें उतरते हैं, न विनय में दिखाई पड़ते हैं, तो विश्वास करना, कि अवश्य यह भगवान्का वचन नहीं है, इस भिक्षुका ही दुर्गुहीत है । ऐसा (होनेपर) भिक्षुओ ! उसको छोड़ देना । यदि वह सूत्रसे तुलना करनेपर, विनयके देखनेपर, सूत्रमें भी उतरता है, विनयमें भी दिखाई देता है, तो विश्वास करना कि अवश्य यह भगवान्का वचन है, इस भिक्षुका यह सुगुहीत है । भिक्षुओ ! इसे प्रथम महाप्रदेश धारण करना ।

“ (२) भिक्षुओ ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहै—आवुसो ! अमुक आवासमें स्थविर-युक्त=प्रमुल-युक्त मघ विहार करता है । यह उस संघके सुनते सुना, सुनते ग्रहण किया । यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का शासन है । ० । तो विश्वास करना, कि अवश्य उन भगवान्का वचन है, इसे संघने सुगुहीत किया । भिक्षुओ ! यह दूसरा महा-प्रदेश धारण करना ।

“ (३) ० भिक्षु ऐसा कहै—‘ आवुसो ! अमुक आवासमें बहुसते बहुश्रुत, आगत-आगम (=आगमज्ञ) धर्म-धर, विनय-धा, मात्रिकाधर, स्थविर भिक्षु विहार करते हैं । यह उन स्थविरोंके सुनते सुना, सुनते ग्रहण किया । यह धर्म है । ० । ० ।

“ (४) भिक्षुओ ! (यदि) भिक्षु ऐसा कहै—अमुक आवासमें एक बहुश्रुत० स्थविर भिक्षु विहार करता है । यह मैंने उस स्थविरके सुनते सुना है, सुनते ग्रहण किया है । यह धर्म है, यह विनय० । भिक्षुओ ! इसे चतुर्थ महाप्रदेश धारण करना । भिक्षुओ ! इन चार महाप्रदेशोंको धारण करना ।”

वहाँ भोग नगरमें विहार करते भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म कथा कहते थे० ।

(पावामें) ।

० तब भगवान् महास्त्रिंशद्भके साथ जहाँ पावा थी, वहाँ गये । वहाँ पावामें भगवान् चुन्द कर्मार (= सोनार) पुत्रके आश्रयनमें विहार करते थे ।

चुन्द कर्मारपुत्रने सुना—भगवान् पावामें आये हैं, पावामें मेरे आश्रयनमें विहार करते हैं । तब चुन्द कर्मार-पुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे चुन्द कर्मार पुत्रको भगवान्ने धार्मिक कथासे ० समुत्तेजित० किया । तब चुन्दने भगवान्को धार्मिक-कथासे ० समुत्तेजित० हो, भगवान्को यह कहा—

“ भन्ते ! भिक्षु-संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें । ”

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब चुन्द कर्मार-पुत्रने उस रातके धीतनेपर उत्तम प्राद्य भोज्य (और) बहुत सा शुकर-मांस (= सूकर मांस) तैयार करवा, भगवान्को कालकी सूचना दी । तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघके साथ, जहाँ चुन्द कर्मार पुत्रका घर था, वहाँ गये । जाकर बिठे आसनपर बैठे । (भोजनकर) एक ओर बैठे चुन्द कर्मार पुत्रको भगवान् धार्मिक कथासे ० समुत्तेजित० कर आसनसे उठकर चल दिये ।

तब चुन्द कर्मार पुत्रका भात (= भोजन) खाकर भगवान्को खून गिरनेकी, कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई, मरणान्तक सफ़्त पीड़ा होने लगी । उसे भगवान्ने स्मृति-संग्रजन्यपुत्र हो, विना दुःखित हुए, स्वीकार (= सहन) किया । तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

“ आओ आनन्द ! जहाँ कुमीनारा है, वहाँ चले । ” “ अच्छा भन्ते । ”

तब भगवान् मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे गये । जाकर आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“ आनन्द ! मेरे लिये चौपटी सघादी बिछादे, मैं थक गया हूँ, थकूँगा ।

“ अच्छा भन्ते ! ” आयुष्मान् आनन्दने चौपटी सघादी बिछादी, भगवान् बिठे आसनपर बैठे । उस समय आहार कालामका शिष्य पुकुम मल्ल-पुत्र कुमीनारा और पावाके बीच, रास्तेमें जा रहा था । पुकुम मल्ल पुत्रने भगवान्को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा । देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । पुकुमने भगवान्को कहा—

१ मिलाओ उदान ८१ । २ अ क. “ नयहुत तरण न यहुत खुई (= जीर्ण) एक (वय) यह सुपरका बना भास, यह श्रुत भी, स्निग्ध भी होता है । कोई बोर कहते हैं—नर्म पायल (= ओदन) को पाव गोरससे जूम पानेके विधानका नाम है, जैसे गोपान (= गवपान) पात्रका नाम है । कोई कहते हैं—शुकर-मांस नामक स्थायन विधि है, वह स्थायन शास्त्रमें आती है । उसे चुन्दने भगवान्का परिनिर्वाण न हो, इसके लिये तैयार कराया था । ”

३ उदान अ क (८९) पावासे कुमीनारा ६ गल्पूति (= ३ पोजन) है । हम बीचम पचीम स्यात्तोंम पैठ कर, बड़ी हिम्मत करके जाते हुए (मध्याह्ने च कर) स्यात्त समय भगवान् कुमीनारा पहुँचे । ”

“ आश्चर्य भन्ते । अद्भुत भन्ते ! प्रयत्नित (द्योग)शाततर विहारसे विहरते हैं । ”
 आजसे भन्ते । मुझे अंजलिबद्ध शरणागत उपामक धारण करें । ”

तब पुक्कुम० भगवान्‌के धार्मिक कथासे० समुत्तेजित० हो, आसनसे उठकर, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया ।

(भगवान्‌ने आनन्दको कहा)—

“ आज आनन्द । रातके पिछले पहर (= याम) कुसीनाराके उपवत्तन शालवनमें जोड़े शाल (= मारु) वृक्षोंके बीच तथागत निर्वाणको प्राप्त होंगे । आओ आनन्द ! जहा ककुत्था (= ककुत्था) नदी है, वहां चले । ”

“ अच्छा भन्ते ! ”

तब महामिक्षु-संघके साथ भगवान्‌ जहां ककुत्था नदी थी, वहां गये । जाकर ककुत्था नदीको अवगाहन कर, स्नानकर, पानकर, उतरकर, जहा अम्बवन (= आम्रवन) था, वहां गये । जाकर आयुष्मान्‌ चुन्दकको बोले—

“ चुन्दक । मेरे लिये चोपती मंघाटी बिठा दें । चुन्दक थक गया हूँ ।, छेड़ूंगा । ”

“ अच्छा भन्ते ! ”

तब भगवान्‌ पैरपर पैर रखकर, स्मृतिस्मरणके साथ, उत्थान संज्ञा मनमें करके, दारिणी करवट सिंह शय्यासे लेंटे । आयुष्मान्‌ चुन्दक वहीं भगवान्‌के सामने धंटे ।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान्‌ आनन्दको कहा—

“ आनन्द । शायद कोई चुन्द कर्मारपुत्रको वितित करे (= विपत्तिसार उपदेष्टव्य) (और फेड़े)— ‘ आवुस चुन्द । अलाम है तुझे, तूने दुर्लभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिंड पातको भोजनकर परिनिर्वाणको प्राप्तहुये । आनन्द ! चुन्द कर्मार पुत्रकी इस धिताको दूर करना (और कहना)— ‘ आवुस ! लाम है तुझे, तूने सुलाम कमाया, जो कि तथागत तेरे पिंडपातको भोजनकर परिनिर्वाणको प्राप्तहुये । आवुस चुन्द ! मैंने यह भगवान्‌के मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया— ‘यह दो पिंड पात समान फलवाले = समान विपाकवाले हैं, दूसरे पिंडपातसे बहुतही महाफल प्रद = महानशंसतर है । कौनसे दो ? (१) जिस पिंडपात (= भिक्षा)को भोजनकर तथागत अनुचर सम्यक्-संबोधि (= बुद्धत्व)को प्राप्त हुये, (२) और जिस पिंडपातको भोजनकर तथागत अनु-उपादिशेष निशानधातु (= दुःखकारण रहित निर्वाण)को प्राप्त हुये ।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान्‌ आनन्दको आमंत्रित किया—

“ आओ आनन्द । जहा हिरण्यवती नदीका परल तीर है, जहा कुसीनारा उपवत्तन मल्लोंका शालवन है, वहा चले । ” “ अच्छा भन्ते ! ”

१ भाषा कुँजर, कम्पया जि० गोरखपुर । २ अ क “ उसी नदीके तीर अम्बवन । ”

३ अ क “ जैसे कटम्ब नदीके तीरसे राजमाता-विहार-द्वारसे श्यापाराम जाना होता है । ऐसे ही हिरण्यवतीके परले तीरसे शालवन उद्यान (है) । जैसे अनुराधपुरका श्यापाराम है, वैसे ही यह कुसीनाराका है । जैसे श्यापारामसे, दक्षिण-द्वारही नगरमें प्रवेश करनेका

तत्र भगवान् महाभिषु संघके साथ जहा हिरण्यग्री० मछोवा शासन था, बहा गये ।
जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोले—

“आनन्द ! यमक (= जुड़वे) शालोके नीचमें उत्तरकी ओर मिरहानाकर चारपाई
(= मंचक) दिखा दे । यका हूँ, आनन्द ! लेटूंगा । ” “अच्छा भन्ते ! ”

तत्र भगवान्० दाहिनी करवट सिंहस्थ्यासे खेदे ।

“आनन्द ! श्रद्धालु कुञ्ज पुत्रके लिये यह चार स्थान दर्शनीय, सनेनीय (= वैराग्य
प्रद) हैं । कौनसे चार ? (१) ‘यहा तयागत उत्पन्न हुये (= लुम्बिनी)’ यह स्थान
श्रद्धालु० । (२) ‘यहा तयागतने अनुत्तर सम्पत्क संशोधितो प्राप्त किया’ (= सुसंगया)० ।
(३) ‘यहा तयागतने अनुत्तर (= सर्व श्रेष्ठ) धर्मचक्रको प्रवर्तन किया’ (= सारनाथ)० ।
(४) ‘यहा तयागत अनुपादि नेप निषाण धातुको प्राप्त हुये (= कुसीनारा)० । ० यह चार
स्थान दर्शनीय० हैं । आनन्द ! श्रद्धालु मिश्रु मिश्रुणिषा उपासक उपामिकाये (भविष्यमें)
आवेंगी, ‘यहा तयागत उत्पन्न हुये’, ० ‘यहा तयागत० निषाण०को प्राप्त हुये’ । ”

“भन्ते ! हम स्त्रियोके साथ कैसे यताव करेंगे ? ”

“अ दर्शन (= न देना), आनन्द ! ”

“दर्शन होनेपर भगवान् कैसे यताव करेंगे ? ”

“आलाप (= बात) न करना, आनन्द ! ”

“बात करनेवालेको कैसा करना चाहिये ? ”

“स्थिति (= होश)को सभाले रखना चाहिये ? ”

“भन्ते ! तयागतक शरीरको हम कैसे करेंगे ? ”

“आनन्द ! तयागतकी शरीर पूजासे तुम बेपरवाह होना । तुम आनन्द सत्त्व पदार्थ
(= सदर्थ)क लिये प्रयत्न करना, सत्त्व-अर्थके लिये उद्योग करना । सत्त्व-अर्थमें अप्रमादी, उद्योगी
आत्मस्वयमी हो विहरना । है, आनन्द ! सत्रिष पंडित भी, ब्राह्मण पंडित भी, गृहपति पंडित
भी, तयागतमें अत्यन्त अनुरक्त, वह तयागतका शरीर पूजा करेंगे । ”

“भन्ते ! तयागतके शरीरको कैसे करना चाहिये ? ”

“जैसे आनन्द ! राजा चक्रवर्तीके शरीरके साथ करना होता है, वैसे तयागतके शरीरको
करना चाहिये । ”

“भन्ते ! राजा चक्रवर्तीक शरीरके साथ कैसे किया जाता है ? ”

“आनन्द ! राजा चक्रवर्तीके शरीरको नये वस्त्रसे लपेटते हैं, नये वस्त्रसे कपट्टर धुनी
रुईसे लपेटते हैं । धुनी रुईसे लपटकर नये वस्त्रसे लपटते हैं । इस प्रकार कपट्टर तेलकी
लोहद्रोणी (= दोन)में रखकर, दूसरी लोह द्रोणीसे रौंस्कर, ममी गंधों (बावे काष्ठ)की बिता
बनाकर, राजा चक्रवर्तीक शरीरको जलते हैं, जगकर बड़े चौरस्तेपर राजा चक्रवर्तीका स्तुप
बनाते हैं । ”

मार्ग, पूर्वमुंह हो, जाकर उत्तरकी ओर मुड़ता है, पमे हो उद्यानमें शाल-वृक्षि पूर्व मुंह जाकर,
उत्तरकी ओर मुड़ी है । इसीलिये यह उपरत्तन कहा जाता है । ”

तब आयुष्मान् आनन्द विहारमें जाकर कपिलीस (=खूँटी) को पकड़ कर रोते गड़े हुये—‘हाय । मं श्लेक्ष्य = सक्कणीय हूँ । और जो मेरे अनुत्पन्न शास्ता हैं, उनका परिनिर्वाण हो रहा है ॥’

भगवान्ने मिश्रुओको आमंत्रित किया—“मिश्रुओ ! आनन्द कहाँ है?”

“यह भन्ते । आयुष्मान् आनन्द विहार (= कोठरी) में जाकर रोते खड़े हैं० ॥”

“आ ! मिश्रु ! मेरे वचासे तू आनन्दको कह—‘आतुम आनन्द ! शास्ता तुम्हें बुला रहे हैं ॥’ ‘अच्छा, भन्ते !’

आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् ने वहाँ आकर अभिवादनकर एक ओर बैठे । आयुष्मान् आनन्दको भगवान्ने कहा—

“नहीं आनन्द ! मत शोक करो, मत रोओ ! मैंने तो आनन्द ! पहिलेही कह दिया है—सर्वा प्रियो = मातापोसे जुड़ाई होनी है, सो यह आनन्द ! कहाँ मिलनेवाला है । जो कुछ जात (= उत्पन्न) = नृत = सम्भूत है, सो नाश होने वाला है । ‘हाय ! यह नाश न हो ।’ यह संभव नहीं । आनन्द तूने दीर्घरात्र (= विरकाल) तक हित सुख अप्रमाण मंत्रीपूर्ण कायिक-कर्मसे तथागतकी सेवाकी है । मंत्रीपूर्ण वाचिक कर्मसे० । मंत्रीपूर्ण मानसिक कर्मसे० । आनन्द ! तू दृढपुण्य है । प्रधात (= निजान-माधन) में लग जल्दी अनाद्यन (= सुख) होजा ॥’

‘आयुष्मान् आनन्दो भगवान्को यह कहा—

“भन्ते । मत इस क्षुद्र नगल (= नगरक) में, जंगली नगलेम शास्ता-नगरकमें परिनिर्वाणको प्राप्त होऊँ । भन्ते ! और भा महानगर हूँ, जैसे कि चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, धारागवी । वहा भगवान् परिनिर्वाण करें । वहा बहुतसे क्षत्रिय महाशाल (= महाधनी), ब्राह्मण-महाशाल, गृहपति महाशाल तथागतके भक्त हैं, वह तथागतके शरीरकी पूजा करेंगे ॥’

“मत आनन्द ! ऐसा कह, मत आनन्द ! ऐसा कह—इस क्षुद्र नगले० ।’ पूर्व कालमें आनन्द ! यह कुमीनारा राजा सुदर्शनकी पुत्रावती नामक राजधानी थी । ‘आनन्द ! दुर्मन्त्राशमें जाकर कुमीनारावासी मल्लोंको कह—‘वाशिष्ठो ! आज रातके विष्टले पहर तथागतका परिनिर्वाण होगा । चलो वाशिष्ठो ! चगे वाशिष्ठो । पीछे अफसोस मत करना—‘हमारे ग्राम क्षत्रमे तथागतका परिनिर्वाण हुआ, लेकिन हम अतिसकालमे तथागतका दर्शन न कर पाये ॥’

“अच्छा भन्ते । आयुष्मान् आनन्द चीजर पहिन्नकर, पात्रधीवर ले, अकेलेही कुमीनारामें प्रविष्ट हु० । उस समय कुमीनारावासी मल्ल किसी कामसे सल्यागारामें जमा हुये थे । तब आयुष्मान् आनन्द जहा कुमीनाराके मल्लोंका सरथागार था, वहा गये । जाकर कुमीनारावासी मल्लोंको यह बोले—‘वाशिष्ठो । ० ।’

आयुष्मान् आनन्दमे यह सुनकर मल, मल पुत्र, मल-पुत्र्ये, मल भायार्ये दु खित दुर्मना-दु प्समर्पित चित्त हो, कोई कोई वालोंको गियेर रोतेथे, बांह पकड़कर क्रदन करतेथे, बटे (पेड़) से गिरतेथे, (भूमिपर) लोटने ये-यहुत जल्दी भगवान् निर्वाण

प्राप्त हो रहे हैं, बहुत जल्दी सुगत निवाण प्राप्त हो रहे हैं० । बहुत जल्दी लोक-वस्तु अन्तर्धान हो रहे हैं । तब मल्ल = दु पित० हो, जहां उपपन्न मल्लिका शास्त्रान था, वहां गये ।

तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—‘यदि मैं कुम्भीनाराक मल्लोंको एक एक कर भगवान्की वन्दना करवाऊंगा, तो भगवान् (सभी) कुम्भीनाराण मल्लोंसे अनन्दिताही होंगे, और यह रात बीत जायेगी । क्यों न मैं कुम्भीनाराके मल्लोंको एक एक कुलक क्रमसे भगवान्की वन्दना करवाऊँ—‘भन्ते । अमुक नामक मल्ल स पुत्र, स भार्य, स परिपक्व, स समाप्त भगवान्की वन्दना करवाऊँ—‘भन्ते ।’ तब आयुष्मान् आनन्दने कुम्भीनाराके मल्लोंको एक एक कुलके क्रमसे भगवान्की वन्दना करवायी—० । इस उपायसे आयुष्मान् आनन्दने, प्रथम याम (=छ से दसवजे राततक) में कुम्भीनाराक मल्लोंसे भगवान्की वन्दना करवा दी ।

उस समय कुम्भीनारासं सुभद्र नामक परित्राजक वास करता था । सुभद्र परित्राजकने सुना, आज रातको पिउं पहर भ्रमण गौतमका परिनिर्वाण होगा । तब सुभद्र परित्राजकको ऐसा हुआ—‘ मैंने वृद्ध महलक आचार्य प्राचार्य परित्राजकोंको यह रहते सुना है—‘ कदाचित् कभी ही तथागत “इह मम्यकं सम्पुनं उत्पन्नं दुभा करने हैं ।’ और आज रातक पिउं पहर भ्रमण गौतमका परिनिर्वाण होगा, और मुने यह रक्षय (=कथा धम्म) उत्पन्न है, इस प्रकार मैं भ्रमण गौतममें प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हूँ । भ्रमण गौतम मुने नेमा, धर्म उपदेश कर सकता है, जिससे मेरा यह संशय दूर जाय ।’

तब सुभद्र परित्राजक “इहा उपवत्ता मल्लिका शास्त्र-वन था, जहां आयुष्मान् आनन्द थे, वहां गया । जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोला—

“हे आनन्द ! मेने वृद्ध महलक परित्राजकोंको यह कहते सुना है० । सो मैं भ्रमण गौतमका दर्शन पाऊँ ?”

ऐसा कहोपर आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परित्राजकको कहा—

“नहीं आउल ! सुभद्र ! तथागतको तत्त्वही मत दो । भगवान् यत्ने हुये हैं ।

वृसरीवार भी सुभद्र परित्राजकने० ।० । तीयरीवार भी० ।० ।

भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दका सुभद्र परित्राजकने साथमा कथा सत्ताप सुन लिया । तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“नहीं आउल ! मैं सुभद्रको मना करे । सुभद्रको तथागतमा दर्शन पाने दो । जो कुछ सुभद्र पूछेगा, वह आता (=परम ज्ञान)की चाहते ही पूछेगा, तत्त्वही दोकी चाहने नहीं । पूछनेपर जो मैं उमे कहेगा, उमे वह जवाब ही जान लेगा ।”

तब आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परित्राजकको कहा—

“जाओ आउल सुभद्र ! भगवान् तुम्हें आना दते हैं ।”

तब सुभद्र परित्राजक जहां भगवान् थे, वहां गया । जाकर भगवान्का साथ संमोदन कर...ओर बैठा । एक ओर वह बोला ।

तब आयुष्मान् आनन्द विहारमें जाकर कपिलीम (=खटी) को पकड़ कर रोते खड़े हुये—‘हाय । मैं श्लेष्म=सम्पन्न हूँ । और जो मेरे अनुवर्षक शास्ता है, उनका परिनिर्वाण हो रहा है ।’

भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—“भिक्षुओ ! आनन्द कहाँ है”

“यह भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द विहार(=कोठरी)में जाकर० रोते खड़े हैं० ।”

“आ ! भिक्षु । मेरे वचासे तू आनन्दको कह—‘आहुस आनन्द ! शास्ता तुम्हें बुला रहे हैं ।’” “अच्छा, भन्ते !”

आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् व यहाँ आकर अभिप्रादनकर एक ओर बैठे । आयुष्मान् आनन्दको भगवान् ने कहा—

“‘हाँ आनन्द ! मत शोक करो, मत रोओ ! मैंने तो आनन्द ! पहिलेही कह दिया है—‘तभी प्रियो=मनापोसे जुदाई० टोनी है, सो यह आनन्द ! कहाँ मिलनेवाला है । जो कुछ जात (=उत्पन्न) =भूत=संस्कृत है, सो नाश होने वाला है । ‘हाय । यह नाश न हो ।’ यह संभव नहीं । आनन्द तूने दीघरात्र (=चिरकाल) तक हित सुख अप्रमाण मंत्रीपूर्ण कायिक-कर्मसे तथागतकी सेवाकी है । मंत्रीपूर्ण वाचिक कर्मसे० । मंत्रीपूर्ण मानसिक कर्मसे० । आनन्द ! तू वृत्तपुण्य है । प्रधान(=निवाण-साधन)में लग जल्दी अनास्रव (=मुक्त) होजा ।’”

‘ आयुष्मान् आनन्दो भगवान् को यह कहा—

“‘भन्ते ! मत इस क्षुद्र नगल (=नगर) में, जंगली मगलेमें शाखा-नगरकमें परिनिर्वाणको प्राप्त होवें । भन्ते ! और भी महानगर हैं, जैसे कि चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, लाव्हेत, कौशाम्बी, वाराणसी । वहा भगवान् परिनिर्वाण करें । वहा बहुतसे क्षत्रिय महाशास्त्र (=महाधनी), ब्राह्मण महाशास्त्र, गृहपति महाशास्त्र तथागतके भक्त हैं, वह तथागतके शरीरकी पूजा करेंगे ।’”

“‘मत आनन्द ! ऐसा कह, मत आनन्द ! ऐसा कह—इस क्षुद्र नगले० ।’ पूर्व कालमें आनन्द ! यह कुमीनारा राजा सुदर्शनकी कुशावती नामक राजधानी थी । ‘ । आनन्द ! कुम नारामें जाकर कुमीनारावासी मल्लोको कह—‘वाशिष्ठो ! आज रातके दिङ्गे पहर तथागतका परिनिर्वाण होगा । चलो वाशिष्ठो ! चलो वाशिष्ठो । पीछे अफसोस मत करना—‘हमारे प्राम अत्रमें तथागतका परिनिर्वाण हुआ, लेकिन हम अन्तिमकालमें तथागतका दर्शन न कर पाये ।’”

“‘अच्छा भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द चीवर पहिनाकर, पात्रधीनर ले, अकेलेही कुमीनारामें प्रविष्ट हुए । उस समय कुमीनारावासी मल्ल किसी कामसे सस्यागारमें जमा हुये थे । तब आयुष्मान् आनन्द जहा कुमीनाराके मल्लोका सस्यागार था, वहाँ गये । जाकर कुमीनारावासी मल्लोको यह बोले—‘वाशिष्ठो । ० ।’

आयुष्मान् आनन्दसे यह सुनकर मल्ल, मल्ल पुत्र, मल्ल-बधुयें, मल्ल भायोंयें वृत्ति दुर्मना दुष्ट समर्पित-चित्त हो, कोई कोई वालोंको बिलेर रोतेथे, बाह पकड़कर क्रदन करतेथे, बटे (पेड़)से गिरतेथे, (भूमिपर) लोटते थे—बहुत जल्दी भगवान् निर्वाण

प्राप्त हो रहे हैं, बहुत जल्दी सुगत निवाण प्राप्त हो रहे हैं० । बहुत जल्दी लोभ-द्वेष अन्तर्धान हो रहे हैं । तब मल्ल ० द्रु पित० हो, जहा उपवचन मल्लका श्रावण था, बहा गये ।

तब आयुष्मान् आनन्दजी यह हुआ—‘यदि मैं कुसीनाराके मल्लोंको एक एक कर भगवान्की वन्दना करवाऊंगा, तो भगवान् (सभी) कुसीनाराके मल्लोंसे अन्नित्तर्ही होंगे, और यह रात बीत जायेगी । क्यों न मैं कुसीनाराके मल्लोंको एक एक कुल्लके क्रमसे भगवान्की वन्दना करवाऊँ—‘भते ! अमुक नामक मल्ल स पुत्र, स भार्य, स परिपद्, स अमात्य भगवान्के चरणोंको शिसे बन्दना करता है ।’ तब आयुष्मान् आनन्दने कुसीनाराके मल्लोंको एक एक कुल्लके क्रमसे भगवान्की वन्दना कावायी—० । इस उपायसे आयुष्मान् आनन्दने, प्रथम याम (=छ से दसवें राततक) में कुसीनाराके मल्लोंसे भगवान्की वन्दना करवा दी ।

उस समय कुसीनाराई सुभद्र नामक परित्राजक वास करता था । सुभद्र परित्राजकने सुना, आज रातको पिउं पहर श्रमण गौतमका परिनिर्वाण होगा । तब सुभद्र परित्राजकको ऐसा हुआ—‘ मैंने बृद्ध महल्लक आचार्य प्राचार्य परित्राजकको यह कहते सुना है—‘ कदाचित् कभी ही तयागत शरत्सम्यक् समुत्त उत्पन्न हुआ करते हैं ।’ और आज रातके पिउं पहर श्रमण गौतमका परिनिर्वाण होगा, और सुत्रे यत् रुक्ष्य (=कसा धम्म) उत्पन्न है, इस प्रकार मैं श्रमण गौतममें प्रसन्न (=प्रह्लादान्) हूँ । श्रमण गौतम सुत्रे त्रैवा, धर्म उपदेश कर सकता है, जिससे मेरा यह रुक्ष्य हट जाय ।’

तब सुभद्र परित्राजक जहा उपवत्ता महोपा शार-जन था, जहा आयुष्मान् आनन्द थे, बहा गया । जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोला—

“ हे आनन्द ! मैंने बृद्ध महल्लक परित्राजकको यह कहते सुना है० । सो मैं श्रमण गौतमका परिनिर्वाण पाऊँ ? ”

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परित्राजकको कहा—

“ नहा जाउस । सुभद्र ! तयागतको तन्नीक मत दो । भगवान् थके हुये हैं ।

दूसरीबार भी सुभद्र परित्राजकने० ।० । तीसरीबार भी० ।० ।

भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दना सुभद्र परित्राजकके साथका कथा सहाय सुन लिया । तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“ नहीं आनन्द ! मैं सुभद्रको मना करे । सुभद्रको तयागतका दर्शन पावे दो । जो कुछ सुभद्र पूछेगा, वह आना (=परम गान) की चाहत ही पूछेगा, तन्नीक देनेकी चाहत नहीं । पृष्ठेपर सो मैं उसे बर्दागा, उसे वह जल्दी ही जान लेगा । ”

तब आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परित्राजकको कहा—

“ जाओ जाउस सुभद्र ! भगवान् सुन्दे आना देते हैं । ”

तब सुभद्र परित्राजक जहा भगवान् थे, बहा गया । जाकर भगवान्के साथ संमोदन कर...ओर बैठे । एक ओर बैठे बोले ।

“हे गोतम ! जो श्रमण ब्राह्मण सधी = गणी = गणाचार्य, प्रसिद्ध यशस्वी तीर्थंकर, बहुत लोगो द्वारा उत्तम माने जानेवाले, जैसे कि—पूर्ण काश्यप, मन्थली गोसाल, अजित केशकम्पल, पकुघ कल्याण, सजय बलद्वपुत्त, निर्मल नाथ पुत्त । (क्या) वह सभी अपने दावा (=प्रतिज्ञा) को (वंसा) जानते, (या) सभी (वंसा) नहीं जानते, (या) कोई कोई वंसा जानने, कोई कोई वंसा नहीं जानते । । । ”

“ नही सुभद्र ! जाने दो—‘ वह सभी अपने दावाको० । सुभद्र ! तुम्हें धर्म० उपदेश करता हूँ, उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, आपण करता हूँ । ”

“ अच्छा भन्ते । ” सुभद्र परित्राजकने भगवान्को कहा । भगवान्ने यह कहा—

“ सुभद्र ! जिस धर्म विनयमें आर्य अष्टांगिक मार्ग उपलब्ध नहीं होता, वहा श्रमण (स्रोत आपन्न) भी उपलब्ध नहीं होता, द्वितीय श्रमण (=सुद्धागामी) भी उपलब्ध नहीं होता, तृतीय श्रमण (=अनागामी) भी उपलब्ध नहीं होता, चतुर्थ श्रमण (=अर्हत्) भी उपलब्ध नहीं होता । सुभद्र ! जिस धर्म विनयमें आर्य-अष्टांगिक-मार्ग उपलब्ध होता है, श्रमण भी वहा होता है ० । सुभद्र ! इस धर्म-विनयमें आर्य अष्टांगिक मार्ग उपलब्ध होता है, सुभद्र ! यहा श्रमण० भी, यहा ० द्वितीय श्रमण भी, यहा ० तृतीय श्रमण भी, यहा ० चतुर्थ श्रमण भी है । दूसरे पाद (=मत) श्रमणोंसे शून्य है । सुभद्र ! यहा (यदि) भिक्षु ठोकसे विहार करे (तो) लोक अर्हत्तोसे शून्य न होने । ”

“ सुभद्र ! उन्तीस वर्षकी अवस्थामें कुशल (=मंगल) का खोजी हो, जो मैं प्रमज्जित हुआ । सुभद्र ! जब मैं प्रमज्जित हुआ तबसे इक्कावन वर्ष हुये । न्याय धर्म (=आर्य धर्म = सत्यधर्म) के एक देशको भी देखनेशाला यहासे बाहर कोई नहीं है ॥ १, २ ॥ । ”

ऐसा कहनेपर सुभद्र परित्राजकने भगवान्को कहा—

“ आश्चर्य भन्ते । अद्भुत भन्ते । ० मैं भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । भन्ते ! मुझे भगवान्के पाससे प्रमज्ज्या मिले, उपसंपदा मिले । ”

“ सुभद्र ! जो कोई भूतपूर्व अन्य-तीर्थंकर (=दूसरे पंथका) इस धर्म में प्रमज्ज्या उपसंपदा चाहता है । वह चार मास परिवास (=परीक्षार्थ वास) करता है । चार मासके पाद, आरब्ध-चित्त भिक्षु प्रमज्जित करते हैं, भिक्षु होनेके लिये उपसंपन्न करते हैं । । । ”

“ भन्ते ! यदि भूत पूर्व अन्य-तीर्थंकर इस धर्मविनयमें प्रमज्ज्या ० उपसंपदा चाहनेपर, चार मास परिवास करता है० । तो भन्ते ! मैं चारवर्ष परिवास करूंगा । चार वर्षोंके बाद आरब्ध-चित्त भिक्षु मुझे प्रमज्जित करे । ”

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनंदको कहा—“तो आनन्द ! सुभद्रको प्रमज्जित करो । ”

“ अच्छा भन्ते । ”

१ वा क “पहिले पहरेमें मलोंको धर्मदेशनाकर, बिचरे पहर सुभद्रको, पिछले पहर भिक्षुसंघको उपदेशकर, बहुत मोरे ही परिनिष्ठाण । ”

तथ सुभद्र परित्राजकरो आयुप्मान् आनन्दो वहा—

“आयुस ! एवमैह तुम्हें, सुखम हुआ तुम्ह, जो वहा शास्ताके समुप अन्तेवासी (=शिष्य) के अभिप्रेक्षसे अभिषिक्त हुये ।”

सुभद्र परित्राजकले भगवान्‌के पास प्रवज्या पाई, उपसपदा पाई । उपसपदा होनेके अचिरहीमें आयुप्मान् सुभद्र आत्मसंयमी हो विहार करते, जलदीही, निम्नके लिये कुलपुत्र० प्रव्रजित होते हैं, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्यफलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर, विदरने लगे । ० । सुभद्र अर्हतामेंसे एक हुये । वह भगवान्‌के अन्तिम शिष्य हुये ।

तथ भगवान्‌ने आयुप्मान् आनन्दको कहा—

“आनन्द ! शायद तुमको ऐसा हो—(१) अतीत शास्ता (=चण्डेय गुरु)का (यह) प्रवचन (=उपदेश) है, (अथ) हमारा शारत्ता नहीं है । आनन्द ! इस ऐसा मत देयता । मैंने जो धर्म और विनय उपदेश किये हैं, प्रजस (=विहित) किये हैं, मेरे बाद वही तुम्हारा शास्ता (=गुरु) है ।—(२) आनन्द ! जैसे आजगल भिक्षु पर दूमरेको ‘आयुस’ कहकर पुकारते हैं, मरे बाद ऐसा कहकर न पुकारें । आनन्द ! स्थविरतर (=उपसपदा प्रव्रज्यामें अधिक दिनका) भिक्षु त्रक-तर (=अपनेसे कम समयके) भिक्षुको नामसे, या गोत्रसे, या ‘आयुस’ कहकर पुकारें । त्रकतर भिक्षु स्थविरतरको ‘भन्ते’ या ‘आयुप्मान्’ कह कर पुकार । (३) इच्छा होनेपर संव मेरे बाद क्षुद्र-अनुक्षुद्र (=छोट छोटे) शिक्षापदो (=भिक्षुनियमों)को छोड़ दे । (४) आनन्द ! मेरे बाद छल भिक्षुको ब्रह्मदंड करना चाहिये ।”

“भन्ते ! ब्रह्मदंड क्या है ?”

“आनन्द ! छल, भिक्षुओंको जो चाहे सो कहे, भिक्षुओंको उभसे न बोलना चाहिये, न उपदेश = अनुशासन करना चाहिये ।”

तत्र भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“भिक्षुओ ! (यदि) बुद्ध, धर्म, संघमें एक भिक्षुको भी कुछ बांका हो, (तो) पूछलो । भिक्षुओ ! पीछे अफसोस मत करना—‘शास्ता हमारे समुप थे, (किंतु) हम भगवान्‌के सामने कुछ न पूछ सके ।’”

ऐसा कहने पर यह भिक्षु चुप रहे । दूसरी बारभी भगवान्‌ने ० । ० । तीसरी बारभी ० । ० ।

तथ भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“हन्त ! भिक्षुओ अथ तुम्हें कहता हूँ—‘संस्कार (=इत्यम्तु) वषय धर्म (=चारामान) है, अप्रमादके साथ (=आलम ॥ कर) (=जीवनके लक्ष्यको) संपादन करो ।’—यह त्यागत या अन्तिम वचन है ।

तत्र भगवान्‌ प्रथम ध्यानको प्राप्त हुये । प्रथम ध्यानमें उठकर द्वितीय ध्यानमें प्राप्त हुये । ० तृतीय ध्यानको ० । ० चतुर्थ ध्यानको ० । ० आकाशानन्तपायतनको ० । ० विशानानन्तपायतनको ० ।

० आर्किचन्यायतनको ० । ० नेव सज्जनार्थनायतनको ० । ० च्छन्नापेदयितनिरोधको प्राप्तहुये । तब आयुष्मान् आनन्दने आयुष्मान् अनुरद्धको कइ—“ भन्ते ! अनुरद्ध ! भगवान् परिनिर्णृत होगये ? ”

“ आहुस आनन्द ! भगवान् परिनिर्णृत नहीं हुये । संन्यापेदयितनिरोधको प्राप्त हुये हैं । ”

तत्र भगवान् सञ्जावदयितनिरोध समापत्ति (= चार ध्यानोके ऊपरकी समाधि) से उठकर त्रैलोक्य-नासनायतनको प्राप्त हुये । ० । द्वितीय ध्यानासे उठकर प्रथम ध्यानको प्राप्त हुये । प्रथम ध्यानसे उठकर द्वितीय ध्यानाको प्राप्त हुये । ० । चतुर्थ ध्यानासे उठनेके अनन्तर भगवान् परिनिर्वाणको प्राप्त हुये ।

भगवान् के परिनिर्वाण हो जाने पर, जो वह अवीत-राग (= १ तिरागी) भिक्षु थे, (उनमें) कोई राह पकड़कर क्रन्दन करते थे ; के पेटके सटन गिरते थे, (धरतीपर) छोटते-थे—‘ भगवान् बहुत जल्दी परिनिर्णृत हो गये ० । किन्तु जो वीत-राग भिक्षु थे, वह स्मृति-सप्रजन्मके साथ रवीकार (= सहन) करते थे—‘ संस्कार अनिय हैं, वह कहा मिलेगा ? ’

तत्र आयुष्मान् अनुरद्धने भिक्षुओंको कहा—

“ जहाँ आयुषो ! शोक मत करो, रोद भा करो । भगवान् ने तो आयुषो ! यह पहिलेही कह दिया है—‘ सभी प्रियो ० ने जुटाई ० होनी है ० । ’ ”

आयुष्मान् अनुरद्ध और आयुष्मान् आनन्दने बट् बाकी रात धर्म-कथामें वितर्क । तब आयुष्मान् अनुरद्धने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“ जाओ ! आयुष आनन्द ! कुसीनारामें जाकर, कुसीनाराके मछोको कहो—‘ वाशिष्ठो ! भगवान् परिनिर्णृत हो गये । अब जिसका तुम काल समझो (बह करो) । ’ ”

“ अच्छा भन्ते ! ” कह आयुष्मान् आनन्द पहिाकर पात्र-बीवर ले अकेले कुसीनारामें प्रविष्ट हुये । उस समय किसी कामसे कुसीनाराके मछ, सस्थागार (= प्रजातन्त्र-सभा भवन) में जमा थे । तब आयुष्मान् आनन्द जहा मछोका सस्थागार था, वहाँ गये । जाकर कुसीनाराके मछोको बोले—

“ वाशिष्ठो ! भगवान् परिनिर्णृत होगये, अब जिसका तुम काल समझो (बेसा करो) । ”

आयुष्मान् आनन्दसे यह सुनकर मछ, मछ पुत्र, मछ वधुयें, मछ भार्या दु पित हो ० कोई केशोको विलेकर क्रन्दन करती थीं ० ।

तत्र कुसीनाराके मछोने पुरपोको आज्ञा दी—

“ सो भणे ! कुसीनाराकी सभी गंध माला और सभी वाद्योंको जमा करो । ”

तत्र कुसीनाराके मछोंने गंध माला, सभी वाद्यो, और पाच हजार थान (= दुम्स)-जोड़ोंको लेकर जहा उपवत्तन ० था, जहाँ भगवान् का शरीर था, वहाँ गये । जाकर भगवान् के

शरीरको नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंधसे सत्कार करते, = गुरुत्वार करते, = मानते = पूजते कपड़ेका वितान (= चँदवा) करते, मंडप बनाते उस दिनको बिता दिया । तब कुम्भीनारायण के मछोको हुआ—“ भगवान्‌के शरीरके दाह करनेको आज बहुत बिनाल होगया । अब कुछ भगवान्‌के शरीरका दाह करेंगे । ” तब कुम्भीनारायण मछोने भगवान्‌के शरीरको नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंधसे सत्कार करते = गुरुत्वार करते = मानते = पूजते, चँदवा तानते, मंडप बनाते दूसरा दिन भी बिता दिया । तीसरा दिन भी० । चौथा दिन भी० । पांचवा दिन भी० । छठा दिन भी० । तब सातवें दिन कुम्भीनारायण के मछोको यह हुआ—“ हम भगवान्‌के शरीरको नृत्य० गंधसे सत्कार करते नगरके दक्षिण से ऐजाजर बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण भगवान्‌के शरीरका दाह करें । उस समय मछोके शाठ प्रमुख (= मुखिया) शिरसे नहाकर, नये वस्त्र पहिन, भगवान्‌के शरीरको उठाना चाहने थे, लेकिन वह नहीं उठ सका । तब कुम्भीनारायण मछोने आयुष्मान्‌ अश्वरुद्रको पूज—

‘ भन्ते ! अश्वरुद्र ! क्या हेतु है = क्या कारण है, जा कि हम आठ मछल प्रमुख० नहीं उठा सकते ? ’

“ वाशिष्ठो ! तुम्हारा अभिप्राय दूसरा है, और देवताभाऊ अभिप्राय दूसरा है । ”

“ भन्ते ! देवताभाऊ अभिप्राय क्या है ? ”

“ वाशिष्ठो ! तुम्हारा अभिप्राय है, हम भगवान्‌के शरीरको नृत्य०ने सत्कार करते० नगरके दक्षिण दक्षिण से जाकर, बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण, भगवान्‌के शरीरका दाह करें । देवताभाऊ अभिप्राय है—हम भगवान्‌के शरीरको द्वितीय नृत्य०से सत्कार करते० नगरके उत्तर उत्तर से जाकर, उत्तर द्वारसे नगरमें प्रवेशकर, नगरके बीचसे से जा, पूर द्वारसे निकल, नगरके पूर्व ओर (जहा) शुकुट वधन नामक मछोका चैत्य (= देवस्थान) है, वहाँ भगवान्‌के शरीर का दाह करें । ”

“ भन्ते ! जेवा देवताभाऊ अभिप्राय है—जैसा ही हो । ”

उस समय कुम्भीनारायण जाधमर मन्त्रारण (= एक दिव्य पुष्प) पुष्प गले लुमे थे । तब देवताभाँ और कुम्भीनारायण मछोने भगवान्‌के शरीरको द्वितीय और मानुष्य नृत्य०के साथ सत्कार करते० नगरके उत्तर उत्तरसे से जाकर ० (जहा) शुकुट वधन नामक मछोका चैत्य था, परा भगवान्‌का शरीर रखवा । तब कुम्भीनारायण मछोने आयुष्मान्‌ भानुको कहा—

“ भन्ते भानु ! हम तयागतक शरीरको बने करे ? ”

“ वाशिष्ठो ! जेवा चन्वर्ता राजाके शरीरको करते ह, येसे ही तयागतक शरीरको करना चाहिये । ”

“ जैसे भन्ते ! चन्वर्ता राजाके शरीर को करने है । ”

“ वाशिष्ठो ! चन्वर्ता राजाके शरीरको जे दपड़ेसे लपेटने हैं० । (दाहर) बड़े पौरुषसे पर तयागतका स्तूप बनवाना चाहिये । ”

१ रामाभार (कथा) का स्तूप ।

तब कुसीनाराके मछोने पुरपोंको आज्ञादी-

“ तो भणे ! मछोका धुना कपास जमा करो । ”

तब कुसीनाराके मछोने भगवान्के शरीरको भये चखने नेष्टि किया० सत्र गधोंकी चिता पाया, भगवान्के शरीरको चिता पर रक्खा ।

उस समय पाचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ आयुष्मान् महाकाश्यप पावा और कुसीनाराके बीचमें, रास्तेपर जा रहे थे । तब आयुष्मान् महाकाश्यप मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे बंठे । उस समय एक आजीवक कुसीनारासे मंदार का पुष्प ले पावाके रास्तेपर जा रहा था । आयुष्मान् महाकाश्यपने उस आजीवक को दूरसे आते देखा । देखकर उस आजीवकको यह कहा—

“ आबुस ! क्या हमारे शास्ताको भी जानते हो ? ”

“ हा, आबुस ! जानता हूँ, धम्मण गौतमको परिनिर्वात हुये आज एक सप्ताह होगया, मैंने यह मंदार-पुष्प वहींसे पाया । ”

यह सुन वहा जो अवीतराग भिक्षु थे, (उनमें) कोई कोई घाह पकड़कर रोते० । उस समय सुभद्र नामक (एक) बृद्ध प्रमजित (= बुढ़ापेमें साधु हुआ) उस परिपक्वमें बैठा था । तब बृद्ध प्रमजित सुभद्रने उन भिक्षुओंको यह कहा—

“ मत आबुसो ! मत शोक करो, मत रोओ । हम सुमुक्त होगये । उस महाधम्मण से पीड़ित रहा करतेथे—‘यह तुम्हें विहित है, यह तुम्हें विहित नहीं है । अब हम जो चाहेंगे, सो करेंगे, जो नहीं चाहेंगे, सो नहीं करेंगे ।’ ”

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“ आबुसो ! मत सोचो, मत रोओ । आबुसो ! भगवान्ने तो यह पहिलेही कह दिया है—सभी प्रियो=मनापोसे शुद्धाई० होनी है, सो वह आबुसो ! कहा मिलनेवाला है ? जो जात (= उरपन) = मृत० है, वह नाश होनेवाला है । ‘ हाय ! वह नाश मत हो ’—यह सम्भव नहीं । ”

उस समय चार मछ प्रमुख शिरसे नहाकर, नया वस्त्र पहिन, भगवान्की चिताको लीपना चाहते थे, किन्तु नहीं (लीप) सकते थे । तब कुसीनाराके मछोने आयुष्मान् अनुत्तको पूछा—

“ भन्ते अनुत्त ! क्या हेतु है = क्या प्रत्यय है, जिससे कि चार मछ प्रमुख० नहीं (लीप) सकते हैं । ”

“ वाशिष्ठो ! देवताओंका दूसराही अभिप्राय है । पाच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ आ० महाकाश्यप पावा और कुसीनाराके बीच रास्तेमें आरहे हैं । भगवान्की चिता तब तक न जलेगी, जबतक आयुष्मान् महाकाश्यप स्वयं भगवान्के चरणोंको शिरसे वन्दना न कर लेंगे । ”

“ भन्ते ! जैसा देवताओंका अभिप्राय है, वैसा हो । ”

तत्र आयुष्मान् महाकाश्यपने जहा मलोका मुकुटवल्ग्वन नामक चैत्य था, जहा भगवान् की चिता थी, वहा पहुँचकर, चीवरको एक कन्धेपर कर अञ्जली जोड़, तीन बार चिताकी परिक्लमाकर, चरण म्नेलकर, शिरसे वन्दना की । उन पाच सौ भिक्षुओंने भी एक कन्धेपर चीवर कर, हाथ जोड़ तीनवार चिताकी—प्रदक्षिणाकर, भगवान्के चरणोंम शिरसे वन्दना की । आयुष्मान् महाकाश्यप और उन पाच सौ भिक्षुओंके वन्दना करलेतेही, भगवान्की चिता स्वयं जल उठी । भगवान्के शरीरमें जो छवि (= झिल्ली) या चम, मय, नय, या लम्बिका थी, उनकी न राख जान पड़ी, न कोयला, सिर्फ अस्थियाँही बाकी रह गईं, जैसे कि जलते हुये घी या तेलकी न राख (= आश्रित) जान पड़ती है, न कोयला (= मसी) । भगवान्के शरीरके दाय हो जानेपर आकाशसे मेघने प्रादुर्भूत हो भगवान्की चिताको उँढा किया । । कुसीनाराके मछोने भी सर्व गन्ध (= मिश्रित) जलसे भगवान्की चिताको उँढा किया ।

तत्र कुसीनाराके मछोने भगवान्की अस्थियाँ (= सरीरानि)को सप्ताह भर संस्था गारमें धाकि (= हस्त पुरषेके धरेका)—पंजर बनवा, धनुष (हस्त पुरषेका धरेका) प्राकार बना, मृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंधसे सत्कार किया = गुह्यार किया, माना = पूजा ।

राजा मागध अजातशत्रु रेदेहीपुत्रने सुना—‘भगवान् कुसीनारामें परिनिर्वाणको प्राप्त हुये’ । तत्र राजा ० अजातशत्रुने कुसीनाराके मछोके पास दूत भेजा—‘भगवान् भी क्षत्रिय (ये), मैं भी क्षत्रिय (हूँ), भगवान्के शरीरा (= अस्थियों)म मेरा भागभी वाजित है । मैं भी भगवान्के शरीरोंका स्तुष वन्याउंगी और पूजा करंगा ।’

वैशालीक लिच्छवियोंने सुना ० ।

कपिलवस्तुके शाक्योंने सुना ० ।—‘भगवान् हमारे चासिक (ये) ० ।

अलङ्क्यके बुलियोंन सुना ० । रामयामके कोलियोंने सुना ० ।

नेठ दीपके ब्राह्मणोंने सुना ०, भगवान् भी क्षत्रिय ने, हम ब्राह्मण ० । पावाके मछोने भी सुना ० ।

ऐसा कहनेपर कुसीनाराके मछोने उन संघों और गणोंको कहा—“भगवान् हमारा प्रान्तेप्रमें परिनिर्वाण हुये, हम भगवान्के शरीरा (= अस्थियों)का भाग नहीं हेंगे ।”

ऐसा कहनेपर द्रोण ब्राह्मणों उन संघों और गणोंको यह कहा—

“ आप सब मेरी ण्ठ बात सुने, हमारे बुद्ध क्षाति (= क्षमा) नदी थे ।

यह ठीक नहीं कि (उम) उत्तम पुरषकी अस्थि घाटनेमें मारपीट हो ॥ १ ॥

आप सभी सहित (= एक साथ) समय (= एक राय) समोदन करते बाढ भाग करें । (जिससे) दिशाओंम स्तुषोरा विस्तार हो, वज्रने लोग कथुमान् (= बुद्ध)में प्रमथ (= धक्काबाज) हो ॥ २ ॥ ”

तो ब्राह्मण । सभी भगवान्के शरीरोंको बाढ समान भागोंमें सुविभक्त कर ।”

“अच्छा भो ।” द्रोण ब्राह्मणन भगवान्के शरीरोंको आठ समान भागोंमें सुविभक्त (= बाँट)कर, उन संघों गणोंको कहा—

“आप सब इस कुम्भको मुझे दें, मे कुम्भका स्तूप बनाऊँगा और पूजा करूँगा ।”

उन्होंने द्रोण ब्राह्मणको कुंभ दे दिया ।

पिप्पलीजनके मोरियों(=मोरियों)ने सुना० ‘भगवान्‌भी क्षणिय, हमभी क्षत्रियः ।’

“भगवान्‌के शरीरका भाग नहीं है, भगवान्‌के शरीर बँट चुके । यद्वासे कोइला (=अगर) ले जाओ ।” वह वहाँसे अगर ले गये ।

तत्र (१) राजा० अज्ञातशत्रु०ने राजगृहमें भगवान्‌के अरिथियोंका स्तूप (बनाया) और पूजा (=मह) की । वेशालीके लिच्छवियोंनेभी० । (३) कपिलस्तूपके शाक्योंने भी० । (४) अलस्तूपके शुलियोंने भी० । (५) रामग्रामके कोलियोंने भी० । वैष्ठीपके ब्राह्मण नेभी० । (७) पाषाणके मल्लोने भी० । (८) कुलीनाराके मल्लोने भी० । (९) द्रोण ब्राह्मणने भी कुम्भका० । (१०) पिप्पलीजनके मोरियोंने भी अगरोंका० ।

इस प्रकार आठ शरीर(=अस्थि)के स्तूप और एक कुम्भ स्तूप पूर्वकाल (=भूतपूर्व) में थे ।

“चतु-मान् (=चुद्ध)का शरीर (=अस्थि) आठ द्रोण था । (जिसमेंसे) सात द्रोण जम्बूद्वीपमें पूजित होते हैं । (और) पुरपोत्तमका एक द्रोण राम-ग्राममें नागोंसे पूजा जाता है ॥१॥

एक ढाढ (=दाढ) रुग्ण-लोकमें पूजित है, और एक गंधारपुरमें पूजी जाती है । एक कर्लिंग राजाके देशमें है, और एकको नागराज पूजते हैं ॥२॥

“अ क “कुलीनारासे राजगृह पचीस योजन है । इस बीचमें आठ रूपम चौड़ा समतल मार्ग बनया, मल्ल राजाओंने सुकृष्ट-यथा और सन्धागारमें जैसी पूजा की थी, वहीही पूजा पचीस योजन मार्गमें की । (उमने) अपने पाच सौ योजन परिमटल (=घेरे घाटे) राज्यके मनुष्योंको एकत्रित करवाया । उन धातुओंको ले, कुलीनारामे धातु(-निमित्त) क्रीडा करते निकलकर (लोग) जहा सुन्दर पुष्पोंको देखते, वहाँ पूजा करते थे । इस प्रकार धातु लेकर आने हुये, सात वर्ष सात मास सात दिन बीत गये । लाई गई धातुओंको लेकर (अज्ञातशत्रुने) राजगृहमें स्तूप बनाया, पूजा कराई ।

इस प्रकार स्तूपोंने प्रतिष्ठित होजानेपर महात्ताव्यप स्थविरने धातुओंके अन्तराय (=विघ्न)नो देखकर, राजा अज्ञात शत्रुके पास जाकर कहा—“ महाराज । एक धातु-निधान (=अस्थि धातु रखनेका चहनथा) बनाना चाहिये ।” “ अच्छा भन्ते ! ”

स्थविर उन-उन राज-कुलोंको पूजा करने माग्रकी धातु छोडकर बाकी धातुओंको ले आये । रामग्राममें धातुओंके नागोंके ग्रहण करनेमें अन्तराय न था, ‘भविष्यमें लका द्वीपमें इसे महाविहारके महाचैत्यमें स्थापित करेंगे’—(क र्यालसे भी) न ले आये । बाकी सातों नगरोंमें ले आकर, राजगृहके पूर्व-दक्षिण भागमें (जो स्थान है), राजाने उस स्थान को खुदवाकर, उससे निकली मिट्टीसे ईंटें बनवाईं । ‘यहा राजा क्या बनवाता है’, पूछने वालेको भी ‘महाश्रावकोंका चैत्य बनवाता है’ यही कहते थे, कोई भी धातु-निधानकी बात न जानता था ।

उम स्थानके अस्सी हाथ गहरा होनेजानेपर, नीचे लोहेका पत्तर बिछाकर, वहाँ 'थूपा राम' के चैत्य घरके घरावरका नाचे (=ताम्र लोह) का घर बनया, आठ आठ हरिचन्दन आदिके करंडों (=पिटारी) और स्तूपोंको बनवाया । तब भगवान्की धातुको हरिचन्दनके करण्ड (=पेटारी, डिब्बा) में रखवा, उस को दूसरे हरिचन्दनके करण्डमें, उसे भी दूसरेमें, इस प्रकार आठ हरिचन्दनके करण्डोंमें एकमे एक रखकर, आठ हरिचन्दन-स्तूपोंमें, आठ लोहित (=लाल) चन्दनके स्तूपोंमें, (उन्ह) आठ (हार्थी-) त कण्डोंमें, आठ दत्त करण्डोंमें आठ दत्त स्तूपोंमें, सर्वरत्न कण्डोंमें, सर्वरत्न-स्तूपोंमें, आठ सुवर्ण-करण्डोंमें,

आठ सुवर्ण-स्तूपोंमें, आठ रजत (=चादी) -करण्डोंमें, आठ रजत-स्तूपोंमें, आठ मणि-करण्डोंमें, आठ मणि स्तूपोंमें, लोहितार कण्डोंमें, =लोहिताक (=पद्मराग मणि) -स्तूपोंमें, मयार-गल्ल (=कषर मणि) -करण्डोंमें, मयारगल्ल स्तूपोंमें, आठ स्फटिक-करण्डोंमें, आठ स्फटिक-स्तूपोंमें रखकर, उनके ऊपर धूपारामके चैत्यके घरावरका स्फटिक चैत्य बनवाया । उसके ऊपर सत्रसमय गेह बनवाया । उसके ऊपर सुवर्णमय, रजतमय, उसके ऊपर ताम्रलोह (=ताम्र) मय गेह बनवाया । वहाँ सर्वरत्नमय बालुका विलेखर, जलन स्थलन सहस्रो पुष्पोंको विदेकर, साढ़े पाच सौ जातरु, अस्सी महास्थविर, छुट्टोदम महाराज, महाप्रायादेवी, (सिद्धार्थ) साव उत्पन्न हुये सात, मनी (की मूर्तियों) को सुवर्ण-मय बनवाया । पांच सौ सुवर्ण रजतमय घट स्थापित किये, पांच सौ सुवर्ण ध्वज फहराये, पांच सौ सुवर्ण दीप, पांच सौ रजत दीप बनवाकर सुगन्ध तेल भरकर, उनमें दुरल (=बहुमूल्य वस्त्र) की पत्तिया डल्वाई । तब आयुमान् महाशय्यपने—'साला मत मुरज्जय, गय न नष्ट हो, प्रदीप न बुझें'—यह अधिष्ठान (=विश्व संरक्षण) करके सुवर्ण पत्रपर अक्षर खुदवाये—

"अत्रियमे पियवम (१=पियदस्सी=पियदशा) नामक कुमार छत्र धारणकर अशोक धर्मराजा होगा । वह इन धातुओंकी कैयवेगा । "

राजाने सब साधनास पूजाकर आदिसे ही (एक एक) द्वारको बन्दकर, जमीरमें कुंजी दे (=कुंजिकमुद्रियं बंधित्वा), वहाँ बड़ी मणियोंकी राशि स्थापित की—"अविच्यम (होनेवाले) ददित्त राजा मणियोंको ग्रहणकर धातुओंकी पूजा करे"—अक्षर पुद्गल दिये । शक्र देवराजने विश्वकर्माको बुलाकर—"सात ! अजातशत्रुन धातुनिधान कर दिया, वहाँ पहरा नियुक्त करो"—कह भेजा । उसने आकर बाढ संघाट-यंत्र लगा दिया । (जितने) उस धातु गर्भ (=धातुके चवदवने) में काष्ठकी मूर्तिया स्फटिकके वर्णक सज्जाका लेकर पवन-पेगसे घूमती थीं । यंत्रमें जोड़कर एक ही आनाम बाधकर, चारा ओर पृथक्के रहनेक स्थानकी भांति शिखा परिक्षेप करवा, ऊपर एक (गिला) में उड्डरवा मिहो उड्डा भूमि समतलकर, उसके ऊपर पाषाण-स्तूप स्थापितकराया दिया ।

इस प्रकार धातु निधान समाप्त हो जानेपर, स्थविर आयुभर रहकर निरागको ध्ये गय, राजा भी कमातुपार गया, वह मनुष्य भी मर गये ।

पीछे पियवम (१ पियदस्सी) नामक कुमारने, छत्र धारणकर अशोक नामक धर्मराजा हो, उन धातुओंको लेकर जम्बूद्वीपमें भेजाया । "

(प्रथम-संगीति वि. पू. ४२६)

तत्र आयुष्मान् महाकाश्यपने भिक्षुओंको मनोधित किया । आयुसो ! एक ममय मे १ पाचमौ भिक्षुआके साथ पावा और कुमीनाराके बीच रास्तेमें था । तत्र आयुसो ! मार्गसे हटकर मैं एक वृक्षके नीचे बैठ । उस समय एक आजीवक कुमीनारासे मंदारका पुष्प लेकर पावाके रास्तेमें जा रहा था । आयुसो ! मेने दूरसे ही आजीवकको आते देखा । दृष्टकर उस आजीवकको यह कहा—“ आयुम ! हमारे शास्ताको जानते हो ? ”

“ हा आयुसो ! जानता हूँ, आज सप्ताह हुआ, श्रमण गौतम परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ । मेने यह मन्दारपुष्प वहाँसे लिया है । ” आयुसो ! वहा जो भिक्षु अवीत राग (=वेराग्य वाले नहीं) थे, (उनमें) कोई कोई बाह पकड़कर रोते थे ० ।

‘ उस समय आयुसो ! मुमद्र ० बुद्ध-प्रव्रजितने ० कहा— ० जो नहीं चाहेंगे उसे न करेंगे । ’ ‘ अच्छा आयुसो ! हम धर्म और विनय का संगम (=साथ पाठ) करें, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, अविनय प्रकट हो रहा है, विनय हटाया जा रहा है । अधर्मवादी बलवान् हो रहे हैं, ० धर्मवादी दुर्बल हो रहे हैं, ० विनयवादी हीन हो रहे हैं । ’

‘ तो भन्ते ! (आप) स्थविर भिक्षुओंको चुन । ’ तत्र आयुष्मान् महाकाश्यपने एक कम पाचसौ अर्हत् चुने । भिक्षुआने आयुष्मान् महाकाश्यपको यह कहा—

“ भन्ते ! यह आनन्द यद्यपि शैल्य (अन्-अर्हत्) है, (तो भी) छन्द (= राग) द्वेष, मोह, भय, अमति (=बुरे माग) पर जानेके अयोग्य हैं । इन्होंने भगवान् के पास बहुत धर्म (=सूत्र) और विनय प्राप्त किया है, इसलिये भन्ते । स्थविर आयुष्मान्को भी चुन लें । ’

तत्र आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दको भी चुन लिया । तत्र स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—‘ वहाँ हम धर्म और विनय संगायन करें ? ’ तत्र स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—

“ राजगृह महागोचर (=समीपमें बहुत बस्तीवाला) बहुत शयनाशाला (=घासस्थान)-वाला है, क्यो न राजगृहमें वर्षावास करते हम धर्म और विनयका संगायन करें । (लेकिन) दूसरे भिक्षु राजगृह मत जावें । तब आयुष्मान् महाकाश्यपने सघको ज्ञापित किया—

“ आयुसो ! संघ सुन, यदि संघको पसंद है, तो संघ इन पाचसौ भिक्षुओंको राजगृहमें वर्षावास करते धर्म और विनय संगायन करनेकी समति दे । और दूसरे भिक्षुओंको राजगृहमें नहीं बसने की । ’ यह जसि (=सूचना) है । “ भन्ते ! संघ सुने, यदि संघको पसंद है ० । ’ जिम आयुष्मान्को इन पाचमौ भिक्षुओंका, ० संगायन करना, और दूसरे भिक्षुओंका राजगृह

में वर्षावास न करा पसंदहो, वह चुप रहे, जिसको नहीं पसंदहो, वह बोले । दूसरीवारभी० । तीसरीवारभी० । 'संघ इन पाचमों मिश्रुओं० तथा दूसरे मिश्रुओंके राजगृहमें वाम न करनेसे सहमत है, संघको पसंद है, इसलिये चुप है'—यह धारण जाता है ।'

तब स्वविर मिश्रु । धर्म और विनयके संगायन करनेके लिये राजगृह गये । तब स्वविर मिश्रुओंको हुआ—

'आयुसो ! भगवान्ने दूरे पूरेकी मरम्मत करनेको कहा है । अच्छा आयुसो ! हम प्रथम मासमें दूरे पूरेकी मरम्मत करें, दूसरे मासमें एकत्रितहो धर्म और विनयका संगायन करें ।' तब स्वविर मिश्रुओंने प्रथम मासमें दूरे पूरेकी मरम्मत की ।

आयुमान् आनन्दने—'बठक (=मन्त्रिपात) होगी, यह मेरे लिये उचित नहीं, कि मैं शीघ्र रहते ही बठक में जाऊँ' (सोच) बहुत रात तक काय-स्थितिमें बिता कर, रातके भिन्नसारको लेटनेकी इच्छासे शरीरको कैलाया, भूमिसे पर उठ गये, और शिर तकिया पर न पहुँच सका । इसी बीचमें चित्त आसुरो (=चित्तमहा)से अलग हो, मुक्त होगया । तब आयुमान् आनन्द अर्हत् होकर ही बठकमें गये ।

आयुमान् महाकाश्यपने स्वको ज्ञापित किया—

"आयुसो ! संघ सुने, यदि संघको पसन्द है, तो मैं उपासीको विनय पूछूँ ?"

आयुमान् उपासीनेभी स्वको ज्ञापित किया—

"भन्ते ! संघ सुने यदि संघको पसन्द है, तो मैं आयुमान् महाकाश्यपसे पूछे गये विनयका उत्तर दूँ ?"

तब आयुमान् महाकाश्यपने आयुमान् उपासीको कहा—

"आयुस ! उपासी । 'प्रथम-पाराजिका कहा प्रज्ञसको गई ?' " राजगृहमें भन्ते ।"

"किसको लेकर ?" "उदित कन्द-पुत्तको लेकर ।"

"किस पातम ?" "सैधु धर्म में ।"

तब आयुमान् महाकाश्यपने आयुमान् उपासीको प्रथम पाराजिकाकी वस्तु (=कथा)भी पूछी, निदान (=कारण)भी पूछा, पुत्र (=व्यक्ति) भी पूछा, प्रज्ञा (=विधान)भी पूछी, अनु प्रज्ञा (=संगोपन)भी पूछी, आपत्ति (=शेष दंड)भी पूछी, शान् आपत्ति भी पूछी ।

"आयुस उपासी । 'द्वितीय-पाराजिका कहा प्रज्ञापित हुई ?' " राजगृहमें, भन्ते ।"

"किसको लेकर ?" "धनिय बुभकार पुत्र को ।"

"किस वस्तु ?" "अदत्तादान (=चोरी)में ।"

तब आयुमान् महाकाश्यपने आयुमान् उपासीको द्वितीय पाराजिकाका वस्तु (=बात, विषय) भी पूछी, निदान भी० अनापत्ति भी पूछी ।—

१ उस समयमें सभी महाकाश्यपसे पीछे घने मिश्रु थे, इसलिये 'आयुस' कहा । २ यहां उस संघमें महाकाश्यप उपासीसे बड़े थे, इसलिये 'भन्ते' कहा । ३ देखो पृष्ठ ३१२ ।

४ देखो पृष्ठ ३०८ ।

“आवुस उपाली ! १ तृतीय पाराजिका कहा प्रज्ञापित हुई ?” “वेशालीमें, भन्ते ।”

“किसको लेकर ?” “बहुतसे भिक्षुओं को लेकर ।”

“किस वस्तुमें ?”

“मनुष्य विषह (= नर-हत्या) के विषय में ।”

तत्र आयुष्मान् महाकाश्यपने० ।—

“आवुस उपाली ! २ चतुर्थ पाराजिका कहा प्रज्ञापित हुई ?” “वेशालीमें भन्ते ।”

“किसको लेकर ?” “वग्गु-मुदा तीरवासी भिक्षुओं को लेकर ।”

“किस वस्तुमें ?” “उत्तर-मनुष्य-धर्म (= दिव्य शक्ति) में ।”

तत्र आयुष्मान् काश्यपने० । इसी प्रकारसे दोनों (भिक्षु, भिक्षुणी) के विनयोंको पूछा । आयुष्मान् उपाली पूछेका उत्तर दत्ते थे ।

तत्र आयुष्मान् महाकाश्यपने सघको ज्ञापित किया—

“आवुसो ! संघ सुते सुने । यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् आनन्दको धर्म (= सूत्र) पूछूँ ?”

तत्र आयुष्मान् आनन्दने सघको ज्ञापित किया—

“भन्ते ! संघ सुते सुने । यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछे गये धर्मका उत्तर दूँ ?”

तत्र आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“आवुस आनन्द ! ‘ ब्रह्मजाल ’ (सूत्र) को कहा भाषित किया ?”

“राजगृह और नालन्दाके बीचमें, अम्बलट्टिकाके राजागारमें ।”

“किसको लेकर ?”

“सुप्रिय परित्राजक और ब्रह्मदत्त माणवकको लेकर ।”

तत्र आयुष्मान् महाकाश्यपने ‘ ब्रह्मजाल ’ के निदानको भी पूछा, पुत्रलको भी पूछा—

“आवुस आनन्द ! ‘ सामञ्ज (= श्रामण्य) फल ’ को कहा भाषित किया ?”

“भन्ते ! राजगृहमें जीवकम्ब-वनमें ।”

“किसके साथ ?”

“अजात-शत्रु वेदेहिपुत्रके साथ ।”

तत्र आयुष्मान् महाकाश्यप ‘ सामञ्ज-फल ’-सुत्रके निदानको भी पूछा, पुत्रलको भी पूछा । इसी प्रकारसे पाँचों निकायोंको पूछा, पूछे पूछेका आयुष्मान् आनन्दने उत्तर दिया ।

तत्र आयुष्मान् आनन्दने म्वचिर-भिक्षुओंको कहा—

“भन्ते ! भगवान्ने परिनिर्वाणके समय ऐसा कहा है—‘ आनन्द ! इच्छा होनेपर संघ में न रहनेके बाद, क्षुद्र-अनुशुद (= छोटे छोटे) शिक्षापक्षी (= भिक्षु-नियमों) को हटा दे ।’

“ आहुस आनन्द । “ तूने भगवान्‌को पूछा ?—‘भन्ते । किन क्षुद्र अनुक्षुद्र शिक्षापदो को ?”

“ भन्ते ! मैने भगवान्‌को नहीं पूछा ।”

किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकाओंको छोड़कर बाकी शिक्षापद क्षुद्र-अनुक्षुद्र हैं । किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकायें, और तेरह सघादिशेषोंको छोड़कर, बाकी ० । ० चार पाराजिकायें, और तेरह सघादिशेषों, और दो अनियतोंको छोड़कर बाकी ० । ० पाराजिका ० सघादिशेष ० अनियत और तीस भैरमिग्न प्रायश्चित्तिकोंको छोड़कर ० । ० पाराजिका ० सघादिशेष ० अनियत ० भैरमिग्न प्रायश्चित्तिक और दानवे प्रायश्चित्तिकोंको छोड़कर ० । ० ० और चार प्राप्ति-देशनीयोंको छोड़कर ० ।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने सघको चापित किया—

“ आहुसो ! सघ सुने सने । हमारे शिक्षापद गृही गत भी हैं (= गृहस्थ भी जानते हैं)—“ यह तुम शाक्यपुत्रीय ऋमणोको विहित (= कल्प्य) है, यह महा विहित है ।” यदि हम क्षुद्र अनुक्षुद्र शिक्षापदोंको हनयेंगे, तो कहनेवाले होंगे—‘धम्म गौतमने धूमके कालिख जैसा शिक्षापद प्रज्ञप्त किया, जगतक इनका शास्ता रहा, तब तक यह शिक्षापद पालते रहे, जब इनका शास्ता परिनिर्णृत होगया, तब यह शिक्षापदोंको नहीं पालने ।’ यदि सघ का पसंद हो तो सघ अ प्रज्ञप्त (= अविहित) को न प्रज्ञापन (= विज्ञान) करे, प्रज्ञप्ता न छेदन करे । प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें वर्त—यह असि (= सूचना) है— आहुसो । सघ सुनै ० प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें वर्त । जिस आयुष्मान्‌को अ प्रज्ञप्त न प्रज्ञापन, प्रज्ञप्ता न छेदन, प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंको ग्रहण कर घनना पमन्वहो, यह क्षुद्र रहे, जिसको नहीं पमन्वहो हो वह बोरे । सघ न अप्रज्ञप्तको प्रज्ञापन करता है, न प्रज्ञप्ता छेदन करना है ० प्रज्ञप्तिके अनुसारही शिक्षापदोंमें ग्रहण कर वर्तता है—(यह) सघको पमन्वह है, इसलिये मौन है—ऐसा धारण करता हूँ ।”

तब स्थविर भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“ आयुस आनन्द ! यह तूने बुरा किया (= दुष्ट), जो भगवान्‌को नहीं पूछा — ‘भन्ते ! कौनसे हैं वह क्षुद्र अनुक्षुद्र शिक्षापद । अत अय तू दुष्कृतको देशनाका ।’ ”

“ भन्ते ! मैने याद न होनेसे भगवान्‌को नहीं पूछा—‘भन्ते ! कौनसे हैं ० । इसे मैं दुष्कृत नहीं समझता । किन्तु आयुष्मानोके कृपासे देशना (= क्षमा प्रार्थना) करता हूँ ।”

“ यह भी आयुस आनन्द ! तेरा दुष्टव है, जो तूने भगवान्‌की वषादातो (= वषां क्रतुमें नहानेके बपड़े) को (परसे) अप्रमग्नकर मिया, इस दुष्कृतको देशनाकर । ”

“ भन्ते ! मैने अगोरपके रयालसे भगवान्‌की वषाकी ढगीको अप्रमग्नकर नहीं लिया, इसे मैं दुष्कृत नहीं समझता, किन्तु आयुष्मानोके रयालसे देशना (= क्षमा प्रार्थना) करता हूँ । ”

“यह भी आबुस आनन्द ! तेरा दुष्ट है, जो तूने प्रथम भगवान्‌के शरीरको खीसे वन्दना करवाया, रोती हुई उन स्त्रियोंके आसुओंसे भगवान्‌का शरीर लिप्त होगया, इस दुष्टको देशनाकर ।”

“भन्ते ! वह वि(=वति) कालमें न हो—इस (रयाल)से मैंने भगवान्‌के शरीरको प्रथम खीसे वन्दना करवाया, मे उसे दुष्ट नहीं समझता० ।

“यह भी आबुस आनन्द ! तेरा दुष्ट है, जो तूने भगवान्‌के उदार निमित्त करनेपर भगवान्‌के उदार (=ओलारिक) अवभास करनेपर, भगवान्‌से नहीं प्रार्थनाकी—‘भन्ते ! यहूजन हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुरूपार्थ, देव मनुष्योंके अर्थ = हित = सुखके लिये भगवान्‌ कल्पभर ठहरें, भुगत कल्पभर ठहरें ।’ इस दुष्टको देशनाकर ।”

“मैंने भन्ते ! मारसे परि उत्थित चित्त (=अममें) होनेसे, भगवान्‌से प्रार्थना नहीं की० । इसमें दुष्ट नहीं समझता० ।”

“यह भी आबुस आनन्द ! तेरा दुष्ट है, जो तूने तथागतके बतलाये धर्म (=धर्म-विनय)में स्त्रियोंकी प्रव्रज्याकेलिये उत्सुकता पैदाकी । इस दुष्टकी देशना कर ।”

“भन्ते ! मैंने—‘यह महाप्रजापती गौतमी भगवान्‌की मौमी, आपादिका=पोषिका, क्षीरपायिका है, जननीने मरनेपर मृत पिलाया’ (खालकर) तथागत-प्रवेदित धर्ममें स्त्रियों की प्रव्रज्याकेलिये उत्सुकता पैदा की । मैं इसे दुष्ट नहीं समझता, किन्तु० ।”

उस समय पान्थो भिक्षुओंके महाभिक्षु यंधके साथ आ० पुराण दक्षिणागिरिमें बारिका कर रहे थे । आयुमान् पुराण स्थविर भिक्षुओंके धर्म और विनयके संगायन समाप्त होजानेपर, दक्षिणागिरिमें इन्ड्रागुमार विहरकर, जहा राजगृहमें कलंदक-निवापका वेणुगन था, जहाँ पर स्थविर भिक्षु थे, वहा गये । जाकर स्थविर भिक्षुओंके साथ प्रतिसमोन्नकर, एक ओर बैठे । एक ओर बैठे हुये आयुमान् पुराणको स्थविर भिक्षुओंने कहा—

“आबुस पुराण ! स्थविरोने धर्म और विनयका संगायन किया है । आजो तुम (भी) संगीतिरो ।”

“आबुस ! स्थविरोने धर्म और विनयको छदर तोरसे संगायन किया है, तो भी जैसा मैंने भगवान्‌के मुंहसे सुना है, मुझसे ग्रहण किया है, वेसा ही मैं धारण करूंगा ।”

तत्र आयुमान् आनन्दने स्थविर भिक्षुओंको यह कहा—

“भन्ते ! भगवान्‌ने परिनिर्वाणके समय यह कहा—‘आनन्द ! मेरे न रहनेके बाद सय छत्र (=छंदक)को ग्रहदंडकी आत्मा दे ।’

“आबुस ! पूछा तुमने ग्रहदंड क्या है ?”

“भन्ते ! मैंने पूछा० ।—‘आनन्द ! छत्र भिक्षु जैसा चाहे वैसा धोले, भिक्षु छत्रको न धोले, न उपदेश करें, न अनुशासन करें ।’

“तो आयुस आनन्द ! तूनी छत्र भिक्षुको ग्रहदंडकी आत्मा दे ।”

“ भन्ते ! मैं छत्ररो महर्षिजी आता करुगा, लेकिन वह मिथु चंड परुष (= कटुभाषी) है ।”

“ तो आयुस आनन्द ! तुम बहुतसे मिथुभोके साथ जाओ ।”

“ अच्छा भन्ते !” कहकर आयुमान् आनन्द पाचसौ मिथुओंके महाभिक्षुमण्डके साथ नावपर कौशाम्बी गये । तावसे उत्तर कर राजा उद्यन उद्यानके समीप एक वृक्ष नीचे बैठे । उस समय राजा उद्यन रनिवास (= अवरोध) के साथ यागकी मर कर रहाथा । राजा उद्यनके अवरोधने सुना—हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पड़क नीचे बैठे हैं । तब अवरोधने राजा उद्यनको कहा—

“ देव ! हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पड़के नीचे बैठे हैं, देव ! हम आर्य आनन्दका दर्शन करना चाहती हैं ।

“ तो तुम श्रमण आनन्दका दर्शन करो ।”

तब अवरोध जहा आयुमान् आनन्द थे, वहा जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे हुये रनिवासने आयुमान् आनन्दके धार्मिक कथासे सदर्शित = प्रेरित = समुत्तेजित, सप्रहर्षित किया । तब राजा उद्यनके अवरोधने आयुमान् आनन्दको पाच सौ चादरें (= उत्तरासंग) प्रदानका । तब अवरोध आयुमान् आनन्दके भाषणसे अभिनन्दित कर अनुमोदित कर, आत्मसे उठ आयुमान् आनन्दको अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, जहा राजा उद्यन था वहा चला गया । राजा उद्यनने दूरसे ही अवरोधने आते देखा, देखकर अवरोधको कहा—

“ क्या तुमने श्रमण आनन्दका दर्शन किया ?” “ दर्शन किया देव ! हमने आनन्दका ।”

“ क्या तुमने श्रमण आनन्दको कुछ दिया ?” “ देव ! हमने पाच सौ चादरें दीं ।”

राजा उद्यन हैरान होता था, विस्म होना था = विपश्चित होता था—“ क्यों श्रमण आनन्दने इतने अधिक चीवरोको लिया, क्या श्रमण आनन्द पण्डेका व्यापार (= दुस्स-वणिज) करेगा, या वृक्षन खोलैगा ।” तब राजा उद्यन जहा आयुमान् आनन्द थे, वहा गया, जाकर आयुमान् आनन्दके साथ सम्मोदन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे राजा उद्यनने आयुमान् आनन्दको यह कहा—

“ हे आनन्द ! क्या हमारा अवरोध बड़ा आधा था ?” “ आधा था महाराज । वहा तेरा अवरोध ।”

“ क्या आप आनन्दको कुछ दिया ?” “ महाराज ! पाच सौ चादरें दीं ।”

“ आप आनन्द ! इतने अधिक चादर क्या करैंगे ?” “ महाराज ! जो फटे चीवर घाले मिथु हैं, उन्हें चारेंगे ।”

“ और जो वह पुराने चीवर हैं उह क्या करैंगे ?” “ महाराज ! मित्रौनेकी चादर बनायेंगे ।”

“ जो वह पुराने मित्रौनेकी चादरें हैं, उन्हें क्या करैंगे ?” “ उनसे गद्देका गिलाफ बनायेंगे ।”

“ जो वह पुराने गद्देके गिलाफ हैं, उन्हें क्या करेंगे ? ” “ उनका महाराज ! फर्श बनावेंगे । ”

“ जो वह पुराने फर्श हैं, उनका क्या करेंगे ? ” “ उनका महाराज ! पायदाज बनावेंगे । ”

“ जो वह पुराने पायदाज हैं, उनका क्या करेंगे ? ” “ उनका महाराज ! झाड़न बनावेंगे । ”

“ जो वह पुराने झाड़न हैं ? ” “ उनको फूटकर, कीचड़के साथ मर्दनकर पहातर करेंगे । ”

तब राजा उदयनने—‘ यह सभी शाक्यपुत्राय श्रमण कार्यकारणसे काम करते हैं, व्यर्थ नहीं जाने देते ’—(कह), आयुष्मान् आनन्दको पाच-सौ और चादरें प्रदान कीं । यह आयुष्मान् आनन्दको एक हजार चीखरोकी प्रथम चीवर-मिक्षा प्राप्त हुई ।

तब आयुष्मान् आनन्द जटा घोषिताराम था, बहा गये, जाकर बिठे आसनपर बैठे । आयुष्मान् छत्र जहा आयुष्मान् आनन्द थे, बहा गये, जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादन कर एक ओर बस । एक ओर बैठे आयुष्मान् छत्रको आयुष्मान् आनन्दने कहा—

“ आयुष । छत्र । संघने तुम्हे, ब्रह्मदण्डकी आज्ञा दी है ।

“ क्या है भन्ते आनन्द । ब्रह्मदंड ? ”

तुम आयुष छत्र । भिक्षुओंको जो चाहना सो बोलना, किंतु भिक्षुओंको तुमसे नहीं बोलना होगा, नहीं अनुशसन काना होगा । ”

“ भन्ते आनन्द ! मे तो इतनेसे माया गया, जो कि भिक्षुओंको मुझसे नहीं बोलना होगा । ”—(कह) वहीं स्रुटित होकर गिर पड़े । तब आयुष्मान् छत्र ब्रह्मदण्डसे वेधित, पीडित, लुपुप्सित हो, पृष्ठाकी, निस्संग, अ प्रमत्त, उद्योगी, आत्ममेवमी हो, विहार करते, जलहीही जिसके किये कुलपुत्र प्रमजित होते हैं, उस सर्वात्तम ब्रह्मवर्य फरको इसी जन्ममें स्वयं जानकर=साक्षात्कारकर=प्राप्तकर निहरने लगे । और आयुष्मान् छत्र अहतोमें एक हुये । ”

तब आयुष्मान् छत्र अर्हत-पदको प्राप्तहो जहा आयुष्मान् आनन्द थे, बहा गये, जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोले—

“ भन्ते आनन्द ! अब मुझसे ब्रह्मदंड हटा लें । ”

“ आयुष छत्र ! जिस समय तूने अहस्त्र साक्षात्कार किया, उसी समय, ब्रह्म दंड हट गया । ”

इस विनय-संगतिमें पाचमौ भिक्षु—न कम न বেশी थे । इसलिये यह विनय संगीति ‘ पंच शतिका ’ कही जाती है ।

+

+

+

सुतपिटकमें पाच निकाय हैं —(१) दीघ निकाय (२) मज्झिम निकाय, (३) संयुत निकाय (४) अंगुत्तर-निकाय, और (५) खड्क-निकाय । । (१) दीघ निकाय में मल्लजाल आदि ३४ सूत्र और तीन वर्ग हैं । । सूत्रोंके दीर्घ (=लघु) होनेके कारण दीघ-निकाय कहा जाता है । ऐसेही औरोंको भी समझाना चाहिये । । (३) मज्झिम-निकायमें नयम परिमाणके पद्म वगैरे और 'मूल-परियाय' आदि पन्ध्रों तिरपन सूत्र हैं । । (२) संयुत निकायमें 'यदना संयुत' आदि (५४ संयुक्त) और 'सोच तरण' आदि सात हजार सात सौ बासठ सूत्र हैं । । (४) अंगुत्तर निकायमें (ग्यारह निपात और) 'चित्त परिवादान' आदि गौहजार बाँधसौ सत्तावन सूत्र हैं । ।

दीघ निकाय आदि चार निकायोंको छोड़कर बाकी बुद्ध उचन बुद्धक (निकाय) कहा जाता है । । यह सभी बुद्ध वचन हैं—

बुद्धसे ८२ हजार (इत्येक प्रमाण वचना) गृहीत हुए हैं, और भिक्षुओंसे दो हजार । यह बीसवीं हजार में धर्म हैं, जिन्हें कि मैंने प्रवर्तित किया । ।

द्वितीय-संगीति (वि. पू. ३२६) ।

‘उस समय भगवान्‌के परिनिर्वाणके सां वर्ष बीतनेपर, वेशाली-निवासी वज्जिपुत्तक (=वृज्जि-पुत्र) भिक्षु दश वस्तुओंका प्रचार करते थे—

“ भिक्षुओ ! (१) शृङ्गि-रक्षण-रूप विहित है । (२) द्वि-अगुल-कल्प० । (३) ग्रामान्तर कल्प० । (४) आवास कल्प० । (५) अनुमति कल्प० । (६) आचीर्ण-कल्प० । (७) अमथित कल्प० । (८) जलोगीपान० । (९) अ दशक० । (१०) जातरूप-रजन० ।”

उस समय आयुमान् यश काकण्डक-पुत्र वजीमें चारिका करते जहा वेशाली भी वहा पहुच । आयुष्मान् यश० वेशालीमें महावनकी कृगगार शालामें विहार करते थे । उस समय वेशालीके वज्जि पुत्तक भिक्षु उपोसथने दिन कामेकी धालीको पागीसे भर भिक्षु-संघके बीचमें रखकर, थाने जाने वाले वेशालीके उपासकोंको कहते थे—

“ आहुसो ! संघको कापापण दो, अपेला (=अर्द्ध-कापापण) दो, पहली (=पाद कापपिण) दो, मासा (=मायक रूप) मां वो । संघ परिकार (=सामान) का काम होगा ।”

ऐसा कहनेपर आयुमान् यश० ने वेशालीके उपासकोंको कहा—“ मत आहुसो ! संघको कापापण (=पेसा)० दो, शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप (=सौना)-रत्त (=चार्ड) विहित नहीं है, शाक्यपुत्रीय श्रमण जातरूप रजत उपभोग नहीं करते, जातरूप रजत स्त्रीकार नहीं करते । शाक्यपुत्रीय श्रमण जातरूप रजत त्यागे-हुये हैं । । आयुमान् यश०के ऐसा कहनेपर भी उपासकोंमें संघको कापापण० दिया ही । तब वेशालिक वज्जि पुत्तक भिक्षुओंने उस रातक बीतनेपर, भोजनके समय हिस्सा लगाकर बांट दिया । तब वेशाली के वज्जि पुत्तक भिक्षुओंने आयुष्मान् यश काकण्ड पुत्तको कहा—

“ आहुस यश ! यह हिरण्यका हिस्सा तुम्हारा है ।”

“ आहुसो ! मेरा हिरण्यका हिस्सा नहीं, मे हिरण्यको उपभोग नहीं करता ।”

तब वेशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने—‘ यह यश काकण्डपुत्त, श्रद्धालु प्रसन्न उपासकोंको निन्दता है, फट्कारता है, अ-प्रसन्न करता है, अच्छा हम इसका प्रतिसारणीय कर्म करें ।’ उन्होने उनका प्रतिसारणीय कर्म किया । तब आयुष्मान् यश०ने वेशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंको कहा—

“ आहुसो ! भगवान्‌ने आज्ञा दी है कि प्रतिसारणीय कर्म किये गये भिक्षुको, अनुदूत देना चाहिये । आहुसो ! मुझे (एक) अनुदूत भिक्षु दो ।”

तत्र येशालिक षड्विपुक्त मिश्रुओंने सहादर ०यगको एक अनुदा (=साथ जाने-पाछा) दिया । तत्र आयुष्मान् यशोने अनुदत मिश्रुके साथ येशालीम प्रविष्ट हो, येशालिक उपासकाको कहा—

“आयुमानो ! मैं श्रद्धालु, प्रसन्न, उपासकोको निन्दता हूँ, फकारता हूँ, अप्रसन्न करता हूँ, जो कि मैं अधर्मको अधर्म कहता हूँ, धर्मको धर्म कहता हूँ, अविनयको अविनय कहता हूँ, विनयको विनय कहता हूँ ? आयुमो ! एक समय भगवान् थापस्तामे अनाथ पिंडरुके आराम जेतवनमें विहार करते थे । वहा आयुसो ! भगवान् मिश्रुकाओं आसीन किया—‘मिश्रुओ ! चंद्र-सूर्यको चार उपक्लेश (=मल) है, जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट (मलिन) होनेपर, चंद्र-सूर्य न तपते हैं—न भासते हैं, न प्रकाशते हैं । कौनसे चार ? मिश्रुओ ! वादल, चंद्र-सूर्यका उपक्लेश है, जिन उपक्लेशोंसे ० । मिश्रुओ ! महिका (=उदरा) ० । धूमरज (=धूमक) ० । राहु अक्षेज (=धहण) ० । इसी प्रकार मिश्रुओ ! श्रमण ब्राह्मण भी चार उपक्लेश हैं, जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट हो श्रमण ब्राह्मण नहीं तपते ० । कौनसे चार ? मिश्रुओ ! (१) कोई कोई श्रमण ब्राह्मण सुरा पीते हैं, मेरय (=कच्ची दास) पीते हैं, सुरा मेरय पानसे विरत नहीं होते । मिश्रुओ ! यह प्रथम उपक्लेश है ० । (२) मिश्रुओ ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण मेंधुन र्म सेवन करते हैं, मेंधुन धर्मसे विरत नहीं होते । यह दूसरा ० । (३) जातरूप रजत उपभोग करते हैं, जातरूप रजतके ग्रहणसे विरत नहा होते ० । (४) मिथ्या जाविका करते हैं, मिथ्या आजीवसे विरत नहीं होते ० । मिश्रुओ ! यह चार श्रमणोंके उपक्लेश हैं ० ।

“ऐसा कहनेवाला मैं श्रद्धालु, प्रसन्न आयुमान् उपासकोको निन्दता हूँ ? तो मैं अधर्मको अधर्म कहता हूँ ० । एक समय आयुसो ! भगवान् राजगृहमें कलद्रुक निरापक येशुवनमें विहार करते थे । उस समय आयुसो ! राजान्त पुर (=राज-द्वार)में राज समामें एकत्रित हुगोंमें यह बात उठा—‘शाक्यपुत्रीय श्रमण सोना-वादी (=जातरूप रजत) उपभोग करते हैं स्वीकार करते हैं ।’ उस समय मणिचूडक ग्रामणी उस परिषद्में बैठा था । तब मणिचूडक ग्रामणीने उस परिषद्को कहा—‘मत आर्या ! ऐसा कहो, शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप-रजिन बड़ा कलियत (=विहित, हलाल) है, ० । वह मणि सुरागे त्यागे हुए हैं, शाक्यपुत्रीय श्रमण, जातरूप रजत छोड़े हुये हैं ० ।’ आयुसो ! मणिचूडक ग्रामणी उस परिषद्को समझा सका । तत्र आयुसो ! मणिचूडक ग्रामणी उस परिषद्को समझाकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ भगवान्को यह बोला—

‘मन्ते ! राजान्त पुरमें राजधर्म ० बात उग ० । मैं उस परिषद्को समझा सका । क्या मन्ते ! ऐसा करते हुये मैं भगवान्के कथितका ही कहनेवाला हाता हूँ ? अन्त्यसे भगवान् का सम्पादना (=निन्दा) तो नहीं करता ? धर्मांनुसार कथित कोई धर्म घाद निन्दित तो नहीं होता ?’

“निश्चय ग्रामणी ! ऐसा कहनेसे तू मेरे कथितका कहनेवाला है ०, कोई धर्म घाद निन्दित नहीं होता । ग्रामणी ! शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप रजत विहित नहीं है ० । ग्रामणी ! जिनको जात रूप रजत कलियत है, उने पाच काय गुणों कलियत हैं, जिसको पाच

काम-गुण (= काम भाग) कटिपत है, ग्रामणी ! तुम उमरों त्रिलोकही अश्रमण-धर्मी, अ-शाक्यपुत्रीय-धर्मी समझना । और मैं ग्रामणी ! ऐसा कहता हूँ, तिन-का चाहनेवाले (= वृणार्था) को वृण खोजना होता है शस्त्रार्थीको शस्त्र ०, पुरुषार्थीको पुरुष ०, किन्तु ग्रामणी ! किपी प्रहारभी में जातरूप-रजतको स्वादितन्य, पर्येषितव्य (= अन्वेषणीय) नहीं मानना । ' ऐसा कहनेवाला मैं ० आयुष्मान् उपासकोंको निन्दित हूँ ० । "

" आयुसो ! एक समय उसी राजगृहमें भगवान्ने आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्रको ऐन्द्र, जातरूप-रजतका निषेध किया, और शिक्षापद (= मिश्र नियम) बताया । ऐसा कहने-वाला मैं ० । "

ऐसा कहनेपर वेशालीके उपासकोंने आयुष्मान्, यश काकण्डपुत्तको कहा—

" भन्ते ! एक आर्य यशही शाक्यपुत्रीय श्रमण हैं, यह सभी, अ-श्रमण हैं, अ-शाक्य-पुत्रीय हैं । आर्य यश ० वेशालीमें वास कर । हम आर्य यश ० के चीवर, पिंडपात, शयनासन ग्लान प्रत्यय भवज्य परिष्कारोका प्रबन्ध करगे । "

तब आयुष्मान् यश ० वेशालीके उपासकोंको समझाकर, अनुदूत भिक्षुके साथ आरामको गये । तब वेशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने अनुदूत भिक्षुको पूछा—

" आयुस ! क्या यश काण्डपुत्तने वेशालिक उपासकोंसे क्षमा मागी ? "

" आयुसो ! उपासकोंने हमारी निन्दाकी—एक आर्य यश ० ही श्रमण हैं, शाक्य-पुत्रीय हैं, हम सभी अश्रमण, अशाक्य-पुत्रीय बना दिये गये । "

तब वेशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने (विचारा)—' आयुसो ! यह यश काकण्डपुत्त हमारी असम्मत (जात) को गृहस्थोंको प्रकाशित करता है ; अच्छा तो हम इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें । ' वह उनका उत्क्षेपणीय कर्म करनेके लिये एकत्रित हुये । तब आयुष्मान् यश आकाशमें होकर, कौशाम्यी जा खड़े हुये ।

तब आयुष्मान् यश काण्डपुत्तने पावावासी और अवन्ती-दक्षिणापथ-वासी भिक्षुओंके पास दूत भेजा—' आयुष्मानो ! आओ, इस झगड़ेको मिटाओ, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, अविनय प्रकट हो रहा है ०, ० ' ।

उस समय आयुष्मान् संभूत साणवासी अहोमग पर्वतपर वास करते थे । तब आयुष्मान् यश ० जहां अहोमग-पर्वत था, जहां आ ० संभूत थे, वहां गये । जाकर आयुष्मान् संभूत साणवासीको अभिवादनकर एक ओर घंट आयुष्मान् संभूत साणवासीको बोले—

" भन्ते ! यह वेशालिक वज्जिपुत्तक मिश्र वेशालीमें दश वस्तुओंका प्रचार कर रहे हैं ० ।

अच्छा तो भन्ते ! हम इस झगड़े (= अधिकार) को मिटावें ० । "

" अच्छा आयुस ! "

तब साठ पावावासी मिश्र—सभी मारण्यक, सभी पिंडपातिक, सभी पांडुल्लिक, सभी त्रिचीवरिक, सभी अहंत, अहोमग-पर्वत पर एकत्रित हुये । अवन्ती-दक्षिणापथके अट्टासी

मिथु—कोई आरण्यक, कोई पिंडपातिर, कोई वासुदलिक, कोई त्रिविवरिक, सभी अर्हत, अहोर्ग-परतपर प्रकृति हुये । तब मंत्रणा करते हुये स्थविर मिथुआको यह हुआ—‘यह शगड़ा (=अधिराज) कठिन और भारी है; हम कैसे (ऐसा) पक्ष (=सहायक) पावें, जिससे कि हम इस अधिराज्यम अधिक बन्वान् होवें ।

उस समय बहुश्रुत, शागतागम, धर्मधर, विनयधर, मात्रिकाधर (=अभिधर्मज्ञ), पंडित, व्यक्त, मेधागो, लज्जो, कौटुम्बिक (=सकोजी), शिक्षाकाम आयुष्मान् रेवत ‘सौरेव्यमें पास करते थे,—‘यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्षमें पावें, तो हम इस अधिराज्यम अधिक बलवान् होंगे ।’ आयुष्मान् रेवतने अमातुप, विबुध, दिव्य धोत्र धातुसे स्थविर मिथुआकी मंत्रणा सुनली । सुनकर उन्हें ऐसा हुआ—‘यह अधिराज्य कठिन और भारी है, मेरे लिये अच्छा नहीं कि मैं ऐसे अधिराज्य (=विजय) में न पड़ूँ, अथवा यदि मिथु आवेंगे उनसे घिब मैं सुरसे नहीं जासकूँगा, क्या न मैं जागेही जाऊँ ।’ तब आयुष्मान् रेवत मोरपक्षसे सहाय्य गये । स्थविर मिथुआने सौरेव्य जाकर पूछा—‘आयुष्मान् रेवत कहा है ?’ उन्होंने कहा—‘आयुष्मान् रेवत सहाय्य गये ।’ तब आयुष्मान् रेवत सहाय्यसे कलहुज (=कान्यकुब्ज, कलौज) गये । स्थविर मिथुआने सहाय्य जाकर पूछा—‘आयुष्मान् रेवत कहा है ?’ उन्होंने कहा—‘आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्ज गये ।’ आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्जमें उन्मुख गये । ०। उन्मुखसे अगलपुर गये । ०। अगलपुरसे सहजाति गये । ०। तब स्थविर मिथु आयुष्मान् रेवतसे सहजातिमें जा मिले ।

आयुष्मान् सभृत साणनामीने आयुष्मान् यदा०को कहा—‘आहुस ! यश ! यह आयुष्मान् रेवत बहुश्रुत, शिक्षाकामी है । यदि हम आयुष्मान् रेवतको प्रदत्त पूर्व, तो आयुष्मान् रेवत प्रदत्त प्रश्नम सारी रात जिता सकने है । अतः आयुष्मान् रेवत अन्तेवासी स्वरभागर (=स्वरगहित सुश्रोत्र पटने वाले) मिथुको (स्वर पाठने किये) कहेंगे । स्वर-भणन समाप्त होनेपर, आयुष्मान् रेवतके पास जाकर इन दश वस्तुओंको पूछे ।”

‘अच्छा भन्ते !”

तब आयुष्मान् रेवतने अन्तेवामी (=शिक्षा) स्वरभागर मिथुको आज्ञा (=अच्छे पणा) की । तब आयुष्मान् यदा उभय मिथुके स्वरभणन समाप्त होने पर, जहाँ आयुष्मान् रेवत थे, वहाँ गये । जाकर रेवतको अभिवादन कर एक ओर बैठा । एक ओर बैठ आयुष्मान् यदा० ने आयुष्मान् रेवतको कहा—

(१) “भन्ते ! श्रुति लक्षण कल्प विहित है ?”

“क्या है आयुस ! यह श्रुति लक्षण-कल्प ?”

“भन्ते ! संगममें एक एकका पास रहता जा सकता है, कि जहाँ अलोना होगा, लेकर खायेगे ? क्या यह विहित है ?” “आहुस ! नहीं विहित है ।”

(२) “भन्ते ! द्व्यंगुल कल्प विहित है ?” “क्या है आयुस ! द्व्यंगुल-कल्प ?”

१ सोरो (त्रिग, पृ०) । २ मोटा, जि हलाहावाद ।

“भन्ते ! (दोपहरको) दो अगुल छायाको बिताकर भी विकालमें भोजन करना क्या विहित है ?” “आयुस नहीं विहित है ।”

(२) “भन्ते ! क्या घामान्तर-कल्पविहित है ?” “क्या है आयुस ! घामान्तर-कल्प ?”

“भन्ते ! भोजन कर चुकनेपर, छक लेनेपर गावके भीतर भोजन करने जाया जा सकता है ?” “आयुस ! नहीं है ।”

(३) “भन्ते ! क्या आवास कल्प विहित है ?” “क्या है आयुस ! आवास-कल्प ?”

“भन्ते ! ‘एक सीमाके बहुतसे आवासोभ उपोसथको करना’ क्या विहित है ?”

“आयुस ! नहीं विहित है ।”

(५) “भन्ते ! क्या अनुमति-कल्प विहित है ?” “क्या है आयुस ! अनुमति-कल्प ?”

“भन्ते ! (एक) उर्गके सघका (विनय) कर्म करना, ‘यह रयाल करके, कि जो भिक्षु (पीछे) आउंगे, उनको स्वीकृति दे दंगे, क्या यह विहित है ?’

“आयुस ! नहीं विहित है ।”

(६) “भन्ते ! क्या आचोर्ण कल्प विहित है ?” “क्या है आयुस ! आचोर्ण-कल्प ?”

“भन्ते ! ‘यह मेरे उपाध्यायने आचरण किया है, यह मेरे आचार्यने आचरण किया है’ (ऐसा समझकर) किसी यातका आचरण करना, क्या विहित है ?”

“आयुस ! कोई कोई आचोर्ण-कल्प विहित है, कोई कोई ‘अविहित है ।”

(७) “भन्ते ! अमथित-कल्प विहित है ?” “क्या है आयुस ! अमथित कल्प ?”

“भन्ते ! जो दूध दूध पनको छोड़ चुका है, दहीपनको नहीं प्राप्त हुआ है, उसे भोजन कर चुकनेपर, छक लेनेपर, अधिक पीना क्या विहित है ?” “आयुस ! नहीं विहित है ।”

(८) “भन्ते ! जलोमी-पान विहित है ?” “क्या है आयुस ! जलोमी ?”

“भन्ते ! जो सुरा अभी खुवाई नहीं गई है, जो सुरापनको अभी प्राप्त नहीं हुई है, उसका पीना क्या विहित है ?” “आयुस ! विहित नहीं है ।”

(९) “भन्ते ! अदशरु निपीदन (= बिना किनारीका आसन) विहित है ?”

“आयुस ! नहीं विहित है ।”

(१०) “भन्ते ! जातरूप-रजत (= सोनाचादी) विहित है ?” “आयुस ! नहीं विहित है ।”

“भन्ते ! वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें इन दश वस्तुओंका प्रचार करते हैं । अच्छा हो भन्ते ! हम इस अधिकरणको मिटावें० ।”

“अच्छा आयुस !” (कह) “आयुप्मान् रेवतने आयुप्मान् यश०को उत्तर दिया ।

वैशालीके वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने सुना, यश काक्ण्डपुत्त, इस अधिकरणको मिटानेके लिये पक्ष झूठ रहा है । तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंको यह हुआ—‘यह अधिकरण कठिन है, भारी है, कंषा पड़ पावे, कि इस अधिकरणमें हम अधिक बलवान् हो ।’ तब वैशालिक-वज्जिपुत्तक भिक्षुओंको यह हुआ—‘यह आयुप्मान् रेवत बहुश्रुत० हैं, यदि हम आयुप्मान् रेवतको

पक्ष (में) पावें, तो हम इस अधिस्तरणमें अधिक कल्पान् हो सकेगे । तब वेदार्थी वासी वज्रिपुत्तक भिक्षुओंने श्रमणोंके योग्य बहुत सा परिष्कार (=सामान) सम्पादित किया—
पात्र भी, चीवर भी, निषीदन (=आसन, विग्रैना) भी, सूचीघर (=सूईका घर) भी, काय-
बंधा (=कमर बंध) भी, परिष्ठावण (=जलटका) भी, धर्मस्तरक (=गड़गा) भी ।
तब वज्रिपुत्तक भिक्षु उन श्रमण-योग्य परिष्कारोंको लेकर नावसे सहजातीको दोड़े । नावसे
उतरकर एक घृक्षके नीचे भोजनसे निवटने लगे ।

तब एकान्तमें स्थित, ध्यानमें बैठे आयुष्मान् मादके चिन्तने इस प्रकारका वितर्क उत्पन्न
हुआ—‘कौन भिक्षु धर्मवादी है ? पात्रेयक (=पश्चिमगाले) या प्राचीनक (=पूर्वगाले) ?’
तब धर्म और धिनपकी प्रत्यवेक्षासे आयुष्मान् सादको ऐसा हुआ—

“प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी है, पात्रेयक भिक्षु धर्मवादी है ।” ।

तब वैशालिक वज्रिपुत्तक भिक्षु उस श्रमण-परिष्कारको लेकर, जहा आयुष्मान् रेवत थे,
वहा जाकर आयुष्मान् रेवतको बोले—

“भन्ते ! स्यविर श्रमण परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी० ।”

“नहीं आयुसो ! मेरे पात्र चीवर पूरे हैं ।”

उस समय बीस वर्षका उत्तर नामक भिक्षु, आयुष्मान् रेवतका उपस्थान (=सेवक)
था । तब वज्रिपुत्तक भिक्षु, जहा आयुष्मान् उत्तर थे, वहा गये, जाकर आयुष्मान्
उत्तरको बोले—

“आयुष्मान् उत्तर श्रमण परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी० ।”

“नहीं आयुसो ! मेरे पात्रचीवर पूरे हैं ।”

“आयुस उत्तर ! लोग भगवान्क पास श्रमण-परिष्कार ले जाया करते थे, यदि
भगवान् ग्रहण करते थे, तो उससे बट सन्तुष्ट होते थे, यदि भगवान् नहा ग्रहण करते थे, तो
आयुष्मान् आनन्दके पास ले जाते थे—‘भन्ते ! स्यविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें, जैसे
भगवान्ने ग्रहण किया, वसा ही (आपका ग्रहण) होगा ।’ आयुष्मान् उत्तर श्रमण परिष्कार
ग्रहण करें, यह स्यविर (=रवन)के ग्रहण करने जैसा ही होगा ।”

तब आयुष्मान् उत्तरने वज्रिपुत्तक भिक्षुओंमें दयाये जानेपर एक चीवर ग्रहण
किया—

“कहो, आयुसो ! क्या काम है, कहो ?”

“आयुष्मान् उत्तर स्यविरको इतनाही बर्ह—‘भन्ते ! स्यविर (आप) संघक योग्य
में इतनाही कहद—प्राची० (=पूर्वाय) दक्षी (=जापदों)में बुद्ध भगवान् उत्पन्न होते
हैं, प्राचीनक (=पूर्वाय) भिक्षु धर्मवादी हैं, पात्रेयक भिक्षु अधर्मवादी हैं ।”

“अच्छा आयुसो !” कह आयुष्मान् उत्तर जहाँ आयुष्मान् रेवत थे, वहाँ गये ।
जाकर आयुष्मान् रेवतको बोले—

“ मन्ते ! (आप) स्थविर, मधवे बीचम इतनाही कहें—प्राचीन देशोंमें बुद्ध भगवान् उत्पन्न होते हैं, प्राचीनक भिक्षु धर्मवादी हैं, पाषेयक भिक्षु अधर्म वादी हैं । ”

“ भिक्षु ! तू मुझे अवमम निगोजित कर रहा है । ” (कहकर) स्थविरने आयुष्मान् उत्तरको हटानिया । तब ० वज्जिपुत्तमोने आयुष्मान् उत्तरको कहा—

“ आहुस उत्तर । स्थविरने क्या कहा ? ”

“ आहुस । हमने युग किया । ‘ भिक्षु ! तू मुझे अधर्ममें निगोजित कर रहा है ’— (कह कर) स्थविरने मुझे हटा दिया । ”

“ आहुस । क्या तुम बुद्ध, बीम-उर्ध्व (के भिक्षु) नहीं हो ? ” “ हूँ आहुस । ”

“ तो हम (तुम्हें) बड़ा मानकर ग्रहण करते हैं । ”

उस अधिकरणका निर्णय करनेकी इच्छासे सध एकत्रित हुआ । तब आयुष्मान् खेतने संघको ज्ञापित किया—

“ आहुस ! संघ मुझे सुने—यदि हम इस अधिकरण (= विवाद) को यहाँ आमन करेंगे, तो शायद मूलदायक (= प्रतिपक्षी) भिक्षु धर्म (= न्याय) के लिये उत्क्रोटा (= अमान्य) करेगा । यदि सधने पसन्द हो, तो जहाँ यह विवाद उत्पन्न हुआ है, संघ वहीं इस विवादको शांत करे । ” तब स्थविर भिक्षु उस विवादके निर्णयके लिये खेताली चले ।

उस समय पृथिवीपर आ० ज्ञान-द्वय शिष्य सर्वकामी नामक सध स्थविर, उपमपदा (= भिक्षुदीक्षा) होकर एकसौ दीम वर्षके, पेशालीम वास करते थे । तब आयुष्मान् खेतने आ० संबूत साणवासी (= दमशान वासी, सन-उच्च धारी) को कहा—

“ आहुस ! जिस विहारमें सर्वकामी स्थविर रहते हैं, मैं वहाँ जाऊँगा, सो तुम समय पर आयुष्मान् सर्वकामीके पास आकर इन दश वस्तुओंको पूछना । ” “ अच्छा, मन्ते ! ”

तब आयुष्मान् खेत, निम विहारमें आयुष्मान् सर्वकामी थे, उस विहारमें गये । कोठरी (= गम्भ)के भीतर आयुष्मान् सर्वकामीका आमन बिठा हुआ था, कोठरीके बाहर आयुष्मान् खेतका । तब आयुष्मान् खेत—‘ यह स्थविर बुद्ध (होकर भी) नहीं बैठ रहे हैं ’— (सोच कर) नहीं बैठे । आयुष्मान् सर्वकामी भी—‘ यह नवागत भिक्षु यका (होनेपरमी) नहीं बैठ रहा है—(सोचकर) नहीं बैठे । तब आयुष्मान् सर्वकामीने रातके प्रत्युष (= भिनमार)के समय आयुष्मान् खेतको यह कहा—

“ तुम आजकल किस विहारसे अधिक विहरते हो ? ”

“ मन्ते ! मेन्नी विहारसे मैं इस समय अधिक विहरता हूँ । ”

“ कुलक विहारमें तुम इस समय अधिक विहरते हो, यह जो मेन्नी है, यही कुलक विहार है । ”

“ मन्ते ! पहिले गृहस्थ होनेके समय भी मैं मेन्नी (माचना) करता था, इसलिये अब भी मैं अधिकतर मेन्नी विहारसे विहरता हूँ, यद्यपि मुझे अहंत् पद पाये दिए हुए । मन्ते । स्थविर आजकल किस विहारसे अधिक विहरते हैं । ? ”

“ भुम्म । मै इस समय अधिकतर शून्यता विहारसे विहरता हूँ । ”

“ मन्ते । इस समय स्थविर अधिकतर महापुरुष-विहारसे विहरते हैं । मन्ते ! यह ‘शून्यता’ महापुरुष विहार है । ”

“ भुम्म । पहिले गृही होनेके समय मै शून्यता विहारसे विहरा करता था, इसलिये इस समय शून्यता विहारसेही अधिक विहरता हूँ, यद्यपि मुझे अहंत्त्व पाये चिर हुआ । ”

(जय) इस प्रकार स्थविरोंकी आपसमें बात हो रही थी, उस समय आयुष्मान् साण्णसासी पहुँच गये । तब आयुष्मान् संभूत साण्णसासी जहा आयुष्मान् सबवामां थे, वहा गये । जाकर आयुष्मान् सर्वसामीको अभिवादनकर एक ओर बस यह बोले —

“ मन्ते ! यह वैशालिक क्षत्रियुत्तक भिक्षु वंशालामें दश उत्तुसा प्रचार कर रहे हैं० । स्थविरने (अपने) उपाध्याय (= आनन्द) २ चणम बहुत धर्म और विनय प्रहण किया है । स्थविरकी धर्म और विनय दसकर कैसा माहम होता है ? कौन धर्मवादी हैं, प्राचीनक भिक्षु, या पायेयक ? ”

“ तूने भी आयुस ! उपाध्यायक चणम बहुत धर्म और विनय सीखा है । तुने आयुस ! धर्म और विनयको दसकर कैसा माहम होता है ? कौन धर्मवादी हैं, प्राचीनक भिक्षु या पायेयक ? ”

“ मन्ते ! मुझे धर्म और विनयको अवलोकन करनेसे पता होता है — ‘प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी हैं, पायेयक भिक्षु धर्मवादी हैं । ’ ”

“ मुझे भी आयुस ! ऐसा होता है — प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी हैं, पायेयक धर्मवादी । ” ।

तब उस विवादके निर्णय करनेकेलिये संघ एकत्रित हुआ । उस अधिकरणके विनिश्चय (= फैसला) करते समय अनाराल वक्ताव उत्पन्न होते थे, एक भी वक्ताका अर्थ माहम नहीं पड़ता था । तब आयुष्मान् रेवतने सबको आपत्ति किया —

“ मन्ते ! मध मुने मुने — हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनाराल वक्ताव उत्पन्न होते हैं० । यदि संघको पसन्द हो, तो, संघ इस अधिकरणको उद्वाहिका (= फमीने) से शांत करे । ”

चार प्राचीनक भिक्षु और चार पायेयक भिक्षु चुने गये । प्राचीनक भिक्षुओंमें आयुष्मान् सर्वसामी, आयुष्मान् सान्, आयुष्मान् धुद्ध शोमिण (= पुन मोमिता) और आयुष्मान् वार्यम-ग्रामिक (= वासम ग्रामिक) । पायेयक भिक्षुओंमें आयुष्मान् रेवत, आयुष्मान् संभूत साण्णसासी, आयुष्मान् यदा काकडपुत्त और आयुष्मान् सुमन । तब आयुष्मान् रेवतने सभको आपत्ति किया —

“ मन्ते ! मध मुने मुने — हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनाराल वक्ताव उत्पन्न होते हैं० । यदि संघको पसन्द हो, तो मध चार प्राचीनक (और) चार पायेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिका इस विवादको शमन करनेके लिये मा । — यह नति है । —

‘भन्ते ! मध मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय० । संघ चार प्राचीनक और चार पापेयक भिक्षुओंको, उद्वाहिकासे हम विवादको ज्ञात करना मानता है । जिस आयुष्मान्को चार प्राचीनक०, चार पापेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिकासे इस विवादका ज्ञात करना पसन्द है, वह चुप रहे, जिसको नहीं पसन्द है वह बोले । । सघने मान लिया, सघको पसन्द है, इसलिये चुप है—इसे ऐसा र्थ समझता हूँ ।”

उस समय अजित नामक दशवर्षीय^१ भिक्षु-संघका प्रातिमोक्षोद्देशक (=उपोसथके दिन भिक्षु नियमोंकी आवृत्ति करनेवाला) या । सघने आयुष्मान् अजितको ही स्थविर भिक्षुओं का आसन विज्ञापक (=आसन चिठानेवाला) स्वीकार किया । तब स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—‘यह बालुकाराम रमणीय शब्दरहित=घोष रहित है, क्या हम बालुकाराममें (ही) इस अधिकांशको ज्ञात करें।’ तब स्थविर भिक्षु उस विवादके निर्णय करनेकेलिये बालुकाराम गये । आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

“भन्ते मध ! मुझे सुने—यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् सर्वकामीको नियम पढ़ूँ ?”

आयुष्मान् सर्वकामीने संघको ज्ञापित किया—

“आहुस संघ ! मुझे सुने—यदि मधको पसन्दहो, तो मैं आयुष्मान् रेवतद्वारा पृष्ठे विनयको कहूँ ।”

आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् सर्वकामीको कहा—

(१) “भन्ते ! शृंगि लवण-कल्प विहित है ?” “आहुस ! शृंगि लवण कल्प क्या है ?” “भन्ते ! लौंगमें ० ।”

“आहुस ! विहित नहीं है ।”

“कहा निषेध किया है ?” “श्रावस्तीमें, ‘उत्त विभग’ में ।”

“क्या आपत्ति (=दोष) होती है ?”

“समिधिकाशक (=संप्रहीत वस्तु)के भोजन करनेमें ‘प्रायश्चित्तिक’ ।”

“भन्ते ! मध मुझे सुने—यह प्रथम वस्तु सघने निर्णय किया । इसप्रकार यह वस्तु धर्म-विरुद्ध, विनय विरुद्ध, शास्ताक शासनसे बाहरकी है । यह प्रथम शालाकाकी छोड़ता हूँ ।”

(२) “भन्ते ! द्वयगुल-कल्प विहित है ?” ०।०। “आहुस ! नहीं विहित है ।”

“कहाँ निषिद्ध किया ?” “राजगृहमे, ‘सुत्तविभग’ में ।”

“क्या आपत्ति होती है ?” “विकाल भोजन विषयक ‘प्रायश्चित्तिक’ की ।”

“भन्ते मध ! मुझ छने—यह द्वितीय वस्तु सघने निर्णय किया । ०। यह दूसरी शालाका छोड़ता हूँ ।”

(३) “भन्ते ! ‘ग्रामान्तर-कल्प’ विहित है ? ०।०। “आहुस नहीं विहित है ।”

“कहाँ निषिद्ध किया ?” “श्रावस्तीमें ‘सुत्तविभग’ में ।”

“ क्या आपत्ति होती है ? ” “ अतिरिक्त भोजन विषयक ‘प्रायश्चित्तिक’ । ”
 “ भन्ते । संघ सुझे सुने—० । ”

(४) “ भन्ते । ‘आवास कल्प’ विहित है ? ” ०।०। “ आहुस । नहीं विहित है । ”
 “ कहा निषेध किया ? ” “ राजगृहम ‘उपोसय मयुत्त’ में । ”
 “ क्या आपत्ति होती है ? ” “ विनय (= भिक्षुनियम) के अतिक्रमणसे ‘दुष्कृत’ । ”
 “ भन्ते । संघ सुझे सुने० । ”

(५) “ भन्ते । ‘अनुमति-कल्प’ विहित है ? ” ०।०। “ आहुस । नहीं विहित है । ”
 “ कहा निषेध किया ? ” “ चाम्पेयक विनय वस्तुमें । ”
 “ क्या आपत्ति होती है ? ” “ विनय-अतिक्रमणसे ‘दुष्कृत’ । ”
 “ भन्ते । संघ सुझे सुने० । ”

(६) “ भन्ते । ‘आचीर्ण कल्प’ विहित है ? ” ०।०। “ आहुस । कोई कोई आचीर्ण-
 कल्प विहित है, कोई कोई नहीं । ”
 “ भन्ते । संघ सुझे सुने० । ”

(७) “ भन्ते । ‘अमयित कल्प’ विहित है ? ” ०।०। “ आहुस । नहीं विहित है । ”
 “ कहा निषेध किया ? ” “ धावन्तीमें, ‘सुत्त विमंग’ में । ”
 “ क्या आपत्ति है ? ” “ अतिरिक्त भोजन कानमें ‘प्रायश्चित्तिक’ । ”
 “ भन्ते । संघ सुझे सुने० । ”

(८) “ भन्ते । ‘जलोगी पान’ विहित है ? ” ०।०। “ आहुस । नहीं विहित है । ”
 “ कहा निषेध किया ? ” “ कौशाम्बीमें, ‘सुत्त विमङ्ग’ में । ”
 “ क्या आपत्ति होती है ? ” “ सुरा-मेरय पानमें ‘प्रायश्चित्तिक’ । ”
 “ भन्ते । संघ सुझे सुने० । ”

(९) “ भन्ते । ‘अदशक निपीदन’ (= तिला किनारीका पिरोना) विहित है ? ”
 “ आहुस । नहीं विहित है । ”
 “ कहा निषेध किया ? ” “ धावन्तीमें ‘सुत्त-विमंगमें’ । ”
 “ क्या आपत्ति होता है ? ” “ छेदन करनेका ‘प्रायश्चित्तिक’ । ”
 “ भन्ते । संघ सुझे सुने० । ”

(१०) “ भन्ते । ‘जातरूप रजत’ (= सोना चादी) विहित है ? ” “ आहुस । नहीं विहित है । ”
 “ कहा निषेध किया ? ” “ राजगृहम ‘सुत्त विमंग’ में । ”
 “ क्या आपत्ति है ? ” “ जात रूप रजत प्रतिग्रहण विषयक ‘प्रायश्चित्तिक’ । ”

“ भन्ते । संघ सुझे सुने—यह दसवें वस्तु संघने निर्णय की । इस प्रकार यह वस्तु
 (= घात) धर्म विरुद्ध, विनय विरुद्ध, शास्ताक शासनसे बाहरका है । यह दसवें शालका
 छोड़ता है । ”

“ मन्ते । सघ मुझे सुने— यह दश वस्तु, सघने निर्णयकी । इस प्रकार यह वस्तु धर्म तिरुद्ध, विनय-विरुद्ध, शास्ताके शासनसे बाहरकी है । ”

(सर्वकामी)—“ आवुस ! यह विवाद निहत हो गया, शात, उपशात, सु उपशात हो गया । आवुस ! उन भिक्षुओकी जानकारीके लिये (महा-) संघके बीचमें भी मुझे इन दश वस्तुओको पूछना । ”

तत्र आयुष्मान् रेवतने सघन बीचमें भी आयुष्मान् सर्वकामीको यह दस वस्तुयें पूछीं ।
पूछोपर आयुष्मान् सर्वकामीने व्याख्यान किया ।

इस विनय पगातिमें, न कम, न বেশी सात सौ भिक्षु थे । इसलिये यह विनय संगीति ‘सप्त शातिरु’ कही जाती है ।

अशोक राजा । तृतीय-संगीति । (वि० पृ० २१२-१६१) ।

इस प्रकार द्वितीय संगीतिको मंगायन कर, उन स्थविरोंने भविष्यकी ओर अवलोकन करते हुये यह देखा—‘अयोध्या परमो शठारह (वि० पृ० २०८) वर्ष बाद पाटलीपुत्र में धर्माशोक नामक राजा सार जम्बूद्वीप पर राज्य करेगा । यह बुद्धशासना (= बुद्धधर्म) में अद्यावत् हो बहुत लाभ सरकार करेगा । तब गाम-भस्कारनी इच्छामें तर्पित लोग शान्त (= धर्म) में प्रयत्नित हो अपने अपने मतका प्रचार करेंगे । इस प्रकार शासनमें बड़ा मूल उत्पन्न होगा । कौन उस अधिकरण (= विवाद) को शांत करेगा समर्थ होगा ?—(यह सोचते) सकल मनुष्यलोकमें अवगौरव करते किसीको न देख, ब्रह्मलोकमें सिद्ध नामक ब्रह्माको अलपायु, तथा ऊपर ब्रह्मलोकमें उत्पन्न होनेसे (निर्वाण-) मार्गकी भावनामें रत देगा । देखकर उन्हें यह हुआ—‘यदि हम इस महाब्रह्माको मनुष्य लोकमें उत्पन्न होनेका प्रेरणा कर, तो यह अवश्य मौनलि (= मोगलि) ब्राह्मणों से हम जन्म लेगा, तब संश्रुके लोभमें निरुत्तर प्रयत्नित होगा । इस प्रकार प्रयत्नित हो स्वयं बुद्धराजनी पदर (= प्रधानर), प्रतिसिद्धि प्राप्त हो, नार्थकोको मर्दनकर, उस विवादको निश्चय, शान्तको दृढ़ करेगा ।’ (यह सोच) ब्रह्मलोक जा तिष्ठ महाब्रह्माको कहा । । तिष्ठ महाब्रह्मान हर्षित हो ‘अच्छा’ कहकर ध्वन दिया । । उस समय मिमंग्र स्थविर और चंडवज्जा स्थविर दोनों तरण, मिषिककर, प्रतिसिद्धि प्राप्त, क्षाणाख्य (= भक्त) ने भिक्षु थे । यह उस अधिकरण (= विवाद) में नहीं आये थे । स्थविरोंने—‘आयुम् ! तुम इस अधिकरणमें हमारे सहायक नहीं हुये, इसलिये तुम्हें यह दंड दे—‘तिष्ठामक ब्रह्मा मोगलि ब्राह्मणने घर जन्म लेगा । तुममें से एक उसे लेकर प्रयत्नित कर, और एक बुद्ध ध्वन पढ़ावे ।’ कहकर वह सभी आयु पर्यंत जीवित रहकर (निर्वाण प्राप्त हुये) ।

तिष्ठ महाब्रह्माभी ब्रह्मलोकमें द्युत हो मोगलि ब्राह्मणके घर गर्भमें आया । सिमग स्थविर भी उसी गर्भमें आते ठेकर सात वर्षतक, उस ब्राह्मणके घरमें पिंडक लिये जाते रहे, एक दिनभी लुल्लभ्य वज्रगू वा कललीभा आत उन्होंने नहीं पाया । सात वर्षोंक बीतनेपर एकदिन ‘भाप कर, भन्ते’—इतना बचन मात्र पाया । उस दिन बाहर कोई आवश्यक काम करके लौटते वक्त ब्राह्मणने सामने स्थविरको देखकर कहा—

‘हे प्रयत्नित ! हमारे घर गये थे ?’ ‘हां ब्राह्मण ! गया था ।’

‘क्या हुआ मिला ?’ ‘हां, ब्राह्मण ! मिला ।’

उम्मे घरमें जाकर पूरा—‘हम साधुको कुंड दिया ?’

‘कुंड नहीं दिया ।’

ब्राह्मण दूसरे दिन गृह द्वार परही बंठा । । स्थविर दूसरे दिन ब्राह्मणके गृहद्वारपर गये । ब्राह्मणने स्थविरको देखकर कहा—

“तुम हमारे घरमें बार बार आकर भी कुछ पा, ‘मिला है’ बोले, (क्या) यह तुम्हारी बात झूठी नहीं है ?”

“ब्राह्मण ! हमने तुम्हारे घर सातवर्ष तक आकर, ‘माफ़ करें’ यह वचन माग़ा भी ॥ पा, फिर ‘माफ़ करें’ यह वचन पाया, इसी बातको लेकर हमने ‘मिला है’ कहा ।

ब्राह्मणने सोचा—‘यह वचनमानकी पाकर ‘मिला है’ (कहकर) प्रशंसा करते हैं, तो कुछ खाद्य भोज्य पाकर क्योंन प्रशंसा करेंगे ।’ (सोच) प्रसन्न हो, अपने लिये वने भातसे बलछीभर और उसके योग्य व्यंजन (= तेमन) दिलवाकर, ‘यह भिक्षा तुम सदा पाओगे’ कहा । फिर स्थविरकी द्वातृत्ति देय प्रसन्न हो, अपने घरमें नित्य भोजन करनेकी प्रार्थनाकी । स्थविरने स्वीकार कर (लिया) ।

यह माणवक (= ब्राह्मणपुत्र) भी सोलह वर्षकी उम्रमेंही त्रिप्रेद पारगतहो गया। अब यह आचार्यके घर जाता था, तो (घरवाले) उसके मंच पीठको द्रव्यसे आच्छादितकर लटका रखते थे । स्थविरने सोचा—‘मैं माणवकको प्रयोजित करनेका समय आ गया । । (एक दिन) घरवालोंने दूररा आसन न देखकर (स्थविरकेलिये) माणवकका आसन बिछा दिया । स्थविर आसनपर बैठे । माणवकने भी उसी समय आचार्यके घरसे आकर, स्थविरको अपने आसनपर बैठे देखकर, क्षुपिन् हो कहा—‘मेरा आसन भ्रमणको किमने दे दिया ?’ स्थविरने भोजन समाप्तकर माणवककी धंडताके लिये कहा—

“ क्या तुम माणवक कुछ (वेद-) मंत्र जानते हो ? ”

“ हे प्रयोजित ! इस समय मेरे मंत्र १ जाननेसे (दूसरा) कौन जानेगा ”—कह स्थविरको पूछा—“ क्या तुम मंत्र जानते हो ? ”

“ माणवक ! पूछो, पूछकर जान सकते हो ? ”

तब माणवकने शिक्षा (= अक्षर-प्रभेद) कल्प, त्रिषद्, इतिहास सहित तीनों वेदोंमें जितने जितने कठिन स्थान थे, जिनके मतलबको न अपने जानता था, न आचार्यही जानता था, उन्हें स्थविरको पूछा । स्थविर वैसे भी तीनों वेदोंमें पारगत थे, अब तो प्रतिसवित भी प्राप्त थे, इसलिये उन्हें उन प्रश्नोंके उत्तर देनेमें कोई कठिनाई न थी । उसी समय उत्तर दे माणवकको बोले—

“ माणवक ! तुमने मुझे बहुत पूछा, मैं भी एक प्रश्न पूछता हूँ, क्या तुम मुझे उत्तर दोगे ? ”

“ हा प्रयोजित ! पूछो, उत्तर दूंगा । ”

स्थविरने “ चित्त-यमक ” से यह प्रश्न पूछा—

“ जिसका चित्त उत्पन्न होता है, निरुद्ध नहीं होता, उसका चित्त निरुद्ध होगा, उत्पन्न नहीं होगा, किन्तु जिसका चित्त निरुद्ध होगा, और उत्पन्न नहीं होगा, उसका चित्त उत्पन्न होता है, निरुद्ध नहीं होता ।

“हे प्रयजित ! इस मन्त्रका क्या नाम है ?” “माणवरु ! यह बुद्ध-मंत्र है ।”

“क्या इसे मुझे भी दे सकते हो ?” “माणवरु ! हमारी ग्रहणकी हुई मन्त्रोंको ग्रहण करनेसे दे सकते हैं ।”

तब माणवरुने माता पिताके पास जाकर कहा—

“यह प्रयजित बुद्ध-मंत्र जानता है, किन्तु अपने पास १ प्रयजित हुयेको नहीं देता, मैं इसके धाम प्रयजित हो मन्त्र ग्रहण करूँगा ।”

तब उसका माता पिताने—“मन्त्र ग्रहणकर फिर लोट आयेगा” ज्योत्स्ना ‘पुत्र ! ग्रहण करो’ (कहकर) आज्ञा देदी ।

स्थविरने युवकको प्रयजितकर, पहिले बत्तीस प्रकारके कर्मस्थान (=योगक्रिया) बतलाये । यह उपाका अभ्यास करत, जल्दा ही स्रोतभाषितफलम् प्रतिष्ठित होगया । तब स्थविरने सोचा—“धामणेर (अम) स्रोतभाषितफलमें स्थित है, अब शासनमें लौटने योग्य नहीं है, यदि मैं इसे बढाकर कर्मस्थान कहूँगा, तो अहंत्वसे प्राप्त हो जायेगा, और बुद्ध-वचन ग्रहण करनेमें उत्साह हीन हो जायेगा, अब चडवजी स्थविरके पास भेजनेका समय है ।” तब उसे कहा—

“आओ धामणेर ! तुम रथविरके धाम जाकर बुद्ध वचन ग्रहण करो । मेरे वचनसे (उद्ध) राजीपुत्री (=आरोग्य) पूटना (और) यह भी कहना—मन्ते ! उपाध्यायने मुझे तुम्हारे धाम भेजा है । तुम्हारे उपाध्यायका क्या नाम है, पूछनेपर—‘भन्ते ! मिग्गव स्थविर’ कहना । ‘मेरा नाम क्या है’ पूछनेपर “भन्ते ! मेरे उपाध्याय तुम्हारा नाम जानते हैं ।”

“अच्छा मन्ते !” कह तब धामणेर चडवजी रथविरके पास गया ।

“किस लिये आये हो ?” “भन्ते ! बुद्ध वचन ग्रहण करनेके लिये ।”

“ग्रहण करने धामणेर !”

तिष्यो धामणेर होते समय ही (२० वर्षकी अवस्था तक) विनयपिण्डको छोड़कर शट्टकपाके साथ समी बुद्ध वचनको ग्रहण (=याद करना) कर लिया था । उपसंक्था प्राप्त (=मित्रपुत्र) हो ७५ वर्ष न पुरा होतेही त्रिपिटकपर होगये । आचार्य और उपाध्याय, मोग्गल्लिपुत्त तिसस (=मौद्गल्लिपुत्र तिष्य) स्थविरने दापमें मकल बुद्ध वचनको स्थापितकर आयुभर जोकर निवाण प्राप्त हुये । मोग्गल्लिपुत्त तिसस स्थविरने भी पीछे कर्मस्थान बढाकर, अहत्पद प्राप्त हो, गृहस्थोको धर्म और विनय पढ़ाया ।

उस समय बिंदुसार राजाके एकमात्र पुत्र थे । अपने और अपने सहोदर तिष्यकुमारको छोड़ अशोकने उन सबको (वि पू २१२ म) मार डाला । मारकर चार वर्षतक विना अभिषेककही राज्य करके, चार वर्षोंके बाद, त्यागस्तके निवाणने था २१८७ (वि पू २०८) वर्षमें सारे जम्बूद्वीपका एक छत्र राज्याभिषेक पाया । राजाके अभिषेकको प्राप्त हो, तान वर्षहा तक धास पापण्ड (=दूसरे मत) को ग्रहण किया । चौथे वर्ष (वि पू २०५) यह बुद्ध धर्ममें प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हुआ । उसका पिता बिन्दुसार ब्राह्मण मन्त्र था ।

इस प्रकार समय बीतते बीतते एक दिन राजाने सिंहपत्र (= सिङ्की) में सड़े, दास्त, गुप्त, शान्तेन्द्रिय, ईदर्यापथयुक्त न्यग्रोध श्रामणेरको राज-आंगनसे जाते देखा । यह न्यग्रोध कौन था ? विन्दुमार राजाके ज्येष्ठ-पुत्र सुमन राजकुमारका पुत्र था । । विन्दुमार राजाकी दुर्बल अवस्था (= रोगावस्था) में अशोक कुमारने अपने उज्जैनके राज्यको छोड़कर, सारे नगरको अपने हाथमें करके, सुमन राजकुमारको पकड़ लिया । उसी दिन सुमन राजकुमारकी सुमना नामक देवी परिपूर्ण गर्भा थी । वह अज्ञात वेशमें निरुलकर, पासके एक चाडाल-ग्रामकी ओर जाती, मुखिया चाडाल (= ज्येष्ठ चाडाल) के गेहके पाम एक बगई (= न्यग्रोध) के नीचे पहुँची । उसी दिन उसे पुत्र उत्पन्न हुआ । उस (बालकका भी) नाम न्यग्रोध रक्खा । ज्येष्ठ-चाडाल देखनेके दिनसे ही उसे अपने स्वामीकी पुत्री समझ, सेवा करने लगा । राजकुमार सात वर्ष तक वहाँ बसी । न्यग्रोध-कुमार भी सात वर्षका हो गया । तब महावरुण स्थविर नामक एक अर्हत्तो राजकुमारको बहलाकर न्यग्रोध कुमारको प्रव्रजित किया । कुमार छुरेकी धार (केशमें लगने) के साथ ही अर्हत्त्वको प्राप्त हो गया । एक दिन प्रातः ही शरीर धृत्यसे निवृत्त हो, वह आचार्य उपाध्यायके व्रत (= सेवा) की पूराकर, पान्न-बीवर ले, माता उपासिकाके द्वारपर जानेकी (इच्छासे) निरुत्था । उसकी माताके घरको, दक्षिण-द्वारसे नगरमें प्रविष्ट हो, नगरके बीचसे आकर, पूर्व द्वारसे निकलकर, जाना होता था । उस समय अशोक धर्मराजा पूर्वकी ओर मुँहकर, सिंदपञ्जरमें टहलते थे । उसी समय न्यग्रोध राज आंगनमें पहुँचा । । देखनेके साथ ही श्रामणेरमें चित्त प्रसन्न हो गया । तब राजाने कहा 'इस श्रामणेरको बुलाओ' । । श्रामणेर स्वाभाविक चालसे आया । राजाने कहा—

“अपने लायक आसनपर बैटिये ।”

उसने इधर उधर देखकर—‘कोई दूसरा भिक्षु नहीं है’ (जानकर), इवेत-छत्र प्रधारित, राज सिंहासनके पास जाकर, राजाको (भिक्षा-)पात्र देने जैसा आकार दिखलाया । राजा उस आसनके पास जाते देखकर ही सोचने लगा—‘आजही यह श्रामणेर इस घरका स्वामी होगा ।’ श्रामणेर राजाके हाथमें पात्र दे, आसन पर चढ़कर बैठा । राजाने अपने लिये तय्यार किया सभी वायु-खजक, नाना भोजन पास मँगवाया । श्रामणेरने अपने प्रयोजन भर ही ग्रहण किया । भोजन समाप्त हो जानेपर राजाने कहा—

“शास्ताने तुम्हें जो उपदेश दिया (है), उसे जानते हो ?”

“महाराज । एक देशना जानता हूँ ।”

“तात ! सुने भी उसे बतलाओ ।”

“अच्छा महाराज ।” (वह) राजाके अनुरूपही ‘धम्मपद’के ‘अप्पमाद-वग्ग’को कहा ।

“अप्रमाद (= आलस्यका अभाव) अमृतपद है, औ प्रमाद मृत्युपद ।” (यह) सुनतेही राजाने कहा—‘तात ! जान गया, पूरा करो ।’ (दान-)अनुमोदन (देशना) के अंतमें ‘तात ! तुम्ह आठ नित्य भोजन देता हूँ ।’—कहा । श्रामणेरने ‘महाराज ! मैं यह उपाध्याय को देता हूँ ।’

“तात ! यह उपाध्याय कौन है ?” “महाराज ! अन्त्रापुरा दरकर जो प्रेरणा करता है, स्मरण कराता है ।”

“तात ! औरभी आठ नित्य-भोजन देता है ।”

“महाराज ! यह आचार्यको देता है ।”

“तात ! यह आचार्य कौन है ?” “महाराज ! हम शासन (= धर्म) में, होसकने लायक धर्मोंमें जो स्थापित करता है ।”

“अन्त्रा, तात ! तुम्हें औरभी आठ देता है ।”

“महाराज ! यह भिक्षुसंघको देता है ।

“तात ! यह भिक्षु-संघ कौन है ?

“महाराज ! जिसके अवलम्बसे मेरे अचार्य, उपाध्याय तथा मेरी प्रव्रज्या और उपसंग्रह है ।”

“तात ! तुम्हें और भी आठ देता है ।”

धामधेरेने ‘साधु (= अच्छा)’ कह रंगीनार फा, दूसरे दिन उत्तम भिक्षुओंको लेकर शान्तपुरमें प्रवेशार्थ, भोजन किया । । व्यापोध ने परिपक्व सहित राजाको तीन शरणों, और पाँच शीलेम प्रतिष्ठित किया । । फिर राजाने ‘अशोकाराम’ नामक महाविहार बनवा कर, साठ हजार भिक्षुओंका नित्य-वधान किया । मारे जम्बूद्वीपके चौरासी हजार नगरोम चौरामी हजार चैतयोमे सहित चौरामी हजार विहार बनवाये ।

(राजाने) अशोकाराम विहार बनवानेका काम लगवाया, संघने इन्द्रगुप्त स्वधिर को निरीक्षक नियत किया । । तीन वर्षमें विहारका काम समाप्त हुआ । । तब (राजा) सुअलङ्कृतवा नगरसे होते (विहार प्रतिष्ठाके लिये) विहारमें जा, स्वयंके श्रीवम पड़ा हुआ ।
‘ फिर भिक्षुसंघको पूछा—

“क्या भन्ते ! मैं शासन (= धर्म)का दायदा है वा नहीं ?”

तब भोगालिपुत्र तिरस स्थाविरने कहा—

“महाराज ! इतनेमें शासनका दायदा नहीं कहा जाता, उल्टि प्रत्यय-दायक या उप-स्थाक कहा जाता है । महाराज ! जो धृष्टिसे लेकर ब्रह्मलोक तककी प्रत्यय (= भिक्षुओंकी अपक्षिन् चार वस्तुयें)-राशि भी देवे, वहभी दायदा नहीं कहा जाता ।”

‘ तो भन्ते ! शासनका दायदा कैसे होता है ?”

“महाराज ! जो धनी या गरीब अपने औरम पुत्रको प्रव्रजित कराता है, वह शासनका दायदा कहा जाता है ।”

तब अशोक राजाने शासनार्थ दायदा होनेकी इच्छासे इधर उधर देखने, पासमें गड़े महेन्द्रकुमारको देखकर—“यद्यपि मैं तिर्यकुमारके प्रव्रजित होजानेके बादसे ही, इसे सुवराच पदपर प्रतिष्ठित करना चाहता हूँ, किन्तु सुवराचपनमे प्रव्रज्या ही अच्छी है” (सोच) • कुमारको कहा—

“तात ! प्रव्रजित हो सस्ते हो ?” “द्व ! प्रव्रजित होऊँगा । मुझे प्रव्रजितकर तुम शासनके दायदा धरों ।”

उस समय राजपुत्री सधमित्रा भी उसी स्थानमें खड़ी थी । उमका भी पति अग्नि-ब्रह्मा, तिष्यकुमारके साथ प्रव्रजित होगया था । राजाने उसे देखकर कहा—

“अम्म ! तू भी प्रव्रजित हो सकता है ?” “हा तात ! हो सकती हूँ ।”

राजाने पुत्रीकी कामना जानकर भिक्षुसंघको कहा—

“भन्ते ! इन दोनों बच्चोंको प्रव्रजितकर, मुझे शासन दायदा बनाओ ।”

राजाके वचनको स्वीकार संवने कुमारको मोग्गल्लिपुत्त तिस्र स्थविरके उपाध्यायस्व और महादेव स्थविरके आचार्यस्वमें प्रव्रजित (=आमणेर) किया, और मध्यान्तिक (=मज्झन्तिक) स्थविरके आचार्यस्वमें उपसंपन्न (=भिक्षु) किया । उस समय कुमार पूर वीस वर्षका था । उसी उपसंपन्ना-मंडलमें उसने प्रतिसवित्त-सहित अर्हत्त्वपदको पाया । सधमित्रा राजपुत्रीकी आचार्या आयुशाला धेरी, और उपाध्याया धर्मपाला वरी थी । उस समय सधमित्रा अठारह वर्षकी थी । दोनोंके प्रव्रजित होनेके समय राजाका अभिषेक हुये, छ वर्ष होगये थे ।

महेन्द्र स्थविर उपसंपन्न होनेके बादसे अपने उपाध्यायके पास धर्म और विनयको पूरा करते, दोनों संगीतियोंमें संगृहीत अट्टकथा सहित त्रिपिटक और सभी स्थविर-वाद (=थेरवाद)को तीन वर्षके भीतर (वि पू १९९) ग्रहणकर, अपने उपाध्यायके एक हजार भिक्षु शिष्योंमें प्रधान हुये । उस समय अशोक धर्मराजके अभिषेकको नव वर्ष हो चुके थे ।

(उस समय) तैर्यिज (=पंथाई) लाम सत्कार रहित खाने डारनेके भी सुहताज हो, लाम सत्कारके लिये शामनमें प्रव्रजित हो, अपने अपने मतका प्रचार करते थे । प्रव्रज्या न पानेपर अपने ही सुबनका कावाय वस्त्र पहिन, विहारोंमें चिचरते, उपोसथमें भी, प्रजारणामें भी, संघक्रममें भी, गणक्रममें भी, प्रविष्ट हो जाते थे । भिक्षु उनके साथ उपोसथ नहीं करते थे । तत्र मोग्गल्लिपुत्त स्थविरने—“अथ यह विवाद (=अधिकार) उत्पन्न हो गया, थोड़ीही देरमें यह कठिन हो जायेगा, इनके बीचम घास करते इसे शमन नहीं किया जा सकता।”—(सोचकर) महेन्द्र स्थविरको गण(=जमात) सपुर्दकर, स्वयं सुखसे विहरनेकी इच्छासे ‘अहोमङ्ग पर्वतपर चले गये । उस समय अशोकराममें सात वर्ष तक उपोसथ नहीं हुआ ।

राजाने एक अमात्यको आज्ञा दी—

“विहारमें जाकर अधिक्खण (=विवाद)को शांतकर, उपोसथ करवाओ ।”

तत्र वह अमात्य विहारमें जाकर भिक्षु-संघको इकट्ठा करके बोला—

“भन्ते ! मुझे राजाने उपोसथ करानेके लिये भेजा है, अब उपोसथ करो ।”

भिक्षुओंने कहा—“हम तैर्यिजोंके साथ उपोसथ नहीं करेंगे ।”

अमात्यने स्थविरासन (=समापतिके आसन)से लेकर सिर काटना शुरू किया । तिष्य स्थविरने अमात्यको धैसा करते देखा । तिष्य स्थविर जैसे जैसे नहीं था । वह राजाके एक मातासे जन्मे भाई, तिष्य कुमार थे । राजाने अपना अभिषेक करनेके बाद उन्हें गुराज पदपर स्थापित किया (था) । । कुमार राजाने अभिषेकके चौर्यवर्ष (वि० पृ० २०४) प्रनजित हुये थे । वह अमात्यको ऐसा काते देख स्वयं उसके समीपगते आसनपर जाकर बैठ गये । उसने स्थविरको पहिचानकर घाट छोड़ने में असमर्थ हो, जाकर राजाको कहा । । राजाने उसी समय वदनेमे आगलगी जैसा (हो) विहारम जाकर स्थविर भिक्षुओको पूजा—

“भन्ने ! इस अमात्यने त्रिना मेरी आज्ञाके ऐसा किया है, यह पाप त्मिको छोडोगा ?”
किन्हीं स्थविरोंने कहा—

“इसने तेरे वचनसे किया, इस लिये पाप तुझे हो लगगा ।”

किन्हींने कहा—‘तुम दोनोंको यह पाप है ।’

किन्हींने ऐसा कहा—“महाराज ! क्या तें वित्तम था कि यह जानर भिक्षुओको मारे ?”

“नहीं भन्ने ! मैंने शुद्ध मनमे भेजा था, कि भिक्षुमण प्रनमत हो उपोमथ करै ।”

“यदि महाराज ! शुद्ध मनमे (भेजा था) तो तुझे पाप नहीं है, अमात्य (= अकमर) हीनो है ।”

राजा दुविधामें पडकर जोटा—

“भन्ने ! है कोई भिक्षु, जो मेरा इस दुविधाको छिन्नका शासन (=धर्म)की संभालनेमें समर्थ हो ?

“महाराज ! भोगालिपुत्ता तिष्य स्थविर है, वह तेरी दुविधाको कातर शासनको संभाल सकते हैं ।”

राजाने त्रमी दिन चार धर्म-कायिक (भिक्षुओ)को , और चार अमात्योको (यह कहकर) भेजा—‘ स्थविरको एक आओ ।’ उन्होंने जाकर कहा—‘ राजा बुलाता है ।’ स्थविर नहीं आये ।

दूसरी बार राजाने आठ धर्म-कायिको , और आठ अमात्योको भेजा ‘भन्ने ! राजा बुलाता है’ कहकर लिवालाओ । उन्होंने जानर घैटेहा कहा । दूसरी बारमी स्थविर नहीं आये । राजाने स्थविरको पूछा—‘ भन्ने ! मन दोवार (आदमी) भेजे, स्थविर क्यों नहीं आते हैं ?”

“महाराज ! ‘राजा बुलाता है’, कहनेसे नहीं आते । ऐसा कहनेसे आयगे—‘ भन्ने ! शासन (=धर्म) गिर रहा है, शासनके संभालनेकेलिये हमारे सहायक हो ।”

तब राजाने धैसाही कहकर, सोलह धर्म-कायिकों , और सोलह अमात्यो का भेजा । भिक्षुओको पूछा—

‘ भन्ते । स्थविर महल्लूक है, या नहीं उग्रक ? ’ “ महल्लूक (= बृद्ध) है, महाराज ! ’

“ भन्ते । यान या पालकीमें चढ़ेंगे ? ’ “ महाराज ! नहीं चढ़ेंगे । ”

“ भन्ते । रथनिर रुहा वास करते हैं ? ” “ महाराज ! गङ्गाके ऊपरकी ओर । ”

राजाने (नौकरों को) कहा—“ तो भणे । नावका वेड़ा बाधकर, उसपर स्थविरको बटाकर, दोना तीरपर पहरा रखना, रथविरको ले आओ । ” भिक्षुओं और अमात्योंने स्थविर के पास जाकर राजाका संदेश कहा रथविर चर्म-खंड (= चमड़ेकी आसनी) लेकर पड़े हो गये । । तब राजाने ‘ देव । स्थविर आगये । ’ सुनकर गङ्गातीर पर जा नदीमें उतर, जाष नर पानीमें जाकर, स्थविरकी ओर हाथ उड़ाया । स्थविरने राजाको दाहिने हाथसे पकड़ा । राजाने स्थविरको अपने उद्यानमें लिवा लेजा रथविरही स्थविरके पेर धो, (तेज से) मल, पासमें बैठ अपनी दुविधा कही—

‘ भन्ते । मैंने एक अमात्यको भेजा कि बिहारमें जाकर विवादको शांत कर, उपोसथ कराओ । उसने बिहारमें जाकर इतने भिक्षुओंको जानसे मार दिया । इसका पाप कितने होगा ? ’

“ क्या महाराज ! तैरे चित्तमें ऐसा था, कि यह बिहारमें जाकर भिक्षुओंको मारे ? ”

“ नहीं भन्ते ! ” “ यदि महाराज ! तैरे चित्तमें ऐसा नहीं था, तो तुझे पाप नहीं है । ”

इसप्रकार स्थविरने राजाको समझाकर, वहीं राजोद्यानमें सात दिन वास कर, राजाको (बुद्ध) समय (= सिद्धान्त) सिखाया । राजाने सातवें दिन असोकाराममें भिक्षु संघको एकत्रितकर, कनातकी चहारदीवारी घिरवाकर, कनातके भीतर एक एक मतवाले भिक्षुओंको एक एक जगह करवाकर, एक एक भिक्षुसमूह को बुलाकर पूछा—“ सम्यक् संवुद्ध किस वाद (= मत) के माननेवाले थे ? ”

तब शाश्वतवादीोंने ‘ शाश्वतवादी ’ (= नित्यता-वादी) कहा, आत्मानन्तिकोंने ‘ आत्मानन्तिक, ० अमराविनेपिक, ० । पहिलेहीने सिद्धांत समय जाननेसे राजाने—‘ यह भिक्षु नहीं है, अन्य तैर्थिक (= दूसरे पथवाले) हैं ’ जानकर, उन्हें सफेद कपड़े (= सेतक) देकर, अ प्रनजित कर दिया । वह सभी साठ हजार थे । तब दूसरे भिक्षुओंको बुलाकर पूछा—

“ भन्ते ! सम्यक् संवुद्ध किस वादको माननेवाले थे ? ”

“ ‘ विमज्जवादी ’ महाराज । ”

ऐसा कहनेपर स्थविरको पूछा—

“ भन्ते ! सम्यक् संवुद्ध ‘ विमज्जवादी ’ थे ? ”

“ हाँ, महाराज ! ”

योनक (= यवनक) धर्मरक्षित स्थविरको 'अपरा'तम ।

महा-धर्मरक्षित स्थविरको महाराष्ट्रमें ।

महारक्षित स्थविरको 'योनक' (= यवनक) लोकमें ।

मध्यम (= मज्झिम) स्थविरको हिमालय (= हिमालय) प्रदेशमें ।

सोणक और उत्तर स्थविरको 'सुवर्णभूमि'में ।

महेन्द्र (= मोहेन्द्र) स्थविरको इट्टिय^०, उत्तिय^०, संज^०, भद्रसाल (= भद्रसाल) के साथ सात्रपणी द्वीपमें भेजा ।

वह भी उन उन दिशाओंमें जाते (चार और तथा) अपने पाचवें होकर गये । क्योंकि प्रत्यक्ष (= सीमान्त) देशोंमें उपमण्डपके लिये पंचवर्गीयगण पथात् होता है ।

सात्रपणी (= लका) द्वीपमें महेन्द्र ।

महेन्द्र स्थविरने इट्टिम आदि स्थविरों, सधमिषाके पुत्र सुमन धामणे, तथा भंडुक उपासकके साथ अशोकारामसे निकल कर, राजगृह नगरको घेर दक्षिणागिरि देशमें चारिका करते छ मास पिता दिया । तब क्रमशः माताके निवास स्थान 'विदिशा' (= वेटिस) नगर पहुँचे । अशोकने कुमार होते वच (इस) देश (का शासन) पाकर, उन्नयिनी जाते हुये विदिशा नगरमें पहुँच, देवधेष्टीकी बन्ध्याको ग्रहण किया । उसने उसी दिन (वि पू २२३) गर्भधारण कर उज्जैनमें जाकर पुत्र प्रसूत किया । कुमारके चौदहवें वषमें राजाने (राज्य) अभिषेक पाया । उन (महेन्द्र)की माता उस समय पीढ़में घास करती थी । स्थविरको आये देव स्थविर-माता देखीने पैरोंको शिखे बन्दना कर, मित्रा प्रणमकर, स्थविरको अपन बनवाये विदिशा गिरि महाविहारमें धाम कराया । स्थविरने उस विहारमें बड़े बड़े मोक्ष— 'हमारा यहाँ का कार्य ग्लन होगया, अब सात्रपणी द्वीप जानेका समय है' । तब सोचा— तब तक देवाना प्रिय तिष्यको मेरे पिताका भेजा (राज्य-) अभिषेक पालने दो । तब एक मास और वहाँ धाम किया । ज्येष्ठ पूर्णिमाके दिन मनुष्यपुरको पूर्व दिशामें मिश्रक-पर्वत पर (जा) स्थित हुये, जिनका कि आजकल चैत्य-पर्वतमी कहते हैं ।

इट्टिय आदिके भाय आयुष्मान् महेन्द्र स्थविर सम्यक्-संतुद्धके परिनिवागने २३६वें (= वि पू १९०) में द्वीपमें आकर स्थित हुये । सम्यक्-संतुद्ध अज्ञात शत्रु आठवें वर्ष (= ४२६ वि पू) में परिनिवागको प्राप्त हुये । उसी समय मिहकुमारके पुत्र, सात्रपणी द्वीपके आदि राजा विजयकुमारने इस द्वीपमें आकर मनुष्योंका वास कराया । जम्बूद्वीपमें उदयमद्रके चौदहवें वर्ष (वि पू ९८) में विजयकी मृत्यु हुई । उदयमद्रके पंद्रहवें वर्ष (ई वि पू ३९७) में पांडु धामुदेवने इस द्वीपमें राज्य पाया । नागदाम राजाके बीसवें वर्ष (वि पू ३९८) में पांडु धामुदेवने काल किया । उसी वर्ष अभयने इस द्वीपमें राज्य पाया । वहा (जम्बूद्वीपमें) शिशुगाम राजाके सत्रहवें वर्ष (वि पू ३३७) में वहाँ (एकामें)

१ नयंदावे मुहानात्रे एवं तत्र पैला, पश्चिमीपाटकी पहाडियोंके पश्चिमका प्रांत ।
२. यूनानी राजाजैनिदेश— बाह्यीक (बड्ड), मिरिया, मिश्र, यूनान आदि । ३ पगू (यमां) ।

स्थविर-वाद-परम्परा । विदेशमें धर्म-प्रचार । ताम्रपर्णी-द्वीपमें महेन्द्र ।

त्रिपिटकका लेख-वद्ध करना । (वि. पृ. १६३-५६ वि.) ।

यह आचार्य परम्परा है ।

(१) बुद्ध, (२) उपाली, (३) ताम्र, (४) मोणक, (५) सिंगव, और (६) मोगलि-
पुत्र तिर्य यह विजयी है । श्री जयद्वीपमें तृतीय संगीति तक इस अष्ट परम्परासे विनय
आया । तृतीय संगीतिसे आगे इसे इस (रुका) द्वीपमें महेन्द्र आदि लाये । महेन्द्रसे
मोक्षर कुछ काल तक अरिष्ट स्थविर आदि द्वारा चला । उनसे उनका ही शिष्योंकी परम्परा
वाली आचार्य परम्परामें आज तक (विनय) आया । जेसाकि पुराने (आचार्यों) ने
कहा है—

“ तत्र (७) महिन्द्र, इट्टिय, उत्तिय, सज्ज, और मह यह महाप्रज्ञ जयद्वीप
(=भारत) में बहा आये । उन्होंने ताम्रपर्णी (—ताम्रपर्णी=रुका) द्वीपमें विनय-पिटक
रचाया (=पढ़ाया), पांच निरुद्धो (=दीर्घ आदि) को पढ़ाया, और सात प्रकरणों (=धम्म
संगणी आदि सात अभिधर्म पिटककी पुस्तकों) को भी । तब आर्य (८) तिप्पयत्त,
(९) काल सुमन, (१०) दीर्घ स्थविर, (११) दीर्घ सुमन, (१२) काल सुमन,
(१३) नाग स्थविर, (१४) बुद्धरक्षित, (१५) तिर्य स्थविर, (१६) देव स्थविर,
(१७) सुमन, (१८) चूल नाग, (१९) धर्मपालित, (२०) रोहण, (२१) ऐम
(=क्षेम), (२२) उपतिप्पय, (२३) पुस्म (=पुण्य) देव, (२४) सुमन, (२५)
पुण्य, (२६) महासीव (=शिव), (२७) उपाली, (२८) महानाग, (२९)
अभय, (३०) तिर्य, (३१) पुप्प, (३२) चूल अभय, (३३) तिप्प स्थविर,
(३४) चूल देव, (३५) शिव स्थविर, इन महाप्राज्ञ, विनयज्ञ, मार्ग-कोविदोंने, ताम्र-
पर्णी द्वीपमें विनय पिटकको प्रकाशित किया ।

(विदेशमें धर्म प्रचार ।)

मोगलिपुत्र स्थविरने इस तृतीय संगीतिको (समाप्त) कर (वि पृ १९० में)
सोचा “ कैसे प्रत्यन्त (=सीमान्त) दशामें शासन (=धर्म) सुप्रतिष्ठित (=चिरस्थायी)
होगा । ” तब उन्होंने उन उन भिक्षुओंपर (इसका) भार देकर उन्हे बहा बहा भेज दिया ।

मज्झात्मिक (=मज्झिम) स्थविरको कश्मीर और गन्धार^३ राष्ट्रमें भेजा ।

महात्थेय स्थविरको^४ मर्हिसक्रमण्डल्य ।

रक्षिन स्थविरको^५ वागसीमें ।

१ समन्त पासादिका (आरम्भ) । २ समन्तपासादिका (आरम्भ) । ३ पत्तावरने
आसपासका प्रात । ४ महेन्द्र (इन्दौर राज्य) ने आस पासका प्रात, जो कि विंध्याचल और
सतपुडाको पर्वत-मालाओंन बीचमें पड़ता है । ५ उत्तरी कनारा जिला (बंयई प्रात) ।

योनक (= यवनक) धर्मरक्षित स्थविरको 'अपरा'तमें ।

महा-धर्मरक्षित स्थविरको महाराष्ट्रमें ।

महारक्षित स्थविरको 'योनक' (= यवनक) लोकमें ।

मध्यम (= मज्झिम) स्थविरको हिमवान् (= हिमालय) प्रदेशमें ।

सोणक और उत्तर स्थविरको 'सुवर्णभूमि'में ।

महिन्द्र (= महेन्द्र) स्थविरको इट्टिय०, उत्तिय०, संबल०, भद्रसाल (= भद्र शाल) के साथ ताम्रपर्णी द्वीपमें भेजा ।

वह भी उ० उन दिशाओंमें जाते (चार और तथा) अपने पाँचवें होकर गये । क्योंकि प्रत्यंत (= सीमान्त) देशोंमें उपसपदाके लिये पंचवर्णावगण पर्याप्त होता है ।

ताम्रपर्णी (= लंका) द्वीपमें महेन्द्र ।

महेन्द्र स्थविरने इट्टिय आदि स्थविरों, संघमित्राके पुत्र सुमन धामणेरे, तथा भंडुक उपासकके साथ अशोकारामसे निकल कर, राजगृह नगरको घेरे दक्षिणागिरि देशमें चारिका करते छ मास जिता दिया । तब क्रमशः माताके निवास स्थान 'विदिशा' (= पैटिस) नगर पहुँचे । अशोकने कुमार होते वक्त (इस) देश (का शासन) पाकर, उन्मायिनी जाते हुये विदिशा नगरमें पहुँच, देवश्रेष्ठीका कन्याको ग्रहण किया । उसने उसी दिन (वि पू २२३) गर्भधारण कर उज्जैनमें जाकर पुत्र प्रमत्त किया । कुमारने चान्हवें वर्षमें राजाने (राज्य) अभिषेक पाया । उन (महेन्द्र)की माता उम समय पीढ़ामें वास करती थी । । स्थविरको आये देव स्थविर-माता देवीने पेरोंको निरसे बन्दना कर, शिक्षा प्रदानकर, स्थविरको अपन बचवाये वदिश गिरि महाविहारमें बाम कराया । स्थविरने उम विहारमें छेडे छे सोचा— 'हमारा यहाँ का कार्य न्यतम होगया, अब ताम्रपर्णी द्वीप जानेका समय है' । तब सोचा— तब तक देवाना प्रिय तिष्यको मेरे पितारा भेजा (राज्य-) अभिषेक पालने दो । तब एक मास और वहीं वास किया । । ज्येष्ठ पूर्णिमाके दिन अनुराधपुरकी पूर्व दिसाई मिश्रक पर्वत पर (जा) स्थित हुये, जिसका कि आजकल चैत्य पर्वतभी कहते हैं ।

इट्टिय आदिके साथ आयुष्मान् महेन्द्र स्थविर सम्यक्-संयुद्धके परिनिर्वाणते २३६वें (= वि पू १९०) में द्वीपमें आकर स्थित हुये । सम्यक्-संयुद्ध अज्ञात कालके भाव्यें वर्ष (= ४२६ वि पू) में परिनिर्वाणको प्राप्त हुये । उसी समय सिद्धकुमारके पुत्र, ताम्रपर्णी द्वीपके आदि राजा विनयकुमारने इस द्वीपमें आकर मनुष्याका वास कराया । जम्बूद्वीपमें उदयमन्नके चोदहवें वर्ष (वि पू. ९८) में विनयकी मृत्यु हुई । उदय मन्नके पंद्रहवें वर्ष (ई वि पू ३९७) में पांडु धाम्पुत्रने इस द्वीपमें राज्य पाया । नागदाम राजाके बीसवें वर्ष (वि पू ३९८) में पांडु धाम्पुत्रने काल किया । उसी वर्ष अमयने इस द्वीपमें राज्य पाया । वहा (जम्बूद्वीपमें) शिशुनाग राजाके सत्रहवें वर्ष (वि पू ३३७) में यहा (लंका में)

- १ नर्वशके मुहानामे यहाँ तक फैला, पश्चिमीघाटकी पहाडियोंके पश्चिमरा प्रात ।
२ यूनानी राजाओंके देश— बाह्लीक (बल्ख), सिरिया, मिश्र, यूनान आदि । ३ पृष्ठ (पम) ।

अभय राजाको (राज्य करते) तीस वर्ष पूरा हो चुके थे । तब अभयके तीसवें वर्षमें, पकुण्डक अभय नामक दामरिक् (=द्रविड) ने राज्य ले लिया । वहा काल-अशोकके सोलहव (वि पू ३२०) वर्षमें यहा पकुण्डकके सत्रह वर्ष पूर्ण हुये । वह नीचे एक वर्षके साथ अठारह होते हैं । वहा चन्द्रगुप्तके चौदहवें (वि पू २६०) वर्षमें यहा पकुण्डक-अभय मर गया , (और) मुत्तमोवने राज्य पाया । वहा अशोक धर्मराजाके सत्रहवें (वि पू १९१) वर्षमें, यहा सुग नाम राजा मर गया , और दण्नाप्रिय तिष्यने राज्य पाया ।

भगवान्‌के परिनिर्वाण (वि पू ४२६) के बाद अजातशत्रुने चौतीसवर्ष (वि पू -४०२ तक) राज्य किया, उदयनत्र सोलह (वि पू ४०२-), अनुराध और मुण्ड आठ (वि पू ३८६-), नागादासक चौतीस (वि पू ३७८-), शिशुनाग अठारह (वि पू ३६४-), उसका ही पुत्र अशोक अट्ठाईस (वि पू ३३६), अशोकके पुत्र दश भाई राजा पैंसठ वर्ष (वि पू ३०८) राज्य किये । उनके पाठे नवमन्द (वि पू २८६-) भी पैंसठ ही । चन्द्रगुप्त चौबीसवर्ष (वि पू २६४-), जिन्दुसार अट्ठाईस वर्ष (वि पू २४०-), उसके पीछे अशोकने (वि पू २१२ में) राज्य पाया । उसके अभिषेक (वि पू २०८) से पहिले चारवर्ष (वि पू १९४) (होगये थे), अभिषेकसे अठारहवें वर्षमें महेन्द्र स्थविर इस द्वीपमें आ उपस्थित हुये ।

उस दिन ताग्रपणी द्वीपमें ज्येष्ठ मूल नक्षत्र (=उत्तर) था । राजा अमात्योको— ' उत्तर (= नक्षत्र) की घोषणाकरके ब्राह्म करो'—कह, चौवालीस हजार पुरषोंके साथ नगर में निकरकर, जहा मिश्रस्त्रपत्र है, वहा शिकार खेलनेके लिये गया । तब उस परतकी अधि-वासिनी द्रवता, राजाको स्थविरका दर्शन करानेकी इच्छासे, रोहित मृगका रूप धारण कर, पामहीमें घास पत्ता ग्याती सी चित्रने लगी । राजाने देखकर—'गफ्तमें इस समय मारना अच्छा नहीं है'—(सोचकर) ताली पीये । मृग अम्यत्थल (=साधुस्थल) के मार्गसे भागने लगा । राजा पीछा करते हुये, अम्यत्थल पर चढ़गया । मृग भी रथविरोके करीब जा अन्तर्धान होगया । महेन्द्र स्थविरने राजाको पासमें आते देखकर, कहा—

“ तिष्य । तिष्य । यहा आ ”

राजाने सुनकर सोचा—' इस द्वीपमें पदा हुआ (कोई) मुझे ' तिष्य ' नाम लेकर घोलने की हिम्मत करनेवाला नहीं है , यह छिन्न भिन्न पट्टधारी मलिन कापाय वसनी मुझे नाम लेकर पुकारता है । यह कौन होगा-मनुष्य है, या जन्तु ?' स्थविरों कहा—

“ महाराज ! हम धर्मराज (= बुद्ध) के श्रावक श्रमण हैं । तैरेहीपर कृपाकर, जम्बूद्वीप से यहा आये हैं ॥”

उस समय अशोक धर्मराज और देवानाप्रियतिष्य शब्द भिन्न थे । सो यह राजा उस दिनसे एकमात्र पूर्व अशोक राजाने भेजे अभिषेकसे अभिषिक्त हुआ था । ब्रह्मार्पणपूर्णिमाको उसका अभिषेक किया गया था । उमन हालहीमें खर सुती थी । (बुद्ध-) शासनके

१ वर्तमान मिहिन्ते (मोल्लो) । २ मिहिन्ते पर एक स्थान, जहापर अब भी उस नामका स्तूप है ।

समाचारको स्मरणकर, (वह) स्थविरने उम उवन को सुन—“ आर्य आगये । ” (जान), उसी समय हथियार रखकर, समोइन कर एक क्षोर उठ गया ।। यही चौबालिस हजार पुरष आकर उमे घेरकर खड़े होगये, तब स्थविरने दूसरे छ जनोकोभी दिखगाया । राजाने देखकर—

“ यह कय आये ? ” “ मेरे साथही महाराज । ”

“ इस वक्त जम्बूद्वीपमे और भी इसप्रकारक श्रमण हैं ? ”

“ है, महाराज । इस समय जम्बूद्वीप कापायसे जगमगा रहा है ।

(तब) स्थविरने राजाकी प्रत्ना, पांडित्यकी परीक्षाक लिये वासन आश्रमृक्षने त्रिपथमें

प्रबल पूछा—

“ महाराज । इस वृक्षका नाम क्या है ? ” “ आमना वृक्ष है भन्ते ।

“ महाराज । इस आमको त्रेद्वर ओरभी आम है या नहीं ? ”

“ भन्ते ! औरभी उहुनसे नामके वृक्ष हैं । ”

“ इस आम और उन आमोका छोड़कर और भी वृक्ष है या नहीं ? ”

“ हैं, भन्ते ! लेकिन वह आम वृक्ष नहीं (= न आश्र वृक्ष) है । ”

“ दूसरे आम, और न आश्र वृक्षको छोड़कर और भी वृक्ष है ? ”

“ भन्ते । यही आम वृक्ष है । ”

“ साधु, महाराज । तुम पंडित हो । ”

तब स्थविरने—‘ राजा पंडित है, धर्म समझ सकता है ’ (सोचकर), ‘ वृक्ष हस्ति पदोपम सुत ’ का उपदेश किया । क्याके अन्तमें चौबालीस हजार आर्द्रामया सहित राजा तीनों शरणोंमें प्रतिष्ठित हुआ ।

उम समय अनुलादेवीने प्रयोजित होनेकी ह्छटासे राजाको कहा । राजाने उसकी बात धनकर स्थविरको कहा ।

“ महाराज हम स्त्रियोको प्रश्रया देना विहित नहीं है । पाटलिपुत्रमे मेरी भगिनी संवमित्रा घेरी है, उसको बुलाओ । महाराज ! क्या पत्र भेजो, जिनमें संवमित्रा बोधि (= बोध गयाके पापहकी भैतति) से एकर आये । ”

महाबोधि मगधमें नावपर रखकर किन्धाटोकी पारकर मात दिया ‘ आश्रमृक्षिम पहुँची । मार्गशीर्ष मासके प्रथम प्रतिपदके दिन अशोक धर्मराजाने महाबोधिको उगार, गले तब पानीमें जाकर नावपर रख, संवमित्रा घेरीको भी अनुकर सहित नावपर चढा (दिया) । सात दिन बादराजान पूजाकर फिर नावम रख दिया । उभी दिन नाव जम्बुकोल पहुँचर पहुँच गई । तब बोधे दिा महाबोधिको एकर अनुरागपुर गय । अनुलादेवी (रान भगिनो) पाँच सा वस्त्रा मे और पाँच मो अत पुरकी मिश्रोंक माघ संघ मित्रा घेरीके पास प्रयोजित हुआ । राजाका भावा अरिष्टमी पाँचमा पुष्याक माघ म्यत्रिक पास प्रयोजित हुआ ।

त्रिपिटकका गौरव बढ़ करना ।

(यह गामनी के शासनकाल वि पू २८—५६ विजय संवत्)में 'त्रिपिटककी पाली (=पंक्ति) और उसकी अट्ठकथा, जिनमें पूर्वमें महामति भिक्षु कटप्प करके लेआये थे, प्राणियोंकी (स्मृति) दानि दयना, भिक्षुओंने एकत्रित हो, धर्मकी चिरस्थितिके लिये, पुस्तकोंमें लिखाया ।

॥ इति ॥

मूल ग्रन्थोंकी सूची ।

अंगुत्तर-निकाय । (३ नि, सुत्त-पिटक) ।

७८, ८०, १३७, १४६, १४८, १८७,
२६०, २६२, २६०, २८६, २८९ ३४७,
३६०, ३८६, ४०९, ४४०, ४६९ ।

अंगुत्तर-निकाय अष्टकथा । (अ नि अ

क) ४१, ४८, ५७, ५९, ७५, ८२,
११०, १३७, १७०, २५०, २५९, २६५,
२८६, २९४, २९७, ३२६, ३३६, ३३६
३६०, ४६९ ।

अपदान, थेरी- (खुदक-निकाय, सुत्त पिटक) ।

३६३ ।

उदान (खुदक-नि०, सुत्त०) । १०३, २०४,

३६१, ३९४, ३९७, ४०८, ४३४, ४३८,
(५३५) ।

उदान अष्टकथा । ५७, ३६२, ३९७, ३९८,

४३५, ५२७, ५३५ ।

चुल्लयग (चु य, विनय-पिटक) । ६८, ७८,

८२, ९२, २५४, २६९, ३६०, २६५,
३३९, ४२७, ४२८, ४३२, ४८३, ५४८,
५५६ ।

जातक अष्टकथा । (जा अ, खुदक०, सुत्त०)

१, ७, २९, ३५, ५४, ५६, ५७, ६५ ।

येरगाथा-अष्टकथा (खुदक०, सुत्त०) । ४ ।

दीघ निकाय (दी नि, सुत्त०) । ११८,

१२८, १८९, २०३, २१०, २३२, २४१,
२४५, २७४ (सिंगालावाद सुत्त), ४८७,
५२० ।

दीघ निकाय अष्टकथा (दी नि अ क) ।

२१०, २१६, २१८, २३७, ४८८, ५०४,
५२०, ५२१, ५२५, ५३६, ५४०, ५४८ ।

धम्मपद अष्टकथा (ध प अ क, खुदक०,

सुत्त०) । ८२, ८३, १५२, २५१, ३३६,
३३८, ४४३, ५१८ ।

धम्मसंगणी (अभियम्म पिटक) । (८८) ।

पाराजिका (विनय पिटक) । १३७, १४, १

१४६, ३८८, ३९२, ३९७ ।

पाराजिका अष्टकथा (समतपासादिका) ।

३०९, ३१३, ३१६, ५५५, ५६७, ५७६ ।

मज्झिम निकाय (म नि, सुत्त०) । ६३,

९८, १०६, १६२, १७०, २७६, १८०,

१८०, २२२, २२८, २४८, २५५

२६०, २६५, ३८०, २८६, २९१, ३४१

३५२, ३६७, ३९८, ४०४, ४१२, ४२३

४४१, ४४५, ४५६, ४७३, ४८१ ।

मज्झिम निकाय अष्टकथा (म नि अ क)

७३, २२४, २७०, २८२, ३४१, ३७१

३७२, ४२१, ४२३, ४४३, ४८०, ४८१,

४८४ ।

महायग (म य, विनय पिटक) । २२,

२३, २४, २५, २९, ३१, ३५, ३८,

५०, ५३, ५४, ५७, ९७, १०३, १०६,

१५१, १५४, १५७, २९७, ३३८, ३९६ ।

महायग-अष्टकथा (समतपासादिका)

९७, २९८, ३०६, ३०७ ।

महायस । ६८० ।

यमक (अभियम्म पिटक) (५६८) ।

समुत्त निकाय (स नि, सुत्त पिटक) ।

२३, २४, २९, ३४, ६५, ६८, ९१,

९२, १०५, ११०, १११, ११५, २९३,

३८८, ३९१, ३९३, ४०२, ४०५,

४०६ ४१०, ४२८, ४३१, ४३९,

४४४, ५१३, (५२५, ५३१), ५१९ ।

समुत्त निकाय अष्टकथा । ४१, ३८८,

३८०, ४०२, ४०३, ४०६, ४१०,

४३१ ४३९, ५१३, ५१९ ।

सुत्त निपात (खुदक०, सुत्त०) । ११५,

१६२, ३६४, ३७३, ३८९ ।

सुत्त निपात अष्टकथा । ३६५, ३७३ ।

नामानुक्रमणी ।

अक्षरप्रभेद । शिक्षाशास्त्र १८०, २१०।

अगमलपुर । (नगर) । ५५९ (नगर या फतेहपुर निम्ने कोई स्थान) ।

अगमालपुर-चैत्य । २५९ पचाल दशक आलसी नगरमें ।

अग्निब्रह्मा । मिथु, अश्विनका दामाद ५८२।

अग । देश । ३१ (उरोलाके समीप), ५५, २४१ भागलपुर, मुंगेर जिलाके गंगाके दक्षिणका भाग । २४१ ४७० (में चपा), २८६ (में अद्वैतपुर)।

अगमाणिक । २४३ चपानिगाली सोनढड धाहणका भाग ।

अग मग । ८४ (-का घेरा ३०० योजनका)

अगिरा । मरुता कृषि । १६७, २०४, २१८ २२४।

अगुत्तर-निकाय । (देखो ग्रंथ सूची) ।

अगुत्तराप । (भागलपुर मुंगेर जिलेका गंगा के उत्तरका भाग) १५४, १५६, १६२, २०५ (आपण) ।

अगुलिभाल । १० (के प्रत्युद्गमार्थ ३० योजन) । २६७ ३८२ (वृत्त, उपदेश) । ३६९ (गार्थ मन्त्रायणीपुर), ३७१ (तक्षशिलामें शिक्षा) ।

अचिरवतीनदी । राप्ती । १५६ (का उद्गम), २०२ (मनमादटका पास), २०५, २०६, ४४१ ४४३ (आवस्ताके पूर्वद्वारे समीप), ४७६ (में विद्वद्भक्त सत्ता हुआ) ।

अजपाल वृत्त । १८ बोधि मटपर ।

अजातशत्रु । ४२७, ४२८ (दण्डकती रायमें), ४२९ (पितृहत्याका प्रयत्न), ४३९-४४० (प्रसेनजित्में युद्ध), ४५९-५८ (-राजा-मागधमें उपदेश), ४६९ (उपासक),

४६८ (पितृहत्याकेलिये पश्चात्ताप), ५७६ (प्रसेनजित्की शरीर म्रिया), ५८० (विद्वत्त पर चर्चाकी तथ्यासी), ५२० (वजीपर चर्चाकी दृष्टि) ५४५-५४६ (युद्ध धातुको पाना), ५४६ (राज्य ५०० योजनमें), ४४८ (धातुनिधान घनवाना), ५५०, ५८८ (निर्माणके बाद २४ वर्ष राज्य करना) ।

अजित केश कपल । [अजित केश-कपल] । ८२ (गणाचार्य, तीर्थकर), ९१, ९२, २६६ (आत्रकोसे असत्कृत, ४६० (उच्छेदवादी), ४४० ।

अजित ब्राह्मण । ३७५ (बाबरिका शिष्य), ३७७ (-माणव प्रश्न) ।

अजित मिथु । ५५४ (द्वितीय संगीतिमें वासन विज्ञापक) ।

अट्टक [लटक] । मग्न-भक्ता कृषि, १६७, २०४, २१८, २२४, ३८६ ।

अट्टक-चरिगिक । ३७५, ३९५ (उदान ५ में स्मृत) ।

अनवतसदह । ३१, ८८ (मानमरोवर), १५६ (पाच द्योके बीच) ।

अनवतसत्तर । दसो अनवतसदह ।

अनाथपिंडक । ६८ (प्रथम दश), ६९ (सुदत्त), १०८, ४७२ (आवस्तावासी, मुनन श्रेष्ठारा पुत्र, नाम सुदत्त) ।

अनाथपिंडक, चूल । ८८ (आवस्तावासी)

अनुगारनरचर । २६५ (प्रसिद्ध परिव्राजक, राजगृहमें) ।

अनुराधपुर । लंकाम । ४२, ३९७ (लोह प्रासाद), ५३६ (कलधनदी, राजमाता-विहार, यूपाराम, दक्षिणद्वार), ५७७ ।

अनुरुद्ध । श्राव्य । ५९-६४ (महानाम
शाक्यका अनुज, प्रवज्या), ६०, ६३
(नल्यपानमें), ८७ (चमत्कार), ९९
(प्राचीनवसदायमें नन्दिय आदिबे
साथ), १०० १०३, १०७ (१२प्रधान
श्रावकीय अष्टम), ४०९, ४४४ (लिप्य
चक्षुः), ४६९ (कपिलरुद्र चायी
भगवान्के चचा अमृतोदनके पुत्र),
५१६, ५४२ (निवाणके समय), ५४४ ।
,, । राजा । ४६१ (महामुद्रा पुत्र और
घातक), ५७८ (उष्यभद्रका पुत्र और
घातक) ।

अनुलादेवी । मिथुणी । ५७९ (देवाना
प्रिय तियाकी भगिनी, सधमित्राकी
शिष्या) ।

अनूपिया । रूपा । १३ (राजगृहसे ३०
योजन), ९९ (मल्लदेशमें, शाक्य देशमें
नजदीक जहाँ अनुरुद्ध आदि प्रवजित
हुये), ४७० (द्रव्य मल्ल पुत्रकी जन्म
भूमि) ।

अनेमा । ननी । ११, १२ (आमी गरी,
जि० गोरगपुर) ।

अन्तिम मडल । प्रदेश (जेतवन, वाराणसी,
गया, इशाली जिलमें है) । ११४
(३०० योजन उड़ा) ।

अंधक । जाति, देश । ३७३ (अदमक,
नार्यक शाना अधक ये) ।

अधकजिद् । माम । ३३४ (राजगृहक
पास मगधम) ।

अपराजित । (आसन) । १६ (मोधि
मउपर) ।

अपरान्त । देश (अश्वई नगर, नर्ददा,
पश्चिमीघाट पर्यंत, और समुद्रसे घिरा) ।
५७७ (मं प्रसारक योनक धर्म रक्षित) ।

अपरांत । सुना— । ४०२ (याना वार

सूरतके निचे, वही जो अपरांत), ४०३
(मे अकम्प्य पर्यंत, समुद्रगिरि विहार,
मातुगिरि, मकुलकाराम, सबरुद्ध पर्यंत,
नर्मन नन्दीके तीर पर चेत्य) ।

अप्पमादवग्ग । ५८० (धम्मपम्) ।

अकम्प्य पर्यंत । ४०८ (सुनापातर्म) ।

अभय । राजा । ५७७ (सिंहलराजा,
नागनायका समराला)), ५७८ ।

,, । सावि । ८८ (सिंहल) ।

,, चूल— । म्यत्रि । ५७६ (सिंहल) ।

अभयराजकुमार । २९८, ३००, ३०१
(जीरकर पोषक) ४९९ ४९८ (नातृ
पुत्र द्वारा शास्त्रार्थके लिये प्रेषित,
उपासक) ।

अभिधर्म-पिटक [अभिधम्म पिटक] ।

८८ (का उपदेश त्रयस्त्रिंशालोके), ८९,

५७६ (मात प्रकरण—१ धम्ममगणी,

२ विमङ्ग, ३ पुग्गलपञ्जसि, ४

धातुका, ५ पट्टान, ६ यमक,

७ कथान्त्यु) ।

अभिनिष्कमण । = बुद्धका गृहत्याग । ९, १० ।

अमृतोदन । शाक्य । २३९ (आनन्दका
पिता) ।

अम्यट्ट । अम्यष्ट भी इवो । २१०—
(उक्ताके स्वामी पौनरमातिका
शिष्य) ।

अम्यट्टल । ५७८ (लुक्काके मिश्रक-
पर्यंतपर) ।

अम्यपालो । २९७ (इशालीकी गणिका),
५३० (बुद्धको निमन्त्रण, अम्बिका),
५३१ (यगीनेना दान) ।

अम्यट्टिका । ६९ (राजगृहम) ।

,, । २३२ (आनुमनमें), ५००

(= सिल्लव, निज पत्नी) ५९०

(मे गतामारक) ।

नामानुक्रमणी ।

अक्षरप्रभेद । शिक्षाशास्त्र १८०, २१०।
 अगलपुर । (नगर) । ५५९ फापुर या
 फनेहपुर निम्ने कोई स्थान ।
 अगालपुर-चल्य । २५९ पचाल दशके आलवी
 नगरमें ।
 अग्निब्रह्मा । भि.उ. अशोकका नामाद ७७२।
 अग । देश । ३१ (उत्खेलाके समीप), ५५,
 २४१ भागलपुर, मुगेर जिलाके गंगाके
 दक्षिणका भाग । २४१ ४७० (में चंपा),
 ८६ (में अदमपुर)।
 अगमाणाक । २४३ चपानिवासी
 मोहनब्राह्मणका भाजा ।
 अग मगध । ८४ (-का घेरा ३०० योजनका)
 अगिरा । मगधका ऋषि । १६७, २०४,
 २१८ २२४ ।
 अगुत्तर-निकाय । (देवो धंध सूची) ।
 अगुत्तराप । (भागलपुर मुगेर जिलेका गंगा
 के उत्तरका भाग) १५४, १५६, १६२,
 म अपाण) ।
 अगुलिमाल । २१० (के प्रत्युद्गमनार्थ ३०
 योजन) । २६७ ३७२ (वृत्त, उपदेश) ।
 २६९ (गार्ग्य मंत्रायणीपुर), ३७१
 (तक्षशिलामें शिक्षा) ।
 अचिरवतीनदी । राप्ती । १५६ (का उद्गम),
 २०२ (मनमात्रक पास), २०७, २०६,
 ४४१ ४४५ (आवस्तोके पूर्वद्वारके समीप),
 ४७६ (में विह्वलभका म सां जूना) ।
 अजपाल नृत्त । १८ जोधि मडपर ।
 अजातशत्रु । ४७७, ४२८ (दण्डकती रायमें),
 ४२९ (पितृहत्याका प्रयत्न), ४३९-४४०
 (प्रसेनजितमें युद्ध), ४५९-५८ (-राजा-
 मागधको उपदेश), ४६९ (उपासक),

४६८ (पितृहत्याकेलिये पश्चात्ताप), ५७६
 (प्रसेनजितकी शरीर क्रिया), ५८० (वि-
 ह्वलभ पर घराईकी तय्यारी), ५२०
 (वज्रोपर चढाईकी ह्छा) ५४५-५४६
 (उद्ध धातुको पाना), ५४६ (राज्य ५००
 योजनमें), ४४७ (धातुनिधान बनयाना),
 ५५०, ५७८ (निर्माणके बाद २४ वर्ष
 राज्य करना) ।
 अजित केश कपल । [अजित केम कबल] ।
 ८२ (गणाचार्य, तीर्थंकर), ९१, ९२,
 २६६ (आवकोसे असत्त्व, ४६० (उ-
 च्छेदवादी), ४४० ।
 अजित ब्राह्मण । ३७५ (यावरिका शिष्य),
 ३७७ (-माणव प्रश्न) ।
 अजित भिक्षु । ५६५ (द्वितीय संगीतिमें
 आसन विनापक) ।
 अट्टक [अष्टक] । मगध-उतां ऋषि, १६७,
 २०४, २१८, २२४, ३८६ ।
 अट्टक-चरिगक । ३७५, ३९५ (उदान ५
 ६ में स्मृत) ।
 अनघतसदह । ३१, ८८ (मानसरोवर),
 १५६ (पाच ह्रदोके बीच) ।
 अनघतससर । देखो अनघतसदह ।
 अनावपिटक । ६८ (प्रथम दर्शन), ६९
 (सुद्ध), १०८, ४७२ (आवस्तीवासी,
 सुमन त्रेष्टीका पुत्र, नाम सुद्ध) ।
 अनावपिटक, चूल । ८८ (आवस्तीवासी)
 अनुगागर-रचन । २६५ (प्रसिद्ध परिव्राजक,
 राजगृहमें) ।
 अनुराधपुर । लकाम । ४२, ३९७ (लोह
 प्रामात्र), ५३६ (कर्मव नदी, राजमाता-
 विहार, शृपाराम, दक्षिणद्वार), ५७७ ।

अनुद्ध । आवक । ५९-६४ (महानाम
शाक्यका अनुज, प्रज्ज्या), ६०, ६३
(नल्लपानमें), ८७ (चमत्कार), ९९
(प्राचीनसदायमें नन्थि आदिके
साथ), १०० १०३, १०५ (१० प्रघान
आवकमें अष्टम), ४०९, ४४४ (द्वि-
चक्र), ४६९ (कपिलस्तु वार्या
भगवान्के चार अमृतोत्पत्ते पुत्र),
५१६, ५४२ (निवाणन समय), ५४४ ।
" । राजा । ४६१ (महासुद्ध पुत्र और
घातक), ५७८ (उदयभद्रका पुत्र और
घातक) ।

अनुलादेवी । भिक्षुणी । ५७९ (देवाना
प्रिय तिष्यकी भगिनी, सवमित्राकी
शिष्या) ।

अनूपिया । कन्या । १३ (राजगृहसे ३०
योजन), ५९ (मल्लदेशमें, शान्त्य देशसे
नजदीक जहा अनुद्ध आदि प्रजित
हुये), ४७० (प्रिय मल्ल-पुत्रका जन्म
भूमि) ।

अनेमा । नदी । ११, १२ (जामा नदी,
जि० गोरपुर) ।

अन्तिम मङ्गल । प्रदेश (जेतवन, वाराणसी,
गया, जहाली जियमें है) । ११४
(३०० योजन बड़ा) ।

अंधक । जाति, देश । ३७३ (अश्मक,
गार्ग्यक राजा यत्रके थे) ।

अंधकजिन्द । ग्राम । ३३४ (राजगृह-
पाय मार्गमें) ।

अपराजित । (आत्मन) । १९ (बोधि
मण्डपर) ।

अपरान्त । दत्ता (बम्बई नगर, नर्मदा,
पश्चिमीघाट पर्वत, और समुद्रमें घिरा) ।
५७७ (में प्रचारक योनिक धर्म रक्षित) ।

अपरान्त । सूना—। ४०२ (याना और

सूतके विषे, घड़ी जो अपात), ४०३
(म अकभत्य पर्यंत, समुद्रगिरि विहार,
मातुगिरि, महुलकाराम, मन्त्रद पर्वत,
गर्मन नदीके तीर पर चेत्य) ।

अप्यमाट्ठग्य । ५७० (धम्मपम्में) ।

अकभत्य पत्त । ४८० (सूनापातर्म) ।

अभय । राजा । ५७५ (सिंहलराजा,
नागनायका समराला), ५७८ ।

,, । रत्निर । ८५२ (सिंहलक) ।

,, जूल—। स्थविर । ५७३ (सिंहल) ।

अभयराजकुमार । २९८, ३००, ३०१
(जावकर पोपक) ४५५ ४५८ (ज्ञातु
पुत्र द्वारा शास्त्राधिके लिये प्रेषित,
उपासक) ।

अभिधर्म पिटक [अभिधम्म पिटक] ।

८८ (का उपदेश त्रयस्त्रिंशालोक्तम), ८९,
५५२ (सात प्रकरण—१ धम्मसंगणी,
२ विमङ्ग, ३ पुग्गलपञ्चसि, ४
धातुसुखा, ५ पट्टान, ६ यमक,
७ कथावत्थु) ।

अभिनिप्पमल्ल । = उद्धका गृहत्याग । ९, १० ।

अमृतादन । शाक्य । ३३५ (आनन्दका
पिता) ।

अम्वट्ट । अम्वट्ट भा श्लो । २१०—
(उद्धका स्वामी पीनरमातिका
शिष्य) ।

अम्वत्थल । ५५८ (लद्धाके मिश्रक-
यवतपर) ।

अम्वपालो । २९७ (गणनीकी गणिका),
५३० (उद्धको निमन्त्रण, अन्तरि),
५३१ (कणीसेरा गण) ।

अम्वट्टिका । ६५ (राजगृहमें) ।

,, । २५२ (खाशुमतमें), ५०६
(= सिलान, जिग पत्ता) ५५०
(म राजापरक) ।

अम्बष्ठ । २१७ (देखो अम्बट्ट) ।

अम्बिका । ५३० (= अम्बपाली) ।

अरति । ११६ (मास्कन्या) ।

अरिष्ठ । ५७९ (दवाना प्रियतिष्यता भांजा, भिक्षु) ।

अरुक्त [आर्यक] । ३७३ (गोदावरीके पास वर्तमान औरंगाबाद जिला, निजाम देवराबाद) । ३९७ (रथान, जिमसे उत्तर प्रतिष्ठान) ।

अरुक्कप्प । ५४५ (के तुलि क्षत्रिय) ।

अवन्ति दक्षिणपथ । ३९४, ३९६ (मे कम भिक्षु) , ५८ ।

अवन्ती (दश) । ३९४ (मालवा, जहा कुरर-घरमें प्रपातपर्वत था) ३९६ । ४६९ (उज्जैनी) ४७०, ४७२ में कुररघर ।

अशोक । ५४७ (पिथदास, पिथदम्बो) । ५६९ (तिष्य-सहोदर, विदुसार पुत्र, अपने ९८ भाइयोंको मारा, राज्य प्राप्ति, बौद्ध-वीक्षा) । ५७० (युवराज सुमनको मारना, न्यग्रोध साक्षात्कार) । ५७१ (-ने जम्बूद्वीपमें ८४००० चैत्य और विहार बनवाये) । ५६९ (अनभिषिक्त ४ वर्षतक) । ५७२ (नरम अभिषेक-वर्ष) । ५७७ (उज्जैन राज्यपर जाते रास्तेमें महेन्द्रमाता मिली) । ५७८ (राज्य काल) । ५७९ (पुत्री और बोधिका विदा करना) । ५७८ (धर्म-राजके सत्रहवें वर्ष देवानापिय सिंहलमें गद्दीपर बैठा) ।

अशोक । काल- । ५७८ (जम्बूद्वीप रूप) ।

५७८ (-शिशुनाम पुत्रका राज्यकाल) ।

अशोकाराम-विहार । ५७१ (पाटलिपुत्र में इन्द्रगुप्तस्यत्रि-निरीक्षक, ३ वर्षमें समाप्त) । ५७४ (-में भिक्षुओंकी परीक्षा, निष्कासन) ।

अश्वजित् । (पचवर्गोय) । २५ (उपसंवाद) ।

३८, ३९ (सारिपुत्रको उपदेश) ।

२५४ । २५५ (कीटागिरि-वासी, पुनर्वसु का साथी) ।

असित-देवल । १८३ (ऋषि) ।

असितजन नगर । ४७२ (में तपस्सु भल्लिकका जन्म) ।

असिधक-पुत्त । ११०, १११-११३ (नाट-पुत्त द्वारा शास्त्रार्थके लिये भेजा गया, उपासक) ।

असुरेन्द्र । १३ (का देवनगर-प्रवेश) ।

अस्सक (अदमक-देश) दक्षिणपथमें । ३७३ (अल्लुके समीप गोदावरी तटपर पठन) ।

अस्सपुर । २८६ (अगदेशमें) ।

अहोरात्र पर्वत । ५५८, ५५९, ५७२, (हरि-द्वारके पासका कोई पर्वत), ५७४ (गंगाके उपरकी ओर) ।

आजीवक, उपर- । ३१ ।

आजीवक । २६५ (सप्रदाय, के तीन नियाता) । ३३२ (नगर) ।

आतुमा । (अगुस्तरामे) । १६८, १६९ ।

आनन्द । ४५ (के शिष्य पतित), ४५, ४६ (महाकाश्यपका कुमारवाद), ४६ वेदेह-मुनि, ६१, (अनूपियामें प्रव्रज्या), ६१, ६३ (नलकपानमें) ७५-८० (भिक्षुणी-प्रव्रज्या याचना), १०४ (पारिलेयक्रमें), १०७ (कोसम्यक-विवादमें), १०७ (१२ प्रधान शिष्योंमें ११वें), १२८-३६ (महानिदानक ओता), १४१ (चारल वृट कर खाना), १६७, १६८ (रोजमल मित्र), ३६०-६४ (कोशाम्बी, पृष्ठगुहामें, सदाकको उपदेश), २९१-२९२ (कज-गलामें), ३०७ (महापंडित, महाप्राज्ञ), ३३६ (केपूर्ण मेधायणीपुत्र उपाध्याय), ३३६ (आठ घर) ३३६-३३६ (अमृतो-

दनपुत्र, भदियके साथ प्रयज्या), ३९५ (जेतवनमें), ४०९ (को जन्तिम पुरप न बानेका उपदेश), ४०९, ४१०, ४१३, ४२६ (प्रिद्भसे संग्रह), ४२७ (प्रसेन-जित् द्वारा प्रशमित), ४४१ (प्रसेन-जित्को उपदेश), ४४४ (बहुश्रुत), ४७० (जन्म-शाक्य, कपिल-उत्सुमें अमृ-तौदन पुत्र), ४८१-८६, ५०४, ५१७ (मारिपुत्रके निर्वाणपर), ५२६-५२७, ५२९, ५३२, ५३३-५३६, ५२१, ५२२, ५२३, ५३२, ५३७-४३, ५४८-५५२ (प्रथम स्मृतिमें), ५५३ (कौशाम्यामें उद्ययनक रनिजालने ५०० चार्दों हों), ५५५ (उद्ययनो भी), (छत्रको प्रहस), ५६१ ५६२ (के शिष्य सर्वकामी) ।
 आनन्द-चैत्य । ५२४ (भोगनगाम)
 आपण । निगम (अगुत्तराधमें) । १५६ (नाम काण, पोतलियको उपदेश), १६२ (अगुत्तराधमें), १६३ (विषसारके राज्यमें), १६७ ।
 आलवक । ७५ (आलीमें), २१० (-के लिये ३० योन) । ६० इत्यन्तः ।
 आलात्रो । ७५ (१६ वा धपावाम), २५९ (आलभिजापुरी, पंचालम, वर्तमान अर्बल, जिं कानपुर), ३६५ (से राजगृह) ३५० (में मोमग, सिसपावन) (पंचालमें, हस्तक आलवक) ।
 आलार कोलाम । १३ (राजगृह उरुलेकां योचमें), २० (मृत्यु), ४१३ (के पाम भगवान् । ५३५ (काशिष्यपुरुषमहपुत्र) ।
 आश्वलायन । १८०-८४ (को उपदेश)
 आपाङ्ग-उत्सव । १ ।
 इन्द्राकु [ओष्काक] । राजा । १२-१५ (शाक्योरा पूर्वज), ३५०, ३५६ (मा हिमा), ३७४ (शाक्य पूर्वज) ।

इच्छानगल । २१० (तारुस्वका ग्राम कोमलम उवद्वाके समाप) ।
 इट्ठिय । ५७७ (ताम्रपणीमें प्रचारक) ॥
 इतिहास ग्रन्थ । १८०, ५६८ ।
 इन्द्र । ८, २०६ (वेदिक), ३३७, ५४७ ।
 इन्द्रगुप्त । स्थविर । ५७१ (अशोकाराम-निर्माणमें तत्त्वावधायक) ।
 ईशान । २०६ (वेदिक देवता) ।
 उक्कट्टा । २०३ (कोसलमें, पोक्खलासातिना गांव), २१०, ३११, २२१ (इच्छानगलक समीप) ।
 उजाचेल । ५१९ (वज्जीम गगा-तटपर, हाजीपुर, जि मुजस्फापुर) ।
 उग्र । ४७२ (वज्जी, वंशालीमें श्रेष्ठ) ।
 उच्चकुल । १८२ (क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र) ।
 उज्जुका [उज्जुजा] । ४२३ (राष्ट्रभी, नगर भी) ।
 उज्जेनी । ४८, ४९, ३०३ (में काचन वन-विहार) । ३७६ (उज्जेन, स्वावियर राज्य) । ४७० (अर्पतिमें, महा कात्यायनका जन्म स्थान) । ५७० (में असोक उपराज) । २७७ (म महेन्द्र जन्म) ।
 उत्तर देश । ३७३ (में श्रावस्ती) ।
 उत्पल । १८ (से उरुलेकाको तपस्सु भलिक) ।
 उत्तर । भिक्षु । ५६१, ५६२ (स्वतका उप स्याक) ।
 उत्तर । माण्यक । २०१ (पारापविषका शिष्य) ।
 उत्तर । ५७७ (सुवण्णूमिम प्रचारक) ।
 उत्तरापथ । १४७ (क अधवणिक्) ।
 उत्तिय । ५७७ (ताम्रपणीमें प्रचारक) ।
 उत्पलजर्ण भिक्षुगी । ४७१ (जन्म कोसल, श्रावस्ती, श्रेष्ठिकुल), ४७३ (अपधाविका)

उदय । ३७५ (वायवि-शिष्य), ३८३ (प्रश्न)
 उदयन । ४०१ (की उत्पत्ति), ५५३
 (कोशाश्रयीमें उद्यान क्रीडा), ५५४
 (आनन्दसे प्रश्नोत्तर)
 उदयभद्र । ५७०, ५७८ (मगधराज) ।
 उदान श्रद्धाकथा (देखो ग्रन्थसूची) ।
 उदायी । ५०, २९३ (प्रवज्याके संवधमें) ।
 उदायी, काल—१३, ५४, ५५, ४७० (जन्म
 शाक्य, कपिलवस्तु, अमात्यगृहमें) ।
 उदायिमद्र । ४६१ (अज्ञातशत्रुका पुत्र और
 घातक, उदयभद्र भी) ।
 उदुम्बरनगर । ५५९ (कानपुर जिलेमें
 कोइ स्थान) ।
 उद्गत [उगत] । ४७० (बन्नी, हींस्तिग्राम, धेष्टी)
 उद्दक रामपुत्त । १३ (राजगृह उखेलाके
 बीचमें), २० (मृत्यु), ४१४ (के पास
 भगवान्) ।
 उपक । २१ आजीवक ।
 उपतिष्ठ्य । स्थविर । ५७६ (सिंहलमें), ४६९
 (-ग्राम में सारिपुत्रके का जन्म) ।
 उपनन्द-शाक्यपुत्र । ५५८ (को लेकर जाल-
 रूप रजत-निषेध)
 उपवत्तन शालघन । ५३६ (कुमीनारामें,
 अनुराधपुरके स्थानोमें तुलना) । ५४२
 कुमीनारा (वर्तमान माथाहुँवर, कसया,
 जि० गोरखपुर) में ।
 उपवाण । ३३५ (शुद्ध-उपस्थाक) ।
 उपसीन । माणिक । ३७५, ३८० (प्रश्न) ।
 उपसेन घगन्तपुत्त । ४७० (मगध, नालक
 ग्राम, सारिपुत्रके अनुज) ।
 उपाली । ६१ (बानूपियामें प्रव्रजित), १०७
 (१२ महाश्रावकोंमें १० वें), ५७६
 (दासक-गुरु), ४४४ (त्रिनयधर), ४७१
 (जन्म, कपिलवस्तु नापित कुल), ५४९
 (प्रथम मगीतिमें), ५५० ।

उपाली गृहपति । ४४५-५४ (नालन्दाका
 उपासक, जेनसे बौद्ध) ।
 उपाली म्यविर । ५७६ (सिंहलमें) ।
 उरुपेला (प्रदेश) । १४, १७, २१, ३०
 (काश्यप), ५५, ४१५ (सेनानी निगम),
 ४७२ (मगधमें), ५३७ (दर्शनीय
 स्थान) ।
 उत्कामुख [ओकामुख] । २१२ (इक्ष्वाकु
 पुत्र, शाक्यपूर्वज) ।
 उशीरभ्रज । परित । ३९७ (हिमालयका
 भाग, उमीरद्वज भी) ।
 ऋषिगिरि । २३० (राजगृहमें, के पास
 कालशिला), ३०८ (इसिगिरि
 राजगृहमें) ।
 ऋषिदत्त । ४०६ (प्रसेनजितका हाथी-
 बान्), ४७९ (पुराणका साथी, भगवान्
 का भक्त) ।
 ऋषिपतित भृगुदाव । १४ (सारनाथ, जि०
 बनारस), २१, २२, २५, २६, ५५,
 ७५, ५३७ (दर्शनीय स्थान), (देखो
 धाराणसी) ।
 एकपुंडरीक । ४४१ (प्रसेनजितका
 हाथी) ।
 एक पुंडरीक परिव्राजकाराम । २४८
 (बनारसमें) ।
 ऐतरेय ब्राह्मण । २०४ ।
 श्रोतृकलिच्छत्री । २४५ (देखो महालि) ।
 श्रोपसाद । २०३, २२२ (कोसलमें
 चंकिगा गांव) ।
 ककुत्था नदी । ५३६ (पावा कुसीनाराके
 बीचमें कुत्र बहो सी नदी) ।
 ककुध भारुड । ३ (राजाके मङ्ग, छत्र,
 पगडो, पादुका, व्यजन) ।
 कजङ्गल । १, ३, ९७ (ककजोल, जिला
 सयाल-पर्वना) ।

वज्रह्ला । (कज्जोल) । २८९ (में वेशुवन),
२९१ (म सुगुवन), २८९-९० (मिपुणी-
कज्जालाका उपदेश), ४९० (पडिता) ।
कटमार निरुत्त । देवो कोकालिय ।
करणेत्यल मिगदाय । ४२३ (उतुकार्म) ।
करणमुण्ड दह । १९६ ।
कथाधत्तुपकरण । ७७५ (अभिधन-
विष्ठा प्रथ, मागलिपुत्त निर्मित) ।
कान्यक । (अथ) ३ (जन्म), १०, ११,
१२ (मरण, दग्धुत्त) ।
कान्यक-निपत्तन चत्थ । ११, कपिलम्तुके
पास म्यान) ।
कपिल । ४१, ४२ (महाकादयका पिता) ।
—पुत्र । (कविपत्तु) ४७४ ।
कपिलापत्तु । [तिलोराकोट, तोहिवा
(नेपालका तराई) से २ मील उत्तर] ।
१, ९९, ७७ (में १९ वा वषावास),
७६, ७८ (पुत्र), २१२, २२८ (शाक्य
द्वारा, में न्यमोघाराम), २७०, २६२
(में न्यमोघाराम), ३७४, ३७६ (कुम्भी-
मारा सेतवावे बोचमें) ।
४८९ ४७२ । म उत्पन्न महाभावर
अनुद्ध भद्वि कालीगोधापुत्र), ४७०
(म जन्म, रातुलका, कालउदायिका),
४७१ (य उपाणी, नृ, प्रनापनीगौतमी,
नन्ना, अत्रा कात्यायनी), ४७२
(महानाम) ४७६ (शाक्य विनाश),
५२० (के शाक्य क्षत्रिय) ।
कप्पमाण । ३८२ (का प्रथ) ।
कप्पासिय पनरुत्त । २९ (वारानसी
उल्लेख मार्ग पर) ।
कपिन । महा—१०७ (१२ महाभावरकाम
छत्रे), ३१० (प्रत्युद्गमनम १२० यो
जन), ४०९, ४७१ (जन्म-प्रत्यत देश,
कुत्तुवती नगर, राजवत्त) ।

कौज । देश । १८१ (फाकिस्तान, या
ईरान) ।
कम्माग दम्म [कलमाप दम्म] । १३५
(कुम्भे), ११८ (सतिपञ्चासुत्त),
१२८ (महानिगान्ठत्त) ।
करगडु । इस्वाकुपुत्र, शाक्यपूर्वज ।
कलन्डक-ग्राम । १४९ (उतालीन नातिर),
३१२ (कलन्डाम, उतालीक पास) ।
कलन्डकनिपाप । ४७, (वेशुवन, राजगृह)
४२८ ।
कलम्प । ११ । ३६ (अनुराधपुरमें) ।
कलान-जनक । (निमिरान्ना पुत्र, मिथिला
की परम्परा परित्याग) ४०५ ।
कलिंग । ६४६ ।
कलिंगारण्य । ४४९ ।
कटप । प्रत्यनाम । ५६८ ।
कश्मीर । ५७६ (म प्रचारक मध्यातिक) ।
कश्यप । १६८ (मंत्रकता रूपि) २०४,
२१८, २२४ ।
कुद्ध । १२, १४१ (भद्रकल्पक बुद्ध), १४२
(घाहण, विरस्थायी धर्म) ।
कहापण । देवो कापापण ।
काक । प्रवीतका दास ३०४ ।
काकउलिधेधो । १९२ (त्रिगमाक
राज्यमें) ।
काचनपन । ४० (उज्जेनीम विहार) ।
कात्यायन, महा— । ४८-४९ (चरित)
१०७ (१२ महाभावरकौमें छत्रे),
३९५ ३९६ ३९७ (अवन्ति दशम कुरारक
प्रपात-पत्त पर), ४०९, ४६९ (जन्म—
अवन्ति नृश, उज्जयिनी नगर, घाहण) ।
कात्यायनी । ४७२ (अवन्ती, कुरारक, सोण
हुटिकण्णी माता) ।
कान्यकुञ्ज [कण्णकुञ्ज] । १४४ (कौज
त्रि० परियागद) ५६० ।

कापथिक माणवक, भारताज । २२४ चकि
का भाजा) ।

कारायण, दीर्घ—। ४७३-४७६ (वधुलमल्लका
भाजा, कोसल सेनापति, राजासे विद्यास-
घात), ४७७ ।

कार्पापण । (सिद्धा) ४९, ८० (=
कदापण), ८, १६, २९८ (तनिका सिद्धा,
क्रय शक्ति पौन रूपया), ५१८, ५५६ ।

कार्पापण, अर्द्ध—। ५५६ ।

कालकूट । १५६ (अनन्तसके पास, पर्वत-
शिखर)

काल देवल ऋषि । (बोधिसत्त्वके
दशनाथ) ४ ।

कालशिला । २३० (रूपिगिरि, राजगृहमें)
५१८-५१९ (में मौत्रल्यायनका घघ),
५३३ (राजगृहमें वैभारगिरिको बगलमें) ।

कालाम । (कोसलदेशमें, केसपुत्त निगमके
क्षत्रिय) ३४७ ।

कालो । (मगध, राजगृहमें उत्पन्न, अघती
कुररघरमें ब्याही) ४७२ ।

काशी । २५५ (देशमें चारिका), ३९८,
(प्राय बनारस कमिशनरी आर आजमगढ
जिला), (-का चंदन), ४०१ (प्रसेनजित्
का राज्य), ४७१, ४७२ (दशमें वाराणसी)

काशाग्राम । ४३९ (महाकोसल द्वारा
बन्यासों प्रदत्त) ।

काशी-राज । ३०७ (कासिन राजा, प्रसेन-
जित्का भाई) ।

काश्यप । २४६ (= नागित) ।

काश्यप, उरुवेल—। ३०—३२ (प्रबज्या)
३५ ३६ । ४७० (जन्म—काशा, वारा-
णसी, ब्राह्मण)

काश्यप, कुमार—। ४७० (जन्म—मगध,
राजगृहमें) ।

काश्यप, गया—। ३०, ३३ (उपसपदा) ।

काश्यप, नदी—। ३०, ३३ (उपसपदा) ।
काश्यप, पूर्ण—। ८२ (तीर्थकर १), ८६
(मृत्यु द्वयकर), ९१, ९२ (गणाचार्य १),
२६६ (शिष्योंमें अस्तवृत्त) ।

काश्यपवुद्ध । २२४ (के उपदेशानुसार पेद,
पीछे मिलावट) ।

काश्यप, महा—। ४ (के प्रत्युद्गमनाथ ३
गयूति), ५८ (राहुलके आचार्य)
(= पिप्पलीमाणवक), ४१ (-चरित),
४५ (सघाटी परिगर्तन), ४१ ४९,
१०७ (१२ महाश्रावकोंमें तृतीय), ४०९,
४४४ (धुतवादी), ४६९ (जन्म—
मगधदेश, महातीर्थग्राम, ब्राह्मण),
५४४, ५४५ ५४६ (राजगृहमें अजात
काशसे धातुनिधान बनगाना), ५४८—
५५१ (प्रथम सर्गातिमें), ५७९ ।

किम्बिल । (शाक्य) । ६१ (अनूपियाके
प्रनजितोम), ६३ (नलरूपानम), ९९
(प्राचीनवमदायमें), १०० (अनुरद्ध
नदियके साथ) ।

कीटागिरि । २५४ (केशकत, जि जोनपुर)
२५५ (काशियोका निगम), २५९ ।

कुक्कुटवती । (प्रत्यंतदेशमें) । ४७१ (महा
कप्पिनका जन्म) ।

कुट्टदत्त ब्राह्मण । २३२ (मगधमें खानु-
मतका स्वामी), २३२-२४० ।

कुणालदह । १५६ ।

कुण्डधान । ६३ (नलरूपानम सन्यास),
४७० (जन्म—कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण)

कुण्डिया । (शाक्य) । ४७० (सुप्रवासा
कालिधवाताका घर, सीलीका जन्म
स्थान) ।

कुतुम्बक (पुप) । ८ ।

कुतुहलशाला । (राजगृहमें) २६६ ।

कुच्यक । (पुप) ८ ।

कुररघर । ३९४, ३९८ (मे प्रपात पर्यंत अवतीर्ण), ४७० (मे मोण्डुटिरुण्णका जन्म), ४७२ (कालो, कात्थायनी) ।

कुर । उत्तर ३१, ८८ (म मिश्राय) ।

कुरुदेश । ११५ (कम्मसादम्म), ११८, १२८, ३५२ (खुल्लकोट्ठित), ३५६ (कारव्य राजा), ३५९ (समुद्धेश) ।

कुरु राजा । ३८९ ।

कुशाजतो । ५३८ (कुमीनाराका पुराना नाम) ।

कुसोनारा । (कम्पा, जिप्पा गोरणपुर, तहमील देवाराष्ट्रान (B N W Ry) । १६७, १६८, ३७१, ४७७, ५३५ (पायात ६ गण्युति = ६ यानन), ५३६ (में उपपत्तन कालवन, अनुराधपुरमे मुल्ला), ५३७ (४ दशनीय रुवानामे), ५३८ (पुगना नाम कुशाजतो), ५३९, ५४२, ५४४, (मे निगण), ५४५, (सुकु यन्मन चन्म), ५४६ (स राजपुत्र २१ योजन) ।

कुमिकाता नदा । २०४ (अंतुग्राम, चालिय पर्यंतक पाम, समस्त वर्तमान कर्म नाशा) ।

कश स्वाकुर्य । २०५ (आनायको तीर निर्वाताआ में) ।

कृशामौतमी । ९ (गान्य कन्मा) ३६३ (-मिउणी चरित) ।

कृष्ण । (कपि) २१३ (इन्द्राकुलो दामा निशाक पुत्र, कृष्णायनोक् पूर्व) ।

कृष्णायन । २१० (गद्य) ।

कटुम । १८० (कल्पमूत्र), २१० ।

केलिय जटिल । १८० (आण्य वासी), १६३, १६५, १६६, १६७ ।

केसपुत्त । ३४० (कायमे सालमा का निगम) ।

कैलाश । (पर्वत) । ८७ कैलाशट्ट, १५६ (अनवतसक पाम) ।

कौकनदप्रासाद । ४१२ (बोधिराजकुमार-का सुसुमारगिरिम) ।

कौकालिक कटमोर तिस्स । ४३१ (दव-दत्तका अनुयायी भिन्नु), ५३४ (गवा-सीसम दवदत्तक साथ) ।

कोटिग्राम । ५२९ (वज्राम, गगा और वंशालाके बीच) ।

कोट्टित । महा—१०७ (१२ महाभ्रायका में पावने), ४०९ ।

काडनि । [काडिन्य] । ५ (देवरा माहण)
कोनागमन । १४१ (मद्रकल्पने बुद्ध), १४२ (माहण, चिरन्थाया धम) ।

कौर य राजा । ३५५-३६० (खुल्लकाट्ठितमं, बुद्धशका राजा) ।

कोलित ग्राम । (मगधम) । ४६९ (म महामोद्धवयायनका ज म) ।

कातिय । ११ (क पश्चिम त्रयोपार दाक्य राज्य, पूर्वम रामगाम राज्य), २५१ (शाक्यास विगाद), ५४५ (कोलिय क्षत्रिय रामगामके), ५४८ (बुद्धघातु पान घाल) ।

कोट्टित । महा—[महाकोट्टित] ४७० (जन्म-कासल, आवन्ता, माहण), (दवो काट्टित) ।

कोमल । २०३ (में मनमावट, ओपमाद, इच्छान्गल, उच्छा, मुदागाम) । २४५ (क माहणदत्त वंशालाम), ३४७ (मे, कम्पुत्त निगम), ३४७, ३६४, (पत्तायाद, गाडा यहराद्व, चारायनाक किले तथा, आमपामक जिगके कुठ भाग), ३७५ २७३ (वापरिका जन्म), ४०१ (का प्रसेनविन् राजा), ४६ (अग्र, पन्ती, गोमभुर नाजमग, मौनपुर जिलेके

कितनेही भाग), ४६९, ४७२ (में श्राव-
स्ती), ४८० (परमगधराज अजातशत्रुकी
चढ़ाई), ११०, २६० (में चारिका),
कोसलक । ४७९ (कोसलदेशवासी, या
कोसलगोत्र, प्रसेनजित और भगवान्)

कोसलराजा । ३२६ ।

कोडिन्य, आयुष्मान्—। १४ (उरुलेलमें) ।

कौडिन्य, आह्लात—१४, २४ (प्रयज्या,
अहत्त्व), ४६९ (जन्म—शाक्यदेशमें
कपिलस्तुने पास श्रौणग्राममें, ब्राह्मण) ।

कौशाम्बी । ७६ (नगम वर्षावास), ९७, ९८,
१००, १०४, १०६, (घोषिताराम में
कलह १०८, २४७, २६० (में इक्ष्वाकु
= पभोसा, कोसम, जि० हलाहायाद),
३०४ (उज्जैन राजगृहके मार्गपर), ३७६
कोसम, जि० हलाहायाद), ४२१, ४२७,
४२८, ४७१, ४७२ (वत्सदेशमें वक्कुल
का जन्म) (खुज्जुत्तरा, सामावती), ८३८
(महानगर), ९९३, ९९४, ९९६ (मुत्त-
विभंग) ।

कौशिकगोत्र । ४१, ४२ (भद्रा कपिलायनी
का पिता) ।

ककुच्छन्द [ककुसंध] । १४१, १४२ १४३,
(भद्रकल्पके बुद्ध ब्राह्मण, चिर-
स्थायी धर्म) ।

क्षुद्ररूपी । २१४, २१९ (इक्ष्वाकु-कन्या,
कृष्ण माया) ।

क्षुद्रशोभित । (देखो शोभित, क्षुद्र-) ।

रजदेवी पुत्र समुद्रदत्त । ४३२ (देवदत्तका
अनुयायी भिक्षु) ।

खाणुमत ब्राह्मणग्राम । २३२ (मगधमें कुट
रंतका ग्राम), ९३४ (में अभ्युदयिका,
खुज्जुत्तरा, [कुब्जा उत्तरा] ४७२, ४७३ ।

। (वत्स-देशमें, कौशाम्बीके घोषक श्रेण्डीने
धार्दकी कन्या, गृहस्थ अग्रध्राविका)

सुहक (=क्षुद्रक) निरुध । (देखो ग्रंथसूची) ।
रोम । रथविर । ९७६ (सिंहलमें) ।

रोमा । ४७१ (जन्म—मगधदेश, शाकला,
राजपुत्री, विनसार-भार्या), ४७३
(अग्रध्राविका) ।

गगा । नदी । १४४ (प्रयागमें), १९६ (का
उद्गम), २१९, (घञ्जी-मगध-सीमा) ९२९ ।

गड । ८९ (प्रसेनजितका माली)

गडम्बरकृत । ८९ (श्रावस्ती नगरमें) ।

गयमादन-कूट । १९६ (अनवतसे के पास)

गधार । ९७६ (में धर्मप्रचारक, मध्यांतिक)

गधारपुर । ९४६ (में एक क्षुद्रदावा)

गया । १९, २१, ३३, ३४, ४३९ (में
गयासीस) ।

गयासीस । (गयामें) ३४, ३९, ४३३,
४३६ (पर देवदत्त संघभेदकर आया,
महयोनि परंत, गया) ।

गरड । १३ ।

गर्गश [गगरा] । पुष्करिणी । २४१ अग-
दत्तके चपा नगरमें, २८९ ।

गधापाति । (भिक्षु) २७, २८ ।

गव्यूति । ३ (=३ योजन) ।

गिजकायस्थ । ९२९ (वज्जिदेशके नादिका
ग्राममें) ।

गिरिब्रज । ४९० (मगधोका नगर, राजगृह)

गृध्रकूट । परंत ३०८ (राजगृहमें), ४३१
(देवदत्तका क्षुद्रके ऊपर पत्थर पेंकना),
(देखो राजगृह) ।

गोदावरी । नदी । ३७३ (पतिट्टान हस्तके
किनारे, अरसकदेशमें) ।

गोनद्ध । ३७६ (उज्जैन और मिलसाके
बीच कोई स्थान) ।

गोपाल । (प्रद्योतरा पुत्र) ।

गोपाल-माता देवी । ४९ (प्रद्योत-
महिषी) ।

गोमग । ३५० (आलीमें) ।
 गोयोग-प्राप्त । १४५ (चारणसामें) ।
 गौतम तीर्थ । २५० (पाटलिपुत्रमें) ।
 गौतमद्वार । ५२८ (पाटलिपुत्रमें)
 गौतमचैत्य । ३१२ (वैशालीमें, त्रिचोवर-
 विधान) ।
 गौतमी, कृशा । ४७१ (जन्म—कोमल,
 धावस्ती, वंशकुल, कृशा गौतमी भी
 देखो) ।
 गौतमा, महाप्रजापती । ४७१ (शाक्य,
 कपिलवस्तु, भगवान्की मौसी) ।
 घाटिकार । महाब्रह्मा । १२, १५ ।
 घोषिताराम । (देखो कौशाम्बी) ।
 चक्रवाल । ३, ८३
 चंकि ब्राह्मण । २०३, २२२, (ओपमदवासी)
 चंडउज्जी ल्यविर । २६७, २६९ (मोगलि
 पुत्रके गुरु) ।
 चंडालकुल । १८२ (नीलकुलोंमें) ।
 चंद्रगुप्त राजा । ५७८ (मौर्य, राज्यकाल)
 चंद्रपद्मा । १५२ (मैट्रको भार्या) ।
 चंपा । २४१ (अंगमें, जहा गर्गा पुष्करिणी),
 २८५ (गर्गा पुष्करिणी), ४७० (में
 सोण काटिबीसना जन्म), ५३८ (महा-
 नगर) ।
 चाम्पेयक विनययन्त्र । ५६५ ।
 चापाल चैत्य । ५३२, ५३३ (वैशालीमें) ।
 चालिय पर्यंत । ७५ (वर्षावास १३, १८,
 १९), १२७ (१३वीं वर्षा) (१८वीं २८५,
 २९४ (१९वीं वर्षा, पाममें जंतुग्राम
 हूमिकालानदी) ।
 चित्रकूट (पर्वत) । ८७, १५६ (अन्यतस्तपे
 पास) ।
 चिन्त (गृहपति) । ४७२ (मगध, मन्त्रिजा
 सडमें श्रेष्ठी), ४७३ (गृहस्थ धाम-
 धावरु) ।

चित्त हस्तिसारीपुत्र । १९४, १९९ उप-
 संपदा, अर्हत् ।
 चिंचा । ३३६-३३८ (परिव्राजिका धावस्ती
 म) ।
 चुटक । ५३६ (आयुष्मान्) ।
 चुन्द कर्मार पुत्र । ५३५ ५३८ (पावामें)
 ५३६ (का पिंड अममसम) ।
 चुन्द, महा—। १०७ (१२म मातर्वें) ४०९
 (जेतवन) ।
 चुन्द धर्मलोदेश । ३३५ (चुन्द-उपस्थान),
 ४८१ (पावामें सामगाम नाथपुत्रके सरने
 का रमाचार ले, मारिपुत्रके भाई), ५१७,
 ५१८ ।
 चंडामणिकेत्य । १२ (अर्पणित लोकमें)
 चैत्यपर्यंत । = मिथपर्यंत ५७७ ।
 चोरप्रपात । ५३३ (राजगृहम्) ।
 छहन्तदह । १५६ ।
 छन्दक [छत्र] । ३, १०, ११, १२, ५४१
 (ब्रह्मन्), ५५२ (को ब्रह्मदह), ५५३
 (को ब्रह्मन्), ५५४ (अहत्) ।
 छन्दारा । (ब्राह्मण) २०४ ।
 छन्दारा । (ब्राह्मण) २०४ ।
 छत्र । (देखो छन्दक) ।
 छ वर्गीय । ७२, ८२ (के मनाचार), ९३।
 जटिल । (श्रेष्ठी) १५२ (विद्यमारके राज्यमें)
 जतुग्राम । २९४ (चालियपर्वतक पाम)
 (प्राचीनवशादावमें) ३३५ ।
 जम्बुकालपट्टन । (एकामें बंदर) ५७९ ।
 जम्बुद्वीप । १, १५६ (१०००० योजन, ४०००
 मयुज, ३००० मनुष्य , ५४८, ५४७,
 ५६७, ५६९, (= मातत) ५७१ (में
 बशोकने ८४००० चैत्य और विहार
 बनगये), ५७६, ५७७ (रात्राग्नो),
 ५७९ ।
 जातकट्ट कथा । (देखो ग्रन्थ-सूची) ।

जातकट्ट कथा । १० (सिंहलमापा की),
२९, ५४ ।

जातियावन । १०१ (देगो भट्टिया) ।

जातुर्णी । ३७५ (यावरि-शिष्य) ३८२
(प्रश्न) ।

जानुश्रोणि [जानुस्सेणि] । १७०, १७१,
१७२ (ब्राह्मण, श्रावस्तीवासी उपदेश),
शरणागत २०३ ।

जानुस्सेणि । (देखो जानुश्रोणी) ।

जालिय । (शरणाग्निका शिष्य, काशाम्नी
म) २४७ ।

जोयक कौमारभृत्य । ४५९, (आश्रय-
दान) ४६१, ४७२ (मगध, राजगृह, अभय
राजकुमारने सालयतिका गणिकामे उत्पन्न),
२९७-३०७ (जीवक चरित), ३००
५५० (राजगृहमे) ।

जीयकम्पवन । ५३३ ।

जेतवन । ७१ निमाण (दण्णो श्रावस्ती)
७०, ।

जेतकुमार । ७०, ७१, (-उद्यान) ।

जातय (श्रेष्ठी) । १५२ त्रिवसारे राज्यमे
ज्ञातु । ५२९ [वर्तमान जेथरिया भूमिहार
ब्राह्मण] ।

ज्ञातपुत्र । (नाट-पुत्र = नाथपुत्र = नातपुत्र)
११० (विनेय) ।

तक्षशिला । २९८ (शाहजीकी देरी तरूमिला
जि० रावलपिंडी), ३७१ (में श्रावस्ती
वासो, अध्ययनाथ) ।

तपस्सु । १८ (भट्टिका भार्गव । उरुवेलाय),
१९ (उपासक), ४७१ (जन्म—
असितवन नगर, कुटुम्बिस्सेह) ।

तपोदाराम । ५३३ (राजगृहमे) ।

ताम्रपर्णी द्वीप । ५७६ (तम्रपर्णिद्वीप,
लंका), ५७७ (में प्रचारक, महेन्द्र, उत्तिय,
सयल, भद्रपाल) ।

ताम्रलिप्ति । ५७९ (तम्लुङ्ग, जि० मेदिनापुर) ।
ताम्रयस्त्र ब्राह्मण । २०३ (इच्छानगलवासी),
२१० (उम्हटा समीप) ।

तिच्छिरजातक । ७३-७४ ।

तिन्दुकाचौर । १८९ (समथप्यत्राटक मर्हि-
काराम, वर्तमान चोरनाथ, सेंट्र महेट,
जि० बहराइच) ।

तिप्यकुमार । ५६९ (अशोकमहोदर, विंदु-
सार पुत्र), ५७१ (प्रमजित) ।

तिप्यदत्त । रु-विर । ५६६ (सिंहल) ।

तिप्य ब्रह्मा । ५६७ ।

तिप्य मध्वेय । ३७५ (यावरि शिष्य) ।

तिप्य धामणेर । २१० (सारिपुत्र शिष्यने
लिये १२० योजन ३ गन्धूति) ।

तिप्य । म्थविर । (= तिप्यकुमार) ५७३
(प्रमजित, राज्याभिषेकके साथ वर्ष) ।

तिप्यस्थविर (३३) । ५७६ (सिंहल) ।

तिस्समेत्तेय । माणवरु । ३७८ (प्रश्न) ।

तुदीगाम । २०३ (तादेय्य ब्राह्मण, कांसल
मे) ।

तुपित । देवयिमान । ८८, ९० (में मायादेवी)
२५३ (देवता), ३३५ (रुग्म) ।

तृष्णा । (मारकन्धा) ११६ ।

तेलपनाली । ४८ (राजगृहसे उज्जैनके रा-
स्तेमे गात्र) ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण । ७४, २०४ ।

तैयिक । ८३ (प्रतिहार्य) ।

तेदेयकप्प । ३७५ (यावरि शिष्य) ।

तेदेय्य ब्राह्मण । २०३ (तुदाधामगाला) ।

तेदेय्य (माणत्र) । ३८२ (प्रश्न) ।

त्रयस्त्रिंश । १२ (इन्द्र लोक), ७५, ८७
(म वर्षापास), ८८ (मे वपावास पाहु
कवक शिलापर), २५३ ४०४, ४२६
(देवता) ।

त्रिपिटक । ५८० (का लिखा जाना) ।

धुल्लकोद्वित । ३५२ (कुस्देशमें), ५५४
(में मिगाधीर राजोद्यान) ३५६ (कौरव्य
राजा), ४७० (में राष्ट्रपालका जन्म) ।
धुल्लनंदा भिक्षुपुत्री । ४६ (महाकश्यपसे
नाराज) ।

धृष्ट ब्राह्मणग्राम । १ (यानेसर, जिं
कनाल), ३९७ ।

धूपाराम । ५३८ (अनुराधपुरमें) ।
धोर-गाथा । अ क (द्वयो ग्रन्थ सूची) ।
दक्षिणछात्र । ५३६ (अनुराधपुर में) ।
दक्षिणगिरि । ४० (राजगृहके पास),
५५३, ५५७ ।

दक्षिणापथ । ३७३ (ननपत्त जिल्लमें
आश्रय है) ।

द्वाराङ्कारण्य । ४४९ ।

दामरिफ । ५७८ (=द्रविड) ।

दारुपाथिक । २४७ (-का शिष्य जालिय
कौशाम्बीमें) ।

दाय । प्राचीनग्रन्थ-१९ (में अनुसूद्ध आदि)
दाय । मृग-११, २२ (ऋषिपत्ता) ।

दासक । ५७६ (उपालिशिष्य, शोणक-गुरु)
दिशा । २१३ (ईश्वारकी दासी, दृष्ट्या
ऋषिकी माता), २१२ ।

दीर्घ निकाय [दीर्घ निकाय] । (देखो
ग्रन्थसूची) ।

दीर्घभागक । ८ (दीर्घ निकायको कट
करने वाला) ।

दीर्घ तपस्वी निगठ । ४४४ (निर्ग्रन्थ
पात्रपुत्रका प्रधान शिष्य), ४४७, ४५० ।

दीर्घ-सुमन । स्थगिर । ५७८ (मिहल) ।

दीर्घ-स्थगिर । ५७६ (मिहल) ।

दुभय । ३७५ (गवगिरि शिष्य) ।

देवकट स्नानम् । २८० (कौशाम्बीमें शृङ्ग
गुहाक पास) ।

देव, चूल-। ५७६ (मिहल) ।

देवता, वृक्ष-। १५ ।

देवदत्त । ६१ (अनूपियामें प्रव्रजित), ४२७,
(संघमें), ४२७-४३४, ४२८ (मयका
आधिपत्य मागना), ४२९ (अज्ञानराज
को पितृवधकी सलाह), ४३० (उद्धवे
वधार्थ आदमी भेजना) ४३१ (उद्धवे
पादको क्षत करना), ४३२ (५ वस्तु
मागना), ४४४ (पापच्छु), ४५५
(आपाधिक-कल्पस्य), ४८८ (के अंतिम
जिन) ।

देवदह नगर । २ (कोलियम), ३४१
(शाक्यदेशमें) ।

देवल, असित —। देवो अमित देवल ।

देववन । २२३ (ओपमाद, कोमलम) ।

देवस्थगिरि । ५७६ (मिहल) ।

देवाना प्रियतिष्य । ५७७ (ताम्रपर्णोत्प,
अभिषेक), ५७८ (अशोकके १७वें वर्ष
राज्य पाया), ५७९ (बोध होना) ।

द्रोण ब्राह्मण । ३८५ (आवस्तीगार्सी, प्रव्रन),
५४५, ५४६ ।

द्रोणपुस्तु (शाक्यदेश) ४६९ । (में पूनमत्रा-
यणापुत्रका जन्म) ।

धजा । ५ (द्वन) ।

धनजय । श्रेष्ठी । १०२, १५३ (विनात्वा पिता
मङ्गका पुत्र साकेतमें), ३२६ (साकेतना
श्रेष्ठी), ३२७, ३२८ ।

धनपाल । १३ ।

धनिय । २१० (के लिये १०७ योजन) ।

धनिय कुम्भकारपुत्त । ३०८-१२ (ऋषि
गिरिमें द्वितीय पारायिक) ५४९ ।

धम्मदिन्ना । ४७१ (जन्म मगध, राजगृह,
विशाल श्रेष्ठी-भार्या) ।

धम्मपद् । (देवो ग्रन्थसूची) ।

धम्मचक्रपञ्चत्तनमुत्त । २३ ।

धर्मपालित । ५७६ (मिहल स्थगिर) ।

धर्मरक्षित, महा ।-५७७ (महाराष्ट्रमें प्रचारक)
धर्मरक्षित । योनरु-५७७ (अपरातमें धर्म-
प्रचारक) ।

धर्मसेनापति । (देखो सारिपुत्र) ।

धवनक । ३७५ (वावरि-शिष्य) ।

धोतक माणव । ३७९ (प्रश्न) ।

नकुल पिता, गृहपति । ४७० (भर्ग-देश,
सुसुमार-गिरिमें, श्रेष्ठी) ।

नकुल-माता, गृहपत्नी । ४७२ (भग, सुसु-
मारगिरिमें नकुल पिताकी भार्या) ।

नगरक । (कोसलमें), ४७३ (से मेतल्लप
निगम ६ योजन) ।

नन्द । ५७, ५८ (प्रयज्या), ४७१ (जन्म-
शाक्य, कपिलवस्तु, प्रजापतिपुत्र), ३७५
(वावरि शिष्य), ३८१ (प्रश्न) ।

नन्दक । ४७१ (कोसल, आवागती, कुलगेह) ।

नन्द माता । ४७२ (भगध, राजगृह, सुमन
श्रेष्ठीक आधी पूर्णसिंहकी पुत्री), ४७३
(नेलुकटकी नगर वासिनी, गृहस्थ-अग्र
आविका) ।

नन्दराजा । ५७८ (राज्य काल) ।

नन्द घात्स । २५६ (आजीवकों तीन
नियंताओंमें) ।

नन्दा । ४७१ (शाक्य, कपिलवस्तु, महा-
प्रजापती पुत्री) ।

नन्दिथ । ६३ (नलकपानमें प्रयजित), ९९,
१०० (प्राचीन धन्दावर्गमें अनुसूक्तके माथ)

नर्मदा नदी । ४०३ (सूनापरातर्म) ।

नलकपान । ६३ (कोसलमें जहा पलामवन)

नलेरुपुचिमन्ड । (देखो वरजा) ।

नाग । १३ ।

नाग । चूल-५७६ (सिंहल, स्थविर) ।

नागदास । ४६१ (अनुसूक्तका पुत्र और
घातक मय्य प्रजाद्वारा हत), ५७७, ५७८
(सुंद-पुत्र, राज्यकाल) ।

नाग, महा-। ५७६ (सिंहल स्थविर) ।

नाग राज । ३० ।

नागसमाल । ३३५ (बुद्ध-उपस्थाक, आनो
ल्लघन) ।

नाग स्थविर । ५७६ (सिंहल) ।

नागित । २४५ (उपस्थाक, वेशालीमें), २४६
(काश्यप), ३३५ (बुद्ध-उपस्थाक) ।

नायपुत्तिय निगठ । ४८१ (जैनमाधु) ।

नादिका । (= नाटिका, नाटका) । ५०९
(वर्ज्जामे पाटलिपुत्तमें कोटिग्राम, इसके
आर वंशालीके बीचमें । वर्तमान रत्तीपर्गना
इसी नामसे है । म गिजकायसथ) ।

नालरु ग्राम । ५० (नारिपुत्तका जन्म-म्यान,
भगधमें) ।

नालक ब्राह्मण ग्राम । ४७० (में नारिपुत्त,
रेवत पदिरवनिय, उपसेन वर्गपुत्तका
जन्म, भगधमें) ।

नालन्दा । ४४, ४५, ११० (प्रावारिक आग्र-
वन, दुर्भिक्ष), १११, ४४४ ४४८, ४४९,
४८१ (उपालीमें बौद्ध होनेपर नायपुत्तके
मुहसे सून निरुला, फिर पावा लेगये, जहा
मरण), ५२५, ५२६ (प्रावारिक आग्रवन),
५५० (राजगृह नालंदाके बीच अंध
लट्टिका) ।

नाला । ७५ (११वा वर्षाकाल) ।

नालागिरि । ४३१ ३२ (चड हाथी, जिसे
देवदत्तने बुद्धके ऊपर छुड़वाया) ।

नालीजघ । ब्राह्मण । ४०० (महिका दवीका
दर्बारी, आवास्तोमें) ।

निकाय । ५५० (दीघनिकाय आदि ५)

निगठ । (निर्ग्रंथ = नग) ८६ ।

निगठ नाटपुत्त । ११०, १११ (असिबधरु-
पुत्तको भेजना), ११२ ।

निगठ नातपुत्त । ४६०, ४६३ (चातुयामसं-
घर वाटा), ४४४, (नालनाम युद्धभी उस

ममय), ४४९ (उपालि को शास्त्रार्थ के लिये
भेना), ४५२-९८ (उपालि मे संवाद) ।
निगठ नाथपुत्र । ८२, (निर्घनानुपुत्र महा-
चार जैन तीर्थंकर), ९१, ९२ (बृद्ध गणाचार्य
तीर्थंकर ३), १४८ (सिद्धो रोचना),
२३० (मर्त्य), २३६ (धावकोसे जस
रुच), २८० (मपनतावा दाया),
३४१-४३ (का पाद), ३४७ (सज्ज),
४८१, ४८८ (मृत्यु पाजामे, अनुपायोंम
कलह) ६० (संघी) ।
निघट्ट । १८०, २१०, ९६८ ।
निमि । ४०४ (मयाद्व-श्वराज मिथिलाका
धमराजा) ।
निर्माणरति । २९३ (दयता) ।
निपाद । १८२ (नीपकुल) ।
निष्क । ४१ (भराफी) ।
नीचकुल । १८२ [चडाल, निपाद, वेष
(धनोर), रणकार, पुष्प] ।
नेरजरा नदी । १० (मिलाजन, पि गया) ।
१७ (के तीरपर बोधिवृक्ष) ।
नेगम । ७० (श्रेष्ठोसे ऊपर प) ।
न्यग्रोध ग्रामणेर । ६७० (धुराज सुमनका
पुत्र, विंदुमारका पौत्र, महावरण स्थविर
का शिष्य), ६७१ (अशोकका प्रेरक) ।
न्यग्रोधाराम । ९० (कपिलवस्तुमें न्यग्रोध
शाक्यका), २२८, ९३३ ।
पकुडक अभय । ६७८ (मिहल का
दामरिज राजा) ।
पकुध कच्चायन । ४६०, ४६३ (का बाद),
६४० (खो प्रभु काटयायन) ।
पचउर्गीय । स्थविर ९ । (कौडिन्ध आदि),
१४ (उरालामे), २०, २१ (कृषि
पतनमे) २२, (को उपदेश), २४
(कौडिन्ध), २९ (वप्प, भदिय, महानाम,
अश्वजित्) ।

पचउर्गीय भिक्षु । ४१८ (छोडकर जाना),
४१९ ।
पच शतिका । वित्त मगीति । ९९४ ।
पचशाला । ब्राह्मणपाम । ११३ (मगधमें) ।
पचशिखा । गंधव पुत्र । ९० ।
पचालदेश । ४२७, [म बाल्मी, अ ,
मंकाश्य, कान्पकुत्रा, सौर्य] ।
पटाचारा । भिक्षुणी । ४७१ (कोमल,
भावस्ती, श्रेष्ठकुल) ।
पतिट्टानपुर । ३७३ (गान्धारीम तीन बाजन
का टाए) ।
पदक । १८० (= कवि) ।
पदचंचल्य । ४८३ (नर्मदा नगक तीर, सूना-
पातम) ।
पदस । २१० (कवि) ।
पंधक, चुल्ल । ४६९ (मगध, राजगृहमें श्रेष्ठ
कन्यापुत्र) ।
पंधक, महा-४६९ (मगध, राजगृहमें, श्रेष्ठ
कन्यापुत्र) ।
परनिर्मितवशचर्ती । २९३ (देवता) ।
परतपगजा । ४२१ (उदयनका पिता) ।
पाटलिग्राम । ६२६, ९२७ (वर्तमान पटना,
नगर-निर्माण, बज्जियोंको रोकनेके लिये) ।
पाटलिपुत्र । ६२८ (में गौतमद्वारा, गौतम
तार्थ) ६२८ (अग्रनगर, पुटभद्र, क्षाग,
पानी, आपमकी वृद्धमे भय), ६६७ ६७०
(दक्षिणद्वारसे पुत्रद्वारा जाने सम्मने
राजागण), ६७९ ।
पाडय पर्वत । १३ (रत्नमिति या रत्नकूट
राजगृहम) ।
पाटुकम्बल शिला । ८८ (त्रय त्रिशद्वलोक
में, वर्षागाम) ।
पांडुप्रासुदेव । ६७७ (उदयभद्रकालीन,
मिहलप) ।
पाराजिक । १३७ ।

पारासिन्धिय । (ब्राह्मण) । २९१ (की भावना) ।
 पारिल्लत्रक । ८८ (दिव्य-मृक्ष) ।
 पारिजात । ११ (दिव्यपुष्प) ।
 पारिलेयक । ७५ (में १०वा वपावास), १०३
 (में रक्षित वन-ड), १०८, १०६ (भद्र-
 शालके नीचे) ।
 पात्तो । ८६ (मूलत्रिपिण्ड) ।
 पावा । ३७६, ४८१ (म निर्गठ नातपुत्र का
 मरण), ४८७ (पड़रौनाके पास पपडर,
 जि० गोरखपुर में सुन्दरमारपुत्रका भात्र-
 वन), ५३५ (से कुमीनारा ६ गव्युति, ३
 योजन), ५४६ (के मल क्षत्रिय) ।
 पावेयक । ५६० (पश्चिमगाले दश) ।
 पापाणक चैत्य । (गिरफ) । ३८४ (मगधमें) ।
 पिनिग्य । माणवरु । ३८४ (प्रदन) ।
 भारद्वाज-पिंडोल- । ८२, ८३ (प्रातिहार्य-
 प्रदर्शन), ४६९, (जन्म—मगध, राजगृह,
 ब्राह्मण) ।
 पिप्पली । ४२, ४४ (महाकाश्यप) ।
 पिप्पलीधन । (वतमान पिरिया, रमपुरवाके
 पास, स्टेशन तरकटिया गज B N W
 Ry, जि चपारा), ५४६ (के मौर्य-
 क्षत्रिय) ।
 पियदस्सी । ५४७, (अशोक) ।
 पियन्तस । ५४७ (= पियन्स्मी = अशोक) ।
 पिलिन्दि वत्स्य । ४७० (कोमल, श्रावस्ती,
 ब्राह्मण) ।
 पिलोतिरु परिघ्राजक । १७० (वात्स्या-
 यन, श्रावस्ती) ।
 पुकसकुल । १८२ (नीचकुल) ।
 पुफकुस मल्लपुत्र । ५३० (आलार कालाम
 का शिष्य) ।
 पुष्पनाति । २१० (क प्रत्युद्गमार्थ १५
 योजन) ।
 पुराणक । माणवरु । ३७८ (प्रदन) ।

पुराणक श्रेष्ठी । १५२ (विद्यमारके राज्यमें) ।
 पुनर्वसु । २५४, (अश्वजितरा साथी, की-
 दागिरिवासी), २५५ ।
 पुराण (स्थविर) । ५८० (का संगीतिके पाठ
 को १ मानना) ।
 पुराणस्थपति । ४०६ (प्रमेनजितरा हाथी-
 गान्), ४७९ ।
 पुष्य (स्थविर) । ५७६ (मिहल) ।
 पुरण । १५० (मेंडफका दाम) ।
 पूर्ण । ३७५ (गारि-शिष्य) ।
 पूर्ण । ४०२—४०३ (आयुष्मान्) ।
 पूर्ण काश्यप । ४६० (तीरकर), ४६०
 (अत्रिवादी), ५५० (मर्षी) (देखो
 काश्यप, पूर्ण-) ।
 पूर्णजित् । २७, २८ (भिक्षु, यश-महाय) ।
 पूर्णमन्त्रायणीपुत्र । ४४४ (धर्म कथिक),
 ४६९ (जन्म शाक्यदेश, कपिलवस्तुके
 पास ट्रोणस्तु ग्राम, ब्राह्मण) ।
 पूर्णवर्द्धन । ३२६ (विनास्याका पति मृगारका
 पुत्र) ।
 पूर्णा । १४—१५ (मुजाताकी दासी) ।
 पूर्णाराम—३३८—३४० (निमाण), ३३९
 (हत्थिनल पामाद), ३४० (मोदरया
 वन तत्त्वाग्रधारक), ३४९ (में भगवान्
 का प्रथम वर्षावाम) ४१० (देखो
 श्रावस्ती) ।
 पोक्तरसाति (ब्राह्मण) । २०३ (उक्कटा-
 वासी), २१० (इच्छानगल समीप),
 २११ (जीवनी) ।
 पोदुपाद । १८९—९८ (को उपदेश),
 १९३ ।
 पोतलिय (गृहपति) । ५६—५१ (आपण,
 अगुत्तराप, को उपदेश) ।
 पोसाल । ३७० (गारि शिष्य), ३८३
 (प्रदन) ।

पोष्करसाति । २१८ (जीवनी) । २२३
(दशरथागत), २३४ (बुद्धशरणागत)
(देखो पोक्तरसाति) ।

प्रकरण, सात-। (अभिधम्म, ५७६, देखो अ
भिधम्म पिटक) ।

प्रबुधकात्यायन । [पञ्चकूचायन ४तीय-
वर], ८२ ९१, ९२ (गणाचार्य तीर्थवर
६), (द्रव्यो पञ्चकूचायन), (श्रावस्मो
असत्कृत), ३६०, ३६२ ।

प्रजापति । २०६, (वैदिक देवता) ।

प्रजापती गौतमी महा—। ७६ (दुस्सदान),
७८, (प्रमज्या वाचना), ७९ (आ
गुरुधर्म), ८० (प्रमज्या) १०७ ।

प्रतिष्ठान । [पतिष्ठान], ३७६, (अलक
माहिप्सताथे वाच) ।

प्रत्यन्तदेश । १ (क्षीमान्तदेश) ।

प्रद्योत, चड—। ४८, ४९, (काचनवन विहार),
३०३ ३०४ (पांडुरोगी, जीवककी चिकि
त्सा), ३०५ (जीवककी वर), ४३३
(उदयनरो पञ्चना, कन्या विवाह) ।

प्रपात-पर्यंत । २९४ (कुररघर अर्वातीमें) ।

प्रयाग प्रांतष्ठान । [पयाग पतिष्ठान] ११४
(द्वाहावाह) ।

प्रसेनजित् । कोमर । ८६, ९१ ९२
(परीक्षण, उपासरु), १५३
(विश्वामरका भगिना पति) (पोष्कर-
सातिका ग्राम-दायरु), २१९-२१
(उपासरु), २३३, २३४ (दशरथागत),
३०७ (का माई काशिरा), ३२७
(कोसलराज विशालाक्ष ध्यात्ममें), ३७३
(अभिषेक, वावरि विद्यागुर) (कोसल
राजका, न्याय) ३६१ (अंगुलिमाल डाक),
३६७, ३६९ (सेवरु), ३८८ (राजका-
रामनिमाण), ९९३ (मल्लिकाके कन्या

उत्पन्न होसे मित्त), ३९७ (जटिल,
परिवाज्य आदिकी प्रतीसा), ३९०
महिष्को वाना), ४०१ (कन्या
वजिरी, रानी वासभरपत्तिवा, पुत्र विह्वलभ,
काशिरामल अधिपति), ४२३ (उज्जु
काम विह्वलभके साथ), ४३६ ४४१-४२
(आनन्दसे उपदेश श्रवण), ४३९
(अज्ञातशत्रुसे पराजित), ४४० (वि-
जयी), ४७३ ७६ (शिक्षा, राज्यप्राप्ति
शुलभलको मरवाना, किराणिका वि
श्रामघात), ४७७ ८० (भगवानमें
प्रेम) ।

प्रारम्भिक, मस—। ८९ ।

प्राचीनक । १६३ (पूर्ववाग् मस) ।

प्राचीन वंशदाव । (देखो दाव, प्राचीन
वंश—), २३० (में जन्मप्राप्त) ।

प्रातिहार्य, देवारोहण—। ८९ (सराधर्म) ।

प्रातिहार्य, यमक—। ८६, ८८, ९० ।

प्रागारिक आग्रधन । (देखो नालदा) ।

प्लक्षगुहा । २६० (कौशाम्बीके पास, पमोमा
पहाडमें) ।

फुस्म (पुष्य) देव । ६७५ (सिंहल
मन्थिर) ।

उनारम । (द्रव्यो वाराणसी) ।

वनारसी घन्त्र । १०७ ।

वधुलमल्ल । ४७३ ७६ (प्रसेनजित्का
सहपाठी और कोसलसेनापति, राजापासे
शिरान्तेद) ।

वाराक लोणकारगाम । ९९, (कौशाम्बी
से पारिषेयकर रास्तेमें) ।

वालुकाराम । ६६४ (वंशालीमें) ।

वावरि । ब्राह्मण । ३७५, (के दिव्य १६—
अजित्, तिष्य मेत्रय, पूर्ण, मेत्रय, धवनरु,
उपशिर, नन्, हेमरु, मोदय्यकप, दूमय,

जातुक्णा, भद्रायुध, उदय, पोसाल, मोघ राज, पय), ३७३-३७७, (प्रसेनजित्का पुरोहित गुर, पतिद्वानमें) ।

विंवसार । १३ (प्रथमदर्शन), ३६ (मागध श्रेणिक), ३६ (उपासक), ३७ (वेणुनदान), ६८, ६९, ८३ (प्रा-तिहार्य), ८४ (तीनसो योजन बड़े, अङ्ग-मगधका राजा) । १६३ (प्रसेनजित्का भगिनीपति), २३१ (बुद्धके साथ सुख विहारी), २३२ (कुट्टकका ग्राम दायक), २३३, २३४ (शरणागत), २६३ (शरणा-गत), २९७, ३०० (भगदर रोग), ३०९ ३११ (अभिषेकके वफाकी प्रतिज्ञा), ३२५, ४३९ (वज्रपुर, महाकोसल), ४५० (मृत्यु), ४६८ (अजातशत्रुका मारना स्वाकार) ।

बुद्ध । ४५७ (हाजिर-जगामी), ३८९ (सुद्धक), ३३८ (रोगि मुधूपा), २८५, ५७४ (विमज्जवादी), २६७ (भावकोसे मत्तृत्त), ५४१ (अन्तिमवचन), [का साम्यवाद—७७ (मधवादी), २८४ (अ-विभाज्य), ५२८ (सहयोग)], ४१० (शरीरमें जराचिह्न), ४८२, ५३३ (के साक्षात्कृत ८ धर्म), २४३ (प्रसंता) ।

बुद्धदाठा । ५४६ ।

बुद्धनिर्माणकाल । ५६९, ५७७ (अत्रात-शत्रुके आठवें वर्षमें) ।

बुद्धस्तूप । ५४६ ।

बुद्धघोष । (आचार्य, अट्ठक्याओके रच-यिता) ।

बुद्धरक्षित । ५७८ (सिंहल स्थविर) ।

बुली । ५४५ (अलङ्कारके), ५४८ (बुद्ध-यातुमें माग) ।

चेडदांपक ब्राह्मण । ४४५, ४४८ (बुद्ध-धातु मागना) ।

बोधगया । ५३७ (गयासे ७ मील दक्खिन, रेखो उररेला) ।

बोविमड । १९ (बोधगया मंदिरका हाता) ।

बोधि-राजकुमार । ४२२-२२ (भर्गमें, सुसुमार गिरिमें), ४२२ (प्रद्योतका दोहिन, उदयनका पुत्र) ।

बोधिवृत्त । १६ (बोधगयामें), १७, १९ (उररेलामें, मेरजराके तीर), ५७९ ।

ब्रह्मकार्यिक । २०३ (देवता) ।

ब्रह्मचर्य ब्राह्मण । २०४ ।

ब्रह्मदत्त । ५५० (सुप्रिय परिव्राजकका शिष्य, बुद्ध-प्रशमक) ।

ब्रह्मलोक । २०८ ।

ब्रह्मलोकगामिनी अनिपद् । २०८ ।

ब्रह्मा । २०४, २०५, २०७ (गुण), २०६ (की सलोक्ता) ।

ब्रह्मा, महा-। ३, ८९, (देवावरोहण), ९० (छत्रधारी) ।

ब्रह्मा सहापति । १९, २० ।

भडगाम । ५३३, ५३४ (वेशालीसे कुपी-नाराके शस्तेपर प्रथम पड़ाव) ।

भट्टस्ताल । ५७७ (ताम्रपर्णितीपर्म प्रचारक) ।

भट्टाबुध माणव । ३८२ (प्रश्न) ।

भट्टिय । (पञ्च-वर्गाय) । ५६ (उपमपट्टा) । १३९ (श्रेष्ठि-पुत्र), ३३५ (आनन्दके साथ प्रव्रजित), ४६९ (कालिगोधापुत्त, शान्थ, कपिलरुत्त, क्षत्रिय) ।

भट्टिय, लकुलपट्टक-। ४६९ (जन्म कोमल, आवन्ती, धनीकुल) । ५० (शाक्यराज), ५१ (अनुविद्यामैं), ५२, ५३ (प्रव्रज्या, अहोसुप) ।

भट्टिया । १८१, १८२-१८४ सुगेर, (में जातियावन) ३३९ ।

भट्टकटप । १४१ (में सात बुद्ध) ।

भद्रप्रतिका । ३०४ (प्रद्योतकी हथिनी)
भद्रवर्गीय । (तीस) । ३० (की प्रज्या) ।
भद्रा कात्यायनी । ४७१, (आस्य, कपिल
वस्तु, राहुलमाता, सुप्रद्विज्ञास्य-पुत्री)
भद्रा कापिलायनी । ४१ (महाकाश्यपकी
पूर्व भाया), ४२, ४३, ४४ (मौद्र्य), ४७१
(जन्म मन्त्रदेव, शाकला, महाकाश्यप-
भाया) ।

भद्रा फडलकेशा । ४७१ (मगध, राजगृह,
श्रेष्ठिकुल) ।

भद्रायुध । ३५५ (बावरी शिष्य) ।

भरद्वा कालाम । २५० (कपिप्रस्तुमें भगवान्
का पूर्व गुरभाई), २५१ ।

भरद्वाज । १५७ (मन्त्रकता, ऋषि), २०४,
२१८, २२४ ।

भर्ग [मग] देश । १३ (निममें सुसुमारगिरि)
४१८, ४७२ ।

भरिलक । १८ (तपस्विका भाई, उरषलामें),
१९ (उषामर), १७० (जन्म—असितजन
नगर कुटुंबिन्नेह) ।

भारद्वाज । कापधिक- २०४-२२७ (ओष
सादम) ।

भारद्वाज । भागवक । २०३ (सारुक्ल शि
०५, ह्मन्त्रातगन्त्रासा, मनमाकमें), २०४,
२०९ (उषास्र) ।

भारद्वाज मुद्रिका । ३८९-४१, ३९१
(अहण) ।

भृगु । २१ (अनूपियामें प्रवर्जित) २३
(नल्फपानमें), ९९ (बालकृष्णकार-
गाममें) १६७, (मन्त्रज्ञां कृषि), २०४,
२१८, २२४ ।

भैरवकलापन । ११० (सुसुमारगिरिमें),
४२१, (दसो सुसुमारगिरि) ।

भोगनगर । ३७, ५३४ (भैरवामें कुम्भीपारा
क रास्तपर दृग्ग्राह पटाव, म नानेन्द्रैत्य) ।

भोज । ९ (दवल) ।

भयखलीगोशाल । (सम्करागोशाल) ।
८२, ९१, ९२ (तीथकर), २६५
(आक्कोसे असत्कृत), २६५ (भाजी-
वर्गेके तीन नियाताओम), २६६,
४६०, ४६२ (अहेतुवाती), ५४० ।
मर्यादेव । राजा । ४०४ (मिथिलाका
धर्मराजा) ।

मर्यादेव आन्नजन । ४०४ (मिथिलाम)
मगध । (देश) । १९ ३१ (म उरषेला),
३९, ४१ ४२ (में महातीर्थ ग्राम । ५०
(म गिरिपत्र), ९५, २३२ (में द्वाणुमल
प्राज्ञाण ग्राम), २४९ (क प्राज्ञाणदूत
वशाहीम), ३८४ (में वापाणन चैत्य),
४०७ (पटना, गया जिन्ने, हनारावागदरा
कुठ भाग), ४६९-७० (में राजगृह,
उपसिन्धग्राम, कोल्लिग्राम, महातीर्थ-
ग्राम), ४७० नालकग्राम । ४७२ मच्छि-
कामड । ४७९ (में उरषेला सेनानी
ग्राम) । (में ४७२ बलुनटरी नगरम) ।

मगध-श्रम । ८४ (३०० योजन) ।

मगधनाला । (= १ सेर) । ४२, ४३ ।

मगधपुर । ३७९ राजगृह ।

मगधमहामारय । ३०९ (वर्षकार प्राज्ञाण),
३१०, ५२०, ५२७ (सुनीय, वर्षकार) ।

मकुलकाराम । ४०३ (सुतापरातमें) ।

मकुल पर्वत । ७५, ८९ (पृष्ठ वपाशाम) ।

मच्छिकुका मड । (मगधम) । ८७ (में
चित्त गहपति) ।

मच्छिमुनिकाय । (दसो ग्रंथसूरी) ।

मच्छिमुडवग्रामणी । ५५७ ।

मच्छिस्म परिचराजक । २४७ (कोणाम्भाम)

मयुरा । (मयुर) १३७ ।

महकुच्छि मिगदाय । [= मन्त्रकुलि मृग
नगर] ८२१, ९३३ (राजगृहम) ।

मद्रदेश । ४१ (खियोका आगार), ४७१
(म शाकला = सागल) ।

मध्यदेश । १ (सीमा) ।

मध्यम जनपद । १८८ (कोसी-कुस्येन,
त्रिभुव-हिमालयके बीचका देश, यही
मध्यदेश, मध्यमंडल भी) ।

मध्यमंडल । १४४ (६०० योजन) ।

मध्यम स्थविर । ८७७ (हिमवान्मे
प्रचारक) ।

मध्यातिक स्थविर । ५७२ (महेन्द्र
स्थविरके उपसपडाचार्य), ५७६ (कदमीर
गधारमें प्रचारक) ।

मनसाकट । २०३ (कोसलमें अचिरवतीके
दक्षिण किनारे), २०८ ।

मन्ना । ५ (देवज) ।

मदाकिनी । (दह) । १५६ ।

मन्दार पुष्प । ११ (दिव्य पुष्प) ।

मन्दिर । ३७६ (कुसीनारा और पावाके बीच) ।

मल्ल । ५९ (में अनूपिया) । ४८७ (में
पावा) । ५४६ (में, पावामें बुद्धवातु-
स्तुप) । ४०६ (कोसलकी सीमा पर, गोर-
क्षपुर मारन जिलेके अधिकांश भाग) ।
४०० (अनूपिया) । १६७ (में कुसी-
नारा) । ५३८ (का वासिष्ठ गोत्र) ।
५४०, ५४६ (कुसीनारा) । १६७
(यत्तमान संधार जाति) ।

मल्लपुत्र, द्रव्य- । ४७० (मल्ल, अनूपिया
नगर, क्षत्रियकुल) ।

मल्लिना । ३९३ (रानीको कन्या उत्पत्ति) ।
३९९ (उद्धमें अनय प्रमत्त) । ४७५
(उन्मुल मेनापतिकी भार्या) ।

मल्लिकागम । (देखो तिंदुकाचौर) ।

महर्द्धि । २०६ (देवता) ।

महादेशल । ४३९ (प्रसेनजितका पिता,
त्रिभुवनका धर्म) ।

महातीर्थ [महातिथि] । ४१ (मगधमें,
महाकाश्यपका जन्मग्राम), ४६१ ।

महादेव स्थविर । ५७२ (महेन्द्रके
आचार्य) । ५७६ (महिसक मंडलमें
प्रचारक) ।

महानाम । (पंच वर्गीय) । २५ (अर्हत्व) ।

महानाम शात्रु । ५९ (अनुसुद्धका भाई) ।
२२८, २३१, २५०, २५१, २५२, ४७२
(शाक्य कपिलस्तु, आ० अनुसुद्धका
ज्येष्ठ भ्राता), ४७२, ४७४ (की दासी
पुत्री गसमगत्तिपा, प्रसेनजितकी महिषी,
विह्वलकी माता) ।

महापुरुषलक्षण । १८० (सामुद्रिक) ।

महाप्राभिवृक्ष । ३ (बोध गया, जि०
गया) ।

महामंडल । १४४ (९०० योजन का) ।

महारक्षित । ५७७ (योनकलोकमें प्रचारक) ।

महाराजिक, चातुर- । ३, १९, २५३
(४, दवता) ।

महाराष्ट्र । ५७७ (में महाधर्मरक्षित
प्रचारक) ।

महाति । २४५ ४८ (ओद्दवलिच्छवी) ४७३
(लिच्छवी-कुमार प्रसेनजित, धुल्लमहाका
महापाठी, वैशालीमें आचार्य) ।

महाजग्ग । (देतो ग्रथ सुत्री) ।

महाजन कूटागारशाला । ७१ (बरग,
जि० मुजफ्फरपुर), २४५, २४८ (वैशाली
में), ५३३ ।

महाविजित राजा । २३४-२३८ ।

महागल माराक । ८८ (दवलोकमें एक
चंगला) ।

महासीन । ५७६ (मिहल-स्थविर) ।

महिसक मण्डल । ५७ महेश्वरके आस
पासका, विंश सप्तपुत्रके बीचका देश) ।
मही । (गंटका) । १५६ (उद्धम) ।

महेन्द्रकुमार । ५७१ (अशोक-पुत्र),
५७२ (उपाध्याय मोग्गलिपुत्तित्स,
आचार्य महादेव, उपसंपदाचार्य मध्या-
तिक), ५७६ (ताक्षणीमे प्रधाराय,
पाटलिपुत्रसे शिक्षणागिरि, विदिशा
हा, उत्पत्ति उज्जैनमें), ५७८, ५९९
(अशोकके अभिलेखके अठारहवें वर्षमें
लेखमें) ।

मार्गद्विष ब्राह्मण । ११५-११६ (संवाद,
अर्हत्त्व),

मातगारण्य । ४४१ ।

मातला । (देखुत्र) ९० ।

मातुगिरि । ४०३ सूनापरातमें ।

मायादेवी, महा—। १,८८ (तुषितसे त्रय
स्त्रिंश), ९०, ५४७ (का मूर्ति) ।

मारकन्यार्य । ११६ ।

मारघोषणा । १६ ।

मारयुद्ध । १६

मार-प्रचना । ११३, ११४ ।

मार वशर्तीदेव । ११ ।

मारलोह । ३१७ ।

मार । (शिलावतीमें) २९३ ।

मारसेना । १६ ।

मापक रूप । ५५६ (मिका, मामाभर का) ।

महिष्मती । ५७५ (महेश्वर, ईश्वर राज्य) ।

मिगत्र [मृगयु] । ३५७ (युद्धकोटितवासी
राजमाली) ।

मिथिला । ४०४ (महादेव आश्रममें
मगगन्), ४०४ (विदेहमें) ।

मिश्रनपर्यंत । (= चैत्यपर्यंत) । ५७७ अनु
राघपुरसे पूव । ५७८ (अम्बस्थल,
मिर्हिलक, भीलीन) ।

मुकटप्रभनचैत्य । ५४५ (कुमीनारामें),
५४६ ।

मुचलिन्द नागराज । १८ ।

मुचलिन्दवृक्ष । १८ (बोधिमडपर) ।

मुटसी । ५७८ (सिंहलग्रह) ।

मुड । राजा । ५७८ (अनुराधपुत्र, मगधनर)

मुडक, महा—। ४६१ (उदयना पुत्र और
घातक) ।

मृगदात्र, कण्णत्थलक—। ४२३ (उज्ज
कामें) ।

मृगदाव, भेसरुलावन—। ९३ (मुसु
मार गिरिमें), ४१२, ४२१ ।

मृगलडिक समण कुत्तक । ३१७ ३१८ ।

मृगारश्रेष्ठी । ३०५ (आबस्तीका श्रेष्ठो),
३२८, ३२९, ३८७ ।

मेप्रिय । २०४ ०६ (उपस्थाक, स्व-उद्गता),
३३५ ।

मैडकगृहपति । १०१-१२, (महिया
वासी), १५३ ५४, ३२६ (धनत्रयका
पिता) ।

मेतलूप । [मेतलूप] । ४७३ (शाक्य-देशमें),
४७७ (नगरकमे ३ योजन) ।

मेत्तशु, माण्डवक । ३७९ (प्रभ) ।

मेध्यारण्य । ४४९ ।

मेधरू । ३७५ (बाघरि शिष्य) ।

मैत्रायणीपुत्र, पूर्ण (देखो पूर्ण मैत्रायणी
पुत्र ।) (= मतानी पुत्र), ३३५
(आनन्दके गुरु) ।

मोग्गलान । (दोनो मौद्रल्यावन) । २५४
(से आश्रयित पुनर्मुक्ता द्वेप) ।

मोग्गलिपुत्त तिरस । [मौद्रलिपुत्त तिरस] ।

५६८ (सिगवसे प्रदनेत्तर), ५६९,
(अशोकके गुरु, महिदेव भी), ५७१,
५७२ (मद्रुवके उपाध्याय, अहोमग
पञ्चपर), ५७३ (आह्वान), ५७४ (उस
समय धृष्ट), ५७५ (कथात्रयपुष्पकण
निमाण), ५७८ (सिगत्रशिष्य) ।

मोघराज । (बाघरि शिष्य), ३७५ ।

मोघराज, माण्डरु । ३८३ (प्रश्न) ।
मोरिय । (देखो मौर्य) ।

मौद्गलि-ब्राह्मण । ११७ ।

मौहल्यायन । ३८, ३९ (सरिपुत्रसे पुन,
उपसंपदा), ५६, ५८ (राहुलके कापाय-
दाता), ८० (चंदनगाठ), ८७, ८८
(धर्मापदश करते रहना), ८९, १०७
(कोसंबरलह), १०७ (१२ प्र शिष्यामें
द्वितीय), ३३६ (उपस्थाक्पद याचना),
३२० (पूर्वाराम निमाणके तत्त्वाधायक),
४०९, ४२९ (देवदत्तके महताई मागनेके
समय), ४३३ (देवदत्तके पास), ४३४,
४४४ (महर्द्धिक), ४६० (देवदत्तकी
परिपत्र कोठना), ४६९ (जन्म—मगधमें
राजगृहके पास कोलितग्राममें), ४७३
(अश्रावक), ५१८ (का परिनिर्वाण
बगद्वारा अगहन छु १५ को), ५१९ ।
मौर्य । ५४६ (पिलपलीवनके क्षत्रिय, बुद्धधातु-
प्राप्ति) ।

यमदक्षि [यमतगि] । १६७ (रुत्रकतां
ऋषि), २०८, २१८, २२४ ।

यमुना नदी । १५६ (उद्गम) ।

यजन (दश) । १८१ (रूसी तुर्किता या
यूनान । दग्गे योन) ।

यश (वाराणसी) । २५, २६ (अहत्त्व)
२७, २८ ।

यश-पिता (श्रेष्ठ) । २५, २६ (उपासक) ।

यश-माता । २७ (उपासिका) ।

यश काकड-पुत्त । ५५९ (मिश्र), ५५६-
५५८ (वेशार्गमें अविनय रोकना),
५६३ (पापेयकके प्रतिनिधि) ५७५ ।

याम (देवता) २५३ ।

युगधर । ११ (पर्वत), ८७ ।

योनक धर्म रक्षित । ५७७ (अघरातमें
प्रचारक) ।

योन-कलोका । ५०७ (बाह्यीक, विरिया, मिश्र,
यूनान आदिमें महारक्षित धर्म प्रचारक) ।

रक्षित वन-खड । (देखो पारिलेयक) ।

रक्षित (स्थविर) । ५७६ (वनवासीम
प्रचारक) ।

रथकार । १८२ (नीचकुल) ।

रथकारदह । १५६ (हिमालयमें) ।

राग । ११६ (मार-कन्या) ।

राजकाराम । ३८८ (श्रावस्तीमें) ।

राजगृह । १३ (अनुपियासे ३० योजन),

३५, ३८, ४४, ४५, ४६, ५३, ५४

(वेणुवन), ६५, ७५, ७१, ७५ (द्वितीय

चतुर्थ वर्षावास) ८२, ८४ । ५५, ६५,

६८ सीतवनमें अनाथपिंडक । ८२, ८३

(श्रेष्ठोका चन्दन-गाठ) । ९३ (में गिरग

समजा) । ६५ (अबलट्टिका) । ६८

(शिव-द्वार) । ७५ (द्वितीय, चतुर्थ,

१७वा, २०वा वर्षावास) । ३३० (म

गृध्रहृद, ऋषिगिरि, कालशिला) । २६५

(में १७वा वर्षावास, वेणुवन) । २६५

(मोर निवास, परित्राजकाराम) । २८०-

८९ (वेणुवन) । ३०१ (श्रेष्ठ, नेगम),

३०८, ४२८, ४४५ (वेणुवन), ४३१

(नालागिरि हाथी) । ४४४, ५२०,

५२५ (गृध्रहृद), ४५९, ४६१

(जीवकका आश्रयन, नगर और गृध्रहृदक

बोच), ४६१ (में ३२ द्वार, ६४ छोटे

द्वार), ४६९-४७० (में उत्पन्न महा-

श्रावक—पिंडोल मारदाज, सुह पथक,

महापथक, कुमार कादथप, राघ,

धम्मदिग्धा, शृगालमाता, जावक कामार

शृत्य, उत्तरा नन्ध-नाता), ४७६,

४८० (में नगरसे बाहर प्रसेनजित्का

शृत्यु), ५२२, ५३२ (में गृध्रहृद, चोर

प्रपात, वमारगिरिकी बगलमें कालशिला,

सीतवनम सर्पशौटिकपञ्चमार, तपोदाराम,
वेणुवन जीवकन्यवन, मद्रकुक्षि भृग-
दाघ), ५३८ (महानगर), ५४६
(कुमीनारासे २५ योजन), ५४८
(में प्रथम संगीति), ५४९ (प्रथम
पाराजिक, टि० पाराजिक, वेणुवन)
५५२, ५५७, ५५८ । ५४६ (बुद्धस्तूप)
५४६-४७ (पूर्व दक्षिण भागमें धातु-
निधान), ५६४, ५६५ (में सुत्त निर्माण),
५७७ (को घेर श्लिङ्गागिरि) ।

राजगृहक श्रेष्ठी । ६८ (अनायपिंडरुका
दहनोद) ।

राजान्य-कुता । १८२ (क्षत्रियसे पृथक्) ।
राजमाता-विहार-छार । ५३६ (अनु
राधपुरमें) ।

राजागार । ५५० (अवलट्टिकाम राजगृह
नालन्दाके बीच) ।

राजागारक । ५२५ (अवलट्टिकामे) ।

राजायता वृक्ष । १८ (बोधिमठपर) ।

राध । (माक्षण) । ५३ (सारिपुत्र-शिष्य) ।
३३५ (बुद्ध-उपन्यास), ४७१ (जन्म-
मगध, राजगृह माक्षण) । ४७१ ।

राम । ५ (देवज) ।

रामग्राम । राज्य । ११ (शाक्योंक बाद
जोगिय, उनके बाद यह), ५४६ (नागा
से पूजित बुद्धघातु, जो पीछे चङ्का
अपुराणपुरके चैत्यमें गई), ५७६ (के
कोलिय क्षत्रिय) ।

राम्पपाल । ३५३ (धुल कोटितके अग्रकुलि
कका पुत्र), ३५३ (प्रयज्यार्थ शासन),
३५४ (अदत्त), ४७० (जन्म बुद्ध, धुल
कोटित, वदय) ।

राहु असुरेन्द्र । ८५७ (ग्रहण) ।

राहुत । ९ (जन्म एक महादेव होनेपर
शभिनि-क्रमण), ८७ (सारिपुत्र शिष्य),

५८ (के मोक्षल्यायन, काश्यप आचार्य),
५९, ६५-६७ (को उपदेश), १०७ (१२
आवकोमे १२३), १८५-८७ (भावना-
लक्ष), ४७० (जन्म—शाक्य, वपिलवस्तु,
सिद्धार्थ कुमारके पुत्र) ।

राहुलमातादेवी । ३, ७, ८, (देखो भद्रा-
कात्यायनी), ५६, ५७ ।

रुद्रग्राम । ३११ (का कहापण) ।

रेवत । ६३, (नलम्पानमें), १०७ (१२म
९वें), ४०९ (जैतवनमें) ।

रेवत-खदिरवनिय । ४७० (मगध, नाल्द
ग्राम, सारिपुत्रके अनुज) ।

रेवतमिथु । ५५९ = (अहोर्गम पक्षपर,
मारष्य, मकाश्य, कान्यकुब्ज, उदुम्बर,
अमरपुर, ओरम, जातिम) ५६१, ५६२,
५६३—५६६ (द्वितीय संगीतिमें सुचतुर
मिथु), ५६३ (पारैयकोके प्रतिनिधि) ।

रेवत, ऊसा— । ४७० (कोसल, आयस्ती,
महानागकुलमें) ।

रोजमल्ल । १६७ (कुमीनाराम), १६८
(उपासक) ।

रोहण । ५७६ (मिहल स्थविर) ।

रोहिणी नदी । २५१ (शाक्य-कोलियकी
सीमा) ।

महापुरुष लक्षण । २१० (= सामुद्रिक) ।

लखन । ५ (देवज) ।

लटुकिन्ना । २५० (= विहिया) ।

लिच्छुरी । ३१८ (गण राजा), ४७५
(चतुर्मे युद्ध), ५०० (-गैमरशाली,
गगराता), ५२५ (५०५ वि पू में
पवन), ५३० ५३१ (प्रपञ्चिदशवर्षकी
भांति), ५४५ ४६ (साधिय, धातु
प्राप्ति) ।

लुम्बिनी । (स्मिन्मर्द स्थान नोतनरा,
B N W R), नैपालकी तराई)

५३७ (दर्शनीयस्थान), २, ३ (कपिल-
वन्तु देवदहने बीच) ।

लोकधातु, साहसिक- । ११ (सहस्रनखाड
समुदाय) ।

लोकायत । १८० (शास्त्र) । २१० ।

लोहग्रामाद् । ३९७ (अनुराधपुर, लंकामें) ।

घज्जली । स्थविर(कोसल, थावस्ती, ब्राह्मण) ।

वनकुटी । ७४१ (पत्त, काशाम्बी, वेदय) ।

घग्गमुदा । ३१७ (वेशालीके पास)
३१९, ३२१, ५५० (नदी) ।

घग्गीस । ४७० (कोसल, थावस्ती, ब्राह्मण) ।

चच्छुगोत्त-परिव्याजक । २४८—४९
(गंगाछीमें) ।

चजिगकुमारी । ४०१ (प्रसेनजित्की)
कन्या) ।

वज्जि-धर्म । ५२१ ।

वज्जिपुत्तक भिक्षु । ४३३ (५०० देव
वत्तके साथ चोगये थे) ।

वज्जिपुत्तक । वेशालिक । ५५८, ५५९,
५६०, ५६३ ।

वज्जियमहित । (गृहपति) २८५ (चंपामें)

वज्रपाणि । २१४ (वक्ष) ।

वज्जी । देश । १४७, ३१२, ३१९ (मे
हुमिक्ष) । ४०७ (मल्लकी सीमापर,
चंपारन, मुत्तफरपुर, जिन्ने, दमंगा
साराके कुछ भाग) । ४७२ (मे वेदाला,
हस्तिग्राम) । ५१९ (मे उक्काचेल), ५२०
(के उच्छिन्न करनेका अजातशत्रुका
हगदा), ५२१ (के राज्याधिकारी), ५२१
(का दसाक) । ५२७ (का रोकनेके
जिय पाटलिपुत्र नगर बसना) ।

उट्टगामिनी । ५८० (सिंहलेश्वर) ।

वत्सदेश । ४७१, ४७२ (में काशाम्बी) ।

वन कोशाम्बी । ३७६ (काशाम्बा और वि-
दिशाके बीच) (दसा, जि सागर) ।

वनवासी । ८७६ (उत्तरीकनारा जिला) ।
वत्स । (पंचवर्गिय) २८ ।

वरुण, महा- । ५७० (न्यधोधधामनेर के-
गुरु, स्थविर) ।

वर्षकार ब्राह्मण । ३०९ (मगधमहा-
मात्य), ३१०, ५२०, ५२३ (वज्जियोका
विनिश्रयमहामात्य), ५२८ ।

वर्षा-चलाहक । ८५ (देवपुर) ।

वशिष्ठ । २०४ (मंत्रकर्ता ऋषि), २१८,
२२४ ।

वशवर्ती देव । ११ (मार) ।

वहुपुत्रक चेत्य । ४४, ४६ (नालदा और
राजगृहके बीच, मिलाव), ५३३ (वै-
शालीमें) ।

वातउलाहक । ८५ (देवपुर) ।

वात्स्यायन । १७०, (वत्सायन, पिनेनिक
पारिव्राजक) ।

वामक । १६७ (मंत्रकर्ता ऋषि), २०४
२१८, २२४ ।

वामदेव । १६७ (मंत्रकर्ता ऋषि) २०४,
२१८, २२४ ।

वाराणसी । २१ (ऋषिपतन मृगदाव),
२२, २३, २५, २९, ५५, ७५ (प्रथम
वर्षावास), १४४ (पुराना बनारसराजघाट
का बिला), १४५ (गोयोगइक्ष), २७०
(कपासके वन मदाहूर), ३०३ (श्रेष्ठा)
३२५, ४७१ (में उरपेल काश्यपका
जन्म) ४७२ (में सुप्रिया), ५३८
(महानगर) ।

वाशिष्ठ । ५४२ (कुशीनाराके मल्ल), ५४३ ।

वाशिष्ठ । माणत्रक । २०३ ९ (पोत्तल
सर्पिका शिष्य, मनमाकटमे), २०९
(उपासक) ।

वाहिय दारुचीरिय । ४७० (वाहिय रात्र
= सतलन व्यासना दामा, ।

चाहियराष्ट्र । ४७१ (बाहीर, सतरज,
व्यापके जीवका प्रदश) ।

चाहीक । ४४३ (देनोगरिय) ।

वासभ-सत्तिया । ४७४ (महानाम शास्य
को दासीपुत्री), ४०१ (प्रसेनजिपुत्री
रानी) ।

वासभगामिक । [वार्यभगामिक] । ०६३
(द्वि० संगीतिमें प्राचीनक-प्रतिनिधि) ।

विजयकुमार । ०७७ (ताम्ररर्गाका प्रथम
राजा) ।

विहूडभ सेनापति । ४०१ (प्रसन्नजिपुत्रा
प्रियपुत्र), ४२४, ४२६, ४७३ (वामभ
सत्तियाका पुत्र), ४७०-७६ (पितामे
राज्य छीनना शास्य-घात, मरण), ४८०

(पर भजातवानु चलाईकरना चाहता था) ।
त्रिदिशा । ३७६ (वेपनगर, मिला,
गालियार राज्य), ५७७ (वेरिस) ।

त्रिदेहदेश । ४०४ (म मिथिला) ।

विनयपिटक । में पय—विमग (पाराजिक,
पाक्षित्ति, खडक (महावग, चुलवग),
परिवार । ०६६ (लुट्टाम) ।

विनयसुत्तु । ५६० (= खेत्तक) ।

विनयसगीते । ०२६ (सत्त शक्ति) ।

विहुसान राजा । ५६० (के अशोक तिपक
मार आदि १०० पुत्र, माहसगभक्त), ५७०

(काजगपुत्र सुमन), ५७८ (राज्यकाल) ।
त्रिध्याट्टी । ५७८ (गथासे ताम्रलिखिते
शस्तेमें) ।

विपश्यी [विपस्या] । १४१ (भद्रकल्पके
बुद्ध), १८० ।

विमल । २७, २८ (यदा सहायक, मिषु) ।

विगारता । १०८, १६२, ३२५, ३२७ (जन्म
आदि), ३२६ (पिता सावेतना श्रेष्ठो),
३३२ (मृगारजी माता), ३३८ ४०
(पूजाराम निमाग), ४०८ (नातीका मरण

गथा), ४३५, ४७२ (कोसलमें धावन्ती,
वैश्य) ।

त्रिध्वकर्मा । ८ (देवपुत्र), ५४७ ।

विश्वम् [पत्तम्] । १४१, १४२ (भद्र
कल्पके बुद्ध) ।

विश्वामित्र । १६७ (संन-कर्ता ऋषि),
२१८, २२४ ।

वीजक । ३१० (सुदिपका पुत्र) ।

वेणुकुल । १८२ नीचकुल ।

वेणुपुन (राजगृहमें) । ३७ (विजयमारका
दान), ४० (साधुत्त मोगगलानकी
उपसंदा), ४४ (मं मंघकुटी),
४५, ४२८, ५३३ (देखो राजगृह),
२८९ (कर्णगलामें मा) ।

वेद । १८०, ०९८ (चीन, २२४ (में प्रपेप) ।

वेदिशगिरि । ०७७ (महन्द्र-माताका
वनवाया विहार, वर्तमान साची) ।

वेरजा । ७० (म १२ वा वपावास), १३७
(म नरेणुविर्मद), १४१ (वपावाम
दुर्मिह) ।

वेरजक ब्राह्मण । २३०-४० (प्रभोत्तर
वपावाम), १४१ (वपावास निमग्रण),
१४३ (विस्मरण), १४४ (दान) ।

वेलुकटकी नगर । ४७३ (म उत्तरा नन्द-
माता, मगध-देशम) ।

वेलुगामक । ०३१ (वेदा लोके पाम
भगवान्का अन्तिम वपावाम) ।

वेदेह मुनि । ४६ (जानद) ।

वंमारगिरि । ०३३ (राजगृहमें, निमके पाम
कालशिला) ।

वेयाकरण । १८० ।

वैजाली । ७० (५६१ वपा कृष्णमार शाला) ।
७८ (प्रजापती-प्रमज्जा, महावाते),
७१ (वलाद, नि मुचपपापुर),
७२, ७५ ८०, ९३, १४४ (महावन), १४५,

३१२ (के नातिदूर कन्दक ग्राम) । १४८, १४९, १५०, १५१ (भट्टियाको), २४५, २४८ (में एकपुडरीक-परिभाज-काराम), २९७ (समुद्रिशाही, में ७७७७ प्रासाद) । ३१२ (राजगृहसे) । गौत-मरु-चैत्यमें त्रिचीवर-त्रिधान), ३१७ (त् पाराजिक), ३१९ (च० पाराजिक), ३७६, ४३३ (के बज्जिपुत्तक भिक्षु), ४७२ (का उपगृहपति), ४७५ (में अभियेक पुष्करिणी), १२३ (का ५२८ वि पू में पतन) - ३० (अम्बपाली घन), ५३२ (में चापाल-चैत्य), ५३३ (में सत्तम्भकचैतिय, बहुपुत्रक चैत्य, मारदद ०, चापाल०), ५४५ (के लिच्छवि क्षत्रिय), ५५० (में त्० चतुर्थ पाराजिक), ५५६ (में दशगस्तु), ५५६, ५५८, ५५९, ५६०, ५६२, ५६३, ५६४ (म बालुगाराम) ।

व्यजन । ३७६ (= लक्षण) ।

शक्र, देवराज । १२ (चूडा-महण), ८५, ८६, ८७, ८९ (देवावतरणम्) ।

शाफला । ४७१ (में खेमा और भद्रा कापि लायिनीका जन्म, मद्रदेश, म्यालकोट । । शाक्य । ६१ (अभिमानो), ५५ (जाति), ७६, २१२ (चंड), २५१ (कोलियोमे क्षागडा) ३७४ (इक्ष्वाकु सतान), ५४५, ५४६ (सुद्धधातु मांगना) ।

शाम्भुदेश । ४६९-७२, (में कपिलगस्तु द्रोग-वस्तु, कुंडिया, देवदह) । २०८ (में कपिलगस्तु), ४७३ (में मेतल्ल निगम), ४८१ (में सामगाम) ।

शाम्भुपुत्रीय श्रमण । ५५१ (यौद्धभिक्षु), ५५४, ५५६-५५८ ।

शाम्भु राज्य । ११ (के आगे कोरियराज्य, पित्त रामगाम) ।

शाम्भुवश । ४७६ (का त्रिनाश विह्वल द्वारा) ।

शिक्षा । ५६८ (= अक्षर प्रभेद) ।

शिलावती । २९३ (सुहामें) ।

शिव-द्वार । ६८ (राजगृहमें) ।

शिवस्थविर । ५७६ (सिंहल) ।

शिवि-देश । ३०० (वर्तमान सीवी त्रिलो-चिस्तान, या दोरकोट पजाबने आसपास का प्रदेश) ।

शिवनाग राजा । ५७७, ५७८ (राज्यकाल) ।

शुद्धोदन शाम्भु । १, २, ५, १६, ५८ (कोर), ४१८ (पिता), ५४७ (का मूर्ति) ।

शुद्धकुल । १८२ (नीचकुल नहीं) ।

शूर अम्बष्ठ । ४७२ (कोसल धावस्ती, श्रेष्ठी) ।

शृगाल-माता । ४७१ (मगध, राजगृह, श्रेष्ठिकुल) ।

शोभित । ४७१ (कोसल, धावस्ती, धावण)

शोभित, क्षुद्र-। ५६३ (द्वि सनीतिमं, प्राचीनक प्रतिनिधि) ।

श्यामलता । ८ (पुष्प) ।

श्रावस्ती । ३७६, ४७५, ५६४, ५६५, ५९४ ३७७ (कोसलमदिर), २०३ (में जानुम्पोणि धावण), ३७३ (उत्तरदेश में), ४७२ (में अनाथपिंडक शरभम्बष्ठ निशाग्रा), ४६९-७२ (में उत्पल-वणा महाधाराविका) । ४८९ (लक्ष्मण-भट्टिय, सुभृति), ४७० (कपारवत, वक्कली, कुडधान, वगीम, पिन्द वारम्भ, महाकाष्ठित, शोभित), ४७१ (नंदक, गवागत, मोघराज, उत्पलवणा, पयावारा, मोणा सकुण्ठा, वृत्तागोतमी) (में जेत उन), ७७ (दान), ११, १०६, १८० (चपाशम), १७६ १८, १८८,

१८७, १८९, ३२६, ३६१, ३६४,
३६७, ३८६, ३९१, ३९३, ३९४,
३९८, ४०२, ४०६, ४०६, ४०९,
४२७, ४३९—४१, ४५० (-पुष्क-
रिणी), ५१७, ५५७ (दक्षिणद्वार
मोहरका बाजार दवाजा) । ३९७ (पूर्ण-
राम मृगारमाताका प्रासाद, द्वारमोहरक,
लोहप्रासादकी तरह), ४०८ (पूवा-
राम=हनुमन्ना), ४१०, ४३४,
४४१, ५३८ (महानगर), ३८८ (में
राजरा राम), ५१३ (म वर्षावाम),
२६४ (से कौटागिरिको), ३६४ (का
धूल कोटितसे) ।

श्रेणिक । (दसो दिग्गार) ।

श्रेष्ठी । (पद) । ७० (नेगमसे नीचे) ।

श्रोत्रिय । १९ (धलियास, धोधगयाम) ।

सकुल उदायी । २८० २८४, २६५ ७४
(परिभाजक, राजगृह, मोरनिवापमें), २६५
२७४, २८० ।

सकुला । ४२३ (सामाका बहिन प्रसेनजित्
का रानो, उपासिका), ४२३ ।

सकुला । ४७१ (दिव्यवृक्षा, अग्र-महा-
भावकाम ४९९वीं) ।

सकाश्वनगर । ८९-९० (दशावतार),
१४४ (मकिंवा वमस्तुर, जि करेयावाद),
५९९ ।

सगीत । ५४८, ५५६, ५७५ ।

रुगीत, तुतीय । ५७५ (नवमासमें),
५७५ ।

सद्यमित्र । (अशोकवृक्षा मिश्रुगो), ५७०
(का उपाध्याया धमपाळा बरी, आचार्या
आयुषा १), ५७९ (मिलेनर्म अनुनादरा
शिया) ।

सद्यउद्धर्पित । ४०३ (सुनापरतमें) ।

सजय । ५० ।

सजय परिव्राजक । ३८, ४०, (मारिपुत्र
मेगलानका पूव-गुरु) ।

सजय वेत्तद्वपुत्त । (तार्थकर ५), ८२,
९१, ९२ (गणाचार्य तीर्थकर), ४०
(आवकोसे असत्कृत), ४६०, ४६३
(अमरागिषपरादी), ५४० (मंधी) ।

सजिकापुत्र । ४१२, ४२१ (बोधि-
राजकुमारना मित्र, सुमुमारगिरिवासी) ।

सत्तवक-चेतिय । ५३३ (ब्वालीमें) ।

सनत्कुमार (ब्रह्मा) । २१६ (का गाथा) ।

सदक पग्निवाजक । २६० ६५ (आनंदसे
मवाद) ।

सप्तशतिका । (विनयसगीति) । ५६६ ।

समयप्यत्रादक । ६५० तिहुकाचोर ।

समुद्रगिरि चिह्नार । ४०३ (सुनापरतमें) ।

समुद्रदत्त । (देवा रुद्रदेवा पुत्र) ।

सवल । ५७७ (त्राघपाणि प्रचारक) ।

सभूतसाणवासा । ५९८, ५६३ (पात्रेयक-
प्रतिनिधि, द्वितीय सर्गातम) ।

सयुत्त, उपोसथ । (५६५), सयुत्त
(संयुक्त) निरुपम (दसो ध्यसुची) ।

सरयू । १५६ (सरयू, घाघरा नदी) ।

साल । १८२ (वृक्ष) ।

सर्वशोद्धिक-पञ्चभार । ५३३ (राजगृह,
सातवन्म) ।

सर्वकामी । ५८२ ६५ (आनन्द शिष्य
द्वितीय सर्गातम मध्यस्थविर) ।

सललवती । १ (मरिनीपुर, हस्ताशारक
जिलामें बहनेवाली गिरि नदी),
३९७ ।

सहजातिय । ५६९ (माथ, जि इलाहाबाद) ।

सहापति ब्रह्मा । १९, २० ।

साकेत । २९० (अयोध्या राजगृह-तथाशिरा
केरास्तेपर), ३२६ (आयन्नीसे ७ योजन
पर), ३५५, ५३८ (महानगर) ।

सागलनगर । ४१ (स्यालकोट, मद्रदेशमें,
देखो शाकला) ।

साढ । स्थिर । ५६१, ५६३, (द्वि-संगीतिमें
पाचीनर-प्रतिनिधि) ।

साणवासी । (दणो मभ्रत साणवासी) ।

सापुक । ४०६ (श्रावस्तोक पास कोई
ग्राम) ।

सामगाम । ४८१ (शाक्यदेशमें) ।

सामावती । ४७२ (भद्रवतीराष्ट्र, मद्रिया-
नगर, भद्रवतिक श्रेष्ठीका पुत्री, उद्यनकी
महिषी) ।

सारनाथ । (११० ऋषिपत्न) ।

सारब्द चैत्य । ५३३ (शैशालीमें), ५२०
(में, राज्याका भगवान्का • अपरिहा-
णीयधर्म उपदेश) ।

सारिपुत्र । ३८, ३९ (अश्वजित्का उपदेश),
४० (उपसंपदा), ५३ (कृतयेदी), ५६,
५७ (के राहुल शिष्य), ७२ (विनीता),
८८, ८९, ९० (कोअभिधर्मोपदेश), १०६
(कोसंनर-कलह), १०८ (१२ प्र
शिष्योर्म प्रथम), १४१ (शिक्षापदके
लिपे, याचना) १७६ (महाहत्थि
पत्नीपत्नीका उपदेश), २५४ (मे अश्व-
जित् पुनर्मुक्ता द्वेष), ३३५, ३३६
(उपस्थाकपद याचना, बुद्धो जैसा धर्मो-
पदेश), ३८९ । ४०० ६ (भगवान्का
प्रश्नोत्तर), ४०६, ४२९ (देवदत्तके महानाई
मागनेके समय) । ४३३, ४३४
(देवदत्तके पास), ४४४ (महाप्रज्ञ),
४६० (देवदत्तकी परिपत्रका फोटना)
४६९ (जन्म—मगध देशमें राजगृहके
पास उपस्थितग्राम, वर्तमान सारीचक,
यड़गाव, जि पटना, माहारा), ४७३
(अप्रधावक), ४८१ (के आई बुन्द
समशुद्धेस), ४८८ (का उपदेश पावामें),

५१२, ५१५ । ५२५, ५२६ (के
भगवान्के विषयमें उद्गार), ५१७, ५१८
(के निर्वाणपर भगवान्के उद्गार), ५१९
(का कीर्तिक पूर्णिमाको निर्वाण), ५२७
(का श्रावस्तीमें धातु चेत्य) ।

सालवती । २९७ (राजगृहकी गणिका,
जीवककी माता) ।

सावित्री । १६५ (छन्दोमें मुख्य) ।

सिखी (शिषी) । १४१, १४२ (भद्रकल्पके
बुद्ध) ।

सिगाल । २७४-७९ (राजगृह-वासी गृह
पति) ।

सिगव स्थविर । ५६७ (मोगलिपुत्तक
गुरु), ५६८ (मोगलिपुत्तके प्रश्नोत्तर),
५६९, ५७६ (सोणक शिष्य) ।

सिद्धार्थकुमार । ५७, ८ (अभिनिर्क्रमण),
९ (कृशागतौत्मीको गुरुदक्षिणा), १३
(राजगृहमें), १६ (बोधिमडमें), ५६
५४७, देखो बुद्धभी ।

सिनीसूर । [शुनासीर] । २१२ (हजरा-
कुपुत्र, शाक्यपुत्रज) ।

सिंधु । ७ (-देशीय घोड़े) ।

सिंसपायन । ३५० (आलसीमें) ।

सिंहकुमार । (विजयकुमारका पिता ।
सिंहपपातक (दह) । १५६ (हिमालयमें) ।

सिंह श्रमणोद्देश । २४५ (वेलाहीमें) ।

सिंह सेनापति । १४८ ५० (जैनसे बौद्ध) ।

सीतवन । ६८ (में सनाथ-पिंडक), ५३३
(राजगृहमें, जहा सर्पशीटिकपञ्चमार
था) ।

सीवली । ४७० (शाक्य, कुडिया, फोल्या
दुहिता सुप्रवामाके पुत्र) ।

सुजाता । (सेनानीदुहिता) । ४७२ (मगध,
उदेल्या, सेनानीकुटुंबिकी पुत्री) १४,
१५ (सेनानी ग्रामवासिनी) ।

सुत्त, अक्षयणी—(अं नि) १८७—
१८८ ।

सुत्त, अशुलिमाल—(म नि) ३६७—
३७२ ।

सुत्त, अष्टक-धम्मिक—(सुत्त नि)
३७३—८८ ।

सुत्त, अस्तदीप—(सं नि) ३९१ ।

सुत्त, अभयराजकुमार—(म नि)
४०० ।

सुत्त, अम्भट्ट—(दो नि) २१० ।

सुत्त, अयत्तट्टिकाराहुलोपाद—(म
नि) ६९ ।

सुत्त, अस्तिग्धकपुत्त—(म नि)
११० ।

सुत्त, अस्सलायण—(म नि) १८० ।

सुत्त, आदित्त परियाय—(म नि)
३४ ।

सुत्त, आनेज्जसप्पाय—(म नि) ११८ ।

सुत्त, आलोक—(अ नि) ३९० ।

सुत्त, इन्दियभात्रा—(म नि) २०१ ।

सुत्त, उक्काचेस—(सं नि) ९१९ ।

सुत्त, उद्दान—(म नि) ३९१ ।

सुत्त, उद्गाय—(सं नि) २९३ ।

सुत्त, उपाति—(१४९ ।

सुत्त, उपाति—(म नि) ४४४ ।

सुत्त, एतद्गगग्ग—(अ नि) ४६९ ।

सुत्त, आयतरण—(१९९) ।

सुत्त, कज्जला—(अ नि) २८९ ।

सुत्त, कण्ठयलक—(म नि) ४७३ ।

सुत्त, कस्सप—(म नि) ४९ ।

सुत्त, कोटागिरि—(म नि) २०४ ।

सुत्त, कुट्टदत्त—(दो नि) २३२ ।

सुत्त, केसपुत्तिय—(म नि) ३४७ ।

सुत्त, (कोस्मक) (म नि) ९८ ।

सुत्त, कोसल—(अ नि) ४४० ।

सुत्त, चक्रम—(म नि) ४४ ।

सुत्त, चकि—(म नि) २२२ ।

सुत्त, चारिका—२९ (सं नि) ।

सुत्त, चित्तपरियादान—(१९९) ।

सुत्त, चूल अस्सपुर—(म नि) २८६ ।

सुत्त, चूल दुक्खकसध—(म नि)
२०८ ।

सुत्त, चूल-सकुलुदायि—(म नि)
२८० ।

सुत्त, चूल्हत्थिपशेपम—(म नि) १७० ।

सुत्त, जटिल—(म नि) ३०७ ।

सुत्त, जटिल—(उग्न) ४३९ ।

सुत्त, जरा—(सं नि) ४१० ।

सुत्त, तेविज्ज—(दो नि) २०३ ।

सुत्त, तेविज्ज-रुक्खोरा—(म नि),
२४८ ।

सुत्त, थपत्ति—(सं नि), ४०६ ।

सुत्त, वप्पिण्णाधिर्भंग—(म नि), ७६ ।

सुत्त, दिट्ठि—(अ नि) २८६ ।

सुत्त, (देवदत्त)—(सं नि) ४२८ ।

सुत्त, देवदह—(म नि) ३४१ ४६ ।

सुत्त, दोण—(म नि) ३८९ ।

सुत्त, धम्मचेतिय—(म नि) ४७३ ।

सुत्त, नलकपान—(म नि) ६३ ।

सुत्त, (निगठ)—१११ (सं नि)

सुत्त निपात—(श्लो व्रं सूची) ।

सुत्त, पजापतीपव्वज्जा—(अ नि) ७८ ।

सुत्त, पजापता—(अं नि) ८० ।

सुत्त, पव्वज्जा—१३ (सुत्तनिपात, मावग्ग) ।

सुत्त, पघानाय—(अं नि) ४०९ ।

सुत्तपारिलेयक—१०३ (उदान) ।

सुत्त पिटक। १०८, (मे दोघनिकाय, मज्झिम०

सयुत्त नि०, ० गुत्तर०, सुद्धक निकाय—१

सुद्धकाय, २ धम्मपद, ३ उद्दान, ४ इति

वुत्तक, ९ सुत्तनिपात, ६ विमानवत्थु, ७

पेतत्रय, ८ घेरगाथा, ९ थेरीगाथा,
१० जातरु, ११ निहेस, १२ पत्तिस-
भिदा, १३ अवदान १४ बुद्धवंस, १५
चरियापिटक) ।

सुत्त। पिड—११३ (सं नि)

सुत्त। पियजातिक—(म नि) ३९८ ।

सुत्त। पुराण—(सं नि) ४०२ ।

सुत्त। पोद्दपाद्—(दी नि) १८९ ।

सुत्त। पोतलिय—(म नि) १५६-१६१ ।

सुत्त। घोघिराजकुमार—(म नि) ४१२ ।

सुत्त। ब्रह्मजाल—(५५०-५५५) ।

सुत्त। भरद्वाज—(अ नि) २५१ ।

सुत्त। मखादेव—(म नि) ४०४ ।

सुत्त। मरिलका—(म नि) ३९३ ।

सुत्त। महानाम—(अ नि) २५२ ।

सुत्त। महानिदान—११८-१२८ (दी
नि) ।

सुत्त। महापरिनिब्बाण—(दी नि)
५२० ।

सुत्त। महाराडुलोवाद—(म नि) १८५ ।

सुत्त। महालि—(दी नि) २४५ ।

सुत्त। महासकुलदायि—(म नि) २६५ ।

सुत्त। महासतिपट्टान—(दी नि) ११८ ।

सुत्त। हत्थिपदोपम—(म नि) १७६ ।

सुत्त। मागदिय—(सुत नि) ११५ ।

(म नि) ११८ ।

सुत्त। मूलपरियाय—५५५ ।

सुत्त। मेघिय—(उदान) २९४ ।

सुत्त। रत्तपाल—(म नि) (११८),

(म नि) ३५० ।

सुत्त। रुक्खपम—(म नि) ११८ ।

सुत्त। चाहातिक—(म नि) ४४१ ।

सुत्त विभङ्ग (=सुत्त-पिट्ठ) ५६४, ५६५ ।

सुत्त। (विसाखा)—(उदान) ४०८,
४३३ ।

सुत्त। घेरजक—(अ नि) १३७-१४० ।

सुत्त। सकलिक—(सं नि) ४३१ ।

सुत्त। सगाम—(सं नि) ४३९ ।

सुत्त। सगाति-परियाय—(दी नि),
४८७ ।

सुत्त। सतिपट्टान—(म नि) ११८ ।

सुत्त। मदक—(म नि) २६० ।

सुत्त। सवहुल—(सं नि) २९३ ।

सुत्त। सहस्सभिम्भुनी—(सं नि)
३८८-८९ ।

सुत्त। सामगाम—(म नि) ४८२ ।

सुत्त। समञ्जफल—(दी नि) ४५९,
(५५०) ।

सुत्त। सारिपुत्त—(सं नि) ४०५ ।

सुत्त। सारिपुत्त—(११८ (म नि) ।

सुत्त। सिंगालोवाद—(दी नि ३८)
२७४ ।

सुत्त। सीह—(अ नि) १४८ ।

सुत्त। सुनक—(अ नि) ३८५ ।

सुत्त। सुन्दरिका भरद्वाज । (म नि
सुतनि) ३८९ ।

सुत्त। सुन्दरी—(उदान) ३६१ ।

सुत्त। सेल—(म नि) १६२ ।

सुत्त। सोण—(उदान) ३९४ ।

सुत्त। सोणदट—(दी नि) २५१-२४० ।

सुत्त। हत्थक—(अ नि) २५९ ।

सुत्त। हत्थिपदोपम—(५७९) ।

सुदत्त । ६९ (देवो अनाथ-पिडक), ५
(त्वेन ब्राह्मण) ।

सुदर्शन । ५३८ (चक्रवर्त्ता राजा) ।

सुदर्शनकुट । १०६ (अनवत्तसेके पास) ।

सुदिन्न कलन्दपुत्त । १४५—४७ (प्र
ग्रन्था), ३१२ (उशालामें), ३१३—
३१६, ५४० (प्र० पाराजिक) ।

सुधर्मा । ४०४ (देवसभा) ।

सुनकवत्त लिन्जि पुत्त । २४६ (तीन चर्प तरु मिषु रहा), ३३० (बुद्ध उपस्थाक) ।

सुनीध । ०२७ ०२८ (मगधमहामात्य) ।

सुन्दरिका नदी । ३८९ (कोसलमें) ।

सुन्दरी । २६१—६३ (परिव्राजिका धावस्ती पामिनी, का बुद्धपर कृष्क) ।

सुपर्ण । ११ (गरुड) ।

सुप्रमुद्धशाश्व । ४७१ (इवद्धवासी, शकुल के मातामह) ।

सुप्रसाता कैलियधीता । ४७० (शाक्य, कुंडिया, मीरगेरी माता) ।

सुप्रिय परिब्राजक । ५०० (बुद्ध निष्क, मङ्गलत्तका गुह) ।

सुप्रिया । ४७२ (कानी, जाराणसीमें), ३२९ (विशाखाकी दासी) ।

सुभूति । ४६० (कोसल, धावस्ती, वेदय) ।

सुभ्रष्ट । ५३९ (अंतिम प्रमत्तिन सिष्य), ५४०, ५४१, ५४४ (बुद्ध प्रनजित भिक्षु) ।

सुमन । ०५३ (द्वि०संगातिम, पावेयकप्रति निधि) ।

सुमन (३) । ०७६ (सिंहल, स्यविर) ।

सुमन (१), काल—। ५७६, (सिंहल स्यविर) ।

सुमन कार (२)—। ०७६ (सिंहल स्यविर) ।

सुमनादेरी । १०२ (विशाखाकी माता), ५७० (सुमन युवराजकी दत्ती, स्यप्रोध धामगेरकी माता) ।

सुमेरु गर्वत । ८७, ८९ ।

सुयाम । ३ (देवता), ९० (देवपुत्र) ।

सुयाम । ० (द्वापन ब्राह्मण) ।

सुयणभूमि । ५७७ (= पण, बर्माई सोणक मो। उत्तर स्यविर प्रचारक) ।

सुयाहु । (यशमित्र मिथु), २७, २८ ।

सुवेणुपन [सुवेणवन] । २९१ (कज्जला में) ।

सुसुमारगिरि । ७५ (भर्ममें, के भेमकलापन में अष्टमरया), ९३ (भेमकलावन), ४१२ (सुनगर नि० मिजापुर), ४२७ । ४७२ (म मकुलपिता गृहपति, मकुलमाता गृहपत्नी) ।

सुल । २९३ (हजारिवाग, मंधाल पर्गना जिलाका किरनाही अश, निममें गिलावती, सेतकणिक निगम) ।

सून-भागध । ८ ।

सेतकरिणक । १ (हजारिवाग जिले में), २९३ (सुलमें), ३९७ ।

सेतव्या । ३७६ (धावस्ती कपिलवस्तुक बीचमें) ।

सेनानीग्राम । ४७० (मगध, उदरलामें मुज्जाताकी जन्मभूमि), १४, ४१५ (निगम) ।

सेल । १६३—६६ (महापडित), १६६ (अर्हत्त्व) ।

सेणर । ५७५ (दासकका सिष्य), ५७७ (मुयणभूमिमें प्रचारक) ।

सेण कुट्टिकरण । ३९४—९७ (महा ज्ञातायन सिष्य, कुररघरमें), ३९६ (भगवान् के पास), ४७० (जन्म-भवती, कुररघर, वश्य) ।

सेण कोट्टिरोस । [स्वर्ण कोट्टिविदा] ४७० (अग, चंपा, श्रेष्ठिकुल) ।

सेणरंड [= स्वणरंड] । २४९—२४० ।

सेणा । ४७१ (कोसल, धावस्ती) ।

सेमा । ४२३ (प्रसेनजित्की रानी, मकुल की बहिन, उपामिका) ।

सेनेय्य । १४४ (मारा, जि० ण्ठा), ५०९ ।

सैनांतिक । ७३ (=मूत्रपाठी), ९७ ।
 स्यविरयाद् । ५७२, ५७६ (परपरा) ।
 स्वागत । ३३५ (सुद्ध उपस्थाक), ४७१
 (फोसल, श्रावस्ती, प्राहाण) ।
 हृत्थकआलवक । (आलवीवासी) २५९,
 ३५० (=हस्तक आलवक कुमार
 भगवाणके पास), ४७२ [पंचाल, आलवी
 (भर्जल), राजकुमार], ४७३ (गृहस्थ
 अपश्रावक) ।
 हृत्तिग्राम । ४७२ (में उन्नत गृहपति, उज्जी
 देशमें) ।

हास्तिनिक । [हत्थिनिक] । (इक्ष्वाकुपुत्र
 दाक्यपूर्णज) २९२ ।
 हिमया । १०६ (पर्वत), ५७७ (शर्म
 मध्यम स्यविर प्रचारक) ।
 हिमालय । २१२ ।
 हिरण्य । १५५ (मोनेका सिद्धा), ३९९
 (=अशर्मा), ५०६ ।
 हेमक । माणव । (प्रदत्त) ३८१, (बावरि-
 सिप्य) ३७५ ।
 हिरण्यवती नदी । ५३६ (कुर्मीनाराके पास
 छोटीसी नदी) ।

शब्दानुक्रमणी ।

- अकथकथी । १९४ (विग्रहहित) ।
 अकनिष्ट । ४९९ (देवता) ।
 अकालिक । १२९ (न कालांतरमें फलप्रद,
 सद्य फलप्रद) ।
 अकिंचन । २७९ (परिग्रहहित) ।
 अकुशल धर्म । १७३ (= पाप) ।
 अक्रियावाद । १३८, १४८, १४९ ।
 अक्षय (=) । १८७, ७०९ (= असमय) ।
 अक्षयुष्य । ७ (धनुष कला) ।
 अक्षयूर्त । ३३९ (= शुभो) ।
 अक्षय-प्रभेद । ७९८ (शिक्षा, निरूप) ।
 अगतिगमन (४) । ४९८ ।
 अग्नि (३) । ४९० ।
 अग्निपरिचरण । २१७ (= होम) ।
 अग्निपरिचर्या । २१७ (तापमर्म) ।
 अग्निशाला । ३० (= पानी गर्म करनेका
 घर), ७०, ७१ ।
 अग्निहोत्र । ३३ ।
 अग्र । १०२ (= उत्तम), ४६९ (= श्रेष्ठ) ।
 अग्र पिंड । ७३ (सर्वश्रेष्ठको दातव्य प्रथम
 परामा) ।
 अग्रमहिषी । ७ (= पत्नी) ।
 अग्रधावक । (देसों आवक, अप-) ।
 अगुशग्रहणशिल्प । ४१९ (हाथीवाना) ।
 अग । (= बात) ।
 अगण । १७४ (= मूल) ।
 अगार । ५४६ (= कोठला) ।
 अगारवा । १५९ (= भौर = अगिचूर्ण) ।
 अचलक । १८७ (बद्ध रहित माधु) ।
 अच्युत । २६२ (= युक्त) ।
 अट्टि । ८९ (= जाँटो, गुल्ली) ।
 अतर्क्य । ४९० । देवलोक , ।
 अति आरम्भ वीर्य । [अचारद्वीर्य] ।
 १०१ (अत्यधिक अभ्यास, समाधिविज्ञ) ।
 अतिचार । २७८ (पत्नीगमन) ।
 अतिलीन वीर्य । [अतिनीन वीर्य] ।
 १९१ (बीला अभ्यास, समाधिविज्ञ) ।
 अतिथि । २३४ (पूनीय) ।
 अतिनिध्यायिनत्न । [अतिनिध्यायित्त]
 १०१ (अवश्यकृतासे अधिक व्याप,
 समाधिविज्ञ) ।
 अतिपात । १११ (माना) ।
 अनिमुक्तक । ८० (= मोतिपा कृष्ण) ।
 अत्यय । ४३० (= अपराध, धोता) ।
 अ दशक । ५६० (= विना किनारीका) ।
 अ-दशक कल्प । ५६६, ५६०, ५६९,
 (विना किनारीके विस्तरेका विधान) ।
 अद्वैतधर्म । [अद्भुतधर्म] १४२ (बुद्ध-
 भाषित) ।
 अधिकरण । १०६ (= अगङ्गा), २२९,
 ५५८, ५५७ (= विवाद), २२९
 (= वास्तुस्थान, विषय), ४८३ (५
 विवाद, अनुवाद, आपत्ति, कृत्य) ।
 अधिकरण शमय । ४८३ (७-समुद्र विनय,
 रघुति०, अमुद०, प्रतिपातकरण, यद्-
 यमिक, तत्पापोपमिक, तिणपत्यार),
 ५०५ ।
 अधिकार । ३०५ (= उपसार) ।
 अधिमान । ३२१ (= वस्तु या एने पर
 'पा लिया' समझना, कहना) ।
 अधिमुक्त । २५० (= मुक्त) ।
 अधिमुक्ति । ४४४ (प्रवृत्ति, चित्तवृत्ति) ।

अधिघचन । १३० (= नाम), १३१ (मना) ।

अधिष्ठान । ७१ (= देखेख), २६३, ८९ (योगसम्बन्धी सकल्प), ५४७ (= दिव्यसंकल्प), ८९६ ।

अध्यवकाश । ४६५ (= पुरी जगह) ।
अध्यवकाशिक । २८७ (सग चोडेमें रहनेवाला साथ) ।

अध्ययसान । १२९ (= प्रयत्न) ।

अध्यात्म । १७३ (= अपनेमें), १७६ (= शरीरमेंका), १८५ (= शरीरके भीतर) ।

अध्यात्मिक । १७६ (शरीरमेंका) ।
अध्यायक । २१० (= पढ़नेवाला) ।
अध्येषणा । ५५९ (= आज्ञा) ।

अध्व (३) । ४९० (= काल) ।
अध्वगत । १३७ (= बृद्ध) ।
अध्वनिक । ४८८ (= चिरस्थायी) ।
अध्वनीय । १४२ (= चिरस्थायी) ।

अनग्नि-पक्विक । २१६ (तापम मत) ।
अनन्यशरण । ५१८ (= अ-परावर्त्तनी) ।
अनागामी । ७३, २७४ (पाच अव-
भागीयोके क्षयसे), ५४० (नृ० श्रमण),
४९९ (० भेद—अन्तरापरिनिर्वाया,
उपहृत्यपरिनिर्वायी, अमस्कार०, म-
संस्कार०, ऊर्ध्वलोता, अकनिष्ठगामी) ।

अनार्य । २३ (= हीन) ।
अनित्य । १०५ (= सस्कृत, निर्मित,
प्रतीत्यसमुत्पन्न), १३३ (= क्षयधमा,
व्ययधमा, विरागधर्मा, निरोधधमा) ।
अनित्यता । १७७ (= क्षयधर्मता, = वि-
परिणामधर्मता) ।

अनित्यसज्ञाभाजना । १८७ (सभी पन्थे
अनित्य हैं) ।

अनुकंपा । ७६ (= कृपा) ।

अनुजात । १६५ (= पीछे उत्पन्न) ।
अनुज्ञा । २९, ७९ (आज्ञा, स्वीकृति),
१४६ (= आज्ञा) ।

अनुत्तर । १६० (= अनुपम), २६७,
(= सर्वात्म) ।

अनुपरीय । (३) ४९१, ५०३ (६) ।
अनूदूत । ५५७ (= साथ जानेवाला) ।
अनुनय । ७९ (= छन्द) ।

अनुपश्यना । ५६९ (ध्यानसे देखना) ।
अनुपश्यी । ४९३ (= देखनेवाला) ।
अनुपादि । ५३६ (= दु एकारणरहित) ।

अनुपूर्वनिरोध । ५०९ (९ प्रकार) ।
अनुपूर्व विहार । ५०९ (९ प्रकार) ।
अनुमति-व्यप । ५५६, ५६०, ५६० (गजि
पुत्तकोका विनयत्रिद्वि विधान) ।

अनुमतिपक्ष । २२० (४—अनुयुक्त क्षत्रिय,
अमात्यपरिपद्, नेचयिक गृहपति, ब्राह्मण
महाशाल) ।

अनुयुक्त क्षत्रिय । २३५ (उच्च पद्माधिकारी—
गंगम जानपद), २३७ (= मादलिक या
जागोरदार) ।

अनुयोग । ८५३ (= परीक्षा), ५००
(= उद्योग) ।

अनुलोम । १५, १६९ (= अतिरोधी) ।
अनुव्यजन । (देखो—व्यजन । अनु) ।
अनुशय । ५०५ (चित्तमल ७ प्रकार) ।

अनुशासन । २४ (= उपदेश) ।
अनुशामनी । ५१० (= धर्म उपदेश) ।
अनुश्रव । २२५, २८३ (= श्रुति), २२५
(सादृष्टिकविपाकधर्म), २४७ (=
श्रुत) ।

अनुसञ्ज्ञान । ३०० (= निरीक्षण) ।
अनुस्मृतिस्थान । ५०३ (६ प्रकार) ।
अनोमा-प्रत्यया । १२ ।
अन्त । २३ (= अति), ४९० (३ प्रकार) ।

अतगुण । १७६ (पतली आत) ।
अन्तरापरिनिर्वायी । ४९९, (आगामी) ।
अतगष्टक । ३५० (भाषके अतके चार दिन
और कागुनके आदिके चार दिन), ४३५ ।

अन्तर्वासक । ३२५ (= लुह्ना) ।
अतेवासा । ७२ (= शिष्य) ।
अधवेणु परपरा । २०५, २२५ (=
अधाकी ऋद्धोसा ताता) ।

अपगर्भ । १३९, १४९ (अपगत गर्भ) ।
अपरात । २८० ।

अपरिहाणीयधर्म । ६००-५३२ ।
अपाय । १७६ (दुर्गति, नर्क) ।

अपायमुत्त । २७५ (६ प्रकार), २१७
(= विप्र) ।

अपाव्रयण । ४९३, (४ प्रकार) ।
अपुण्य । ११४ (= पाप) ।

अप्रमाण । ७७ (इत्यन्तरहित), १०३
(महान्) ।

अप्रमाणाय । ४९३ (अमीम, ४ प्रकार) ।
अप्सरा । ३१४ ।

अभ्यस्थान । ४९८ (५ प्रकार) ।
अभिजात । २६८ (= सुन्दर), २८१ (=
वसवीला) ।

अभिलक्ष [अभिलक्ष्य] । १०१ (समा-
धिविप्र) ।

अभिज्ञान । ३४६, ५०३ (६ प्रकार,
जाति = जन्म = अभिजाति,) ।

अभिज्ञ । पङ्-—। २३ (= संशोध),
४१४ (, -य शक्ति) ।

अभिज्ञान । २६५ (= प्रसिद्ध) ।
अभिधर्म । ६१९ (= धर्म) ।

अभिधर्मज्ञ । ४९० (मात्रिकाधर) ।
अभिध्या । ६३ (= लोभ), १७० (जी
परणाम) ।

अभिध्यालु । २३६ (= लोभी) ।

अभिनिवेश । ३७९ (= आपद्ध) ।
अभिनिर्वृत्ति । १२३ (= जन्म) ।
अभिनिष्क्रमण । महा—८, ९, १०
(गृहत्याग) ।

अभिभावित । ८८ (दम दिया) ।
अभिभ्यायतन । २७०, ५०७ (८ प्रकार) ।

अभियान । ५२० (= चढाई) ।
अभिरत । १४९ (= सतुष्ट) ।

अभिचिनय । २१० (= चित्तवर्मे) ।
अभिषेक । २१५ (क्षत्रियौहीका) ।

अभिसस्कार । ३७३ (= रुद्रविधि) ।
अभिसंज्ञा । १९२ (= संज्ञा, चेतना) ।

अभिसन्धानिगोध । १८९ ।
अभिसमय । धर्म—८९ (= धर्म दीक्षा) ।

अभिसंशोधि । १३ (= बुद्धज्ञान = बोधि,
= बुद्धत्व), १७ ।

अभिसंशोधि, परम—। ५४ (= बुद्धत्व) ।
अभूत । १४८ (= शून्य) ।

अभ्यास्यान । २४९, ५५७ (= निम्ना) ।
अमथितकल्प । ५५६, ५६०, ५६५ (विनय
निर्द्ध विधान) ।

अमनुष्य । १३ (पिताच आदि), ६८ (द्व
आदि), २३३ (देव, भूत आदि) ।

अमरत्रितोषवाद । २६४ ।
अमात्य । ५७, २३५ (= अधिकारी),
५७३ (अपसर) ।

अमात्य पान्तिपद्य । २३५ (पदाधिरारी,
नंगम जानवद्) ।

अमिनमोग । (= महापत्नी) १८३ ।
अमित्र । २७६ (= शत्रु ४) ।

अमृष्ट चित्तय । ५०६ (= अधिकरण दामय) ।
अम्म । १७ (दासी, लड़कोंको सपोधन), ४८।

अम्मण । १० (= मन)
अव्यय । ५१५ (नानी) ।

अव्ययोता । ४१ (स्वामिपुत्री) ।

अथवा । ४१, २९७ (स्वायं, स्वामिनी),
१०६ (मित्र), ४२१ (माता) ।

अरण्यिहारी । ४६० (अरण्यमाधिक्य
अभ्यासी) ।

अस्तरूप । १३८ (देशी) ।

अर्गता । ४४० (=जमीन) ।

अर्चि । १०० (=नी), ३०७ (वपारी)

अर्थ-उपरीक्षा । २३७ (अर्थ परीक्षा) ।

अर्थचर्या । २०९ (=प्रयोग पूरा कर
ना) ।

अर्थवेद । २०३ (=वार्ताभाषा) ।

अर्थमन्त्री । ५०१ (=मन्त्र सप्तमे
वाक्य) ।

अर्थन्यायी । ५७७ (मित्रपुत्र) ।

अर्थम् । ३२ (=आत्मन्), ७३ २३/
(=मृग-पुत्र), २२७ (भाष्यअर्थ),
२१४ (पातकमोक्ष भोगमें अवसर),
५३३ (पुत्र), ५४० (धर्मभ्रमण) ।

अर्थिक । १४३ (=मन्त्र) ।

अर्थम् । २३० (अर्थ, नीति) ।

अनमार्थमानिर्जन । २२, १०० (अनमार्थ
मन्त्रार्थ, दिव्यार्थ) ।

अन उल्लुक्ता । १० (=अनधीनता) ।

अन्यजद् । १०४ (=निर्णय) ।

अन्यज्ज । २६० (=अन्यज्ज) ।

अन्यज्ज । १३३ (=अन्य) ।

अन्यज्ज । १३३ (अन्यज्ज) ।

अन्यज्ज । ८८० (=अन्य) ।

अन्यज्ज । २६० (=अन्यज्ज) ।

अन्यज्ज । ८८० (=अन्यज्ज), ४१३, ५३० ।

अन्यज्ज । १०८, (=अन्य) ।

अन्यज्ज । १०१ (अन्यज्ज
अन्यज्ज) ।

अन्यज्ज । १०१ (अन्यज्ज
अन्यज्ज) ।

१३० (अन्यज्ज)

अवरोध । ५६३ (=परिणाम) ।

अवरोध । ५८ (=उपदेश) ।

अवरोधक । ५६८ (=उपदेशक) ।

अवरोधप्रतीकार । [ओषादप्रतिहार]
२३८ ।

अवरोध । ३४१ (=परिणाम) ।

अविचित्र । २६६ (=न किंचित्) ।

अविद्या । १० (प्रवर्तन समुद्रवादका एक
पक्ष), १३३ (एक सयोग) ।

अविम । ४९० (=अविमानी) ।

अविचि । ८६ (नर्त) ।

अविमृष्टिक । २१६, (तात्पर्य) ।

अविम भाषना । १८० (समी भोग श्रेष्ठ) ।

अविम-समापत्ति । ३१७ (अविम भाषना) ।

अविम । १८३ (=अविम) ।

अविमडलिका । १४१ (चौदशार्थका
रत्ना) ।

अविमेष । ३८८ (अविम) ।

अविमलिक । २६१ (=अविमानी, मृग-
पक्षे उपा) ।

अविमलिकमार्ग । १३६ (=अविमानी
मार्ग), २७, ४८३ (अविमानी
मार्ग) ।

अविमलिकपरिनिर्वाण । ५९० (अविमानी
मार्ग) ।

अविमलिक । ७७ (=अविमानी), ५३१
(अविमानी) ।

अविमलिकपरिनिर्वाण । १३१ (अविमानी
मार्ग) ।

अविमलिक । १०० (अविमानी) ।

अविमलिक । १३१ (अविमानी), ३३७ ।

अविमलिक । १३१ (अविमानी)

अविमलिक । १३१ (अविमानी)

अविमलिक । १३१ (अविमानी)
अविमलिक । १३१ (अविमानी)

अस्वयपाकी । २१६ (तापसमेद) ।
अहोवत । २४२ (शोक-प्रसाशक शब्द) ।
आकार परिचितर्क । २२५ (साष्टिक
विपाकधर्म), ३४२ ।

आकारवती । २८२ ।

आकाशधातु । १७६, १७७, १८६ (=
आकाश महाभूत, अध्यात्म और वाह्य) ।

आकाशरसभाजना । १८६ ।

आकाशान्त्यायतन । १७४ १०१ (एक
आरूप्य समापत्ति) । १३४ ३० (वि
ज्ञान स्थिति = योनि), ५०८ । १७४,
१९१ (समाधि), ४१४, ५०८ ।

आकिंचन्य । ३८० (= कुछ नहीं) ।

आकीर्ण । १०३ (भीष्म) ।

आक्रोश । ७९ (गाला आदि), १७७ ।

आगतागम । ५३४ (= आगमज, निकायन),
५५९ ।

आगतुक । ६९ (पाहुना, अतिथि), ३३३
(नत्रागत), ३६५ ।

आगम । (बुद्धके समयमें थे), ५३४ (सुत-
पित्रक दीप आदि निरायाको आगमभी
कहते हैं) ।

आगमद्य । ९७ (दलो आगतागम) ।

आगत । ५०८ (उदला लेनकी इच्छा) ।

आघात प्रतिग्रिनय (=) । ५०८ (आघात
हवानेक आठ उपाय) ।

आघातवस्तु । ५०८ (आघातके आठ
कारण) ।

आचार्य । ५२, ५५७, ५७१ (का व्याख्या) ।

आचार्यक । २६१ (= धर्म), २८१ (= मन),
३०८ (= पत्नी) ।

आचार्यधन । ३८६ (गुरु दक्षिणा) ।

आचार्य मुष्टि । ५३२ (= रहस्य, पञ्चातमें
या अतममय अधिपाराको बतलाने योग्य
थात) ।

आचीर्ण । [आचिण्ण] । ४४५ (= का-
यदा) ।

आचीर्ण कृत्प । ५५६, ५६०, ५६५ (विाय
विरुद्ध विधान) ।

आवासकलप । ५५६, ५६०, ५६५,
(विनयविरुद्ध विधान) ।

आजय । ३२८ (= उत्तम सेतका) ।

आजानीय । ३ (= उत्तम जातिका = आ-
जन्य) । १६१ (= परिशुद्ध) ।

आजीव । ४८२ (= जाविका, त्याग पीना) ।

आज्ञा । ५३० (= परमज्ञान), २५८ (=
अज्ञा) ।

आणापान सति भाजना । १८८ (= प्रा
णायाम), १८७, ३१८ ।

आत्मदोष । ५१८ (= आत्म शरण, स्वा
भगव्या), ३०१, ५३८ ।

आत्मप्रतिलाभ । १९६ (= शरीरपद्म),
१०७ (= शरीर परिपह) ।

आत्मभाज प्रतिलाभ । ५०६ (शरीरपद्म
४) ।

आत्मशाब्द । १३३ (आत्माके निरूप्यस्वका
सिद्धान्त) ।

आत्मशाब्द-उपादान । १२९ (आत्माकी
निरूप्यतापर आपह) ।

आत्मशरण । ५१८ (स्वायत्तम्भी), ५३२
आत्मदाय) ।

आत्मा । ३० (= आप), १९७ (अयना
वित्त), १९३ (मनोमय, मन्ना मय) ।

आदाहन । ३९९ (= पिता) ।

आदिनव । १३५ (= परिणाम), १४३
(= अर्जुन = कालिमा), १६० (शराइ),
२२८ (दुष्परिणाम), २७५ (दोष) ।

आदिनव । दु शोलके— । ४०८ (पात्र) ।

आधानग्राही । ५०३ (= हनी) ।

आध्यात्मिक । १२२ (शरीरके भीतरी) ।

आनापान स्मृति । ११९ (=प्राणायाम,
कायानुपदध्या) ।

आनुपूर्वी-कथा । २६, १९० ।

आनुशयिक । ३६९ (=बराबर माथ रहने
वाला) ।

आनुश्रविक । २६३ (श्रुतिवादी) ।

आनुशस्य । ४९८ (=गुण) ।

आनैज्य । ४६७ (निश्चलता) ।

आपण । १९६ (=दुकान) ।

आपत्ति । ९७ (=दोष) ।

आपत्ति । ५४९ (दोष दंड), ४८४ (गुल्क,
लघुक—) ।

आपत्ति । अनवशेष—। १०७ ।

आपत्ति । गुरु—। १०७ ।

आपत्ति । दुःस्वैत्य—। १०७ ।

आपत्ति । लघु—। १०७ ।

आपत्ति । सावशेष—। १०७ ।

आपत्ति रुंध । ४८५, (७—पाराजिक,
सघादिनेष, स्थूल अत्यय, प्रतिदेशनीय,
दुष्टत, दुर्भाषित) ।

आप यातु । १७७ (=जलमहाभूत),
१७६, १७७, १८६ (अध्यात्म आप
यातु) ।

आपन्न । ९८ (=आपत्ति-सहित) ।

आप समभाषना । १८६ ।

आपादिका । ७६ (=अभिभाषिन्) ।

आभास्वर । ११४ (देवता, प्रीतिमक्ष) ।

आमगध । ११० (=दुर्गंध, द्रोह) ।

आमक्षण । ७२ (=निमक्षण) ।

आमिष । १०८ (भोजन, पान आदि),
१०१ (भोगपदार्थ), १०९ (विषय),
४८० (भोग) ।

आमिष । लोक—१०९ ।

आम्रपान । १६७ (विकारविहित पय) ।

आयतन । १७ (छ) १२ (चक्षु, श्रोत्र

घ्राण जिह्वा, काय, मन), २६४
(=ज्ञान) । २६५ (=जगह), १२२
(संख्यात्म, वाय), ४८९ (बारह) ।

आयतन । अध्यात्म—५०१ (छ) ।

आयतन । बाह्य—५०१ (छ) ।

आयुष्मान् । ६० (प्राय समान और छोटेको
सबोधन करनेके लिये), २३१ (=आप)

आयुस्संस्कार । ५१३ (जीवन) ।

आरक्षा । ८० (=पहरा) ।

आरचारी । १७२ (=दूर रहनेवाला) ।

आरण्यक । १४७ (वनमें रहने वाला, पुरु
षुतग) ।

आरज्जुगीयि । २५२ (उद्योगी, देखो
आरव्य-वीर्य) ।

आरव्यचित्त । ५४० (उद्योगशील चित्त-
वाला) ।

आरव्यवस्तु । (=आरव्यराहित्य) ५०६ ।

आराधक । २५२ (=साधक, सुसुप्तके
पांच गण) ।

आराम । ७०, २१९ (=शरीरा), ८२
(निवासस्थान), १४८ (आश्रम),
३२० (यात्रा) ।

आरामग्रहणकी अनुज्ञा । ३७ ।

आरामिक । २६७ (आरामका मोहर),
२६७, ३२१ (आराम-मेधक) ।

आरूप्य । ४९३ (चार) ।

आर्य । १८१ (=अदास), २०३ (सुक्त),
५२० (=उन्मत्त) ।

आर्य-अष्टांगिकमार्ग । २३ (सम्यक् दृष्टि,
०सकल्प, ०वचन, ०कमान्त, ०जीविका,
०यायाम, ०समाधि) ।

अष्टांगिकमार्ग । १२५ ७७ (विस्तार),
५३३ (बुद्धद्वारा साक्षात्कृतधर्म) ।

आर्य आयतन । ५२८ (=आर्यका नि-
वास) ।

आर्यक । २७९ (= मालिक) ।

आर्यधन । ९०४ (सात) ।

आर्यपुत्र । १० (= स्वामिपुत्र), ४३ (पति) ।

आर्ययश । ४९३ (चार) ।

आर्यवास । ९११ (रम-) ।

आर्यविनय । १८७ (उद्धम), २७४
(= आर्यधम), २९१, ४६८ (सम्पुरण-
की रीति) ।

आर्ययवहार । अन्- (४) । ४९७ ।

आर्यशीलस्वरुध । १७३ (= निर्दोषशील
राशि) ।

आर्य श्रापक । ३४ (सातभाषण, सट्टागामी,
अनागामी, अर्हत्) ।

आर्य-सत्य । २३ (= उत्तम सत्य—दुःख,
दुःख समुदय, दुःखनिरोध, दुःखनिरोध-
गामिनी प्रतिपद्), २७-१२३, १७६,
५२९ ।

आलय । १७९ (लोन होना, रचि-) ।

आलारिक । ४६० (= रायबा) ।

आलिद् । २११ (= मराठा) ।

आली । ८० (मड) ।

आलोऊ । २३ (= प्रजा) ।

आलोप । १७२ (याम आदिका विनाश),
४६० (= छापा) ।

आवर्तनी माया । ४६२ (मन घुमा दनवाला-
जादू) ।

आवसथ । १०८, ३६९ (अतिविज्ञान),
२७९ (साराय), ८२८ (डेरा) ।

आवसथामाग । ८२७ (= अतिविज्ञान) ।

आवापक । १०८ (= इजामतफा सामान) ।

आवासिक । २६५ (स्थानीय) ।

आवाह । ६८ (= विवाह) ।

आवुस । २१ (= आवु-माण्), २२ (धड़े
नो नहीं), १०४, २८८, ४१३, ५२१
(अपनेसे छोटीको) ।

आध्रय [अस्सव] । २३६ (= अनुवर) ।

आध्वसन्त [अस्ससन्त] । १४९ (आस्था-
सनप्रद) ।

आसन विज्ञापक । ६६४ (= आसन वि-
ज्ञानवाण) ।

आमेचनक । ३१८ (= छवर-) ।

आम्रव । २१ (= इश, मल), १०४ (तोप),
६४ (वित्तमन्), ४९० ।

आम्रवक्ष्यधान । (व विद्या), १७९ (राग-
आदि मलाव-नाश होनेका यान), ४१९,
२६८ ।

आम्रव निरोध । १७८ (वित्तमन्-विनाश) ।

आम्रव निराध गामिनी प्रातपद् । १७६
(= वित्तमलोके नाशनी ओर-वजानेवाला
माण) ।

आम्रवसमुदय । १७८ (राग आग्निका
कारण, या उत्पत्ति) ।

आहार । ४९९ (चार) ।

आहुशेय्य [आह्वानाय] । २९३ (= निम-
त्रणक वाय्य) ।

आह्वानार्ह । ७४ (निमत्रणके योग्य) ।

इध । ३७० (अछटा सी) ।

इतिवृत्तक [इतिवृत्तक] । १४२ (शुद्ध-
भाषित) ।

इतिह इतिह । ३८१ (= ऐसा जमा) ।

इन्द्रकील । ५० (स्त्रिये द्वाराक बाहर गहा
खम्भा) ।

इन्द्रिय । १०४ (पाँच); २८८, २६९ (अर्हत्
की पाँच श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि,
प्रज्ञा), २८९, ४८२, ८३३ (पाँच
उद्ध-माक्षात्कृत धम); ८००, ४०१
(तीन) ।

इन्द्रियभाषना । २९१ ०२ ।

इन्द्रियसधर । १७३ ।

इन्द्रियसधर । आर्य— १७३ ।

इभ्य [इभ्य] । २११ (= नीच), २३७ ।
 इभ्ययाद । २१२ (= नीच कहना) ।
 इषुकार । ३४५ (= लोहार) ।
 इष्ट । ३५ (यत्, प्रिय) ।
 ईति । ११० (= अकाल, महामारी) ।
 ईर्यापय । ११० (कायानुपदया विस्तार),
 ५७० ।
 ईर्या । १२२ (मयोजन) ।
 ईश्वर । ३४३ ।
 उज्ज्वल । ४६५ (= रिक्त) ।
 उज्ज । १७६ (श्रेष्ठ), २१८ (ऊँचे अमात्य) ।
 उज्जशायन । १७३ (महाशयन) ।
 उच्चार । ११० (= पाखागा) ।
 उच्छेदधाद । १३२ (शरीरक साथ आत्मा
 का विनाश मानना), १४९ ।
 उच्छाचारी । २१६ (तापसभेन) ।
 उक्ताटन । ४८३ (अमान्य, विरोध),
 ४६५ (रिशत), ५६२ (पैसलेको
 अमान्य करना) ।
 उत्क्षेपण । ९७ (संघना नद) ।
 उत्क्षेपणीय कर्म । ५५८ (= उत्क्षेपण दंड,
 जिममें कुछ समयके लिये भिक्षुको अलग
 कर दिया जाता है) ।
 उत्तर-ममुष्य धर्म । २२, १००, ५५०
 (= दिव्य शक्ति), ८३ (मनुष्यकी
 शक्तिसे परेकी बात), ३१९ (= दिव्य
 शक्ति) ३२१ (४ ध्यान, ३ विमोक्ष, ३
 समाधि, ३ समापत्ति, ज्ञान दर्शन (३
 विधाय, ७ मार्गभावना ४ फलसाक्षात्कार,
 ३ क्लेश-प्रहाण, ३ विनीवर्णता, ४
 शून्यागारमें अभिरति) ।
 उत्तरारणी । १८२, ४१० (रगड़ कर
 भाग निकालनेको लकड़ी) ।
 उत्तरासग । ३६ (उपरना), १७१
 (= चादर) ।

उत्तरितर । २४० (उत्तम) ।
 उत्तान । १३८ (= साफ, महल),
 ६७ (स्पष्ट) ।
 उत्थान । २२९ (= उद्योग), २२६ (तोलन,
 उठावा, काममें मुस्तैगी), २२७ (= उद्यो-
 ग), २७८ (= तत्परता) ।
 उत्थानसदा । ५३६ (= उत्थानका ज्वाल) ।
 उत्पल हस्त । ३०५ (चम्मच) ।
 उत्पलिनी । २० (नालकमल-ममुदाय) ।
 उत्पोडा । [उत्पोल, उत्पिल] । १०१
 (विह्वलता, समाधिनिम्न) ।
 उत्पग [उत्पुग] । १६० (फाँड), ४५९
 (ओईछा) ।
 उत्सव । ५ (= मेला) ।
 उदक-तारा । ४१७ ।
 उदकसाटी । ३३३ (ननुमतीका कण्ठ) ।
 उदकाचरोहक । २८७ (जलदाप्या लेने
 वाला तापम) ।
 उदग्र । ६९ (= फूल न समाता) ।
 उद्य । ४९३ (= उत्पत्ति) ।
 उद्य-व्यय । ३६३ (उत्पत्ति-विनाश, हानि-
 लाभ) ।
 उदान । १४२ (बुद्धभाषित), ३९१ (आ-
 नंदोहासमें निकली वाक्यावली) ।
 उदपान । ४१७ (कुआ) ।
 उदार । १६७ (= सुन्दर), १७०, २६४,
 ५२६ (बड़ा) ।
 उद्ग्रहण । ८० (समझना, पढ़ना) ७८० ।
 उद्देश । १६१ (= नाम), ३१८ (पाठ,
 धारण, आकार) ।
 उद्देश्य । १७५ (= आकार) ।
 उद्वाहिका । ५६३ (कमीटी) ।
 उपकरण । २३४ (= साधन) ।
 उपकार । २३० (= प्राकार, दाहरपनाह,
 भांगेलिपे) ।

उपदेश । २८५ (= मला बुझा कहना) ।
 उपदेश । २६४ (= चित्तमल), २८४,
 ५२६ (मल, ५ चित्तनीवरण) ।
 उपचारक । ४२९ (= रक्षक) ।
 उपधि । ३५ (राग भादि), ३७९ (तृष्णा
 भादि) ।
 उपनहन । १८ (= बाधना) ।
 उपनाह । २८७ (= पालन) ।
 उपनीत । १८३ (= उपनयनद्वारा गुरुके
 पास प्राप्त, क्षयको प्राप्त) ।
 उपपत्ति । ५०७ (= उत्पत्ति) ।
 उपरत । १७२ (त्यक्त) ।
 उपराज । २५२ (गणोंमें राजाके नीचे एक
 पद), ५२१ (सेनानायकके उपरका पद) ।
 उपलाप । ५२२ (= विस्तृत) ।
 उपलाभ । २२ (= साक्षात्कार) ।
 उपनादक । १७५, २७३ (= निद्रक) ।
 उपविचार । उपेक्षा—। ५०२ (छ) ।
 उपविचार । सौमनस्य । (६) ५०१ ।
 उपविचार । दौर्मनस्य—। ५०२ (छ) ।
 उपशम । २३, २८८, ४१४ (= शांति) ।
 उपशमन । १०९ (= शमन, पैमला) ।
 उपसंपदेषणी । ५३ (भिक्षु दीक्षा चाहने वाला)
 उपसंपदा । २४, १४७ ५६० (= भिक्षु
 दीक्षा) ५३ (क्षति चतुर्थमें, तीन शरण
 गमनमें नहीं) ।
 उपसंपन्न । ७४ (= भिक्षु दीक्षा-प्राप्त),
 ३५८ (भिक्षु) ।
 उपसंपादित करना । ५३ (मघकी परीक्षा
 के अनंतर संघके द्वारा कणीय अकरणीय
 सूचना पूर्वक भिक्षु बनाना) ।
 उपसेचन । २१९ (= नैवेद्य) ।
 उपस्थाप [उपस्थाप] । १०३, २४५, २९४
 (= हजारी), ३३८ (= परिचारक),
 ५३० (= नेवक) ।

उपस्थान । २७८, ४२८ (= हाजिरी) ।
 उपस्थानशाला । (= धेउखाना, दनारधर)
 ७१ (ममागृह), ५२२ ।
 उपहृत्य परिनिर्वायी । ४०९ (अना
 गामी) ।
 उपादान । १७, १२९ (प्रतीत्य-समुत्पादका
 अंग), ११ (मामयी), १२९ (काम,
 दृष्टि, दीर्घघन, आत्मवाद-), १५९
 (ग्रहण, रीकार) ।
 उपादानदुरुध । १०५, १२२, १७५ ७९
 (पाच—रूप, यदना, संवा, संस्कार, वि
 ज्ञान), १२४ (दुख), ४९६, ४९७ ।
 उपादि । ५४५ (= दुख कारण) ।
 उपाधि । १०८ (= मल), ६५१ (रागभादि) ।
 उपाध्याय । ५० (के कतव्य), ५७१ (की
 व्याख्या) ।
 उपायास । १२४ (हैरानी) ।
 उपासक । १९ (गृहस्थवेला, दो वचनमें),
 २३ (तीन वचनमें) ।
 उपासना । ४७७ (= सत्संग) ।
 उपासिका । २७ (गृहस्थ शिष्या, तापरघन
 से प्रथम) ।
 उपेक्षक । १७४ (तृतीयध्यानको प्राप्त योगी) ।
 उपेक्षा । १२३ (बोधव्यग) ।
 उपेक्षा-भाजना । ११३, १८७ (शत्रुकी ज
 दुनाकीभी उपेक्षा करना), ३४८ ।
 उपोसथ । ४३३ (शृणु चतुर्था और पृथिमा
 का मत), ५७२ ।
 उपोसथि । ८९ (मत रखनेवाला) ।
 उपाटन । ८५ (उपाटना, उपाहना) ।
 उपाटन । ८७ (सदा रहता रहनवाला, ता
 पम, उदेमने) ।
 उभमत । ४८७ (अंवा) ।
 उभनाभागविमुक्त । १२६, २५७
 (अर्धभाग) ।

कामचञ्चुन्द । १२१ (वासुक्ता, नीरण) ।
 काम-दुष्परिणाम । २२९ (भोगोकी
 बुराईया) ।
 कामेष्टियज्ञ । ३६ (किसी कामनासे किया
 जानेवाला यज्ञ) ।
 कामोपभोग । ११६ (= कामभोग) ।
 काय । १३०, ३५८ (= समुदाय) ।
 कायकलेश । २३ (= आत्मपीडा) ।
 कायगत स्मृति । ४७ (शरीर-संबन्धी अनुकूल
 स्मृति) ।
 काययवन । ५१ (= कमरबन्ध) ।
 कायजिज्ञान । ३४ (धातु, ठठक आदिका
 ज्ञान) ।
 कायसाक्षी । २५७ (= दोष) ।
 काया । ३४ (= त्वक् धातु) ।
 कायानुपश्यना । ११८-२० (१४
 प्रकार) ।
 कार्पापण ४९ [कदापण] । (क्रयशक्ति)
 ८५, ३८८ ।
 कार्पापणक । २३० (एक दारौरिक ढंढ,
 जो शायद पैसा लपाकर दागनेका था) ।
 कार्पापण । काल—२५१ (सापेका पैसा) ।
 कार्पापणी । ३२९ (= कुक्षणा), ३३८
 (कम्बुर्षा) ।
 कालनादा । १७३ (समय देखकर बोलने
 वाला) ।
 कालारिका । १७२ (हथिनीकी जाति) ।
 कालिक । २९३ (कालातरका) ।
 कापायकठ । ७७ (= कापाय माघ गारो) ।
 कापायवस्त्र । २८ ।
 किंचन । ४९७ (= प्रतिबंध ३) ।
 किलज । ४४७ (= टोकरा) ।
 किशोर । १८३ (= बटुआ) ।
 कुटुम्बिक । ३२९ (= पक्ष) ।
 कुदाल पिटक । (= कुदाल टोकरा) ।

कुमार । ४६ (= बच्चा) ।
 कुम्भदासी । ३२९ (= पनभरनी दासी) ।
 कुल, उच्च—१८२ (क्षत्रिय, ब्राह्मण, राजन्य,
 वैश्य, शूद्र) ।
 कुलनाश-कारण । १११ (आठ) ।
 कुल । नीच—१८२ (चंडाल, निपाद, वेणु,
 रथकार, पुष्प) ।
 कुलपुत्र । २२, ५० (= सान्दानो), २२४
 (कुलीन) ।
 कुलिक । अग्र—३८२ (कुलिक, नगरका एक
 अवतनिक अफसर होता था, उसके ऊपर
 अग्रकुलिक) ।
 कुलमाप [कुम्भास] । ३१३, ३५४, ४१८
 (= दाल) ।
 कुल्ल । ७२९ (नदी पार करनेका एक साधन) ।
 कुल्लकविहार । ५६२ (मंत्रीविहार) ।
 कुशल । ४७ (पाँच, अकडा), ६७, १७४
 (= उत्तम), २३१, २८१ (पंडित), ४८९
 (चतुर) ।
 कुशल । अ—६३, २३१ (= बुरा) ।
 कुशलकर्मपथ । १०, ५११ (दम) ।
 कुशलकर्मपथ । अ—५११ (दस) ।
 कुशलराम । २२८ (अच्छी बात), २८६
 (पुण्य) ।
 कुशलमूल । ४८१ (अलोभ, अद्वेष, अमोह) ।
 कुशलमूल । अ—४८० (राग, द्वेष, मोह) ।
 कुशलसयुक्त । १७७ (= निर्मल) ।
 कुसीत । ५०५ (= आलस्य) ।
 कुसीत वस्तु । ५०५ (जाड) ।
 कूट । ८६ (वर्तन), १५६ (छोटो, गिरि-
 शिखर), २६४ ।
 कूट । कस—४६४ (= खोली धातु) ।
 कूट । तुला—(= खाटो ताँ) ४६४ ।
 कूट । प्रमाण—४६५ (छोटो नाप) ।
 कूटागार । २६८, ३५० (= रोग) ।

कृतवेदी । १३ (=कृतज्ञ) ।
 कृत्स्नायतन । २७१, ६१० (दस, दृष्टियोग) ।
 कृष्ण । २१३ (=पिशाच) ।
 कृष्णाभिजातिक । १६९ (=दुर्गुणोत्ते
 मरा) ।
 कैटुम । ३७६ (=कल्प—श्रीतसूत्र, धर्मसूत्र
 गृह्यसूत्र) ।
 केट्टि-संथार । ७१ (किनारेसे किनारा
 मिलाना) ।
 कोप्य । ९७ (=अधार्मिक) ।
 कोप्य । अ—९८ (धार्मिक) ।
 कोल । २६१ (याका वृक्ष) ।
 कौशट्य । ४९१ (निपुणता ३) ।
 कौटुस्यक । २६९ (=कौचदील) ।
 ककच्योपम । १७७ (आराके समान) ।
 क्रियामात्री । २४९ (शुभाशुभ कर्मोंके फल
 को मानेवाला, कर्मशास्त्री) ।
 क्रोश । ६४ (=मल), ३२१ (राग, द्वेष,
 मोह) ।
 क्रोश । उप—। १७४, २६४ (=मल),
 (दे० उपश्लेता) ।
 क्रोश-प्रहाण । ३२१ (राग प्रहाण, ऋ०,
 मोह०) ।
 क्रोशहानिके उपाय । २७४ ।
 क्लामक । १७६ (बैजडेके पासका एक मात
 पिंड) ।
 क्षत्ता । २३२ (महामात्र्य, ग्राह्येष्ट सेक्रेती) ।
 क्षय धर्मता । १७७ (=अनित्यता) ।
 क्षाते । १०८, (ओचित्य), १९३ (चाह),
 ३६४ (क्षमा) ।
 क्षिप्रामिक्ष । ४७० (=प्रखर बुद्धि) ।
 क्षीणाक्षय । ६६, २६४, ६०४, ६६७,
 (अद्वय, मुक्त) ।
 क्षुद्र अनुशुद्र । ६४१ (छोटे छोटे मिश्र-
 नियम) ।

क्षुरप्र । २१४ (=बाण) ।
 खमनीय । ९९ (=वीरु=क्षमक), ३१९,
 ३९९ (अच्छा) ।
 खरिया । ३९७ (झोरो) ।
 खारापतच्छिक । २३० (एक शारीरिक-
 दंड) ।
 खारी । ३३ (=खरिया, झोरो) ।
 खारो विप्रिध । २१ (=मोरोमत्रा बाण-
 प्रस्थीके सामान) ।
 खेलपिंड । २९२ (=बूक) ।
 गण । ४१४, ५७२ (=जमात), ६२०,
 ४७९ (प्रजातन्त्र) ।
 गणक । ३०९ (हर्क), ४६२ ।
 गणी । २६६ (=गणाचार्य) ।
 गति । ४९७ (पात्र) ।
 गध । ३४ (घात), ४९६ (घार) ।
 गधकुटी । ८६, ३३६ (बुद्धके निगमकी
 कोठी) ।
 गधर्व । १८८, १८३, १८४ (अन्तरामत्र
 सत्त्व) ।
 गर्भ । ३४०, ५६२ (=जोड़ी) ।
 गर्भ अयक्ताति । ४९६ (गर्भमें आना ४) ।
 गव्यूति । ३, २१०, ५३९ (=१ योजन) ।
 गाथा । ६६, १४२ (बुद्ध भाषित) ।
 गुण । ८३ (=करामात), ४९८ (शौकमें ०) ।
 गुरुधर्म । ७९ (भिक्षुणियोके भाठ) ।
 गृहकार । १६ (=मार) ।
 गृहपति । ७३, १७१, ४७८ (वदय, १८६
 (गृहस्थ) ।
 गेय । १४७ (व्याकरण, बुद्धभाषित) ।
 गोघातकभूना । १२८ (गाय मारनका
 पोड़ा) ।
 गोघातकसा छुरा । ३२० ।
 गोचरग्राम । ४१९ (=मिक्षाटन योग्य
 वास्तवर्ती ग्राम) ।

कामच्छन्द । १२१ (कामुक्ता, गीतरण) ।
 काम-दुष्परिणाम । २२९ (भोगोकी
 घुराहया) ।
 कामेष्टियज्ञ । ३५ (किसी कामनासे किया
 जानेवाला यज्ञ) ।
 कामोपभोग । ११६ (= कामभोग) ।
 काय । १३०, ३९८ (= समुदाय) ।
 कायकलेश । २३ (= आत्मपीडा) ।
 कायगत स्मृति । ४७ (शरीर-संबन्धी अनुकूल
 स्मृति) ।
 कायव्रत । ५६१ (= कमरबद्ध) ।
 कायविज्ञान । ३४ (धातु, ठठक आदिका
 ज्ञान) ।
 कायसाक्षी । २५७ (= शौच्य) ।
 काया । ३४ (= त्वक् धातु) ।
 कायानुपश्यना । ११८-२० (१४
 प्रकार) ।
 कार्पापण ४९ [कटापण] । (क्रयशक्ति)
 ८५, ३८८ ।
 कार्पापणक । २३० (एक शारीरिक ढंढ,
 जो शायद पैसा तपाकर दागनेका था) ।
 कार्पापण । काल—२५१ (तानेका पेसा) ।
 कालकर्णी । ३२९ (= कुलक्षणा), ३३८
 (कण्ठमुखी) ।
 कालमादा । १७३ (समय दखकर बोलने
 वाला) ।
 कालारिका । १७२ (हथिनोका जाति) ।
 कालिक । २९३ (कालांतरका) ।
 कापायकठ । ७७ (= कापाय मात्रागार) ।
 कापायवस्त्र । २८ ।
 किंचन । ४९७ (= प्रतिबन्ध ३) ।
 किलज । ४४७ (= टोकरा) ।
 किशोर । १८३ (= बढड़ा) ।
 कुटुम्बिक । २२९ (= पञ्च) ।
 कुदाल-पिटक । (= कुदाल टोकरा) ।

कुमार । ४६ (= बच्चा) ।
 कुम्भदासी । ३२९ (= पनभरनी दासी) ।
 कुल, उच्च-११८२ (क्षत्रिय, ब्राह्मण, राजन्य,
 वैश्य, शूद्र) ।
 कुलनाश-कारण । १११ (आठ) ।
 कुल । नीच—१८२ (खंडाल, निपाद, वेणव,
 रयकार, पुष्प) ।
 कुलपुत्र । २२, ५० (= खान्दानो), २२४
 (कुलीन) ।
 कुलिक । अग्र—३५२ (कुलिक, नगरका एक
 अवैतनिक अफसर होता था, उसका ऊपर
 अग्रकुलिक) ।
 कुटमाप [कुम्मात] । ३१३, ३५४, ४१८
 (= दाल) ।
 कुल । ५२९ (नदी पार करनेका एक माधन) ।
 कुलकविहार । ५६२ (मेघीविहार) ।
 कुशल । ४७ (पवित्र, अच्छा), ६७, १७४
 (= उत्तम), २३१, २८१ (पवित्र), ४८९
 (चतुर) ।
 कुशल । अ—६३, २३१ (= दुरा) ।
 कुशलकर्मपथ । १०, ५११ (दम) ।
 कुशलकर्मपथ । अ—५११ (दम) ।
 कुशलधम । २२८ (अच्छी बात), २८६
 (पुण्य) ।
 कुशलमूल । ४८१ (अलोभ, अद्वेष, अमोह) ।
 कुशलमूल । अ—४८९ (राग, द्वेष, मोह) ।
 कुशल सयुक्त । १७७ (= निर्मल) ।
 कुसीत । ५०५ (= आलस्य) ।
 कुसीत घस्तु । ५०५ (शाठ) ।
 कूट । ८६ (बर्तन), १५६ (चोटी, गिरि-
 शिखर), ४६४ ।
 कूट । कस—४६४ (= खोटी धातु) ।
 कूट । तुला—(= खाटा तौल) ४६४ ।
 कूट । प्रमाण—४६५ (खोले नाप) ।
 कूटागार । २६८, ३५० (= कोठ) ।

कृतवेदी । ५३ (= कृतव) ।

कृतस्नायतन । २७१, ५१० (दस, दृष्टिभोग) ।

कृष्ण । २१३ (= पिशाच) ।

कृष्णाभिजातिक । १६५ (= दुर्गुणोंसे मरा) ।

कैटुम । ३७६ (= कल्प—धोतसूत्र, धर्मसूत्र गृह्यसूत्र) ।

कोटि सधार । ७१ (किनारेसे किनारा मिलाना) ।

कोप्य । ९७ (= अधार्मिक) ।

कोप्य । अ—९८ (धार्मिक) ।

कोल । २५१ (बरका पृष्ठ) ।

कौशत्य । ४९१ (निपुणता ३) ।

काकृत्यक । २५० (= स्कोषशील) ।

करुचोपम । १७७ (आराके समान) ।

क्रियानादी । २४९ (शुभाशुभ कर्मोंके फल को माननेवाला, कमवादी) ।

क्लेश । ६४ (= मल), ३२१ (राग, द्वेष, मोह) ।

क्लेश । उप—। १७४, २६४ (= मल), (३० उपक्लेश) ।

क्लेश प्रहाण । ३०१ (राग-प्रहाण, द्वेष, मोह) ।

क्लेशहानिके उपाय । २७४ ।

क्लामक । १७६ (बैजडेके पासका एक मास पिय) ।

क्षत्ता । २३२ (महामात्य, प्राङ्मुख-सेनेदार) ।

क्षय धर्मता । १७७ (= अनित्यता) ।

क्षाति । १०८, (आचित्य), १९३ (बाह), ३६४ (क्षमा) ।

क्षिप्रामिक्ष । ४०० (= प्रखर-उदित) ।

क्षीणान्न । ५५, २६४, ५१४, ५६७, (अर्हन्, मुक्त) ।

क्षुद्र अशुक्षुद्र । ५४१ (छाटे छोटे मिश्र-नियम) ।

क्षुरप्र । २१४ (= वाण) ।

खमनीय । ९९ (= ठीक=अनुकूल), ३१९, ३९५ (अच्छा) ।

खरिया । ३९७ (भोरी) ।

खारापतच्छिद्रक । २३० (एक शारारिक-दड) ।

खारी । ३३ (= खरिया, झोली) ।

खारो चिविध । २१ (= भोरीमथा वाण-प्रहरीके सामान) ।

खेलपिंड । २९२ (= युक) ।

गण । ४१४, ५७२ (= जमात), ५२०, ४७५ (प्रजातंत्र) ।

गणक । ३०९ (इर्क), ४६२ ।

गणी । २६६ (= गणाचार्य) ।

गति । ४९७ (पाव) ।

गध । ३४ (घात), ४९६ (चार) ।

गधकुटी । ८६, ३३६ (बुद्धक तिरासकी कोमरी) ।

गधर्व । १२८, १८३, १८४ (अन्तरामत्र सत्त्व) ।

गर्भ । ३४०, ५६२ (= कोटी) ।

गर्भ अयुक्ताति । ४९६ (गर्भमें आना ४) ।

गव्यूति । ३, २१०, ५३५ (= ६ योजन) ।

गाथा । ५०, १४२ (बुद्ध भाषित) ।

गुण । ८३ (= कामात), ४९८ (क्षोभ ६) ।

गुरुधर्म । ७० (मिश्रणियोंके भाठ) ।

गृहकार । १६ (= मार) ।

गृहपति । ७३, १७१, ४७८ (वेदय, १०६ (गृहस्थ) ।

गेय । १४२ (व्याकरण, सुद्धभाषित) ।

गोघातकमुना । १५८ (गाय मारका पीड़ा) ।

गोघातकया कुरा । ३२० ।

गोचरग्राम । ४१५ (= मिश्रान्न-योग्य पाशवर्ती ग्राम) ।

गोणकृतयत् । ३६० (पोस्तीन) ।
गोत्रभू । ७७ (नामधारी) ।
गोत्रवाद । ५१६ (दे० जातिवाद) ।
गोपानसी । २९३ (= ढोढ़ा), ४१७
(ढोढ़ा, कड़ी) ।

गो माहात्म्य । ३६५ ।
गो रस । १५८, ३६० (दूध, दही, छाछ,
मसूरन, घी) ।

गो-विकर्तन । ४१६ (= गाय काटनेका
घुरा) ।

गोहिस्वा । ३६५ ।

गौरव । ५०१ (उ) ।

गौरव । अ—४९९ (छ) ।

ग्रहणी । ३५७ (पाचनशक्ति), ४२०
(प्रकृति) ।

ग्राम ग्रामिक । ४१० (ग्रामका अफसर) ।

ग्रामणी । ११० (ग्राम अफसर) ।

ग्रामान्तर-कटप । ५५६, ५६० ५६४
(विनय विरुद्ध विधान) ।

ग्राम्य । २६ (= हान) ।

ग्लान-प्रत्यय । ७१ (शोगि पद्य) ।

घोष । ६८ (= शब्द) ।

घ्राण । ३४, (घातु) ।

घ्राण विज्ञान । ३४ (घातु) ।

ककुद-भाड । राज—४७६ (छत्र, व्यजन,
डण्णीय, झङ्गा, पादुका) ।

चक्ररत्न । ११ (चक्रवर्तीका दिव्य आयुध)

चक्रवर्ती । ४३ (राजा) ।

चक्रवारा । ८४ (= महाद्वारा खोल) ।

चक्षु । ३४ (घातु, इन्द्रिय), ३४ (= आल,
एक घातु, एक इन्द्रिय) ।

चक्षुविज्ञान । ३४ (१ घातु), १२६ (= चक्षु
और रूपके मिश्रणसे जो रूप संबंधी ज्ञान
होता है) ।

चक्षु-सम्पर्ग । ३४ (चक्षु और रूपका मिलना)

चक्रमण । ३२ (= दहलना), ६९ (दहलनेकी
जगह), ८६ (दहलनेका चतुतरा) ।

चक्रमण-वेदिका । ९६ (दहलनेका चतुतरा) ।

चक्रमण शाला । ७१ (दहलनेका बराडा) ।

चड । ६१ (= क्रोध) ।

चडाल पुत्रक । ५१७ (नगर प्रवेश) ।

चरण । २९ (= विचारण), २१६, ३९०
(= आवरण) ।

चर्म-खड । ५७४ (= चमड़ेकी आसनी) ।

चातुर्हापिक वर्षा । ३३२ (चारो द्वीपोंमें
लगातार बरसनेवाला वर्षा) ।

चातुर्महापथ । १९६ (= चौराहा) ।

चातुर्याम सवर । (देखो, मगर, चातुर्याम-) ।

चातुर्वर्षी शुद्धि । १८० (विद्या और भाव
रणके अनुसार वृण-व्यवस्था) ।

चारिका । २२ (= यात्रा), ७१ (शमत),
२१० (स्वरित, अस्वरित-), २६२ (ची-
वर धन जानेपर तीनमास बाद) ।

चिकित्सा । श्रुत्य—३०२ ।

चिता । ५४३ (विनाना-लीपना) ।

चित्तविनिवध । ५०० (चित्तको मुक्त न
हाने देने वाले) ।

चित्तविचर्च । ४६९ ।

चित्तानुपश्यना । १२१ (स्मृति-प्रस्थान) ।

चित्रकार । १९ (= पुस्तकार) ।

चिंतामणि । ९२ (जादूकी विद्या) ।

चोरक-वासिका । २३० (एक प्रकारका
क्षीर-द्रव्य) ।

चीवर । ४४, ७१, २६७ (भिक्षुके वस्त्र),
३०७ (छ प्रकारके चीवर जायज) ।

चीवर । गृहपति—३०६ (गृहस्थाना
दिया चीवर) ।

चीवर । त्रि—१४३ (अन्तरवासक = छद्मी,
उत्तरामग = झकहरी चादर, सवादी =
दुहरी चादर), ३०७ ।

चीवर-प्रभार । ३२५ ।
 चीवरसख्यामर्यादा । ३१२ ।
 चुगी । ४३५ ।
 चुल्ल । ८८ (=छोटा) ।
 चुल । ५७९ (=छोटा) ।
 चेतसिक । १२४ (=मानसिक) ।
 चेत परिज्ञान । ५२६ (=परचित्तज्ञान) ।
 चेतोखिल । ५९९ (=चित्तके काले ५) ।
 चेत्य । ५२१ (=चौरा, देवस्थान), ५४३ ।
 चैलपक्ति । ४१४ (=पावदा) ।
 चोचपान । १६७ (विकालम विहित के-
 का शत) ।
 चोदना वस्तु । ४९१ (आक्षेपका त्रिपद
 ३) ।
 चोर । ३६७ (=डाह), ५१८ (=
 गुन्दा), ५२१ (=अपराधा) ।
 चोर । महा— । ३२० (पाच) ।
 चोरा । ३११ (व्याख्या) ।
 च्यवन । १२३ (च्युत होना, मरण) ।
 च्युत । २७३ (=मृत) ।
 च्युति उपपादज्ञान । १७५, ४१९ (=
 प्राणियोंके जन्म-मरणका ज्ञान, द्वितीय
 विधा) ।
 च्युति-उपपाद ज्ञान । ४१९, ४६८ (=
 च्युत्युत्पादज्ञान) ।
 छु आरयतन । (देखो आरयतन) ।
 छुन्द । १२८ (=सम्मति = Vote) (निश्चय),
 १७९, २४४, ३८१ (राग, रवि),
 २०६ ।
 छुन्दजात । ४९ (=आन्दित) ।
 छुन्दराग । १२९ ३० (=प्रयत्नकी हच्छा) ।
 छुन्द शलाका । ४३३ (समति = Vote का
 रजड़ा, जो पुर्जाकी जगह होता थी) ।
 छुनि । ५४५ (चमड़ेकी ऊपरी मिठी) ।
 छारिका । ८४५ (=शाय) ।

छिन्नक । ३०७ (=मंड खंड कर जोड़ा) ।
 जघाविहार । १९६ (=बहल-कदमी) ।
 जटासामग्रो । ३३ ।
 जटिल । ३०, १६३, २८७ (=जगधारी,
 अग्निपूजक ब्राह्मण मंत्रदाय, वाग-प्रस्थी)
 ४३५ (अग्निपूजा, जलस्नान आदिसे
 पाप शुद्धि मानने वाला) ।
 जटिलक । २८७ (जटाधारी, अग्निप्रविराज,
 छापम) ।
 जम्बूपान । १६७ (विकालम पय जामुन
 का रस) ।
 जनपद । २१४ (=देश) ।
 जनपद कल्याणी । १९६, २०५ (दशकी
 सुन्दरतम स्त्री), २८१ (सुन्दरियोंकी
 राना) ।
 जनपद-चारिका । १४३ (=देशाटन) ।
 जताग्र । ५१ (=स्नानागार) ।
 जरा । १७ (=शुश्रावा) ।
 जरा मरण । १२९ ।
 जलोष्णीपान कटप । ५०६, ५६०, ५६५
 (अविहित पान) ।
 जातक । १४२ (बुद्ध-भाषित) ।
 जातरूप-रजत । १५५ (=निपद्य), १७३
 (सोना चादी) ।
 जातरूप रजत-करप । ५५६, ५६०, ५६५
 (विनय विरुद्ध विधान) ।
 जाति । १७ (=जन्म), १२८ ।
 जातिवाद । २१८ (गोत्रवाद, जन्मसे ऊँच
 नीच जाति मानना) ।
 जानपद । ९७ (दीक्षाता), २३५ (पा
 मीण) ।
 जिह्वा । ३४ (धातु = इन्द्रिय) ।
 जिह्वाविज्ञान । ३४ (धातु, और रसय
 योगसे उत्पन्न होनेवाला भाव) ।
 जिन । ३६३ (=बुद्ध) ।

जीवन सस्कार । १३२ (= प्राण शक्ति) ।
 जगुप्सु । १३८, १४९ (घृणा करने
 वाला) ।
 क्षति । ७२, १०९, ५४८, ५६३, (निवेदन,
 सघन मन्सुत प्रस्ताव पेश करनेसे पूर्व
 दी जानेवाला सूचना) ।
 क्षति-चतुर्थ । ३ (नसिमो लेका प्रस्ताव
 को चार दृष्टावट) ।
 जातक । २५२ (= जातिपितादरी वाले) ।
 ज्ञाति । १८९ (कुल) ।
 ज्ञान । २६८ (= दर्शन), ४९४ (चार) ।
 ज्ञान दर्शन । २६८ (ज्ञानका मनसे प्रत्यक्ष
 करना), ३२१ (३ विचार्य) ।
 ज्येष्ठ । १५२ (= प्रधान) ।
 ज्येष्ठक । ५७० (= सुखिया) ।
 ज्योतिर्मातिका । २३० (दागनेवा दूध) ।
 भूऽ घोलना । ६६ (निद्रा) ।
 तडाक । ४२, ४३ (= चहलचा) ।
 तत्पापीयसिका । ४८५ ५०५ (अधिकरण-
 शमय) ।
 तथ । १३२ (= अथार्थ) ।
 तयागत । १९, ३९, ४८ (बुद्ध) १२४
 (मरनेक बाद) ।
 तयागतका घाद । १३२ ।
 तल्य । १९४ (= भूत = यथार्थ) ।
 तदी । ६४ (आलस्य) ।
 तनुनाय [तुन्ननाय] । ७१ (जुलाहा) ।
 तर्कावचर । अ—(तर्क से अप्राप्य) २०६
 (तर्कसे अगोचर) ।
 तापस । २८६ १७ (आठ—सपुत्रभार्य, उ
 लाचारी, अनग्निपक्षिक, अम्वयपाक,
 अश्वमुष्टिक दत्तमलकलिक, प्रवृत्तफल
 भोजी, पाहु पलायिक) ।
 ताम्रलाह । ७३ (तावा), ५४७ ।
 ताल । डूटा-६४, ५५० ।

तिर्यग्धारक । ४८५, ५७५ (घासने ढाँक
 दना जैमा अगड़ेका शमन) ।
 तिरच्छाण-कथा । २८० (व्यर्थकी कथा),
 (दू कथा) ।
 तिर्यक् कथा । १८९ (तिरच्छाणकथा) ।
 तिर्यग्धानि । ७४, ४९७ (पशु पक्षी) ।
 तीर्थ । ४६ (= संप्रदाय), १८९, २६६ (पथ),
 ३९०, ५२८ (घाट) ।
 तीर्थकर । ९१, २६६ (पथ स्थापक), ३३३
 (= पथ चलानेवाला, सपनायप्रवर्तक) ।
 तीर्थायतन । २४९ (= पथ) ।
 तीघ छुद । ५०४ (= यदुन अनुरागवाला) ।
 तुच्छ । ८७ (खाली), २२५ (रिक्त),
 २६१ (झूठ) ।
 तुपित । ५०७ (दबलोक) ।
 तृष्णा । १७, १२९ (प्रतीत्य-समुत्पादका
 अग), १२५ (= विषय चिंतनके बाद
 उमसी प्राप्तिका लोभ), १२९ (स्व-तृष्णा,
 शब्द०, गंध०, रस०, स्पर्शव्य०, धर्म०),
 ४९० (तीन) ।
 तृष्णाकाय (ध) । ४९९ (छ) ।
 तृष्णोत्पाद । ४९५ (चार) ।
 तेज धातु । १५५, १७६, १७७, १८६
 (अघातम, वाह्य), १७८ (तेज महा-
 भूत), ४७१ ।
 तेजन । ३४५ (= वाणका फल) ।
 तेज सम भावना । १८६ (ध्यान) ।
 तैर्यिक (पंथाई) । ५४० (-की प्रव्रज्या
 ४ मासकी परीक्षाके वा) ।
 त्याग । २५२ (दान) ।
 त्रयस्त्रिंश । ५०७ (दबलोक) ।
 त्रैविध्य । ७३, २४९ (तीनों विद्याभाका
 ज्ञाता), २४२ ।
 त्रैविध्य-ब्राह्मण । २०४ (त्रिविद्य भा०) ।
 येर । ४७ (बूटा) ।

थेरवाद । (दे० रथविवाद) ।

दक्षिण जाति । ४४ (पुरुष) ।

दक्षिणा । ७७ (= दा०) ।

दक्षिणा मिश्रि । ४९६ (= दान-शुद्धि ४) ।

दक्षिण्येय । २५३, ५०५ (दान पात्र) ।

दक्षिण्येय पुट्टल । ५०५ (आठ) ।

दड । ७४ (परिवार, मूलप्रतिरूपणार्हं मानसगर्ह, मानस-चारिक, आह्ला नाहं) । ४४५ (= कर्म, कायिक, धार्मिक, मानसिक) ।

दडदीपिका । ३२८, ५१५ (= मशाल) ।

दत्तप । ३५ (= नाग, गज) ।

दन्तयटकलिक । २१६ (दातमे छाल छीलकर खानेवाला तापस) ।

दम्पसारथी । ३०, १०१ (= चातुक सगर) ।

दरिद्राहक । १८४ (= मोर्दिहार) ।

दर्शन । २६ (= माहादकार), २७ (धान), ३२१ (तीन विचार्य) ।

द्वज । ३८७ (= कीडा, मद्), ४८० (महमा) ।

दशवल । ४८, १९० (= बुद्ध), ५४ (बुद्धे-) ।

दशवर्ग । ३९४ (दश मिश्रुनीवा समूह) ।

दशवस्तु । ५६२ (पञ्चिपुत्रक मिश्रुआके विनय विरुद्ध दम विधान) ।

दस्यु । २३५ (= दुष्ट) ।

दस्यु । कु-३२० (= छोटा हाकू) ।

दह्वर । ९१ (अल्प-वयस्क, छोटा), ५३० (तरुण) ।

दहरक । २९९ (= तरुण) ।

डाठा । ५४६ (= दा०) ।

दात । ३४९ (शिक्षा, भोजन), ७० (सश्रम) ।

दान उपपत्ति । ५०७ (आठ) ।

दानपति । २३५ (= दायक) ।

दानजस्तु । ५०६ (आठ) ।

दायज्ज । ५७, २७८ (= वरासत) ।

दायाद् । ४७ (= गरिम) ।

दाज पालक । ९९ (= वनपाल, माली) ।

दास । ४२, ४३, १८१ (= गुलाम) ।

दास गृह । ३०९ (काठगोश्रम) ।

दास दासी । ३०० (इनाममें) ।

दियचक्षु डाा । १६, १७, ४६९, २७३ (विस्तारसे) ।

दिन्यश्रोत्र धान । ४३७ ।

दिशा नमस्कार । २७४ ।

दिशाप्रमुख । २९८ (दिगत प्रसिद्ध) ।

दिसापामोक्ख । ३०१ (दिगत विद्यमान) ।

दीर्घरात्र । २२८ (बहुत समय)

दु ग । २३ (आर्यमत्त्व २), १२४ (= उपा दान पत्र-रूप यदना, संना, सस्कार विधान), १२३, १७६,

दु यता । ४९० (तान) ।

दु य निगैध । २५ (आर्यमत्त्व ३), १२३ (विस्तारसे) ।

दु खनिगैध गामिनी प्रतिपद् । २३ (आर्य-म य ४), १२५ (विस्तारसे) ।

दु य-स्समुदय । २३ (आर्यमत्त्व), १२४ (विस्तारसे) ।

दु य रुद्ध । २२० (= दु लोका पुन ।

दु प्रतिनिस्सर्गो । ५०३ (= हठी) ।

दुर्भग्ता । ८१ (= करिनाइ) ।

दुर्मिक्ख । ११० (जहा मिक्खा पाना कदिन हो) ।

दुश्चरित । १३८ (काय, उचन, मन),

(काय-—हिंसा, चोरी व्यभिचार,

मन-—लोभ द्वोद मिग्खा दृष्टि, वचन-

—झठ, झुगली, कटुवचन, प्रलाप) १७५

(दुराचार), २३० (पाप), ४८९ ।

दु शील । ७८, ४९८ (दुराचारी) ।
 दुष्कर-क्रिया । २३० (= तपस्या) ।
 दुष्कृत [दुष्कृत] । ७४, ८३, ९३, १०८,
 १६९ (छोटा अपराध) ।
 दुष्प्रतिमञ्च । १८० (= वाद करनेमें
 दुष्प्रतिम) ।
 दुस्स । ७६ (दुष्प्रा), १४२ (थान) ।
 दुस्सकोट्टागार । ३२८ (= कपड़ेका
 गोदाम) ।
 दुस्सपण्डित । ११३ (कपड़ेका व्यापार) ।
 दु स्वोद्य [दुदुदु] । १०१ (समाधि विज्ञान),
 १०७ (दुराचार) ।
 दुष्टोर्कर्म । ३२९ (= रक्ष) ।
 दुष्ट धर्म । २९ (= प्राप्तधर्म), ९८ (इसी
 जन्मम, तत्काल) ।
 दुष्टि । १०९, १२० (= धारणा, संयोजन),
 ४८६ (निदान्त) ।
 दुष्टि । सम्पक्—(देगे सम्पक्-दुष्टि) ।
 दुष्टि-उपादान । १२९ (मतवादका आग्रह) ।
 दुष्टिगत । १७० (= धारणम स्थित तत्त्व) ।
 दुष्टि-निध्यानान्त । ३४२ (कुदृष्टि
 महान) ।
 दुष्टि-निध्यानाक्ष [द्विद्विनिष्ठानक्ष] ।
 २०० (भादृष्टि विशाक, धम) ।
 दुष्टि परामर्श [द्विद्वि-परामर्श] । ४८२
 (कुदृष्टिधम) ।
 दुष्टि-प्रतिषेध । ८०४ (= सम्माग न्यून, ।
 दुष्टिप्राप्त । २९७ (अर्हत्) ।
 दुष्टि निशुद्धि । ४८९ (सम्पक् अनुपार
 शान) ।
 देव । १०७ (चातुर्दशारवित्र, त्रयस्त्रिंशत,
 याम, निमागति, परनिमित्त उत्तर्त्ता,
 मलकायिक) ।
 देव ऋषि । ३८३ (शुद्ध) ।
 देवता । २८३ (८ प्रकार) ।

देव निकाय । १०९ (= देव-समुदाय) ।
 देवपुत्र । २ (देवता) ।
 देवलोक । ३९ ।
 देवस्थान । १४ ।
 देशना । २० (= उपदेश), १११ (= क्षमा-
 प्रार्थना) ।
 दोहद । ४७९ (गर्भिणीकी क्रिपी चीजकी
 हज्जा) ।
 दोर्मनस्य । ३४ (= दुर्मनता), १२४ ।
 द्यूत । २७९ (जुयेके दोष ६) ।
 द्युगुलकल्प । ११६, ११९, १६४ (विनय-
 विरह-विधान) ।
 डारकोष्टक । ७८ (कोठावाला बड़ा द्वार),
 ४१० (मोत लाना) ।
 द्वारशाला । ४९२ (= दालान) ।
 द्राणी । १३७ (= दान) ।
 धम्मकास । २६६ (= धिक्कार) ।
 धर्म । ३४ (धातु), १२६ (विचार), ९३,
 १४८ (सूत्र), १०९ (ध-स्मृतिप्रस्थान,
 ४ सम्पक्प्रधान, ४ ऋद्धिपाद, ९ द्वाविष,
 ६ बल, ७ बोध्यग, ८ आर्य अष्टांगिक-
 माग), ६७, १०८, १२६ (घात), १२२
 ११८ (= स्वभाव), १२९ (मनसा वि-
 पय), ४८९, २३९ (परमतत्त्व) ।
 धर्म । एकांगिक—१९९ ।
 धर्म । पाप—२१ (धुई) ।
 धर्म । व्यञ्जनीय—१९८ (शमय, विपय
 ना) ।
 धर्म कथिक । ३ (उपदेशक), ७३ (धर्म
 व्याख्याता), ४६९, १७३ ।
 धमचैत्य । ४८० ।
 धमता । २ (= विज्ञपता) ।
 धर्मदान । १४४ (= धमपद) ।
 धर्मधर । १३४ (सूत्रपिक्काश) ।
 धर्मजातु । ४९८ (= मनसा विपय) ।

धर्मधारणा । २२७ ।

धर्मपर्याय । ३८ (= उपदेश) ।

धर्मविचय । १२२, १२३ (धर्म-जन्येण, बोध्य) ।

धर्मविनय । २७ (= धार्मिकप्रदाय), ७१ ।

धर्मदादिता । १०७ (१८) ।

धर्मदादिता । अ-१०७ (१८) ।

धर्मवेद । २६३ (= धर्मज्ञान) ।

धर्मसमादान । ४९३ (= धर्मस्वी-
कार ४) ।

धर्म सेनापति । २१० (= सारिपुत्र) ।

धर्मस्फुट । ४९५ (४) ।

धर्मस्वामी । ९८ (= बुद्ध) ।

धर्मानुपश्यन्ता । १२१ (५ नीचरणधर्म, ५
उपादानधर्म, १० सद्योचनधर्म, ७ बोध्य
गधर्म, ४ आर्द्यमत्यधर्म) ।

धर्मानुपश्यी । १२७ ।

धर्मानुसारी । २८७ (सौम्य) ।

धर्मानुस्मृति । १९१, २९३ ।

धर्मान्तेयासी । १७१ (नि-गुल्कक्षात्र),
२९८ (काम करके पढ़ने वाला) ।

धर्मान्यय । ८२६ (= धर्म प्रमानता) ।

धर्मासन । ३ (व्यासगद्दी) ।

धातु । ३१, १७६, ४९५ (महाभूत), ८०३
(छ धातु), ४८९ (१८ धातु), ४९०
(उक्त ३, लोक ३), ४९० (= तर्क-
वितर्क, कुशा अकुशा) ।

धातु । निस्सरणाय—५०३ (छ) ।

धातुगर्भ । ५२७ (धातुका चहृच्छा) ।

धातुपरिष्ठावण । ५१७ ।

धातुमनसिकार । १२० (कायानुपश्यन्ता) ।

धुत-भ्रग । १४७ (= अग्रभूतेक नियम,
आरण्यक, पिंडपातिक, पासुहृत्तिक, सप
दान चारी) ।

धुतवादी । ४६९ (धुत भग-धारी) ।

ध्यान । १३९, १७४, २७१, ३२१, ४९०-
(चार, विस्तारमे), ५०९ (विस्तार,
चतुर्थ-ध्यानमें दयासावरोध), ५४१-४२
(प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, आका-
शान्त्यायतन, विनाश, आर्किचन्य, ०,
नैवर्त्तमानासना, ०, संनयेदयितनिरोध) ।

ध्यान सुख । १६ ।

धुत्रपरिमोग । ७५ (मन्त्रक उपयोगका) ।

नक्षत्र । ५७९ (= उत्पन्न) ।

नगरक । ५३० (= नगला, छोटा कसबा) ।

नगर-रक्षा । ५२३ (प्राकार और परिखासे) ।

नगरपकारिका । २१९ (= नगर-रक्षिका,
शहर पनाह) ।

नटी । ७ (नर्तकी) ।

नन्दिताग । १२४ (सुख-सन्धी हृष्टता) ।

नय । २४७ (= न्याय) ।

नल । ४७९ (= नरेंद्र) ।

नलकार । (= नरेंद्रका काम करने वाला) ।

नयकर्म । ७२ (शुद्ध निर्माण) ।

नवकर्मिक । ७२ (= विहार मनवानका
तत्त्वावधारक) ।

नहापक । ४६२ (नहलाने वाला) ।

नहायित । १६८ (= हजाम) ।

नहार । १७६ (स्नायु) ।

नाग । १०३ (बुद्ध), ११६ (पाप-रहित) ।

नागवतिक । १७० (= हाथीके जंगलका
आत्मा) ।

नागाउलोकन । ८३३ (= हाथी की तरह
सारे शरीरमें धुमाकर दृष्टता) ।

नाटक । ७ (नृत्य गान) ।

नाथकरणधर्म । ५१० (दम) ।

नानाशाय परमज्ञा । १३४ (विनाशस्थिति,
योनि) ।

नानाशाय नानासंज्ञा । १३४ (विनाश-
स्थिति, विस्तार) ।

नानात्प-प्रज्ञा [नानात्त-पञ्चा] । १११ (स-
माधिविघ्न) ।

नामकाय । १३० (= नाम-समुदाय) ।

नाम-रूप । १७, १३०, ३७७ (प्रतोत्य-
समुत्पादका ण्क अङ्ग) ।

नाली । ४२ (मगधनी), ४३ (प्राय सेरमर) ।
नास्तिरूपादी । २६१ (विस्तार) ।

निकति । ४६६ (= कृतमत्ता) ।

निकेत । ११७ (= घर) ।

निकितधुर । ६१० (भगोडा) ।

निगठ । ८६ (= निग्रय, ग्रंथि रहित, ग्रंथि =
पाप), १६०, ३२९ (जनसाधु), २३१
(न-प्रभाव) ।

निगम । ९९ (= कल्पा) ।

निघट्ट । २१० (= कोश) ।

निदान । १०९, १३० (= समुदय, हेतु,
प्रत्यय), ५४९ (कारण) ।

निधान । ५४६ (= चहवचा) ।

निधानयती । १७३ (सार्थक) ।

निध्यान । २२६ (= ध्यान), २६७
(निदिध्यासन) ।

नि प्रीतिक । १०२ (= प्रीति-रहित) ।

निपुण । २२६ (= पण्डित) ।

निमित्त । १०२ विशेषता), १६७, १७६
(छिग, आकृति) ।

नियति । २६२ (= भवितव्यता) ।

नियुत । ३९ (= लाख) ।

निरर्गल । ३३६ (सवमेध-यन) ।

निरुक्ति । १३१ (= भाषा) ।

निरुद्ध । १९० (= नष्ट) ।

निरोध । (आर्यसत्य) २६ (= दुःख नाश),
२३ ।

निरोध-प्रम । २४ (= नाशस्वभावशाला) ।
२५ (नाश होने वाला) ।

निर्ग्रन्थ । ४४४ (= जेन साधु) ।

निर्दश । ५०४ (विस्तार) ।

निर्दशवस्तु । ५०४ (सात) ।

निर्भोज । १३८ (विस्तार) ।

निर्माणरति । ५०७ (देव) ।

निर्याता । २६५ (= मार्गदर्शक) ।

निर्माण । ९, ३६ (उपधि रहित पद),
३८१ (अन्तर्गमन) ।

निर्वृत । ३७१ (मुक्त) ।

निवेद । ३४ (= वेराग्यकी पूर्वावस्था), १७६,
१९४, २८९ (= उद्दामनीता) ।

निर्वेद-प्राप्त । १७८ (उदात्त) ।

निर्वेधभागीय । ५०३ (संज्ञा ६) ।

निर्वेधिक । ४९९, ५१० (अन्तस्तत्त्वक
पहुंचानेवाली) ।

निवासन । १९६ (पोशाक) ।

निवृत्त । २०७ (= आवृत्त) ।

निशाति । ५०४ (= विपदयना) ।

नि श्रित । ४९४ (= आश्रित) ।

निपाद । ३८७ (जाति) ।

निपीदन । ५६१ (निर्झौना) ।

निष्क । ४१ (= अक्षरफौ) ।

निष्कामना । ३८२ ।

निष्कामण । ५२३ (= निकलना) ।

निष्ठा । २२६ (श्रद्धा), २६१ (धारणा) ।

निष्पाक । ५०४ (= परिपाक) ।

निस्सरण । १३६ (= छद्म-नाग छोड़ना) ।

निस्सरण पञ्चा । २०६ (यंत्रनन निष्कर्षकी
प्रज्ञा) ।

नि सरणाय धातु । ५०० (पाच), ५०३
(छ) ।

निहीन । २१६ (= नाच) ।

नीचरण । १२१, २०७ (५-कामच्छन्द,
व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य कौट्य,
विविक्तित्वा), १७४ (५ अमि या,
व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य-कौट्य,

विचिकित्सा), १०८ (= दहन), २८४,
४६६, ४०८, ५२६ ।

नीलमणि । २८१ ।

नेत्ती [नेत्री] । ४८० (रस्ती, गाठ) ।

नेगम । ७०, २९७ (धेष्टामे उपरका पद),
२३९ (शहरी) ।

नेचयिक गृहपति । २३० (नेगम जानवइ
अधिसारी), २३७ (= धनो वश्य) ।

नेर्याणिक । ५०२ (= वेसा करनेवालेको
दु ल क्षयकी ओर लेजानेवाला), ५२५
(पार कान वाला) ।

नैर्यसंज्ञा नासदायतन । १३५, ९०७ ।

न्यग्रोध । ५७० (धर्म) ।

न्याय । ११८ (= सत्य), २०१ (निर्माण),
३४६ (धर्म) ।

न्याय धर्म । ५४० (= आर्यधर्म = मौर्य-
धर्म) ।

पट । ४, (महार्थ पत्र) ।

पट-पिलोतिका । ४०, ४७ (= रेशमी धनु) ।

पट्टि । २०१ (= टोका) ।

पण । २५८ (= पत्नी) ।

पतिपत्नी गुण । १३७ ।

पतोद । २४० (बोझ) ।

पत्तकल । १०० (= उचित) ।

पत्ति । ३५९ (= पैदल) ।

पद् । २५१ (= चिह्न) ।

पटक । २४३ (= कवि) ।

पदाधिकारी । राज्य—४१० ।

पक्षिणी । २० (रत्न-कमल समुदाय) ।

पक्षानीय अग । ४०९, ४१० (पाच) ।

पन्थन । १७० (= महामार्ग) ।

पन्नाजन [प्याजन] । ३११ (देश-
निकाहा) ।

पन्हार । ५३३ (= पहाड प्राग्भार) ।

पमुट । २६३ (= गाठ, मोटा) ।

परचित्तज्ञान । २७३, ४६७ ।

परनिर्मित घण्टाती । ५०७ (देव) ।

परम ग्रन्थ । २८१ (पत्रिमात्ररु-मिद्वान्त) ।

परामुष्ट । ५०२ (= निम्नित) ।

परि-अग्रदात । १७४ (शुद्ध), ४१७
(सपेद, गोरा) ।

परि उपासना । २०० (= मर्ममग) ।

परिष्ठा । ५२३ (= पाई) ।

परिग्रह । १२९, १३० (= जमा करना),
२०७ (स्त्री) ।

परिग्र । २१९ (= काष्ठप्रकार) ।

परिग्र परिर्जितिक । २३० (एक क्षारोरिक
सजा) ।

परिचर्या । ५७० (= सन्तसग) ।

परिजन । ४३, १५३ (नोकर चाकर) ।

परिजुञ्ज । ३५७ (= क्षानि ४) ।

परिष्ठा । २५० (= त्याग ३—नाम रूप,
यदना) ।

परिष्ठा । १०२ (= धण्य), १३१ (शुद्ध,
अणु) ।

परिदाह । १५९, ५०० (= जलन) ।

परिदेष्ट । १२४ (रोनाधोना) ।

परिनिर्मुक्त । ३०१ (= मुक्त), ५१७
(निवास प्राप्त मृत) ।

परिपथ । २३० (= रहजनी) ।

परिप्राजक । २ (= माथु) ३८ ।

परिप्राजक सिद्धात । २८१ (परमवर्ण) ।

परिभय । ९१ (विरस्कार) ।

परिभाषित । ५३० (सेविन, सेपा) ।

परिमिश्र । १५० (= विच्छिन्न) ।

परिवार । ६ (ज रत, परिजन), ९०
(अनुचर गण), ३७३ (अनुयायी) ।

परिजास । ७८ (किसी अपराधक कारण
मघदारा कुट दिनक लिने प्रयवधरण) ।

५४० (पराक्षार्थवाप) ।

नानास्व-प्रज्ञा [नानत्त पञ्चा] । १११ (स-
माधिबिघ्न) ।

नामकाय । १३० (= नाम समुदाय) ।

नाम-रूप । १७, १३०, ३७७ (प्रत्येक-
समुत्पादना एक अंग) ।

नाली । ४२ (मगधकी), ४३ (प्राय सेरमर) ।
नास्तिरूपादी । २६१ (विस्तार) ।

निकति । ४६९ (= वृत्तगता) ।

निकेत । ११७ (= घर) ।

निकितधुर । ९१० (भगोदा) ।

निगठ । ८६ (= निग्रह, ग्रंथि-रहित, ग्रथि =
पाप), १९०, ३०९ (जैनपात्र), २३१
(-प्रमाण) ।

निगम । ९९ (= कल्पा) ।

निघट्ट । २१० (= कोश) ।

निदान । १००, १३० (= समुदाय, हेतु,
प्रत्यय), ५४९ (कारण) ।

निधान । ५४६ (= चतुर्विधा) ।

निधानयती । १७३ (मार्थक) ।

निध्यान । २२६ (= ध्यान), २५७
(निदिध्यासन) ।

नि प्रीतिक । १०२ (= प्रीति-रहित) ।

निपुण । २२६ (= पण्डित) ।

निमित्त । १०२ विशेषता), १९७, १७६
(विग, आकृति) ।

नियति । २६२ (= भवितव्यता) ।

नियुत । ३९ (= लाप) ।

निरर्गल । ३३९ (सर्ममेध-यन) ।

निरुक्ति । १३१ (= भाषा) ।

निरुद्ध । १९० (= नष्ट) ।

निरोध । (आर्यसत्य) २९ (= दुःख नाश),
२३ ।

निरोध-वर्म । २४ (= नाशप्रमाणवाला) ।
२९ (नाश होने वाला) ।

निर्ग्रन्थ । ४४४ (= जैन साधु) ।

निर्देश । ५०४ (विस्तार) ।

निर्देशवस्तु । ५०४ (सात) ।

निर्भोज । १३८ (विस्तार) ।

निर्माणरति । ५०७ (देव) ।

निर्याता । २६९ (= मार्गदर्शक) ।

निर्याण । ९, ३६ (उपधि रहित पद),
३८१ (अस्तंगमन) ।

निर्वृत । ३७१ (मुक्त) ।

निर्वन्द । ३४ (= त्रैराग्यकी पूर्वावस्था), १७६,
१९४, २८९ (= उद्वासीनता) ।

निर्वन्द-प्राप्त । १७८ (उदास) ।

निर्वेधभागीय । ५०३ (संभा ६) ।

निर्वेधिक । ४९९, ५१० (अन्तस्तत्त्वक
पर्यवेक्षणवाली) ।

निवासन । १९६ (पोशाक) ।

निवृत्त । २०७ (= आवृत्त) ।

निशाति । ५०४ (= विपदपना) ।

निश्चित । ४९४ (= आश्रित) ।

निपाद । ३८७ (जाति) ।

निपीदन । ५६१ (निश्रान) ।

निष्क । ४१ (= अक्षरार्थ) ।

निष्कामना । ३८२ ।

निष्कामण । ५२३ (= निकलना) ।

निष्ठा । २२९ (श्रद्धा), २९१ (धारणा) ।

निष्पाक । ५०४ (= परिपाक) ।

निस्सरण । १३६ (= छद्म राग छोड़ना) ।

निस्सरण पञ्चा । २०६ (यत्रने निरुद्धनेकी
प्रज्ञा) ।

नि सरणीय धातु । ५०० (पाच), ५०३
(छ) ।

निहीन । २१५ (= नाच) ।

नीचरण । १२१, २०७ (५-कामचन्द्र,
व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य कौटल्य,
विचिकित्सा), १७४ (५ अभिज्ञा,
व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य-कौटल्य,

- त्रिप्रिक्त्रिमा), १०८ (= वजन), २८४,
४६६, ४९८, ५२६ ।
- नीलमणि । २०१ ।
- नेत्ती [नेत्री] । ४८२ (स्त्री, गाठ) ।
- नेगम । ७० २०७ (श्रेष्ठामे ऊपरका पद),
२३५ (शहरी) ।
- नेचयिक गृहपति । २३८ (नेगम जानरद
अधिनारी), २३७ (= धर्मो धेयव) ।
- नेर्याणिक । ५०० (= यमा करनेवालेको
दु त क्षपकी ओर लेजानेवाला), ८२६
(पार काग घाला) ।
- नेरुनगा-नास्वनायतन । १३५, ५०७ ।
- न्यग्रोध । ५७० (बर्गद) ।
- न्याय । ११८ (= सत्य), २६१ (निर्वाण),
३४६ (धर्म) ।
- न्याय धर्म । ५२० (= आर्यधर्म = योद्ध
- पट । ४८ (महार्घ यत्र) ।
- पट-पिलोतिका । ४५, ४७ (= देशमी वस्त्र) ।
- पट्टि । २५१ (= दोकरा) ।
- पण । २५८ (= पात्री) ।
- पतिपत्नी गुण । १३७ ।
- पतोद् । २४० (कोश) ।
- पत्तकल्ल । १०९ (= उचित) ।
- पत्ति । ३५९ (= पदम्) ।
- पद । २६१ (= विष्णु) ।
- पदक । २४३ (= कवि) ।
- पदाधिनारी । राज्य— २१० ।
- पद्मिनी । २० (रत्न-कमल समुदाय) ।
- पद्मानीय अंग । ४०९ ४१० (पाच) ।
- पन्थत । १७८ (= महामार्ग) ।
- पद्मजन [पद्मजन] । ३११ (दश
निकाल) ।
- पद्मार । ५३३ (= पद्मद ग्रामार) ।
- पमुट । २६३ (= गान् मोल) ।
- परचित्तज्ञान । २७३, ४६७ ।
- परनिर्मित वशयर्ती । ५०७ (द्य) ।
- परम गुण । २८१ (परिमात्र-मिद्वान्त) ।
- परामृष्ट । ५०२ (= विस्मृत) ।
- परि-अपदान । १७८ (शुद्ध), ४१७
(मन्द, मोरा) ।
- परि उपासना । २८० (= मत्स्य) ।
- परिया । ५२३ (= पाहं) ।
- परिग्रह । १२९, १३० (= जमा करना),
२०७ (स्त्री) ।
- परित्र । २१९ (= काष्ठप्राकार) ।
- परिघ परित्रितिक । २३० (एक वागारिक
सत्तर) ।
- परिचर्या । २७८ (= मत्स्य) ।
- परिजन । ४२ १५३ (नागर वाकर) ।
- परिजुम्भ । २५७ (= हानि ४) ।
- परिष्ठा । २८० (= त्याग ३—काम रूप,
यदना) ।
- परित्त । १०२ (= भरण), १३१ (शुद्ध,
अणु) ।
- परिदाह । १५८, ५०० (= जल) ।
- परिदेव । १२४ (मोनाधोना) ।
- परिनिर्धृत । ३५१ (= मुक्त), ५१७
(निवाण प्राप्त मृत) ।
- परिपथ । २३० (= रहजनी) ।
- परिव्राजक । २ (= माधु) ३८ ।
- परिव्राजक सिद्धात । २८१ (परमवर्ण) ।
- परिमत्र । ९१ (निस्कार) ।
- परिभाषित । १३९ (सेविन, मेधा) ।
- परिमित्र । १७९ (= विहृत) ।
- परित्राग । ५ (ज ग, परिजन), ९०
(अनुज गण), ३७३ (अनुपाथी) ।
- परित्रास । ७४ (विषी क्षपराधक कारण
मधुशरा कुट्ट निनेरि लिध ग्रथपथरण) ।
५२० (पराक्षर्यवाम) ।

परिवेण । ७१ (आगन-सहित घर) ३१७,
३३९ (चौक) ।

परिपद् । ५४ (४—मिथु, मिथुनी,
उपासक, उपासिका), ९०७ (आठ) ।

परिष्कार । १२, ३२० (=सामान),
५२ (मिथुआये), ३६५ (उपभोग
वस्तु) ।

परिस्त्रावण । ५६१ (=जलछका) ।

परुष । १७२ (=कटु) ।

पर्णाकार । ५७२ (=मंड) ।

पर्यन्त-सहित । १७३ (सिद्धान्तसहित) ।

पयवगाढ । २४ (=विदित) ।

पर्याय । ३६ (=प्रकार), ३१८ (प्रका-
शतर, उपदेश) ।

पर्यायभक्तिरु । २८७ (एकदिन निराहार
एकदिन आहार करने वाला तापस) ।

पर्याप्त । ५०१ (=शाद्य) ।

पर्युत्थित-चित्त । ५५२ (आतचित्त) ।

पर्युपासन । ३६, २२६ (=सेवा) ।

पर्येषण । ७९ (आठ गुरुधर्म) ।

दर्यपणा । १०९ (तृणामे) ।

पलालपीठक । २३० (एक मजा) ।

पलास [प्रदाश] । २८७ (=निष्ठुरता) ।

पलासी । ५०२ (=पर्यासा वा प्रदाशी) ।

पत्नल । ५२९ (=त्रेढा जलाशय) ।

पश्यी । १०९ (दर्शा, आपत्ति देखनेवाला) ।

पसिध्नक । २५१ (=गोरा) ।

पस्साव । ११९ (पेशाव) ।

पाक (-यक्ष) । २१५ ।

पाटिहारिय [प्रातिहार्य] । ८३ (चमत्कार) ।

पाटिहीरक । अ-२०५ (-अप्रामाणिक) ।

पाडु । ८९ (लाल) ।

पाडुरुल । ८९, २८१ (=लाल दोशाला) ।

पाडुपलाशिक । २१६ (पोछे हो गिरजाने
वाले पत्तोंको खानेवाला तापस) ।

पात्र । २७ (=मिक्षापात्र) ।

पात्र । मिट्टीका—४३ ।

पादकठलिका । २२ (पैर रगड़नेकी एकट्टी)

पादचार । ८७ (=पग) ।

पादपीठ । २२ (=पैरका पीठा) ।

पादोदक । २२ (=पैर धोनेका जल) ।

पान । १६७ (आठ विहित—आम्रपान, जम्बू०,
चाच०, मोच०, मधु०, मुद्दिक०, साहू०
पारसक०) ।

पाप । २५४, २७९ (बुराई) ।

पापधर्म । ७७ (=पापी) ।

पापके मार्ग । २७५ (चार) ।

पाप मित्रता दोष । २७६ (६) ।

पापोयस । १९२ (=बहुत बुरा) ।

पापेच्छु । ३२१, ४३४ (=बदनीयत) ।

पारमिता । १६ (दण) ।

पारमिता । उप—। १६ ।

पाराजिक । ३०८ (द्वितीय), ३१२—
१६ (प्रथम), ३११ (व्याख्या),
३१७—१९ (तृतीय) ३१९—२१
(चतुर्थ) ।

पारिषद्य । २१४ (दर्गारी), २३५ (सभा-
सङ्घ) ।

पाली । ८६ (मूलत्रिपिटक), ३०७ (मंड),
५८० (पंक्ति, भगवान्‌के मुखकी पंक्ति) ।

पापण्ड । ५६९ (=मत) ।

पासुकूल । २३ (=पुराने चीथड़े), ४५
(गुरदो), ३८५ (पेंक चीथड़े) ।

पासुकूलिक । ४५ ८७ (गुददोषारी),
१४७ (पेंके चीथड़ोंको सीकर पहनने
वाला), ३०६ (लत्ताधारी) ।

पासुपिशाचक । २८१ (चुटैल) ।

पिंगल-किपिल्लक । ८५ (=माटा) ।

पिटक । २२४ (=वचन-समूह) ।

पिटक संप्रदाय । २६३ (=पंथ प्रमाण) ।

पिंड । ७३ (भोजन, परोमा), ८२, १९
(= भिक्षा) ।

पिंडपात । ४८ (भिक्षा), ७१ (भिक्षाघ),
१६६ (भोजन), २६७ ।

पिंडपातिष्ठा । १४७ (मिर्षा मधुरी मागकर
माने वाला, निमंत्रण नहीं), २८८
(मधुरी वाला) ।

पिलोतिका । ४६ (= नया शास्त्र भी
कितोरेक पट्टेकी पिलोतिका कहा
जाता है) ।

पिशाच । २१३ (= दृष्टि) ।

विशुन उचन । १७२ (= चुगली) ।

पुट । ६२८ (= मालकी गाठ) ।

पुट भेदन । ६२८ (जहा मालकी गाठ
तोड़ी जाये, नगर) ।

पुहटाकिनी । २० (इतकमन् मनुष्य) ।

पुण्य क्रिया-रस्तु । ४०१ (पुण्यकर्म ३) ।

पुद्गल । ७६ (व्यक्ति, प्राणी), २०४, ६९४
(व्यक्ति), २६६ (मनुष्य), २६७
(मात), ४९१ (तीन), ४०७
(चार) ।

पुनर्भय । १०३ (आगमन) ।

पुराणदुतीयिका । ३१० (आया) ।

पुरुषमेध । ३६० (यज्ञ) ।

पुलक । १४१ (= चावक, पुगव) ।

पुस्तकार । १९ (= विप्रकार) ।

पूग गामजिक । ४१० (एक समुदायका
अकनर, ग्राम ग्रामजिक नाये) ।

पूर्व-जन्म ज्ञान । १६, २७३ ।

पूर्वनिवास । १६१ (= पुनर्जन्म) ।

पूर्वनिवास ज्ञान । ४३८ ।

पूर्वनिवास स्मृति । २८१ ।

पूर्वनिवासानुस्मृति ज्ञान । १७४, ४१८
(प्रथम विद्या) ।

पुर्नान्त । २८० ।

पृथग्जन । २३ (= भूते मनुष्य), ४६ (जि-
सको सत्त्वसाक्षात्कार नहीं हुआ), ३३७

४६६ (अज्ञ स्मारी जीव) ।

पृथिवीकाय । २८१ (पृथिवी) ।

पृथिवीधातु । १८० (अन्त्यात्म धाहा
पृथिवी) ।

पृथिवीसमभारत । १८८ ।

पेत्तगन् । १० (= नगराधिकारी, मेयर) ।

पेशान । ७६२ (नगर) ।

पेशल । ४० (अज्ञ) ।

पोरिसा । १७८ (= पुरुषप्रमाण) ।

पौत्रलिख । १६९ (व्यक्तिगत) ।

पौरी । १७२ (नागरिक, सभ्य) ।

प्रकाशनीयकर्म । ४२९ (दोष दोल दना,
एक भिन्नार्थ) ।

प्रग्रह । ४८९ (चित्त निग्रह) ।

प्रजस । ८३ (= निधारित), ६२१ (विहित),
६३१ (विद्या) ।

प्रजस । अ-६२१ (नायकानूनी, अविदित) ।

प्रजसि । १९९ (= निरुक्ति, व्यवहार)
६७९ (विद्या) ।

प्रजसि । अनु-६७० (= सशोधन) ।

प्रजसिख । स-२८६ (= सिद्धांतपति-
पाठक) ।

प्रज्ञा । २३ (= विद्या) १३४, ४४
(ज्ञान) ४०१ (ताग) ।

प्रज्ञा इन्द्रिय । २६८ (सहजकी) ।

प्रज्ञाविमुक्त । १३९ (शान्तर मुक्त), २०७
(अर्थव) ।

प्रज्ञापा । १३१ (नाग, जतामा), २८१
(उपदेश) ।

प्रणिधि । ६०७ (= अभियन्ता) ।

प्रणीत । २८१ (उक्त) ।

प्रतिमान । ३८ (सुन्दर) ।

प्रतिक्षेप । २३६ (= इकार) ।

प्रियसमुदाहार । ११० (दूसरेके उपदेशको
ब्रह्म-पूर्वक सुननेवाला, स्वयंभी उपदेश
करोमे उतावाही) ।

प्राप्ति । ६७ (प्रमोद), १२२ (हर्ष,
मोक्षमग), ३७४ (खुशी) ।

प्रेत्यनिपय । ४९७ (भूत, प्रेत) ।

प्रेक्ष्य । १६९ (= नाटक) ।

प्रेष्य । २३७ (= नौकर) ।

सीहा । १२०, १७६ (= तिहरी) ।

फल । ६० (मोतापत्ति, सकृदगामिता,
अनागामिता, अरहत्) ।

फलमूलाहारी । २१७ (तापसमत) ।

फल-साक्षात्कार । ३०१ (स्रोतआपत्तिक-
साक्षात्कार, सद्गतागामि०, अनागामि०,
अर्हन्) ।

फाणित । २३९ (= गुड़) ।

फारसक । १६७ (फारसा) ।

फारसक-पान । १६७ (फारसेका रस) ।

फासु । १०३ (अनुमृत्ता) ।

फुफ्फुस । १७६ (फफटा) ।

वडिशमासिका । २३० (एक शारीरिक-
दंड) ।

उधु । २११ (= प्रज्ञा) ।

धधुरु रोग । ४७८ (धधु बिछोहसे उत्पन्न
शोकही रोग) ।

उच्छ्रज । ३२० (रस्सी घटनेका तृण) ।

घल । ४८२, ५३३ (बुद्धसाक्षात्कृत धर्म ५),
१०४ (छ), ४९५ (चार), ५०४
(सात) ।

घलकाय । १६६ (सेना), ३२७ (लोग-
बाग, लाव जङ्कर) ।

प्रलभेरी । ५२३ (मैत्रिक नगरा) ।

वलि । २३४, ५२१ (= कर) ।

प्रटरज । २५५ (दूखी बन्धज) ।

वहुकार । २२७ (= उपकारी) ।

वाल । ९८ (अज), ३६०, ४४० (मूर्ख) ।

वालयेव । ७ (धनुष लावन) ।

वाल-व्यजनी । ९० (मोरछ) ।

वालसघाट यत्र । ५४७ ।

वाहिरास । १४५ (यहिमुर्ख वित्त) ।

वाहुलिक । २२, ४१८ (बहुत जमा करने
वाला) ।

वाहुत्यपरायण । (देगो वाहुलिक) ।

वाहुसध । १४३ ।

वित्र । (= भासार) ।

विलग-वालिक । २३० (एक शारीरिक-
दंड) ।

वुफ । १७६ (कलेजेये पासका एक मास-पिंड) ।

वुद्ध । १, २१४, २३९ (परमतत्त्वज्ञ),
३३८ (रेगिमुधूपामे) ।

वुद्ध-अकुर । ४ ।

वुद्ध । निमित्त—८६ (योगबलसे उत्पादित
वुद्ध रूप) ।

वुद्ध । प्रत्येक—१ ।

वुद्ध-विषयकस्मृति । ६८ ।

वुद्धानुवुद्ध । १४८ (भावक) ।

उद्धानुस्मृति । ३५, ६८, १५१, १७२,
२५३ ।

वोधि-अद्ग । १०४ (सात) ।

वोधि । प्रथम—७५, ३३६ (बुद्धत्तसे
प्रथम २० वर्ष) ।

वोधि सत्त्व । २ ।

वोध्यद्ग । १२२, १२३, २६९ (सात—
स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रभञ्जि,
समाधि, उपेक्षा), २८२, ५३३ (बुद्ध-
साक्षात्कृत धर्म), ५०४ (मात),
५२४ (७ अवगिहाणीय धर्म) ।

वोद्ध धर्म । ५४० (= न्याय-धर्म =
आयधर्म) ।

ब्रह्म । ३९० (श्रेष्ठ), ४५४ (निराण) ।

ब्रह्मचर्य । १४१ (संप्रदाय) ।
 ब्रह्मचर्य । आदि-१९४ (शुद्ध ब्रह्मचर्य) ।
 ब्रह्मचर्यचरण । ३२, ३९ ।
 ब्रह्मचारी । स-६७ २५० (गुरुमाई) ।
 ब्रह्मदंड । २१९ । ६६० (के देनेका प्रकार),
 ५५४ ।
 ब्रह्मपुत्र । ४८ (= उत्तम), ३६६ (ब्राह्मण
 जातिवा) ।
 ब्रह्मलोक । ३९ ।
 ब्रह्मविहार । ३८६ (चार भावनायें) ।
 ब्रह्माके पेरकी संज्ञान । २११ (नीच,
 ब्रह्मा = यधु) ।
 ब्राह्मण । (= संत) ३८६, (पाच प्रकारके—
 ब्रह्मसम, देवसम, अर्थाद, समिध-मयाद
 ब्रह्मचाडाल) । १८१, ५१३ (के मेघक
 दूसरे धण) २१५ (में असगण विवाह)
 ब्राह्मण ऋषि । १८३, १८५ (ब्रह्मर्षि) ।
 ब्राह्मणका धर्म । २४० (पाच—मुनजत,
 संनधर, उर्ग, क्षील, वक्षिणाह) ।
 ब्राह्मणधर्म । पुराण-३८५ (पाच) ।
 भगिनीसंवास । २१३ ।
 भणै । ४४ ('हे' 'र' की जगह सरोधन) ।
 भडन । ९८, ४८८ (बलह) ।
 भक्तपतेन । २३५ (= भक्ता पतेन) ।
 भदन्त । ५० ।
 भद्र । ५३० (= संहर) ।
 भन्ते । ४ (= रचामी, पूज्य) ।
 भय । १७ (प्रनीत्य) २३ (जन्म), ४३,
 १०९ (लोक), १२४ (आवागमन),
 १२९ (काम-, रूप, अरूप), ३९७
 (= संसार) ४८९ (त्यागमन,
 नित्यता), ४९० ।
 भयती । ११५ (= आप, श्रीके लिये) ।
 भयनेत्री । ५२९ (= कृष्णा) ।
 भयामय । १८० (हाना न होना) ।

भयराग । १२२ (आवागमन प्रेम, संयो-
 जन) ।
 भयचिन्त । ० (= मृदुचित) ।
 भस्स । ५२४ (= यकवाद) ।
 भरस्सकारक । १०६ (कलह कारक) ।
 भात । ५३० (= भोजन) ।
 भाविना । ११३, १८६, १८७ (मंत्री
 कृष्णा, मुदिता, उपेक्षा), १८५ (ध्यान),
 १८६, १८७ (अशुभ, अनित्य, भाणा-
 पान सति—) । २०६ (रागादि प्रहा-
 नार्थ), ४९१ (तीन) ।
 भावनाराम । ४९४ ।
 भिक्ष । १७२ (धर्म में पड़े) ।
 भुजिस्स । २५३, ५०३ (उचित) ।
 भूत । १२८ (जात), ३६२ (यथार्थ),
 ५३८ (जात, संस्कृत), (प्राणी) ।
 भूतगाम । १७३ (= भूत समुदाय) ।
 भूतपादी । १७३ (= यथार्थ बोलनेवाला) ।
 भूमिकर । १६० ।
 भेद । ४२५ (= नामात्त्व), ५२२ (कृष्ट) ।
 भैषज्य । ७१ (आयुध) ।
 भो । ३६७ (= जी), ४१२ (= हो) ।
 भोगका उदाहरण । ३५० ।
 भोज राजा । १६४ (माहलिक राजा) ।
 भ्रमकार । ११९ (स्वरादी) ।
 भगलस्सर्म । ५७ ।
 भद्रगुर । १९६ (भगुर सज्जी) ।
 भणिकर । १६२ (मटका) ।
 भज्जा । १७६ (अस्थि—) ।
 भत्तमर । २८७ (= कृपगता) ।
 भव । ३२० (= चारपाई) ।
 भवशिषिन्ना । ४६१ (= डोला) ।
 मध्यदेश । [मज्झिम जणप] ५०९ ।
 मद । ४०१ (तीन), ।
 मधुपान । १६७ (जहदमा रम) ।

प्रियसमुदाहार । ११० (दूम्बरेके उपदेशको
श्रद्धा पूर्वक सुननेवाला, स्वयंभी उपदेश
करनेमें उतताही) ।

प्राप्ति । ६७ (प्रमोद), १२२ (हृष,
प्रोध्यग), ३७४ (मुक्ती) ।

प्रेत्यधिपय । ८९७ (भूत, प्रेत) ।

प्रेक्ष्य । ४६९ (= नाटक) ।

प्रेष्य । २३७ (= नोकर) ।

प्लीहा । १२०, १७६ (= तिल्ली) ।

फल । ६० (सोतापत्ति, मरिदागामिता,
अनागामिता, अरहत) ।

फलमूलाहारी । २१७ (तापसत्रय) ।

फल-स्वाक्षात्कार । ३२१ (सोतापत्तिक-
साक्षात्कार, स्रष्टृगामि०, अनागामि०,
सर्वव०) ।

फाणित । २३९ (= शुद्ध) ।

फारसक । १६७ (फारसा) ।

फारसक-पान । १६७ (फारसेका रस) ।

फासु । १०३ (अनुकूलता) ।

फुफ्फुस । १७६ (फेंफटा) ।

घडिशमासिका । २३० (एक शारीरिक-
लङ्घ) ।

घधु । २११ (= मछा) ।

घधुक रोग । ४७८ (यद्यु विजोहते उत्पन्न
शोकही रोग) ।

घटपत्र । ३२० (रस्मी बटनेका मृण) ।

घल । ४८२, ५३३ (उद्धसाक्षात्कृत धर्म ५),
१०४ (छ), ४९९ (चार), ५०४
(मात) ।

घलकाय । १६६ (सेना), ३२७ (लोग
बाग, लाय लङ्कर) ।

घलमेरी । ५२३ (सैनिक नगरा) ।

गलि । २३४, ५२१ (= कर) ।

वत्त्वज । २५५ (देखो बज्ज) ।

वहुभार । २२७ (= उपकारी) ।

वाल । ९८ (थल), ३६०, ४४० (मूर्म) ।

वालनेत्र । ७ (धनुष लाधव) ।

वाल व्यजगो । १० (मोराल) ।

वालमघाट यत्र । ५४७ ।

वाहिरास । १४९ (यदिमुग्ध चित्त) ।

वाहुलिक । २२, ४१८ (बहुत जमा करने
वाला) ।

वाहुत्यपरायण । (देखो वाहुलिक) ।

वाहुसन्ध । १४३ ।

विं । (= आकार) ।

विलग-थालिक । २३० (एक शारीरिक-
लङ्घ) ।

युक्त । १७६ (कलेजेके पामना एक मास पिंड) ।

युद्ध । १, २१४, २३९ (परमतत्त्वज्ञ),
३३८ (शैविमुद्भूतपामं) ।

युद्ध-अकुर । ४ ।

युद्ध । निमित्त—८६ (योगवशसे उत्पादित
युद्ध रूप) ।

युद्ध । प्रत्येक—१ ।

युद्ध-विषयकस्मृति । ६८ ।

युद्धानुसुद्ध । १४८ (भावक) ।

युद्धानुस्मृति । २५, ६९, १५१, १७२,
२६३ ।

योधि-अङ्ग । १०४ (सात) ।

योधि । प्रथम—७९, ३३६ (उद्धत्यसे
प्रथम २० वर्ष) ।

योधि सत्त्व । २ ।

योध्यङ्ग । १२२, १२३, २६९ (सात—
रमृति धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रसन्निय,
समाधि, उपेक्षा), २८२, ५३३ (युद्ध-
साक्षात्कृत धर्म), ५०४ (मात),
५२४ (७ अपविहाणीय धर्म) ।

यौद्ध-धर्म । ५४० (= न्याय-धर्म =
आर्यधर्म) ।

ग्रह । ३९० (ज्येष्ठ), ४०४ (निषाण) ।

शब्दानुक्रमणी ।

ब्रह्मचय । १४१ (संप्रदाय) ।
 ब्रह्मचर्य । आदि-१९४ (शुद्ध ब्रह्मचर्य) ।
 ब्रह्मचर्यचरण । ३२, ३९ ।
 ब्रह्मचारी । स-६७, २६० (सुल्भाई) ।
 ब्रह्मदंड । २१५ । ५५२ (के देनेका प्रकार),
 ५५४ ।
 ब्रह्मधु । ४८ (=उत्तम), ३६६ (ब्राह्मण
 जातिरा) ।
 ब्रह्मलोक । ३५ ।
 ब्रह्मविहार । ३८६ (चार भावनायें) ।
 ब्रह्माके पैरकी संतान । २११ (नीच,
 ब्रह्मा = धनु) ।
 ब्राह्मण । (=संत) ३८६, (पाच प्रकारके—
 ब्राह्मसम, देवसम, मर्याद, त्रिभिन्न मर्याद
 ब्रह्मचाडाल) । १८१, ५१३ (के सेवक
 दूसरे वण) २१५ (में अमर्षण विवाह) ।
 ब्राह्मण ऋषि । १८३, १८५ (ब्रह्मर्षि) ।
 ब्राह्मणका धर्म । २४२ (पांच—सुजात,
 मंत्रधर, उग, शास्त्र, दक्षिणाह) ।
 ब्राह्मणधर्म । पुराण-३८० (पाच) ।
 भगिनीसत्तास । २१३ ।
 भणै । ४४ ('हे' 'ते' की जगह ससोधन) ।
 भंडन । १८, ४८८ (कल्ह) ।
 भक्तयनेन । २३५ (=भक्ता येतन) ।
 भदन्त । ५० ।
 भद्र । ५३० (=सुंदर) ।
 भन्ते । ४ (=स्वामी, पूज्य) ।
 भव । १७ : प्रतीत्य) २३ (जन्म), ४३,
 १२० (लोक), १०४ (आवागमन),
 १२९ (काम-, रूप, अरूप), ३९७
 (=संसार) ४८९ (आवागमन,
 निरपत्ता), ४०० ।
 भवती । ११५ (=आप, स्त्रीके लिये) ।
 भवनेश्री । ५२९ (=कृष्णा) ।
 भवामय । १८९ (हाना न होना) ।

भयराग । १२२ (आवागमन प्रेम, स्नेह-
 जन) ।
 भव्यचित्त । ० (=मृदुचित्त) ।
 भस्स । ५२४ (=वस्त्राद) ।
 भरस्सकारक । १०६ (कल्ह शास्त्र) ।
 भात । ५३० (=भोजन) ।
 भावना । ११३, १८६, १८८ (चिंत
 कल्पना, मुद्रिता, उपमा), १८० (चक्र,
 १८६, १८७ (अगुम, तन्मय, कल्प-
 पान मति—) । २१५ (गति-
 नाथ), २११ (तीन) ।
 भावनाराम । ४०२ ।
 भिन्न । १७३ (पृथक् पृथक्) ।
 भुजिम्स । २०३, ५०३ (दक्षिण) ।
 भूत । १२८ (जात), ३०३ (कार्य
 ५३८ (जात, स्वप्न, सुषुप्ति)
 भूतगाम । १७३ (=स्वप्न-सुषुप्ति)
 भूतगदी । १७० (=स्वप्न-सुषुप्ति)
 भूमिपर । १०० ।
 भेद । ४३० (=गणन, १००, १००,
 भेषज्य । ७१ (सौकर्य) ।
 भो । ३६७ (=जाति, १००, १००)
 भोगका उदाहरण । ३०० ।
 भोज राजा । १०१ (स्वप्न-सुषुप्ति)
 भ्रमकार । ११९ (स्वप्न-सुषुप्ति)
 भगलर्म । १५० ।
 भद्रगुण । १०० (स्वप्न-सुषुप्ति)
 भणिक । १०० (स्वप्न-सुषुप्ति)
 भज्जा । १५ (स्वप्न-सुषुप्ति)
 भक्तम । १०० (=स्वप्न-सुषुप्ति)
 भव । १०० (=स्वप्न-सुषुप्ति)
 भवजिविका । १०० (=स्वप्न-सुषुप्ति)
 भव्यदश । १०० (=स्वप्न-सुषुप्ति)
 भद्र । १०० (=स्वप्न-सुषुप्ति)
 भद्रपान । १०० (=स्वप्न-सुषुप्ति)

मधुपिण्ड । १८ (एहू) ।

मध्यम प्रतिपद् । २३ (मध्यममार्ग) ।

मन । ३४ (धातु) ।

मनाप । १७७ (इष्ट, प्रिय) । ६०,
१७७ (प्रिय, अप्रतिकृत, इष्ट) ।

मनसिकार । १७९ (विषयगान) ।

मनसिकार । अ—१०१ (मार्ग दृढ
न करना, समाधिविघ्न) ।

मनोमय कायनिर्माण । ४६९ ।

मनोविज्ञान । ३४ (धातु) ।

मत्र । २१९, ३७९ (= यद्) ।

मय । १८ (= मद्वा) ।

मन्दारम् । ५४३ (एक दिव्यपुष्प) ।

मर्प । २८७ (= आमर्ष, अमरत्) ।

मल्ल । ९२ पहलगान ।

मसककुटी [मसककुटी] । ९३ (मयहरी) ।

मसारणल्ल । ५४७ (कजरमणि) ।

मह । ५४६ (= पूजा) ।

महद्गत । १२१ (महापरिमाण) ।

महद्विक । ४४४ (दिव्यशक्तिधारी) ।

महल्लक । १३७ (= दृढ), ५७४ ।

महानुभाव । ३३३ (= महाकृदिमान्) ।

महापुण्य । १५२ ।

महापुरुषलक्षण । ४४ (सात, यत्तीस) ।
१६३ (सामुद्रिकशास्त्र) ।

महापुरुषप्रह्वार । ५६३ (शून्यताविहार) ।

महाप्रदेश । ५३४ (बुद्ध ध्वजको कपोटी
४) ।

महामूत । १७६ (धातु) ।

महामात्य । ५२० (= महामंत्री) ।

महामुनि । ५५ (बुद्ध) ।

महारोज । ८५ (चार) ।

महाराजिक । चातुर— ८७ (देव) ।

महालता-प्रसाधन । ३२८ (एक प्रकारका
जेवर) ।

महाजीर । ५५ (बुद्ध) ।

महाशयन । १७३ (उद्यतया) ।

महाशब्द । २८४ (= कोलाहल) ।

महाशाल । २३५ (प्रतिष्ठित धनी), ३६४
(महावैमज्जपद्म), ५३८ (महाधनी) ।

महाश्रावक । (ज्यो श्रावक । महा—) ।

महिका । ५५७ (= कुहरा) ।

महेसन्त । २५१ (= महायामर्षवान्),
५२८ (महादक्षिणा) ।

महा-शोध । २७१ (= बाढ) ।

माणवक । १८० (विषाधा), २२१
(ब्राह्मण तरण), ५६८ (ब्राह्मण-पुत्र) ।

माजिष्ट । ८६ (मनीषके रगका, लाल) ।

माजेष्टिक । ८० (ऊष्णका लाल रोग) ।

माता पिताका सम्मान । २७८ ।

मातृग्राम । ३२६ (= स्त्री) ७८ (स्त्रिया) ।

माघश । २५७ (कुत्र मात्रामें) ।

मात्रिकाधर । ५३४, ५५९ (अभिघर्मज) ।

मात्सर्य । १२० (संयोजन), १३० (उत्पत्ति
क्रम), ४९८ (= हृमद्, पाच) ।

मान । १३२ (अभिमान, संयोजन) ।

मानन्तचारिक । ७४ ।

मानत्वार्ह । ७४ ।

माया । २८७ (= रचना) ।

मायाधी । ४७४ (छली) ।

मार । १६५ (राग आदि शत्रु) ।

मार-लोक । ३५ ।

मार्ग । २५ (दुष्वासना उपाय), २४७
(अष्टांगिक) ।

मार्ग-भायना । (४ स्मृतिप्रस्थान, ४ म-
य्यरूपधान, ४ कृत्रिपात्र, ५ इन्द्रिय ५
यन्त्र, ७ धो-यंग, आर्य-अष्टांगिक मार्ग) ।

मार्ग सुख । १५ ।

माप [मागिस] । ११, १८ (दयता अपो
समानवातेको माप कहते हैं) ।

मापक । ३११ (= मासा, ५ मापक = १ पाद, ४ पाद = १ पुरातननोल कहापण) ।

मासभोजन । ४३३ ।

मिथ्यात्व । ५०५ (झड, ८) ।

मुडक । २११ (शिर मुडा), ३८९ (बुद्धके लिये) ।

मुडक श्रमण । २२७ (इम्य, शूद्र) ।

मुदिताभावना । ११३, १८६ (सुखोको दल प्रसन्न होना), ३४८ ।

मुद्रिक । १६७ (मृद्रिका, अंगूर) ।

मुद्रिक । ४६२ (हाथमे गिनेने वाला) ।

मूर्धा । ३७७ (= अविद्या) ।

मूर्धापात । ३७४ ।

मूर्धापातिनी । ३७७ (= विद्या) ।

मूर्धाभिपिक्त । ४१० (अभिपेक प्राप्त) ।

मूलदायक । ५६२ (= प्रतिवादी) ।

मुलप्रतिकर्षणार्ह । ७४ (विनयकर्म) ।

मृद्ध [मिद्ध] । ४०० (= आलस) ।

मेरय । ७६, ५५७ (कच्ची शराब) ।

मैत्रचित्त । १८२ ।

मैत्रीभाजना । ११३, १८६ (मत्रको मित्र समझना), ३४८ ।

मैत्रीनिहार । ५६२ (= झुलक बिहार) ।

मोघ । १९८ (मिथ्या) ।

मोघपुरुष । ३२ (मूर्ख), १६९, २५८ (नालायक) ।

मोक्षपान । १६७ (केलेरा शर्बत) ।

मोमुह । २६४ (= अतिमूढ़) ।

मोह । ३४ (जप्ति) ।

म्लेच्छ । ५०९ (= अप्रदित) ।

यकृत । १७६ (कलेजेक पाम ण्व मास पिंड) ।

यक्ष । १२८ ।

यजन । १६६ (पूजा) ।

यज्ञ । ३५ (अश्वमेध, पुरुषमेध, वाजपय, रण । स—४४ (मल युक्त) ।

निर्गल), २३२ ३४ (सोलह परिष्कार त्रिविध यज्ञ-संपदा) ।

यक्ष पशु । २४१ (गो आदि) ।

यक्षवाट । २३७ (= यास्थान) ।

यथाकाम । ९९ (मौजसे) ।

यथापर्याप्त । ५०१ (= धर्मशास्त्रके अनुसार) ।

यद्भयसिक्त । ४८३, ५०५ (अधिकान्ता-क्षमय) ।

यम । २०६ (देवता) ।

यमक । ५३७ (= जोडे) ।

यमकप्रातिहार्य । ८६ (दे० प्राति०) ।

यगगू । ३३४ (= पतली खिचड़ीके दल-गुण) ।

यगगूलाद्य । ३८९ ।

यष्टिमधु । १४ (जेनेमधु) ।

यागू । ८८ (खिचड़ी) ।

याचितकूपम । १६० ।

याजरु । ३६६ (= पुगेहित) ।

यापनीय । ९९ (= अच्छी गुजर), ३१९ (= शरीर-यात्रा-योग्य), ३९६ (शरीर को अनुकूलता) ।

याम । १६, ५३६ (= गत्रिका तृतीयाश), ५०७ (देवता) ।

युजराज । ५७१ ।

यूप । २३७ (महास्तम्म, जित पर पजमान राजा अमात्य आदिना नाम लिखा रहता था) ।

योग । ४९६ (चार) ।

याग-क्षेम । २५७ (= निर्वाण) ।

योजन । ३, २१० (= ४ गन्धूति) ।

योनि । ४९६ (चार) ।

योनिस्तो । २४१ (= मेकसे) ।

रण । ४७ (= मल) ।

रण । स—४४ (मल युक्त) ।

रक्तक्ष । ४६९, ५२४ (= धर्मानुरागी) ।
 रक्तध-महत्त्व । [रतन्त्र-महत्त] ४६९ ।
 रजोजल्लिक । (कीचउलपट कराहना , तप)
 रति । अ-६४ (= असंतोष) ।
 रभम् । २१२ (= वक्रवादी) ।
 रव । १८५ (= प्रमाद) ।
 रस् । ३४ (= पातु) ।
 रहस्य । ३७ (= पुरातन) ।
 राग । ३४ (अग्नि) ।
 राजकुल । २५१ (राजा) ।
 राजन्य । २१८ (अभिषेक-रहित कुमार),
 (राज-सन्तान) ।
 राजपुरुष । ५४ (राजाका नौकर) ।
 राजपुरुषता । ३८६ (= सकारी नौकरी) ।
 राजपोरिस । (राजाकी नौकरी) ।
 राजमल । ३२७ (राजाके नौकर चाकर) ।
 राजा । ५२१ (= राष्ट्रपति, उपराजके
 ऊपर) ।
 राजान्त पुर । ५५७ (= राजद्वार) ।
 राज्य आय । ५२१ (शुल्क, बलि, दंड) ।
 राणि । ४९० (तीन) ।
 राष्ट्रपिंड । ४७, ३२०, ३२१ (राष्ट्रका
 लक्षण) ।
 राष्ट्रिक [राष्ट्रिक] । ४१० (= गयनर,
 प्रदेशाधिकारी) ।
 राहु । ८ (= धपन) ।
 राहुमुख । २३० (= एक सजा) ।
 रितास । (= शून्य हृदय) ।
 रुचि । १६४ (= कांति), २२५ (सादृष्टिक-
 विपाकद धर्म) ।
 रुद्र । २३१ (= अक्रूर) ।
 रुप । १४ (पातु), १७९ (मूर्ति, शरीर) ।
 रूप । अ- (= रूप-रहित-निराकार) ।
 रूप-उपादान-रूपध । १७६ ।
 रूप-संग्रह । ४९० (तान) ।

रूपी । १९६ (रूपवान्, साकार) ।
 लक्षण । ५ (निमित्त) ।
 लक्षण । महारूप-२१९ (वत्तीस) ।
 लघूत्थान । ४१२ (शरीरको कार्य क्षमता),
 ५२० (फुर्त) ।
 लज्जी । १७२ ।
 लचा । ३८८ (घूम, स्थित) ।
 लट्टि [यट्टि] । ३० (यष्टी, लाठी) ।
 लसिका । १२० (= केतुनी आदिक जोडोम
 स्थित सरल पदार्थ) । १७७ (= कर्णमल) ।
 लाभो । ७२ (पानेवाला) ।
 लोक आर्यायिका । १८९ ।
 लोकज्येष्ठ । ८७ (बुद्ध) ।
 लोह । (श्लोताम्रलोह) ।
 लोहमाणक । २५५ (वर्तन) ।
 लोहवारक । २५५ (वर्तन) ।
 लोहित । ८६, ५२० (लाल) ।
 लोहितपाणि । ३७१ (खूनसे रंगे हाथ
 वाला) ।
 लोहिताक । ५४७ (पद्मराग-मणि) ।
 चचीपरम् । २७६ (= केवल बात बनाने-
 वाला) ।
 चणिकूपथ । ५२८ (= व्यापार-मार्ग) ।
 चणिकूपक । २३६ (बन्दीजन) ।
 चनप्रान्त । १७३ ।
 चदनीय । ७५ ।
 चदनीय । अ-७४ ।
 चपितशिर । १८० (मुदितशिर) ।
 घर । ५९ ।
 चर्ण । २८२ (चार—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,
 शूद्र), २४२ (= रूप, ब्राह्मणकर धर्मो
 मे), २८२ (शरीर), ४४२ (प्रसादा) ।
 चर्पावास । ७५ (बुद्धके ४६) ।
 चशघर्ती । २०७, २०९, (= जितद्विय),
 (मार) ।

वसा । १७७ (घर्षी) ।

वस्तिगुह्य । १६४ (पुरुषकी जनन इन्द्रिय,
= लिङ्ग) ।

वस्तु । १०७, १६६ (= वात), १०९
(मामला), १४९ (क्या, विषय) ।

वाजपेय । ३६१ (यज्ञ) ।

वाद । (मत, सिद्धान्त) । ४६३ (अत्रिय-
अमरविशेष-, ओहेतु-), १०६, ४६३
(उच्छेद-), १०५ (शाश्वत-), ४६३
(चातुर्यामिसंवर-) ।

वामकी । १७१ (ध्वनी इयिनी) ।

वामजाति । ४४ (स्त्री) ।

वायुधातु । १७८ (वायु महाभूत), १७६,
१७७, १८६, (अध्यात्म, धातु) ।

वायुसमभायना । १८६ ।

वार्षिक । ८० (= जह्नी फूल) ।

वासी । २५० (= बसूछा) ।

वास्तु । ५२८ (घर, निवास) ।

त्रिकारा । १६७ (= मध्याह्नोत्तर) ।

विकाल भोजन त्रित । १७३, २६५
(मध्याह्नोत्तर भोजन न करनेवाला) ।

त्रिकाल भोजन-त्रित । २०५ (के गुण) ।

विक्षिप्तक । १२० (कायानुपश्यना, पैक
मुद्रपर भावना करना) ।

त्रिस्तादितक । १२० (कायानुपश्यना, स्त्राय
मुद्रपर भावना करना) ।

विगर्हणा । ११२ (निंदा) ।

विग्रह । २०३ (विवाद), १०० (इत्या) ।

विप्रात । १०८ (= पीडा) ।

विचार । १७४ ।

विचित्रित्सा । १०१ (समाधि विग्रह), १२१
(= संनय, नीवरगमें), १२२ (संयोजनमें),
१७४ (= संदेह, ५ नीत्रणोंमें) ।

विलुप्तिक । १२० (कायानुपश्यना, स्त्राय
छोड़ दिने गय मुद्रपर भावना करना) ।

विजनवात । ७० (आदमियोकी हवासे
रहित) ।

प्रिजित । ४२६ (= राज्य) ।

विज्ञान । १७ (प्रतीत्यम्), १३१ (वित्त-
धारा, जीव), २७२ (चेतना), ३८०
(जीव) ।

विज्ञान-काय । ८०१ (छ चेतन-समुदाय) ।

विज्ञान स्थिति । १३४—३५

(१ नानाकाय नानासना,

२ ,, एकसंज्ञा,

३ एककाय नानासंज्ञा,

४ ,, एकसंज्ञा,

५ आकाशान्त्यायन,

६ विज्ञानानन्त्यायतन,

७ आर्किसन्त्यायतन), ४९५ (चार),

५०४ (= योनि, सात) ।

विज्ञानानन्त्यायतन । १३५ (विज्ञान-
स्थिति), १७४, १९४ (समाधि),
५०८ ।

वितर्क । (विषय तुल्याक बाद उय सत्यन्धमें
जो तर्क विनर्क होता है), १७४, २९६
(तीन—काम-, व्यापाद-, विहिंसा) ।

वितर्क । अकुशल—। ४८९ ।

वितर्क । कुशल—। ४०० (तीन) ।

वितान । ५४३ (चंद्रवा) ।

विद्या । १३९ ४० (तीन), २१६ २४९ ।

विद्याचरण । २१६ ।

विद्याचरण-संपदा । २१७ । २१६-१८
(के विद्या) ।

विद्या । तिरच्छान—४६४ ६५ ।

विप्र । ४९० (= प्रसर) ।

विनय । ५३४ (= मिथु नियम, सूत्रमें),
८०४ (= त्याग) ।

विनय कर्म । ५६६ (नियमोत्पन्न करनेपरमिहु
के दंड, और प्रायश्चित्तका निश्चय करना) ।

रक्त-चश ।

रक्तज्ञ । ४६९, ५२४ (= धमानुवागी) ।

रक्तज्ञ-महत्त्व । [रक्तज्ञ-महत्त्व] ४६९ ।

रजोज्ज्वलि । (कीचउरुपेट कराहना , तप)

रति । अ-६४ (= असंतोष) ।

रभस । २१२ (= घनवादी) ।

रव । ८९ (= प्रमाद) ।

रस । ३४ (= धातु) ।

रहस्य । ३७ (= एकान्त) ।

राग । ३४ (धामि) ।

राजकल । २११ (राजा) ।

राजन्य । २१८ (अमिपेकरहित कुमार),
(राज-सन्तान) ।

राजपुरुष । ५४ (राजाका नौकर) ।

राजपुरुषता । ३८६ (= सर्वोरी नोमरी) ।

राजपरिस । (राजाकी नौकरी) ।

राजपल । ३०७ (राजाके नौकर चाकर) ।

राजा । ५२१ (= राष्ट्रपति, उपराजके
ऊपर) ।

राजान्त पुर । ५५७ (= राजन्धार) ।

राज्य आय । ५२१ (शुल्क, बलि, दंड) ।

राशि । ४९० (तान) ।

राष्ट्रपिंड । ४७, ३२०, ३२१ (राष्ट्रका
अन्न) ।

राष्ट्रिक [राष्ट्रिक] । ४१० (= गवनेर,
प्रदेशाधिकारी) ।

राहु । ८ (= बधन) ।

राहुमुख । २३० (= एक मजा) ।

रिचास । (= गूण्य हृदय) ।

रचि । १६४ (= काति), २२५ (माहष्टिक-
विपाकद धर्म) ।

रुद्र । २३१ (= भद्रकर) ।

रूप । १४ (धातु), १७९ (मूर्ति, शरीर) ।

रूप । अ- (= रच-रहित-निराकार) ।

रूप-उपादान रुद्रध । १७६ ।

रूप-सग्रह । ४९० (तान) ।

ल

ल

ल

ल

रि

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

ल

बीजगाम । १७३ (बीज समुदाय), ४६०
(पाच भेद) ।

बीणा । घेलुपपदु-९० (पेणुकी शाल बीणा) ।

बीत-छन्द । ५०० (= विगतप्रेम) ।

बीर्य । १२२, १२३, १७७ (उद्योग, बी-
र्यग), ५३२ (= मनोबल) ।

बीर्यइन्द्रिय । २९८ (= अहंसा) ।

बीर्यारम्भ । ८१ (= उद्योगिता) ।

बुद्धदेवता । १० ।

बुद्धमूलिक । ८७ (सदा बुद्धों को रहने-
वाला भवन) ।

बुधल । १८४, ३७० (बुध) ।

बुध । ४८, २३६ (तीन) ।

बेदना । १७, १२९ (प्रतीत्य०), ३४,
२८९, ४७० (सुता, दुःखा, न सुता
न दुःखा), १२५ = इन्द्रिय और विषयके
परिमाण मितिके बाद विचित्र जो बुद्ध,
सुख आदि विकार उत्पन्न होता है),
१२९ । चतुःसंस्कार उत्पन्न, ओषण,
प्राण०, जिह्वा०, काय०, मन०,), १७७,
२८६, ४९० (अनुमत्), २३० (संस्कार),
५०६ (छ) ।

बेदनानुपश्यता । १२० (स्मृतिपर्याय) ।

बेदनाय । २२६ (= जानने योग्य) ।

बेदन्तरु । (जानने के अन्तर्को पहुँचा) ।

बेदयित । १३३ (= अनुमत्) ।

बेदेह । ४९० (वेद = जानने प्रयत्न करने
वाला) ।

बेध्यापन्न । २५० (= व्याप्ति) ।

बेधुन । २४५ (= साक्षा) ।

बेणुन । ३८० (जाति, यमोर) ।

बेदुय [वेदुय] । १४२ (बुद्ध-भाषित) ।

बेदुयमणि । २७२, २८१ (= होता) ।

बेनायेक । १३८, १४० (अनेक वाचा) ।

बैपुत्य महत्त्व । १४३ ।

बोत्तम्म [व्यक्ती] । २७९ (= छुट्टी) ।
व्यक्त । ९७ (= पद्धति) ।

व्यञ्जन । ३८ (अर्थ), ३८ (स्पष्टीकरण),
२१९, २६८ (तत्कारी), ३७६
(लक्षण) ।

व्यञ्जन । अनु-१७३ (= निमित्त) ।

व्यय । ११९, ४९३ (विनाश) ।

व्यय उर्मा । ५३३ (नाशमान) ।

व्ययकीर्ण । १३३, ५८३ (निमित्त) ।

व्ययदानोय उर्म । १०७ (शमय, विप-
श्यता) ।

व्ययसर्ग । ४९७ (= त्याग) ।

व्ययहार । ७१ (न्याय), १५७ (व्या-
पार, वाणिज्य) ।

व्ययहार अमात्य । ७१ (= न्यायाध्यक्ष) ।

व्ययहार-उच्छेद । १५७ (कटपाय आठ) ।

व्ययहारिक । ५२१ (विनिश्चय महामात्य
के ऊपर, महामात्य) ।

व्ययन । २०७ (= आपन), ४९८ (पाप) ।

व्याकरण । १२४ (= व्याख्यान) १४२
(नम-सूत्र, गेय, व्याकरण, गाथा, उदात्त,
इतिवृत्तक, जातक, अनुवृत्तधर्म, वैदल्य) ।

२४१, २८९ (= उत्तर, व्याख्यान) ।

व्याकृत । १९३ (कथित) ।

व्याकृत । अनु-८८ (अकथित), १९३
(निप्रयोजन होनेसे अकथित), १९४
(-दृष्टि) ।

व्यापन्न वित्त । २३६ (मोही) ।

व्यापाद । ६२, १८६ (= द्वेष), १०१,
१७३ (द्राह विवाह) ।

व्रत । ५५ (= क्रिया) ११६ (मे न शुद्धि),
५७० (सेवा) ।

शक्ति । ९८, ४८१ (एक इधियार) ।

शमय तिखिन । ३५२ (तिष्ठ शोचका तरह
निर्मल श्वेत) ।

शयमूर्धिका । २३० (एक सजा) ।
 शवल । ४८६ (= कल्प) ।
 शब्द । ३४ (धातु) ।
 शमथ । १४४, ४८९ (= समाधि) ।
 शमय विपश्यना । १४४ (समाधि प्रज्ञा) ।
 शयन । २६१ (घर) ।
 शयनासन । ७१ (घर), ७६, ३३६
 (= गिरासम्पत्ति), ९४८ (= वास-
 स्थान), २६४ (घर सामान), २६७
 (घर विस्तार), २८७ (निवास) ।
 शरण । २९ (तीन-), २७७, ६८ ।
 शरणगमन । त्रि—९३ (से उपसर्ग),
 ६७ (से श्रामणे प्रप्रज्ञा) ।
 शरीर । ९४९ (= अस्थि) ।
 शलाका । ४८३ (वोटकी शलाका जो
 Ballot को जगह व्यवहार होता थी),
 ४८४ (रंग चिह्न), ६६९ (नियम
 कर्म) (दे० छद्मशलाका) ।
 शलाकाग्रहण । ४७० (वोट लेना), ४८४
 (तीन प्रकारसे—गूढ, कर्णजल्पक,
 चित्तक) ।
 शलाकाग्रहापक । ४८३ (शलाका बाँटने
 वाला) ।
 शलाकाग्राह । ४८४ (शलाका ग्रहणका
 प्रकार) ।
 शय-देव । १३७ ।
 शल्लक्ष्ण । ३०७ (चोकर) ।
 शान्यपुत्रीय । ९० (= शाक्यपुत्र बुद्धके
 अनुयायी) ।
 शान्तिवादी । ११७ ।
 शाचक । १०३ (छाष, छउआ) ।
 शाश्वतद्वष्टि । १०६ (शाश्वतवाद, नित्यतावाद)
 शाश्वतवाद । १२० (आत्माको नित्य
 मानना) ।
 शाश्वतवादी । ९७४ (= नित्यतावादी) ।

शाश्वतविहार । ६०३ (छ) ।
 शासन । २४, ६९, ९७१, ९७३ (धर्म),
 ४२, ९४, ३२७, ३३२ (सदेश, पत्र,
 चिट्ठी), १७७ (उपदेश) ।
 शासनकर । ९१९ (धर्मप्रचारक) ।
 शासन । प्रति—३२७ (= उत्तर) ।
 शासनमल । १७२ (धर्ममें मिलावट) ।
 शास्ता । २१ (= गुरु), ३९ (उपदेशक),
 ९४१ (बुद्धके अभावमें धर्मविनिय ही
 शास्ता) ।
 शिक्षा । २६७ (= नियम), ४९१ (तीन),
 ६०२ (= भिक्षु नियम) ।
 शिक्षाकाम । ४७० (भिक्षु-नियमके
 पाबन्द) ।
 शिक्षापद । २३९ (यम-नियम), ८३, ४१
 (भिक्षु नियम), २९६ (सदाचार-नियम),
 ३१६ (१० बातोंके लिये), ४९८ ।
 शिरके सात-टुकड़े करना । २१३, २१४ ।
 शिर गिरना । ४६ ।
 शिरप [लिप] । ४१९ (= कला),
 २२९ (व्यवसाय भेद), ४७३ (विद्या,
 कला, हुनर) ।
 शिल्पस्थान । ४६२ (कलाय) ।
 शील । १ (= सदाचार) ।
 शीलवान् । ७८ (= सदाचारी) ।
 शीलविपन्न । ४९८ (= दुराचारी) ।
 शीलविशुद्धि । ४९८ (= कायिक वाचिक
 अदुराचार) ।
 शीलव्रत-उपादान । १२९ ।
 शीलव्रतपरामर्शी । १२२ (शील-व्रतका
 अस्मिन्, सयोजन) ।
 शीलसपदा । ४८९ (आचारको सपूर्णता) ।
 शीलसंपन्न । ९२ (सदाचारी) ।
 शीलस्कन्ध । ४६४-६६ ।
 शुल्क । ९२१ (चुक्री) ।

शुक्रमार्ग [सुक्रमार्ग] । १३९ ।

शुद्धावाप्त । ४९९ (देशलोच ५) ।

शून्य । ३८४ (लोकमें) ।

शून्यताविहार । ५६३ (= महापुरुष विहार) ।

शून्यगार अभिरति । ३२१ (प्रथम ध्यानमें, द्वि० च० चतुर्थ०) ।

शृगादक । ४९९ (= बंती, तेमता) ।

शृगिलक्षण घटप । ५९६, ५९९ ५६४ (विनय विरुद्ध-विधान) ।

शेषसहित-ज्ञान । २७ ।

शैव्य । २५७ (= न्यासविज्ञान) । २९२ (जिसको अभी सीखना है, सेख), ५३८ (= सङ्गणीय) ।

शैव्य । अ-५३८ (अर्थ) ।

शैव्यधर्म । अ-५१२ ।

शोक । १२४ ।

शौडिक । ४४७ (तारा घनाने वाला) ।

श्रद्धा । २२५ (माहृष्टिक विपाकधर्म) ।

श्रद्धा इन्द्रिय । २५८ (अर्हत्तक) ।

श्रद्धानुसारी । २५७ (शैव्य) ।

श्रद्धाविमुक्त । २५७ (अर्हत्तक) ।

श्रमण । १२ (= सन्यासी, भिक्षु, १७१ (प्रव्रजित), २८७ (के आचार सवादी धारण, अचेलक, राजाजपिक, उदकावरोहक, वृक्षनृत्तिक, मध्यमकाशिक, उग्रमहक, पर्वा धर्मकिक, मंत्राध्यायक, जटिलक) ।

श्रमण-धर्म । ५ ।

श्रमण परिष्कार । १० (पात्र, ३ चीवर, मुँरे, छुरा, कायर्थघन, जलउद्धा), ५६१ (पात्र, चीवर, पिपीदन, मुखघर, काय वेषन, परिध्रावण, धर्मकरक) ।

श्रमणभाज । ६५ (= साधुपन) ।

श्रमण सामीची प्रतिपद् । २८८ (मचा श्रमण बनानेवाला मार्ग) ।

श्राद्ध । १८३, २१६ ।

श्रामणेर-प्रव्रज्या । ५७ (तीन शरण गमन से) ।

श्रामण्य । १११ (श्रमणभाज), २६१ (मन्थास), ३६० (भिक्षुपन) ।

श्रामण्यफल । ४९६ (चार) ।

श्रावक । १८ (शिष्य) ।

श्रावक । अग्र-१, ५९, ४६९-१ ।

श्रावक । महा-१ ।

श्रीगर्म । ४१ (रमणहृत्) ।

श्रुत । २२५ (धर्म-मार्गोंके लिखित न होनेसे लोग मुन कर ही धारण करतेथे, इस प्रकार उपलब्ध ज्ञानको श्रुत कहतेथे), २७८ (विद्या) ।

श्रुतधर्मा । १८ ।

श्रुतज्ञान । १०४ (पंडित) ।

श्रुति । ११५ (श्रमण) ।

श्रुति । ३२८ (वणिक् मसा) ।

श्रुत्यस्य । १९२ (बहुत अच्छा) ।

श्रेष्ठ । २८ (सेठ), ७० (एक अवतनिक राजसीय पद) ।

श्रेष्ठ । अनु-२८ ।

श्रेष्ठिका पद । १९२ ।

श्रोत्र । ३४ (धातु) ।

श्रोत्रधातु । दिव्य-५५९ ।

श्रावजिज्ञान । ३४ (धातु) ।

श्रावावधान । २२७ (= कान लगाना) ।

श्लेषम । १७७ (= फल) ।

श्लोक । ४२८ (= ताराक) ।

श्रुपान । १८२ (कुत्तेके पीनेका बर्तन) ।

सहृदागामी [सहिदागामी] । २४७ (३ संयोजनके क्षय और रागद्वेष माहृष्टके निर्मल होकर), ५४ (द्वि० श्रमण) ।

संघटप । ४९० (कुशल, सकुशल) ।

संस्कृष्ट । २०९ (= मलिन) ।

संक्षलश । १९७ (= छेना, मल), २०७,
२६२, २६७, २६ (चित्तमल) ।
संगणिक । ५२४ (= मीढ़भाड़) ।
संगति । ३४३ (= भाषी), ३४४ (भवि
तज्यता) ।
संगायेन । (साथमें पाठ करना) ।
संगीति । ५६७-५७५ (एक साथ स्वर-सहित
पाठ करना) ।
समग्रहस्तु । २५९ (४-दान, वेद्यावच,
अर्थ-या, समानात्मता), ४९६ ।
सघ । ५३९ (= परमतत्त्व रक्षक समुदाय),
२३९ (चातुर्विंश), ५७१ (व्याख्या) ।
सधगत । ७७ (समष्टिगत) ।
सधभेद । १०९ (= संघराजो, संघमें फूट),
४३३ ।
संघराजो । १०९ (संघभेद) ।
सघाट । ४५२ (= जाल) ।
सघाटी । ४५, ७७, ११९, २६७ (भिक्षुका
ऊपरका ढोहरा वस्त्र) ।
सघानुस्मृति । २५३ ।
सघयज्ज । २६२ (सच्छापन) ।
सचेतना । १२५ (विषय ज्ञानक बाद
विषयका चिंतन करना) ।
सचेतनाकाय । ४९९ (छ) ।
संज्ञा । १२५ (= इन्द्रिय अर विषयक णक
साथ मिलनेपर अनुकूल प्रतिकूल वेदनाके
बाद हो, 'यह अमुक विषय है'-ज्ञानको
संज्ञा कहते हैं), ४९० (कुशल, अकु-
शल), ५०४ (= नाम), ५०८ (=
छयाल), ५२४ (७ अपरिहाणाय वम) ।
सज्ञाकाय । ६, ५०१ (छ) ।
संज्ञावेदयित निरोध । ५०८ (जहा होश
का कयाल ही लुप्त हो जाता है) ।
सज्ञो । १९० (संज्ञान) ।
सत्कार । ३२९ (= उत्सव) ।

सत्पुरुष । १०५ (आर्य) ।
सत्पुरुषधर्म । ५०४ (७) ।
सत्यानुपत्ति । २२६ (= सत्य-प्राप्ति) ।
सत्यानुबोध । २०६ (सत्यका बोध) ।
सत्यानुरक्षा । २२५ (= सत्यकी रक्षा) ।
सत्त्व । ११५, १५७ (जीव), ५०४ (प्राणी),
१२३ (चित्तधारा) ।
सत्त्वाप्राप्त । २८९, ५०८, २८९ (जीवोंक
लोक ९, ७) ।
स-दर । ६४ (स-भय) ।
सद्धर्म । ५०४ (सात), ५२४ (७ अपरि-
हाणाय धर्म) ।
सद्धर्म । अ ५०४ (सात) ।
सद्धिचिहारी । ५१ (= शिष्य) ।
सनातनधर्म । ९९ ।
सधार । २५० (आसन) ।
सदर्शन । २७ (समानापन) ।
सद्विद्व । ३०९ (= परिचित) ।
सद्वृष्टिपरामर्शी । ५०३ (इर्षा) ।
सन्निपात । ५०० (= इच्छा होना),
५४९ (बैठक) ।
सन्निपात-भेरो । २१५ (बैठककी सूचनाका
विगुल) ।
सन्निधि । ४६५ (जमा करना) ।
सन्निविकारक । ५६४ (समर्पित वस्तु) ।
सपदानचारो । १४७ (= धुतंग, निरंतर
चारिका चलते रहने वाला) । २६८
(निरंतर चलते रह निष्ठा भागनेवाला) ।
सपुत्रभार्य । २१६ (तापसभेद) ।
सप्रोतिक । १०२ (= प्रीति सहित) ।
समुत्कर्षक । २५ (उठानेवालो) ।
समुत्तेजन । २७ (= समर्पण) ।
समुदय । २३ (आर्य-सत्य २) । २५
(दुःख-कारण), ३९ (हेतु, कारण),
२९४ (उत्पत्ति) ।

समुद्रयधर्म । २५ (उत्पन्न होने वाला) ।
समग्र । १७२, ५४५ (एक राय) ।
समज्या [समजा] । ९३ (समाज, मेला,
तमाशा) ।

२७५ (समाज, नाच, तमाशा) ।
समतिचिक्का । २०६ (पूण, भरी) ।
समनुपश्यता । १-५ (सूत्र, सिद्धांत) ।
समन्तचक्षु । ३८० (बुद्ध) ।

समन्त्राहार । १७९ (मनसिहार, विषय-
ज्ञान) ।

समय । ५७४ (= सिद्धान्त) ।
समर्पित । ५०७ (= संयुक्त) ।
समाचार । २२६, ४४२ (आचरण) ।
समाज्ञापन । २७ (सदशन) ।
समादपन । १७० (= समुलोजन) ।
समाधि । २६९ (छन्द, धीर्य, चित्त, विमर्ष),
१२३ (एकाम्रता, घोष्यग), ३२१, ४९१
(शून्यता, अनिमित्त, अप्रणिहित) ।

समाधि । अचित्तक अत्रिचार-१०३ ।
समाधि इन्द्रिय । २५८ (अर्हत्तको) ।
समाधि । उभयाश-२४७ ।

समाधि । नि प्रातिक-१०३ ।
समाधिपरिष्कार । ५०४ (सात) ।
समाधि भावना—४९२ (चार) ।
समाधि चित्र । १०१ (ग्यारह) ।
समाधि । संप्रतिक्ति-१०३ ।

समाधि सम्यक्- (इसी सम्यक्समाधि) ।
समाधि । सवितर्क सविचार-१०३ ।
समाधि । सात-सहस्र १०३ ।
समानता । २५९ (= बराबरी) ।
समापत्ति । १३ (= समाधि), ३२१
(शून्यता, अनिमित्त, अप्रणिहित) ।

समापत्ति । आरूप्य ५४१ (पांच) ।
समात्म । १७३ (विनाश), २३८ (मिया),
३६६ (हिला) ।

समाहित । १७७, १९० (= एकाम्र) ।
समीहित । २१८ (= चिंतित) ।
संपद् । ४९८ (पांच) ।
सम्पन्न । ८० (तप्यार) ।
सपराय । ३४३ (जन्मांतर) ।
सप्रजन्य । ११८ (अनुम्र), ११९
(कायानुपश्यता), १७३ (जागर
करना) ।

सप्रज्ञातसमापत्ति । (= संप्रज्ञानसमा-
पत्ति) १०२ ।

सप्रसाद । १०१ (प्रमत्ता) ।
सप्रहर्षण । २७ (= समुलोजन) ।
सवोध । २३ (= पूर्णज्ञान) ।
सवोधि । १४३ (उद्विजन) ।
सवोधिपरायण । १४३ (परसज्ञानकी प्राप्ति
में निश्चय) ।

सवोधि । सम्यक्—११ (परमज्ञान) ।
सवोध्यज्ञ । ४९४ ।
समुद्य निनय । ५०५ (अधिकरण प्रामथ) ।
सम्यक् । २३ (= ठीक) ।
सम्यक् आजीव । २३ (ठीक जायिका),
१२६ ।

सम्यक् आशा निमुक्त । २५७ (अच्छी
तरह जानकर मुक्त) ।
सम्यक् कर्मान्त । २३ ।
सम्यक्त्व । ५०५ (सच ८) ।

सम्यक् दृष्टि । २३, १२६ ।
सम्यक् प्रतिपन्न । २६६ (= सत्यासुद्ध) ।
सम्यक् प्रधान । १०४ (चार), ४८२,
५३३ (बुद्धसाक्षात्कृत धर्म), ४०० ।
सम्यक्-वचन । २३, १२६ ।

सम्यक् व्यायाम । २३ (ठीक प्रयत्न,
परिश्रम), १२६ ।
सम्यक्-सकृत् । २३, १२६ ।
सम्यक् समाधि । २३, १२६ ।

सम्यक् सवुद्ध । २१ (= बुद्ध) ।
 सम्यक् सम्प्रोधि । १६, २४ (अभि-
 संप्रोधि, परमना, मोक्षनान), १३९
 (= बुद्धत्व) ।
 सम्यक् स्मृति । २३, १२६ ।
 सरक । ४९९ (कटोरा) ।
 सगीरूप । १८ (= रंगनेवाला) ।
 सर्पिष् । १९९ (पी) ।
 सर्पिष्मण्ड । १९९ (घोका सार) ।
 सर्वज्ञ । २३०, २४८ (बुद्धके विषयमें),
 २६३, २८०, ३४२, ४२४ (-संज्ञन) ।
 सर्वमेध । ३६९ (निर्गल यज्ञ) ।
 सर्वार्थक । ३२८ (बेना) ।
 सर्वार्थ-साधक । ६४ (अमात्य) ।
 सलाकाबुत्ता । ११० (फल रहित, गूठी
 मात्र रह गई लेती जहा हो) ।
 स-संस्कार-परिनिर्वायी । ४९९ (अना-
 गामी) ।
 सस्य । ९६ (लेती, हरियाली) ।
 सहव्यता । २०९ (= सलोक्ता) । ९०७
 (स्थिति) ।
 सहसाकार । ४६९ (= खल आदि काय) ।
 सयोजन । १२२ (= बंधन १० प्रतिघ,
 मान, दृष्टि, विचिकित्सा, शीलमत-परा-
 मर्श, भवराग, ईर्ष्या, मातमर्ष, अविद्या) ।
 १९८, २४७ (बन्धन), ४९० (तीन),
 ९०९ (सात) ।
 सयोजन । ऊर्ध्व भागीय—४९८ ।
 सयोजन । श्रवर-भागीय—९, ४९८
 (पाच) ।
 सवर । १७३ (रक्षा, आवरण) २९३,
 ४६८, ४९४ (मयम) ।
 सवर इन्द्रिय—१७३, ४६९ ।
 सवर । चातुर्याम—४४८ (जेनोका) ४६३ ।
 सवर्त । १७४ (= प्रलय) ।

संयत्तकटप । १७४ (प्रलय) ।
 संवास । १३७ (सहवास) ।
 सवृत । २३० (पाप न करनेके कारण
 सवृत, गुप्त), ३४२ (रक्षित) ।
 सवेग । १४९ (वैराग्य, उदासीनता) ।
 सवेग प्राप्त । १७७ (उदास) ।
 सवेजनीय । ४८९ (= उद्देग करनेवाला) ।
 ससरण । ६२९ (आगमना) ।
 सस्कार । (प्रतीत्य), १०९ (कृत्रिम),
 ४९० (तीन), ९३३ (कृत वस्तु) ।
 सस्मृत [संसृत] । १०९ (अनित्य, निर्मित,
 प्रतीत्य समुत्पन्न), २९० (कृत, कृत्रिम) ।
 ९३८ (जात) ।
 संस्थागार । १४८ (= प्रजातत्र सभागृह),
 ४८७, ६४२ (प्रजातत्र-परिषद्-भवन) ।
 संस्पर्श । ३४ (योग), १७७ (संघ),
 ११९ (= विषय और इन्द्रियका टकराना,
 छूना) ।
 साक्षात्करणीय । ४९६ (४ धर्म) ।
 साक्षात्कृतधर्म । ९३३ ।
 साधिक । १६९ (मंत्रका) ।
 साटक । ३०० (धोती) ।
 सात । १०२ (सुख) ।
 सातरूप । १२४ (प्रियरूप) ।
 साधु । ९७१ (अच्छा) ।
 साधुविहारी । ९९ ।
 सादृष्टिक । १६० (तत्कालफलप्रद), २९३
 (वर्तमानमें फलप्रद), ४६४ ।
 सादृष्टिक-विपाक प्रद । २२० (९ धर्म—
 श्रद्धा, रवि, मनुश्रव, आकारपरिवर्तक,
 दृष्टि निश्चायाक्ष) ।
 सापतेय्य । २३७ (= धन धान्य) ।
 सामग्री । १०९, ४८९ (पुरता) ।
 सामीचोर्म्म । ७७, ४०४ (सत्त्वलिर्म्म =
 हाथ जोड़ना) ।

शब्दानुक्रमणी ।

सारद्ध । १७७ (चत्वर) ।
 साराणीय । ४८५, ४८६ (= प्रियकरण,
 गुत्करण) । ५०२ (छ) ५२४ (मात
 वापरिहाणीय धर्म) ।
 सार्ववाह । २० (काष्ठीका सर्दार) ।
 सालुक । १६७ (कोट्टी जट) ।
 मालूफपान । १६७ ।
 सिद्धार्थक । ३६३ (पीली मरलो) ।
 मिन्नी । ३०२ (लोपटी) ।
 सिंह पजर । ५७० (= खिडकी) ।
 सिंहशय्या । ४८८ ।
 सुगत । १९ ।
 सुगति । १७५ (स्वर्गलोकाप्राप्ति) ।
 सुचरित । १४९ (काय०, याक्०, मन-),
 ४८९ ।
 सुजा । २३६, २४४ (यन दक्षिणा) ।
 सुजात । १६४ (सुन्दर जन्मपात्र) ।
 सुणिसा । १५२ (= पुत्रपत्नी) ।
 सुदर्श । ४९९ (दयता) ।
 सुदर्शी । ४९९ (दयता) ।
 सुप्रातिकार । ७७ (प्रत्युपकार) ।
 सुभ । ५०७ (= शुभ) ।
 सु भरता । ८१ [आसानी]
 सुभूमि । ३९६ (उद्यानभूमि) ।
 सुतापान दोष । २७५ (पाच) ।
 सुकरमहन् । ५३६ (= सुकरमान्त्र) ।
 सूचाघर । ५६१ (सु रत्नका घर) ।
 सूत्र [सुत] । १४२ (व्याकरण) । ५३४
 (बुद्ध ममयर्म) ।
 सूत्रधार । ५२१ (पदाधिकारी, ज्योतिषादि
 के ऊपर) ।
 सुद । ४६२ (= पाचक) ।
 सूना । १५८ (= मास काटनेवा पीड़ा) ।
 सूप । ६८ (= तमन), २१९ (दाल) ।
 सेतक । ५७४ [सफेद कपड़ा] ।

सेतद्विका । ८० (सफेदा, वनस्पति रोग)
 सेतुघात । १४१ (= मर्यादा-खंडन) ।
 सेनापति । २५२ (गणोंमें पद), ५२१
 (सूत्रधारके ऊपर), ४१० ।
 सेान्म । २६० (शत्रु) ।
 मौत्रातिक । (सूत्रपाठा) ७३, ९७ (सूत्र
 पिटकपाठी) ।
 सौत्रचस्य । ५१० (= मधुरभाषिता) ।
 स्कध । २६८ (= समुदाय), ४९७ (पाच) ।
 स्कन्धागार [लधावार] । ८८, ४७६
 (छावनी) ।
 स्तम्भितरज [छम्भितरज] । १०१ (समाधि-
 विग्रह) ।
 स्त्यानमृद्ध [योन मिद्ध] । १०१ (समाधि-
 विग्रह), १२१, १७४, ४६६ (मनका
 आलम्प्य, गीवरण) ।
 रीधन । ३१४ ।
 स्थपति । ४७९ (फील्दान्, इसीसे धर्म
 = राज) ।
 स्थविर । ४८, ४०९ (बुद्ध, ठर इसीसे) ।
 स्थविरवाद । ४१४ (बुद्धाका सिद्धांत),
 ५७२ (= धेरेवाद, सिद्धल, वर्मा, रयान
 का बौद्ध धर्म) ।
 स्थविरामन । ५७३ (समापत्तिका आसन) ।
 स्थानार्ह । १०८ (धार्मिक, धर्मानुसार) ।
 स्थाम । २६२ (दयता), ४९९ (दय-
 पराम्प) ।
 स्थालिपाक । २१५ ।
 स्थूल [धूल] । २३२ (लम्भा, धूनी इसीसे) ।
 स्थूल शायय । २५४ (दुष्कर्म)
 स्नायु [नहार] । १७६ (नस) ।
 स्पर्श (कम्म) । ८७ (प्रतीत्यो), १०५
 (योग), १९२ (प्राप्ति), २५६
 (साक्षात्), (देखो स्पर्श भी) ।
 स्पर्शकाय । ५०१ (स्पर्श समुदाय ६) ।

स्प्रष्टव्य । ३८ (धातु) ।
 स्फीत । २९७ (समद्विशाली) ।
 स्मृति । १२२, १२३ (सद्योव्यग) ।
 स्मृति-इन्द्रिय । २६८ (अहंतकी) ।
 स्मृतिपारिशुद्धि । १६० (स्मरणको शुद्ध
 करना), १७४ (तृतीय ध्यानमें) ।
 स्मृतिप्रस्थान [सतिपट्टान] । १०४ (चार),
 ११८-१२७ (कायानुपश्यना, वेदनानु०,
 चित्त०, धर्म०), २८९, ४८२, ५३३ ।
 स्मृतिचिन्तय । ४८४ (विनयकर्म), ५०५
 (अधिकरण-शमय) ।
 स्मृतिसप्रजन्य । १७३, ४६५ ।
 स्रोत आपत्ति [सोतापत्ति] । ४०५, ४९४
 (के ४ अङ्ग) ।
 स्रोत-आपन्न [सोतापन्न] । ७३, २७४
 (३ सयोजनोके क्षयते), ४९४ (के ४-
 अङ्ग), ५४० (प्रथम श्रमण) ।
 स्वकसही । १९१ (अपनेम संज्ञा ग्रहण करने
 वाला) ।
 स्वप्नोपम । १६० ।
 स्वरभण्य । ९३ ।
 स्वरभाणक । ५५९ (स्वरसहित सूत्रोको
 पढ़नेवाला) ।

स्वस्ति [सोत्थि] । १८२, २१४ (=म-
 गल) ।
 स्वाख्यात । २४, १६५, ४३४ (छद्म प्रकार
 से वर्णित) ।
 स्वीकार । ५४२ (=सहन) ।
 स्वीयनप्रायश्चित्त । ४८४ ।
 हृत्थत्थर । ३५७ (गलीचा, हाथीपर का
 पिछोना) ।
 हृत्थविलंपक । १०० (हस्त-सफेत) ।
 हस्तप्रज्योतिका । २३० (हाथ जलाने की
 सजा) ।
 हस्तिग्रन्थशिल्प । ४२१ (हाथी पकड़नेकी
 विद्या) ।
 हस्तिनखप्रासाद । ३३९ (=हाथीके पैर
 या खट्टु जेकी आहृतिका प्रासाद) ।
 हिरण्य । ७१, २९९, ३५५ (वाशर्फी) ।
 द्विडना [द्विडन] । २५० ।
 हुत । ३५ (हवन) ।
 हेतुरूप । ४२५ (=ठीक) ।
 हृद [वह] । ३९० (सरोवर) ।
 ह्रीमान् । २६० (लज्जाशील) ।

अभिधर्म-कोश ।

जिस प्रकार संस्कृतके कितनेही ग्रंथ लुप्त होगये थे, वेतेही साचार्य वसुबन्धु रचित धौत दर्शनका यह अपूर्व ग्रन्थ लुप्त होगया था । यही ग्रन्थ उपरर तत्पार है । इसीक विषयमें गजर्मेट संस्कृत कॉलेज बनारसके प्रिंसिपल पंडित गोपीनाथ खिराज M A कहते हैं—

"Rev Rāhula Sākṛityāyana is to be congratulated on the excellent edition, with his own Sanskrit Gloss, of Vasubandhu's Adidharmī Kosa, which has been brought out by him on behalf of the Kashi Vidyapitha. The present Sanskrit text of the Kosa is no doubt based on Poussin's French translation of the original work and its commentary from the Chinese version of Hiouen Tsang. Great credit is however due to the author for having supplemented the labours of the learned Belgian scholar in the restoration of the lost Sāṅkās. The name of Vasubandhu stands unique in the history of Buddhist Philosophical literature of the realistic schools and the author has rendered a distinct service to the cause of Indian Buddhism as well as of Sanskrit Philosophy in general by his present publication. The learned introduction, the numerous charts attached to the work and the exhaustive word index appended at the end have added greatly to the usefulness of the book."

सन् १९२६)

स्प्रष्टव्य । ३४ (धातु) ।
 स्फीत । २९७ (समद्विशाली) ।
 स्मृति । १२२, १२३ (सद्योध्यग) ।
 स्मृति-इन्द्रिय । २९८ (अर्हवस्त्री) ।
 स्मृतिपारिशुद्धि । १६० (स्मरणको शुद्ध
 करना), १७४ (तृतीय ध्यात्मम्) ।
 स्मृतिप्रस्थान [सतिषट्पान] । १०४ (चार),
 ११८-१२७ (कायानुपस्थान, वेदनानु०,
 चित्त०, धर्म०), २८९, ४८२, ५३३ ।
 स्मृतिविनय । ४८४ (विनयकर्म), ५०५
 (अधिकरण-शमय) ।
 स्मृतिसप्रजन्य । १७३, ४६५ ।
 स्रोत श्रापत्ति [सोतापत्ति] । ४०५, ४९४
 (के ४ अङ्ग) ।
 स्रोत-श्रापन्न [सोतापन्न] । ७३, २७४
 (३ सयोजनोक क्षयते), ४९४ (के ४-
 अङ्ग), ५४० (प्रथम श्रमण) ।
 स्वकसङ्गी । १९१ (अपनेमे सजा प्रहण करने
 वाला) ।
 स्वप्नोपम । १६० ।
 स्वरभण्य । ९३ ।
 स्वरमाणक । ५५९ (स्वरसहित सूत्रोको
 पढनेवाला) ।

स्वस्ति [सोत्थि] । १८२, २१४ (=म-
 गल) ।
 स्वारयात । २४, १६५, ४३४ (सुंदर प्रनार
 से वर्णित) ।
 स्त्रीकार । ५४२ (=सहन) ।
 स्त्रीयनप्रायश्चित्त । ४८४ ।
 हृत्थत्थर । ३५७ (गलीचा, हाथीपर का
 बिछौना) ।
 हृत्थविलंबक । १०० (हस्त-मकेत) ।
 हस्तप्रज्योतिका । २३० (हाथ जलाने की
 सजा) ।
 हस्तिग्रन्थशिरूप । ४२१ (हाथी परछनेकी
 विद्या) ।
 हस्तिनप्रसादाद् । ३३९ (=हाथीके पैर
 या खटुजेकी आकृतिका प्रासाद) ।
 हिरण्य । ७१, २९९, ३५५ (अक्षरार्क) ।
 हिडना [हिडन] । २५० ।
 हुत । ३५ (हवन) ।
 हेतुरूप । ४२५ (=ठोक) ।
 हृद [दह] । ३९० (सरोवर) ।
 होमान् । २६० (लज्जाशील) ।

